प्रेमचंद

अन्य कहानियाँ

[हिन्दीकोश]

Tittle: Anya Kahaniyan

Author: Premchand

Release Date: 15 June 2020.

Edition: 1.0

Language: Hindi

While every precaution has been taken in the preparation of this book,the publisher assumes no responsibility for errors or omissions, or for damages resulting from the use of the information contained herein.

Suggestions and corrections are welcome.

Visit https://www.hindikosh.in for more...

अन्य कहानियाँ

अंधेर

अनाथ लड़की

अपनी करनी

अमृत

आखि़री तोहफ़ा

आखिरी मंजिल

आल्हा

आहुति

इज्ज़त का ख़ून

इस्तिहारी शहीद

कर्मों का फल

कवच

क़ातिल

कोई दुख न हो तो बकरी

खरीद लो

क्रिकेट मैच

खुदी

ग़ैरत की कटार

घमण्ड का पुतला

जंजाल

जुरमाना

तथ्य

ताँगेवाले की बड़

तिरसूल

त्रिया-चरित्र

दाराशिकोह का दरबार

दूसरी शादी

देवी

देवी (2)

दो बहनें

नबी का नीति-निर्वाह

नसीहतों का दफ्तर

नेकी
पंडित मोटेराम जी शास्त्री
पर्वत यात्रा
पुत्र-प्रेम
पैपुजी
प्रतिशोध
प्रेम की होली
प्रेम-सूत्र
बड़े बाबू
बन्द दरवाजा
बाँका जमींदार
बोहनी
मंदिर और मस्जिद
मनावन
महरी
मिलाप
मुबारक बीमारी
यह भी नशा वह भी नशा
रहस्य
राजहठ
राष्ट्र का सेवक
लेखक
वफ़ा का खंजर
वफा की देवी
वासना की कड़ियाँ
विक्रमादित्य का तेग़ा
विजय
शादी की वजह
सिर्फ एक आवाज
सैलानी बन्दर
सौदा-ए-खाम
स्वांग
होली का उपहार
होली की छुट्टी

अंधेर

नागपंचमी आई। साठे के ज़िन्दादिल नौजवानों ने रंग-बिरंगे जाँघिये बनवाये। अखाड़े में ढोल की मर्दाना सदायें गूँजने लगीं। आसपास के पहलवान इकट्ठे हुए और अखाड़े पर तम्बोलियों ने अपनी दुकानें सजायीं क्योंकि आज कुश्ती और दोस्ताना मुकाबले का दिन है। औरतों ने गोबर से अपने आँगन लीपे और गाती-बजाती कटोरों में दूध-चावल लिए नाग पूजने चलीं।

साठे और पाठे दो लगे हुए मौजे थे। दोनों गंगा के किनारे। खेती में ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ती थी इसीलिए आपस में फौजदारियाँ खूब होती थीं। आदिकाल से उनके बीच होड़ चली आती थी। साठेवालों को यह घमण्ड था कि उन्होंने पाठेवालों को कभी सिर न उठाने दिया। उसी तरह पाठेवाले अपने प्रतिद्वंद्वियों को नीचा दिखलाना ही जिन्दगी का सबसे बड़ा काम समझते थे। उनका इतिहास विजयों की कहानियों से भरा हुआ था। पाठे के चरवाहे यह गीत गाते हुए चलते थे —

साठेवाले कायर सगरे पाठेवाले हैं सरदार

और साठे के धोबी गाते —

साठेवाले साठ हाथ के जिनके हाथ सदा तरवार।

उन लोगन के जनम नसाये जिन पाठे मान लीन अवतार।

गरज आपसी होड़ का यह जोश बच्चों में माँ दूध के साथ दाखिल होता था और उसके प्रदर्शन का सबसे अच्छा और ऐतिहासिक मौका यही नागपंचमी का दिन था। इस दिन के लिए साल भर तैयारियाँ होती रहती थीं। आज उनमें मार्के की कुश्ती होने वाली थी। साठे को गोपाल पर नाज था, पाठे को बलदेव का गर्रा। दोनों सूरमा अपने-अपने फरीक की दुआएँ और आरजुएँ लिए हुए अखाड़े में उतरे। तमाशाइयों पर चुम्बक का-सा असर हुआ। मौजें के चौकीदारों ने लट्ठ और डण्डों का यह जमघट देखा और मर्दों की अंगारे की तरह लाल आँखें तो पिछले अनुभव के आधार पर बेपता हो गये। इधर अखाड़े में दाँव-पेंच होते रहे। बलदेव उलझता था, गोपाल पैंतरे बदलता था। उसे अपनी ताकत का जोम था, इसे अपने करतब का भरोसा। कुछ देर तक अखाड़े से ताल ठोंकने की आवाजें आती रहीं, तब यकायक बहुत-से आदमी खुशी के नारे मार-मार उछलने लगे, कपड़े और बर्तन और पैसे और बताशे लुटाये जाने लगे। किसी ने अपना पुराना साफा फेंका, किसी ने अपनी बोसीदा टोपी हवा में उड़ा दी साठे के मनचले जवान अखाड़े में पिल पड़े। और गोपाल को गोद में

उठा लाये। बलदेव और उसके साथियों ने गोपाल को लहू की आँखों से देखा और दाँत पीसकर गये।

2

दस बजे रात का वक्त और सावन का महीना। आसमान पर काली घटाएँ छाई थीं। अंधेरे का यह हाल था कि जैसे रोशनी का अस्तित्व ही नहीं रहा। कभी-कभी बिजली चमकती थी मगर अँधेरे को और ज्यादा अंधेरा करने के लिए। मेंढकों की आवाजें जिन्दगी का पता देती थीं वर्ना और चारों तरफ मौत थी। खामोश, डरावने और गम्भीर साठे के झोंपड़े और मकान इस अंधेरे में बहुत गौर से देखने पर काली-काली भेड़ों की तरह नजर आते थे। न बच्चे रोते थे, न औरतें गाती थीं। पवित्रात्मा बुड्ढे राम नाम न जपते थे।

मगर आबादी से बहुत दूर कई पुरशोर नालों और ढाक के जंगलों से गुजरकर ज्वार और बाजरे के खेत थे और उनकी मेंड़ों पर साठे के किसान जगह-जगह मड़ैया डाले खेतों की रखवाली कर रहे थे। तले जमीन, ऊपर अंधेरा, मीलों तक सन्नाटा छाया हुआ। कहीं जंगली सुअरों के गोल, कहीं नीलगायों के रेवड़,

चिलम के सिवा कोई साथी नहीं, आग के सिवा कोई मददगार नहीं। जरा खटका हुआ और चौंके पड़े। अंधेरा भय का दूसरा नाम है, जब मिट्टी का एक ढेर, एक ठूँठा पेड़ और घास का ढेर भी जानदार चीजें बन जाती हैं। अंधेरा उनमें जान डाल देता है। लेकिन यह मजबूत हाथोंवाले, मजबूत जिगरवाले, मजबूत इरादे वाले किसान हैं कि यह सब सख्तियाँ झेलते हैं ताकि अपने ज्यादा भाग्यशाली भाइयों के लिए भोग-विलास के सामान तैयार करें। इन्हीं रखवालों में आज का हीरो, साठे का गौरव गोपाल भी है जो अपनी मड़ैया में बैठा हुआ है और नींद को भगाने के लिए धीमें सुरों में यह गीत गा रहा है —

मैं तो तोसे नैना लगाय पछतायी रे

अचानक उसे किसी के पाँव की आहट मालूम हुई। जैसे हिरन कुत्तों की आवाजों को कान लगाकर सुनता है उसी तरह गोपाल ने भी कान लगाकर सुना। नींद की औंघाई दूर हो गई। लट्ठ कंधे पर रक्खा और मड़ैया से बाहर निकल आया। चारों तरफ कालिमा छाई हुई थी और हलकी-हलकी बूँदें पड़ रही थीं। वह बाहर निकला ही था कि उसके सर पर लाठी का भरपूर हाथ पड़ा। वह त्योराकर गिरा और रात भर वहीं बेसुध पड़ा रहा। मालूम नहीं उस पर कितनी चोटें पड़ीं। हमला करनेवालों ने तो अपनी समझ में उसका काम तमाम कर डाला। लेकिन जिन्दगी

बाकी थी। यह पाठे के गैरतमन्द लोग थे जिन्होंने अंधेरे की आड़ में अपनी हार का बदला लिया था।

3

गोपाल जाति का अहीर था, न पढ़ा न लिखा, बिलकुल अक्खड़। दिमाग रौशन ही नहीं हुआ तो शरीर का दीपक क्यों घुलता। पूरे छः फुट का कद, गढा हुआ बदन, ललकार कर गाता तो सुननेवाले मील भर पर बैठे हुए उसकी तानों का मजा लेते। गाने—बजाने का आशिक, होली के दिनों में महीने भर तक गाता, सावन में मल्हार और भजन तो रोज का शगल था। निडर ऐसा कि भूत और पिशाच के अस्तित्व पर उसे विद्वानों जैसे संदेह थे। लेकिन जिस तरह शेर और चीते भी लाल लपटों से डरते हैं उसी तरह लाल पगड़ी से उसकी रूह असाधारण बात थी लेकिन उसका कुछ बस न था। सिपाही की वह डरावनी तस्वीर जो बचपन में उसके दिल पर खींची गई थी, पत्थर की लकीर बन गई थी। शरारतें गयीं, बचपन गया, मिठाई की भूख गई लेकिन सिपाही की तस्वीर अभी तक कायम थी। आज उसके दरवाजे पर लाल पगड़ीवालों की एक फौज जमा थी लेकिन गोपाल जख्मों

से चूर, दर्द से बेचैन होने पर भी अपने मकान के अंधेरे कोने में छिपा हुआ बैठा था। नम्बरदार और मुखिया, पटवारी और चौकीदार रोब खाये हुए ढंग से खड़े दारोगा की खुशामद कर रहे थे। कहीं अहीर की फरियाद सुनाई देती थी, कहीं मोदी रोना-धोना, कहीं तेली की चीख-पुकार, कहीं कमाई की आँखों से लहू जारी। कलवार खड़ा अपनी किस्मत को रो रहा था। फोहश और गन्दी बातों की गर्मबाजारी थी। दारोगा जी निहायत कारगुजार अफसर थे, गालियों में बात करते थे। सुबह को चारपाई से उठते ही गालियों का वजीफा पढ़ते थे। मेहतर ने आकर फरियाद की — हुजूर, अण्डे नहीं हैं, दारोगाजी हण्टर लेकर दौड़े और उस गरीब का भुरकुस निकाल दिया। सारे गाँव में हलचल पड़ी हुई थी। कांसिटेबल और चौकीदार रास्तों पर यों अकड़ते चलते थे गोया अपनी ससुराल में आये हैं। जब गाँव के सारे आदमी आ गये तो वारदात हुई और इस कमबख़्त गोपाल ने रपट तक न की।

मुखिया साहब बेंत की तरह काँपते हुए बोले — हुजूर, अब माफी दी जाय।

दारोगाजी ने गाजबनाक निगाहों से उसकी तरफ देखकर कहा — यह इसकी शरारत है। दुनिया जानती है कि जुर्म को छुपाना जुर्म करने के बराबर है। मैं इस बदमाश को इसका मजा चखा

दूँगा। वह अपनी ताकत के जोम में भूला हुआ है, और कोई बात नहीं। लातों के भूत बातों से नहीं मानते।

मुखिया साहब ने सिर झुकाकर कहा — हुजूर, अब माफी दी जाय।

दारोगाजी की त्योरियाँ चढ़ गयीं और झुंझलाकर बोले — अरे हुजूर के बच्चे, कुछ सठिया तो नहीं गया है। अगर इसी तरह माफी देनी होती तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा था कि यहाँ तक दौड़ा आता। न कोई मामला, न मामले की बात, बस माफी की रट लगा रक्खी है। मुझे ज्यादा फुरसत नहीं है। नमाज पढ़ता हूँ, तब तक तुम अपना सलाह मशविरा कर लो और मुझे हँसी-खुशी रुख़सत करो वर्ना गौसखाँ को जानते हो, उसका मारा पानी भी नही माँगता!

दारोगा तकवे व तहारत के बड़े पाबन्द थे पाँचों वक्त की नमाज पढ़ते और तीसों रोजे रखते, ईदों में धूमधाम से कुर्बानियाँ होतीं। इससे अच्छा आचरण किसी आदमी में और क्या हो सकता है!

मुखिया साहब दबे पाँव गुपचुप ढंग से गौरा के पास और बोले — यह दारोगा बड़ा काफिर है, पचास से नीचे तो बात ही नहीं करता। अव्वल दर्जे का थानेदार है। मैंने बहुत कहा, हुजूर, गरीब आदमी है, घर में कुछ सुभीता नहीं, मगर वह एक नहीं सुनता।

गौरा ने घूँघट में मुँह छिपाकर कहा — दादा, उनकी जान बच जाए, कोई तरह की आँच न आने पाए, रुपये-पैसे की कौन बात है, इसी दिन के लिए तो कमाया जाता है।

गोपाल खाट पर पड़ा सब बातें सुन रहा था। अब उससे न रहा गया। लकड़ी गाँठ ही पर टूटती है। जो गुनाह किया नहीं गया वह दबता है मगर कुचला नहीं जा सकता। वह जोश से उठ बैठा और बोला — पचास रुपये की कौन कहे, मैं पचास कौड़ियाँ भी न दूँगा। कोई गदर है, मैंने कसूर क्या किया है?

मुखिया का चेहरा फक हो गया। बड़प्पन के स्वर में बोले — धीरे बोलो, कहीं सुन ले तो गज़ब हो जाए।

लेकिन गोपाल बिफरा हुआ था, अकड़कर बोला — मैं एक कौड़ी भी न दूँगा। देखें कौन मेरे फाँसी लगा देता है।

गौरा ने बहलाने के स्वर में कहा — अच्छा, जब मैं तुमसे रुपये माँगूँ तो मत देना। यह कहकर गौरा ने, जो इस वक्त लौड़ी के बजाय रानी बनी हुई थी, छप्पर के एक कोने में से रुपयों की

एक पोटली निकाली और मुखिया के हाथ में रख दी। गोपाल दाँत पीसकर उठा, लेकिन मुखिया साहब फौरन से पहले सरक गये। दारोगा जी ने गोपाल की बातें सुन ली थीं और दुआ कर रहे थे कि ऐ खुदा, इस मरदूद के दिल को पलट। इतने में मुखिया ने बाहर आकर पचीस रुपये की पोटली दिखाई। पचीस रास्ते ही में गायब हो गये थे। दारोगा जी ने खुदा का शुक्र किया। दुआ सुनी गयी। रुपया जेब में रक्खा और रसद पहुँचाने वालों की भीड़ को रोते और बिलबिलाते छोड़कर हवा हो गये। मोदी का गला घुट गया। कसाई के गले पर छुरी फिर गयी। तेली पिस गया। मुखिया साहब ने गोपाल की गर्दन पर एहसान रक्खा गोया रसद के दाम गिरह से दिए। गाँव में सुर्खरूँ हो गया, प्रतिष्ठा बढ़ गई। इधर गोपाल ने गौरा की खूब खबर ली। गाँव में रात भर यही चर्चा रही। गोपाल बहुत बचा और इसका सेहरा मुखिया के सिर था। बड़ी विपत्ति आई थी। वह टल गयी। पितरों ने, दीवान हरदौल ने, नीम तलेवाली देवी ने, तालाब के किनारे वाली सती ने, गोपाल की रक्षा की। यह उन्हीं का प्रताप था। देवी की पूजा होनी जरूरी थी। सत्यनारायण की कथा भी लाजिमी हो गयी।

5

फिर सुबह हुई लेकिन गोपाल के दरवाजे पर आज लाल पगड़ियों के बजाय लाल साड़ियों का जमघट था। गौरा आज देवी की पूजा करने जाती थी और गाँव की औरतें उसका साथ देने आई थीं। उसका घर सोंधी-सोंधी मिट्टी की खुशबू से महक रहा था जो खस और गुलाब से कम मोहक न थी। औरतें सुहाने गीत गा रही थीं। बच्चे खुश हो-होकर दौड़ते थे। देवी के चबूतरे पर उसने मिटटी का हाथी चढ़ाया। सती की माँग में सेंदुर डाला। दीवान साहब को बताशे और हलुआ खिलाया। हनुमान जी को लड्डू से ज्यादा प्रेम है, उन्हें लड्डू चढ़ाये तब गाती बजाती घर को आयी और सत्यनारायण की कथा की तैयारियाँ होने लगीं। मालिन फूल के हार, केले की शाखें और बन्दनवारें लायीं। कुम्हार नये-नये दिये और हाँडियाँ दे गया। बारी हरे ढाक के पत्तल और दोने रख गया। कहार ने आकर मटकों में पानी भरा। बढ़ई ने आकर गोपाल और गौरा के लिए दो नयी-नयी पीढ़ियाँ बनायीं। नाइन ने आँगन लीपा और चौक बनायी। दरवाजे पर बन्दनवारें बँध गयीं। आँगन में केले की शाखें गड़ गयीं। पण्डित जी के लिए सिंहासन सज गया। आपस के कामों की व्यवस्था खुद-ब-खुद अपने निश्चित दायरे पर चलने लगी।

यही व्यवस्था संस्कृति है जिसने देहात की जिन्दगी को आडम्बर की ओर से उदासीन बना रक्खा है। लेकिन अफसोस है कि अब ऊँच-नीच की बेमतलब और बेहूदा कैदों ने इन आपसी कर्तव्यों को सौहार्द सहयोग के पद से हटा कर उन पर अपमान और नीचता का दाग लगा दिया है।

शाम हुई। पण्डित मोटेरामजी ने कन्धे पर झोली डाली, हाथ में शंख लिया और खड़ाऊँ पर खटपट करते गोपाल के घर आ पहुँचे। आँगन में टाट बिछा हुआ था। गाँव के प्रतिष्ठित लोग कथा सुनने के लिए आ बैठे। घण्टी बजी, शंख फूँका गया और कथा शुरू हुई। गोपाल भी गाढ़े की चादर ओढ़े एक कोने में दीवार के सहारे बैठा हुआ था। मुखिया, नम्बरदार और पटवारी ने मारे हमदर्दी के उससे कहा — सत्यनारायण क महिमा थी कि तुम पर कोई आँच न आई।

गोपाल ने अँगड़ाई लेकर कहा — सत्यनारायण की महिमा नहीं, यह अंधेर है।

[जमाना, जुलाई 1913]

अनाथ लड़की

सेठ पुरुषोत्तमदास पूना की सरस्वती पाठशाला का मुआयना करने के बाद बाहर निकले तो एक लड़की ने दौड़कर उनका दामन पकड़ लिया। सेठ जी रुक गये और मुहब्बत से उसकी तरफ देखकर पूछा — क्या नाम है?

लड़की ने जवाब दिया — रोहिणी।

सेठ जी ने उसे गोद में उठा लिया और बोले — तुम्हें कुछ इनाम मिला?

लड़की ने उनकी तरफ बच्चों जैसी गंभीरता से देखकर कहा — तुम चले जाते हो, मुझे रोना आता है, मुझे भी साथ लेते चलो।

सेठजी ने हँसकर कहा — मुझे बड़ी दूर जाना है, तुम कैसे चलोगी?

रोहिणी ने प्यार से उनकी गर्दन में हाथ डाल दिये और बोली — जहाँ तुम जाओगे वहीं मैं भी चलूँगी। मैं तुम्हारी बेटी हूँगी।

मदरसे के अफसर ने आगे बढ़कर कहा — इसका बाप साल भर हुआ नही रहा। माँ कपड़े सीती है, बड़ी मुश्किल से गुजर होती है।

सेठ जी के स्वभाव में करुणा बहुत थी। यह सुनकर उनकी आँखें भर आयीं। उस भोली प्रार्थना में वह दर्द था जो पत्थर-से दिल को पिघला सकता है। बेकसी और यतीमी को इससे ज्यादा दर्दनाक ढंग से जाहिर करना नामुमकिन था। उन्होंने सोचा — इस नन्हें-से दिल में न जाने क्या अरमान होंगे। और लड़कियाँ अपने खिलौने दिखाकर कहती होंगी, यह मेरे बाप ने दिया है। वह अपने बाप के साथ मदरसे आती होंगी, उसके साथ मेलों में जाती होंगी और उनकी दिलचस्पियों का जिक्र करती होंगी। यह सब बातें सुन-सुनकर इस भोली लड़की को भी ख्वाहिश होती होगी कि मेरे बाप होता। माँ की मुहब्बत में गहराई और आत्मिकता होती है जिसे बच्चे समझ नहीं सकते। बाप की मुहब्बत में खुशी और चाव होता है जिसे बच्चे खूब समझते हैं।

सेठ जी ने रोहिणी को प्यार से गले लगा लिया और बोले — अच्छा, मैं तुम्हें अपनी बेटी बनाऊँगा। लेकिन खूब जी लगाकर पढ़ना। अब छुट्टी का वक्त आ गया है, मेरे साथ आओ, तुम्हारे घर पहुँचा दूँ।

यह कहकर उन्होंने रोहिणी को अपनी मोटरकार में बिठा लिया। रोहिणी ने बड़े इतमीनान और गर्व से अपनी सहेलियों की तरफ देखा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें खुशी से चमक रही थीं और चेहरा चाँदनी रात की तरह खिला हुआ था।

2

सेठ ने रोहिणी को बाजार की खूब सैर करायी और कुछ उसकी पसन्द से, कुछ अपनी पसन्द से बहुत-सी चीजें खरीदीं, यहाँ तक कि रोहिणी बातें करते-करते कुछ थक-सी गयी और खामोश हो गई। उसने इतनी चीजें देखीं और इतनी बातें सुनीं कि उसका जी भर गया। शाम होते-होते रोहिणी के घर पहुँचे और मोटरकार से उतरकर रोहिणी को अब कुछ आराम मिला। दरवाजा बन्द था। उसकी माँ किसी ग्राहक के घर कपड़े देने गयी थी।
रोहिणी ने अपने तोहफों को उलटना-पलटना शुरू किया — खूबसूरत रबड़ के खिलौने, चीनी की गुड़िया जरा दबाने से चूँ-चूँ करने लगतीं और रोहिणी यह प्यारा संगीत सुनकर फूली न समाती थी। रेशमी कपड़े और रंग-बिरंगी साड़ियों की कई बण्डल थे लेकिन मखमली बूटे की गुलकारियों ने उसे खूब लुभाया था।

उसे उन चीजों के पाने की जितनी खुशी थी, उससे ज्यादा उन्हें अपनी सहेलियों को दिखाने की बेचैनी थी। सुन्दरी के जूते अच्छे सही लेकिन उनमें ऐसे फूल कहाँ हैं। ऐसी गुड़िया उसने कभी देखी भी न होंगी। इन खयालों से उसके दिल में उमंग भर आयी और वह अपनी मोहिनी आवाज में एक गीत गाने लगी। सेठ जी दरवाजे पर खड़े इन पवित्र दृश्य का हार्दिक आनन्द उठा रहे थे। इतने में रोहिणी की माँ रुक्मिणी कपड़ों की एक पोटली लिये हुए आती दिखायी दी। रोहिणी ने खुशी से पागल होकर एक छलाँग भरी और उसके पैरों से लिपट गयी। रुक्मिणी का चेहरा पीला था, आँखों में हसरत और बेकसी छिपी हुई थी, गुप्त चिंता का सजीव चित्र मालूम होती थी, जिसके लिए जिंदगी में कोई सहारा नहीं।

मगर रोहिणी को जब उसने गोद में उठाकर प्यार से चूमा मो जरा देर के लिए उसकी आँखों में उम्मीद और जिंदगी की झलक दिखायी दी। मुरझाया हुआ फूल खिल गया। बोली — आज तू इतनी देर तक कहाँ रही, मैं तुझे ढूँढ़ने पाठशाला गयी थी।

रोहिणी ने हुमककर कहा — मैं मोटरकार पर बैठकर बाजार गयी थी। वहाँ से बहुत अच्छी-अच्छी चीजें लायी हूँ। वह देखो कौन खड़ा है?

माँ ने सेठ जी की तरफ ताका और लजाकर सिर झुका लिया।

बरामदे में पहुँचते ही रोहिणी माँ की गोद से उतरकर सेठजी के पास गयी और अपनी माँ को यकीन दिलाने के लिए भोलेपन से बोली — क्यों, तुम मेरे बाप हो न?

सेठ जी ने उसे प्यार करके कहा — हाँ, तुम मेरी प्यारी बेटी हो।

रोहिणी ने उनसे मुँह की तरफ याचना-भरी आँखों से देखकर कहा — अब तुम रोज यहीं रहा करोगे?

सेठ जी ने उसके बाल सुलझाकर जवाब दिया — मैं यहाँ रहूँगा तो काम कौन करेगा? मैं कभी-कभी तुम्हें देखने आया करूँगा, लेकिन वहाँ से तुम्हारे लिए अच्छी-अच्छी चीजें भेजूँगा।

रोहिणी कुछ उदास-सी हो गयी। इतने में उसकी माँ ने मकान का दरवाजा खोला ओर बड़ी फुर्ती से मैले बिछावन और फटे हुए कपड़े समेट कर कोने में डाल दिये कि कहीं सेठ जी की निगाह उन पर न पड़ जाए। यह स्वाभिमान स्त्रियों की खास अपनी चीज है।

रुक्मिणी अब इस सोच में पड़ी थी कि मैं इनकी क्या खातिर-तवाजो करूँ। उसने सेठ जी का नाम सुना था, उसका पति

हमेशा उनकी बड़ाई किया करता था। वह उनकी दया और उदारता की चर्चाएँ अनेकों बार सुन चुकी थी। वह उन्हें अपने मन का देवता समझा कतरी थी, उसे क्या उम्मीद थी कि कभी उसका घर भी उसके कदमों से रोशन होगा। लेकिन आज जब वह शुभ दिन संयोग से आया तो वह इस काबिल भी नहीं कि उन्हें बैठने के लिए एक मोढ़ा दे सके। घर में पान और इलायची भी नहीं। वह अपने आँसुओं को किसी तरह न रोक सकी।

आखिर जब अंधेरा हो गया और पास के ठाकुरद्वारे से घण्टों और नगाड़ों की आवाजें आने लगीं तो उन्होंने जरा ऊँची आवाज में कहा — बाईजी, अब मैं जाता हूँ। मुझे अभी यहाँ बहुत काम करना है। मेरी रोहिणी को कोई तकलीफ न हो। मुझे जब मौका मिलेगा, उसे देखने आऊँगा। उसके पालने-पोसने का काम मेरा है और मैं उसे बहुत खुशी से पूरा करूँगा। उसके लिए अब तुम कोई फिक्र मत करो। मैंने उसका वजीफा बाँध दिया है और यह उसकी पहली किस्त है।

यह कहकर उन्होंने अपना खूबसूरत बटुआ निकाला और रुक्मिणी के सामने रख दिया। गरीब औरत की आँखें में आँसू जारी थे। उसका जी बरबस चाहता था कि उसके पैरों को पकड़कर खूब

रोये। आज बहुत दिनों के बाद एक सच्चे हमदर्द की आवाज उसके मन में आयी थी।

जब सेठ जी चले तो उसने दोनों हाथों से प्रणाम किया। उसके हृदय की गहराइयों से प्रार्थना निकली — आपने एक बेबस पर दया की है, ईश्वर आपको इसका बदला दे।

दूसरे दिन रोहिणी पाठशाला गई तो उसकी बाँकी सज-धज आँखों में खुबी जाती थी। उस्तानियों ने उसे बारी-बारी प्यार किया और उसकी सहेलियाँ उसकी एक-एक चीज को आश्चर्य से देखती और ललचाती थी। अच्छे कपड़ों से कुछ स्वाभिमान का अनुभव होता है। आज रोहिणी वह गरीब लड़की न रही जो दूसरों की तरफ विवश नेत्रों से देखा करती थी। आज उसकी एक-एक क्रिया से शैशवोचित गर्व और चंचलता टपकती थी और उसकी जबान एक दम के लिए भी न रुकती थी। कभी मोटर की तेजी का जिक्र था कभी बाजार की दिलचस्पियों का बयान, कभी अपनी गुड़ियों के कुशल-मंगल की चर्चा थी और कभी अपने बाप की मुहब्बत की दास्तान। दिल था कि उमंगों से भरा हुआ था।

एक महीने बाद सेठ पुरुषोत्तमदास ने रोहिणी के लिए फिर तोहफे और रुपये रवाना किये। बेचारी विधवा को उनकी कृपा से जीविका की चिन्ता से छुट्टी मिली। वह भी रोहिणी के साथ

पाठशाला आती और दोनों माँ-बेटियाँ एक ही दरजे के साथ-साथ पढ़तीं, लेकिन रोहिणी का नम्बर हमेशा माँ से अव्वल रहा सेठ जी जब पूना की तरफ से निकलते तो रोहिणी को देखने जरूर आते और उनका आगमन उसकी प्रसन्नता और मनोरंजन के लिए महीनों का सामान इकट्ठा कर देता।

इसी तरह कई साल गुजर गये और रोहिणी ने जवानी के सुहाने हरे-भरे मैदान में पैर रक्खा, जबकि बचपन की भोली-भाली अदाओं में एक खास मतलब और इरादों का दखल हो जाता है।

रोहिणी अब आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य में अपनी पाठशाला की नाक थी। हाव-भाव में आकर्षक गम्भीरता, बातों में गीत का-सा खिंचाव और गीत का-सा आत्मिक रस था। कपड़ों में रंगीन सादगी, आँखों में लाज-संकोच, विचारों में पवित्रता। जवानी थी मगर घमण्ड और बनावट और चंचलता से मुक्त। उसमें एक एकाग्रता थी ऊँचे इरादों से पैदा होती है। स्त्रियोचित उत्कर्ष की मंजिलें वह धीरे-धीरे तय करती चली जाती थी।

सेठ जी के बड़े बेटे नरोत्तमदास कई साल तक अमेरिका और जर्मनी की यूनिवर्सिटियों की खाक छानने के बाद इंजीनियरिंग विभाग में कमाल हासिल करके वापस आए थे। अमेरिका के सबसे प्रतिष्ठित कालेज में उन्होंने सम्मान का पद प्राप्त किया था। अमेरिका के अखबार एक हिन्दोस्तानी नौजवान की इस शानदार कामयाबी पर चकित थे। उन्हीं का स्वागत करने के लिए बम्बई में एक बड़ा जलसा किया गया था। इस उत्सव में शरीक होने के लिए लोग दूर-दूर से आए थे। सरस्वती पाठशाला को भी निमंत्रण मिला और रोहिणी को सेठानी जी ने विशेष रूप से आमन्त्रित किया। पाठशाला में हफ्तों तैयारियाँ हुई। रोहिणी को एक दम के लिए भी चैन न था। यह पहला मौका था कि उसने अपने लिए बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े बनवाये। रंगों के चुनाव में वह मिठास थी, काट-छाँट में वह फबन जिससे उसकी सुन्दरता चमक उठी। सेठानी कौशल्या देवी उसे लेने के लिए रेलवे स्टेशन पर मौजूद थीं। रोहिणी गाड़ी से उतरते ही उनके पैरों की तरफ झुकी लेकिन उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और इस तरह प्यार किया कि जैसे वह उनकी बेटी है। वह उसे बार-बार देखती थीं और आँखों से गर्व और प्रेम टपक पड़ता था।

इस जलसे के लिए ठीक समुन्दर के किनारे एक हरे-भरे सुहाने मैदान में एक लम्बा-चौड़ा शामियाना लगाया गया था। एक तरफ

आदमियों का समुद्र उमड़ा हुआ था दूसरी तरफ समुद्र की लहरें उमड़ रही थीं, गोया वह भी इस खुशी में शरीक थीं।

जब उपस्थित लोगों ने रोहिणी बाई के आने की खबर सुनी तो हजारों आदमी उसे देखने के लिए खड़े हो गए। यही तो वह लड़की है। जिसने अबकी शास्त्री की परीक्षा पास की है। जरा उसके दर्शन करने चाहिये। अब भी इस देश की स्त्रियों में ऐसे रतन मौजूद हैं। भोले-भाले देशप्रेमियों में इस तरह की बातें होने लगीं। शहर की कई प्रतिष्ठित महिलाओं ने आकर रोहिणी को गले लगाया और आपस में उसके सौन्दर्य और उसके कपड़ों की चर्चा होने लगी।

आखिर मिस्टर पुरुषोत्तमदास तशरीफ लाए। हालाँकि वह बड़ा शिष्ट और गम्भीर उत्सव था लेकिन उस वक्त दर्शन की उत्कंठा पागलपन की हद तक जा पहुँची थी। एक भगदड़-सी मच गई। कुर्सियों की कतारे गड़बड़ हो गईं। कोई कुर्सी पर खड़ा हुआ, कोई उसके हत्थों पर। कुछ मनचले लोगों ने शामियाने की रस्सियाँ पकड़ीं और उन पर जा लटके कई मिनट तक यही तूफान मचा रहा। कहीं कुर्सियाँ टूटीं, कहीं कुर्सियाँ उलटीं, कोई किसी के ऊपर गिरा, कोई नीचे। ज्यादा तेज लोगों में धौल-धप्पा होने लगा।

तब बीन की सुहानी आवाजें आने लगीं। रोहिणी ने अपनी मण्डली के साथ देशप्रेम में डूबा हुआ गीत शुरू किया। सारे उपस्थित लोग बिलकुल शान्त थे और उस समय वह सुरीला राग, उसकी कोमलता और स्वच्छता, उसकी प्रभावशाली मधुरता, उसकी उत्साह भरी वाणी दिलों पर वह नशा-सा पैदा कर रही थी जिससे प्रेम की लहरें उठती हैं, जो दिल से बुराइयों को मिटाता है और उससे जिन्दगी की हमेशा याद रहने वाली यादगारें पैदा हो जाती हैं। गीत बन्द होने पर तारीफ की एक आवाज न आई। वहीं ताने कानों में अब तक गूँज रही थीं।

गाने के बाद विभिन्न संस्थाओं की तरफ से अभिनन्दन पेश हुए और तब नरोत्तमदास लोगों को धन्यवाद देने के लिए खड़े हुए। लेकिन उनके भाषण से लोगों को थोड़ी निराशा हुई। यों दोस्तो की मण्डली में उनकी वक्तृता के आवेग और प्रवाह की कोई सीमा न थी लेकिन सार्वजनिक सभा के सामने खड़े होते ही शब्द और विचार दोनों ही उनसे बेवफाई कर जाते थे। उन्होंने बड़ी-बड़ी मुश्किल से धन्यवाद के कुछ शब्द कहे और तब अपनी योग्यता की लज्जित स्वीकृति के साथ अपनी जगह पर आ बैठे। कितने ही लोग उनकी योग्यता पर ज्ञानियों की तरह सिर हिलाने लगे।

अब जलसा खत्म होने का वक्त आया। वह रेशमी हार जो सरस्वती पाठशाला की ओर से भेजा गया था, मेज पर रखा हुआ था। उसे हीरो के गले में कौन डाले? प्रेसिडेंट ने महिलाओं की पंक्ति की ओर नजर दौड़ाई। चुनने वाली आँख रोहिणी पर पड़ी और ठहर गई। उसकी छाती धड़कने लगी। लेकिन उत्सव के सभापति के आदेश का पालन आवश्यक था। वह सर झुकाये हुए मेज के पास आयी और काँपते हाथों से हार को उठा लिया। एक क्षण के लिए दोनों की आँखें मिलीं और रोहिणी ने नरोत्तमदास के गले में हार डाल दिया।

दूसरे दिन सरस्वती पाठशाला के मेहमान विदा हुए लेकिन कौशल्या देवी ने रोहिणी को न जाने दिया। बोली — अभी तुम्हें देखने से जी नहीं भरा, तुम्हें यहाँ एक हफ्ता रूकना होगा। आखिर मैं भी तो तुम्हारी माँ हूँ। एक माँ से इतना प्यार और दूसरी माँ से इतना अलगाव!

रोहिणी कुछ जवाब न दे सकी।

यह सारा हफ्ता कौशल्या देवी ने उसकी विदाई की तैयारियों में खर्च किया। सातवें दिन उसे विदा करने के लिए स्टेशन तक आयीं। चलते वक्त उससे गले मिलीं और बहुत कोशिश करने पर भी आँसुओं को न रोक सकीं। नरोत्तमदास भी आये थे।

उनका चेहरा उदास था। कौशल्या ने उनकी तरफ सहानुभूतिपूर्ण आँखों से देखकर कहा — मुझे यह तो ख्याल ही न रहा, रोहिणी क्या यहाँ से पूना तक अकेली जायेगी? क्या हर्ज है, तुम्हीं चले जाओ, शाम की गाड़ी से लौट आना।

नरोत्तमदास के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गयी, जो इन शब्दों में न छिप सकी — अच्छा, मैं ही चला जाऊँगा। वह इस फिक्र में थे कि देखें बिदाई की बातचीत का मौका भी मिलता है या नहीं। अब वह खूब जी भरकर अपना दर्दे दिल सुनायेंगे और मुमकिन हुआ तो उस लाज-संकोच को, जो उदासीनता के परदे में छिपी हुई है, मिटा देंगे।

4

रुक्मिणी को अब रोहिणी की शादी की फिक्र पैदा हुई। पड़ोस की औरतों में इसकी चर्चा होने लगी थी। लड़की इतनी सयानी हो गयी है, अब क्या बुढ़ापे में ब्याह होगा? कई जगह से बात आयी, उनमें कुछ बड़े प्रतिष्ठित घराने थे। लेकिन जब रुक्मिणी उन पैमानों को सेठजी के पास भेजती तो वे यही जवाब देते कि

मैं खुद फिक्र में हूँ। रुक्मिणी को उनकी यह टाल-मटोल बुरी मालूम होती थी।

रोहिणी को बम्बई से लौटे महीना भर हो चुका था। एक दिन वह पाठशाला से लौटी तो उसे अम्मा की चारपाई पर एक खत पड़ा हुआ मिला। रोहिणी पढ़ने लगी, लिखा था — बहन, जब से मैंने तुम्हारी लड़की को बम्बई में देखा है, मैं उस पर रीझ गई हूँ। अब उसके बगैर मुझे चैन नहीं है। क्या मेरा ऐसा भाग्य होगा कि वह मेरी बहू बन सके? मैं गरीब हूँ लेकिन मैंने सेठ जी को राजी कर लिया है। तुम भी मेरी यह विनती कबूल करो। मैं तुम्हारी लड़की को चाहे फूलों की सेज पर न सुला सकूँ, लेकिन इस घर का एक-एक आदमी उसे आँखों की पुतली बनाकर रखेगा। अब रहा लड़का। माँ के मुँह से लड़के का बखान कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। लेकिन यह कह सकती हूँ कि परमात्मा ने यह जोड़ी अपनी हाथों बनायी है। सूरत में, स्वभाव में, विद्या में, हर दृष्टि से वह रोहिणी के योग्य है। तुम जैसे चाहे अपना इतमीनान कर सकती हो। जवाब जल्द देना और ज्यादा क्या लिखूँ। नीचे थोड़े-से शब्दों में सेठजी ने उस पैगाम की सिफारिश की थी।

रोहिणी गालों पर हाथ रखकर सोचने लगी। नरोत्तमदास की तस्वीर उसकी आँखों के सामने आ खड़ी हुई। उनकी वह प्रेम

की बातें, जिनका सिलसिला बम्बई से पूना तक नहीं टूटा था, कानों में गूँजने लगीं। उसने एक ठण्डी साँस ली और उदास होकर चारपाई पर लेट गई।

5

सरस्वती पाठशाला में एक बार फिर सजावट और सफाई के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। आज रोहिणी की शादी का शुभ दिन। शाम का वक्त, बसन्त का सुहाना मौसम। पाठशाला के दारो-दीवार मुस्करा रहे हैं और हरा-भरा बगीचा फूला नहीं समाता।

चन्द्रमा अपनी बारात लेकर पूरब की तरफ से निकला। उसी वक्त मंगलाचरण का सुहाना राग उस रूपहली चाँदनी और हल्के-हल्के हवा के झोकों में लहरें मारने लगा। दूल्हा आया, उसे देखते ही लोग हैरत में आ गए। यह नरोत्तमदास थे।

दूल्हा मण्डप के नीचे गया। रोहिणी की माँ अपने को रोक न सकी, उसी वक्त जाकर सेठ जी के पैर पर गिर पड़ी। रोहिणी की आँखों से प्रेम और आनन्द के आँसू बहने लगे।

मण्डप के नीचे हवन-कुण्ड बना था। हवन शुरू हुआ, खुशबू की लपेटें हवा में उठीं और सारा मैदान महक गया। लोगों के दिलो-दिमाग में ताजगी की उमंग पैदा हुई।

फिर संस्कार की बारी आई। दूल्हा और दुल्हन ने आपस में हमदर्दी; जिम्मेदारी और वफादारी के पवित्र शब्द अपनी जबानों से कहे। विवाह की वह मुबारक जंजीर गले में पड़ी जिसमें वजन है, सख्ती है, पाबन्दियाँ हैं लेकिन वजन के साथ सुख और पाबन्दियों के साथ विश्वास है। दोनों दिलों में उस वक्त एक नयी, बलवान, आत्मिक शक्ति की अनुभूति हो रही थी।

जब शादी की रस्में खत्म हो गयीं तो नाच-गाने की मजलिस का दौर आया। मोहक गीत गूँजने लगे। सेठ जी थककर चूर हो गए थे। जरा दम लेने के लिए बागीचे में जाकर एक बेंच पर बैठ गये। ठण्डी-ठण्डी हवा आ रही आ रही थी। एक नशा-सा पैदा करने वाली शान्ति चारों तरफ छायी हुई थी। उसी वक्त रोहिणी उनके पास आयी और उनके पैरों से लिपट गयी। सेठ जी ने उसे उठाकर गले से लगा लिया और हँसकर बोले — क्यों, अब तो तुम मेरी अपनी बेटी हो गयीं?

[जमाना, जून 1914]

अपनी करनी

आह, अभागा मैं! मेरे कर्मों के फल ने आज यह दिन दिखाये कि अपमान भी मेरे ऊपर हँसता है। और यह सब मैंने अपने हाथों किया। शैतान के सिर इलजाम क्यों दूँ, किस्मत को खरी-खोटी क्यों सुनाऊँ, होनी का क्यों रोऊँ? जो कुछ किया मैंने जानते और बूझते हुए किया। अभी एक साल गुजरा जब मैं भाग्यशाली था, प्रतिष्ठित था और समृद्धि मेरी चेरी थी। दुनिया की नेमतें मेरे सामने हाथ बांधे खड़ी थीं लेकिन आज बदनामी और कंगाली और शर्मिन्दगी मेरी दुर्दशा पर आँसू बहाती है। मैं ऊँचे खानदान का, बहुत पढ़ा-लिखा आदमी था, फारसी का मुल्ला, संस्कृत का पण्डित, अंगरेजी का ग्रेजुएट। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू क्यों बनूँ, लेकिन रूप भी मुझको मिला था, इतना कि दूसरे मुझसे ईर्ष्या कर सकते थे। ग़रज एक इंसान को खुशी के साथ जिंदगी बसर करने के लिए जितनी अच्छी चीजों की जरूरत हो सकती है वह सब मुझे हासिल थीं। सेहत का यह हाल कि मुझे कभी सरदर्द की भी शिकायत नहीं हुई। फिटन की सैर, दरिया की

दिलफ़रेबियाँ, पहाड़ के सुंदर दृश्य —उन खुशियों का जिक्र ही तकलीफ़देह है। क्या मजे की जिंदगी थी!

आह, यहाँ तक तो अपना दर्देदिल सुना सकता हूँ लेकिन इसके आगे फिर होंठों पर खामोशी की मुहर लगी हुई है। एक सती-साध्वी, प्रतिप्राणा स्त्री और दो गुलाब के फूल-से बच्चे इंसान के लिए जिन खुशियों, आरजुओं, हौसलों और दिलफ़रेबियों का खजाना हो सकते हैं वह सब मुझे प्राप्त था। मैं इस योग्य नहीं कि उस पवित्र स्त्री का नाम जबान पर लाऊँ। मैं इस योग्य नहीं कि अपने को उन लड़कों का बाप कह सकूँ। मगर नसीब का कुछ ऐसा खेल था कि मैंने उन बिहिश्ती नेमतों की कद्र न की। जिस औरत ने मेरे हुक्म और अपनी इच्छा में कभी कोई भेद नहीं किया, जो मेरी सारी बुराइयों के बावजूद कभी शिकायत का एक हर्फ़ ज़बान पर नहीं लायी, जिसका गुस्सा कभी आँखों से आगे नहीं बढ़ने पाया — गुस्सा क्या था कुआर की बरखा थी, दो-चार हलकी-हलकी बूँदें पड़ी और फिर आसमान साफ़ हो गया — अपनी दीवानगी के नशे में मैंने उस देवी की कद्र न की। मैने उसे जलाया, रुलाया, तड़पाया। मैंने उसके साथ दग़ा की। आह! जब मैं दो-दो बजे रात को घर लौटता था तो मुझे कैसे-कैसे बहाने सूझते थे, नित नये हीले गढ़ता था, शायद विद्यार्थी जीवन में जब बैण्ड के मजे से मदरसे जाने की इजाज़त न देते थे, उस

वक्त भी बुद्धि इतनी प्रखर न थी। और क्या उस क्षमा की देवी को मेरी बातों पर यक़ीन आता था? वह भोली थी मगर ऐसी नादान न थी। मेरी खुमार-भरी आँखें और मेरे उथले भाव और मेरे झूठे प्रेम-प्रदर्शन का रहस्य क्या उससे छिपा सकता था? लेकिन उसकी रग-रग में शराफत भरी हुई थी, कोई कमीना ख़याल उसकी जबान पर नहीं आ सकता था। वह उन बातों का जिक्र करके या अपने संदेहों को खुले आम दिखलाकर हमारे पवित्र संबंध में खिचाव या बदमज़गी पैदा करना बहुत अनुचित समझती थी। मुझे उसके विचार, उसके माथे पर लिखे मालूम होते थे। उन बदमज़गियों के मुकाबले में उसे जलना और रोना ज्यादा पसंद था, शायद वह समझती थी कि मेरा नशा खुद-ब-खुद उतर जाएगा। काश, इस शराफत के बदले उसके स्वभाव में कुछ ओछापन और अनुदारता भी होती। काश, वह अपने अधिकारों को अपने हाथ में रखना जानती। काश, वह इतनी सीधी न होती। काश, अब अपने मन के भावों को छिपाने में इतनी कुशल न होती। काश, वह इतनी मक्कार न होती। लेकिन मेरी मक्कारी और उसकी मक्कारी में कितना अंतर था, मेरी मक्कारी हरामकारी थी, उसकी मक्कारी आत्मबलिदानी। एक रोज मैं अपने काम से फुसरत पाकर शाम के वक्त़ मनोरंजन के लिए आनन्दवाटिका मे पहुँचा और संगमरमर के हौज पर बैठकर

मछलियों का तमाशा देखने लगा। एकाएक निगाह ऊपर उठी तो मैंने एक औरत का बेले की झाड़ियों में फूल चुनते देखा। उसके कपड़े मैले थे और जवानी की ताजगी और गर्व को छोड़कर उसके चेहरे में कोई ऐसी खास बात न थीं उसने मेरी तरफ आँखें उठायीं और फिर फूल चुनने में लग गयी गोया उसने कुछ देखा ही नहीं। उसके इस अंदाज ने, चाहे वह उसकी सरलता ही क्यों न रही हो, मेरी वासना को और भी उद्दीप्त कर दिया। मेरे लिए यह एक नयी बात थी कि कोई औरत इस तरह देखे कि जैसे उसने नहीं देखा। मैं उठा और धीरे-धीरे, कभी जमीन और कभी आसमान की तरफ ताकते हुए बेले की झाड़ियों के पास जाकर खुद भी फूल चुनने लगा। इस ढिठाई का नतीजा यह हुआ कि वह मालिन की लड़की वहाँ से तेजी के साथ बाग के दूसरे हिस्से में चली गयी। उस दिन से मालूम नहीं वह कौन-सा आकर्षण था जो मुझे रोज शाम के वक्त आनन्दवाटिका की तरफ खींच ले जाता। उसे मुहब्बत हरगिज नहीं कह सकते। अगर मुझे उस वक्त भगवान् न करें, उस लड़की के बारे में कोई, शोक-समाचार मिलता तो शायद मेरी आँखों से आँसू भी न निकले, जोगिया धारण करने की तो चर्चा ही व्यर्थ है। मैं रोज जाता और नये-नये रूप धरकर जाता लेकिन जिस प्रकृति ने मुझे अच्छा रूप-रंग दिया था उसी ने मुझे वाचालता से वंचित भी कर रखा था। मैं रोज जाता

और रोज लौट जाता, प्रेम की मंजिल में एक क़दम भी आगे न बढ़ पाता था। हाँ, इतना अलबत्ता हो गया कि उसे वह पहली-सी झिझक न रही।

आखिर इस शांतिपूर्ण नीति को सफल बनाने न होते देख मैंने एक नयी युक्ति सोची। एक रोज मैं अपने साथ अपने शैतान बुलडाग टामी को भी लेता गया। जब शाम हो गयी और वह मेरे धैर्य का नाश करने वाली फूलों से आँचल भरकर अपने घर की ओर चली तो मैंने अपने बुलडाग को धीरे से इशारा कर दिया। बुलडाग उसकी तरफ़ बाज की तरफ झपटा, फूलमती ने एक चीख मारी, दो-चार कदम दौड़ी और जमीन पर गिर पड़ी। अब मैं छड़ी हिलाता, बुलडाग की तरफ गुस्से-भरी आँखों से देखता और हांय-हांय चिल्लाता हुआ दौड़ा और उसे जोर से दो-तीन डंडे लगाये। फिर मैंने बिखरे हुए फूलों को समेटा, सहमी हुई औरत का हाथ पकड़कर बिठा दिया और बहुत लज्जित और दुखी भाव से बोला — यह कितना बड़ा बदमाश है, अब इसे अपने साथ कभी नहीं लाऊँगा। तुम्हें इसने काट तो नहीं लिया?

फूलमती ने चादर से सर को ढ़ाकते हुए कहा — तुम न आ जाते तो वह मुझे नोच डालता। मेरे तो जैसे मन-मन-भर में पैर हो गये थे। मेरा कलेजा तो अभी तक धडक रहा है।

यह तीर लक्ष्य पर बैठा, खामोशी की मुहर टूट गयी, बातचीत का सिलसिला क़ायम हुआ। बांध में एक दरार हो जाने की देर थी, फिर तो मन की उमंगों ने खुद-ब-खुद काम करना शुरु किया। मैंने जैसे-जैसे जाल फैलाये, जैसे-जैसे स्वांग रचे, वह रंगीन तबियत के लोग खूब जानते हैं। और यह सब क्यों? मुहब्बत से नहीं, सिर्फ जरा देर दिल को खुश करने के लिए, सिर्फ उसके भरे-पूरे शरीर और भोलेपन पर रीझकर। यों मैं बहुत नीच प्रकृति का आदमी नहीं हूँ। रूप-रंग में फूलमती का इंदु से मुकाबला न था। वह सुंदरता के सांचे में ढली हुई थी। कवियों ने सौंदर्य की जो कसौटियाँ बनायी हैं वह सब वहाँ दिखायी देती थीं लेकिन पता नहीं क्यों मैंने फूलमती की धँसी हुई आँखों और फूले हुए गालों और मोटे-मोटे होठों की तरफ अपने दिल का ज्यादा खिंचाव देखा। आना-जाना बढ़ा और महीना-भर भी गुजरने न पाया कि मैं उसकी मुहब्बत के जाल में पूरी तरह फंस गया। मुझे अब घर की सादा जिंदगी में कोई आनन्द न आता था। लेकिन दिल ज्यों-ज्यों घर से उचटता जाता था त्यों-त्यों मैं पत्नी के प्रति प्रेम का प्रदर्शन और भी अधिक करता था। मैं उसकी फ़रमाइशों का इंतजार करता रहता और कभी उसका दिल दुखानेवाली कोई बात मेरी जबान पर न आती। शायद मैं अपनी

आंतरिक उदासीनता को शिष्टाचार के पर्दे के पीछे छिपाना चाहता था।

धीरे-धीरे दिल की यह कैफ़ियत भी बदल गयी और बीवी की तरफ से उदासीनता दिखायी देने लगी। घर में कपड़े नहीं है लेकिन मुझसे इतना न होता कि पूछ लूँ। सच यह है कि मुझे अब उसकी खातिरदारी करते हुए एक डर-सा मालूम होता था कि कहीं उसकी खामोशी की दीवार टूट न जाय और उसके मन के भाव जबान पर न आ जायँ। यहाँ तक कि मैंने गिरस्ती की जरूरतों की तरफ से भी आँखें बन्द कर लीं। अब मेरा दिल और जान और रुपया-पैसा सब फूलमती के लिए था। मैं खुद कभी सुनार की दुकान पर न गया था लेकिन आजकल कोई मुझे रात गए एक मशहूर सुनार के मकान पर बैठा हुआ देख सकता था। बजाज की दुकान में भी मुझे रुचि हो गयी।

2

एक रोज शाम के वक्त रोज की तरह मैं आनन्दवाटिका में सैर कर रहा था और फूलमती सोलहों सिंगार किए, मेरी सुनहरी-रूपहली भेंटो से लदी हुई, एक रेशमी साड़ी पहने बाग की

क्यारियों में फूल तोड़ रही थी, बल्कि यों कहो कि अपनी चुटकियों मे मेरे दिल को मसल रही थी। उसकी छोटी-छोटी आँखें उस वक्त नशे के हुस्न में फैल गयी,थीं और उनमें शोखी और मुस्कराहट की झलक नज़र आती थी।

अचानक महाराजा साहब भी अपने कुछ दोस्तों के साथ मोटर पर सवार आ पहुँचे। मैं उन्हें देखते ही अगवानी के लिए दौड़ा और आदाब बजा लाया। बेचारी फूलमती महाराजा साहब को पहचानती थी लेकिन उसे एक घने कुंज के अलावा और कोई छिपने की जगह न मिल सकी। महाराजा साहब चले तो हौज की तरफ़ लेकिन मेरा दुर्भाग्य उन्हें क्यारी पर ले चला जिधर फूलमती छिपी हुई थर-थर काँप रही थी।

महाराजा साहब ने उसकी तरफ़ आश्चर्य से देखा और बोले — यह कौन औरत है? सब लोग मेरी ओर प्रश्न-भरी आँखों से देखने लगे और मुझे भी उस वक्त यही ठीक मालूम हुआ कि इसका जवाब मैं ही दूँ वर्ना फूलमती न जाने क्या आफत ढ़ा दे। लापरवाही के अंदाज से बोला — इसी बाग के माली की लड़की है, यहाँ फूल तोड़ने आयी होगी।

फूलमती लज्जा और भय के मारे जमीन में धँसी जाती थी। महाराजा साहब ने उसे सर से पाँव तक गौर से देखा और तब

संदेहशील भाव से मेरी तरफ देखकर बोले — यह माली की लड़की है?

मैं इसका क्या जवाब देता। इसी बीच कमबख़्त दुर्जन माली भी अपनी फटी हुई पाग सँभालता, हाथ मे कुदाल लिए हुए दौड़ता हुआ आया और सर को घुटनों से मिलाकर महाराज को प्रणाम किया महाराजा ने जरा तेज लहजे में पूछा — यह तेरी लड़की हैं?

माली के होश उड़ गए, काँपता हुआ बोला — हुजूर।

महाराज — तेरी तनख्वाह क्या है?

दुर्जन — हुजूर, पाँच रुपये।

महाराज — यह लड़की कुँवारी है या ब्याही?

दुर्जन — हुजूर, अभी कुँवारी है।

महाराज ने गुस्से में कहा — या तो तू चोरी करता है या डाका मारता है वर्ना यह कभी नहीं हो सकता कि तेरी लड़की अमीरजादी बन सके। मुझे इसी वक्त इसका जवाब देना होगा वर्ना मैं तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा। ऐसे चाल-चलन के आदमी को मैं अपने यहाँ नहीं रख सकता।

माली की तो घिग्घी बँध गयी और मेरी यह हालत थी कि काटो तो बदन में लहू नहीं। दुनिया अंधेरी मालूम होती थी। मैं समझ गया कि आज मेरी शामत सर पर सवार है। वह मुझे जड़ से उखाड़कर दम लेगी। महाराजा साहब ने माली को जोर से डाँटकर पूछा — तू खामोश क्यों है, बोलता क्यों नहीं?

दुर्जन फूट-फटकर रोने लगा। जब ज़रा आवाज सुधरी तो बोला — हुजूर, बाप-दादे से सरकार का नमक खाता हूँ, अब मेरे बुढ़ापे पर दया कीजिए, यह सब मेरे फूटे नसीबों का फेर है धर्मावतार। इस छोकरी ने मेरी नाक कटा दी, कुल का नाम मिटा दिया। अब मैं कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं हूँ, इसको सब तरह से समझा-बुझाकर हार गए हुजूर, लेकिन मेरी बात सुनती ही नहीं तो क्या करूँ। हुजूर माई-बाप हैं, आपसे क्या पर्दा करूँ, उसे अब अमीरों के साथ रहना अच्छा लगता है और आजकल के रईसों और अमीरों को क्या कहूँ, दीनबंधु सब जानते हैं।

महाराजा साहब ने जरा देर गौर करके पूछा — क्या उसका किसी सरकारी नौकर से संबंध है?

दुर्जन ने सर झुकाकर कहा — हुजूर।

महाराज साहब — वह कौन आदमी है, तुम्हें उसे बतलाना होगा।

दुर्जन — महाराज जब पूछेंगे बता दूँगा, साँच को आँच क्या।

मैंने तो समझा था कि इसी वक्त सारा पर्दाफास हुआ जाता है लेकिन महाराजा साहब ने अपने दरबार के किसी मुलाजिम की इज्जत को इस तरह मिट्टी में मिलाना ठीक नहीं समझा। वे वहाँ से टहलते हुए मोटर पर बैठकर महल की तरफ चले।

3

इस मनहूस वाक़ये के एक हफ्ते बाद एक रोज मैं दरबार से लौटा तो मुझे अपने घर में से एक बूढ़ी औरत बाहर निकलती हुई दिखाई दी। उसे देखकर मैं ठिठका। उसे चेहरे पर बनावटी भोलापन था जो कुटनियों के चेहरे की खास बात है। मैंने उसे डांटकर पूछा — तू कौन है, यहाँ क्यों आयी है?

बुढ़िया ने दोनों हाथ उठाकर मेरी बलाये लीं और बोली — बेटा, नाराज न हो, गरीब भिखारी हूँ, मालकिन का सुहाग भरपूर रहे, उसे जैसा सुनती थी वैसा ही पाया। यह कह कर उसने जल्दी से क़दम उठाए और बाहर चली गई। मेरे गुस्से का पारा चढ़ा मैंने घर जाकर पूछा — यह कौन औरत थी?

मेरी बीवी ने सर झुकाये धीरे से जवाब दिया — क्या जानूँ, कोई भिखारिन थी।

मैंने कहा, भिखारिनों की सूरत ऐसी नहीं हुआ करती, यह तो मुझे कुटनी-सी नजर आती है। साफ़-साफ़ बताओं उसके यहाँ आने का क्या मतलब था।

लेकिन बजाय कि इन संदेह-भरी बातों को सुनकर मेरी बीवी गर्व से सिर उठाये और मेरी तरफ़ उपेक्षा-भरी आँखों से देखकर अपनी साफ़दिली का सबूत दे, उसने सर झुकाए हुए जवाब दिया — मैं उसके पेट में थोड़े ही बैठी थी। भीख माँगने आयी थी भींख दे दी, किसी के दिल का हाल कोई क्या जाने!

उसके लहजे और अंदाज से पता चलता था कि वह जितना जबान से कहती है, उससे ज्यादा उसके दिल में है। झूठा आरोप लगाने की कला में वह अभी बिलकुल कच्ची थी वर्ना तिरिया चरित्तर की थाह किसे मिलती है। मैं देख रहा था कि उसके हाथ-पाँव थरथरा रहे है। मैंने झपटकर उसका हाथ पकड़ा और उसके सिर को ऊपर उठाकर बड़े गंभीर क्रोध से बोला — इंदु, तुम जानती हो कि मुझे तुम्हारा कितना एतबार है लेकिन अगर तुमने इसी वक्त़ सारी घटना सच-सच न बता दी तो मैं नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या होगा। तुम्हारा ढंग बतलाता है कि कुछ-न-कुछ दाल में काला

जरूर है। यह खूब समझ रखो कि मैं अपनी इज्जत को तुम्हारी और अपनी जानों से ज्यादा अज़ीज़ समझता हूँ। मेरे लिए यह डूब मरने की जगह है कि मैं अपनी बीवी से इस तरह की बातें करूँ, उसकी ओर से मेरे दिल मे संदेह पैदा हो। मुझे अब ज्यादा सब्र की गुंजाइश नहीं हैं बोलो क्या बात है?

इंदुमती मेरे पैरो पर गिर पड़ी और रोकर बोली — मेरा कसूर माफ कर दो।

मैंने गरजकर कहा — वह कौन सा कसूर है?

इंदूमति ने संभलकर जवाब दिया — तुम अपने दिल में इस वक्त जो ख्याल कर रहे हो उसे एक पल के लिए भी वहाँ न रहने दो, वर्ना समझ लो कि आज ही इस जिंदगी का खात्मा है। मुझे नहीं मालूम था कि तुम मेरे ऊपर जो जुल्म किए हैं उन्हें मैंने किस तरह झेला है और अब भी सब-कुछ झेलने के लिए तैयार हूँ। मेरा सर तुम्हारे पैंरों पर है, जिस तरह रखोगे, रहूँगी। लेकिन आज मुझे मालूम हुआ कि तुम खुद हो वैसा ही दूसरों को समझते हो। मुझसे भूल अवश्य हुई है लेकिन उस भूल की यह सजा नहीं कि तुम मुझ पर ऐसे संदेह न करो। मैंने उस औरत की बातों में आकर अपने सारे घर का चिट्ठा बयान कर दिया। मैं समझती थी कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये लेकिन कुछ तो उस औरत की

हमदर्दी और कुछ मेरे अन्दर सुलगती हुई आग ने मुझसे यह भूल करवाई और इसके लिए तुम जो सजा दो वह मेरे सर-आँखों पर।

मेरा गुस्सा जरा धीमा हुआ। बोला — तुमने उससे क्या कहा?

इंदुमति ने दिया — घर का जो कुछ हाल है, तुम्हारी बेवफाई, तुम्हारी लापरवाही, तुम्हारा घर की जरूरतों की फ़िक्र न रखना। अपनी बेवकूफी का क्या कहूँ, मैंने उसे यहाँ तक कह दिया कि इधर तीन महीने से उन्होंने घर के लिए कुछ खर्च भी नहीं दिया और इसकी चोट मेरे गहनों पर पड़ी। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि इन तीन महीनों में मेरे साढ़े चार सौ रुपये के जेवर बिक गये। न मालूम क्यों मैं उससे यह सब कुछ कह गयी। जब इंसान का दिल जलता है तो जबान तक उसी आँच आ ही जाती है। मगर मुझसे जो कुछ खता हुई उससे कई गुनी सख्त सजा तुमने मुझे दी है; मेरा बयान लेने

का भी सब्र न हुआ। खैर, तुम्हारे दिल की कैफियत मुझे मालूम हो गई, तुम्हारा दिल मेरी तरफ़ से साफ़ नहीं है, तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं रहा वर्ना एक भिखारिन औरत के घर से निकलने पर तुम्हें ऐसे शुबहे क्यों होते।

मैं सर पर हाथ रखकर बैठ गया। मालूम हो गया कि तबाही के सामान पूरे हुए जाते हैं।

4

दूसरे दिन मैं ज्यों ही दफ्तर में पहुँचा चोबदार ने आकर कहा — महाराज साहब ने आपको याद किया है।

मैं तो अपनी किस्मत का फैसला पहले से ही किये बैठा था। मैं खूब समझ गया था कि वह बुढ़िया खुफ़िया पुलिस की कोई मुख़बिर है जो मेरे घरेलू मामलों की जांच के लिए तैनात हुई होगी। कल उसकी रिपोर्ट आयी होगी और आज मेरी तलबी है। खौफ़ से सहमा हुआ लेकिन दिल को किसी तरह संभाले हुए कि जो कुछ सर पर पड़ेंगी देखा जाएगा, अभी से क्यों जान दूँ, मैं महाराजा की खिदमत में पहुँचा। वह इस वक्त अपने पूजा के कमरे में अकेले बैठे हुए थे, क़ागजों का एक ढेर इधर-उधर फैला हुआ था ओर वह खुद किसी ख्याल में डूबे हुए थे। मुझे देखते ही वह मेरी तरफ मुखातिब हुए, उनके चेहरे पर नाराज़गी के लक्षण दिखाई दिये, बोले कुँअर श्यामसिंह, मुझे बहुत अफसोस है कि तुम्हारी बावत मुझे जो बातें मालूम हुईं वह मुझे इस बात के

लिए मजबूर करती हैं कि तुम्हारे साथ सख्ती का बर्ताव किया जाए। तुम मेरे पुराने वसीक़ादार हो और तुम्हें यह गौरव कई पीढ़ियों से प्राप्त है। तुम्हारे बुजुर्गों ने हमारे खानदान की जान लगाकर सेवाएँ की हैं और उन्हीं के सिलें में यह वसीक़ा दिया गया था लेकिन तुमने अपनी हरकतों से अपने को इस कृपा के योग्य नहीं रक्खा। तुम्हें इसलिए वसीक़ा मिलता था कि तुम अपने खानदान की परवरिश करों, अपने लड़कों को इस योग्य बनाओ कि वह राज्य की कुछ खिदमत कर सकें, उन्हें शारीरिक और नैतिक शिक्षा दो ताकि तुम्हारी जात से रियासत की भलाई हो, न कि इसलिए कि तुम इस रुपये को बेहूदा ऐशपस्ती और हरामकारी में खर्च करो। मुझे इस बात से बहुत तकलीफ़ होती है कि तुमने अब अपने बाल-बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी से भी अपने को मुक्त समझ लिया है। अगर तुम्हारा यही ढंग रहा तो यकीनन वसीक़ादारों का एक पुराना खानदान मिट जाएगा। इसलिए हाज से हमने तुम्हारा नाम वसीक़ादारों की फ़ेहरिस्त से खारिज कर दिया और तुम्हारी जगह तुम्हारी बीवी का नाम दर्ज किया गया। वह अपने लड़कों को पालने-पोसने की जिम्मेदार है। तुम्हारा नाम रियासत के मालियों की फ़ेहरिस्त मे लिया जाएगा, तुमने अपने को इसी के योग्य सिद्ध किया है और मुझे

उम्मीद है कि यह तबादला तुम्हें नागवार न होगा। बस, जाओ और मुमकिन हो तो अपने किये पर पछ्ताओ।

5

मुझे कुछ कहने का साहस न हुआ। मैंने बहुत धैर्यपूर्वक अपने क़िस्मत का यह फ़ैसला सुना और घर की तरफ़ चला। लेकिन दो ही चार क़दम चला था कि अचानक ख़याल आया किसके घर जा रहे हो, तुम्हारा घर अब कहाँ है! मैं उलटे क़दम लौटा। जिस घर का मैं राजा था वहाँ दूसरों का आश्रित बनकर मुझसे नहीं रहा जाएगा और रहा भी जाये तो मुझे रहना चाहिए। मेरा आचरण निश्चय ही अनुचित था लेकिन मेरी नैतिक संवदेना अभी इतनी थोथी न हुई थी। मैंने पक्का इरादा कर लिया कि इसी वक्त इस शहर से भाग जाना मुनासिब है वर्ना बात फैलते ही हमदर्दों और बुरा चेतनेवालों का एक जमघट हालचाल पूछने के लिए आ जाएगा, दूसरों की सूखी हमदर्दियाँ सुननी पडेंगी जिनके पर्दे में खुशी झलकती होगीं एक बारख् सिर्फ एक बार, मुझे फूलमती का खयाल आया। उसके कारण यह सब दुर्गत हो रही है, उससे तो मिल ही लूँ। मगर दिल ने रोका, क्या एक वैभवशाली आदमी की

जो इज्जत होती थी वह अब मुझे हासिल हो सकती है? हरगिज़ नहीं। रूप की मण्डी में वफ़ा और मुहब्बत के मुक़ाबिले में रुपया-पैसा ज्यादा क़ीमती चीज है। मुमकिन है इस वक्त मुझ पर तरस खाकर या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमादा हो जाये लेकिन या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमादा हो जाये लेकिन उसे लेकर कहाँ जाऊँगा, पाँवों में बेड़ियाँ डालकर चलना तो ओर भी मुश्किल है। इस तरह सोच-विचार कर मैंने बम्बई की राह ली और अब दो साल से एक मिल में नौकर हूँ, तनख्वाह सिर्फ़ इतनी है कि ज्यों-त्यों जिन्दगी का सिलसिला चलता रहे लेकिन ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ और इसी को यथेष्ट समझता हूँ। मैं एक बार गुप्त रूप से अपने घर गया था। फूलमती ने एक दूसरे रईस से रूप का सौदा कर लिया है, लेकिन मेरी पत्नी ने अपने प्रबन्ध-कौशल से घर की हालत खूब संभाल ली है। मैंने अपने मकान को रात के समय लालसा-भरी आँखों से देखा — दरवाज़े पर पर दो लालटेनें जल रही थीं और बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे, हर सफ़ाई और सुथरूपन दिखायी देता था। मुझे कुछ अखबारों के देखने से मालूम हुआ कि महीनों तक मेरे पते-निशान के बारे में अखबारों में इश्तहार छपते रहे। लेकिन अब यह सूरत लेकर मैं वहाँ क्या जाऊँगा ओर यह कालिख-लगा मुँह किसको

दिखाऊँगा। अब तो मुझे इसी गिरी-पड़ी हालत में जिन्दगी के दिन काटने हैं, चाहे रोकर काटूँ या हँसकर। मैं अपनी हरकतों पर अब बहुत शर्मिंदा हूँ। अफसोस मैंने उन नेमतों की कद्र न की, उन्हें लात से ठोकर मारी, यह उसी की सजा है कि आज मुझें यह दिन देखना पड़ रहा है। मैं वह परवाना हूँ। मैं वह परवाना हूँ जिसकी खाक भी हवा के झोंकों से नहीं बची।

['जमाना', सितंबर — अक्तूबर, 1994]

अमृत

मेरी उठती जवानी थी जब मेरा दिल दर्द के मजे से परिचित हुआ। कुछ दिनों तक शायरी का अभ्यास करता रहा और धीरे-धीरे इस शौक ने तल्लीनता का रूप ले लिया। सांसारिक संबंधों से मुँह मोड़कर अपनी शायरी की दुनिया में आ बैठा और तीन ही साल की मश्क़ ने मेरी कल्पना के जौहर खोल दिये। कभी-कभी मेरी शायरी उस्तादों के मशहूर कलाम से टक्कर खा जाती थी। मेरे क़लम ने किसी उस्ताद के सामने सर नहीं झुकाया। मेरी कल्पना एक अपने-आप बढ़ने वाले पौधे की तरह छंद और पिंगल की कैदों से आजाद बढ़ती रही और ऐसे कलाम का ढंग निराला था। मैंने अपनी शायरी को फारस से बाहर निकाल कर योरोप तक पहुँचा दिया। यह मेरा अपना रंग था। इस मैदान में न मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी था, न बराबरी करने वाला बावजूद इस शायरों जैसी तल्लीनता के मुझे मुशायरों की वाह-वाह और सुभानअल्लाह से नफ़रत थी। हाँ, काव्य-रसिकों से बिना अपना नाम बताये हुए अक्सर अपनी शायरी की अच्छाइयों और बुराइयों पर बहस किया करता। तो मुझे शायरी का दावा न था मगर

धीरे-धीरे मेरी शोहरत होने लगी और जब मेरी मसनवी ’दुनियाए हुस्न’ प्रकाशित हुई

तो साहित्य की दुनिया में हलचल-सी मच गयी। पुराने शायरों ने काव्य-मर्मज्ञों की प्रशंसा-कृपणता में पोथे के पोथे रंग दिये हैं मगर मेरा अनुभव इसके बिलकुल विपरीत था। मुझे कभी-कभी यह ख़याल सताया करता कि मेरे कद्रदानों की यह उदारता दूसरे कवियों की लेखनी की दरिद्रता का प्रमाण है। यह ख़याल हौसला तोड़ने वाला था। बहरहाल, जो कुछ हुआ — दुनियाए हुस्न’ ने मुझे शायरी का बादशाह बना दिया। मेरा नाम हरेक ज़बान पर था। मेरी चर्चा हर एक अखबार में थी। शोहरत अपने साथ दौलत भी लायी। मुझे दिन-रात शेरो-शायरी के अलावा और कोई काम न था। अक्सर बैठे-बैठे रातें गुज़र जातीं और जब कोई चुभता हुआ शेर कलम से निकल जाता तो मैं खुशी के मारे उछल पड़ता। मैं अब तक शादी-ब्याह की कैंदों से आजाद था या यों कहिए कि मैं उसके उन मजों से अपरिचित था जिनमें रंज की तल्खी भी है और खुशी की नमकीनी भी। अक्सर पश्चिमी साहित्यकारों की तरह मेरा भी ख्याल था कि साहित्य के उन्माद और सौन्दर्य के उन्माद में पुराना बैर है। मुझे अपनी जबान से कहते हुए शर्मिन्दा होना पड़ता है कि मुझे अपनी तबियत पर भरोसा न था। जब कभी मेरी आँखों में कोई मोहिनी सूरत घूम

जाती तो मेरे दिल-दिमाग पर एक पागलपन-सा छा जाता। हफ्तों तक अपने को भूला हुआ-सा रहता। लिखने की तरफ तबियत किसी तरह न झुकती। ऐसे कमजोर दिल में सिर्फ एक इश्क की जगह थी। इसी डर से मैं अपनी रंगीन तबियत के खिलाफ आचरण शुद्ध रखने पर मजबूर था। कमल की एक पंखुड़ी, श्यामा के एक गीत, लहलहाते हुए एक मैदान में मेरे लिए जादू का-सा आकर्षण था मगर किसी औरत के दिलफ़रेब हुस्न को मैं चित्रकार या मूर्तिकार की बैलौस आँखों से नहीं देख सकता था। सुंदर स्त्री मेरे लिए एक रंगीन, क़ातिल नागिन थी जिसे देखकर आँखें खुश होती हैं मगर दिल डर से सिमट जाता है।

खैर — दुनियाए हुस्न' को प्रकाशित हुए दो साल गुजर चुके थे। मेरी ख्याति बरसात की उमड़ी हुई नदी की तरह बढ़ती चली जाती थी। ऐसा मालूम होता था जैसे मैंने साहित्य की दुनिया पर कोई वशीकरण कर दिया है। इसी दौरान मैंने फुटकर शेर तो बहुत कहे मगर दावतों और अभिनंदनपत्रों की भीड़ ने मार्मिक भावों को उभरने न दिया। प्रदर्शन और ख्याति एक राजनीतिज्ञ के लिए कोड़े का काम दे सकते हैं, मगर शायर की तबियत अकेले शांति से एक कोने के बैठकर ही अपना जौहर दिखलाती है। चुनांचे मैं इन रोज-ब-रोज बढ़ती हुई बेहूदा बातों से गला छुड़ा

कर भागा और पहाड़ के एक कोने में जा छिपा। 'नैरंग' ने वहीं जन्म लिया।

2

'नैरंग' के शुरु करते हुए ही मुझे एक आश्चर्यजनक और दिल तोड़ने वाला अनुभव हुआ। ईश्वर जाने क्यों मेरी अक़्ल और मेरे चिंतन पर पर्दा पड़ गया। घंटों तबियत पर जोर डालता मगर एक शेर भी ऐसा न निकलता कि दिल फड़के उठे। सूझते भी तो दरिद्र, पिटे हुए विषय, जिनसे मेरी आत्मा भागती थी। मैं अक्सर झुँझलाकर उठ बैठता, कागज फाड़ डालता और बड़ी बेदिली की हालत में सोचने लगता कि क्या मेरी काव्यशक्ति का अंत हो गया, क्या मैंने वह खजाना जो प्रकृति ने मुझे सारी उम्र के लिए दिया था, इतनी जल्दी मिटा दिया। कहाँ वह हालत थी कि विषयों की बहुतायत और नाजुक खयालों की रवानी क़लम को दम नहीं लेने देती थी। कल्पना का पंछी उड़ता तो आसमान का तारा बन जाता था और कहाँ अब यह पस्ती! यह करुण दरिद्रता! मगर इसका कारण क्या है? यह किस

क़सूर की सज़ा है। कारण और कार्य का दूसरा नाम दुनिया है। जब तक हमको क्यों का जवाब न मिले, दिल को किसी तरह सब्र नहीं होता, यहाँ तक कि मौत को भी इस क्यों का जवाब देना पड़ता है। आखिर मैंने एक डाक्टर से सलाह ली। उसने आम डाक्टरों की तरह आब-हवा बदलने की सलाह दी। मेरी अक़्ल में भी यह बात आयी कि मुमकिन है नैनीताल की ठंडी आब-हवा से शायरी की आग ठंडी पड़ गई हो। छः महीने तक लगातार घूमता-फिरता रहा। अनेक आकर्षक दृश्य देखे, मगर उनसे आत्मा पर वह शायराना कैफियत न छाती थी कि प्याला छलक पड़े और खामोश कल्पना खुद ब खुद चहकने लगे। मुझे अपना खोया हुआ लाल न मिला। अब मैं जिंदगी से तंग था। जिंदगी अब मुझे सूखे रेगिस्तान जैसी मालूम होती जहां कोई जान नहीं, ताज़गी नहीं, दिलचस्पी नहीं। हरदम दिल पर एक मायूसी-सी छायी रहती और दिल खोया-खोया रहता। दिल में यह सवाल पैदा होता कि क्या

वह चार दिन की चांदनी खत्म हो गयी और अंधेरा पाख आ गया? आदमी की संगत से बेजार, हमजिंस की सूरत से नफरत, मैं एक गुमनाम कोने में पड़ा हुआ जिंदगी के दिन पूरे कर रहा था। पेड़ों की चोटियों पर बैठने वाली, मीठे राग गाने वाली चिड़िया क्या पिंजरे में ज़िंदा सकती हैं? मुमकिन है कि वह दाना खाये,

पानी पिये मगर उसकी इस जिंदगी और मौत में कोई फर्क नहीं है।

आखिर जब मुझे अपनी शायरी के लौटने की कोई उम्मीद नहीं रही, तो मेरे दिल में यह इरादा पक्का हो गया कि अब मेरे लिए शायरी की दुनिया से मर जाना ही बेहतर होगा। मुर्दा तो हूँ ही, इस हालत में अपने को जिंदा समझना बेवकूफी है। आखिर मैंने एक रोज कुछ दैनिक पत्रों का अपने मरने की खबर दे दी। उसके छपते ही मुल्क में कोहराम मच गया, एक तहलका पड़ गया। उस वक्त मुझे अपनी लोकप्रियता का कुछ अंदाजा हुआ। यह आम पुकार थी, कि शायरी की दुनिया की किस्ती मंझधार में डूब गयी। शायरी की महफिल उखड़ गयी। पत्र-पत्रिकाओं में मेरे जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए जिनको पढ़ कर मुझे उनके एडीटरों की आविष्कार-बुद्धि का क़ायल होना पड़ा। न तो मैं किसी रईस का बेटा था और न मैंने रईसी की मसनद छोड़कर फकीरी अख्तियार की थी। उनकी कल्पना वास्तविकता पर छा गयी थी। मेरे मित्रों में एक साहब ने, जिन्हे मुझसे आत्मीयता का दावा था, मुझे पीने-पिलाने का प्रेमी बना दिया था। वह जब कभी मुझसे मिलते, उन्हें मेरी आँखें नशे से लाल नजर आतीं। अगरचे इसी लेख में आगे चलकर उन्होनें मेरी इस बुरी आदत की बहुत हृदयता से सफाई दी थी क्योंकि रूखा-सूखा आदमी ऐसी मस्ती

के शेर नहीं कह सकता था। ताहम हैरत है कि उन्हें यह सरहन गलत बात कहने की हिम्मत कैसे हुई। खैर, इन गलत-बयानियों की तो मुझे परवाह न थी। अलबत्ता यह बड़ी फिक्र थी, फिक्र नहीं एक प्रबल जिज्ञासा थी, कि मेरी शायरी पर लोगों की जबान से क्या फतवा निकलता है। हमारी जिंदगी के कारनामे की सच्ची दाद मरने के बाद ही मिलती है क्योंकि उस वक्त वह खुशामद और बुराइयों से पाक-साफ होती हैं। मरने वाले की खुशी या रंज की कौन परवाह करता है। इसीलिए मेरी कविता पर जितनी आलोचनाएँ निकली हैं उसको मैंने बहुत ही ठंडे दिल से पढ़ना शुरू किया। मगर कविता को समझने वाली दृष्टि की व्यापकता और उसके मर्म को समझने वाली रुचि का चारों तरफ अकाल-सा मालूम होता था। अधिकांश जौहरियों ने एक-एक शेर को लेकर उनसे बहस की थी, और इसमें शक नहीं कि वे पाठक की हैसियत से उस शेर के पहलुओं को खूब समझते थे। मगर आलोचक का कहीं पता न था। नजर की गहराई गायब थी। समग्र कविता पर निगाह डालने वाला कवि, गहरे भावों तक पहुँचने वाला कोई आलोचक दिखाई न दिया।

3

एक रोज़ मैं प्रेतों की दुनिया से निकलकर घूमता हुआ अजमेर की पब्लिक लाइब्रेरी में जा पहुँचा। दोपहर का वक्त था। मैंने मेज पर झुककर देखा कि कोई नयी रचना हाथ आ जाये तो दिल बहलाऊँ। यकायक मेरी निगाह एक सुंदर पत्र की तरफ गयी जिसका नाम था 'कलामें अख्तर'। जैसे भोला बच्चा खिलौने कि तरफ लपकता है उसी तरह झपटकर मैंने उस किताब को उठा लिया। उसकी लेखिका मिस आयशा आरिफ़ थीं। दिलचस्पी और भी ज्यादा हुई। मैं इतमीनान से बैठकर उस किताब को पढ़ने लगा। एक ही पन्ना पढ़ने के बाद दिलचस्पी ने बेताबी की सूरत अख्तियार की। फिर तो मैं बेसुधी की दुनिया में पहुँच गया। मेरे सामने गोया सूक्ष्म अर्थों की एक नदी लहरें मार रही थी। कल्पना की उठान, रुचि की स्वच्छता, भाषा की नर्मी। काव्य-दृष्टि ऐसी थी कि हृदय धन्य-धन्य हो उठता था। मैं एक पैराग्राफ पढ़ता, फिर विचार की ताज़गी से प्रभावित होकर एक लंबी साँस लेता और तब सोचने लगता, इस किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना असम्भव था। यह औरत थी या सुरुचि की देवी। उसके इशारों से मेरा कलाम बहुत कम बचा था मगर जहां उसने मुझे दाद दी थी वहाँ सच्चाई के मोती बरसा दिये थे। उसके

एतराजों में हमदर्दी और प्रशंसा में भक्ति था। शायर के कलाम को दोषों की दृष्टियों से नहीं देखना चाहिये। उसने क्या नहीं किया, यह ठीक कसौटी नहीं। बस यही जी चाहता था कि लेखिका के हाथ और कलम चूम लूँ। 'सफ़ीर' भोपाल के दफ्तर से एक पत्रिका प्रकाशित हुई थी। मेरा पक्का इरादा हो गया, तीसरे दिन शाम के वक्त मैं मिस आयशा के खूबसूरत बंगले के सामने हरी-हरी घास पर टहल रहा था। मैं नौकरानी के साथ एक कमरे में दाखिल हुआ। उसकी सजावट बहुत सादी थी। पहली चीज़ पर निगाहें पड़ीं वह मेरी तस्वीर थी जो दीवार पर लटक रही थी। सामने एक आइना रखा हुआ था। मैंने खुदा जाने क्यों उसमें अपनी सूरत देखी। मेरा चेहरा पीला और कुम्हलाया हुआ था, बाल उलझे हुए, कपड़ों पर गर्द की एक मोटी तह जमी हुई, परेशानी की जिंदा तस्वीर थी।

उस वक्त मुझे अपनी बुरी शक्ल पर सख्त शर्मिंदगी हुई। मैं सुंदर न सही मगर इस वक्त तो सचमुच चेहरे पर फटकार बरस रही थी। अपने लिबास के ठीक होने का यकीन हमें खुशी देता है। अपने फुहड़पन का जिस्म पर इतना असर नहीं होता जितना दिल पर। हम बुजदिल और बेहौसला हो जाते हैं।

मुझे मुश्किल से पाँच मिनट गुजरे होंगे कि मिस आयशा तशरीफ़ लायीं। साँवला रंग था, चेहरा एक गंभीर घुलावट से चमक रहा

था। बड़ी-बड़ी नरगिसी आँखों से सदाचार की, संस्कृति की रोशनी झलकती थी। क़द मझोले से कुछ कम। अंग-प्रत्यंग छरहरे, सुथरे, ऐसे हल्की-फुल्की कि जैसे प्रकृति ने उसे इस भौतिक संसार के लिए नहीं, किसी काल्पनिक संसार के लिए सिरजा है। कोई चित्रकार कला की उससे अच्छी तस्वीर नही खींच सकता था।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखा मगर देखते-देखते उसकी गर्दन झुक गयी और उसके गालों पर लाज की एक हल्की-परछाईं नाचती हुई मालूम हुई। जमीन से उठकर उसकी आँखें मेरी तस्वीर की तरफ गयीं और फिर सामने पर्दे की तरफ जा पहुँचीं। शायद उसकी आड़ में छिपना चाहती थीं।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखकर पूछा — आप स्वर्गीय अख्तर के दोस्तों में से हैं?

मैंने सिर नीचा किये हुए जवाब दिया-– मैं ही बदनसीब अख्तर हूँ।

आयशा एक बेखुदी के आलम में कुर्सी पर से खड़ी हुई और मेरी तरफ हैरत से देखकर बोलीं — 'दुनियाए हुस्न' के लिखने वाले? अंधविश्वास के सिवा और किसने इस दुनिया से चले जानेवाले को देखा है? आयशा ने मेरी तरफ कई बार शक से भरी निगाहों से देखा। उनमें अब शर्म और हया की जगह के बजाय हैरत

समायी हुई थी। मेरे कब्र से निकलकर भागने का तो उसे यकीन आ ही नहीं सकता था, शायद वह मुझे दीवाना समझ रही थी। उसने दिल में फैसला किया कि इस आदमी मरहूम शायर का कोई क़रीबी अजीज है। शकल जिस तरह मिल रही थी वह दोनों के एक खानदान के होने का सबूत थी। मुमकिन है कि भाई हो। वह अचानक सदमे से पागल हो गया है। शायद उसने मेरी किताब देखी होगी ओर हाल पूछने के लिए चला आया। अचानक उसे ख़याल गुजरा कि किसी ने अखबारों को मेरे मरने की झूठी खबर दे दी हो और मुझे उस खबर को काटने का मौका न मिला हो। इस ख़याल से उसकी उलझन दूर हुई, बोली — अखबारों में आपके बारे में एक निहायत मनहूस खबर छप गयी थी? मैंने जवाब दिया — वह खबर सही थी।

अगर पहले आयशा को मेरे दिवानेपन में कुछ था तो वह दूर हो गया। आखिर मैने थोड़े लफ़्जो में अपनी दास्तान सुनायी और जब उसको यकीन हो गया कि 'दुनियाए हुस्न' का लिखनेवाला अख्तर अपने इन्सानी चोले में है तो उसके चेहरे पर खुशी की एक हल्की सुर्खी दिखायी दी और यह हल्का रंग बहुत जल्द खुददारी और रूप-गर्व के शोख रंग से मिलकर कुछ का कुछ हो गया। ग़ालिबन वह शर्मिंदा थी कि क्यों उसने अपनी क़द्रदानी को हद से बाहर जाने दिया। कुछ देर की शर्मीली खामोशी के

बाद उसने कहा — मुझे अफसोस है कि आपको ऐसी मनहूस खबर निकालने की जरूरत हुई।

मैंने जोश में भरकर जवाब दिया — आपके क़लम की जबान से दाद पाने की कोई सूरत न थी। इस तनक़ीद के लिए मैं ऐसी-ऐसी कई मौतें मर सकता था।

मेरे इस बेधड़क अंदाज ने आयशा की जबान को भी शिष्टाचार और संकोच की क़ैद से आज़ाद किया, मुस्कराकर बोली — मुझे बनावट पसंद नहीं है। डाक्टरों ने कुछ बतलाया नहीं?

उसकी इस मुस्कराहट ने मुझे दिल्लगी करने पर आमादा किया, बोला — अब मसीहा के सिवा इस मर्ज का इलाज और किसी के हाथ नहीं हो सकता।

आयशा इशारा समझ गई, हँसकर बोली — मसीहा चौथे आसमान पर रहते हैं।

मेरी हिम्मत ने अब और कदम बढ़ाये-रूहों की दुनिया से चौथा आसमान बहुत दूर नहीं है।

आयशा के खिले हुए चेहरे से संजीदगी और अजनबियत का हल्का रंग उड़ गया। ताहम, मेरे इन बेधड़क इशारों को हद से बढ़ते देखकर उसे मेरी जबान पर रोक लगाने के लिए किसी

क़दर खुददारी बरतनी पड़ी। जब मैं कोई घंटे-भर के बाद उस कमरे से निकला तो बजाय इसके कि वह मेरी तरफ अपनी अंग्रेजी तहज़ीब के मुताबिक हाथ बढ़ाये उसने चोरी-चोरी मेरी तरफ देखा। फैला हुआ पानी जब सिमटकर किसी जगह से निकलता है तो उसका बहाव तेज़ और ताक़त कई गुना ज्यादा हो जाती है आयशा की उन निगाहों में अस्मत की तासीर थी। उनमें दिल मुस्कराता था और जज्बा नाजता था। आह, उनमें मेरे लिए दावत का एक पुरजोर पैग़ाम भरा हुआ था।

जब मैं मुस्लिम होटल में पहुँचकर इन वाक़यात पर गौर करने लगा तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि गो मैं ऊपर से देखने पर यहाँ अब तक अपरिचित था लेकिन भीतरी तौर पर शायद मैं उसके दिल के कोने तक पहुँच चुका था।

4

जब मैं खाना खाकर पलंग पर लेटा तो बावजूद दो दिन रात-रात-भर जागने के नींद आँखों से कोसों दूर थी। जज्बात की कशमकश में नींद कहाँ। आयशा की सूरत, उसकी खातिरदारियाँ और उसकी वह छिपी-छिपी निगाह दिल में एक सासों का तूफान-

सा बरपा रही थी उस आखिरी निगाह ने दिल में तमन्नाओं की धूम-धूम मचा दी। वह आरजुएँ जो, बहुत अरसा हुआ, मर मिटी थीं फिर जाग उठीं और आरजुओं के साथ कल्पना ने भी मुंदी हुई आँखें खोल दीं। दिल में जज्बात और कैफ़ियात का एक बेचैन करनेवाला जोश महसूस हुआ। यही आरजुएँ, यही बेचैनिया और यही कोशिशें कल्पना के दीपक के लिए तेल हैं। जज्बात की हरारत ने कल्पना को गरमाया। मैं क़लम लेकर बैठ गया और एक ऐसी नज़म लिखी जिसे मैं अपनी सबसे शानदार दौलत समझता हूँ।

मैं एक होटल मे रहा था, मगर किसी-न-किसी हीले से दिन में कम-से-कम एक बार जरूर उसके दर्शन का आनन्द उठाता। गो आयशा ने कभी मेरे यहाँ तक आने की तकलीफ नहीं की तो भी मुझे यह यकीन करने के लिए शहादतों की जरूरत न थी कि वहाँ किस क़दर सरगर्मी से मेरा इंतजार किया जाता था, मेरे क़दमों की पहचानी हुई आहटे पाते ही उसका चेहरा कैसे कमल की तरह खिल जाता था और आँखों से कामना की किरणें निकलने लगती थीं।

यहाँ छः महीने गुजर गये। इस जमाने को मेरी जिंदगी की बहार समझना चाहिये। मुझे वह दिन भी याद है जब मैं आरजुओं और हसरतों के ग़म से आजाद था। मगर दरिया की शांतिपूर्ण रवानी

में थिरकती हुई लहरों की बहार कहाँ, अब अगर मुहब्बत का दर्द था तो उसका प्राणदायी मज़ा भी था। अगर आरज़ुओं की घुलावट थी तो उनकी उमंग भी थी। आह, मेरी यह प्यासी आँखें उस रूप के स्रोत से किसी तरह तृप्त न होती। जब मैं अपनी नशे में डूबी हुई आँखो से उसे देखता तो मुझे एक आत्मिक तरावट-सी महसूस होती। मैं उसके दीदार के नशे से बेसुध-सा हो जाता और मेरी रचना-शक्ति का तो कुछ हद-हिसाब न था। ऐसा मालूम होता था कि जैसे दिल में मीठे भावों का सोता खुल गया था। अपनी कवित्व शक्ति पर खुद अचम्भा होता था। क़लम हाथ में ली और रचना का सोता-सा बह निकला। 'नैरंग' में ऊँची कल्पनाएँ न हो, बड़ी गूढ़ बातें न हों, मगर उसका एक-एक शेर प्रवाह और रस, गर्मी और घुलावट की दाद दे रहा है। यह उस दीपक का वरदान है, जो अब मेरे दिल में जल गया था और रोशनी दे रहा था। यह उस फुल की महक थी जो मेरे दिल में खिला हुआ था। मुहब्बत रूह की खुराक है। यह अमृत की बूंद है जो मरे हुए भावों को जिंदा कर देती है।

मुहब्बत आत्मिक वरदान है। यह जिंदगी की सबसे पाक, सबसे ऊँची, मुबारक बरक़त है। यही अक्सीर थी जिसकी अनजाने ही मुझे तलाश थी। वह रात कभी नहीं भूलेगी जब आयशा दुल्हन बनी हुई मेरे घर में आयी। 'नैरंग' उसकी मुबारक जिंदगी की

यादगार है। 'दुनियाए हुस्न' एक कली थी — नैरंग' खिला हुआ फूल है और उस कली को खिलाने वाली कौन-सी चीज है? वही जिसकी मुझे अनजाने ही तलाश थी और जिसे मैं अब पा गया था।

[उर्दू 'प्रेम पचीसी' से]

आख़िरी तोहफ़ा

सारे शहर में सिर्फ एक ऐसी दुकान थी, जहाँ विलायती रेशमी साड़ी मिल सकती थीं। और सभी दुकानदारों ने विलायती कपड़े पर कांग्रेस की मुहर लगवायी थी। मगर अमरनाथ की प्रेमिका की फ़रमाइश थी, उसको पूरा करना जरूरी था। वह कई दिन तक शहर की दुकानों का चक्कर लगाते रहे, दुगुना दाम देने पर तैयार थे, लेकिन कहीं सफल-मनोरथ न हुए और उसके तक़ाजे बराबर बढ़ते जाते थे।

होली आ रही थी। आख़िर वह होली के दिन कौन-सी साड़ी पहनेगी। उसके सामने अपनी मजबूरी को जाहिर करना अमरनाथ के पुरुषोचित अभिमान के लिए कठिन था। उसके इशारे से वह आसमान के तारे तोड़ लाने के लिए भी तत्पर हो जाते। आख़िर जब कहीं मक़सद पूरा न हुआ, तो उन्होंने उसी खास दुकान पर जाने का इरादा कर लिया। उन्हें यह मालूम था कि दुकान पर धरना दिया जा रहा है। सुबह से शाम तक स्वयंसेवक तैनात रहते हैं और तमाशाइयों की भी हरदम खासी भीड़ रहती है। इसलिए उस दुकान में जाने के लिए एक विशेष प्रकार के नैतिक

साहस की जरूरत थी और यह साहस अमरनाथ में जरूरत से कम था। पढ़े-लिखे आदमी थे, राष्ट्रीय भावनाओं से भी अपरिचित न थे, यथाशक्ति स्वदेशी चीजें ही इस्तेमाल करते थे। मगर इस मामले में बहुत कट्टर न थे। स्वदेशी मिल जाय तो बेहतर वर्ना विदेशी ही सही-इस उसूल के मानने वाले थे। और खासकर जब उसकी फरमाइश थी तब तो कोई बचाव की सूरत ही न थी। अपनी जरूरतों को तो वह शायद कुछ दिनों के लिए टाल भी देते, मगर उसकी फरमाइश तो मौत की तरह अटल है। उससे मुक्ति कहाँ! तय कर लिया कि आज साड़ी जरूर लायेंगे। कोई क्यों रोके? किसी को रोकने का क्या अधिकर हैं? माना स्वदेशी का इस्तेमाल अच्छी बात है लेकिन किसी को जबर्दस्ती करने का क्या हक़ है? अच्छी आजादी की लड़ाई है जिसमें व्यक्ति की आजादी का इतना बेदर्दी से खून हो!

यों दिल को मजबूत करके वह शाम को दुकान पर पहुँचे। देखा तो पाँच वालण्टियर पिकेटिंग कर रहे हैं और दुकान के सामने सड़क पर हज़ारों तमाशाई खड़े हैं। सोचने लगे, दुकान में कैसे जाएँ। कई बार कलेजा मज़बूत किया और चले मगर बरामदे तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

संयोग से एक जान-पहचान के पण्डितजी मिल गये। उनसे पूछा — क्यों भाई, यह धरना कब तक रहेगा? शाम तो हो गयी।

पण्डितजी ने कहा — इन सिरफिरों को सुबह और शाम से क्या मतलब, जब तक दुकान बन्द न हो जाएगी, यहाँ से न टलेंगे। कहिए, कुछ खरीदने को इरादा है? आप तो रेशमी कपड़ा नहीं खरीदते?

अमरनाथ ने विवशता की मुद्रा बनाकर कहा — मैं तो नहीं खरीदता। मगर औरतों की फ़रमाइश को कैसे टालूँ।

पण्डितजी ने मुस्कराकर कहा — वाह, इससे ज्यादा आसान तो कोई बात नहीं। औरतों को भी चकमा नहीं दे सकते? सौ हीले-हजार बहाने हैं।

अमरनाथ — आप ही कोई हीला सोचिए।

पण्डितजी — सोचना क्या है, यहाँ रात-दिन यही किया करते हैं। सौ-पचास हीले हमेशा जेबों में पड़े रहते हैं। औरत ने कहा, हार बनवा दो। कहा, आज ही लो। दो-चार रोज़ के बाद कहा, सुनार माल लेकर चम्पत हो गया। यह तो रोज का धन्धा है भाई। औरतों का काम फ़रमाइश करना है, मर्दों का काम उसे खूबसूरती से टालना है।

अमरनाथ — आप तो इस कला के पण्डित मालूम होते हैं!

पण्डितजी — क्या करें भाई, आबरु तो बचानी ही पड़ती है। सूखा जवाब दें तो शर्मिंदगी अलग हो, बिगड़ें वह अगल से, समझें, हमारी परवाह ही नहीं करते। आबरु का मामला हैं। आप एक काम कीजिए। यह तो आपने कहा ही होगा कि आजकल पिकेटिंग है?

अमरनाथ — हाँ, यह तो बहाना कर चुका भाई, मगर वह सुनती ही नहीं, कहती है, क्या विलायती कपड़े दुनिया से उठ गये, मुझसे चले हो उड़ने!

पण्डितजी — तो मालूम होता है, कोई धुन की पक्की औरत है। अच्छा तो मैं एक तरकीब बताऊँ। एक खाली कार्ड का बक्स ले लो, उसमें पुराने कपड़े जलाकर भर लो। जाकर कह देना, मैं कपड़े लिये आता था, वालण्टियरों ने छीनकर जला दिये। क्यों, कैसी रहेगी?

अमरनाथ — कुछ जँचती नहीं। अजी, बीस एतराज़ करेंगी, कहीं पर्दाफ़ाश हो जाय तो मुफ्त की शर्मिंदगी उठानी पड़े।

पण्डितजी — तो मालूम हो गया, आप बोदे आदमी हैं और हैं भी आप कुछ ऐसे ही। यहाँ तो कुछ इस शान से हीले करते हैं कि सच्चाई की भी उसके आगे धुल हो जाय। जिन्दगी यही बहाने करते गुजरी और कभी पकड़े न गये। एक तरकीब और है।

इसी नमूने का देशी माल ले जाइए और कह दीजिए कि विलायती है।

अमरनाथ — देशी और विलायती की पहचान उन्हें मुझसे और आपसे कहीं ज्यादा हैं। विलायती पर तो जल्द विलायती का यक़ीन आयेगा नहीं, देशी की तो बात ही क्या है!

एक खद्दरपोश महाशय पास ही खड़े यह बातचीत सुन रहे थे, बोल उठे — ए साहब, सीधी-सी तो बात है, जाकर साफ़ कह दीजिए कि मैं विदेशी कपड़े न लाऊँगा। अगर जिद करे तो दिन-भर खाना न खाइये, आप सीधे रास्ते पर आ जायेगी।

अमरनाथ ने उनकी तरफ कुछ ऐसी निगाहों से देखा जो कह रही थीं, आप इस कूचे को नहीं जानते और बोले — यह आप ही कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता।

खद्दरपोश — कर तो आप भी सकते हैं लेकिन करना नहीं चाहते। यहाँ तो उन लोगों में से हैं कि अगर विदेशी दुआ से मुक्ति भी मिलती हो तो उसे ठुकरा दें।

अमरनाथ — तो शायद आप घर में पिकेटिंग करते होंगे?

खद्दरपोश — पहले घर में करके तब बाहर करते हैं भाई साहब।

खद्दरपोश साहब चले गये तो पण्डितजी बोले — यह महाशय तो तीसमारखाँ से भी तेज़ निकल। अच्छा तो एक काम कीजिए। इस दुकान के पिछवाड़े एक दूसरा दरवाज़ा है, ज़रा अंधेरा हो जाय तो उधर चले जाइएगा, दायें-बायें किसी की तरफ़ न देखिएगा।

अमरनाथ ने पण्डितजी को धन्यवाद दिया और जब अंधेरा हो गया तो दुकान के पिछवाड़े की

तरफ जा पहुँचे। डर रहे थे, कहीं यहाँ भी घेरा न पड़ा हो। लेकिन मैदान खाली था। लपककर अन्दर गये, एक ऊँचे दामों की साड़ी ख़रीदी और बाहर निकले तो एक देवीजी केसरिया साड़ी पहने खड़ी थीं। उनको देखकर इनकी रूह फ़ना हो गयी, दरवाजे से बाहर पाँव रखने की हिम्मत नहीं हुई। एक तरफ़ देखकर तेजी से निकल पड़े और कोई सौ कदम भागते हुए चले गये। कम्र का लिखा, सामने से एक बुढ़िया लाठी टेकती चली आ रही थी। आप उससे लड़ गये। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी कोसने — अरे अभागे, यह जवानी बहुत दिन न रहेगी, आँखों में चर्बी छा गयी है, धक्के देता चलता है!

अमरनाथ उसकी खुशामद करने लगे — माफ करो, मुझे रात को कुछ कम दिखाई पड़ता है। ऐनक घर भूल आया।

बुढ़िया का मिज़ाज ठण्डा हुआ, आगे बढ़ी और आप भी चले। एकाएक कानों में आवाज आयी,

‘बाबू साहब, जरा ठहरियेगा’ और वही केसरिया कपड़ोवाली देवीजी आती हुई दिखायी दीं।

अमरनाथ के पाँव बँध गये। इस तरह कलेजा मजबूत करके खड़े हो गये जैसे कोई स्कूली लड़का मास्टर की बेंत के सामने खड़ा होता है।

देवीजी ने पास आकर कहा — आप तो ऐसे भागे कि मैं जैसे आपको काट खाऊँगी। आप जब पढ़े-लिखे आदमी होकर अपना धर्म नहीं समझते तो दुख होता है। देश की क्या हालत है, लोगों को खद्दर नहीं मिलता, आप रेशमी साड़ियाँ खरीद रहे हैं!

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा — मैं सच कहता हूँ देवीजी, मैंने अपने लिए नहीं खरीदी, एक साहब की फ़रमाइश थीं

देवीजी ने झोली से एक चूड़ी निकालकर उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा — ऐसे हीले रोज़ ही सुना करती हूँ। या तो आप उसे वापस कर दीजिए या लाइए हाथ मैं चूड़ी पहना दूँ।

अमरनाथ — शौक से पहना दीजिए। मैं उसे बड़े गर्व से पहनूँगा। चूड़ी उस बलिदान का चिह्न है जो देवियों के जीवन

की विशेषता है। चूड़ियाँ उन देवियों के हाथ में थीं जिनके नाम सुनकर आज भी हम आदर से सिर झुकाते हैं। मैं तो उसे शर्म की बात नहीं समझता। आप अगर और कोई चीज पहनाना चाहें तो वह भी शौक़ से पहना दीजिए। नारी पूजा की वस्तु है, उपेक्षा की नहीं। अगर स्त्री, जो क़ौम को पैदा करती हैं, चूड़ी पहनना अपने लिए गौरव की बात समझती है तो मर्दों के लिए चूड़ी पहनाना क्यों शर्म की बात हो?

देवीजी को उनकी इस निर्लज्जता पर आश्चर्य हुआ मगर वह इतनी आसानी से अमरनाथ को छोड़ने वाली न थीं। बोलीं — आप बातों के शेर मालूम होते हैं। अगर आप हृदय से स्त्री को पूजा की वस्तु मानते हैं, तो मेरी यह विनती क्यों नहीं मान जाते?

अमरनाथ — इसलिए कि यह साड़ी भी एक स्त्री की फरमाइश है।

देवी — अच्छा चलिए, मैं आपके साथ चलूँगी, जरा देखूँ आपकी देवी जी किस स्वभाव की स्त्री हैं।

अमरनाथ का दिल बैठ गया। बेचारा अभी तक बिना-ब्याहा था, इसलिए नहीं कि उसकी शादी न होती थी बल्कि इसलिए कि शादी को वह एक आजीवन कारावास समझता था। मगर वह आदमी रसिक स्वभाव के थे। शादी से अलग रहकर भी शादी

के मजों से अपरिचित न थे। किसी ऐसे प्राणी की जरूरत उनके लिए अनिवार्य थी जिस पर वह अपने प्रेम को समर्पित कर सकें, जिसकी तरावट से वह अपनी रूखी-सूखी जिन्दगी को तरो-ताज़ा कर सकें, जिसके प्रेम की छाया में वह जरा देर के लिए ठण्डक पा सकें, जिसके दिल मे वह अपनी उमड़ी हुई जवानी की भावनाओं को बिखेरकर उनका उगना देख सकें। उनकी नज़र ने मालती को चुना था जिसकी शहर में घूम थी। इधर डेढ़-दो साल से वह इसी खलिहान के दाने चुना करते थे। देवीजी के आग्रह ने उन्हें थोड़ी देर के लिए उलझन में डाल दिया था। ऐसी शर्मिंदगी उन्हें जिन्दगी में कभी न हुई थी। बोले — आज तो वह एक न्यौते में गई हैं, घर में न होंगी।

देवीजी ने अविश्वास से हँसकर कहा — तो मैं समझ यह आपकी देवीजी का क़सूर नहीं, आपका क़सूर है।

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा — मैं आपसे सच कहता हूँ, आज वह घर पर नहीं।

देवी ने कहा — कल आ जाएँगी?

अमरनाथ बोले — हाँ, कल आ जाएँगी।

देवी — तो आप यह साड़ी मुझे दे दीजिए और कल यहीं आ जाइएगा, मैं आपके साथ चलूँगी। मेरे साथ दो-चार बहनें भी होंगी।

2

अमरनाथ ने बिना किसी आपत्ति के वह साड़ी देवीजी को दे दी और बोले — बहुत अच्छा, मैं कल आ जाऊँगा। मगर क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है जो साड़ी की जमानत जरूरी है?

देवीजी ने मुस्कराकर कहा — सच्ची बात तो यही है कि मुझे आप पर विश्वास नहीं।

अमरनाथ ने स्वाभिमानपूर्वक कहा — अच्छी बात है, आप इसे ले जाएँ।

देवी ने क्षण-भर बाद कहा — शायद आपको बुरा लग रहा हो कि कहीं साड़ी गुम न हो जाए। इसे आप लेते जाइए, मगर कल आइए जरूर।

अमरनाथ स्वाभिमान के मारे बगैर कुछ कहे घर की तरफ चल दिये, देवीजी ’लेते जाइए लेते

जाइए' करती गयीं।

अमरनाथ घर न जाकर एक खद्दर की दुकान पर गये और दो सूटों का खद्दर खरीदा। फिर अपने दर्जी के पास ले जाकर बोले — खलीफा, इसे रातों-रात तैयार कर दो, मुँहमाँगी सिलाई दूँगा।

दर्जी ने कहा — बाबू साहब, आजकल तो होली की भीड़ है। होली से पहले तैयार न हो सकेंगे।

अमरनाथ ने आग्रह करते हुए कहा — मैं मुँहमाँगी सिलाई दूँगा, मगर कल दोपहर तक मिल जाए। मुझे कल एक जगह जाना है। अगर दोपहर तक न मिले तो फिर मेरे किस काम के न होंगे।

दर्जी ने आधी सिलाई पेशगी ले ली और कल तैयार कर देने का वादा किया।

अमरनाथ यहाँ से आश्वस्त होकर मालती की तरफ चले। क़दम आगे बढ़ते थे लेकिन दिल पीछे रहा जाता था। काश, वह उनकी इतनी विनती स्वीकार कर ले कि कल दो घण्टे के लिए उनके वीरान घर को रोशन करे! लेकिन यकीनन वह उन्हें खाली हाथ देखकर मुँह फेर लेगी, सीधे मुँह बात नहीं करेगी, आने का जिक्र ही क्या। एक ही बेमुरौवत है। तो कल आकर देवीजी से अपनी सारी शर्मनाक कहानी बयान कर दूँ? उस भोले चेहरे की निस्स्वार्थ

उमंग उनके दिल में एक हलचल पैदा कर रही थी। उन आँखों में कितनी गंभीरता थी, कितनी सच्ची सहानुभूति, कितनी पवित्रता! उसके सीधे-सादे शब्दों में कर्म की ऐसी प्रेरणा थी, कि अमरनाथ का अपने इन्द्रिय-परायण जीवन पर शर्म आ रही थी। अब तक कांच के टुकड़े को हीरा समझकर सीने से लगाये हुए थे। आज उन्हें मालूम हुआ हीरा किसे कहते हैं। उसके सामने वह टुकड़ा तुच्छ मालूम हो रहा था। मालती की वह जादू-भरी चित्तवन, उसकी वह मीठी अदाएँ, उसकी शोखियाँ और नखरे सब जैसे मुलम्मा उड़ जाने के बाद अपनी असली सूरत में नजर आ रहे थे और अमरनाथ के दिल में नफरत पैदा कर रहे थे। वह मालती की तरफ जा रहे थे, उसके दर्शन के लिए नहीं, बल्कि उसके हाथों से अपना दिल छीन लेने के लिए। प्रेम का भिखारी आज अपने भीतर एक विचित्र अनिच्छा का अनुभव कर रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि अब तक वह क्यों इतना बेखबर था। वह तिलिस्म जो मालती ने वर्षों के नाज-नखरे, हाव-भाव से बाँधा था, आज किसी छू-मन्तर से तार-तार हो गया था।

मालती ने उन्हें खाली हाथ देखकर त्योरियाँ चढ़ाते हुए कहा — साड़ी लाये या नहीं?

अमरनाथ ने उदासीनता के ढंग से जवाब दिया — नहीं।

मालती ने आश्चर्य से उनकी तरफ देखा — नहीं! वह उनके मुँह से यह शब्द सुनने की आदी न थी।

यहाँ उसने सम्पूर्ण समर्पण पाया था। उसका इशारा अमरनाथ के लिए भाग्य-लिपि के समान था।

बोली — क्यों?

अमरनाथ — क्यों नहीं, नहीं लाये।

मालती — बाजार में मिली न होगी। तुम्हें क्यों मिलने लगी, और मेरे लिए।

अमरनाथ — नहीं साहब, मिली मगर लाया नहीं।

मालती — आख़िर कोई वजह? रुपये मुझसे ले जाते।

अमरनाथ — तुम खामखाह जलाती हो। तुम्हारे लिए जान देने को मैं हाज़िर रहा।

मालती — तो शायद तुम्हें रुपये जान से भी ज्यादा प्यारे हों?

अमरनाथ — तुम मुझे बैठने दोगी या नहीं? अमर मेरी सूरत से नफरत हो तो चला जाऊँ!

मालती — तुम्हें आज हो क्या गया है, तुम तो इतने तेज मिजाज के न थे?

अमरनाथ — तुम बातें ही ऐसी कर रही हो।

मालती — तो आखिर मेरी चीज़ क्यों नहीं लाये?

अमरनाथ ने उसकी तरफ़ बड़े वीर-भाव के साथ देखकर कहा — दुकान पर गया, जिल्लत उठायी

और साड़ी लेकर चला तो एक औरत ने छीन ली। मैंने कहा, मेरी बीवी की फ़रमाइश है तो बोली — मैं उन्हीं को दूँगी, कल तुम्हारे घर आऊँगी।

मालती ने शरारत-भरी नज़रों से देखते हुए कहा — तो यह कहिए आप दिल हथेली पर लिये फिर रहे थे। एक औरत को देखा और उसके कदमों पर चढ़ा दिया!

अमरनाथ — वह उन औरतों में नहीं, जो दिलों की घात में रहती हैं।

मालती — तो कोई देवी होगी?

अमरनाथ — मै उसे देवी ही समझता हूँ।

मालती — तो आप उस देवी की पूजा कीजिएगा?

अमरनाथ — मुझ जैसे आवारा नौजवान के लिए उस मन्दिर के दरवाजे बन्द हैं।

मालती — बहुत सुन्दर होगी?

अमरनाथ — न सुन्दर है, न रूपवाली, न ऐसी अदाएँ कुछ, न मधुर भाषिणी, न तन्वंगी। बिलकुल एक मामूली मासूम लड़की है। लेकिन जब मेरे हाथ से उसने साड़ी छीन ली तो मैं क्या कर सकता हूँ। मेरी ग़ैरत ने तो गवारा न किया कि उसके हाथ से साड़ी छीन लूँ। तुम्हीं इन्साफ करो, वह दिल में क्या कहती?

मालती — तो तुम्हें इसकी ज्यादा परवाह है कि वह अपने दिल में क्या कहेगी। मैं क्या कहूँगी,

इसकी जरा भी परवाह न थी! मेरे हाथ से कोई मर्द मेरी कोई चीज़ छीन ले तो देखूँ, चाहे वह दूसरा कामदेव ही क्यों न हो।

अमरनाथ — अब इसे चाहे मेरी कायरता समझो, चाहे हिम्मत की कमी, चाहे शराफ़त, मैं उसके हाथ से न छीन सका।

मालती — तो कल वह साड़ी लेकर आयेगी, क्यों?

अमरनाथ — जरूर आयेगी।

मालती — तो जाकर मुँह धो आओ। तुम इतने नादान हो, यह मुझे मालूम न था। साड़ी देकर चले आये, अब कल वह आपको देने आयेगी! कुछ भंग तो नहीं खा गये!

अमरनाथ — खैर, इसका इम्तहान कल ही हो जाएगा, अभी से क्यों बदगुमानी करती हो। तुम शाम को ज़रा देर के लिए मेरे घर तक चली चलना।

मालती — जिससे आप कहें कि यह मेरी बीवी है!

अमरनाथ — मुझे क्या खबर थी कि वह मेरे घर आने के लिए तैयार हो जाएगी, नहीं तो और कोई बहाना कर देता।

मालती — तो आपकी साड़ी आपको मुबारक हो, मैं नहीं जाती।

अमरनाथ — मैं तो रोज तुम्हारे घर आता हूँ, तुम एक दिन के लिए भी नहीं चल सकतीं?

मालती ने निष्ठुरता से कहा — अगर मौक़ा आ जाए तो तुम अपने को मेरा शौहर कहलाना पसन्द करोगे? दिल पर हाथ रखकर कहना।

अमरनाथ दिल में कट गये, बात बनाते हुए बोले — मालती, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। बुरा न मानना, मेरे व तुम्हारे बीच प्यार और मुहब्बत दिखलाने के बावजूद एक दूरी का पर्दा पड़ा था। हम दोनों एक-दूसरे की हालत को समझते थे और इस पर्दे का हटाने की कोशिश न करते थे। यह पर्दा हमारे सम्बन्धों की अनिवार्य शर्त था। हमारे बीच एक व्यापारिक समझौता-सा हो

गया। हम दोनों उसकी गहराई में जाते हुए डरते थे। नहीं,बल्कि मैं डरता था और तुम जान-बूझकर न जाना चाहती थी। अगर मुझे विश्वास हो जाता कि तुम्हें जीवन-सहचरी बनाकर मैं वह सब कुछ पा जाऊँगा जिसका मैं अपने को अधिकारी समझता हूँ तो मैं अब तक कभी का तुमसे इसकी याचना कर चुका होता! लेकिन तुमने कभी मेरे दिल में यह विश्वास पैदा करने की परवाह न की। मेरे बारे में तुम्हें यह शक है, मैं नहीं कह सकता, तुम्हें यह शक करने का मैं ने कोई मौक़ा नहीं दिया और मैं कह सकता हूँ कि मैं उससे कहीं बेहतर शौहर बन सकता हूँ जितनी तुम बीवी बन सकती हो। मेरे लिए सिर्फ़ एतवार की जरूरत है और तुम्हारे लिए ज्यादा वज़नी और ज्यादा भौतिक चीज़ों की। मेरी स्थायी आमदनी पाँच सौ से ज्यादा नहीं, तुमको इतने में सन्तोष न होगा। मेरे लिए सिर्फ इस इतमीनान की जरूरत है कि तुम मेरी और सिर्फ मेरी हो। बोलो मंजूर है।

मालती को अमरनाथ पर रहम आ गया। उसकी बातों में जो सच्चाई भरी हुई थी, उससे वह इनकार न कर सकी। उसे यह भी यकीन हो गया कि अमरनाथ की वफा के पैर डगमगायेंगे नहीं। उसे अपने ऊपर इतना भरोसा था कि वह उसे रस्सी से मजबूत जकड़ सकती है, लेकिन खुद जकड़े जाने पर वह अपने को तैयार न कर सकी। उसकी जिन्दगी मुहब्बत की बाजीगरी

में, प्रेम के प्रदर्शन में गुजरी थी। वह कभी इस, कभी उस शाख में चहकती फिरती थी, बैकेद, आजाद, बेबन्द। क्या वह चिड़िया पिंजरे में बन्द सकती है जिसकी जबान तरह-तरह के मजों की आदी हो गयी हो? क्या वह सूखी रोटी से तृप्त हो सकती है? इस अनुभूति ने उसे पिघला दिया। बोली — आज तुम बड़ा ज्ञान बघार रहे हो?

अमरनाथ — मैंने तो केवल यथार्थ कहा है।

मालती — अच्छा मैं कल चलूँगी, मगर एक घण्टे से ज्यादा वहाँ न रहूँगी।

अमरनाथ का दिल शुक्रिये से भर उठा। बोला — मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ मालती। अब मेरी आबरू बच जायेगी। नहीं तो मेरे लिए घर से निकलना मुश्किल हो जाता है। अब देखना यह है कि तुम अपना पार्ट कितनी खूबसूरती से अदा करती हो।

मालती — उसकी तरफ़ से तुम इतमीनान रखो। ब्याह नहीं किया मगर बरातें देखी हैं। मगर मैं डरती हूँ कहीं तुम मुझसे दगा न कर रहे हो। मर्दों का क्या एतबार।

अमरनाथ ने निश्चल भाव से कहा — नहीं मालती, तुम्हारा सन्देह निराधार है। अगर यह जंजीर पैरों में डालने की इच्छा होती तो

कभी का डाल चुका होता। फिर मुझ-से वासना के बन्दों का वहाँ गुज़र हीं कहाँ।

3

दूसरे दिन अमरनाथ दस बजे ही दर्जी की दुकान पर जा पहुँचे और सिर पर सवार होकर कपड़े तैयार कराये। फिर घर आकर नये कपड़े पहने और मालती को बुलाने चले। वहाँ देर हो गयी। उसने ऐसा तनाव-सिंगार किया कि जैसे आज बहुत बड़ा मोर्चा जितना है।

अमरनाथ ने कहा — वह ऐसी सुन्दरी नहीं है जो तुम इतनी तैयारियाँ कर रही हो।

मालती ने बालों में कंघी करते हुए कहा — तुम इन बातों को नहीं समझ सकते, चुपचाप बैठे रहो।

अमरनाथ — लेकिन देर जो हो रही है।

मालती — कोई बात नहीं।

भय की उस सहज आशंका ने, जो स्त्रियों की विशेषता है, मालती को और भी अधिक सतर्क कर दिया था। अब तक उसने कभी

अमरनाथ की ओर विशेष रूप से कोई कृपा न की थी। वह उससे काफी उदासीनता का बर्ताव करती थी। लेकिन कल अमरनाथ की भंगिमा से उसे एक संकट की सूचना मिल चुकी थी और वह उस संकट का अपनी पूरी शक्ति से मुकाबला करना चाहती थी। शत्रु को तुच्छ और अपदार्थ समझना स्त्रियों क लिए कठिन है। आज अमरनाथ को अपने हाथ से निकलते वह अपनी पकड़ को मजबूत कर रही थी। अगर इस तरह की उसकी चीजें एक-एक करके निकल गयीं तो फिर वह अपनी प्रतिष्ठा कब तक बनाये रख सकेगी? जिस चीज पर उसका क़ब्जा है उसकी तरफ़ कोई आँख ही क्यों उठाये। राजा भी तो एक-एक अंगुल जमीन के पीछे जान देता है। वह इस नये शिकारी को हमेशा के लिए अपने रास्ते से हटा देना चाहती थी। उसके जादू को तोड़ देना चाहती थी। शाम को वह परी जैसी, अपनी नौकरानी और नौकर को साथ लेकर अमरनाथ के घर चली।

अमरनाथ ने सुबह दस बजे तक मर्दाने घर को जनानेपन का रंग देने में खर्चा किया था। ऐसी तैयारियाँ कर रखी थीं जैसे कोई अफ़सर मुआयना करने वाला हो। मालती ने घर में पैर रखा तो उसकी सफ़ाई और सजावट देखकर बहुत खुश हुई। जनाने हिस्से में कई कुर्सियाँ रखी थीं। बोली — अब लाओ अपनी देवीजी को मगर जल्द आना। वर्ना मैं चली जाऊँगी।

अमरनाथ लपके हुए विलायती दुकान पर गये। आज भी धरना था। तमाशाइयों की वहीं भीड़। वहाँ देवी जी नहीं। पीछे की तरफ़ गये तो देवी जी एक लड़की के साथ उसी भेस में खड़ी थीं।

अमरनाथ ने कहा — माफ़ कीजिएगा, मुझे देर हो गयी। मैं आपके वादे की याद दिलाने आया हूँ।

देवीजी ने कहा — मैं तो आपका इन्तजार कर रही थी। चलो सुमित्रा, जरा आपके घर हो आयें। कितनी देर है?

अमरनाथ — बहुत पास है। एक ताँगा कर लूँगा।

पन्द्रह मिनट में अमरनाथ दोनों को लिये घर पहुँचे। मालती ने देवीजी को देखा और देवीजी ने मालती को। एक किसी रईस का महल था, आलीशान; दूसरी किसी फकीर की कुटिया थी, छोटी-सी तुच्छ। रईस के महल में आडम्बर और प्रदर्शन था, फकीर की कुटिया में सादगी और सफ़ाई।

मालती ने देखा, भोली लड़की है जिसे किसी तरह सुन्दर नहीं कह सकते। पर उसके भोलेपन और सादगी में जो आकर्षण था, उससे वह प्रभावित हुए बिना न सकी। देवीजी ने भी देखा, एक बनी-सँवरी बेधड़क और घमण्डी औरत है जो किसी न किसी वजह से

उस घर में अजनबी-सी मालूम हो रही है जैसे कोई जंगली जानवर पिंजरे में आ गया हो।

अमरनाथ सिर झुकाये मुजरिमों की तरह खड़े थे और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरह आज पर्दा जाये।

देवी ने आते ही कहा — बहन, आप भी सिर से पाँव तक विदेशी कपड़े पहने हुई हैं?

मालती ने अमरनाथ की तरफ़ देखकर कहा — मैं विदेशी और देशी के फेर में नहीं पड़ती। जो यह लाकर देते हैं वह पहनती हूँ। लाने वाले है ये, मैं थोड़े ही बाजार जाती हूँ।

देवी ने शिकायत-भरी आँखों से अमरनाथ की तरफ देखकर कहा — आप तो कहते थे यह इनकी फरमाइश है, मगर आप ही का क़सूर निकल आया।

मालती — मेरे सामने इनसे कुछ मत कहो। तुम बाजार में भी दूसरे मर्दों से बातें कर सकती हो, जब वह बाहर चले जायं तो जितना चाहे कह — सुन लेना। मैं अपने कानों से नहीं सुनना चाहती।

देवीजी — मैं कुछ कहती नहीं और बहनजी, मैं कह ही क्या कर सकती हूँ, कोई जबर्दस्ती तो है नहीं, बस विनती कर सकती हूँ।

मालती — इसका मतलब यह है कि इन्हें अपने देश की भलाई का जरा भी ख्याल नहीं, उसका ठेका तुम्हीं ने ले लिया है। पढ़े-लिखे आदमी हैं, दस आदमी इज़्ज़त करते हैं, अपना नफा-नुकसान समझ सकते हैं। तुम्हारी क्या हिम्मत कि उन्हें उपदेश देने बैठो, या सबसे ज्यादा अक़्लमन्द तुम्हीं हो?

देवीजी — आप मेरा मतलब गलत समझ रही हैं बहन।

मालती — हाँ, गलत तो समझूँगी ही, इतनी अक़्ल कहाँ से लाऊँ कि आपकी बातों का मतलब समझूँ! खद्दर की साड़ी पहल ली, झोली लटका ली, एक बिल्ला लगा लिया, बस अब अख्तियार है जहां चाहें आयें-जायें, जिससे चाहें हँसे — बोलें, घर में कोई पूछता नहीं तो जेलखाने का भी क्या डर! मैं इसे हुड़दंगापन समझती हूँ, जो शरीफों की बहू-बेटियों को शोभा नहीं देता।

अमरनाथ दिल में कटे जा रहे थे। छिपने के लिए बिल ढूंढ रहे थे। देवी की पेशानी पर जरा बल न था लेकिन आँखें डबडबा रही थीं।

अमरनाथ ने मालती से जरा तेज स्वर में कहा — क्यों खामखाह किसी का दिल दुखाती हो? यह देवियाँ अपना ऐश-आराम छोड़कर यह काम कर रही हैं, क्या तुम्हें इसकी बिलकुल खबर नहीं?

मालती — रहने दो, बहुत तारीफ़ न करो। जमाने का रंग ही बदला जा रहा है, मैं क्या करूँगी और तुम क्या करोगे। तुम मर्दों ने औरतों को घर में इतनी बुरी तरह कैद किया कि आज वे

रस्म-रिवाज, शर्म-हया को छोड़कर निकल आयी हैं और कुछ दिनों में तुम लोगों की हुकूमत का खातमा हुआ जाता है। विलायती और विदेशी तो दिखलाने के लिए हैं, असल में यह आजादी की ख्वाहिश है जो तुम्हें हासिल है। तुम अगर दो-चार शादियाँ कर सकते हो तो औरत क्यों न करें! सच्ची बात यह है, अगर आँखें है तो अब खोलकर देखो। मुझे वह आजादी न चाहिए। यहाँ तो लाज ढोते हैं और मैं शर्म-हया को अपना सिंगार समझती हूँ।

देवीजी ने अमरनाथ की तरफ फ़रियाद की आँखों से देखकर कहा — बहन ने औरतों को जलील करने की क़सम खा ली है। मैं बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर आयी थी, मगर शायद यहाँ से नाकाम जाना पड़ेगा।

अमरनाथ ने वह साड़ी उसको देते हुए कहा — नहीं, बिलकुल नाकाम तो आप नहीं जायेंगी, हाँ, जैसी कामयाबी की आपको उम्मीद थी वह न होगी।

मालती ने डपटते हुए कहा — वह मेरी साड़ी है, तुम उसे नहीं दे सकते।

अमरनाथ ने शर्मिन्दा होते हुए कहा — अच्छी बात है, न दूँगा। देवीजी, ऐसी हालत में तो शायद आप मुझे माफ करेंगी।

देवीजी चली गयी तो अमरनाथ ने त्योरियाँ बदलकर कहा — यह तुमने आज मेरे मुँह में कालिख लगा दी। तुम इतनी बदतमीज और बदजबान हो, मुझे मालूम न था।

मालती ने रोषपूर्ण स्वर में कहा — तो अपनी साड़ी उसे दे देती? मैंने ऐसी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली। अब तो बदतमीज भी हूँ, बदज़बान भी, उस दिन इन बुराइयों में से एक भी न थी जब मेरी जूतियाँ सीधी करते थे? इस छोकरी ने मोहिनी डाल दी। जैसी रूह वैसे फरिश्ते। मुबारक हो।

यह कहती हुई मालती बाहर निकली। उसने समझा था जबान चलाकर और ताक़त से वह उस लड़की को उखाड़ फेंकेगी लेकिन जब मालूम हुआ कि अमरनाथ आसानी से क़ाबू में आने वाला नहीं तो उसने फटकार बताई। इन दामों अगर अमरनाथ मिल सकता था तो बुरा न था। उससे ज्यादा कीमत वह उसके लिए दे न सकती थी।

अमरनाथ उसके साथ दरवाजे तक आये जब वह ताँगे पर बैठी तो बिनती करते हुए बोले — यह साड़ी दे दो न मालती, मैं तुम्हें कल इससे अच्छी साड़ी ला दूँगा।

मगर मालती ने रूखेपन से कहा — यह साड़ी तो अब लाख रुपये पर भी नहीं दे सकती।

अमरनाथ ने त्यौरियाँ बदलकर जवाब दिया — अच्छी बात है, ले जाओ मगर समझ लो यह मेरा आखिरी तोहफ़ा है।

मालती ने होंठ चढ़ाकर कहा — इसकी परवाह नहीं। तुम्हारे बगैर मैं मर नहीं जाऊँगी, इसका तुम्हें यकीन दिलाती हूँ!

[‘आखिरी तोहफ़ा’ से]

आखिरी मंजिल

आह? आज तीन साल गुजर गए, यही मकान है, यही बाग है, यही गंगा का किनारा, यही संगमरमर का हौज। यही मैं हूँ और यही दरो-दीवार। मगर इन चीजों से दिल पर कोई असर नहीं होता। वह नशा जो गंगा की सुहानी और हवा के दिलकश झोंकों से दिल पर छा जाता था। उस नशे के लिए अब जी तरस-जरस के जाता है। अब वह दिल नही रहा। वह युवती जो जिंदगी का सहारा थी अब इस दुनिया में नहीं है।

मोहिनी ने बड़ा आकर्षक रूप पाया था। उसके सौंदर्य में एक आश्चर्यजनक बात थी। उसे प्यार करना मुश्किल था, वह पूजने के योग्य थी। उसके चेहरे पर हमेशा एक बड़ी लुभावनी आत्मिकता की दीप्ति रहती थी। उसकी आँखें जिनमें लाज और गंभीरता और पवित्रता का नशा था, प्रेम का स्रोत थी। उसकी एक-एक चितवन, एक-एक क्रिया; एक-एक बात उसके हृदय की पवित्रता और सच्चाई का असर दिल पर पैदा करती थी। जब वह अपनी शर्मीली आँखों से मेरी ओर ताकती तो उसका आकर्षण और उसकी गर्मी मेरे दिल में एक ज्वारभाटा सा पैदा कर देती

थी। उसकी आँखों से आत्मिक भावों की किरनें निकलती थीं मगर उसके होठों प्रेम की बानी से अपरिचित थे। उसने कभी इशारे से भी उस अथाह प्रेम को व्यक्त नहीं किया जिसकी लहरों में वह खुद तिनके की तरह बही जाती थी। उसके प्रेम की कोई सीमा न थी। वह प्रेम जिसका लक्ष्य मिलन है, प्रेम नहीं वासना है। मोहिनी का प्रेम वह प्रेम था जो मिलने में भी वियोग के मजे लेता है। मुझे खूब याद है एक बार जब उसी हौज के किनारे चाँदनी रात में मेरी प्रेम-भरी बातों से विभोर होकर उसने कहा था — आह! वह आवाज अभी मेरे हृदय पर अंकित है — मिलन प्रेम का आदि है अंत नहीं।' प्रेम की समस्या पर इससे ज्यादा शानदार, इससे ज्यादा ऊँचा ख्याल कभी मेरी नजर में नहीं गुजरा। वह प्रेम जो चितवनों से पैदा होता है और वियोग में भी हरा-भरा रहता है, वह वासना के एक झोंके को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। संभव है कि यह मेरी आत्मस्तुति हो मगर वह प्रेम, जो मेरी कमजोरियों के बावजूद मोहिनी को मुझसे था उसका एक कतरा भी मुझे बेसुध करने के लिए काफी था। मेरा हृदय इतना विशाल ही न था, मुझे आश्चर्य होता था कि मुझमें वह कौन-सा गुण था जिसने मोहिनी को मेरे प्रति प्रेम से विह्वल कर दिया था। सौन्दर्य, आचरण की पवित्रता, मर्दानगी का जौहर यही वह गुण हैं जिन पर मुहब्बत निछावर होती है। मगर मैं इनमें से

एक पर भी गर्व नहीं कर सकता था। शायद मेरी कमजोरियाँ ही उस प्रेम की तड़प का कारण थीं।

मोहिनी में वह अदायें न थीं जिन पर रंगीली तबीयतें फिदा हो जाया करती हैं। तिरछी चितवन, रूप-गर्व की मस्ती भरी हुई आँखें, दिल को मोह लेने वाली मुस्कराहट, चंचल वाणी, उनमें से कोई चीज यहाँ न थी! मगर जिस तरह चाँद की मद्धिम सुहानी रोशनी में कभी-कभी फुहारें पड़ने लगती हैं, उसी तरह निश्छल प्रेम में उसके चेहरे पर एक मुस्कराहट कौंध जाती और आँखें नम हो जातीं। यह अदा न थी, सच्चे भावों की तस्वीर थी जो मेरे हृदय में पवित्र प्रेम की खलबली पैदा कर देती थी।

2

शाम का वक्त था, दिन और रात गले मिल रहे थे। आसमान पर मतवाली घटायें छाई हुई थीं और मैं मोहिनी के साथ उसी हौज के किनारे बैठा हुआ था। ठण्डी-ठण्डी बयार और मस्त घटायें हृदय के किसी कोने में सोते हुए प्रेम के भाव को जगा दिया करती हैं। वह मतवालापन जो उस वक्त हमारे दिलों पर छाया हुआ था उस पर मैं हजारों होशमंदियों को कुर्बान कर सकता

हूँ। ऐसा मालूम होता था कि उस मस्ती के आलम में हमारे दिल बेताब होकर आँखों से टपक पड़ेंगे। आज मोहिनी की जबान भी संयम की बेड़ियों से मुक्त हो गई थी और उसकी प्रेम में डूबी हुई बातों से मेरी आत्मा को जीवन मिल रहा था।

एकाएक मोहिनी ने चौंककर गंगा की तरफ देखा। हमारे दिलों की तरह उस वक्त गंगा भी उमड़ी हुई थी।

पानी की उस उद्विग्न उठती-गिरती सतह पर एक दिया बहता हुआ चला जाता था और और उसका चमकता हुआ अक्स थिरकता और नाचता एक पुच्छल तारे की तरह पानी को आलोकित कर रहा था। आह! उस नन्हीं-सी जान की क्या बिसात थी! कागज के चंद पुर्जे, बांस की चंद तीलियाँ, मिट्टी का एक दिया कि जैसे किसी की अतृप्त लालसाओं की समाधि थी जिस पर किसी दुख बँटानेवाले ने तरस खाकर एक दिया जला दिया था मगर वह नन्हीं-सी जान जिसके अस्तित्व का कोई ठिकाना न था, उस अथाह सागर में उछलती हुई लहरों से टकराती, भँवरों से हिलकोरें खाती, शोर करती हुई लहरों को रौंदती चली जाती थी। शायद जल देवियों ने उसकी निर्बलता पर तरस खाकर उसे अपने आँचलों में छुपा लिया था।

जब तक वह दिया झिलमिलाता और टिमटिमाता, हमदर्द लहरों से झकोरे लेता दिखाई दिया। मोहिनी टकटकी लगाये खोयी-सी उसकी तरफ ताकती रही। जब वह आँख से ओझल हो गया तो वह बेचैनी से उठ खड़ी हुई और बोली — मैं किनारे पर जाकर उस दिये को देखूँगी।

जिस तरह हलवाई की मनभावन पुकार सुनकर बच्चा घर से बाहर निकल पड़ता है और चाव-भरी आँखों से देखता और अधीर आवाजों से पुकारता उस नेमत के थाल की तरफ दौड़ता है, उसी जोश और चाव के साथ मोहिनी नदी के किनारे चली।

बाग से नदी तक सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। हम दोनों तेजी के साथ नीचे उतरे और किनारे पहुँचते ही मोहिनी ने खुशी के मारे उछलकर जोर से कहा — अभी है! अभी है! देखो वह निकल गया!

वह बच्चों का-सा उत्साह और उद्विग्न अधीरता जो मोहिनी के चेहरे पर उस समय थी, मुझे कभी न भूलेगी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ, उस दिये से ऐसा हार्दिक संबंध, ऐसी विह्वलता क्यों? मुझ जैसा कवित्वशून्य व्यक्ति उस पहेली को जरा भी न बूझ सका।

मेरे हृदय में आशंकाएँ पैदा हुईं। अंधेरी रात है, घटायें उमड़ी हुई, नदी बाढ़ पर, हवा तेज, यहाँ इस वक्त ठहरना ठीक नहीं। मगर मोहिनी! वह चाव-भरे भोलेपन की तस्वीर, उसी दिये की तरफ आँखें लगाये चुपचाप खड़ी थी और वह उदास दिया ज्यों हिलता मचलता चला जाता था, न जाने कहाँ किस देश!

मगर थोड़ी देर के बाद वह दिया आँखों से ओझल हो गया। मोहिनी ने निराश स्वर में पूछा — गया! बुझ गया होगा?

और इसके पहले कि मैं जवाब दूँ वह उस डोंगी के पास चली गई, जिस पर बैठकर हम कभी-कभी नदी की सैरें किया करते थे, और प्यार से मेरे गले लिपटकर बोली — मैं उस दिये को देखने जाऊँगी कि वह कहाँ जा रहा है, किस देश को।

यह कहते-कहते मोहिनी ने नाव की रस्सी खोल ली। जिस तरह पेड़ों की डालियाँ तूफान के झोंकों से झंकोले खाती हैं उसी तरह यह डोंगी डाँवाडोल हो रही थी। नदी का वह डरावना विस्तार, लहरों की वह भयानक छलाँगें, पानी की वह गरजती हुई आवाज, इस खौफनाक अंधेरे में इस डोंगी का बेड़ा क्योंकर पार होगा! मेरा दिल बैठ गया। क्या उस अभागे की तलाश में यह किश्ती भी डूबेगी! मगर मोहिनी का दिल उस वक्त उसके बस में न था। उसी दिये की तरह उसका हृदय भी भावनाओं की विराट, लहरों

भरी, गरजती हुई नदी में बहा जा रहा था। मतवाली घटायें झुकती चली आती थीं कि जैसे नदी के गले मिलेंगी और वह काली नदी यों उठती थी कि जैसे बादलों को छू लेंगी। डर के मारे आँखें मुँदी जाती थीं। हम तेजी के साथ उछलते, कगारों के गिरने की आवाजें सुनते, काले-काले पेड़ों का झूमना देखते चले जाते थे। आबादी पीछे छूट गई, देवताओं को बस्ती से भी आगे निकल गये। एकाएक मोहिनी चौंककर उठ खड़ी हुई और बोली — अभी है! अभी है! देखों वह जा रहा है।

मैंने आँख उठाकर देखा, वह दिया ज्यों का त्यों हिलता-मचलता चला जाता था।

3

उस दिये को देखते हम बहुत दूर निकल गए। मोहिनी ने यह राग अलापना शुरू किया —

मैं साजन से मिलन चली

कैसा तड़पा देने वाला गीत था और कैसी दर्दभरी रसीली आवाज। प्रेम और आँसुओं में डूबी हुई। मोहक गीत में कल्पनाओं को जगाने की बड़ी शक्ति होती है। वह मनुष्य को

भौतिक संसार से उठाकर कल्पनालोक में पहुँचा देता है। मेरे मन की आँखों में उस वक्त नदी की पुरशोर लहरें, नदी किनारे की झूमती हुई डालियाँ, सनसनाती हुई हवा सबने जैसे रूप धर लिया था और सब की सब तेजी से कदम उठाये चली जाती थीं, अपने साजन से मिलने के लिए। उत्कंठा और प्रेम से झूमती हुई ऐ युवती की धुँधली सपने-जैसी तस्वीर हवा में, लहरों में और पेड़ों के झुरमुट में चली जाती दिखाई देती और कहती थी — साजन से मिलने के लिए! इस गीत ने सारे दृश्य पर उत्कंठा का जादू फूंक दिया।

मैं साजन से मिलन चली
साजन बसत कौन सी नगरी मैं बौरी ना जानूँ
ना मोहे आस मिलन की उससे ऐसी प्रीत भली
मैं साजन से मिलन चली

मोहिनी खामोश हुई तो चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था और उस सन्नाटे में एक बहुत मद्धिम, रसीला स्वप्निल-स्वर क्षितिज के उस पार से या नदी के नीचे से या हवा के झोंकों के साथ आता हुआ मन के कानों को सुनाई देता था।

मैं साजन से मिलन चली

मैं इस गीत से इतना प्रभावित हुआ कि जरा देर के लिए मुझे खयाल न रहा कि कहाँ हूँ और कहाँ जा रहा हूँ। दिल और

दिमाग में वही राग गूँज रहा था। अचानक मोहिनी ने कहा — उस दिये को देखो। मैंने दिये की तरफ देखा। उसकी रोशनी मंद हो गई थी और आयु की पूंजी खत्म हो चली थी। आखिर वह एक बार जरा भभका और बुझ गया। जिस तरह पानी की बूँद नदी में गिरकर गायब हो जाती है, उसी तरह अंधेरे के फैलाव में उस दिये की हस्ती गायब हो गई! मोहिनी ने धीमे से कहा, अब नहीं दिखाई देता! बुझ गया! यह कहकर उसने एक ठण्डी सांस ली। दर्द उमड़ आया। आँसुओं से गला फंस गया, जबान से सिर्फ इतना निकला, क्या यही उसकी आखिरी मंजिल थी? और आँखों से आँसू गिरने लगे।

मेरी आँखों के सामने से पर्दा-सा हट गया। मोहिनी की बेचैनी और उत्कंठा, अधीरता और उदासी का रहस्य समझ में आ गया और बरबस मेरी आँखों से भी आँसू की चंद बूँदें टपक पड़ीं। क्या उस शोर-भरे, खतरनाक, तूफानी सफर की यही आखिरी मंजिल थी?

दूसरे दिन मोहिनी उठी तो उसका चेहरा पीला था। उसे रात भर नींद नहीं आई थी। वह कवि स्वभाव की स्त्री थी। रात की इस घटना ने उसके दर्द-भरे भावुक हृदय पर बहुत असर पैदा किया था। हँसी उसके होंठों पर यूँ ही बहुत कम आती थी, हाँ चेहरा खिला रहता था आज से वह हँसमुखपन भी बिदा हो गया, हरदम

चेहरे पर एक उदासी-सी छायी रहती और बातें ऐसी जिनसे हृदय छलनी होता था और रोना आता था। मैं उसके दिल को इन ख्यालों से दूर रखने के लिए कई बार हँसाने वाले किस्से लाया मगर उसने उन्हें खोलकर भी न देखा। हाँ, जब मैं घर पर न होता तो वह कवि की रचनाएँ देखा करती मगर इसलिए नहीं कि उनके पढ़ने से कोई आनन्द मिलता था बल्कि इसलिए कि उसे रोने के लिए खयाल मिल जाता था और वह कविताएँ जो उस जमाने में उसने लिखीं दिल को पिघला देने वाले दर्द-भरे गीत हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो उन्हें पढ़कर अपने आँसू रोक लेगा। वह कभी-कभी अपनी कविताएँ मुझे सुनाती और जब मैं दर्द में डूबकर उनकी प्रशंसा करता तो मुझे उसकी आँखों में आत्मा के उल्लास का नशा दिखाई पड़ता। हँसी-दिल्लगी और रंगीनी मुमकिन है कुछ लोगों के दिलों पर असर पैदा कर सके मगर वह कौन-सा दिल है जो दर्द के भावों से पिघल न जाएगा।

एक रोज हम दोनों इसी बाग की सैर कर रहे थे। शाम का वक्त था और चैत का महीना। मोहिनी की तबियत आज खुश थी। बहुत दिनों के बाद आज उसके होंठों पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी थी। जब शाम हो गई और पूरनमासी का चाँद गंगा की गोद से निकलकर ऊपर उठा तो हम इसी हौज के किनारे बैठ गए। यह मौलसिरियों की कतार ओर यह हौज

मोहिनी की यादगार हैं। चाँदनी में बिसात आयी और चौपड़ होने लगी। आज तबियत की ताजगी ने उसके रूप को चमका दिया था और उसकी मोहक चपलतायें मुझे मतवाला किये देती थीं। मैं कई बाजियाँ खेला और हर बार हारा। हारने में जो मजा था वह जीतने में कहाँ। हल्की-सी मस्ती में जो मजा है वह छकने और मतवाला होने में नहीं।

चाँदनी खूब छिटकी हुई थी। एकाएक मोहिनी ने गंगा की तरफ देखा और मुझसे बोली, वह उस पार कैसी रोशनी नजर आ रही है? मैंने भी निगाह दौड़ाई, चिता की आग जल रही थी लेकिन मैंने टालकर कहा — साँझी खाना पका रहे हैं।

मोहिनी को विश्वास नहीं हुआ। उसके चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट दिखाई दी और आँखें नम हो गईं। ऐसे दुख देने वाले दृश्य उसके भावुक और दर्दमंद दिल पर वही असर करते थे जो लू की लपट फूलों के साथ करती है।

थोड़ी देर तक वह मौन, निश्चला बैठी रही फिर शोकभरे स्वर में बोली — 'अपनी आखिरी मंजिल पर पहुँच गया!'

[जमाना, अगस्त — सितम्बर 1911]

आल्हा

आल्हा का नाम किसने नहीं सुना। पुराने जमाने के चन्देल राजपूतों में वीरता और जान पर खेलकर स्वामी की सेवा करने के लिए किसी राजा महाराजा को भी यह अमर कीर्ति नहीं मिली। राजपूतों के नैतिक नियमों में केवल वीरता ही नहीं थी बल्कि अपने स्वामी और अपने राजा के लिए जान देना भी उसका एक अंग था। आल्हा और ऊदल की जिन्दगी इसकी सबसे अच्छी मिसाल है। सच्चा राजपूत क्या होता था और उसे क्या होना चाहिये इसे जिस खूबसूरती से इन दोनों भाइयों ने दिखा दिया है, उसकी मिसाल हिन्दोस्तान के किसी दूसरे हिस्से में मुश्किल से मिल सकेगी। आल्हा और ऊदल के मार्के और उसको कारनामे एक चन्देली कवि ने शायद उन्हीं के जमाने में गाये, और उसको इस सूबे में जो लोकप्रियता प्राप्त है वह शायद रामायण को भी न हो। यह कविता आल्हा ही के नाम से प्रसिद्ध है और आठ-नौ शताब्दियाँ गुजर जाने के बावजूद उसकी दिलचस्पी और सर्वप्रियता में अन्तर नहीं आया। आल्हा गाने का इस प्रदेश मे बड़ा रिवाज है। देहात में लोग हजारों की संख्या में

आल्हा सुनने के लिए जमा होते हैं। शहरों में भी कभी-कभी यह मण्डलियाँ दिखाई दे जाती हैं। बड़े लोगों की अपेक्षा सर्वसाधारण में यह किस्सा अधिक लोकप्रिय है। किसी मजलिस में जाइए हजारों आदमी जमीन के फर्श पर बैठे हुए हैं, सारी महफिल जैसे बेसुध हो रही है और आल्हा गाने वाला किसी मोढ़े पर बैठा हुआ अपनी अलाप सुना रहा है। उसकी आवाज आवश्यकतानुसार कभी ऊँची हो जाती है और कभी मद्धिम, मगर जब वह किसी लड़ाई और उसकी तैयारियों का जिक्र करने लगता है तो शब्दों का प्रवाह, उसके हाथों और भावों के इशारे, ढोल की मर्दाना लय उन पर वीरतापूर्ण शब्दों का चुस्ती से बैठना, जो जड़ाई की कविताओं ही की अपनी एक विशेषता है, यह सब चीजें मिलकर सुनने वालों के दिलों में मर्दाना जोश की एक उमंग सी पैदा कर देती हैं। बयान करने का तर्ज ऐसा सादा और दिलचस्प और जबान ऐसी आमफहम है कि उसके समझने में जरा भी दिक्कत नहीं होती। वर्णन और भावों की सादगी, कला के सौंदर्य का प्राण है।

राजा परमालदेव चन्देल खानदान का आखिरी राजा था। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में वह खानदान समाप्त हो गया। महोबा जो एक मामूली कस्बा है उस जमाने में चन्देलों की राजधानी था। महोबा की सल्तनत दिल्ली और कन्नौज से आँखें मिलाती थी।

आल्हा और ऊदल इसी राजा परमालदेव के दरबार के सम्मानित सदस्य थे। यह दोनों भाई अभी बच्चे ही थे कि उनका बाप जसराज एक लड़ाई में मारा गया। राजा को अनाथों पर तरस आया, उन्हें राजमहल में ले आये और मोहब्बत के साथ अपनी रानी मलिनहा के सुपुर्द कर दिया। रानी ने उन दोनों भाइयों की परवरिश और लालन-पालन अपने लड़के की तरह किया। जवान होकर यही दोनों भाई बहादुरी में सारी दुनिया में मशहूर हुए। इन्हीं दिलावरों के कारनामों ने महोबे का नाम रोशन कर दिया है।

बड़े लडइया महोबेवाला
जिनके बल को वार न पार

आल्हा और ऊदल राजा परमालदेव पर जान कुर्बान करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। रानी मलिनहा ने उन्हें पाला, उनकी शादियाँ कीं, उन्हें गोद में खिलाया। नमक के हक के साथ-साथ इन एहसानों और सम्बन्धों ने दोनों भाइयों को चन्देल राजा का जाँनिसार रखवाला और राजा परमालदेव का वफादार सेवक बना दिया था। उनकी वीरता के कारण आस-पास के सैकडों घमंडी राजा चन्देलों के अधीन हो गये। महोबा राज्य की सीमाएँ नदी की बाढ़ की तरह फैलने लगीं और चन्देलों की शक्ति दूज के चाँद से बढ़कर पूरनमासी का चाँद हो गई। यह दोनों वीर कभी

चैन से न बैठते थे। रणक्षेत्र में अपने हाथ का जौहर दिखाने की उन्हें धुन थी। सुख-सेज पर उन्हें नींद न आती थी। और वह जमाना भी ऐसा ही बेचैनियों से भरा हुआ था। उस जमाने में चैन से बैठना दुनिया के परदे से मिट जाना था। बात-बात पर तलवारें चलतीं और खून की नदियाँ बहती थीं। यहाँ तक कि शादियाँ भी खूनी लड़ाइयों जैसी हो गई थीं। लड़की पैदा हुई और शामत आ गई। हजारों सिपाहियों, सरदारों और सम्बन्धियों की जानें दहेज में देनी पड़ती थीं। आल्हा और ऊदल उस पुरशोर जमाने की सच्ची तस्वीरें हैं और गोकि ऐसी हालतों ओर जमाने के साथ जो नैतिक दुर्बलताएँ और विषमताएँ पाई जाती हैं, उनके असर से वह भी बचे हुए नहीं हैं, मगर उनकी दुर्बलताएँ उनका कसूर नहीं बल्कि उनके जमाने का कसूर हैं।

2

आल्हा का मामा माहिल एक काले दिल का, मन में द्वेष पालने वाला आदमी था। इन दोनों भाइयों का प्रताप और ऐश्वर्य उसके हृदय में काँटे की तरह खटका करता था। उसकी जिन्दगी की सबसे बड़ी आरजू यह थी कि उनके बड़प्पन को किसी तरह

खाक में मिला दे। इसी नेक काम के लिए उसने अपनी जिन्दगी न्यौछावर कर दी थी। सैंकड़ों वार किये, सैंकड़ों बार आग लगायी, यहाँ तक कि आखिरकार उसकी नशा पैदा करनेवाली मंत्रणाओं ने राजा परमाल को मतवाला कर दिया। लोहा भी पानी से कट जाता है।

एक रोज राजा परमाल दरबार में अकेले बैठे हुए थे कि माहिल आया। राजा ने उसे उदास देखकर पूछा, भइया, तुम्हारा चेहरा कुछ उतरा हुआ है। माहिल की आँखों में आँसू आ गये। मक्कार आदमी को अपनी भावनाओं पर जो अधिकार होता है वह किसी बड़े योगी के लिए भी कठिन है। उसका दिल रोता है मगर होंठ हँसते हैं, दिल खुशियों के मजे लेता है मगर आँखें रोती हैं, दिल डाह की आग से जलता है मगर जबान से शहद और शक्कर की नदियाँ बहती हैं।

माहिल बोला — महाराज, आपकी छाया में रहकर मुझे दुनिया में अब किसी चीज की इच्छा बाकी नहीं मगर जिन लोगों को आपने धूल से उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया और जो आपकी कृपा से आज बड़े प्रताप और ऐश्वर्यवाले बन गये, उनकी कृतघ्नता और उपद्रव खड़े करना मेरे लिए बड़े दुःख का कारण हो रही है।

परमाल ने आश्चर्य से पूछा — क्या मेरा नमक खानेवालों में ऐसे भी लोग हैं?

माहिल — महाराज, मैं कुछ नहीं कह सकता। आपका हृदय कृपा का सागर है मगर उसमें एक खूँखार घड़ियाल आ घुसा है।

–वह कौन है?

–मैं।

राजा ने आश्चर्यान्वित होकर कहा — तुम!

माहिल — हाँ महाराज, वह अभागा व्यक्ति मैं ही हूँ। मैं आज खुद अपनी फरियाद लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। अपने सम्बन्धियों के प्रति मेरा जो कर्तव्य है वह उस भक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं जो मुझे आपके प्रति है। आल्हा मेरे जिगर का टुकड़ा है। उसका मांस मेरा मांस और उसका रक्त मेरा रक्त है। मगर अपने शरीर में जो रोग पैदा हो जाता है उसे विवश होकर हकीम से कहना पड़ता है। आल्हा अपनी दौलत के नशे में चूर हो रहा है। उसके दिल में यह झूठा खयाल पैदा हो गया है कि मेरे ही बाहु-बल से यह राज्य कायम है।

राजा परमाल की आँखें लाल हो गयीं, बोला — आल्हा को मैंने हमेशा अपना लड़का समझा है।

माहिल — लड़के से ज्यादा।

परमाल — वह अनाथ था, कोई उसका संरक्षक न था। मैंने उसका पालन-पोषण किया, उसे गोद में खिलाया। मैंने उसे जागीरें दीं, उसे अपनी फौज का सिपहसालार बनाया। उसकी शादी में मैंने बीस हजार चन्देल सूरमाओं का खून बहा दिया। उसकी माँ और मेरी मलिनहा वर्षों गले मिलकर सोई हैं और आल्हा क्या मेरे एहसानों को भूल सकता है? माहिल, मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता।

माहिल का चेहरा पीला पड़ गया। मगर सम्हलकर बोला — महाराज, मेरी जबान से कभी झूठ बात नहीं निकली।

परमाह — मुझे कैसे विश्वास हो?

माहिल ने धीरे से राजा के कान में कुछ कह दिया।

3

आल्हा और ऊदल दोनों चौगान के खेल का अभ्यास कर रहे थे। लम्बे-चौड़े मैदान में हजारों आदमी इस तमाशे को देख रहे

थे। गेंद किसी अभागे की तरह इधर-उधर ठोकरें खाता फिरता था। चोबदार ने आकर कहा — महाराज ने याद फरमाया है।

आल्हा को सन्देह हुआ। महाराज ने आज बेवक्त क्यों याद किया? खेल बन्द हो गया। गेंद को ठोकरों से छुट्टी मिली। फौरन दरबार मे चौबेदार के साथ हाजिर हुआ और झुककर आदाब बजा लाया।

परमाल ने कहा — मैं तुमसे कुछ माँगूँ? दोगे?

आल्हा ने सादगी से जवाब दिया — फरमाइए।

परमाल — इनकार तो न करोगे?

आल्हा ने कनखियों से माहिल की तरफ देखा समझ गया कि इस वक्त कुछ न कुछ दाल में काला है। इसके चेहरे पर यह मुस्कराहट क्यों? गूलर में यह फूल क्यों लगे? क्या मेरी वफादारी का इम्तहान लिया जा रहा है? जोश से बोला — महाराज, मैं आपकी जबान से ऐसे सवाल सुनने का आदी नहीं हूँ। आप मेरे संरक्षक, मेरे पालनहार, मेरे राजा हैं। आपकी भँवों के इशारे पर मैं आग में कूद सकता हूँ और मौत से लड़ सकता हूँ। आपकी आज्ञा पाकर में असम्भव को सम्भव बना सकता हूँ आप मुझसे ऐसे सवाल न करें।

परमाल — शाबाश, मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद है।

आल्हा — मुझे क्या हुक्म मिलता है?

परमाल — तुम्हारे पास नाहर घोड़ा है?

आल्हा ने ’जी हाँ’ कहकर माहिल की तरफ भयानक गुस्से भरी हुई आँखों से देखा।

परमाल — अगर तुम्हें बुरा न लगे तो उसे मेरी सवारी के लिए दे दो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, सोचने लगा, मैंने अभी वादा किया है कि इनकार न करूँगा। मैंने बात हारी है। मुझे इनकार न करना चाहिए। निश्चय ही इस वक्त मेरी स्वामिभक्ति की परीक्षा ली जा रही है। मेरा इनकार इस समय बहुत बेमौका और खतरनाक है। इसका तो कुछ गम नहीं। मगर मैं इनकार किस मुँह से करूँ, बेवफा न कहलाऊँगा? मेरा और राजा का सम्बन्ध केवल स्वामी और सेवक का ही नहीं है, मैं उनकी गोद में खेला हूँ। जब मेरे हाथ कमजोर थे, और पाँव में खड़े होने का बूता न था, तब उन्होंने मेरे जुल्म सहे हैं, क्या मैं इनकार कर सकता हूँ?

विचारों की धारा मुड़ी — माना कि राजा के एहसान मुझ पर अनगिनती हैं मेरे शरीर का एक-एक रोआँ उनके एहसानों के

बोझ से दबा हुआ है मगर क्षत्रिय कभी अपनी सवारी का घोड़ा दूसरे को नहीं देता। यह क्षत्रियों का धर्म नहीं। मैं राजा का पाला हुआ और एहसानमन्द हूँ। मुझे अपने शरीर पर अधिकार है। उसे मैं राजा पर न्यौछावर कर सकता हूँ। मगर राजपूती धर्म पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, उसे मैं नहीं तोड़ सकता। जिन लोगों ने धर्म के कच्चे धागे को लोहे की दीवार समझा है, उन्हीं से राजपूतों का नाम चमक रहा है। क्या मैं हमेशा के लिए अपने ऊपर दाग लगाऊँ? आह! माहिल ने इस वक्त मुझे खूब जकड़ रखा है। सामने ख़ूँख़ार शेर है; पीछे गहरी खाई। या तो अपमान उठाऊँ या कृतघ्न कहलाऊँ। या तो राजपूतों के नाम को डुबोऊँ या बर्बाद हो जाऊँ। खैर, जो ईश्वर की मर्जी, मुझे कृतघ्न कहलाना स्वीकार है, मगर अपमानित होना स्वीकार नहीं। बर्बाद हो जाना मंजूर है, मगर राजपूतों के धर्म में बट्टा लगाना मंजूर नहीं।

आल्हा सर नीचा किये इन्हीं खयालों में गोते खा रहा था। यह उसके लिए परीक्षा की घड़ी थी जिसमें सफल हो जाने पर उसका भविष्य निर्भर था।

मगर माहिल के लिए यह मौका उसके धीरज की कम परीक्षा लेने वाला न था।

वह दिन अब आ गया जिसके इन्तजार में कभी आँखें नहीं थकीं। खुशियों की यह बाढ़ अब संयम की लोहे की दीवार को काटती जाती थी। सिद्ध योगी पर दुर्बल मनुष्य की विजय होती जाती थी। एकाएक परमाल ने आल्हा से बुलन्द आवाज में पूछा — किस दुविधा में हो? क्या नहीं देना चाहते?

आल्हा ने राजा से आँखें मिलाकर कहा — जी नहीं।

परमाल को तैश आ गया, कड़ककर बोला — क्यों?

आल्हा ने अविचल मन से उत्तर दिया — यह राजपूतों का धर्म नहीं है।

परमाल — क्या मेरे एहसानों का यही बदला है? तुम जानते हो, पहले तुम क्या थे और अब क्या हो?

आल्हा — जी हाँ, जानता हूँ।

परमाल — तुम्हें मैंने बनाया है और मैं ही बिगाड़ सकता हूँ।

आल्हा से अब सब्र न हो सका, उसकी आँखें लाल हो गयीं और त्योरियों पर बल पड़ गये। तेज लहजे में बोला — महाराज, आपने मेरे ऊपर जो एहसान किए, उनका मैं हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। क्षत्रिय कभी एहसान नहीं भूलता। मगर आपने मेरे ऊपर एहसान किए हैं, तो मैंने भी जो तोड़कर आपकी सेवा की है। सिर्फ

नौकरी और नामक का हक अदा करने का भाव मुझमें वह निष्ठा और गर्मी नहीं पैदा कर सकता जिसका मैं बार-बार परिचय दे चुका हूँ। मगर खैर, अब मुझे विश्वास हो गया कि इस दरबार में मेरा गुजर न होगा। मेरा आखिरी सलाम कबूल हो और अपनी नादानी से मैंने जो कुछ भूल की है वह माफ की जाए।

माहिल की ओर देखकर उसने कहा — मामा जी, आज से मेरे और आपके बीच खून का रिश्ता टूटता है। आप मेरे खून के प्यासे हैं तो मैं भी आपकी जान का दुश्मन हूँ।

4

आल्हा की माँ का नाम देवल देवी था। उसकी गिनती उन हौसले वाली उच्च विचार स्त्रियों में है जिन्होंने हिन्दोस्तान के पिछले कारनामों को इतना स्पृहणीय बना दिया है। उस अंधेरे युग में भी जबकि आपसी फूट और बैर की एक भयानक बाढ़ मुल्क में आ पहुँची थी, हिन्दोस्तान में ऐसी ऐसी देवियाँ पैदा हुई जो इतिहास के अंधेरे से अंधेरे पन्नों को भी ज्योतित कर सकती हैं। देवल देवी से सुना कि आल्हा ने अपनी आन को रखने के लिए क्या किया तो उसकी आँखों भर आए। उसने दोनों भाइयों

को गले लगाकर कहा — बेटा,तुमने वही किया जो राजपूतों का धर्म था। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ कि तुम जैसे दो बात की लाज रखने वाले बेटे पाये हैं।

उसी रोज दोनों भाइयों महोबा से कूच कर दिया अपने साथ अपनी तलवार और घोड़ों के सिवा और कुछ न लिया। माल-असबाब सब वहीं छोड़ दिये सिपाही की दौलत और इज्जत सबक कुछ उसकी तलवार है। जिसके पास वीरता की सम्पति है उसे दूसरी किसी सम्पति की जरूरत नहीं।

बरसात के दिन थे, नदी नाले उमड़े हुए थे। इन्द्र की उदारताओं से मालामाल होकर जमीन फूली नहीं समाती थी। पेड़ो पर मोरों की रसीली झनकारे सुनाई देती थीं और खेतों में निश्चिन्तता की शराब से मतवाल किसान मल्हार की तानें अलाप रहे थे। पहाड़ियों की घनी हरियावल पानी की दरूपन-जैसी सतह और जगंली बेल बूटों के बनाव संवार से प्रकृति पर एक यौवन बरस रहा था। मैदानों की ठंडी-ठंडी मस्त हवा जंगली फूलों की मीठी मीठी, सुहानी, आत्मा को उल्लास देनेवाली महक और खेतों की लहराती हुई रंग बिरंगी उपज ने दिलो में आरज़ुओं का एक तूफान उठा दिया था। ऐसे मुबारक मौसम में आल्हा ने महोबा को आखिरी सलाम किया। दोनों भाइयों की आँखें रोते रोते लाल हो गयी थीं क्योंकि आज उनसे उनका देश छूट रहा था। इन्हीं

गलियों में उन्होंने घुटने के बल चलना सीखा था, इन्ही तालाबों में कागज की नावें चलाई थीं, यही जवानी की बेफिक्रियों के मजे लूटे थे। इनसे अब हमेशा के लिए नाता टूटता था। दोनो भाई आगे बढते जाते थे, मगर बहुत धीरे-धीरे। यह खयाल था कि शायद परमाल ने रुठनेवालों को मनाने के लिए अपना कोई भरोसे का आदमी भेजा होगा। घोड़ों को सम्हाले हुए थे, मगर जब महोबे की पहाड़ियों का आखिरी निशान आँखों से ओझल हो गया तो उम्मीद की आखिरी झलक भी गायब हो गयी। उन्होनें जिनका कोई देश नथा एक ठंडी सांस ली और घोडें बढा दिये। उनके निर्वासन का समाचार बहुत जल्द चारों तरफ फैल गया। उनके लिए हर दरबार में जगह थीं, चारों तरफ से राजाओं के संदेश आने लगे। कन्नौज के राजा जयचन्द ने अपने राजकुमार को उनसे मिलने के लिए भेजा। संदेशों से जो काम न निकला वह इस मुलाकात ने पूरा कर दिया। राजकुमार की खातिरदारियाँ और आवभगत दोनों भाइयों को कन्नौज खींच ले नई। जयचन्द आँखें बिछाये बैठा था। आल्हा को अपना सेनापति बना दिया।

आल्हा और ऊदल के चले जाने के बाद महोबे में तरह-तरह के अंधेर शुरु हुए। परमाल कमजी शासक था। मातहत राजाओं ने बगावत का झण्डा बुलन्द किया। ऐसी कोई ताकत न रही जो उन झगड़ालू लोगों को वश में रख सके। दिल्ली के राज पृथ्वीराज की कुछ सेना सिमता से एक सफल लड़ाई लड़कर वापस आ रही थी। महोबे में पड़ाव किया। अक्खड़ सिपाहियों में तलवार चलते कितनी देर लगती है। चाहे राजा परमाल के मुलाजियों की ज्यादती हो चाहे चौहान सिपाहियों की, तनीजा यह हुआ कि चन्देलों और चौहानों में अनबन हो गई। लड़ाई छिड़ गई। चौहान संख्या में कम थे। चंदेलों ने आतिथ्य-सत्कार के नियमों को एक किनारे रखकर चौहानों के खून से अपना कलेजा ठंडा किया और यह न समझे कि मुट्ठी भर सिपाहियों के पीछे सारे देश पर विपत्ति आ जाएगी। बेगुनाहों को खून रंग लायेगा। पृथ्वीराज को यह दिल तोड़ने वाली खबर मिली तो उसके गुस्से की कोई हद न रही। आँधी की तरह महोबे पर चढ़ दौड़ा और सिरको, जो इलाका महोबे का एक मशहूर कस्बा था, तबाह करके महोबे की तरह बढ़ा। चन्देलों ने भी फौज खड़ी की। मगर पहले ही मुकाबिले में उनके हौसले पस्त हो गये। आल्हा-ऊदल के बगैर फौज बिन दूल्हे की बारात थी। सारी फौज तितर-बितर हो गयी। देश में तहलका मच गया। अब किसी क्षण पृथ्वीराज

महोबे में आ पहुँचेगा, इस डर से लोगों के हाथ-पाँव फूल गये। परमाल अपने किये पर बहुत पछताया। मगर अब पछताना व्यर्थ था। कोई चारा न देखकर उसने पृथ्वीराज से एक महीने की सन्धि की प्रार्थना की। चौहान राजा युद्ध के नियमों को कभी हाथ से न जाने देता था। उसकी वीरता उसे कमजोर, बेखबर और नामुस्तैद दुश्मन पर वार करने की इजाजत न देती थी। इस मामले में अगर वह इन नियमों को इतनी सख्ती से पाबन्द न होता तो शहाबुद्दीन के हाथों उसे वह बुरा दिन न देखना पड़ता। उसकी बहादुरी ही उसकी जान की गाहक हुई। उसने परमाल का पैगाम मंजूर कर लिया। चन्देलों की जान में जान आई।

अब सलाह-मशविरा होने लगा कि पृथ्वीराज से क्योंकर मुकाबिला किया जाये। रानी मलिनहा भी इस मशविरे में शरीक थीं। किसी ने कहा, महोबे के चारों तरफ एक ऊँची दीवार बनायी जाय; कोई बोला, हम लोग महोबे को वीरान करके दक्खिन को ओर चलें। परमाल जबान से तो कुछ न कहता था, मगर समर्पण के सिवा उसे और कोई चारा न दिखाई पड़ता था। तब रानी मलिनहा खड़ी होकर बोली —

'चन्देल वंश के राजपूतों, तुम कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो? क्या दीवार खड़ी करके तुम दुश्मन को रोक लोगे? झाड़ू से कहीं आँधी रुकती है! तुम महोबे को वीरान करके भागने की सलाह

देते हो। ऐसी कायरों जैसी सलाह औरतें दिया करती हैं। तुम्हारी सारी बहादुरी और जान पर खेलना अब कहाँ गया? अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि चन्देलों के नाम से राजे थर्राते थे। चन्देलों की धाक बंधी हुई थी, तुमने कुछ ही सालों में सैंकड़ों मैदान जीते, तुम्हें कभी हार नहीं हुई। तुम्हारी तलवार की दमक कभी मन्द नहीं हुई। तुम अब भी वही हो, मगर तुममें अब वह पुरुषार्थ नहीं है। वह पुरुषार्थ बनाफल वंश के साथ महोबे से उठ गया। देवल देवी के रुठने से चण्डिका देवी भी हमसे रुठ गई। अब अगर कोई यह हारी हुई बाजी सम्हाल सकता है तो वह आल्हा है। वही दोनों भाई इस नाजुक वक्त में तुम्हें बचा सकते हैं। उन्हीं को मनाओ, उन्हीं को समझाओं, उन पर महोबे के बहुत हक हैं। महोबे की मिट्टी और पानी से उनकी परवरिश हुई है। वह महोबे के हक कभी भूल नहीं सकते, उन्हें ईश्वर ने बल और विद्या दी है, वही इस समय विजय का बीड़ा उठा सकते हैं।’

रानी मलिनहा की बातें लोगों के दिलों में बैठ गयीं।

जगना भाट आल्हा और ऊदल को कन्नौज से लाने के लिए रवाना हुआ। यह दोनों भाई राजकुँवर लाखन के साथ शिकार खेलने जा रहे थे कि जगना ने पहुँचकर प्रणाम किया। उसके चेहरे से परेशानी और झिझक बरस रही थी। आल्हा ने घबराकर पूछा — कवीश्वर, यहाँ कैसे भूल पड़े? महोबे में तो खैरियत है? हम गरीबों को क्योंकर याद किया?

जगना की आँखों में आँसू भर जाए, बोला — अगर खैरियत होती तो तुम्हारी शरण में क्यों आता। मुसीबत पड़ने पर ही देवताओं की याद आती है। महोबे पर इस वक्त इन्द्र का कोप छाया हुआ है। पृथ्वीराज चौहान महोबे को घेरे पड़ा है। नरसिंह और वीरसिंह तलवारों की भेंट हो चुके है। सिरकों सारा राख को ढेर हो गया। चन्देलों का राज वीरान हुआ जाता है। सारे देश में कुहराम मचा हुआ है। बड़ी मुश्किलों से एक महीने की मौहलत ली गई है और मुझे राजा परमाल ने तुम्हारे पास भेजा है। इस मुसीबत के वक्त हमारा कोई मददगार नहीं है, कोई ऐसा नहीं है जो हमारी किस्मत बँधाये। जब से तुमने महोबे से नहीं है, कोई ऐसा नहीं है जो हमारी हिम्मत बँधाये। जब से तुमने महोबे से नाता तोड़ा है तब से राजा परमाल के होंठों पर हँसी नहीं आई। जिस परमाल को उदास देखकर तुम बेचैन हो जाते थे उसी परमाल की आँखें महीनों से नींद को तरसती हैं। रानी मलिनहा,

जिसकी गोद में तुम खेले हो, रात-दिन तुम्हारी याद में रोती रहती है। वह अपने झरोखें से कन्नौज की तरफ आँखें लगाये तुम्हारी राह देखा करती है। ऐ बनाफल वंश के सपूतो! चन्देलों की नाव अब डूब रही है। चन्देलों का नाम अब मिटा जाता है। अब मौका है कि तुम तलवारें हाथ में लो। अगर इस मौके पर तुमने डूबती हुई नाव को न सम्हाला तो तुम्हें हमेशा के लिए पछताना पड़ेगा क्योंकि इस नाम के साथ तुम्हारा और तुम्हारे नामी बाप का नाम भी डूब जाएगा।

आल्हा ने रुखेपन से जवाब दिया — हमें इसकी अब कुछ परवाह नहीं है। हमारा और हमारे बाप का नाम तो उसी दिन डूब गया, जब हम बेकसूर महोबे से निकाल दिए गए। महोबा मिट्टी में मिल जाय, चन्देलों को चिराग गुल हो जाय, अब हमें जरा भी परवाह नहीं है। क्या हमारी सेवाओं का यही पुरस्कार था जो हमको दिया गया? हमारे बाप ने महोबे पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये, हमने गोड़ों को हराया और चन्देलों को देवगढ़ का मालिक बना दिया। हमने यादवों से लोहा लिया और कठियार के मैदान में चन्देलों का झंडा गाड़ दिया। मैंने इन्ही हाथों से कछवाहों की बढ़ती हुई लहर को रोका। गया का मैदान हमीं ने जीता, रीवाँ का घमण्ड हमीं ने तोड़ा। मैंने ही मेवात से खिराज लिया। हमने यह सब कुछ किया और इसका हमको यह

पुरस्कार दिया गया है? मेरे बाप ने दस राजाओं को गुलामी का तौक पहनाया। मैंने परमाल की सेवा में सात बार प्राणलेवा जख्म खाए, तीन बार मौत के मुँह से निकल आया। मैंने चालीस लड़ाइयाँ लड़ी और कभी हारकर न आया। ऊदल ने सात खूनी मार्के जीते। हमने चन्देलों की बहादुरी का डंका बजा दिया। चन्देलों का नाम हमने आसमान तक पहुँचा दिया और इसके यह पुरस्कार हमको मिला है? परमाल अब क्यों उसी दगाबाज माहिल को अपनी मदद के लिए नहीं बुलाते जिसको खुश करने के लिए मेरा देश निकाला हुआ था!

जगना ने जवाब दिया — आल्हा! यह राजपूतों की बातें नहीं हैं। तुम्हारे बाप ने जिस राज पर प्राण न्यौछावर कर दिये वही राज अब दुश्मन के पाँव तले रौंदा जा रहा है। उसी बाप के बेटे होकर भी क्या तुम्हारे खून में जोश नहीं आता? वह राजपूत जो अपने मुसीबत में पड़े हुए राजा को छोड़ता है, उसके लिए नरक की आग के सिवा और कोई जगह नहीं है। तुम्हारी मातृभूमि पर बर्बादी की घटा छायी हुई हैं। तुम्हारी माँए और बहनें दुश्मनों की आबरु लूटनेवाली निगाहों को निशाना बन रही है, क्या अब भी तुम्हारे खून में जोश नहीं आता? अपने देश की यह दुर्गत देखकर भी तुम कन्नौज में चैन की नींद सो सकते हो?

देवल देवी को जगना के आने की खबर हुई। उसने फौरन आल्हा को बुलाकर कहा — बेटा, पिछली बातें भूल जाओं और आज ही महोबे चलने की तैयारी करो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, मगर ऊदल झुँझलाकर बोला — हम अब महोबे नहीं जा सकते। क्या तुम वह दिन भूल गये जब हम कुत्तों की तरह महोबे से निकाल दिए गए? महोबा डूबे या रहे, हमारा जी उससे भर गया, अब उसको देखने की इच्छा नहीं हे। अब कन्नौज ही हमारी मातृभूमि है।

राजपूतनी बेटे की जबान से यह पाप की बात न सुन सकी, तैश में आकर बोली — ऊदल, तुझे ऐसी बातें मुँह से निकालते हुए शर्म नहीं आती? काश, ईश्वर मुझे बाँझ ही रखता कि ऐसे बेटों की माँ न बनती। क्या इन्हीं बनाफल वंश के नाम पर कलंक लगानेवालों के लिए मैंने गर्भ की पीड़ा सही थी? नालायको, मेरे सामने से दूर हो जाओं। मुझे अपना मुँह न दिखाओं। तुम जसराज के बेटे नहीं हो, तुम जिसकी रान से पैदा हुए हो वह जसराज नहीं हो सकता।

यह मर्मान्तक चोट थी। शर्म से दोनों भाइयों के माथे पर पसीना आ गया। दोनों उठ खड़े हुए और बोले — माता, अब बस करो, हम ज्यादा नहीं सुन सकते, हम आज ही महोबे जायेंगे और राजा

परमाल की खिदमत में अपना खून बहायेंगे। हम रणक्षेत्र में अपनी तलवारों की चमक से अपने बाप का नाम रोशन करेंगे। हम चौहान के मुकाबिले में अपनी बहादुरी के जौहर दिखायेंगे और देवल देवी के बेटों का नाम अमर कर देंगे।

7

दोनों भाई कन्नौज से चले, देवल भी साथ थी। जब वह रुठनेवाले अपनी मातृभूमि में पहुँचे तो सूखें धानों में पानी पड़ गया, टूटी हुई हिम्मतें बंध गयीं। एक लाख चन्देल इन वीरों की अगवानी करने के लिए खड़े थे। बहुत दिनों के बाद वह अपनी मातृभूमि से बिछुड़े हुए इन दोनों भाइयों से मिले। आँखों ने खुशी के आँसू बहाए। राजा परमाल उनके आने की खबर पाते ही कीरत सागर तक पैदल आया। आल्हा और ऊदल दौड़कर उसके पाँव से लिपट गए। तीनों की आँखों से पानी बरसा और सारा मनमुटाव धुल गया।

दुश्मन सर पर खड़ा था, ज्यादा आतिथ्य-सत्कार का मौका न था, वहीं कीरत सागर के किनारे देश के नेताओं और दरबार के कर्मचारियों की राय से आल्हा फौज का सेनापति बनाया गया।

वहीं मरने-मारने के लिए सौगन्धें खाई गई। वहीं बहादुरों ने कसमें खाई कि मैदान से हटेंगे तो मरकर हटेंगें। वहीं लोग एक दूसरे के गले मिले और अपनी किस्मतों को फैसला करने चले। आज किसी की आँखों में और चेहरे पर उदासी के चिन्ह न थे, औरतें हँस-हँसकर अपने प्यारों को विदा करती थीं, मर्द हँस-हँसकर स्त्रियों से अलग होते थे क्योंकि यह आखिरी बाजी है, इसे जीतना जिन्दगी और हारना मौत है।

उस जगह के पास जहाँ अब और कोई कस्बा आबाद है, दोनों फौजों को मुकाबला हुआ और अठारह दिन तक मारकाट का बाजार गर्म रहा। खूब घमासान लड़ाई हुई। पृथ्वीराज खुद लड़ाई में शरीक था। दोनों दल दिल खोलकर लड़े। वीरों ने खूब अरमान निकाले और दोनों तरफ की फौजें वहीं कट मरीं। तीन लाख आदमियों में सिर्फ तीन आदमी जिन्दा बचे-एक पृथ्वीराज, दूसरा चन्दा भाट तीसरा आल्हा। ऐसी भयानक अटल और निर्णायक लड़ाई शायद ही किसी देश और किसी युग में हुई हो। दोनों ही हारे और दोनों ही जीते। चन्देल और चौहान हमेशा के लिए खाक में मिल गए क्योंकि थानेसर की लड़ाई का फैसला भी इसी मैदान में हो गया। चौहानों में जितने अनुभवी सिपाही थे, वह सब औरई में काम आए। शहाबुद्दीन से मुकाबिला पड़ा तो नौसिखिये, अनुभवहीन सिपाही मैदान में लाये गये और

नतीजा वही हुआ जो हो सकता था। आल्हा का कुछ पता न चला कि कहाँ गया। कहीं शर्म से डूब मरा या साधू हो गया।

जनता में अब तक यही विश्वास है कि वह जिन्दा है। लोग कहते हैं कि वह अमर हो गया। यह बिल्कुल ठीक है क्योंकि आल्हा सचमुच अमर है अमर है और वह कभी मिट नहीं सकता, उसका नाम हमेशा कायम रहेगा।

[जमाना, जनवरी 1912]

आहुति

आनन्द ने गद्देदार कुर्सी पर बैठकर सिगार जलाते हुए कहा — आज विशम्भर ने कैसी हिमाकत की! इम्तहान करीब है और आप आज वालण्टियर बन बैठे। कहीं पकड़ गये, तो इम्तहान से हाथ धोएँगे। मेरा तो खयाल है कि वजीफ़ा भी बन्द हो जाएगा।

सामने दूसरे बेंच पर रूपमणि बैठी एक अखबार पढ़ रही थी। उसकी आँखें अखबार की तरफ थीं; पर कान आनन्द की तरफ लगे हुए थे। बोली — यह तो बुरा हुआ। तुमने समझाया नहीं? आनन्द ने मुँह बनाकर कहा — जब कोई अपने को दूसरा गाँधी समझने लगे, तो उसे समझाना मुश्किल हो जाता है। वह उलटे मुझे समझाने लगता है।

रूपमणि ने अखबार को समेटकर बालों को सँभालते हुए कहा — तुमने मुझे भी नहीं बताया, शायद मैं उसे रोक सकती।

आनन्द ने कुछ चिढ़कर कहा — तो अभी क्या हुआ, अभी तो शायद काँग्रेस आफिस ही में हो। जाकर रोक लो।

आनन्द और विशम्भर दोनों ही यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे। आनन्द के हिस्से में लक्ष्मी भी पड़ी थी, सरस्वती भी; विशम्भर फूटी तकदीर लेकर आया था। प्रोफेसरों ने दया करके एक छोटा-सा वजीफा दे दिया था। बस, यही उसकी जीविका थी। रूपमणि भी साल भर पहले उन्हीं के समकक्ष थी; पर इस साल उसने कालेज छोड़ दिया था। स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। दोनों युवक कभी-कभी उससे मिलने आते रहते थे। आनन्द आता था। उसका हृदय लेने के लिए, विशम्भर आता था यों ही। जी पढ़ने में न लगता या घबड़ाता, तो उसके पास आ बैठता था। शायद उससे अपनी विपत्ति-कथा कहकर उसका चित्त कुछ शान्त हो जाता था। आनन्द के सामने कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। आनन्द के पास उसके लिए सहानुभूति का एक शब्द भी न था। वह उसे फटकारता था; ज़लील करता था और बेवकूफ बनाता था। विशम्भर में उससे बहस करने की सामर्थ्य न थी। सूर्य के सामने दीपक की हस्ती ही क्या? आनन्द का उस पर मानसिक आधिपत्य था। जीवन में पहली बार उसने उस आधिपत्य को अस्वीकार किया था। और उसी की शिकायत लेकर आनन्द रूपमणि के पास आया था।

महीनों विशम्भर ने आनन्द के तर्क पर अपने भीतर के आग्रह को ढाला; पर तर्क से परास्त होकर भी उसका हृदय विद्रोह करता

रहा। बेशक उसका यह साल खराब हो जाएगा। सम्भव है, छात्र-जीवन ही का अन्त हो जाए, फिर इस 14-15 वर्षों की मेहनत पर पानी फिर जाएगा न खुदा ही मिलेगा, न सनम का विसाल ही नसीब होगा। आग में कूदने से क्या फायदा। यूनिवर्सिटी में रहकर भी तो बहुत कुछ देश का काम किया जा सकता है। आनन्द महीने में कुछ-न-कुछ चन्दा जमा करा देता है, दूसरे छात्रों से स्वदेशी की प्रतिज्ञा करा ही लेता है। विशम्भर को भी आनन्द ने यही सलाह दी। इस तर्क ने उसकी बुद्धि को तो जीत लिया, पर उसके मन को न जीत सका। आज जब आनन्द कालेज गया तो विशम्भर ने स्वराज्य-भवन की राह ली। आनन्द कालेज से लौटा तो उसे अपनी मेज पर विशम्भर का पत्र मिला। लिखा था —

प्रिय आनन्द,

मैं जानता हूँ कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह मेरे लिए हितकर नहीं है; पर न जाने कौन-सी शक्ति मुझे खींचे लिये जा रही है। मैं जाना नहीं चाहता, पर जाता हूँ, उसी तरह जैसे आदमी मरना नहीं चाहता, पर मरता है; रोना नहीं चाहता, पर रोता है। जब सभी लोग, जिन पर

हमारी भक्ति है, ओखली में अपना सिर डाल चुके थे, तो मेरे लिए भी अब कोई दूसरा मार्ग नहीं है। मैं अब और अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकता। यह इज्जत का सवाल है, और इज्जत किसी तरह का समझौता नहीं कर सकती।

तुम्हारा

– 'विशम्भर'

ख़त पढ़कर आनन्द के जी में आया, कि विशम्भर को समझाकर लौटा लाये; पर उसकी हिमाक़त पर गुस्सा आया और उसी तैश में वह रूपमणि के पास जा पहुँचा। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती — जाकर उसे लौटा लाओ, तो शायद वह चला जाता, पर उसका यह कहना कि मैं उसे रोक लेती, उसके लिए असह्य था। उसके जवाब में रोष था, रुखाई थी और शायद कुछ हसद भी था।

रूपमणि ने गर्व से उसकी ओर देखा और बोली — अच्छी बात है, मैं जाती हूँ।

एक क्षण के बाद उसने डरते-डरते पूछा — तुम क्यों नहीं चलते?

फिर वही गलती। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती तो आनन्द जरूर उसके साथ चला जाता, पर उसके प्रश्न में पहले

ही यह भाव छिपा था, कि आनन्द जाना नहीं चाहता। अभिमानी आनन्द इस तरह नहीं जा सकता। उसने उदासीन भाव से कहा — मेरा जाना व्यर्थ है। तुम्हारी बातों का ज्यादा असर होगा। मेरी मेज पर यह ख़त छोड़ गया था। जब वह आत्मा और कर्तव्य और आदर्श की बड़ी-बड़ी बातें सोच रहा है और अपने को भी कोई ऊँचे दरजे का आदमी समझ रहा है, तो मेरा उस पर कोई असर न होगा।

उसने जेब से पत्र निकालकर रूपमणि के सामने रख दिया। इन शब्दों में जो संकेत और व्यंग्य था, उसने एक क्षण तक रूपमणि को उसकी तरफ देखने न दिया। आनन्द के इस निर्दय प्रहार ने उसे आहत-सा कर दिया था; पर एक ही क्षण में विद्रोह की एक चिनगारी-सी उसके अन्दर जा घुसी। उसने स्वच्छन्द भाव से पत्र को लेकर पढ़ा। पढ़ा सिर्फ आनन्द के प्रहार का जवाब देने के लिए; पर पढ़ते-पढ़ते उसका चेहरा तेज से कठोर हो गया, गरदन तन गयी, आँखों में उत्सर्ग की लाली आ गयी।

उसने मेज पर पत्र रखकर कहा — नहीं, अब मेरा जाना भी व्यर्थ है।

आनन्द ने अपनी विजय पर फूलकर कहा — मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया, इस वक्त उसके सिर पर भूत सवार है, उस पर

किसी के समझाने का असर न होगा। जब साल भर जेल में चक्की पीस लेंगे और वहाँ तपेदिक लेकर निकलेंगे, या पुलिस के डण्डों से सिर और हाथ-पाँव तुड़वा लेंगे, तो बुद्धि ठिकाने आवेगी। अभी तो जयजयकार और तालियों के स्वप्न देख रहे होंगे।

रूपमणि सामने आकाश की ओर देख रही थी। नीले आकाश में एक छायाचित्र-सा नजर आ रहा था — दुर्बल, सूखा हुआ नग्न शरीर, घुटनों तक धोती, चिकना सिर, पोपला मुँह, तप, त्याग और सत्य की सजीव मूर्ति।

आनन्द ने फिर कहा — अगर मुझे मालूम हो, कि मेरे रक्त से देश का उद्धार हो जाएगा, तो मैं आज उसे देने को तैयार हूँ; लेकिन मेरे जैसे सौ-पचास आदमी निकल ही आएँ, तो क्या होगा? प्राण देने के सिवा और तो कोई प्रत्यक्ष फल नहीं दीखता।

रूपमणि अब भी वही छायाचित्र देख रही थी। वही छाया मुस्करा रही थी, सरल मनोहर मुस्कान, जिसने विश्व को जीत लिया है।

आनन्द फिर बोला — जिन महाशयों को परीक्षा का भूत सताया करता है, उन्हें देश का उद्धार करने की सूझती है। पूछिए, आप अपना उद्धार तो कर ही नहीं सकते, देश का क्या उद्धार कीजिएगा? इधर फेल होने से उधर के डण्डे फिर भी हलके हैं।

रूपमणि की आँखें आकाश की ओर थीं। छायाचित्र कठोर हो गया था।

आनन्द ने जैसे चौंककर कहा — हाँ, आज बड़ी मजेदार फिल्म है। चलती हो? पहले शो में लौट आएँ।

रूपमणि ने जैसे आकाश से नीचे उतरकर कहा — नहीं, मेरा जी नहीं चाहता।

आनन्द ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर कहा — तबीयत तो अच्छी है? रूपमणि ने हाथ छुड़ाने की

चेष्टा न की। बोली — हाँ, तबीयत में हुआ क्या है?

'तो चलती क्यों नहीं?'

'आज जी नहीं चाहता।'

'तो फिर मैं भी न जाऊँगा।'

'बहुत ही उत्तम, टिकट के रुपये काँग्रेस को दे दो।'

'यह तो टेढ़ी शर्त है; लेकिन मंजूर!'

'कल रसीद मुझे दिखा देना।'

'तुम्हें मुझ पर इतना विश्वास नहीं?'

आनन्द होस्टल चला। जरा देर बाद रूपमणि स्वराज्य-भवन की ओर चली।

2

रूपमणि स्वराज्य-भवन पहुँची, तो स्वयंसेवकों का एक दल विलायती कपड़े के गोदामों को पिकेट करने जा रहा था। विशम्भर दल में न था। दूसरा दल शराब की दूकानों पर जाने को तैयार खड़ा था। विशम्भर इसमें भी न था।

रूपमणि ने मन्त्री के पास आकर कहा — आप बता सकते हैं, विशम्भर नाथ कहाँ हैं?

मन्त्री ने पूछा — वही, जो आज भरती हुए हैं?

‘जी हाँ, वही।’

‘बड़ा दिलेर आदमी है। देहातों को तैयार करने का काम लिया है। स्टेशन पहुँच गया होगा।

सात बजे की गाड़ी से जा रहा है।’

‘तो अभी स्टेशन पर होंगे।’

मन्त्री ने घड़ी पर नजर डालकर जवाब दिया — हाँ, अभी तो शायद स्टेशन पर मिल जाएँ।

रूपमणि ने बाहर निकलकर साइकिल तेज की। स्टेशन पर पहुँची, तो देखा, विशम्भर प्लेटफार्म पर खड़ा है।

रूपमणि को देखते ही लपककर उसके पास आया और बोला — तुम यहाँ कैसे आयी। आज आनन्द से तुम्हारी मुलाकात हुई थी?

रूपमणि ने उसे सिर से पाँव तक देखकर कहा — यह तुमने क्या सूरत बना रखी है? क्या पाँव में जूता पहनना भी देशद्रोह है?

विशम्भर ने डरते-डरते पूछा — आनन्द बाबू ने तुमसे कुछ कहा नहीं?

रूपमणि ने स्वर को कठोर बनाकर कहा — जी हाँ, कहा। तुम्हें यह क्या सूझी? दो साल से कम के लिए न जाओगे!

विशम्भर का मुँह गिर गया। बोला — जब यह जानती हो, तो क्या तुम्हारे पास मेरी हिम्मत बाँधने के लिए दो शब्द नहीं हैं?

रूपमणि का हृदय मसोस उठा; मगर बाहरी उपेक्षा को न त्याग सकी। बोली — तुम मुझे दुश्मन समझते हो, या दोस्त।

विशम्भर ने आँखों में आँसू भरकर कहा — तुम ऐसा प्रश्न क्यों करती हो रूपमणि? इसका जवाब मेरे मुँह से न सुनकर भी क्या तुम नहीं समझ सकतीं?

रूपमणि — तो मैं कहती हूँ, तुम मत जाओ।

विशम्भर — यह दोस्त की सलाह नहीं है रूपमणि! मुझे विश्वास है, तुम हृदय से यह नहीं कह रही हो। मेरे प्राणों का क्या मूल्य है, जरा यह सोचो। एम. ए. होकर भी सौ रुपये की नौकरी। बहुत बढ़ा तो तीन-चार सौ तक जाऊँगा। इसके बदले यहाँ क्या मिलेगा, जानती हो? सम्पूर्ण देश का स्वराज्य। इतने महान् हेतु के लिए मर जाना भी उस जिन्दगी से कहीं बढ़कर है। अब जाओ, गाड़ी आ रही है। आनन्द बाबू से कहना, मुझसे नाराज न हों।

रूपमणि ने आज तक इस मन्दबुद्धि युवक पर दया की थी। इस समय उसकी श्रद्धा का पात्र बन गया। त्याग में हृदय को खींचने की जो शक्ति है, उसने रूपमणि को इतने वेग से खींचा कि परिस्थितियों का अन्तर मिट-सा गया। विशम्भर में जितने दोष थे, वे सभी अलंकार बन-बनकर चमक उठे। उसके हृदय की विशालता में वह किसी पक्षी की भाँति उड़-उड़कर आश्रय खोजने लगी।

रूपमणि ने उसकी ओर आतुर नेत्रों से देखकर कहा — मुझे भी अपने साथ लेते चलो।

विशम्भर पर जैसे घड़ों का नशा चढ़ गया।

'तुमको? आनन्द बाबू मुझे जिन्दा न छोड़ेंगे!'

'मैं आनन्द के हाथों बिकी नहीं हूँ!'

'आनन्द तो तुम्हारे हाथों बिके हुए हैं?'

रूपमणि ने विद्रोह भरी आँखों से उसकी ओर देखा, पर कुछ बोली नहीं। परिस्थितियाँ उसे इस समय बाधाओं-सी मालूम हो रही थीं। वह भी विशम्भर की भाँति स्वच्छन्द क्यों न हुई? सम्पन्न माँ-बाप की अकेली लड़की, भोग-विलास में पली हुई, इस समय अपने को कैदी समझ रही थी। उसकी आत्मा उन बन्धनों को तोड़ डालने के लिए जोर लगाने लगी।

गाड़ी आ गयी। मुसाफिर चढ़ने-उतरने लगे। रूपमणि ने सजल नेत्रों से कहा — तुम मुझे नहीं ले चलोगे?

विशम्भर ने दृढ़ता से कहा — नहीं।

'क्यों?'

'मैं इसका जवाब नहीं देना चाहता!'

'क्या तुम समझते हो, मैं इतनी विलासासक्त हूँ कि मैं देहात में रह नहीं सकती?'

विशम्भर लज्जित हो गया। यह भी एक बड़ा कारण था, पर उसने इनकार किया — नहीं, यह बात नहीं।

'फिर क्या बात है? क्या यह भय है, पिताजी मुझे त्याग देंगे?'

'अगर यह भय हो तो क्या वह विचार करने योग्य नहीं?'

'मैं उनकी तृण बराबर परवा नहीं करती।'

विशम्भर ने देखा, रूपमणि के चाँद-से मुख पर गर्वमय संकल्प का आभास था। वह उस संकल्प के सामने जैसे काँप उठा। बोला — मेरी यह याचना स्वीकार करो, रूपमणि, मैं तुमसे विनती करता हूँ।

रूपमणि सोचती रही।

विशम्भर ने फिर कहा — मेरी खातिर तुम्हें यह विचार छोड़ना पड़ेगा।

रूपमणि ने सिर झुकाकर कहा — अगर तुम्हारा यह आदेश है, तो मैं मानूँगी विशम्भर! तुम दिल से समझते हो, मैं क्षणिक आवेश में आकर इस समय अपने भविष्य को गारत करने जा रही हूँ। मैं तुम्हें दिखा दूँगी, यह मेरा क्षणिक आवेश नहीं है, दृढ़ संकल्प है।

जाओ; मगर मेरी इतनी बात मानना कि कानून के पंजे में उसी वक्त आना, जब आत्माभिमान या सिद्धान्त पर चोट लगती हो। मैं ईश्वर से तुम्हारे लिए प्रार्थना करती रहूँगी।

गाड़ी ने सीटी दी। विशम्भर अन्दर जा बैठा। गाड़ी चली, रूपमणि मानो विश्व की सम्पत्ति अंचल में लिये खड़ी रही।

3

रूपमणि के पास विशम्भर का एक पुराना रद्दी-सा फोटो आल्मारी के एक कोने में पड़ा हुआ था। आज स्टेशन से आकर उसने उसे निकाला और उसे एक मखमली फ्रेम में लगाकर मेज पर रख दिया। आनन्द का फोटो वहाँ से हटा दिया गया।

विशम्भर ने छुट्टियों में उसे दो-चार पत्र लिखे थे। रूपमणि ने उन्हें पढ़कर एक किनारे डाल दिये थे। आज उसने उन पत्रों को निकाला और उन्हें दोबारा पढ़ा। उन पत्रों में आज कितना रस था। वह बड़ी हिफाजत से राइटिंग-बाक्स में बन्दकर दिये गये।

दूसरे दिन समाचारपत्र आया तो रूपमणि उस पर टूट पड़ी। विशम्भर का नाम देखकर वह गर्व से फूल उठी। दिन में एक

बार स्वराज्य-भवन जाना उनका नियम हो गया। ज़लसों में भी बराबर शरीक होती, विलास की चीजें एक-एक करके सब फेंक दी गयीं। रेशमी साड़ियों की जगह गाढ़े की साड़ियाँ आयीं। चरखा भी आया। वह घण्टों बैठी सूत काता करती। उसका सूत दिन-दिन बारीक होता जाता था। इसी सूत से वह विशम्भर के कुरते बनवाएगी।

इन दिनों परीक्षा की तैयारियाँ थीं। आनन्द को सिर उठाने की फुरसत न मिलती। दो-एक बार वह रूपमणि के पास आया; पर ज्यादा देर बैठा नहीं शायद रूपमणि की शिथिलता ने उसे ज्यादा बैठने ही न दिया।

एक महीना बीत गया।

एक दिन शाम आनन्द आया। रूपमणि स्वराज्य-भवन जाने को तैयार थी। आनन्द ने भवें सिकोड़कर कहा — तुमसे तो अब बातें भी मुश्किल हैं।

रूपमणि ने कुर्सी पर बैठकर कहा — तुम्हें भी तो किताबों से छुट्टी नहीं मिलती। आज की कुछ ताजी खबर नहीं मिली। स्वराज्य-भवन में रोज-रोज का हाल मालूम हो जाता है।

आनन्द ने दार्शनिक उदासीनता से कहा — विशम्भर ने तो सुना, देहातों में खूब शोरगुल मचा रखा है। जो काम उसके लायक

था, वह मिल गया। यहाँ उसकी जबान बन्द रहती थी। वहाँ देहातियों में खूब गरजता होगा; मगर आदमी दिलेर है।

रूपमणि ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा; जो कह रही थीं; तुम्हारे लिए यह चर्चा अनधिकार चेष्टा है, और बोली — आदमी में अगर यह गुण है तो फिर उसके सारे अवगुण मिट जाते हैं। तुम्हें कांग्रेस बुलेटिन पढ़ने की क्यों फुरसत मिलती होगी। विशम्भर ने देहातों में ऐसी जागृति फैला दी है कि विलायती का एक सूत भी नहीं बिकने पाता और न नशे की दूकानों पर कोई जाता है। और मजा यह है कि पिकेटिंग करने की जरूरत नहीं पड़ती। अब तो पंचायतें खोल रहे हैं।

आनन्द ने उपेक्षा भाव से कहा — तो समझ लो, अब उनके चलने के दिन भी आ गये हैं।

रूपमणि ने जोश से कहा — इतना करके जाना बहुत सस्ता नहीं है। कल तो किसानों का एक बहुत बड़ा जलसा होने वाला था। पूरे परगने के लोग जमा हुए होंगे। सुना है, आजकल देहातों से कोई मुकदमा ही नहीं आता। वकीलों की नानी मरी जा रही है।

आनन्द ने कड़वेपन से कहा — यही तो स्वराज्य का मजा है कि जमींदार, वकील और व्यापारी सब मरें। बस, केवल मजदूर और किसान रह जाएँ।

रूपमणि ने समझ लिया, आज आनन्द तुलकर आया है। उसने भी जैसे आस्तीन चढ़ाते हुए कहा — तो तुम क्या चाहते हो कि जमींदार और वकील और व्यापारी गरीबों को चूस-चूसकर मोटे होते जाएँ और जिन सामाजिक व्यवस्थाओं में ऐसा महान् अन्याय हो रहा है, उनके खिलाफ जबान तक न खोली जाए? तुम तो समाजशास्त्र के पण्डित हो। क्या किसी अर्थ में यह व्यवस्था आदर्श कही जा सकती है? सभ्यता के तीन मुख्य सिद्धान्तों का ऐसी दशा में किसी न्यूनतम मात्रा में भी व्यवहार हो सकता है?

आनन्द ने गर्म होकर कहा — शिक्षा और सम्पत्ति का प्रभुत्व हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा। हाँ, उसका रूप भले ही बदल जाए।

रूपमणि ने आवेश से कहा — अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा-लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अंग्रेजी महाजनों की धनलोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं? कम-से-कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह

गोविन्द बैठ जाएँ। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ कम-से-कम विषमता को आश्रय न मिल सके।

आनन्द — यह तुम्हारी निज की कल्पना होगी।

रूपमणि — तुमने अभी इस आन्दोलन का साहित्य पढ़ा ही नहीं।

आनन्द — न पढ़ा है, न पढ़ना चाहता हूँ।

रूपमणि — इससे राष्ट्र की कोई बड़ी हानि न होगी।

आनन्द — तुम तो जैसे वह रही ही नहीं। बिलकुल काया-पलट हो गयी।

सहसा डाकिए ने कांग्रेस बुलेटिन लाकर मेज पर रख दिया। रूपमणि ने अधीर होकर उसे खोला। पहले शीर्षक पर नजर पड़ते ही उसकी आँखों में जैसे नशा छा गया। अज्ञात रूप से गर्दन तन गयी और चेहरा एक अलौकिक तेज से दमक उठा।

उसने आवेश में खड़ी होकर कहा — विशम्भर पकड़ लिए गये और दो साल की सजा हो गयी।

आनन्द ने विरक्त मन से पूछा — किस मुआमले में सजा हुई?

रूपमणि ने विशम्भर के फोटो को अभिमान की आँखों से देखकर कहा — रानीगंज में किसानों की विराट् सभा थी। वहीं पकड़ा है।

आनन्द — मैंने तो पहले ही कहा था, दो साल के लिए जाएँगे। जिन्दगी खराब कर डाली।

रूपमणि ने फटकार बतायी — क्या डिग्री ले लेने से ही आदमी का जीवन सफल हो जाता है? सारा ज्ञान, सारा अनुभव पुस्तकों ही में भरा हुआ है। मैं समझती हूँ, संसार और मानवी चरित्र का जितना अनुभव विशम्भर को दो सालों में हो जाएगा, उतना दर्शन और कानून की पोथियों से तुम्हें दो सौ वर्षों में भी न होगा। अगर शिक्षा का उद्देश्य चरित्रबल मानो, तो राष्ट्र-संग्राम में मनोबल के जितने साधन हैं, पेट के संग्राम में कभी हो ही नहीं सकते। तुम यह कह सकते हो कि हमारे लिए पेट की चिन्ता ही बहुत है, हमसे और कुछ हो ही नहीं सकता, हममें न उतना साहस है, न बल है, न धैर्य है, न संगठन, तो मैं मान जाऊँगी; लेकिन जातिहित के लिए प्राण देने वालों को बेवकूफ बनाना मुझसे नहीं सहा जा सकता। विशम्भर के इशारे पर आज लाखों आदमी सीना खोलकर खड़े हो जाएँगे। तुममें है जनता के सामने खड़े होने का हौसला? जिन लोगों ने तुम्हें पैरों के नीचे कुचल रखा है, जो तुम्हें कुत्तों से भी नीचे समझते हैं, उन्हीं की गुलामी करने के लिए तुम डिग्रियों पर जान दे रहे हो। तुम इसे अपने लिए गौरव की बात समझो, मैं नहीं समझती।

आनन्द तिलमिला उठा। बोला — तुम तो पक्की क्रान्तिकारिणी हो गयीं इस वक्त।

रूपमणि ने उसी आवेश में कहा — अगर सच्ची-खरी बातों में तुम्हें क्रान्ति की गन्ध मिले, तो मेरा दोष नहीं।

'आज विशम्भर को बधाई देने के लिए जलसा जरूर होगा। क्या तुम उसमें जाओगी?'

रूपमणि ने उग्रभाव से कहा — जरूर जाऊँगी, बोलूँगी भी, और कल रानीगंज भी चली जाऊँगी। विशम्भर ने जो दीपक जलाया है, वह मेरे जीते-जी बुझने न पाएगा।

आनन्द ने डूबते हुए आदमी की तरह तिनके का सहारा लिया — अपनी अम्माँ और दादा से पूछ लिया है?

'पूछ लूँगी!'

और वह तुम्हें अनुमति भी दे देंगे?'

सिद्धान्त के विषय में अपनी आत्मा का आदेश सर्वोपरि होता है।'

'अच्छा, यह नयी बात मालूम हुई।'

यह कहता हुआ आनन्द उठ खड़ा हुआ और बिना हाथ मिलाये कमरे के बाहर निकल गया। उसके पैर इस तरह लड़खड़ा रहे थे, कि अब गिरा, अब गिरा।

इज़्ज़त का ख़ून

मैंने कहानियों और इतिहासों मे तकदीर के उलट फेर की अजीबो-गरीब दास्तानें पढ़ा हैं। शाह को भिखमंगा और भिखमंगें को शाह बनते देखा है तकदीर एक छिपा हुआ भेद हैं। गालियों में टुकड़े चुनती हुई औरतें सोने के सिंहासन पर बैठ गई और वह ऐश्वर्य के मतवाले जिनके इशारे पर तकदीर भी सिर झुकाती थी,आन की शान में चील कौओं का शिकार बन गये है।पर मेरे सर पर जो कुछ बीती उसकी नजीर कहीं नहीं मिलती आह उन घटनाओं को आज याद करती हूँ तो रोंगटे खड़े हो जाते है।और हैरत होती है। कि अब तक मै क्यो और क्योंकर जिन्दा हूँ। सौन्दर्य लालसाओं का स्त्रोत हैं। मेरे दिल में क्या लालसाएँ न थीं पर आह,निष्ठुर भाग्य के हाथों में मिटीं। मै क्या जानती थी कि वह आदमी जो मेरी एक-एक अदा पर कुर्बान होता था एक दिन मुझे इस तरह जलील और बर्बाद करेगा।

आज तीन साल हुए जब मैने इस घर में कदम रक्खा उस वक्त यह एक हरा भरा चमन था।मै इस चमन की बुलबुल थी, हवा में उड़ती थी, डालियों पर चहकती थी, फूलों पर सोती थी। सईद

मेरा था। मै सईद की थी। इस संगमरमर के हौज के किनारे हम मुहब्बत के पासे खेलते थे। — तुम मेरी जान हो। मै उनसे कहती थी — तुम मेरे दिलदार हो। हमारी जायदाद लम्बी चौड़ी थी। जमाने की कोई फ्रिक,जिन्दगी का कोई गम न था। हमारे लिए जिन्दगी सशरीर आनन्द एक अनन्त चाह और बहार का तिलिस्म थी, जिसमें मुरादे खिलती थी। और खुशियाँ हँसती थी जमाना हमारी इच्छाओं पर चलने वाला था। आसमान हमारी भलाई चाहता था। और तकदीर हमारी साथी थी।

एक दिन सईद ने आकर कहा — मेरी जान, मै तुमसे एक विनती करने आया हूँ। देखना इन मुस्कराते हुए होठों पर इनकार का हर्फ न आये। मै चाहता हूँ कि अपनी सारी मिलकियत, सारी जायदाद तुम्हारे नाम चढ़वा दूँ मेरे लिए तुम्हारी मुहब्बत काफी है। यही मेरे लिए सबसे बड़ी नेमत है मै अपनी हकीकत को मिटा देना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि तुम्हारे दरवाजे का फकीर बन करके रहूँ। तुम मेरी नूरजहाँ बन जाओं; मैं तुम्हारा सलीम बनूँगा, और तुम्हारी मूंगे जैसी हथेली के प्यालों पर उम्र बसर करूँगा।

मेरी आँखें भर आयी। खुशियाँ चोटी पर पहुँचकर आँसू की बूंद बन गयीं।

2

पर अभी पूरा साल भी न गुजरा था कि मुझे सईद के मिजाज में कुछ तबदीली नजर आने लगी। हमारे दरमियान कोई लड़ाई-झगड़ा या बदमजगी न हुई थी मगर अब वह सईद न था। जिसे एक लमहे के लिए भी मेरी जुदाई दूभर थी वह अब रात की रात गायब रहता। उसकी आँखो में प्रेम की वह उमंग न थी न अन्दाजों में वह प्यास,न मिजाज में वह गर्मी। कुछ दिनों तक इस रुखेपन ने मुझे खूब रुलाया। मुहब्बत के मजे याद आ आकर तड़पा देते। मैंने पढ़ा था कि प्रेम अमर होता है। क्या, वह स्रोत इतनी जल्दी सूख गया? आह, नहीं वह अब किसी दूसरे चमन को शादाब करता था। आखिर मै भी सईद से आँखें चुराने लगी। बेदिली से नहीं, सिर्फ इसलिए कि अब मुझे उससे आँखें मिलाने की ताव न थी। उस देखते ही मुहब्बत के हजारों करिश्मे नजरों के सामने आ जाते और आँखें भर आती। मेरा दिल अब भी उसकी तरफ खिंचता था कभी-कभी बेअख्तियार जी चाहता कि उसके पैरों पर गिरूँ और कहूँ — मेरे दिलदार, यह बेरहमी क्यो? क्या तुमने मुझसे मुँह फेर लिया है। मुझसे क्या खता हुई?

लेकिन इस स्वाभिमान का बुरा हो जो दीवार बनकर रास्ते में खड़ा हो जाता।

यहाँ तक कि धीर-धीरे दिल में भी मुहब्बत की जगह हसद ने ले ली। निराशा के धैर्य ने दिल को तसकीन दी। मेरे लिए सईद अब बीते हुए बसन्त का एक भूला हुआ गीत था। दिल की गर्मी ठण्डी हो गयी। प्रेम का दीपक बुझ गया। यही नही, उसकी इज्जत भी मेरे दिल से रुखसत हो गयी। जिस आदमी के प्रेम के पवित्र मन्दिर मे मैल भरा हुआ हो वह हरगिज इस योग्य नही कि मै उसके लिए घुलूँ और मरूँ।

एक रोज शाम के वक्त मैं अपने कमरे में पंलग पर पड़ी एक किस्सा पढ़ रही थी, तभी अचानक एक सुन्दर स्त्री मेरे कमरे मे आयी। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कमरा जगमगा उठा। रूप की ज्योति ने दरो-दीवार को रोशन कर दिया। गोया अभी सफेदी हुई हैं उसकी अलंकृत शोभा, उसका खिला हुआ फूला जैसा लुभावना चेहरा उसकी नशीली मिठास, किसी तारीफ करूँ मुझ पर एक रोब सा छा गया। मेरा रूप का घमंड धूल में मिल गया है। मै आश्चर्य में थी कि यह कौन रमणी है और यहाँ क्योंकर आयी। बेअख्तियार उठी कि उससे मिलूँ और पूछूँ कि सईद भी मुस्कराता हुआ कमरे में आया मैं समझ गयी कि यह रमणी उसकी प्रेमिका है। मेरा गर्व जाग उठा। मैं उठी जरूर पर शान

से गर्दन उठाए हुए आँखों में हुस्न के रौब की जगह घृणा का भाव आ बैठा। मेरी आँखों में अब वह रमणी रूप की देवी नहीं डसने वाली नागिन थी। मै फिर चारपाई पर बैठ गई और किताब खोलकर सामने रख ली — वह रमणी एक क्षण तक खड़ी मेरी तस्वीरों को देखती रही तब कमरे से निकली चलते वक्त उसने एक बार मेरी तरफ देखा उसकी आँखों से अंगारे निकल रहे थे। जिनकी किरणों में हिंसा प्रतिशोध की लाली झलक रही थी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ — सईद इसे यहाँ क्यों लाया? क्या मेरा घमण्ड तोड़ने के लिए?

3

जायदाद पर मेरा नाम था पर वह केवल एक,भ्रम था, उस पर अधिकार पूरी तरह सईद का था। नौकर भी उसी को अपना मालिक समझते थे और अक्सर मेरे साथ ढिठाई से पेश आते। मैं सब्र के साथ जिन्दगी के दिन काट रही थी। जब दिल में उमंगें न रहीं तो पीड़ा क्यों होती?

सावन का महीना था, काली घटा छायी हुई थी, और रिमझिम बूँदें पड़ रही थी। बगीचे पर हसद का अंधेरा और सिहास दरख्तों पर

जुगनूओं की चमक ऐसी मालूम होती थी। जैसे कि उनके मुँह से चिनगारियाँ जैसी आहें निकल रही हैं। मै देर तक हसद का यह तमाशा देखती रही। कीड़े एक साथ चमकते थे और एक साथ बुझ जाते थे, गोया रोशनी की बाढें छूट रही है। मुझे भी झूला झूलने और गाने का शौक हुआ। मौसम की हालतें हसद के मारे हुए दिलों पर भरी अपना जादू कर जाती है। बगीचे में एक गोल बंगला था। मै उसमें आयी और बरामदे की एक कड़ी में झूला डलवाकर झूलने लगी। मुझे आज मालूम हुआ कि निराशा में भी एक आध्यात्मिक आनन्द होता है जिसकी हाल उसको नही मालूम जिसकी इच्छाएँ पूर्ण है। मैं चाव से मल्हार गान लगी सावन विरह और शोक का महीना है। गीत में एक वियोगी। हृदय की गाथा की कथा ऐसे दर्द भरे शब्दों बयान की गयी थी कि बरबस आँखों से आँसू टपकने लगे। इतने में बाहर से एक लालटेन की रोशनी नजर आयी। सईद दोनो चले आ रहे थे। हसीना ने मेरे पास आकर कहा — आज यहाँ नाच रंग की महफिल सजेगी और शराब के दौर चलेंगे।

मैंने घृणा से कहा — मुबारक हो।

हसीना —बारहमासे और मल्हार की ताने उड़ेगी साजिन्दे आ रहे है।

मैं — शौक से।

हसीना — तुम्हारा सीना हसद से चाक हो जाएगा।

सईद ने मुझसे कहा — जुबैदा तुम अपने कमरे में चली रही जाओ यह इस वक्त आपे में नहीं है।

हसीना — ने मेरी तरफ लाल-लाल आँखों निकालकर कहा — मैं तुम्हें अपने पैरों की धूल के बराबर भी नही समझती।

मुझे फिर जब्त न रहा। अगड़कर बोली — और मै क्या समझाती हूँ एक कुतिया दूसरों की उगली हुई हडिडयो चिचोड़ती फिरती है।

अब सईद के भी तेवर बदले मेरी तरफ भयानक आँखों से देखकर बोले — जुबैदा, तुम्हारे सर पर शैतान तो नही संवार है?

सईद का यह जुमला मेरे जिगर में चुभ गया, तड़प उठी, जिन होठों से हमेशा मुहब्बत और प्यार की बातें सुनी हो उन्ही से यह जहर निकले और बिल्कुल बेकसूर! क्या मै ऐसी नाचीज और हकी हो गयी हूँ कि एक बाजारू औरत भी मुझे छेड़कर गालियाँ दे सकती है। और मेरा जबान खोलना मना! मेरे दिल में साल भर से जो बुखार हो रहा था, वह उछल पड़ा। मै झूले से उतर पड़ी और सईद की तरफ शिकायत-भरी निगाहों से देखकर बोली —

शैतान मेरे सर पर सवार हो या तुम्हारे सर पर, इसका फैसला तुम खुद कर सकते हों। सईद, मै तुमको अब तक शरीफ और गैरतवाला समझती थी, तुम खुद कर सकते हो। बेवफाई की, इसका मलाल मुझे जरूर था, मगर मैंने सपनों में भी यह न सोचा था कि तुम गैरत से इतने खाली हो कि हया-फरोश औरत के पीछे मुझे इस तरह जलीज करोगें। इसका बदला तुम्हें खुदा से मिलेगा।

हसीना ने तेज होकर कहा — तू मुझे हया फरोश कहती है?

मैं — बेशक कहती हूँ।

सईद — और मै बेगैरत हूँ?

मैं — बेशक! बेगैरत ही नहीं शोबदेबाज, मक्कार पापी सब कुछ। यह अल्फाज बहुत घिनावने है लेकिन मेरे गुस्से के इजहार के लिए काफी नहीं।

मै यह बातें कह रही थी कि यकायक सईद के लम्बे तगडे, हटटे कट्टे नौकर ने मेरी दोनो बाहें पकड़ ली और पलक मारते भर में हसीना ने झूले की रस्सियाँ उतार कर मुझे बरामदे के एक लोहे के खम्भे से बाध दिया।

इस वक्त मेरे दिल में क्या ख्याल आ रहे थे। यह याद नहीं पर मेरी आँखो के सामने अंधेरा छा गया था। ऐसा मालूम होता था कि यह तीनों इंसान नहीं यमदूत है गुस्से की जगह दिल में डर समा गया था। इस वक्त अगर कोई रौबी ताकत मेरे बन्धनों को काट देती, मेरे हाथों में आबदार खंजर दे देती तो भी तो जमीन पर बैठकर अपनी जिल्लत और बेकसी पर आँसू बहाने के सिवा और कुछ न कर सकती। मुझे ख्याल आता था कि शायद खुदा की तरफ से मुझ पर यह कहर नाजिल हुआ है। शायद मेरी बेनमाजी और बेदीनी की यह सजा मिल रहा है। मैं अपनी पिछली जिन्दगी पर निगाह डाल रही थी कि मुझसे कौन सी गलती हुई हौ जिसकी यह सजा है। मुझे इस हालत में छोड़कर तीनों सूरते कमरे में चली गयीं। मैंने समझा मेरी सजा खत्म हुई लेकिन क्या यह सब मुझे यो ही बँधा रक्खेगे? लौडियाँ मुझे इस हालत में देख ले तो क्या कहें? नहीं अब मै इस घर में रहने के काबिल ही नही। मै सोच रही थी कि रस्सियाँ क्यों कर खोलूँ मगर अफसोस मुझे न मालूम था कि अभी तक जो मेरी गति हुई है वह आने वाली बेरहमियो का सिर्फ बयाना है। मै अब तक न जानती थी कि वह छोटा आदमी कितना बेरहम, कितना कातिल है मै अपने दिल से बहस कर रही थी कि अपनी इस जिल्लत मुझ पर कहाँ तक है अगर मैं हसीना की उन दिल जलाने वाली बातों

को जवाब न देती तो क्या यह नौबत,न आती? आती और जरूर आती। वहा काली नागिन मुझे डसने का इरादा करके चली,थी इसलिए उसने ऐसे दिल दुखाने वाले लहजे में ही बात शुरु की थी। मै गुस्से मे आकर उसको लान तान करूँ और उसे मुझे जलील करने का बहाना मिल जाय।

पानी जोर से बरसने लगा, बौछारों से मेरा सारा शरीर तर हो गया था। सामने गहरा अंधेरा था। मैं कान लगाये सुन रही थी कि अन्दर क्या मिसकौट हो रही है मगर मेह की सनसनाहट के कारण आवाजें साफ न सुनायी देती थी। इतने लालटेन फिर से बरामदे में आयी और तीनों डरावनी सूरते फिर सामने आकर खड़ी हो गयी। अब की उस खून परी के हाथों में एक पतली सी कमची थी उसके तेवर देखकर मेरा खून सर्द हो गया। उसकी आँखो मे एक खून पीने वाली वहशत एक कातिल पागलपन दिखाई दे रहा था। मेरी तरफ शरारत-भरी नजरों से देखकर बोली — बेगम साहबा,मै तुम्हारी बदजबानियों का ऐसा सबक देना चाहती हूँ। जो तुम्हें सारी उम्र याद रहे। और मेरे गुरु ने बतलाया है कि कमची से ज्यादा देर तक ठहरने वाला और कोई सबक नहीं होता।

यह कहकर उस जालिम ने मेरी पीठ पर एक कमची जोर से मारी। मै तिलमिला गयी मालूम हुआ। कि किसी ने पीठ पर

आग की चिंगारी रख दी। मुझे से जब्त न हो सका माँ बाप ने कभी फूल की छड़ी से भी न मारा था। जोर से चीखे मार मारकर रोने लगी। स्वाभिमान, लज्जा सब लुप्त हो गयी। कमची की डरावनी और रौशन असलियत के सामने और भावनाएँ गायब हो गयीं। उन हिन्दू देवियो के दिल शायद लोहे के होते होगे जो अपनी आन पर आग में कूद पड़ती थी। मेरे दिल पर तो इस दिल पर तो इस वक्त यही खयाल छाया हुआ था कि इस मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो सईद तस्वीर की तरह खामोश खड़ा था। मैं उसकी तरफ फरियाद की आँखें से देखकर बड़े विनती के स्वर में बोली — सईद खुदा के लिए मुझे इस जालिम से बचाओ,मै तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ, तुम मुझे जहर दे दो, खंजर से गर्दन काट लो लेकिन यह मुसीबत सहने की मुझमें ताब नहीं। उन दिलजोइयों को याद करों, मेरी मुहब्बत का याद करो, उसी क सदके इस वक्त मुझे इस अजाब से बचाओ, खुदा तुम्हें इसका इनाम देगा।

सईद इन बातों से कुछ पिघला। हसीना की तरह डरी हुई आँखों से देखकर बोला — जरीना मेरे कहने से अब जाने दो। मेरी खातिर से इन पर रहम करो।

ज़रीना तेवर बदल कर बोली — तुम्हारी ख़ातिर से सब कुछ कर सकती हूँ, गालियाँ नहीं बर्दाश्त कर सकती।

सईद — क्या अभी तुम्हारे खयाल में गालियों की काफी सजा नहीं हुई?

जरीना — तब तो आपने मेरी इज्जत की खूब कद्र की! मैंने रानियों से चिलमचियाँ उठवायी है, यह बेगम साहबा है किस ख्याल में? मै इसे अगर कुछ छुरी से काटूँ तब भी इसकी बदजबानियों की काफ़ी सजा न होगी।

सईद — मुझसे अब यह जुल्म नहीं देखा जाता।

ज़रीना — आँखें बन्द कर लो।

सईद — जरीना, गुस्सा न दिलाओ, मैं कहता हूँ, अब इन्हें माफ़ करो।

ज़रीना ने सईद को ऐसी हिकारत-भरी आँखों से देखा गोया वह उसका गुलाम है। खुदा जाने उस पर उसने क्या मन्तर मार दिया था कि उसमें ख़ानदानी ग़ैरत और बड़ाई ओ इन्सानियत का ज़रा भी एहसास बाकी न रहा था। वह शायद उसे गुस्से जैसे मर्दाना जज्बे के क़ाबिल ही न समझती थी। हुलिया पहचानने वाले कितनी गलती करते हैं क्योंकि दिखायी कुछ पड़ता है, अन्दर कुछ होता है! बाहर के ऐसे सुन्दर रूप के परदे में इतनी बेरहमी, इतनी निष्ठुरता! कोई शक नहीं, रूप हुलिया पहचानने की विद्या का दुश्मन है। बोली — अच्छा तो अब आपको मुझ पर गुस्सा

आने लगा! क्यों न हो, आखिर निकाह तो आपने बेगम ही से किया है। मैं तो हया-फरोश कुतिया ही ठहरी!

सईद — तुम ताने देती हो और मुझसे यह खून नहीं देखा जाता।

ज़रीना — तो यह क़मची हाथ में लो, और इसे गिनकर सौ लगाओ। गुस्सा उतर जाएगा, इसका यही इलाज है।

ज़रीना — फिर वही मजाक।

ज़रीना — नहीं, मैं मज़ाक नहीं करती।

सईद ने क़मची लेने को हाथ बढ़ाया मगर मालूम नहीं जरीना को क्या शुबहा पैदा हुआ, उसने समझा शायद वह क़मची को तोड़ कर फेंक देंगे। क़मची हटा ली और बोली — अच्छा मुझसे यह दगा! तो लो अब मैं ही हाथों की सफाई दिखाती हूँ। यह कहकर उसे बेदर्द ने मुझे बेतहाशा कमचियाँ मारना शुरु कीं। मैं दर्द से ऐंठ-ऐंठकर चीख रही थी। उसके पैरों पड़ती थी, मिन्नतें करती थी, अपने किये पर शर्मिन्दा थी, दुआएँ देती थी, पीर और पैगम्बर का वास्ता देती थी, पर उस क़ातिल को ज़रा भी रहम न आता था। सईद काठ के पुतले की तरह दर्दो-सितम का यह नज्जारा आँखो से देख रहा था और उसको जोश न आता था। शायद मेरा बड़े-से-बड़े दुश्मन भी मेरे रोने-धोने पर तरस खाता मेरी पीठ छिलकर लहूलुहान हो गयी, जख़्म पड़ते थे, हरेक चोट आग के

शोले की तरह बदन पर लगती थी। मालूम नहीं उसने मुझे कितने दर्रे लगाये, यहाँ तक कि क़मची को मुझ पर रहम आ गया, वह फटकर टूट गयी। लकड़ी का कलेजा फट गया मगर इन्सान का दिल न पिघला।

4

मुझे इस तरह जलील और तबाह करके तीनों ख़बीस रहें वहाँ से रुखसत हो गयीं। सईद के नौकर ने चलते वक्त मेरी रस्सियाँ खोल दीं। मैं कहाँ जाती? उस घर में क्योंकर क़दम रखती?

मेरा सारा जिस्म नासूर हो रहा था लेकिन दिल नके फफोले उससे कहीं ज्यादा जान लेवा थे। सारा दिल फफोलों से भर उठा था। अच्छी भावनाओं के लिए भी जगह बाक़ी न रही थी। उस वक्त मैं किसी अंधे को कुँए में गिरते देखती तो मुझे हँसी आती, किसी यतीम का दर्दनाक रोना सुनती तो उसका मुँह चिढ़ाती। दिल की हालत में एक ज़बर्दस्त इंकलाब हो गया था। मुझे गुस्सा न था, गम न था, मौत की आरजू न थी, यहाँ तक कि बदला लेने की भावना न थी। उस इन्तहाई जिल्लत ने बदला लेने की इच्छा को भी खत्म कर दिया था। हालांकि मैं चाहती

तो कानूनन सईद को शिकंजे में ला सकती थी, उसे दाने-दाने के लिए तरसा सकती थी लेकिन यह बेइज्ज़ती, यह बेआबरुई, यह पामाली बदले के खयाल के दायरे से बाहर थी। बस, सिर्फ़ एक चेतना बाकी थी और वह अपमान की चेतना थी। मैं हमेशा के लिए ज़लील हो गयी। क्या यह दाग़ किसी तरह मिट सकता था? हरगिज नहीं। हाँ, वह छिपाया जा सकता था और उसकी एक ही सूरत थी कि जिल्लत के काले गड्ढे में गिर पड़ूँ ताकि सारे कपड़ों की सियाही इस सियाह दाग को छिपा दे। क्या इस घर से बियाबान अच्छा नहीं जिसके पेंदे में एक बड़ा छेद हो गया हो? इस हालत में यही दलील मुझ पर छा गयी। मैंने अपनी तबाही को और भी मुकम्मल, अपनी जिल्लत को और भी गहरा, आने काले चेहरे को और भी काला करने का पक्का इरादा कर लिया। रात-भर मैं वहीं पड़ी कभी दर्द से कराहती और कभी इन्हीं खयालात में उलझती रही। यह घातक इरादा हर क्षण मजबूत से और भी मजबूत होता जाता था। घर में किसी ने मेरी खबर न ली। पौ फटते ही मैं बाग़ीचे से बाहर निकल आयी, मालूम नहीं मेरी लाज-शर्म कहाँ गायब हो गयी थी। जो शख्स समुन्दर में ग़ोते खा चुका हो उसे ताले-तलैयों का क्या डर? मैं जो दरो-दीवार से शर्माती थी, इस वक्त शहर की गलियों में बेधड़क चली जा रही थी — चोर कहाँ, वहीं जहां जिल्लत की कद्र है, जहां

किसी पर कोई हँसने वाला नहीं, जहां बदनामी का बाज़ार सजा हुआ है, जहां हया बिकती है और शर्म लुटती है!

इसके तीसरे दिन रूप की मंडी के एक अच्छे हिस्से में एक ऊँचे कोठे पर बैठी हुई मैं उस मण्डी की सैर कर रही थी। शाम का वक्त था, नीचे सड़क पर आदमियों की ऐसी भीड़ थी कि कंधे से कंधा छिलता था। आज सावन का मेला था, लोग साफ़-सुथरे कपड़ पहने क़तार की क़तार दरिया की तरफ़ जा रहे थे। हमारे बाज़ार की बेशकीमती जिन्स भी आज नदी के किनारे सजी हुई थी। कहीं हसीनों के झूले थे, कहीं सावन की मीत, लेकिन मुझे इस बाज़ार की सैर दरिया के किनारे से ज्यादा पुरलुत्फ मालूम होती थी, ऐसा मालूम होता है कि शहर की और सब सड़कें बन्द हो गयी हैं, सिर्फ़ यही तंग गली खुली हुई है और सब की निगाहें कोठों ही की तरफ़ लगी थीं,गोया वह जमीन पर नहीं चल रहें हैं, हवा में उड़ना चाहते हैं। हाँ, पढ़े-लिखे लोगों को मैंने इतना बेधड़क नहीं पाया। वह भी घूरते थे मगर कनखियों से। अधेड़ उम्र के लोग सबसे ज्यादा बेधड़क मालूम होते थे। शायद उनकी मंशा जवानी के जोश को जाहिर करना था। बाजार क्या था एक लम्बा-चौड़ा थियेटर था, लोग हंसी-दिल्लगी करते थे, लुत्फ उठाने के लिए नहीं, हसीनों को सुनाने के लिए। मुँह दूसरी तरफ़ था,

निगाह किसी दूसरी तरफ़। बस, भांडों और नक्कालों की मजलिस थी।

यकायक सईद की फिटन नजर आयी। मैं उस पर कई बार सैर कर चुकी थी। सईद अच्छे कपड़े पहने अकड़ा हुआ बैठा था। ऐसा सजीला, बाँका जवान सारे शहर में न था, चेहरे-मोहरे से मर्दानापन बरसता था। उसकी आँख एक बारे मेरे कोठे की तरफ़ उठी और नीचे झुक गयी। उसके चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गयी जेसे किसी जहरीले साँप ने काट खाया हो। उसने कोचवान से कुछ कहा, दम के दम में फिटन हवा हो गयी। इस वक्त उसे देखकर मुझे जो द्वेषपूर्ण प्रसन्नता हुई, उसके सामने उस जानलेवा दर्द की कोई हक़ीक़त न थी। मैंने जलील होकर उसे जलील कर दिया। यक कटार कमचियों से कहीं ज्यादा तेज थी। उसकी हिम्मत न थी कि अब मुझसे आँख मिला सके। नहीं, मैंने उसे हरा दिया, उसे उम्र-भर के दिलए कैद में डाल दिया। इस कालकोठरी से अब उसका निकलना गैर-मुमकिन था क्योंकि उसे अपने खानदान के बड़प्पन का घमण्ड था।

दूसरे दिन भोर में खबर मिली कि किसी क़ातिल ने मिर्जा सईद का काम तमाम कर दिया। उसकी लाश उसी बागीचे के गोल कमरे में मिलीं सीने में गोली लग गयी थी। नौ बजे दूसरे खबर सुनायी दी, जरीना को भी किसी ने रात के वक्त़ क़त्ल कर डाला

था। उसका सर तन जुदा कर दिया गया। बाद को जांच-पड़ताल से मालूम हुआ कि यह दोनों वारदातें सईद के ही हाथों हुई। उसने पहले जरीना को उसके मकान पर क़त्ल किया और तब अपने घर आकर अपने सीने में गोली मारी। इस मर्दाना गैरतमन्दी ने सईद की मुहब्बत मेरे दिल में ताजा कर दी।

शाम के वक्त़ मैं अपने मकान पर पहुँच गयी। अभी मुझे यहाँ से गये हुए सिर्फ चार दिन गुजरे थे मगर ऐसा मालूम होता था कि वर्षों के बाद आयी हूँ। दरो-दीवार पर हसरत छायी हुई थी। मै।ने घर में पाँव रक्खा तो बरबस सईद की मुस्कराती हुई सूरत आँखों के सामने आकर खड़ी हो गयी — वही मर्दाना हुस्न, वहीं बाँकपन, वहीं मनुहार की आँखें। बेअख्तियार मेरी आँखें भर आयी और दिल से एक ठण्डी आह निकल आयी। ग़म इसका न था कि सईद ने क्यों जान दे दी। नहीं, उसकी मुजरिमाना बेहिसी और रूप के पीछे भागना इन दोनों बातों को मैं मरते दम तक माफ़ न करूँगी। गम यह था कि यह पागलपन उसके सर में क्यों समाया? इस वक्त दिल की जो कैफ़ियत है उससे मैं समझती हूँ कि कुछ दिनों में सईद की बेवफाई और बेरहमी का घाव भर जाएगा, अपनी जिल्लत की याद भी शायद मिट जाय, मगर उसकी चन्दरोजा मुहब्बत का नक्श बाकी रहेगा और अब यही मेरी जिन्दगी का सहारा है।

[उर्दू 'प्रेम पचीसी' से]

इश्तिहारी शहीद

मेरी सादगी, मेरी सच्चाई, मेरा भोलापन मेरे लिए जी का जंजाल हो गया। आज चार सप्ताह हो गए, यह मुसीबत मैंने स्वयं अपने ऊपर ओढ़ ली और अब इससे पीछा छूटने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता। जब से मैं पेंशन लेकर रसूलाबाद आया, किताबें पढ़ने और ईश्वर का नाम लेने में समय बीतता था। शाम को कस्बे के रईस इकट्ठा होते और हँसी-मजाक में दो घड़ी बिताते। मुंशी रामखिलावन पोस्टमास्टर से अच्छी पहचान हो गई थी। यही साहब मेरी मुसीबत की जड़ हैं। जब मैं पहले-पहल यहाँ आया था तो मुंशीजी के सिर पर थोड़ा सा गंजापन था। आपके किसी दोस्त ने प्रेरित करके लाहौर के प्रसिद्ध दवाखाने इंडियन मैडीकल हाल की बाल उगाने वाली दवा की शीशी मँगवा दी। यद्यपि आप पूर्णतया सहमत नहीं थे और संकोच से यही कहते थे कि अब इस अवस्था में गंजेपन की क्या चिन्ता करूँ, तथापि एक सप्ताह पश्चात् ही साढ़े तीन रुपये की वी.पी.पी. आ टपकी और मुंशीजी ने अपने दोस्त की बात रखने को छुटा ली। कुछ महीनों के इस्तेमाल के बाद प्रभु कृपा से आपके सिर

पर बाल उग आए। अब पोस्टमास्टर साहब इस दवा को बड़ी इज्जत की दृष्टि से देखने लगे और लोक-कल्याण के लिए हर छोटे-बड़े से इसकी चर्चा करने लगे। कोई आदमी एक पोस्ट कार्ड लेने गया तो आपने दवा की प्रशंसा का पोथा ही खोल लिया। अब वह बेचारा दुहाई दे रहा है कि आज तक मेरे खानदान में कोई गंजा नहीं हुआ और मुझे इस दवा की कभी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, लेकिन आप आग्रह कर रहे हैं कि भाई सुन तो लो। न पैसे लौटाते हैं न पोस्ट कार्ड ही देते हैं। खैर, ये तो आए दिन की बातें हैं।

अब मेरा किस्सा सुनिए। एक दिन आप मुझसे कहने लगे कि न्याय की माँग है कि इस दवाखाने को एक सर्टिफिकेट दिया जाय। क्योंकि मेरा अनुभव व्यापक था और मैंने लम्बे समय तक तहसीलदार के पद पर अत्यन्त कुशलता के साथ कार्य किया था इसलिए वे इस सर्टिफिकेट को प्रमाणित कराने के लिए मेरे पास आए। मैंने भी इसे एक महत्त्वहीन बात समझकर पूरा घटना-क्रम लिखकर उसके अन्त में अपने हस्ताक्षर कर दिए। बस, मानो उसी दिन से एक नई बला मेरे सिर पर आन गिरी। अफसोस है, कैसी मनहूस घड़ी थी कि मैं आज तक इसके लिए पछता रहा हूँ।

सर्टिफिकेट पहुँचते ही दवाखाने ने उसे लाहौर के सभी दो-दो पैसे वाले अखबारों में मोटे-मोटे अक्षरों में छपवा दिया और जुल्म यह किया कि उसके साथ-साथ मेरा पता भी दे दिया। बस साहब, मैं भी उसी दिन से इश्तिहारबाजी को मानने लगा। कारखाने के मैनेजर साहब का धन्यवाद का एक लम्बा पत्र आया जिसमें उन्होंने मुझसे यह पूछा था कि मैं उनकी अन्य अनुभूत दवाइयों के सर्टिफिकेट देने के लिए क्या लूँगा। उनकी तैयार की हुई एक हाजमे की गोली थी। आपने मुझे एक धनराशि भेंट करने का आश्वासन दिया, यदि मैं यह लिखकर दे दूँ कि मेरे दोस्त का बिल्कुल सड़ा हुआ पेट इससे ठीक हो गया। यदि मैं यह लिख दूँ कि उनका मोम का तेल गठिया की रामबाण औषधि है तो वे मेरे साथ हर प्रकार का व्यवहार करने को तत्पर थे। जिस प्रकार मैनेजर साहब ने लिखा था, उससे ऐसा लगता था कि यदि मैं यह लिख दूँ कि उनका मंजन प्रयोग करने से एक बुढ़िया के अठारह वर्ष से गिरे हुए दाँत पुनः निकल आए हैं तो वे मुझे अपने कारखाने का साझीदार ही बना लेंगे। वे इसे मेरा कर्त्तव्य समझते हैं कि मैं उनके केशरंजन की एक दर्जन शीशियाँ अपने आत्मीय मित्रों को प्रयोग कराकर उन्हें इसके लाभ की सूचना दूँ। लेकिन मुझे इन सब सेवाओं से क्षमा माँगनी पड़ी। केवल यही नहीं, दूसरे दवा-विक्रेताओं ने भी मुझ पर कृपा की। मुहम्मद

अफजल एण्ड संस ने बाल उगाने के पाउडर की छह पुड़िया मेरे पास इसलिए भेजीं कि यदि मेरे कुछ और दोस्त गंजे हों तो वे इस दवा का प्रयोग करके देखें, दो सप्ताह में ही उनके बाल उग आएँगे। स्वदेशी कैमीकल वर्क्स ने रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क वाली गोलियाँ पेड पार्सल के द्वारा भेजीं और बहुत अनुरोध किया कि मैं उनका प्रयोग करूँ। भगवान् न करे, यदि पोस्टमास्टर साहब के बाल फिर कभी गिर जायँ तो इसके प्रयोग से बिना बरसात की प्रतीक्षा किए बाल पुनः उग आएँगे और फिर कभी नहीं गिरेंगे। इस दावे के प्रमाणस्वरूप सौ रुपये का वांछित पुरस्कार भी लिफाफे में साथ ही भेजा गया था और इसके अतिरिक्त और बहुत से छपे हुए सर्टिफिकेट भी साथ में थे। एक रेलवे पार्सल में बहुत से इश्तिहार और दीवारों पर चिपकाए जाने वाले छह सौ पोस्टर अलग से आए। इन सब बातों से पता चला कि श्रीमानजी ने मुझे अपना आनरेरी एजेन्ट समझ लिया है। जरा यह उदारता तो देखिए — आपने मेरे माध्यम से जाने वाले आर्डर पर उचित कमीशन का भी वादा कर लिया। पचास वर्ष से बालों के सम्बन्ध में हर प्रकार का कार्य करने वाली बाल जिया कम्पनी ने भी अपने तेल की एक दर्जन नमूने की शीशियाँ भेजीं जिनसे मेरे दोस्तों के बाल थोड़े समय में ही निकल आएँ। वैदिक प्रचारक कम्पनी, जालन्धर के एजेन्ट स्वयं कष्ट उठाकर मुझसे मिलने

आए और अपनी दवा की छह डिब्बियाँ दे गए कि मेरे दोस्तों तथा परिचितों में जो गंजे शेष रह गए हों, उन पर इस दवा का प्रयोग कर देखा जाय। मतलब यह कि मैं इन कृपाओं से इतना परेशान हुआ कि मैंने लाहौर के दैनिक अखबारों में छपवा दिया कि अब मेरे कोई दोस्त गंजे शेष नहीं रहे और इसलिए अब कोई साहब अपनी मूल्यवान दवाइयाँ मेरे पास परीक्षा के लिए भेजने का कष्ट न करें। लेकिन इस पर भी मुझे छुटकारा न मिला। वास्तव में जितने प्रकार के पत्र मेरे पास आए यदि मैं उन सबकी नकल करूँ तो एक भारी भरकम किताब तैयार हो जाय।

मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जिस दिन से पोस्टमास्टर साहब के गंजेपन के अनुभव अखबारों में प्रकाशित हुए, तब से इस कस्बे की डाक चौगुनी हो गई है। कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक का कोई भी गंजा न बचा होगा जिसने पोस्टमास्टर साहब के गंजेपन और स्वदेशी मैडीकल हाल की दवा के सम्बन्ध में मुझे कम से कम दो पत्र न लिखे हों। उन हजारों पत्रों से मुझे गंजों का ऐसा अनुभव हुआ है कि यदि किसी समय गंजों पर कमीशन बैठा तो मुझे विश्वास है कि वह मेरी ही अध्यक्षता में बनेगा।

एक सज्जन ने बहुत प्रेम-प्रदर्शन के पश्चात् जिज्ञासा की कि क्या पोस्टमास्टर साहब जन्मजात गंजे थे। दूसरे सज्जन जानना चाहते

थे कि क्या उनका गंजापन वंश परम्परा से चला आता था, और यदि ऐसा था तो वह उन्हें दादा या नाना, किसकी ओर से उत्तराधिकार में मिला। और यह कि उनके खानदान की महिलाओं में तो गंजापन नहीं होता।

एक अंग्रेज डाक्टर कलकत्ता में बालों के सम्बन्ध में प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने अंग्रेजी में एक चिट्ठी लिख भेजी जिसमें सिर का एक नक्शा भी बना हुआ था। पोस्टमास्टर साहब के जो बाल गिर गए थे, उस नक्शे में उन्हें पूरे करने का निवेदन था — गंजेपन के स्थान के किनारे पर कितने बाल छोटे होकर रह गए थे? प्रतिदिन कितने बाल गिरा करते थे? और कितने बाल बीच से टूटे थे? ये डाक्टर साहब बालों के सम्बन्ध में एक पुस्तिका लिख रहे थे। उसके लिए उन्हें इस प्रकार की जानकारियों की अत्यधिक आवश्यकता थी। यदि मैं उनके उत्तर लिखने का प्रयास करता तो अवश्यम्भावी था कि मेरे परिजनों को उपचार हेतु मुझे आगरा के लिए चलता करना पड़ता।

जिला झांसी से एक सज्जन ने पूछा कि क्या ये वही मुंशी रामखिलावन हैं जो उनके कस्बे में सन् 1899 में पार्सल बाबू थे, उनके भी गंजापन था। और यदि ये वही सज्जन हों तो अभी तक उनके जिम्मे बकाया पन्द्रह दिन का मकान का किराया, जो कि सवा रुपये के हिसाब से दस आने होता है, वसूल करके डाक

द्वारा या दस्ती भेज दूँ। बनारस से एक सज्जन ने पूछा कि इन मुंशीजी के नाखून भी थे या नहीं। यदि नहीं थे तो बालों के साथ-साथ नाखून भी निकले या नहीं। एक पंडितजी ने कृपापूर्वक लिखा कि जब ईश्वर ने उन्हें बाल नहीं दिये तो उन्हें ईश्वरेच्छा के विरुद्ध बाल उगाने की क्या आवश्यकता थी। आप समझिए कि इन बातों से ईश्वर बहुत रुष्ट होते हैं। दूसरे यह कि गंजा भागवान और पुत्रवान होता है।

फिर मेरे दोस्त ने ऐसी गलती क्यों की! तीसरे यह कि अब तो जो हुआ सो हुआ, अब वे इसके प्रायश्चित्त में प्रत्येक एकादशी को एक निर्धन ब्राह्मण को भोजन करा दिया करें और कभी ऊँट-गाड़ी की सवारी न करें।

हजरत 'हकीर' लखनवी ने मेरे दोस्त के बाल उगने की प्रसन्नता में एक कसीदा लिखकर मेरे पास भेजा। हजरत नूर ने गंजेपन के हकीम से पूछा कि क्या जले हुए सिर पर भी पुनः बाल निकल सकते हैं। पटना के एक सज्जन ने तो हद ही कर दी। आपने अपने विवाह का छपा हुआ निमन्त्रण-पत्र और जन्म-पत्री ही भेज दी। अजीमाबाद से एक हकीम साहब ने लिखा कि यदि मैं दो हजार रुपये उनके पास अमानत के रूप में जमा कर दूँ तो वे अपनी अनुभूत दवाइयों के इश्तिहार दें और नफे में भागीदार बनाएँ। जिन्होंने अपने घोड़े के बाल बहुत अधिक कटवा दिए थे,

ऐसे एक सज्जन ने मुझसे उपचार पूछा कि कब तक बाल पुनः निकल सकते हैं और यह कि पोस्टमास्टर साहब की दवा से लाभ होगा या नहीं। डिप्टी झमक लाल साहब ने पूछा कि उनकी कुतिया के बाल गर्मी में गिर जाते हैं और जानवरों पर इस दवा का क्या प्रभाव होता है।

एक सज्जन का बच्चा गलती से इस दवा को पी गया और इसलिए उन्होंने मुझसे यह पूछा कि बच्चे के पेट के अन्दर तो बाल नहीं निकलेंगे और उसका दम तो नहीं घुटने लगेगा। उन्होंने मुझसे सलाह भी माँगी कि यदि उसे बालसफा की एक शीशी पिला दें तो कैसा रहे ताकि बाल निकलने के साथ-साथ ही साफ भी होते चलें।

कम मूछों वाले जवानों के एक हजार तीन सौ बयालीस पत्र आए जिन्होंने यह पूछा कि क्या इस दवा से उनकी मूछें बढ़ जायँगी। एक सज्जन को मूछों की कमी के कारण पुलिस का एक पद नहीं मिलता था। उन्होंने बहुत अनुनय-विनय की कि जैसे भी सम्भव हो, उनकी मूछों के लिए किसी भी मूल्य की कोई दवा देखकर भेज दी जाय। कई हजार नौजवानों ने पूछा कि क्या इस दवा के प्रयोग से उनकी पत्नियों के बाल कमर तक पहुँच सकते हैं?

दूर-दूर के स्थानों से हजारों आदमी मुझसे मिलने और मेरी राय माँगने आए। सच पूछिए तो उन सभी ने मेरी बोलती बन्द कर दी। खाना-पीना, उठना-बैठना, मेल-जोल, स्नान-ध्यान सब हराम हो गया। मतलब यह है कि जिस समय देखिए कोई न कोई सज्जन आए डटे बैठे हैं। जहाँ कहीं बाहर जाता वहाँ भी यह बला मेरे साथ-साथ ही रहती। एक बार की बात है कि मैं एक आत्मीय के विवाह में एक दूसरे शहर में गया। वहाँ भी सारे शहर के गंजे मेरे दर्शनों को आए।

एक सज्जन ने तार देकर मुझसे पूछा कि क्या मुंशी रामखिलावन साहब दवा का प्रयोग करने से पहले सुबह-शाम, दोनों समय अपना सिर पानी से धोया करते थे। और यह कि वे दवा की मालिश किसी नौकर से कराते थे या स्वयं करते थे। एक दिन मैं हजामत बनवा रहा था। मेरी नाक पकड़े हुए नाई उस्तरा साफ कर रहा था कि एक सज्जन दौड़ते हुए आए। पता चला कि आप स्नान कर रहे थे कि आपके सिर के दो बाल हाथ में आ गए। बस फिर क्या था, उस समय से ही खाना-पीना सब हराम है और इस होने वाले गंजेपन के भय से दुखी हैं। और, मुझसे उपचार पूछने के लिए लगभग दो सौ मील से आ उपस्थित हुए और मुझे हकीम का विरुद दे दिया।

एक बार मुझे सूचना मिली कि किसी समय मुझ पर बहुत कृपालु रहे जौनपुर के कमिश्नर मिस्टर एडम्स साहब बहादुर शाम की गाड़ी से मेरे कस्बे के स्टेशन से होते हुए जा रहे हैं। मुझे उनकी कृपाएँ याद थीं और भैया के सम्बन्ध में भी स्मरण कराना था, इसलिए मैं उनसे भेंट करने स्टेशन को गया। रेल पर लोगों ने मेरी खुशबू सूँघ ली। फिर क्या था, सैकड़ों यात्रियों ने मुझे घेर लिया। कोई सज्जन कुछ पूछते हैं, कोई सज्जन कुछ और मुझे साहब से भेंट नहीं करने देते। इस बखेड़े से मेरा पूरा उद्देश्य, जिसके लिए मैं इतनी दूर से आया था, व्यर्थ हो गया और मैं दाँत पीसकर रह गया। हाय! मैंने कैसे बुरे समय में सर्टिफिकेट को प्रमाणित किया था कि यह बला किसी क्षण भी पीछा नहीं छोड़ती।

किसी समय मैं घर से बाहर निकला। कोई सज्जन पूछ रहे हैं कि हजरत, बालों के लिए पगड़ी बाँधना लाभदायक है या टोपी पहनना। और टोपियों में कौन सी टोपी को वरीयता दी जाय।

यदि कोई व्यक्ति तुर्की टोपी पहनने का अभ्यस्त हो और फिर एकदम बिना सूचना के फैल्ट कैप पहनने लगे तो उसके बाल गिरने लगे। यदि मोटे कपड़े की टोपी पहनने वाला महीन कपड़े की टोपी पहनने लगे, तो इसमें किसी प्रकार के भय की तो बात नहीं है। एक सज्जन रात को दो बजे की गाड़ी से जाने वाले

थे। स्टेशन जाते समय मेरे मकान से गुजरे। मुझे जगाया, मैं बाहर आया। दुआ-सलाम के बाद आपने पूछा कि रेल की यात्रा में रात के समय टोपी पहने रहें या उतारकर रख दें। इसके पश्चात् कहा कि मैं उनकी टोपी को तोलकर देख लूँ कि वह उनके दिमाग के लिए भारी तो नहीं है क्योंकि आपको स्मरण होता है कि कभी किसी अखबार में आपने टोपी के वजन और स्मरण-शक्ति के सम्बन्ध में कुछ पढ़ा या सुना था। आपने यह भी कहा कि मेरी टोपी में ऊपर की ओर छेद नहीं है और अब नये प्रकार की टोपियाँ आई हैं, जिनमें छेद होते हैं। इसलिए मैं भी अपनी टोपी में छेद कर लूँ या लखनऊ के प्रसिद्ध टोपी वाले मियाँ नजफुद्दीन से छेद करा लूँ। मैं आश्चर्यचकित था कि क्या उत्तर दूँ। अन्ततः राम-राम करके घड़ी देखकर आपने कहा कि अब गाड़ी का समय निकट है, मैं फिर कभी कष्ट दूँगा। मैंने इतमीनान की साँस ली कि जान बची लाखों पाए।

किस्सा यह है कि अब मेरी जान पर आ बनी है। अफसोस, मेरी जान का बीमा नहीं हुआ है अन्यथा मैं आत्महत्या कर लेता। अब तो जान देने में पेंशन की चिन्ता होती है। मैंने साढ़े चौंतीस साल बहुत सख्त अधिकारियों की देख-रेख में काम किया है, बहुत से मोर्चे जीत चुका हूँ लेकिन यह बला सिर से किसी प्रकार भी टाले नहीं टलती। आह, मेरी भलमनसाहत मेरे गले पड़ी और अब

मेरी जान संकट में है। यह मुसीबत अब बिल्कुल असहनीय है। मैंने नौकरों को बार-बार समझाकर कहा और बर्खास्त कर देने की भी धमकी दी कि प्रत्येक व्यक्ति से पहले काम पूछ ले तभी मुझे उसकी सूचना दे। और यदि उसके गंजापन हो या बालों की चर्चा करे तो उसे किसी मूल्य पर भी मकान में न घुसने दे, चाहे वह कितना ही आत्मीय क्यों न हो।

लेकिन उस दिन जब मैं बैठक में आया तो एक सज्जन एक घंटे से डटे हुए बैठे मिले। आपने बहुत सम्मान के साथ प्रणाम किया। मेरा माथा ठनका लेकिन मुझे चाहे-अनचाहे बैठना पड़ा। अब श्रीमान् उठे और सब दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द करके धीरे से बोले कि कोई सुनता तो न होगा। मैं घबराया कि यह व्यक्ति अवश्य ही मेरी हत्या करने आया है। मैं भी अपनी जान से ऊब चला था फिर भी मैंने यह कहना आवश्यक समझा कि भाई ठहर जाओ, मैं अपने वसीयत-नामे पर हस्ताक्षर कर लूँ। इसके उत्तर में उसने अपनी टोपी मेरे पैरों में रख दी और मुझसे वादा करा लिया कि मैं उसके किस्से की चर्चा किसी से न करूँ। इस शपथ-सौगन्ध के पश्चात् उसने अपने सिर से नकली बाल उतार डाले और तब मुझे पता चला कि उसके सिर पर एक भी बाल नहीं था। वह कहने लगा कि इन नकली बालों से उसे बहुत कष्ट होता है लेकिन नौकरी के कारण यह ढोंग बनाया है

और उपचार के लिए आपकी सलाह लेने आया हूँ। उसने अपनी जेब से एक आतशी शीशा निकालकर मुझे दिया, दो रुपये भी भेंट किए और कहा कि इस दूरबीन से मेरा सिर देखकर बताइए कि कहीं यह असाध्य तो नहीं है। मैंने उसको मुंशी रामखिलावन के पास भेजा और इस प्रकार इस अटल बला को अपने सिर से टाला।

अब श्रीमान्, मुझको अफसोस के अतिरिक्त अपने भाग्य पर रोना आता है। ईश्वर की सौगन्ध, अब कभी मुझसे ऐसी गलती नहीं होगी। मैं अपनी वसीयत में शर्त लगा जाऊँगा कि मेरे कुनबे में कभी कोई व्यक्ति किसी भी दवा को प्रमाणित न करे अन्यथा ब्रूह्मज्ञानी मित्र इस ईश्वर के बंदे को भी पागल बना देंगे। अब चाहे स्वयं हजरत ईसा मसीह ही क्यों न कहें, लेकिन इस पापी से पुनः इसे प्रमाणित करने की गलती नहीं होगी। जिस मुसीबत में मैं स्वयं अपनी मूर्खता से आ फँसा हूँ, उसे मैं मात्र लोक-कल्याण की दृष्टि से सार्वजनिक कर रहा हूँ ताकि देश के अन्य निर्दोष व्यक्ति इस बला से सुरक्षित रहें। पोस्टमास्टर साहब और दवा विक्रेताओं को मैं इसके अतिरिक्त और क्या कहूँ कि भगवान् भला करें।

शेष कृपा!

[‘जमाना’ के अप्रैल-मई 1915 के संयुक्तांक से]

कर्मों का फल

मुझे हमेशा आदमियों के परखने की सनक रही है और अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि यह अध्ययन जितना मनोरंजक, शिक्षाप्रद और उद्‌धाटनों से भरा हुआ है, उतना शायद और कोई अध्ययन न होगा। लेकिन अपने दोस्त लाला साईंदयाल से बहुत अर्से तक दोस्ती और बेतकल्लुफी के सम्बन्ध रहने पर भी मुझे उनकी थाह न मिली। मुझे ऐसे दुर्बल शरीर में ज्ञानियों की-सी शान्ति और संतोष देखकर आश्चर्य होता था जो एक़ नाजुक पौधे की तरह मुसीबतों के झोंकों में भी अचल और अटल रहता था। ज्यों वह बहुत ही मामूली दरजे का आदमी था जिसमें मानव कमजोरियों की कमी न थी। वह वादे बहुत करता था लेकिन उन्हें पूरा करने की जरूरत नहीं समझता था। वह मिथ्याभाषी न हो लेकिन सच्चा भी न था। बेमुरौवत न हो लेकिन उसकी मुरौवत छिपी रहती थी। उसे अपने कर्त्तव्य पर पाबन्द रखने के लिए दबाव ओर निगरानी की जरूरत थी, किफायतशारी के उसूलों से बेखबर, मेहनत से जी चुराने वाला, उसूलों का कमजोर, एक ढीला-ढाला मामूली आदमी था। लेकिन जब कोई मुसीबत सिर

पर आ पड़ती तो उसके दिल में साहस और दृढ़ता की वह जबर्दस्त ताकत पैदा हो जाती थी जिसे शहीदों का गुण कह सकते हैं। उसके पास न दौलत थी न धार्मिक विश्वास, जो ईश्वर पर भरोसा करने और उसकी इच्छाओं के आगे सिर झुका देने का स्त्रोत है। एक छोटी-सी कपड़े की दुकान के सिवाय कोई जीविका न थी। ऐसी हालतों में उसकी हिम्मत और दृढ़ता का सोता कहाँ छिपा हुआ है, वहाँ तक मेरी अन्वेषण-दृष्टि नहीं पहुँचती थी।

2

बाप के मरते ही मुसीबतों ने उस पर छापा मारा कुछ थोड़ा-सा कर्ज विरासत में मिला जिसमें बराबर बढ़ते रहने की आश्चर्यजनक शक्ति छिपी हुई थी। बेचारे ने अभी बरसी से छुटकारा नहीं पाया था कि महाजन ने नालिश की और अदालत के तिलस्मी अहाते में पहुँचते ही यह छोटी-सी हस्ती इस तरह फूली जिस तरह मशक फलती है। डिग्री हुई। जो कुछ जमा-जथा थी; बर्तन-भाँड़ें, हाँडी-तवा, उसके गहरे पेट में समा गये। मकान भी न बचा। बेचारे मुसीबतों के मारे साईंदयाल का अब

कहीं ठिकाना न था। कौड़ी-कौड़ी को मुहताज, न कहीं घर, न बार। कई-कई दिन फाके से गुजर जाते। अपनी तो खैर उन्हें जरा भी फिक्र न थी लेकिन बीवी थी, दो-तीन बच्चे थे, उनके लिए तो कोई-न-कोई फिक्र करनी पड़ती थी। कुनबे का साथ और यह बेसरोसामानी, बड़ा दर्दनाक दृश्य था। शहर से बाहर एक पेड़ की छाँह में यह आदमी अपनी मुसीबत के दिन काट रहा था। सारे दिन बाजारों की ख़ाक छानता। आह, मैंने एक बार उस रेलवे स्टेशन पर देखा। उसके सिर पर एक भारी बोझ था। उसका नाजुक, सुख-सुविधा में पला हुआ शरीर, पसीना-पसीना हो रहा था। पैर मुश्किल से उठते थे। दम फूल रहा था लेकिन चेहरे से मर्दाना हिम्मत और मजबूत इरादे की रोशनी टपकती थी। चेहरे से पूर्ण संतोष झलक रहा था। उसके चेहरे पर ऐसा इतमीनान था कि जैसे यही उसका बाप-दादों का पेशा है। मैं हैरत से उसका मुँह ताकता रह गया। दुख में हमदर्दी दिखलाने की हिम्मत न हुई। कई महीने तक यही कैफ़ियत रही। आखिरकार उसकी हिम्मत और सहनशक्ति उसे इस कठिन दुर्गम घाटी से बाहर निकल लायी।

3

थोड़े ही दिनों के बाद मुसीबतों ने फिर उस पर हमला किया। ईश्वर ऐसा दिन दुश्मन को भी न दिखलाये। मैं एक महीने के लिए बम्बई चला गया था, वहाँ से लौटकर उससे मिलने गया। आह, वह दृश्य याद करके आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ओर दिल डर से काँप उठता है। सुबह का वक्त था। मैंने दरवाजे पर आवाज दी और हमेशा की तरह बेतकल्लुफ अन्दर चला गया, मगर वहाँ साईंदयाल का वह हँसमुख चेहरा, जिस पर मर्दाना हिम्मत की ताजगी झलकती थी, नजर न आया। मैं एक महीने के बाद उनके घर जाऊँ और वह आँखों से रोते लेकिन होंठों से हँसते दौड़कर मेरे गले लिपट न जाय! जरूर कोई आफत है। उसकी बीवी सिर झुकाये आयी और मुझे उसके कमरे में ले गयी। मेरा दिल बैठ गया। साईंदयाल एक चारपाई पर मैले-कुचैले कपड़े लपेटे, आँखें बन्द किये, पड़ा दर्द से कराह रहा था। जिस्म और बिछौने पर मक्खियों के गुच्छे बैठे हुए थे। आहट पाते ही उसने मेरी तरफ देखा। मेरे जिगर के टुकड़े हो गये। हड्डियों का ढाँचा रह गया था। दुर्बलता की इससे ज्यादा सच्ची और करुणा तस्वीर नहीं हो सकती। उसकी बीवी ने मेरी तरफ निराशाभरी आँखों से देखा। मेरी आँसू भर आये। उस सिमटे हुए

ढाँचे में बीमारी को भी मुश्किल से जगह मिलती होगी, जिन्दगी का क्या जिक्र! आखिर मैंने धीरे पुकारा। आवाज सुनते ही वह बड़ी-बड़ी आँखें खुल गयीं लेकिन उनमें पीड़ा और शोक के आँसू न थे, सन्तोष और ईश्वर पर भरोसे की रोशनी थी और वह पीला चेहरा! आह, वह गम्भीर संतोष का मौन चित्र, वह संतोषमय संकल्प की सजीव स्मृति। उसके पीलेपन में मर्दाना हिम्मत की लाली झलकती थी। मैं उसकी सूरत देखकर घबरा गया। क्या यह बुझते हुए चिराग की आखिरी झलक तो नहीं है?

मेरी सहमी हुई सूरत देखकर वह मुस्कराया और बहुत धीमी आवाज में बोला — तुम ऐसे उदास क्यों हो, यह सब मेरे कर्मों का फल है।

4

मगर कुछ अजब बदकिस्मत आदमी था। मुसीबतों को उससे कुछ खास मुहब्बत थी। किसे उम्मीद थी कि वह उस प्राणघातक रोग से मुक्ति पायेगा। डाक्टरों ने भी जवाब दे दिया था। मौत के मुँह से निकल आया। अगर भविष्य का जरा भी ज्ञान होता तो सबसे पहले मैं उसे जहर दे देता। आह, उस

शोकपूर्ण घटना को याद करके कलेजा मुँह को आता है। धिक्कार है इस जिन्दगी पर कि बाप अपनी आँखों से अपनी इकलौते बेटे का शोक देखे।

कैसा हँसमुख, कैसा खूबसूरत, होनहार लड़का था, कैसा सुशील, कैसा मधुरभाषी, जालिम मौत ने उसे छाँट लिया। प्लेग की दुहाई मची हुई थी। शाम को गिल्टी निकली और सुबह को — कैसी मनहूस, अशुभ सुबह थी — वह जिन्दगी सबेरे के चिराग की तरह बुझ गयी। मैं उस वक्त उस बच्चे के पास बैठा हुआ था और साईंदयाल दीवार का सहारा लिए हुए खामोश आसमान की तरफ देखता था। मेरी और उसकी आँखों के सामने जालिम और बेरहम मौत ने उस बचे को हमारी गोद से छीन लिया। मैं रोते हुए साईंदयाल के गले से लिपट गया। सारे घर में कुहराम मचा हुआ था। बेचारी माँ पछाड़ें खा रही थी, बहनें दौड-दौड़कर भाई की लाश से लिपटती थीं। और जरा देर के लिए ईर्ष्या ने भी समवेदना के आगे सिर झुका दिया था — मुहल्ले की औरतों को आँसू बहाने के लिए दिल पर जोर डालने की जरूरत न थी।

जब मेरे आँसू थमे तो मैंने साईंदयाल की तरफ देखा। आँखों में तो आँसू भरे हुए थे — आह, संतोष का आँखों पर कोई बस नहीं, लेकिन चेहरे पर मर्दाना दृढ़ता और समर्पण का रंग स्पष्ट था।

इस दुख की बाढ़ और तूफानों मे भी शान्ति की नैया उसके दिल को डूबने से बचाये हुए थी।

इस दृश्य ने मुझे चकित नहीं स्तम्भित कर दिया। सम्भावनाओं की सीमाएँ कितनी ही व्यापक हों ऐसी हृदय-द्रावक स्थिति में होश-हवास और इतमीनान को कायम रखना उन सीमाओं से परे है। लेकिन इस दृष्टि से साईंदयाल मानव नहीं, अति-मानव था। मैंने रोते हुए कहा — भाईसाहब, अब संतोष की परीक्षा का अवसर है। उसने दृढ़ता से उत्तर दिया — हाँ, यह कर्मों का फल है।

मैं एक बार फिर भौंचक होकर उसका मुँह ताकने लगा।

5

लेकिन साईंदयाल का यह तपस्वियों जैसा धैर्य और ईश्वरेच्छा पर भरोसा अपनी आँखों से देखने पर भी मेरे दिल में संदेह बाकी थे। मुमकिन है, जब तक चोट ताजी है सब्र का बाँध कायम रहे। लेकिन उसकी बुनियादें हिल गयी हैं, उसमें दरारें पड़ गई हैं। वह अब ज्यादा देर तक दुख और शोक की जहरों का मुकाबला नहीं कर सकता।

क्या संसार की कोई दुर्घटना इतनी हृदयद्रावक, इतनी निर्मम, इतनी कठोर हो सकता है! संतोष और दृढ़ता और धैर्य और ईश्वर पर भरोसा यह सब उस आँधी के समान घास-फूस से ज्यादा नहीं। धार्मिक विश्वास तो क्या, अध्यात्म तक उसके सामने सिर झुका देता है। उसके झोंके आस्था और निष्ठा की जड़ें हिला देते हैं।

लेकिन मेरा अनुमान गलत निकला। साईंदयाल ने धीरज को हाथ से न जाने दिया। वह बदस्तूर जिन्दगी के कामों में लग गया। दोस्तों की मुलाकातें और नदी के किनारे की सैर और तफ़रीह और मेलों की चहल-पहल, इन दिलचस्पियों में उसके दिल को खींचने की ताकत अब भी बाकी थी। मैं उसकी एक-एक क्रिया को, एक-एक बात को गौर से देखता और पढ़ता। मैंने दोस्ती के नियम-कायदों को भुलाकर उसे उस हालत में देखा जहाँ उसके विचारों के सिवा और कोई न था। लेकिन उस हालत में भी उसके चेहरे पर वही पुरुषोचित धैर्य था और शिकवे-शिकायत का एक शब्द भी उसकी जबान पर नहीं आया।

इसी बीच मेरी छोटी लड़की चन्द्रमुखी निमोनिया की भेंट चढ़ गयी। दिन के धंधे से फुरसत पाकर जब मैं घर पर आता और उसे प्यार से गोद में उठा लेता तो मेरे हृदय को जो आनन्द और आत्मिक शक्ति मिलती थी, उसे शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता। उसकी अदाएँ सिर्फ दिल को लुभानेवाली नहीं गम को भुलानेवाली हैं। जिस वक्त वह हुमककर मेरी गोद में आती तो मुझे तीनों लोक की संपत्ति मिल जाती थी। उसकी शरारतें कितनी मनमोहक थीं। अब हुक्के में मजा नहीं रहा, कोई चिलम को गिरानेवाला नहीं! खाने में मजा नहीं आता, कोई थाली के पास बैठा हुआ उस पर हमला करनेवाला नहीं! मैं उसकी लाश को गोद में लिये बिलख-बिलखकर रो रहा था। यही जी चाहता था कि अपनी जिन्दगी का खात्मा कर दूँ। यकायक मैंने साईंदयाल को आते देखा। मैंने फौरन आँसू पोंछ डाले और उस नन्हीं-सी जान को जमीन पर लिटाकर बाहर निकल आया। उस धैर्य और संतोष के देवता ने मेरी तरफ संवेदनशील की आँखों से देखा और मेरे गले से लिपटकर रोने लगा। मैंने कभी उसे इस तरह चीखें मारकर रोते नहीं देखा। रोते-रोते उसी हिचकियाँ बंध गयीं, बेचैनी से बेसुध और बेहार हो गया। यह वही आदमी है जिसका इकलौता बेटा मरा और माथे पर बल नहीं आया। यह कायापलट क्यों?

7

इस शोक पूर्ण घटना के कई दिन बाद जबकि दुखी दिल सम्हलने लगा, एक रोज हम दोनों नदी की सैर को गये। शाम का वक्त था। नदी कहीं सुनहरी, कहीं नीली, कहीं काली, किसी थके हुए मुसाफिर की तरह धीरे-धीरे बह रही थी। हम दूर जाकर एक टीले पर बैठ गये लेकिन बातचीत करने को जी न चाहता था। नदी के मौन प्रवाह ने हमको भी अपने विचारों में डुबो दिया। नदी की लहरें विचारों की लहरों को पैदा कर देती हैं। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि प्यारी चन्द्रमुखी लहरों की गोद में बैठी मुस्करा रही है। मैं चौंक पड़ा ओर अपने आँसुओं को छिपाने के लिए नदी में मुँह धोने लगा। साईंदयाल ने कहा — भाईसाहब, दिल को मजबूत करो। इस तरह कुढ़ोगे तो जरूर बीमार हो जाओगे।

मैंने जवाब दिया — ईश्वर ने जितना संयम तुम्हें दिया है, उसमें से थोड़ा-सा मुझे भी दे दो, मेरे दिल में इतनी ताकत कहाँ।

साईंदयाल मुस्कराकर मेरी तरफ ताकने लगे।

मैंने उसी सिलसिले में कहा — किताबों में तो दृढ़ता और संतोष की बहुत-सी कहानियाँ पढ़ी हैं मगर सच मानों कि तुम जैसा दृढ़, कठिनाइयों में सीधा खड़ा रहने वाला आदमी आज तक मेरी नजर से नहीं गुजरा। तुम जानते हो कि मुझे मानव स्वभाव के अध्ययन का हमेशा से शौक है लेकिन मेरे अनुभव में तुम अपनी तरह के अकेले आदमी हो। मैं यह न मानूँगा कि तुम्हारे दिल में दर्द और घुलावट नहीं है। उसे मैं अपनी आँखों से देख चुका हूँ। फिर इस ज्ञानियों जैसे संतोष और शान्ति का रहस्य तुमने कहाँ छिपा रक्खा है? तुम्हें इस समय यह रहस्य मुझसे कहना पड़ेगा।

साईंदयाल कुछ सोच-विचार में पड़ गया और जमीन की तरफ ताकते हुए बोला — यह कोई रहस्य नहीं, मेरे कर्मों का फल है।

यह वाक्य मैंने चौथी बार उसकी जबान से सुना और बोला — जिन, कर्मों का फल ऐसा शक्तिदायक है, उन कर्मों की मुझे भी कुछ दीक्षा दो। मैं ऐसे फलों से क्यों वंचित रहूँ।

साईंदयाल ने व्यथापूर्ण स्वर में कहा — ईश्वर न करे कि तुम ऐसा कर्म करो और तुम्हारी जिन्दगी पर उसका काला दाग लगे। मैंने जो कुछ किया है, व मुझे ऐसा लज्जाजनक और ऐसा घृणित मालूम होता है कि उसकी मुझे जो कुछ सजा मिले, मैं उसे

खुशी के साथ झेलने को तैयार हूँ। आह! मैंने एक ऐसे पवित्र खानदान को, जहाँ मेरा विश्वास और मेरी प्रतिष्ठा थी, अपनी वासनाओं की गन्दगी में लिथेड़ा और एक ऐसे पवित्र हृदय को जिसमें मुहब्बत का दर्द था, जो सौन्दर्य-वाटिका की एक अनोखी-नयी खिली हुई कली थी, और सच्चाई थी, उस पवित्र हृदय में मैंने पाप और विश्वासघात का बीज हमेशा के लिए बो दिया। यह पाप है जो मुझसे हुआ है और उसका पल्ला उन मुसीबतों से बहुत भारी है जो मेरे ऊपर अब तक पड़ी हैं या आगे चलकर पडेंगी। कोई सजा, कोई दुख, कोई क्षति उसका प्रायश्चित नहीं कर सकती।

मैंने सपने में भी न सोचा था कि साईंदयाल अपने विश्वासों में इतना दृढ़ है। पाप हर आदमी से होते हैं, हमारा मानव जीवन पापों की एक लम्बी सूची है, वह कौन-सा दामन है जिस पर यह काले दाग न हों। लेकिन कितने ऐसे आदमी हैं जो अपने कर्मों की सजाओं को इस तरह उदारतापूर्वक मुस्कराते हुए झेलने के लिए तैयार हों। हम आग में कूदते हैं लेकिन जलने के लिए तैयार नहीं होते।

मैं साईंदयाल को हमेशा इज्जत की निगाह से देखता हूँ, इन बातों को सुनकर मेरी नजरों में उसकी इज्जत तिगुनी हो गयी। एक मामूली दुनियादार आदमी के सीने में एक फकीर का दिल छिपा

हुआ था जिसमें ज्ञान की ज्योति चमकती थी। मैंने उसकी तरफ श्रद्धापूर्ण आँखों से देखा और उसके गले से लिपटकर बोला — साईंदयाल, अब तक मैं तुम्हें एक दृढ़ स्वभाव का आदमी समझता था, लेकिन आज मालूम हुआ कि तुम उन पवित्र आत्माओं में हो, जिनका अस्तित्व संसार के लिए वरदान है। तुम ईश्वर के सच्चे भक्त हो और मैं तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाता हूँ।

[उर्दू 'प्रेम पचीसी' से]

कवच

बहुत दिनों की बात है, मैं एक बड़ी रियासत का एक विश्वस्त अधिकारी था। जैसी मेरी आदत है, मैं रियासत की घड़ेबन्दियों से पृथक रहता न इधर, अपने काम से काम रखता। काजी की तरह शहर के अंदेशे से दुबला न होता था। महल में आये दिन नये-नये शिगूफे खिलते रहते थे, नये-नये तमाशे होते रहते थे, नये-नये षड़यंत्रों की रचना होती रहती थी, पर मुझे किसी पक्ष से सरोकार न था। किसी की बात में दखल न देता था, न किसी की शिकायत करता, न किसी की तारीफ। शायद इसीलिए राजा साहब की मुझ पर कृपा-दृष्टि रहती थी। राजा साहब शीलवान्, दयालु, निर्भीक, उदार ओर कुछ स्वेच्छाचारी थे। रेजीडेण्ट की खुशामद करना उन्हें पसन्द न था। जिन समाचार पत्रों से दूसरी रियासतें भयभीत रहती थीं और और अपने इलाके में उन्हें आने न देती थीं, वे सब हमारी रियासत में बेरोक-टोक आते थे। एक-दो बार रेजीडेण्ट ने इस बारे में कुछ इशारा भी किया था, लेकिन राजा साहब ने इसकी बिल्कुल परवाह न की। अपने आंतरिक

शासन में वह किसी प्रकार का हस्ताक्षेप न चाहते थे, इसीलिए रेजीडेण्ट भी उनसे मन ही मन द्वेष करता था।

लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि राजा साहब प्रजावत्सल, दूरदर्शी, नीतिकुशल या मितव्ययी शासक थे। यह बात न थी। वे बड़े ही विलासप्रिय, रसिक और दुर्व्यसनी थे। उनका अधिकांश समय विषय-वासना की ही भेंट होता था। रनवास में दर्जनों रानियाँ थी, फिर भी आये दिन नई-नई चिड़ियाँ आती रहती थी। इस मद में लेशमात्र भी किफायत या कंजूसी न की जाती थी। सौन्दर्य की उपासना उनका गौण स्वभाव-सा हो गया था। इसके लिए वह दीन और ईमान तक की हत्या करने को तैयार रहते थे। वे स्वच्छन्द करना चाहते थे।, और चूंकि सरकार उन्हें बंधनों में डालना चाहती थी, वे उन्हें चिढ़ाने के लिए ऐसे मामलें में असाधारण अनुराग और उत्साह दिखाते थे, जिनमें उन्हें प्रजा की सहायता और सहानुभूति का पूरा विश्वास होता था, इसलिए प्रजा उनके दुर्गुणों को भी सदगुण समझती थी, और अखबार वाले भी सदैव उनकी निर्भीकता और प्रजा-प्रम के राग अलापते रहते थे।

इधर कुछ दिनों से एक पंजाबी औरत रनवास में दाखिल हुई थी। उसके विषय में तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई थीं। कोई कहता था, मामूली, वेश्या है, कोई ऐक्ट्रैस बतलाता था, कोई

भले घर की लड़की। न वह बहुत रूपवती थी, न बहुत तरदार, फिर भी राजा साहब उस पर दिलोजान से फ़िदा थे। राजकाज में उन्हें यों ही बहुत प्रेम न था, मगर अब तो वे उसी के हाथों बिक गये थे, वही उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गई थी। उसके लिए एक नया राज-प्रसाद बन रहा था। नित नये-नये उपहार आते रहते थे। भवन की सजावट के लिए योरोप से नई-नई सामग्रियाँ मंगवाई थी। उसे गाना और नाचना सिखाने के लिए इटली, फ्रांस, और जर्मनी के उस्ताद बुलाये गये थे। सारी रियासत में उसी का डंका बजता था। लोगों को आश्चर्य होता था कि इस रमणी में ऐसा कौन-सा गुण हैं, जिसने राजा साहब को इतना आसक्त और आकर्षित कर रखा है।

एक दिन रात को मैं भोजन करके लेटा ही था कि राजा साहब ने याद फर्माया। मन में एक प्रकार का संशय हुआ कि इस समय खिलाफ मामूल क्यों मेरी तलबी हुई! मैं राजा साहब के अन्तरंग मंत्रियों में से न था, इसलिए भय हुआ कि कहीं कोई विपत्ति तो नहीं आने वाली है। रियासतों में ऐसी दुर्घटनाएँ अक्सर होती रहती है। जिसे प्रातः काल राजा साहब की बगल में बैठे हुए देखिए, उसे संध्या समय अपनी जान लेकर रियासत के बारह भागते हुए भी देखने में आया है। मुझे सन्देह हुआ, किसी ने मेरी शिकायत तो नहीं कर दी! रियासतों में निष्पक्ष रहना भी खतरनाक

है। ऐसे आदमी का अगर कोई शत्रु नहीं होता तो कोई मित्र भी नहीं होता। मैंने तुरन्त कपड़े पहने और मन में तरह-तरह की दुष्कल्पनाएँ करता हुआ राजा साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। लेकिन पहली ही निगाह में मेरे सारे संशय मिट गये। राजा साहब के चेहरे पर क्रोध की जगह विषाद और नैराश्य का गहरा रंग झलक रहा था। आँखों में एक विचित्र याचना झलक रही थी। मुझे देखते ही उन्होंने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया, और बोले — 'क्यों जी सरदार साहब, साहब, तुमने कभी प्रेम किया है? किसी से प्रेम में अपने आपको खो बैठे हो?'

मैं समझ गया कि इस वक्त अदब और लिहाज की जरूरत नहीं। राजा साहब किसी व्यक्तिगत विषय में मुझसे सलाह करना चाहते है। निःसंकोच होकर बोला — 'दीनबंधु, मैं तो कभी इस जाल में नहीं फँसा।'

राजा साहब ने मेरी तरफ खासदान बढ़ाकर कहा — तुम बड़े भाग्यवान् हो, अच्छा हुआ कि तुम इस जाल में नहीं फंसे। यह आँखों को लुभाने वाला सुनहरा जाल है यह मीठा किन्तु घातक विष है, यह वह मधुर संगीत है जो कानों को तो भला मालूम होता है, पर हृदय को चूर-चूर कर देता है, यह वह मायामृग है, जिसके पीछे आदमी अपने प्राण ही नहीं, अपनी इल्लत तक खो बैठता है।

उन्होंने गिलास में शराब उँड़ेली और एक चुस्की लेकर बोले — जानते हो मैंने इस सरफराज के लिए कैसी-कैसी परेशानियाँ उठाई? मैं उसके भौंहों के एक इशारे पर अपना यह सिर उसके पैरों पर रख सकता था, यह सारी रियासत उसके चरणों पर अरोपित कर सकता था। इन्हीं हाथों से मैंने उसका पलंग बिछाया है, उसे हुक्का भर-भरकर पिलाया है, उसके कमरे में झाड़ू लगाई है। वह पंलग से उतरती थी, तो मैं उसकी जूती सीधी करता था। इस खिदमतगुजारी में मुझे कितना आनन्द प्राप्त होता था, तुमसे बयान नहीं कर सकता। मैं उसके सामने जाकर उसके इशारों का गुलाम हो जाता था। प्रभुता और रियासत का गरूर मेरे दिल से लुप्त हो जाता था। उसकी सेवा-सुश्रूषा में मुझे तीनों लोक का राज मिल जाता था, पर इस जालिम ने हमेशा मेरी उपेक्षा की। शायद वह मुझे अपने योग्य ही नहीं समझती थी। मुझे यह अभिलाषा ही गई है कि वह एक बार अपनी उन मस्तानी रसीली आँखों से, एक बार उन इंगुर भरे हुए होठों से मेरी तरफ मुस्कराती। मैंने समझा था शायद वह उपासना की ही वस्तु हैं, शायद उसे इन रहस्यों का ज्ञान नहीं। हाँ, मैंने समझा था, शायद अभी अल्हड़पन उसके प्रेमोदगारों पर मुहर लगाये हुए है। मैं इस आशा से अपने व्यथित हृदय को तसकीन देता था

कि कभी तो मेरी अभिलाषाएँ पूरी होंगी, कभी तो उसकी सोई हुई कल्पना जागेगी।

राजा साहब एकाएक चुप हो गये। फिर कदे आदम शीशे की तरफ देखकर शान्त भाव से बोले — मै इतना कुरूप तो नहीं हूँ कि कोई रमणी मुझसे इतनी घृणा करे।

राजा साहब बहुत ही रूपवान आदमी थे। ऊँचा कद था, भरा हुआ बदन, सेव का-सा रंग, चेहरे से तेज झलकता था।

मैंने निर्भीक होकर कहा — इस विषय में तो प्रकृति ने हुजूर के साथ बड़ी उदारता के साथ काम लिया है।

राजा साहब के चेहरे पर एक क्षीण उदास मुस्कराहट दौड़ गई, मगर फिर वहीं नैराश्य छा गया। बोले, सरदार साहब, मैंने इस बाजार की खूब सैर की है। सम्मोहन और वशीकरण के जितने लटके हैं, उन सबों से परिचित हूँ, मगर जिन मंत्रों से मैंने अब तक हमेशा विजय पाई है, वे सब इस अवसर पर निरर्थक सिद्ध हुए। अन्त को मैंने यही निश्चय किया कि कुंआ ही अंधा है, इसमें प्यास को शांत करने की सामर्थ्य नहीं। मगर शोक, कल मुझ पर इस निष्ठुरता और उपेक्षा का रहस्य खुला गया। आह! काश, यह रहस्य कुछ दिन और मुझसे छिपा रहता, कुछ दिन और मै इसी भ्रम, इसी अज्ञान अवस्था में पड़ा रहता।

राजा साहब का उदास चेहरा एकाएक कठोर हो गया, उन शीतर नेत्रों में ज्वाला-सी चमक उठी, बोले — "देखिए, ये वह पत्र है, जो कल गुप्त रूप से मेरे हाथ लगे है। मैं इस वक्त इस बात हकी जांच-पड़ताल करना व्यर्थ समझता हूँ कि ये पत्र मेरे पास किसने भेजे? उसे ये कहा मिले? अवश्य ही ये सरफराज की अहित कामना के इरादे से भेजे गए होंगे। मुझे तो केवल यह निश्चय करना है कि ये पत्र असली है या नकली, मुझे तो उनके असली होने में अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। मैंने सरफराज की लिखावट देखी है, उसकी बातचीत के अन्दाज से अनभिज्ञ नहीं हूँ। उसकी जवान पर जो वाक्य चढ़े हुए हैं, उन्हें खूब जानता हूँ। इन पत्रों में वही लिखावट हैं, कितनी भीषण परिस्थिति है। इधर मैं तो एक मधुर मुस्कान, एक मीठी अदा के लिए तरसता हूँ, उधर प्रेमियों के नाम प्रेमपत्र लिखे जाते हैं, वियोग-वेदना का वर्णन किया जाता है। मैंने इन पत्रों को पढ़ा है, पत्थर-सा दिल करके पढ़ा है, खून का घूंट पी-पीकर पढ़ा है, और अपनी बोटियों को नोच-नोचकर पढ़ा है! आँखों से रक्त की बूँदें निकल-निकल आई है। यह दगा! यह त्रिया-चरित्र!! मेरे महल में रहकर, मेरी कामनाओं को पैरों से कुचलकर, मेरी आशाओं को ठुकराकर ये क्रीडाएँ होती है! मेरे लिए खारे पानी की एक बूंद भी नहीं, दूसरे पर सुधा-जल की वर्षा हो रही है! मेरे लिए एक चुटकी-भर आटा नहीं, दूसरे के लिए

षटरस पदार्थ परसे जा रहे है। तुम अनुमान नहीं कर सकते कि इन पत्रों की पढ़कर मेरी क्या दशा हुई।”

‘पहला उद्वेग जो मेरे हृदय में उठा, वह यह था कि इसी वक्त तलवार लेकर जाऊँ और उस बेदर्द के सामने यह कटार अपनी छाती में भोंक लूँ। उसी के आँखों के सामने एडियाँ रगड़-रगड़ मर जाऊँ। शायद मेरे बाद मेरे प्रेम की कद्र करे, शायद मेरे खून के गर्म छीटें उसके वज्र-कठोर हृदय को द्रवित कर दें, लेकिन अन्तस्तल के न मालूम किस प्रदेश से आवाज आई — यह सरासर नादानी हैं तुम मर जाओंगे और यह छलनी तुम्हारे प्रेमोपहारों से दामन भरे, दिल में तुम्हारी मूर्खता पर हँसती हुई, दूसरे ही दिन अपने प्रियतम के पस चली जाएगी।’ दोनों तुम्हारी दौलत के मजे उड़ाएँगे और तुम्हारी वंचित-दलित आत्मा को तड़पाएँगे।

‘सरदार साहब, विश्वास मानिए, यह आवाज मुझे अपने ही हृदय के किसी स्थल से सुनाई दी। मैंने उसी वक्त तलवार निकालकर कमर से रख दी। आत्महत्या का विचार जाता रहा, और एक ही क्षण में बदले का प्रबल उद्वेग हृदय में चमक उठा। देह का एक-एक परमाणु एक आन्तरिक ज्वाला से उत्तप्त हो उठा। एक-एक रोए से आग-सी निकलने लगी। इसी वक्त जाकर उसकी कपट-लीला का अन्त कर दूँ। जिन आँखों की निगाह के लिए

अपने प्राण तक निछावर करता था, उन्हें सदैव के लिए ज्योतिहीन कर दूँ। उन विषाक्त अधरों को सदैव के लिए स्वरहीन कर दूँ। जिस हृदय में इतनी निष्ठुरता, इतनी कठोरता ओर इतना कपट भरा हुआ हो, उसे चीरकर पैरों से कुचल डालूँ। खून-सा सिर पर सवार हो गया। सरफराज की सारी महत्ता, सारा माधुर्य, सारा भाव-विलास दूषित मालूम होने लगा। उस वक्त अगर मुझ मालूम हो जाता कि सरफराज की किसी ने हत्या कर डाली है, तो शायद मैं उस हत्यारें के पैरों का चुम्बन करता। अगर सुनता कि वह मरणासन्न है तो उसके दम तोड़ने का तमाशा करता, खून का दृढ़ संकल्प करके मैंने दुहरी तलवारें कमर में लगाई और उसके शयनागार में दाखिल हुआ। जिस द्वार पर जाते ही आशा और भय का संग्राम होने लगता था, वहाँ पहुँचकर इस वक्त मुझे वह आनन्द हुआ जो शिकारी को शिकार करने में होता है। सरदार साहब, उन भावनाओं और उदगारों का जिक्र न करूँगा, जो उस समय मेरे हृदय को आन्दोलित करने लगे। अगर वाणी में इतनी सामर्थ्य हो, तो मन को इस चर्चा से उद्विग्न नहीं करना चाहता मैंने दबे पाँव कमरे में कदम रखा। सरफराज विलासमय निद्रा में मग्न थी। मगर उसे देखकर मेरे हृदय में एक विचित्र करूणा उत्पन्न हुई। जी हाँ, वह क्रोध और उत्ताप न जाने कहाँ गायब हो गया। उसका क्या अपराध है? यह प्रश्न आकस्मिक रूप से मेरे

हृदय में पैदा हुआ। उसका क्या अपराध है? अगर उसका वही अपराध है जो इस समय मैं कर रहा हूँ, तो मुझे उससे बदला लेने का क्या अधिकार है? अगर वह अपने प्रियतम के लिए उतनी ही विकल, उतनी ही अधीर, उतनी ही आतुर है जितना मैं हूँ, तो उसका क्या दोष है? जिस तरह मैं अपने दिल से मजबूर हूँ, क्या वह भी अपने दिल से मजबूर रत्नों से मेरे प्रेम को बिसाहना चाहे, तो क्या मैं उसके प्रेम में अनुरक्त हो जाऊँगा? शायद नहीं। मैं मौका पाते ही भाग निकलूँगा। यह मेरा अन्याय है। अगर मुझमें वह गुण होते, तो उसके अज्ञात प्रियतम में है, तो उसकी तबीयत क्यों मेरी ओर आकर्षित न होती? मुझमें वे बातें नहीं है कि मैं उसका जीवन-सर्वस्व बन सकूँ। अगर मुझे कोई कड़वी चीज अच्छी नहीं लगती, तो मैं स्वभावतः हलवाई की दुकान की तरफ जाऊँगा, जो मिठाइयाँ बेचता है। सम्भव है धीरे-धीरे मेरी रुचि बदल जाय और मैं कड़वी चीजें पसन्द करने लगूँ। लेकिन बलात् तलवार की नोक पर कोई कड़वी चीज मेरे मुँह में नहीं डाल सकता।

इन विचारों ने मुझे पराजित कर दिया। वह सूरत, जो एक क्षण पहले मुझे काटे खाती थी उसमें पहले से शतगुणा आकर्षण था। अब तक मैंने उसको निद्रा-मग्न न देखा था, निद्रावस्था में उसका रूप और भी निष्कलंक और अनिन्द्य मालूम हुआ। जागृति में

निगाह कभी आँखों के दर्शन करती, कभी अधरों के, कभी कपोलों के। इस नींद मे उसका रूप अपनी सम्पूर्ण कलाओं से चमक रहा था। रूप-छटा था कि दीपक जल रहा था।'

राजा साहब ने फिर प्याला मुँह से लगाया, और बोले — 'सरदार साहब, मेरा जोश ठंडा हो गया। जिससे प्रेम हो गया, उससे द्वेष नहीं हो सकता, चाहे वह हमारे साथ कितना ही अन्याय क्यों न करे। जहां प्रेमिका प्रेमी के हाथों कत्ल हो, वहाँ समझ लीजिए कि प्रेम न था, केवल विषय-लालसा थी, में वहाँ से चला आया, लेकिन चित्त किसी तरह शान्त नहीं होता तब उसे अब तक मैंने क्रोध को जीतने की भरसक कोशिश की, मगर असफल रहा। जब तक वह शैतान जिन्दा है, मेरे पहलू में एक कांटा खटकता रहेगा, मेरी छाती पर सांप लौटता रहेगा। वहीं काला नाम फन उठाये हुए उस रत्न-राशि पर बैठा हुआ है, वहीं मेरे और सरफराज के बीच में लोहे की दीवार बना हुआ है, वहीं इस दूध की मक्खी है। उस सांप का सिर कुचलना होगा, जब तक मैं अपनी आँखों से उसकी धज्जियाँ बिखरते न देखूँगा। मेरी आत्मा को संतोष न होगा। परिणाम की कोई चिन्ता नहीं कुछ भी हो, मगर उस नर-पिशाच को जहन्नुम दाखिल करके दम लूँगी।'

यह कहकर राजा साहब ने मेरी ओर पूर्ण पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा — बतलाइए आप मेरी क्या मदद कर सकते है?

मैंने विस्मय से कहा — मैं?

राजा साहब ने मेरा उत्साह बढाते हुए कहा — ’हाँ, आप। आप जानते हैं, मैंने इतने आदमियों को छोड़कर आपको क्यों अपना विश्वासपात्र बनाया और क्यो आपसे यह भिक्षा माँगी? यहाँ ऐसे आदमियों की कमी नहीं है, जो मेरा इशारा पाते ही उस दुष्ट के टुकड़े उड़ा देंगे, सरे बाजार उसके रक्त से भूमि को रंग देंगे। जी हाँ, एक इशारे से उसकी हड्डियों का बुरादा बना सकता हूूँ।, उसके नहों में कीलें ठुकवा सकता हूँ।, मगर मैंने सबको छोड़कर आपको छाँटा, जानतें हो क्यों? इसलिए कि मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास है, वह विश्वास जो मुझे अपने निकटतम आदमियों पर भी नहीं, मैं जानता हूूँ। कि तुम्हारे हृदय में यह भेद उतना ही गुप्त रहेगा, जितना मेरे। मुझे विश्वास है कि प्रलोभन अपनी चरम शक्ति का उपयोग करके भी तुम्हें नहीं डिगा सकता। पाशविक अत्याचार भी तुम्हारे अधरों को नहीं खोल सकते, तुम बेवफाई न करोगे, दगा न करोगे, इस अवसर से अनुचित लाभ न उठाओंगे, जाते हो, इसका पुरस्कार क्या होगा? इसके विषय में तुम कुछ भी शंका न करों। मुझमें और चाहे कितने ही दुर्गुण हों, कृतध्नता का दोष नहीं है। बड़े से बड़ा पुरस्कार जो मेरे अधिकार में है, वह तुम्हें दिया जाएगा। मनसब, जागीर, धन, सम्मान सब तुम्हारी इच्छानुसार दिये जाएँगे। इसका सम्पूर्ण अधिकार तुमको दिया

जाएगा, कोई दखल न देगा। तुम्हारी महत्वाकांक्षा को उच्चतम शिखर तक उड़ने की आजादी होगी। तुम खुद फरमान लिखोगे और मैं उस पर आँखें बन्द करके दस्तखत करूँगा; बोलो, कब जाना चाहते हो? उसका नाम और पता इस कागज पर लिखा हुआ है, इसे अपने हृदय पर अंकित कर लो, और कागज फाड़ डालो। तुम खुद समझ सकते हो कि मैंने कितना बड़ा भार तुम्हारे ऊपर रखा है। मेरी आबरू, मेरी जान, तुम्हारी मुट्ठी में हैं। मुझे विश्वास है कि तुम इस काम को सुचारु रूप से पूरा करोगे। जिन्हें अपना सहयोगी बनाओंगे, वे भरोसे के आदमी होंगे। तुम्हें अधिकतम बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और धैर्य से काम लेना पड़ेगा। एक असंयत शब्द, एक क्षण का विलम्ब, जरा-सी लापरवाही मेरे और तुम्हारे दोनों के लिए प्राणघातक होगी। दुश्मन घात में बैठा हुआ है, 'कर तो डर, न कर तो डर' का मामला है। यों ही गद्दी से उतारने के मंसूबे सोचे जा रहे हैं, इस रहस्य के खुल जाने पर क्या दुर्गति होगी, इसका अनुमान तुम आप कर सकते हो। मैं बर्मा में नजरबन्द कर दिया जाऊँगा, रियासत गैरों के हाथ मे चली जाएगी और मेरा जीवन नष्ट हो जाएगा। में चाहता हूँ कि आज ही चले जाओ। यह इम्पीरियल बैंक का चेक बुक है, मैंने चेकों पर दस्तखत कर दिए है, जब जितने रुपयों की जरूरत हों, ले लेना।

'मेरा दिमाग सातवें आसमान पर जा पहुँचा। अब मुझे मालूम हुआ कि प्रलोभन में ईमान को बिगाड़ने की कितनी शक्ति होती है। मुझे जैसे कोई नशा हो गया।' मैंने एक किताब में पढ़ा था कि अपने भाग्य-निर्माण का अवसर हर एक आदमी को मिलता है और एक ही बार। जो इस अवसर को दोनों हाथों से पकड़ लेता है, वह मर्द है, जो आगा-पीछा में पड़कर उसे छोड़ देता है, वह कायर होता है। एक को धन, यश, गौरव नसीब होता है और दूसरा खेद, लज्जा और दुर्दशा में रो-रोकर जिंदगी के दिन काटता है। फैसला करने के लिए केवल एक क्षण का समय मिलता है। वह समय कितना बहुमूल्य होता है। मेरे जीवन में यह वही अवसर था। मैंने उसे दोनों हाथों से पकड़ने का निश्चय कर लिया। सौभाग्य अपनी सर्वोत्तम सिद्धियों का थाल लिए मेरे सामने हाजिर है, वह सारी विभूतियों; जिनके लिए आदमी जीता-मरता है, मेरा स्वागत करने के लिए खड़ी है। अगर इस समय मै। उनकी उपेक्षा करूँ, तो मुझ जैसा अभागा आदमी संसार में न होगा। माना कि बड़े जोखिम का काम है, लेकिन पुरस्कार तो देखो। दरिया में गोता लगाने ही से तो मोती मिलता है, तख्त पर बैठे हुए कायरों के लिए कोड़ियों और घोंघों के सिवा और क्या है? माना कि बेगुनाह के खून से हाथ रंगना पड़ेगा। क्या मुजायका! बलिदान से ही वरदान मिलता है। संसार समर भूमि

है। यहाँ लाशों का जीना बनाकर उन्नति के शिखर पर चढ़ना पड़ता है। खून के नालों में तैरकर ही विजय-तट मिलता है। संसार का इतिहास देखो,. सफल पुरुषों का चरित्र रक्त के अक्षरों में लिखा हुआ है। वीरों ने सदैव खून के दरिया में गोते लगाये हैं, खून की होलियाँ खेली है। खून का डर दुर्बलता और कम हिम्मती का चिह्न है। कर्मयोगी की दृष्टि लक्ष्य पर रहती हैं, मार्ग पर नहीं, शिखर पर रहती है, मध्यवर्ती चट्टानों पर नहीं, मैंने खड़े होकर अर्ज की — गुलाम इस खिदमत के लिए हाजिर हे।'

राजा साहब ने सम्मान की दृष्टि से देखकर कहा — मुझे तुमसे यही आशा थी। तुम्हारा दिल कहता है कि यह काम पूरा कर आओगे?

'मुझे विश्वास है।'

'मेरा भी यही विचार था। देखो, एक-एक क्षण का समाचार भेजते रहना।'

'ईश्वर ने चाहा तो हुजूर को शिकायत का कोई मौका न मिलेगा।'

'ईश्वर का नाम न लो, ईश्वर ऐसे मौकों के लिए नहीं है। ईश्वर की मदद उस वक्त माँगो, जब अपना दिल कमजोर हो। जिसकी बाँहों में शक्ति, मन में विकल्प, बुद्धि में बल और साहस है, वह

ईश्वर का आश्रय क्यों ले? अच्छा, जाओं और जल्द सुर्खरू होकर लौटो, आँखें तुम्हारी तरफ लगी रहेंगी।'

2

मैंने आत्मा की आलोचनाओं को सिर तक न उठाने दिया। उस दुष्ट को क्या अधिकार था कि वह सरफराज से ऐसा कुत्सित सम्बन्ध रखे, जब उसे मालूम था कि राजा साहब ने, उसे अपने हरम में दाखिल कर लिया है? यह लगभग उतना ही घृणित अपराध है, जितना किसी विवाहित स्त्री को भगा ले जाना। सरफराज एक प्रकार से विवाहिता है, ऐसी स्त्री से पत्र-व्यवहार करना और उस पर डोरे डालना किसी दशा में भी क्षम्म नहीं हो सकता। ऐसे संगीन अपराध की सजा भी उतनी ही संगीन होनी चाहिए। अगर मेरे हृदय में उस वक्त तक कुछ दुर्बलता, कुछ संशय, कुछ अविश्वास था, तो इस तर्क ने उसे दूर कर दिया। सत्य का विश्वास सत्-साहस का मंत्र है। अब वह खून मेरी नजरों में पापमय हत्या नहीं, जायज खून था और उससे मुँह मोड़ना लज्जाजनक कायरता।

गाड़ी के जाने में अभी दो घण्टे की देर थी। रात-भर का सफर था, लेकिन भोजन की ओर बिल्कुल रुचि न थी। मैंने सफर की तैयारी शुरू की। बाजार से एक नकली दाढ़ी लाया, ट्रंक में दो रिवाल्वर रख लिये, फिर सोचने लगा, किसे अपने साथ ले चलूँ? यहाँ से किसी को ले जाना तो नीति-विरूद्ध है। फिर क्या अपने भाई साहब को तार दूँ? हाँ, यही उचित है। उन्हें लिख दूँ कि मुझसे बम्बई में आकर मिलें, लेकिन नहीं, भाई साहब को क्यों फँसाऊँ? कौन जाने क्या हो? बम्बई में ऐसे आदमी की क्या कमी? एक लाख रुपये का लालच दूँगा। चुटकियों में काम हो जाएगा। वहाँ एक से एक शातिर पड़े है, जो चाहें तो फरिश्तों का भी खून कर आयें। बस, इन महाशय को किसी हिकमत से किसी वेश्या के कमरे में लाया जाय और वहीं उनका काम तमाम कर दिया जाय। या समुद्र के किनारे जब वह हवा खाने निकलें, तो वहीं मारकर लाश समुद्र में डाल दी जाय।

अभी चूंकि देर थी, मैंने सोचा, लाओ सन्ध्या कर लूँ। ज्योंही सन्ध्या के कमरे में कदम रखा, माता जी के तिरंगे चित्र पर नजर पड़ी। मैं मूर्ति-पूजक नहीं हूँ, धर्म की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है, न कभी कोई व्रत रखता हूँ, लेकिन न जाने क्यो, उस चित्र को देखकर अपनी आत्मा में एक प्रकाश का अनुभव करता हूँ। उन आँखों में मुझे अब भी वही वात्सल्यमय ज्योति, वही दैवी

आशीर्वाद मिलता है, जिसकी बाल-स्मृति अब भी मेरे हृदय को गदगद कर देती है। वह चित्र मेरे लिए चित्र नहीं, बल्कि सजीव प्रतिमा है, जिसने मेरी सृष्टि की है और अब भी मुझे जीवन प्रदान कर रही है। उस चित्र को देखकर मैं यकायक चौंक पड़ा, जैसे कोई आदमी उस वक्त चोर के कंधे पर हाथ रख उदे जब वह सेंध मार रहा हो। इस चित्र को रोज ही देखा करता था, दिन में कई बार उस पर निगाह पड़ती थी पर आज मेरे मन की जो दशा हुई, वह कभी न हुई थी। कितनी लज्जा और कितना क्रोध! मानों वह कह रही थी, मुझे तुझसे ऐसी आशा न थी। मैं उस तरफ ताक न सका। फौरन आँखें झुका ली। उन आँखों के सामने खड़े होने की हिम्मत मुझे न हुई। वह तसवीर की आँखें न थी, सजीव, तीव्र और ज्वालामय, हृदय में पैठने वाली, नोकदार भाले की तरह हृदय में चुभने वाली आँखें थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ, गिर पड़ूँगा। मैं वहीं फर्श पर बैठ गया। मेरा सिर आप ही आप झुक गया। बिल्कुल अज्ञातरूप से मानो किसी दैवी प्रेरणा से मेरे संकल्प में एक में क्रान्ति-सी हो गई। उस सत्य के पुतले, उस प्रकाश की प्रतिमा ने मेरी आत्मा को सजग कर दिया। मन-में क्या-क्या भाव उत्पन्न हुए, क्या-क्या विचार उठे, इसकी मुझे खबर नहीं। मैं इतना ही जानता हूँ कि मैं एक सम्मोहित दशा में घर से निकला, मोटर तैयार कराई और दस बजे राजा साहब की

सेवा में जा पहुँचा। मेरे लिए उन्होंने विशेष रूप से ताकीद कर दी थी। जिस वक्त चाहूँ, उनसे मिल सकूँ। कोई अड़चन न पड़ी। में जाकर नम्र भाव से बोला — हुजूर, कुछ अर्ज करना चाहता हूँ।

राजा साहब अपने विचार में इस समस्या को सुलझाकर इस वक्त इतमीनान की सांस ले रहे थे। मुझे देखकर उन्हें किसी नई उलझन का संदेह हुआ। त्योरियों पर बल पड़ गये, मगर एक ही क्षण में नीति ने विजय पाई, मुस्कराकर बोले — हाँ हाँ, कहिए, कोई खास बात?

मैंने निर्भीक होकर कहा — मुझे क्षमा कीजिए, मुझसे यह काम न होगा।

राजा साहब का चेहरा पीला पड़ गया, मेरी ओर विस्मित से देखकर बोले — इसका मतलब?

'मैं यह काम न कर सकूँगा।'

'क्यों?'

'मुझमें वह सामर्थ्य नहीं है।

राजा साहब ने व्यंग्यपूर्ण नेत्रों से देखकर कहा — शायद आत्मा जागृत हो गई, क्यो? वही बीमारी, जो कायरों और नामर्दों को हुआ करती है। अच्छी बात है, जाओ।

'हुजूर, आप मुझसे नाराज न हों, मैं अपने में वह....।'

राजा साहब ने सिंह की भांति आग्नेय नेत्रों से देखते हुए गरजकर कहा — मत बको, नमक...

फिर कुछ नम्र होकर बोले — तुम्हारे भाग्य में ठोकरें खाना ही लिखा है। मैंने तुम्हें वह अवसर दिया था, जिसे कोई दूसरा आदमी दैवी वरदान समझता, मगर तुमने उसकी कद्र न की। तुम्हारी तकदीर तुमसे फिरी हुई है। हमेशा गुलामी करोगे और धक्के खाओगे। तुम जैसे आदमियों के लिए गेरुए बाने है। और कमण्डल तथा पहाड़ की गुफा। इस धर्म और अधर्म की समस्या पर विचार करने के लिए उसी वैराग्य की जरूरत है। संसार मर्दों के लिए है।

मैं पछता रहा था कि मैंने पहले ही क्यों न इन्कार कर दिया।

राजा साहब ने एक क्षण के बाद फिर कहा — अब भी मौका है, फिर सोचों।

मैंने उसी निःशक तत्परता के साथ कहा — हुजूर, मैंने खूब सोचा लिया है।

राजा साहब होंठ दाँतों से काटकर बोले — बेहतर है, जाओं और आज ही रात को मेरे राज्य की सीमा के बाहर निकल जाओ। शायद कल तुम्हें इसका अवसर न मिले। मैं न मालूम क्या समझकर तुम्हारी जान बख्शी कर रहा हू। न जाने कौन मेरे हृदय में बैठा हुआ तुम्हारी रक्षा कर रहा है। मै। इस वक्त अपने आप में नहीं हूँ, लेकिन मुझे तुम्हारी शराफत पर भरोसा है। मुझे अब भी विश्वास है कि इस मामले को तुम दीवार के सामने भी जबान पर न लाओंगे।

मैं चुपके से निकल आया और रातों-रात राज्य के बाहर पहुँच गया मैंने उस चित्र के सिवा और कोई चीज अपने साथ न ली।

इधर सूर्य ने पूर्व की सीमा में पर्दापण किया, उधर मैं रियासत की सीमा से निकल कर अंग्रेजी इलाके में जा पहुँचा।

['विशाल भारत', दिसम्बर, 1920]

क़ातिल

जाड़ों की रात थी। दस बजे ही सड़कें बन्द हो गयी थीं और गालियों में सन्नाटा था। बूढ़ी बेवा माँ ने अपने नौजवान बेटे धर्मवीर के सामने थाली परोसते हुए कहा — तुम इतनी रात तक कहाँ रहते हो बेटा? रखे-रखे खाना ठंडा हो जाता है। चारों तरफ सोता पड़ गया। आग भी तो इतनी नहीं रहती कि इतनी रात तक बैठी तापती रहूँ।

धर्मवीर हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर नवयुवक था। थाली खींचता हुआ बोला — अभी तो दस भी नहीं बजे अम्माँ। यहाँ के मुर्दादिल आदमी सरे-शाम ही सो जाएँ तो कोई क्या करे। योरोप में लोग बारह-एक बजे तक सैर-सपाटे करते रहते हैं। जिन्दगी के मज़े उठाना कोई उनसे सीख ले। एक बजे से पहले तो कोई सोता ही नहीं।

माँ ने पूछा — तो आठ-दस बजे सोकर उठते भी होंगे।

धर्मवीर ने पहलू बचाकर कहा — नहीं, वह छः बजे ही उठ बैठते हैं। हम लोग बहुत सोने के आदी हैं। दस से छः बजे तक, आठ घण्टे होते हैं। चौबीस में आठ घण्टे आदमी सोये तो काम क्या

करेगा? यह बिलकुल गलत है कि आदमी को आठ घण्टे सोना चाहिए। इन्सान जितना कम सोये, उतना ही अच्छा। हमारी सभा ने अपने नियमों में दाखिल कर लिया है कि मेम्बरों को तीन घण्टे से ज्यादा न सोना चाहिए।

माँ इस सभा का जिक्र सुनते-सुनते तंग आ गयी थी। यह न खाओ, वह न खाओ, यह न पहनो, वह न पहनो, न ब्याह करो, न शादी करो, न नौकरी करो, न चाकरी करो, यह सभा क्या लोगों को संन्यासी बनाकर छोड़ेगी? इतना त्याग तो संन्यासी ही कर सकता है। त्यागी संन्यासी भी तो नहीं मिलते। उनमें भी ज्यादातर इन्द्रियों के गुलाम, नाम के त्यागी हैं। आज सोने की भी क़ैद लगा दी। अभी तीन महीने का घूमना खत्म हुआ। जाने कहाँ-कहाँ मारे फिरते हैं। अब बारह बजे खाइए। या कौन जाने रात को खाना ही उड़ा दें। आपत्ति के स्वर में बोली — तभी तो यह सूरत निकल आयी है कि चाहो तो एक-एक हड्डी गिन लो। आख़िर सभावाले कोई काम भी करते हैं या सिर्फ़ आदमियों पर कैदें ही लगाया करते हैं?

धर्मवीर बोला — जो काम तुम करती हो वहीं हम करते हैं। तुम्हारा उद्देश्य राष्ट्र की सेवा करना है, हमारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है।

बूढ़ी विधवा आजादी की लड़ाई में दिलो-जान से शरीक थी। दस साल पहले उसके पति ने एक राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में सजा पाई थी। जेल में उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और जेल ही में उसका स्वर्गवास हो गया। तब से यह विधवा बड़ी सच्चाई और लगन से राष्ट्र की सेवा सेवा में लगी हुई थी। शुरू में उसका नौजवान बेटा भी स्वयं सेवकों में शामिल हो गया था। मगर इधर पाँच महीनों से वह इस नयी सभा में शरीक हो गया और उसको जोशीले कार्यकर्ताओं मे समझा जाता था।

माँ ने संदेह के स्वर में पूछा — तो तुम्हारी सभा का कोई दफ्तर हैं?

‘हाँ है।’

‘उसमें कितने मेम्बर हैं?’

‘अभी तो सिर्फ़ पचास मेम्बर हैं? वह पचीस आदमी जो कुछ कर सकते हैं, वह तुम्हारे पचीस हजार भी नहीं कर सकते। देखो अम्माँ, किसी से कहना मत वर्ना सबसे पहले मेरी जान पर आफ़त आयेगी। मुझे उम्मीद नहीं कि पिकेटिंग और जुलूसों से हमें आजादी हासिल हो सके। यह तो अपनी कमज़ोरी और बेबसी का साफ़ एलान हैं। झंडियाँ निकालकर और गीत गाकर कौमें नहीं आज़ाद हुआ करतीं। यहाँ के लोग अपनी अकल से काम नहीं

लेते। एक आदमी ने कहा — यों स्वराज्य मिल जाएगा। बस, आँखें बन्द करके उसके पीछे हो लिए। वह आदमी गुमराह है और दूसरों को भी गुमराह कर रहा है। यह लोग दिल में इस ख्याल से खुश हो लें कि हम आज़ादी के करीब आते जाते हैं। मगर मुझे तो काम करने का यह ढंग बिल्कुल खेल-सा मालूम होता है। लड़कों के रोने-धोने और मचलने पर खिलौने और मिठाइयाँ मिला करती है — वही इन लोगों को मिल जाएगा। असली चीज तो तभी मिलेगी, जब हम उसकी कीमत देने को तैयार होंगे।

माँ ने कहा — उसकी कीमत क्या हम नहीं दे रहे हैं? हमारे लाखों आदमी जेल नहीं गये? हमने डंडे नहीं खाये? हमने अपनी जायदादें नहीं जब्त करायीं?

धर्मवीर — इससे अंग्रेजों को क्या-क्या नुकसान हुआ? वे हिन्दुस्तान उसी वक्त छोड़ेंगे, जब उन्हें यकीन हो जाएगा कि अब वे एक पल-भर भी नहीं रूह सकते। अगर आज हिन्दोस्तान के एक हजार अंग्रेज कत्ल कर दिए जाएँ तो आज ही स्वराज्य मिल जाए। रूस इसी तरह आज़ाद हुआ, आयरलैण्ड भी इसी तरह आज़ाद हुआ, हिन्दोस्तान भी इसी तरह आज़ाद होगा और कोई तरीका नहीं। हमें उनका खात्मा कर देना है। एक गोरे अफसर के कत्ल कर देने से हुकूमत पर जितना डर छा जाता है, उतना

एक हजार जुलूसों से मुमकिन नहीं। माँ सर से पाँव तक काँप उठी। उसे विधवा हुए दस साल हो गए थे। यही लड़का उसकी जिंदगी का सहारा है। इसी को सीने से लगाए मेहनत-मजदूरी करके अपने मुसीबत के दिन काट रही है। वह इस खयाल से खुश थी कि यह चार पैसे कमायेगा, घर में बहू आएगी, एक टुकड़ा खाऊँगी, और पड़ी रहूँगी। आरज़ुओं के पतले-पतले तिनकों से उसने ऐ किश्ती बनाई थी। उसी पर बैठकर जिन्दगी के दरिया को पार कर रही थी। वह किश्ती अब उसे लहरों में झकोले खाती हुई मालूम हुई। उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह किश्ती दरिया में डूबी जा रही है। उसने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा — बेटा, तुम कैसी बातें कर रहे हो। क्या तुम समझते हो, अंग्रेजों को कत्ल कर देने से हम आज़ाद हो जायेंगे? हम अंग्रेजों के दुश्मन नहीं। हम इस राज्य प्रणाली के दुश्मन हैं। अगर यह राज्य-प्रणाली हमारे भाई-बन्दों के ही हाथों में हो — और उसका बहुत बड़ा हिस्सा है भी — तो हम उसका भी इसी तरह विरोध करेंगे। विदेश में तो कोई दूसरी क़ौम राज न करती थी, फिर भी रूस वालों ने उस हुकूमत का उखाड़ फेंका तो उसका कारण यही था कि जार प्रजा की परवाह न करता था। अमीर लोग मज़े उड़ाते थे, गरीबों को पीसा जाता था। यह बातें तुम मुझसे ज्यादा जानते हो। वही हाल हमारा है। देश की

सम्पत्ति किसी न किसी बहाने निकलती चली जाती है और हम गरीब होते जाते हैं। हम इस अवैधानिक शासन को बदलना चाहते हैं। मैं तुम्हारे पैरों में पड़ती हूँ, इस सभा से अपना नाम कटवा लो। खामखाह आग में न कूदो। मै अपनी आँखों से यह दृश्य नहीं देखना चाहती कि तुम अदालत में खून के जुर्म में लाए जाओ।

धर्मवीर पर इस विनती का कोई असर नहीं हुआ। बोला — इसका कोई डर नहीं। हमने इसके बारे में काफ़ी एहतियात कर ली है। गिरफ्तार होना तो बेवकूफी है। हम लोग ऐसी हिकमत से काम करना चाहते हैं कि कोई गिरफ्तार न हो।

माँ के चेहरे पर अब डर की जगह शर्मिन्दगी की झलक नज़र आयी। बोली — यह तो उससे भी बुरा है। बेगुनाह सज़ा पायें और क़ातिल चैन से बैठे रहें! यह शर्मनाक हरकत है। मैं इसे कमीनापन समझती हूँ। किसी को छिपकर क़त्ल करना दगाबाजी है, मगर अपने बदले बेगुनाह भाइयों को फँसा देना देशद्रोह है। इन बेगुनाहों का खून भी कातिल की गर्दन पर होगा।

धर्मवीर ने अपनी माँ की परेशानी का मजा लेते हुए कहा — अम्माँ, तुम इन बातों को नहीं समझती। तुम अपने धरने दिए जाओ, जुलूस निकाले जाओ। हम जो कुछ करते हैं, हमें करने

दो। गुनाह और सवाब, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, यह निरर्थक शब्द है। जिस काम का तुम सापेक्ष समझती हो, उसे मैं पुण्य समझता हूँ। तुम्हें कैसे समझाऊँ कि यह सापेक्ष शब्द हैं। तुमने भगवदगीता तो पढ़ी है। कृष्ण भगवान ने साफ़ कहा है — मारने वाला मै हूँ, जिलाने वाला मैं हूँ, आदमी न किसी को मार सकता है, न जिला सकता है। फिर कहाँ रहा तुम्हारा पाप? मुझे इस बात की क्यों शर्म हो कि मेरे बदले कोई दूसरा मुजरिम करार दिया गया। यह व्यक्तिगत लड़ाई नहीं, इंग्लैण्ड की सामूहिक शक्ति से युद्ध है। मैं मरूँ या मेरे बदले कोई दूसरा मरे, इसमें कोई अन्तर नहीं। जो आदमी राष्ट्र की ज्यादा सेवा कर सकता है, उसे जीवित रहने का ज्यादा अधिकार है।

माँ आश्चर्य से लड़के का मुँह देखने लगी। उससे बहस करना बेकार था। अपनी दलीलों से वह उसे कायल न कर सकती थी। धर्मवीर खाना खाकर उठ गया। मगर वह ऐसी बैठी रही कि जैसे लक़वा मार गया हो। उसने सोचा — कहीं ऐसा तो नहीं कि वह किसी का क़त्ल कर आया हो। या कत्ल करने जा रहा हो। इस विचार से उसके शरीर के कंपकंपी आ गयी। आम लोगों की तरह हत्या और खून के प्रति घृणा उसके शरीर के कण-कण में भरी हुई थी। उसका अपना बेटा खून करे, इससे ज्यादा लज्जा, अपमान, घृणा की बात उसके लिए और क्या हो

सकती थी। वह राष्ट्र सेवा की उस कसौटी पर जान देती थी जो त्याग, सदाचार, सच्चाई और साफ़दिली का वरदान है। उसकी आँखों मे राष्ट्र का सेवक वह था जो नीच से नीच प्राणी का दिल भी न दुखाये, बल्कि जरूरत पड़ने पर खुशी से अपने को बलिदान कर दे। अहिंसा उसकी नैतिक भावनाओं का सबसे प्रधान अंग थी। अगर धर्मवीर किसी गरीब की हिमायत में गोली का निशाना बन जाता तो वह रोती जरूर मगर गर्दन उठाकर। उसे गहरा शोक होता, शायद इस शोक में उसकी जान भी चली जाती। मगर इस शोक में गर्व मिला हुआ होता। लेकिन वह किसी का खून कर आये यह एक भयानक पाप था, कलंक था। लड़के को रोके कैसे, यही सवाल उसके सामने था। वह यह नौबत हरगिज न आने देगी कि उसका बेटा खून के जुर्म में पकड़ा न जाये। उसे यह बरदाश्त था कि उसके जुर्म की सजा बेगुनाहों को मिले। उसे ताज्जुब हो रहा था, लड़के मे यह पागलपन आया क्योंकर? वह खाना खाने बैठी मगर कौर गले से नीचे न जा सका। कोई जालिम हाथ धर्मवीर को उनकी गोद से छीन लेता है। वह उस हाथ को हटा देना चाहती थी। अपने जिगर के टुकड़े को वह एक क्षण के लिए भी अलग न करेगी। छाया की तरह उसके पीछे-पीछे रहेगी। किसकी मजाल है जो उस लड़के को उसकी गोद से छीने!

धर्मवीर बाहर के कमरे में सोया करता था। उसे ऐसा लगा कि कहीं वह न चला गया हो। फौरन उसके कमरे में आयी। धर्मवीर के सामने दीवट पर दिया जल रहा था। वह एक किताब खोले पढ़ता-पढ़ता सो गया था। किताब उसके सीने पर पड़ी थी। माँ ने वहीं बैठकर अनाथ की तरह बड़ी सच्चाई और विनय के साथ परमात्मा से प्रार्थना की कि लड़के का हृदय-परिवर्तन कर दे। उसके चेहरे पर अब भी वहीं भोलापन, वही मासूमियत थी जो पन्द्रह-बीस साल पहले नज़र आती थी। कर्कशता या कठोरता का कोई चिह्न न था। माँ की सिद्धांतपरता एक क्षण के लिए ममता के आँचल में छिप गई। माँ ने हृदय से बेटे की हार्दिक भावनाओं को देखा। इस नौजवान के दिल में सेवा की कितनी उमंग है, कौम का कितना दर्द हैं, पीड़ितों से कितनी सहानुभूति हैं अगर इसमे बूढ़ों की-सी सूझ-बूझ, धीमी चाल और धैर्य है तो इसका क्या कारण है। जो व्यक्ति प्राण जैसी प्रिय वस्तु को बलिदान करने के लिए तत्पर हो, उसकी तड़प और जलन का कौन अन्दाजा कर सकता है। काश यह जोश, यह दर्द हिंसा के पंजे से निकल सकता तो जागरण की प्रगति कितनी तेज हो जाती!

माँ की आहट पाकर धर्मवीर चौंक पड़ा और किताब संभालता हुआ बोला — तुम कब आ गयीं अम्माँ? मुझे तो जाने कब नींद आ गयी।

माँ ने दीवट को दूर हटाकर कहा — चारपाई के पास दिया रखकर न सोया करो। इससे कभी-कभी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं। और क्या सारी रात पढ़ते ही रहोगे? आधी रात तो हुई, आराम से सो जाओ। मैं भी यहीं लेटी जाती हूँ। मुझे अन्दर न जाने क्यों डर लगता है।

धर्मवीर — तो मैं एक चारपाई लाकर डाले देता हूँ।

'नहीं, मैं यहीं जमीन पर लेट जाती हूँ।'

'वाह, मैं चारपाई पर लेटूँ और तू जमीन पर पड़ी रहो। तुम चारपाई पर आ जाओ।'

'चल, मैं चारपाई पर लेटूँ और तू जमीन पर पड़ा रहे यह तो नहीं हो सकता।'

'मैं चारपाई लिये आता हूँ। नहीं तो मैं भी अन्दर ही लेटता हूँ। आज आप डरीं क्यों?'

'तुम्हारी बातों ने डरा दिया। तू मुझे भी क्यों अपनी सभा में नहीं सरीक कर लेता?'

धर्मवीर ने कोई जवाब नहीं दिया। बिस्तर और चारपाई उठाकर अन्दर वाले कमरे में चला।

माँ आगे-आगे चिराग दिखाती हुई चली। कमरे में चारपाई डालकर उस पर लेटता हुआ बोला — अगर मेरी सभा में शरीक हो जाओ तो क्या पूछना। बेचारे कच्ची-कच्ची रोटियाँ खाकर बीमार हो रहे हैं। उन्हें अच्छा खाना मिलने लगेगा। फिर ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें एक बूढ़ी स्त्री जितनी आसानी से कर सकती है, नौजवान हरगिज़ नहीं कर सकते। मसलन, किसी मामले का सुराग लगाना, औरतों में हमारे विचारों का प्रचार करना। मगर तुम दिल्लगी कर रही हो!

माँ ने गम्भीरता से कहा — नहीं बेटा दिल्लगी नहीं कर रही। दिल से कह रही हूँ। माँ का दिल कितना नाज़ुक होता है, इसका अन्दाजा तुम नहीं कर सकते। तुम्हें इतने बड़े खतरे में अकेला छोड़कर मैं घर नहीं बैठ सकती। जब तक मुझे कुछ नहीं मालूम था, दूसरी बात थी। लेकिन अब यह बातें जान लेने के बाद मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती। मैं हमेशा तुम्हारे बग़ल में रहूँगी और अगर कोई ऐसा मौक़ा आया तो तुमसे पहले मैं अपने को कुर्बान करूँगी। मरते वक्त तुम मेरे सामने होगे। मेरे लिए यही सबसे बड़ी खुशी है। यह मत समझो कि मैं नाज़ुक मौक़ों पर डर जाऊँगी, चीखूँगी, चिल्लाऊँगी, हरगिज नहीं। सख्त से सख्त

खतरों के सामने भी तुम मेरी जबान से एक चीख न सुनोगे। अपने बच्चे की हिफाज़त के लिए गाय भी शेरनी बन जाती है।

धर्मवीर ने भक्ति से विह्वल होकर माँ के पैरों को चूम लिया। उसकी दृष्टि में वह कभी इतने आदर और स्नेह के योग्य न थी।

2

दूसरे ही दिन परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ। यह दो दिन बुढ़िया ने रिवाल्वर चलाने के अभ्यास में खर्च किये। पटाखे की आवाज़ पर कानों पर हाथ रखने वाली, अहिंसा और धर्म की देवी, इतने साहस से रिवाल्वर चलाती थी और उसका निशाना इतना अचूक होता था कि सभा के नौजवानों को भी हैरत होती थी।

पुलिस के सबसे बड़े अफ़सर के नाम मौत का परवाना निकला और यह काम धर्मवीर के सुपुर्द हुआ।

दोनों घर पहुँचे तो माँ ने पूछा — क्यों बेटा, इस अफ़सर ने तो कोई ऐसा काम नहीं किया फिर सभा ने क्यों उसको चुना?

धर्मवीर माँ की सरलता पर मुस्कराकर बोला — तुम समझती हो हमारी कांस्टेबिल और सब-इंस्पेक्टर और सुपरिण्टेण्डैण्ट जो कुछ करते हैं, अपनी खुशी से करते हैं? वे लोग जितने अत्याचार करते हैं, उनके यही आदमी जिम्मेदार हैं। और फिर हमारे लिए तो इतना ही काफ़ी है कि वह उस मशीन का एक खास पुर्जा है जो हमारे राष्ट्र को चरम निर्दयता से बर्बाद कर रही है। लड़ाई में व्यक्तिगत बातों से कोई प्रयोजन नहीं, वहाँ तो विरोध पक्ष का सदस्य होना ही सबसे बड़ा अपराध है।

माँ चुप हो गयी। क्षण-भर बाद डरते-डरते बोली — बेटा, मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं माँगा। अब एक सवाल करती हूँ, उसे पूरा करोगे?

धर्मवीर ने कहा — यह पूछने की कोई जरूरत नहीं अम्मा, तुम जानती हो मैं तुम्हारे किसी हुक्म से इन्कार नहीं कर सकता।

माँ — हाँ बेटा, यह जानती हूँ। इसी वजह से मुझे यह सवाल करने की हिम्मत हुई। तुम इस सभा से अलग हो जाओ। देखो, तुम्हारी बूढ़ी माँ हाथ जोड़कर तुमसे यह भीख माँग रही है।

और वह हाथ जोड़कर भिखारिन की तरह बेटे के सामने खड़ी हो गयी। धर्मवीर ने कहकहा मारकर कहा — यह तो तुमने बेढब सवाल किया, अम्माँ। तुम जानती हो इसका नतीजा क्या होगा?

जिन्दा लौटकर न आऊँगा। अगर यहाँ से कहीं भाग जाऊँ तो भी जान नहीं बच सकती। सभा के सब मेम्बर ही मेरे खून के प्यासे हो जायेंगे और मुझे उनकी गोलियों का निशाना बनना पड़ेगा। तुमने मुझे यह जीवन दिया है, इसे तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर सकता हूँ। लेकिन भारतमाता ने तुम्हें और मुझे दोनों ही को जीवन दिया है और उसका हक सबसे बड़ा है। अगर कोई ऐसा मौक़ा हाथ आ जाय कि मुझे भारतमाता की सेवा के लिए तुम्हें कत्ल करना पड़े तो मैं इस अप्रिय कर्त्तव्य से भी मुँह न मोड़ सकूँगा। आँखों से आँसू जारी होंगे, लेकिन तलवार तुम्हारी गर्दन पर होगी। हमारे धर्म में राष्ट्र की तुलना में कोई दूसरी चीज नहीं ठहर सकती। इसलिए सभा को छोड़ने का तो सवाल ही नहीं है। हाँ, तुम्हें डर लगता हो तो मेरे साथ न जाओ। मैं कोई बहाना कर दूँगा और किसी दूसरे कामरेड को साथ ले लूँगा। अगर तुम्हारे दिल में कमज़ोरी हो, तो फ़ौरन बतला दो।

माँ ने कलेजा मजबूत करके कहा — मैंने तुम्हारे ख्याल से कहा था भइया, वर्ना मुझे क्या डर।

अंधेरी रात के पर्दे में इस काम को पूरा करने का फैसला किया गया था। कोप का पात्र रात को क्लब से जिस वक्त लौटे वहीं उसकी जिन्दगी का चिराग़ बुझा दिया जाय। धर्मवीर ने दोपहर ही को इस मौके का मुआइना कर लिया और उस खास जगह

को चुन लिया जहां से निशाना मारेगा। साहब के बंगले के पास करील और करौंदे की एक छोटी-सी झाड़ी थी। वही उसकी छिपने की जगह होगी। झाड़ी के बायीं तरफ़ नीची ज़मीन थी। उसमें बेर और अमरूद के बाग़ थे। भाग निकलने का अच्छा मौक़ा था।

साहब के क्लब जाने का वक्त सात और आठ बजे के बीच था, लौटने का वक्त ग्यारह बजे था।

इन दोनों वक्तों की बात पक्की तरह मालूम कर ली गयी थी। धर्मवीर ने तय किया कि नौ बजे चलकर उसी करौंदेवाली झाड़ी में छिपकर बैठ जाय। वहीं एक मोड़ भी था। मोड़ पर मोटर की चाल कुछ धीमी पड़ जायेगी। ठीक इसी वक्त उसे रिवाल्वर का निशाना बना लिया जाय।

ज्यों-ज्यों दिन गुजरता जाता था, बूढ़ी माँ का दिल भय से सूखता जाता था। लेकिन धर्मवीर के दैनंदिन आचरण में तनिक भी अन्तर न था। वह नियत समय पर उठा, नाश्ता किया, सन्ध्या की और अन्य दिनों की तरह कुछ देर पढ़ता रहा। दो-चार मित्र आ गये। उनके साथ दो-तीन बाज़ियाँ शतरंज की खेलीं। इतमीनान से खाना खाया और अन्य दिनों से कुछ अधिक। फिर आराम से सो गया, कि जैसे उसे कोई चिन्ता नहीं है। माँ का दिल उचाट

था। खाने-पीने का तो जिक्र ही क्या, वह मन मारकर एक जगह बैठ भी न सकती थी। पड़ोस की औरतें हमेशा की तरह आयीं। वह किसी से कुछ न बोली। बदहवास-सी इधर-उधर दौड़ती फिरती थीं कि जैसे चुहिया बिल्ली के डर से सुराख ढूँढ़ती हो। कोई पहाड़-सा उसके सिर पर गिरता था। उसे कहीं मुक्ति नहीं। कहीं भाग जाय, ऐसी जगह नहीं। वे घिसे-पिटे दार्शनिक विचार जिनसे अब तक उसे सान्त्वना मिलती थी — भाग्य, पुनर्जन्म, भगवान की मर्जी — वे सब इस भयानक विपत्ति के सामने व्यर्थ जान पड़ते थे।

जिरहबख्तर और लोहे की टोपी तीर-तुपक से रक्षा कर सकते हैं लेकिन पहाड़ तो उसे उन सब चीजों के साथ कुचल डालेगा। उसके दिलो-दिमाग बेकार होते जाते थे। अगर कोई भाव शेष था, तो वह भय था। मगर शाम होते-होते उसके हृदय पर एक शान्ति-सी छा गयी। उसके अन्दर एक ताकत पैदा हुई जिसे मजबूरी की ताक़त कह सकते हैं। चिड़िया उस वक्त तक फड़फड़ाती रही, जब तक उड़ निकलने की उम्मीद थी। उसके बाद वह बहेलिये के पंजे और क़साई के छुरे के लिए तैयार हो गयी। भय की चरम सीमा साहस है।

उसने धर्मवीर को पुकारा — बेटा, कुछ आकर खा लो।

धर्मवीर अन्दर आया। आज दिन-भर माँ-बेटे में एक बात भी न हुई थी। इस वक्त माँ ने धर्मवीर को देखा तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह संयम जिससे आज उसने दिन-भर अपने भीतर की बेचैनी को छिपा रखा था, जो अब तक उड़े-उड़े से दिमाग की शकल में दिखायी दे रही थी, खतरे के पास आ जाने पर पिघल गया था — जैसे कोई बच्चा भालू को दूर से देखकर तो खुशी से तालियाँ बजाये लेकिन उसके पास आने पर चीख उठे।

दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। दोनों रोने लगे।

माँ का दिल खुशी से खिल उठा। उसने आँचल से धर्मवीर के आँसू पोंछते हुए कहा — चलो बेटा, यहाँ से कहीं भाग चलें।

धर्मवीर चिन्ता-मग्न खड़ा था। माँ ने फिर कहा — किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं। यहाँ से बाहर निकल जायँ जिसमें किसी को खबर भी न हो। राष्ट्र की सेवा करने के और भी बहुत-से रास्ते हैं।

धर्मवीर जैसे नींद से जागा, बोला — यह नहीं हो सकता अम्माँ। कर्त्तव्य तो कर्त्तव्य है, उसे पूरा करना पड़ेगा। चाहे रोकर पूरा करो, चाहे हँसकर। हाँ, इस ख्याल से डर लगता है कि नतीजा न जाने क्या हो। मुमकिन है निशाना चूक जाये और गिरफ्तार हो

जाऊँ या उसकी गोली का निशाना बनूँ। लेकिन खैर, जो हो, सो हो। मर भी जायेंगे तो नाम तो छोड़ जाएँगे।

क्षण-भर बाद उसने फिर कहा — इस समय तो कुछ खाने को जी नहीं चाहता, माँ। अब तैयारी करनी चाहिए। तुम्हारा जी न चाहता हो तो न चलो, मैं अकेला चला जाऊँगा।

माँ ने शिकायत के स्वर में कहा — मुझे अपनी जान इतनी प्यारी नहीं है बेटा, मेरी जान तो तुम हो। तुम्हें देखकर जीती थी। तुम्हें छोड़कर मेरी जिन्दगी और मौत दोनों बराबर हैं, बल्कि मौत जिन्दगी से अच्छी है।

धर्मवीर ने कुछ जवाब न दिया। दोनों अपनी-अपनी तैयारियों में लग गये। माँ की तैयारी ही क्या थी। एक बार ईश्वर का ध्यान किया, रिवाल्वर लिया और चलने को तैयार हो गयी।

धर्मवीर को अपनी डायरी लिखनी थी। वह डायरी लिखने बैठा तो भावनाओं का एक सागर-सा उमड़ पड़ा। यह प्रवाह, विचारों की यह स्वतः स्फूर्ति उसके लिए नयी चीज थी। जैसे दिल में कहीं सोता खुल गया हो। इन्सान लाफ़ानी है, अमर है, यही उस विचार-प्रवाह का विषय था।

आरम्भ एक दर्दनाक अलविदा से हुआ — 'रुखसत! ऐ दुनिया की दिलचस्पियों, रुखस्त! ऐ जिन्दगी की बहारो, रुखसत! ऐ मीठे जख्मों,

रुखसत! देशभाइयों, अपने इस आहत और अभागे सेवक के लिए भगवान से प्रार्थना करना! जिन्दगी बहुत प्यारी चीज़ है, इसका तजुर्बा हुआ। आह! वही दुख-दर्द के नश्तर, वही हसरतें और मायूसियाँ जिन्होंने जिंदगी को कड़ुवा बना रखा था, इस समय जीवन की सबसे बड़ी पूंजी हैं। यह प्रभात की सुनहरी किरनों की वर्षा, यह शाम की रंगीन हवाएँ, यह गली-कूचे, यह दरो-दीवार फिर देखने को मिलेंगे। जिन्दगी बन्दिशों का नाम है। बन्दिशें एक-एक करके टूट रही हैं। जिन्दगी का शीराज़ा बिखरा जा रहा है। ऐ दिल की आज़ादी! आओ तुम्हें नाउम्मीदी की कब्र में दफ़न कर दूँ। भगवान् से यही प्रार्थना है कि मेरे देशवासी फलें-फूलें, मेरा देश लहलहाये। कोई बात नहीं, हम क्या और हमारी हस्ती ही क्या, मगर गुलशन बुलबुलों से खाली न रहेगा। मेरी अपने भाइयों से इतनी ही विनती है कि जिस समय आप आजादी के गीत गायें तो इस ग़रीब की भलाई से लिए दुआ करके उसे याद कर लें।'

डायरी बन्द करके उसने एक लम्बी सांस खींची और उठ खड़ा हुआ। कपड़े पहने, रिवाल्वर जेब में रखा और बोला — अब तो वक्त हो गया अम्माँ!

माँ ने कुछ जवाब न दिया। घर सम्हालने की किसे परवाह थी, जो चीज़ जहाँ पड़ी थी, वहीं पड़ी रही। यहाँ तक कि दिया भी न बुझाया गया। दोनों खामोश घर से निकले।— एक मर्दानगी के

साथ क़दम उठाता, दूसरी चिन्तित और शोक-मग्न और बेबसी के बोझ से झुकी हुई।

रास्ते में भी शब्दों का विनिमय न हुआ। दोनों भाग्य-लिपि की तरह अटल, मौन और तत्पर थे — गद्यांश तेजस्वी, बलवान् पुनीत कर्म की प्रेरणा, पद्यांश दर्द, आवेश और विनती से काँपता हुआ।

झाड़ी में पहुँचकर दोनों चुपचाप बैठ गये। कोई आध घण्टे के बाद साहब की मोटर निकली।

धर्मवीर ने गौर से देखा। मोटर की चाल धीमी थी। साहब और लेडी बैठे थे। निशाना अचूक था।

धर्मवीर ने जेब से रिवाल्वर निकाला। माँ ने उसका हाथ पकड़ लिया और मोटर आगे निकल आयी।

धर्मवीर ने कहा — यह तुमने क्या किया अम्माँ! ऐसा सुनहरा मौक़ा फिर हाथ न आयेगा।

माँ ने कहा — मोटर में मेम भी थी। कहीं मेम को गोली लग जाती तो?

‘तो क्या बात थी। हमारे धर्म में नाग, नागिन और सपोले में कोई भी अन्तर नहीं।’

माँ ने घृणा भरे स्वर में कहा — तो तुम्हारा धर्म जंगली जानवरों और वहशियों का है, जो लड़ाई के बुनियादी उसूलों की भी परवाह नहीं करता। स्त्री हर एक धर्म में निर्दोष समझी गयी है। यहाँ तक कि वहशी भी उसका आदर करते हैं।

'वापसी के समय हरगिज न छोड़ूँगा।'

'मेरे जीते-जी तुम स्त्री पर हाथ नहीं उठा सकते।'

'मैं इस मामले मे तुम्हारी पाबन्दियों का गुलाम नहीं हो सकता।'

माँ ने कुछ जवाब न दिया। इस नामर्दों जैसी बात से उसकी ममता टुकड़े-टुकड़े हो गयी।

मुश्किल से बीस मिनट बीते होंगे कि वहीं मोटर दूसरी तरफ़ से आती दिखायी पड़ी। धर्मवीर ने मोटर को गौर से देखा और उछलकर बोला — लो अम्माँ, अबकी बार साहब अकेला है। तुम भी मेरे साथ निशाना लगाना।

माँ ने लपककर धर्मवीर का हाथ पकड़ लिया और पागलों की तरह जोर लगाकर उसका रिवाल्वर छीनने लगा। धर्मवीर ने उसको एक धक्का देकर गिरा दिया और एक कदम रिवाल्वर साधा। एक सेकेण्ड में माँ उठी। उसी वक्त गोली चली। मोटर आगे निकल गयी, मगर माँ जमीन पर तड़प रही थी।

धर्मवीर रिवाल्वर फेंककर माँ के पास गया और घबराकर बोला — अम्माँ, क्या हुआ? फिर यकायक इस शोकभरी घटना की प्रतीति उसके अन्दर चमक उठी — वह अपनी प्यारी माँ का कातिल है। उसके स्वभाव की सारी कठोरता और तेजी और गर्मी बुझ गयी। आँसुओं की बढ़ती हुई थरथरी को अनुभव करता हुआ वह नीचे झुका, और माँ के चेहरे की तरफ आँसुओं में लिपटी हुई शर्मिन्दगी से देखकर बोला — यह क्या हो गया अम्माँ! हाय, तुम कुछ बोलती क्यों नहीं! यह कैसे हो गया। अंधेरे में कुछ नज़र भी तो नहीं आता। कहाँ गोली लगी, कुछ तो बताओ। आह! इस बदनसीब के हाथों तुम्हारी मौत लिखी थी। जिसको तुमने गोद में पाला उसी ने तुम्हारा खून किया। किसको बुलाऊँ, कोई नजर भी तो नहीं आता।

माँ ने डूबती हुई आवाज में कहा — मेरा जन्म सफल हो गया बेटा। तुम्हारे हाथों मेरी मिट्टी उठेगी। तुम्हारी गोद में मर रही हूँ। छाती में घाव लगा है। ज्यों तुमने गोली चलायी, मैं तुम्हारे सामने खड़ी हो गयी। अब नहीं बोला जाता, परमात्मा तुम्हें खुश रखे। मेरी यही दुआ है। मैं और क्या करती बेटा। माँ की आबरू तुम्हारे हाथ में है। मैं तो चली।

क्षण-भर बाद उस अंधेरे सन्नाटे में धर्मवीर अपनी प्यारी माँ के नीमजान शरीर को गोद में लिये घर चला तो उसके ठंडे तलुओं

से अपनी आँसू-भरी आँखें रगड़कर आत्मिक आह्लाद से भरी हुई दर्द की टीस अनुभव कर रहा था।

कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो

उन दिनों दूध की तकलीफ थी। कई डेरी फार्मों की आजमाइश की, अहारों का इम्तहान लिया, कोई नतीजा नहीं। दो-चार दिन तो दूध अच्छा, मिलता फिर मिलावट शुरू हो जाती। कभी शिकायत होती दूध फट गया, कभी उसमें से नागवार बू आने लगी, कभी मक्खन के रेजे निकलते। आखिर एक दिन एक दोस्त से कहा — भाई, आओ साझे में एक गाय ले लें, तुम्हें भी दूध का आराम होगा, मुझे भी। लागत आधी-आधी, खर्च आधा-आधा, दूध भी आधा-आधा। दोस्त साहब राजी हो गए। मेरे घर में जगह न थी और गोबर वगैरह से मुझे नफरत है। उनके मकान में काफी जगह थी इसलिए प्रस्ताव हुआ कि गाय उन्हीं के घर रहे। इसके बदले में उन्हें गोबर पर एकछत्र अधिकार रहे। वह उसे पूरी आजादी से पाथें, उपले बनाएँ, घर लीपें, पड़ोसियों को दें या उसे किसी आयुर्वेदिक उपयोग में लाएँ, इकरार करनेवाले को इसमें किसी प्रकार की आपत्ति या प्रतिवाद न होगा और इकरार करनेवाला सही होश-हवास में इकरार करता है कि वह गोबर पर

कभी अपना अधिकार जमाने की कोशिश न करेगा और न किसी का इस्तेमाल करने के लिए आमादा करेगा।

दूध आने लगा, रोज-रोज की झंझट से मुक्ति मिली। एक हफ्ते तक किसी तरह की शिकायत न पैदा हुई। गरम-गरम दूध पीता था और खुश होकर गाता था —

रब का शुक्र अदा कर भाई जिसने हमारी गाय बनाई।
ताजा दूध पिलाया उसने लुत्फे हयात चखाया उसने।
दूध में भीगी रोटी मेरी उसके करम ने बख्शी सेरी।
खुदा की रहमत की है मूरत कैसी भोली-भाली सूरत। [1]

मगर धीरे-धीरे यहाँ पुरानी शिकायतें पैदा होने लगीं। यहाँ तक नौबत पहुंची कि दूध सिर्फ नाम का दूध रह गया। कितना ही उबालो, न कहीं मलाई का पता न मिठास। पहले तो शिकायत कर लिया करता था इससे दिल का बुखार निकल जाता था। शिकायत से सुधार न होता तो दूध बन्द कर देता था। अब तो शिकायत का भी मौका न था, बन्द कर देने का जिक्र ही क्या। भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर, पियो या नाले में डाल दो। आठ आने रोज का नुस्खा किस्मत में लिखा हुआ। बच्चा दूध को मुँह न लगाता, पीना तो दूर रहा। आधों आध शक्कर डालकर

[1] एक फारसी कहावत

कुछ दिनों दूध पिलाया तो फोड़े निकलने शुरू हुए और मेरे घर में रोज बमचख मची रहती थी। बीवी नौकर से फरमाती — दूध ले जाकर उन्हीं के सर पटक आ। मैं नौकर को मना करता। वह कहतीं — अच्छे दोस्त है तुम्हारे, उसे शरम भी नहीं आती। क्या इतना अहमक है कि इतना भी नहीं समझता कि यह लोग दूध देखकर क्या कहेंगे! गाय को अपने घर मंगवा लो, बला से बदबू आयगी, मच्छर होंगे, दूध तो अच्छा मिलेगा। रुपये खर्चे हैं तो उसका मजा तो मिलेगा।

चड्ढा साहब मेरे पुराने मेहरबान हैं। खासी बेतकल्लुफी है उनसे। यह हरकत उनकी जानकारी में होती हो यह बात किसी तरह गले के नीचे नहीं उतरती। या तो उनकी बीवी की शरारत है या नौकर की लेकिन जिक्र कैसे करूँ। और फिर उनकी बीवी से भी तो रूह-रस्म है। कई बार मेरे घर आ चुकी हैं। मेरी बीवी जी भी उनके यहाँ कई बार मेहमान बनकर जा चुकी हैं। क्या वह यकायक इतनी बेवकूफ हो जायेंगी, सरहन आँखों में धूल झोंकेंगी! और फिर चाहे किसी की शरारत हो, मेरे लिए यह गैरमुमकिन था कि उनसे दूध की खराबी की शिकायत करता। खैरियत यह हुई कि तीसरे महीने चड्ढा का तबादला हो गया। मैं अकेले गाय न रख सकता था। साझा टूट गया। गाय आधे दामों बेच दी गई। मैंने उस दिन इतमीनान की सांस ली।

आखिर यह सलाह हुई कि एक बकरी रख ली जाय। वह बीच आँगन के एक कोने में पड़ी रूह सकती है। उसे दुहने के लिए न ग्वाले की जरूरत न उसका गोबर उठाने, नांद धोने, चारा-भूसा डालने के लिए किसी अहीरिन की जरूरत। बकरी तो मेरा नौकर भी आसानी से दुह लेगा। थोड़ी-सी चोकर डाल दी, चलिये किस्सा तमाम हुआ। फिर बकरी का दूध फायदेमन्द भी ज्यादा है, बच्चों के लिए खास तौर पर। जल्दी हजम होता है, न गर्मी करे न सर्दी, स्वास्थ्यवर्द्धक है। संयोग से मेरे यहाँ जो पंडित जी मेरे मसौदे नकल करने आया करते थे, इन मामलों में काफी तजुर्बेकार थे। उनसे जिक्र आया तो उन्होंने एक बकरी की ऐसी स्तुति गाई, उसका ऐसा कसीदा पढ़ा कि मैं बिन देखे ही उसका प्रेमी हो गया। पछांही नसल की बकरी है, ऊँचे कद की, बड़े-बड़े थन जो जमीन से लगते चलते हैं। बेहद कमखोर लेकिन बेहद दुधार। एक वक्त में दो-ढाई सेर दूध ले लीजिए। अभी पहली बार ही बियाई है। पच्चीस रुपये में आ जायगी। मुझे दाम कुछ ज्यादा मालूम हुए लेकिन पंडितजी पर मुझे एतबार था। फरमाइश कर दी गई और तीसरे दिन बकरी आ पहुँची। मैं देखकर उछल पड़ा। जो-जो गुण बताये गये थे उनसे कुछ ज्यादा ही निकले। एक छोटी-सी मिट्टी की नांद मँगवाई गई, चोकर का भी इन्तजाम हो गया। शाम को मेरे नौकर ने दूध निकाला तो

सचमुच ढाई सेर। मेरी छोटी पतीली लबालब भर गई थी। अब मूसलों ढोल बजायेंगे। यह मसला इतने दिनों के बाद जाकर कहीं हल हुआ। पहले ही यह बात सूझती तो क्यों इतनी परेशानी होती। पण्डितजी का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया। मुझे सवेरे तड़के और शाम को उसकी सींग पकड़ने पड़ते थे तब आदमी दुह पाता था। लेकिन यह तकलीफ इस दूध के मुकाबले में कुछ न थी। बकरी क्या है कामधेनु है। बीवी ने सोचा इसे कहीं नजर न लग जाय इसलिए उसके थन के लिए एक गिलाफ तैयार हुआ, इसकी गर्दन में नीले चीनी के दानों का एक माला पहनाया गया। घर में जो कुछ जूठा बचता, देवी जी खुद जाकर उसे खिला आती थीं।

लेकिन एक ही हफ्ते में दूध की मात्रा कम होने लगी। जरूर नजर लग गई। बात क्या है। पण्डितजी से हाल कहा तो उन्होंने कहा — साहब, देहात की बकरी है, जमींदार की। बेदरेग अनाज खाती थी और सारे दिन बाग में घूमा-चरा करती थी। यहाँ बंधे-बंधे दूध कम हो जाये तो ताज्जुब नहीं। इसे जरा टहला दिया कीजिए।

लेकिन शहर में बकरी को टहलाये कौन और कहाँ? इसलिए यह तय हुआ कि बाहर कहीं मकान लिया जाय। वहाँ बस्ती से जरा निकलकर खेत और बाग है। कहार घण्टे-दो घण्टे टहला लाया

करेगा। झटपट मकान बदला और गौ कि मुझे दफ्तर आने-जाने में तीन मील का फासला तय करना पड़ता था लेकिन अच्छा दूध मिले तो मैं इसका दुगना फासला तय करने को तैयार था। यहाँ मकान खूब खुला हुआ था, मकान के सामने सहन था, जरा और बढ़कर आम और महुए का बाग। बाग से निकलिए तो काछियों के खेत थे, किसी में आलू, किसी में गोभी। एक काछी से तय कर लिया कि रोजाना बकरी के लिए कुछ हरियाली जाया करे। मगर इतनी कोशिश करने पर भी दूध की मात्रा में कुछ खास बढ़त नहीं हुई। ढाई सेर की जगह मुश्किल से सेर-भर दूध निकलता था लेकिन यह तस्कीन थी कि दूध खालिस है, यही क्या कम है!

मै यह कभी नहीं मान सकता कि खिदमतगारी के मुकाबले में बकरी चराना ज्यादा जलील काम है। हमारे देवताओं और नबियों का बहुत सम्मानित वर्ग गल्ले चराया करते था। कृष्ण जी गायें चराते थे। कौन कह सकता है कि उस गल्ले में बकरियाँ न रही होंगी। हजरत ईसा और हजरत मुहम्मद दोनों ही भेड़ चराते थे। लेकिन आदमी रूढ़ियों का दास है। जो कुछ बुजुर्गों ने नहीं किया उसे वह कैसे करे। नये रास्ते पर चलने के लिए जिस संकल्प और दृढ़ आस्था की जरूरत है वह हर एक में तो होती नहीं। धोबी आपके गन्दे कपड़े धो लेगा लेकिन आपके दरवाजे

पर झाड़ू लगाने में अपनी हतक समझता है। जरायमपेशा कौमों के लोग बाजार से कोई चीज कीमत देकर खरीदना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। मेरे खितमतगार को बकरी लेकर बाग में जाना बुरा मालूम होता था। घर से तो ले जाय लेकिन बाग में उसे छोड़कर खुद किसी पेड़ के नीचे सो जाता। बकरी पत्तियाँ चर लेती थी। मगर एक दिन उसके जी में आया कि जरा बाग से निकलकर खेतों की सैर करें। यों वह बहुत ही सभ्य और सुसंस्कृत बकरी थी, उसके चेहरे से गम्भीरता झलकती थी। लेकिन बाग और खेत में घुस गई आजादी नहीं है, इसे वह शायद न समझ सकी। एक रोज किसी खेत में घुस गई और गोभी की कई क्यारियाँ साफ कर गई। काछी ने देखा तो उसके कान पकड़ लिये और मेरे पास लाकर बोला — बाबूजी, इस तरह आपकी बकरी हमारे खेत चरेगी तो हम तो तबाह हो जायेंगे। आपको बकरी रखने का शौक है तो इस बाँधकर रखिये। आज तो हमने आपका लिहाज किया लेकिन फिर हमारे खेत में गई तो हम या तो उसकी टाँग तोड़ देंगे या कानी हौज भेज देंगे।

अभी वह अपना भाषण खत्म न कर पाया था कि उसकी बीवी आ पहुंची और उसने इसी विचार को और भी जोरदार शब्दों में अदा किया — हाँ, हाँ, करती ही रही मगर राँड खेत में घुस गई और सारा खेत चौपट कर दिया, इसके पेट में भवनी बैठे! यहाँ

कोई तुम्हारा दबैल नहीं है। हाकिम होंगे अपने घर के होंगे। बकरी रखना है तो बांधकर रखो नहीं गला ऐंठ दूँगी!

मैं भीगी बिल्ली बना हुआ खड़ा था। जितनी फटकर आज सहनी पड़ी उतनी जिन्दगी में कभी न सही। और जिस धीरज से आज काम लिया अगर उसे दूसरे मौकों पर काम लिया होता तो आज आदमी होता। कोई जवाब नहीं सूझता था। बस यही जी चाहता था कि बकरी का गला घोंट दूँ ओर खिदमतगार को डेढ़ सौ हण्टर जमाऊँ। मेरी खामोशी से वह औरत भी शेर होती जाती थी। आज मुझे मालूम हुआ कि किन्हीं-किन्हीं मौकों पर खामोशी नुकसानदेह साबित होती है। खैर, मेरी बीवी ने घर में यह गुल-गपाड़ा सुना तो दरवाजे पर आ गई तो हेकड़ी से बोली — तू कानी हौज पहुँचा दे और क्या करेगी, नाहक टर्र-टर्र कर रही है, घण्टे-भर से। जानवर ही है, एक दिन खुल गई तो क्या उसकी जान लेगी? खबरदार जो एक बात भी मुँह से निकाली। क्यों नहीं खेत के चारों तरफ झाड़ लगा देती, काँटों से रूँध दे। अपनी गती तो मानती नहीं, ऊपर से लड़ने आई है। अभी पुलिस में इत्तला कर दें तो बंधे-बंधे फिरो।

बात कहने की इस शासनपूर्ण शैली ने उन दोनों को ठण्डा कर दिया। लेकिन उनके चले जाने के बाद मैंने देवी जी की खूब

खबर ली — गरीबों का नुकसान भी करती हो और ऊपर से रोब जमाती हो। इसी का नाम इंसाफ है?

देवी जी ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया — मेरा एहसान तो न मानोगे कि शैतानों को कितनी आसानी से भगा दिया, लगे उल्टे डाँटने। गँवारों को राह बतलाने का सख्ती के सिवा दूसरा कोई तरीका नहीं। सज्जनता या उदारता उनकी समझ में नहीं आती। उसे यह लोग कमजोरी समझते हैं और कमजोर को कोन नहीं दबाना चाहता।

खिदमतगार से जवाब तलब किया तो उसने साफ कह दिया — साहब, बकरी चराना मेरा काम नहीं है।

मैंने कहा — तुमसे बकरी चराने को कौन कहता है, जरा उसे देखते रहो करो कि किसी खेत में न जाय, इतना भी तुमसे नहीं हो सकता?

मैं बकरी नहीं चरा सकता साहब, कोई दूसरा आदमी रख लीजिए।

आखिरी मैंने खुद शाम को उसे बाग में चरा लाने का फैसला किया। इतने जरा-से काम के लिए एक नया आदमी रखना मेरी हैसियत से बाहर था। और अपने इस नौकर को जवाब भी नहीं देना चाहता था जिसने कई साल तक वफादारी से मेरी सेवा की

थी और ईमानदार था। दूसरे दिन में दफ्तर से जरा जल्द चला आया और चटपट बकरी को लेकर बाग में जा पहुँचा। जोड़ों के दिन थे। ठण्डी हवा चल रही थी। पेड़ों के नीचे सूखी पत्तियाँ गिरी हुई थीं। बकरी एक पल में वह जा पहुंची। मेरी दलेल हो रही थी, उसके पीछे-पीछे दौड़ता फिरता था। दफ्तर से लौटकर जरा आराम किया करता था, आज यह कवायद करना पड़ी, थक गया, मगर मेहनत सफल हो गई, आज बकरी ने कुछ ज्यादा दूध पिया।

यह खयाल आया, अगर सूखी पत्तियाँ खाने से दूध की मात्रा बढ़ गई तो यकीनन हरी पत्तियाँ खिलाई जाएँ तो इससे कहीं बेहतर नतीजा निकले। लेकिन हरी पत्तियाँ आयें कहाँ से? पेड़ों से तोड़ूँ तो बाग का मालिक जरूर ऐतराज करेगा, कीमत देकर हरी पत्तियाँ मिल न सकती थीं। सोचा, क्यों एक बार बाँस के लग्गे से पत्तियाँ तोड़ें। मालिक ने शोर मचाया तो उससे आरजू-मिन्नत कर लेंगे। राजी हो गया तो खैर, नहीं देखी जायगी। थोड़ी-सी पत्तियाँ तोड़ लेने से पेड़ का क्या बिगड़ जाता है। चुनाचे एक पड़ोसी से एक पतला-लम्बा बाँस माँग लाया, उसमें एक आँकुस बाँधा और शाम को बकरी को साथ लेकर पत्तियाँ तोड़ने लगा। चोर आँखों से इधर-उधर देखता जाता था, कहीं मालिक तो नहीं आ रहा है। अचानक वही काछी एक तरफ से आ निकला और मुझे पत्तियाँ

तोड़ते देखकर बोला — यह क्या करते हो बाबूजी, आपके हाथ में यह लग्गा अच्छा नहीं लगता। बकरी पालना हम गरीबों का काम है कि आप जैसे शरीफों का। मैं कट गया, कुछ जवाब न सूझा। इसमें क्या बुराई है, अपने हाथ से अपना काम करने में क्या शर्म वगैरह जवाब कुछ हलके, बेहकीकत, बनावटी मालूम हुए। सफेदपोशी के आत्मगौरव के जबान बन्द कर दी। काछी ने पास आकर मेरे हाथ से लग्गा ले लिया और देखते-देखते हरी पत्तियों का ढेर लगा दिया और पूछा — पत्तियाँ कहाँ रख जाऊँ?

मैंने झेंपते हुए कहा — तुम रहने दो? मैं उठा ले जाऊँगा।

उसने थोड़ी-सी पत्तियाँ बगल में उठा लीं और बोला — आप क्या पत्तियाँ रखने जायेंगे, चलिए मैं रख आऊँ।

मैंने बरामदे में पत्तियाँ रखवा लीं। उसी पेड़ के नीचे उसकी चौगुनी पत्तियाँ पड़ी हुई थी। काछी ने उनका एक गट्ठा बनाया और सर पर लादकर चला गया। अब मुझे मालूम हुआ, यह देहाती कितने चालाक होते हैं। कोई बात मतलब से खाली नहीं।

मगर दूसरे दिन बकरी को बाग में ले जाना मेरे लिए कठिन हो गया। काछी फिर देखेगा और न जाने क्या-क्या फिकरे चुस्त करे। उसकी नजरों में गिर जाना मुँह से कालिख लगाने से कम

शर्मनाक न था। हमारे सम्मान और प्रतिष्ठा की जो कसौटी लोगों ने बना रक्खी है, हमको उसका आदर करना पड़ेगा, नक्कू बनकर रहे तो क्या रहे।

लेकिन बकरी इतनी आसानी से अपनी निर्द्वन्द्व आजाद चहलकदमी से हाथ न खींचना चाहती थी जिसे उसने अपने साधारण दिनचर्या समझना शुरू कर दिया था। शाम होते ही उसने इतने जोर-शोर से प्रतिवाद का स्वर उठाया कि घर में बैठना मुश्किल हो गय। गिटकिरीदार 'मे-मे' का निरन्तर स्वर आ-आकर कान के पर्दों को क्षत-विक्षत करने लगा। कहाँ भाग जाऊँ? बीवी ने उसे गालियाँ देना शुरू कीं। मैंने गुस्से में आकर कई डण्डे रसीदे किये, मगर उसे सत्याग्रह स्थगित न करना था न किया। बड़े संकट में जान थी।

आखिर मजबूर हो गया। अपने किये का, क्या इलाज! आठ बजे रात, जाड़ों के दिन। घर से बाहर मुँह निकालना मुश्किल और मैं बकरी को बाग में टहला रहा था और अपनी किस्मत को कोस रहा था। अंधेरे में पाँव रखते मेरी रूह काँपती है। एक बार मेरे सामने से एक सांप निकल गया था। अगर उसके ऊपर पैर पड़ जाता तो जरूर काट लेता। तब से मैं अंधेरे में कभी न निकलता था। मगर आज इस बकरी के कारण मुझे इस खतरे का भी सामना करना पड़ा। जरा भी हवा चलती और पत्ते खड़कते तो

मेरी आँखें ठिठुर जातीं और पिंडलियाँ काँपने लगतीं। शायद उस जन्म में मैं बकरी रहा हूँगा और यह बकरी मेरी मालेकिन रही होगी। उसी का प्रायश्चित इस जिन्दगी में भोग रहा था। बुरा हो उस पण्डित का, जिसने यह बला मेरे सिर मढी। गिरस्ती भी जंजाल है। बच्चा न होता तो क्यों इस मूजी जानवर की इतनी खुशामद करनी पड़ती। और यह बच्चा बड़ा हो जायगा तो बात न सुनेगा, कहेगा, आपने मेरे लिए क्या किया है। कौन-सी जायदाद छोड़ी है! यह सजा भुगतकर नौ बजे रात को लौटा। अगर रात को बकरी मर जाती तो मुझे जरा भी दुःख न होता।

दूसरे दिन सुबह से ही मुझे यह फिक्र सवार हुई कि किसी तरह रात की बेगार से छुट्टी मिले। आज दफ्तर में छुट्टी थी। मैंने एक लम्बी रस्सी मंगवाई और शाम को बकरी के गले में रस्सी डाल एक पेड़ की जड़ से बाँधकर सो गया — अब चरे जितना चाहे। अब चिराग जलते-जलते खोल लाऊँगा। छुट्टी थी ही, शाम को सिनेमा देखने की ठहरी। एक अच्छा-सा खेल आया हुआ था। नौकर को भी साथ लिया वर्ना बच्चे को कौन सँभालता। जब नौ बजे रात को घर लोटे और में लालटेन लेकर बकरी लेने गया तो क्या देखता हूँ कि उसने रस्सी को दो-तीन पेड़ों से लपेटकर ऐसा उलझा डाला है कि सुलझना मुश्किल है। इतनी रस्सी भी न बची थी कि वह एक कदम भी चल सकती।

लाहौल-विकलाकूवत, जी में आया कि कमबख़्त को यहीं छोड़ दूँ, मरती है तो मर जाय, अब इतनी रात को लालटेन की रोशनी में रस्सी सुलझाने बैठे। लेकिन दिल न माना। पहले उसकी गर्दन से रस्सी खोली, फिर उसकी पेंच-दर-पेंच ऐंठन छुड़ाई, एक घंटा लग गया। मारे सर्दी के हाथ ठिठुरे जाते थे और जी जल रहा था वह अलग। यह तरकीब। और भी तकलीफ़देह साबित हुई।

अब क्या करूँ, अक़्ल काम न करती थी। दूध का खयाल न होता तो किसी को मुफ्त दे देता। शाम होते ही चुड़ैल अपनी चीख-पुकार शुरू कर देगी और घर में रहना मुश्किल हो जायगा, और आवाज भी कितनी कर्कश और मनहूस होती है। शास्त्रों में लिखा भी है, जितनी दूर उसकी आवाज जाती है उतनी दूर देवता नहीं आते। स्वर्ग की बसनेवाली हस्तियाँ जो अप्सराओं के गाने सुनने की आदी है, उसकी कर्कश आवाज से नफरत करें तो क्या ताज्जुब! मुझ पर उसकी कर्ण कटु पुकारों को ऐसा आतंक सवार था कि दूसरे दिन दफ्तर से आते ही मैं घर से निकल भागा। लेकिन एक मील निकल जाने पर भी ऐसा लग रहा था कि उसकी आवाज मेरा पीछा किये चली आती है। अपने इस चिड़चिड़ेपन पर शर्म भी आ रही थी। जिसे एक बकरी रखने की भी सामर्थ्य न हो वह इतना नाजुक दिमाग क्यों बने और फिर

तुम सारी रात तो घर से बाहर रहोगे नहीं, आठ बजे पहुँचोगे तो क्या वह गीत तुम्हारा स्वागत न करेगा?

सहसा एक नीची शाखोंवाला पेड़ देखकर मुझे बरबस उस पर चढ़ने की इच्छा हुई। सपाट तनों पर चढ़ना मुश्किल होता है, यहाँ तो छः सात फुट की ऊँचाई पर शाखें फूट गयी थीं। हरी-हरी पत्तियों से पेड़ लदा खड़ा था और पेड़ भी था गूलर का जिसकी पत्तियों से बकरियों को खास प्रेम है। मैं इधर तीस साल से किसी रुख पर नहीं चढ़ा। वह आदत जाती रही। इसलिए आसान चढ़ाई के बावजूद मेरे पाँव काँप रहे थे पर मैंने हिम्मत न हारी और पत्तियों तोड़-तोड़ नीचे गिराने लगा। यहाँ अकेले में कौन मुझे देखता है कि पत्तियाँ तोड़ रहा हूँ। अभी अंधेरा हुआ जाता है। पत्तियों का एक गट्ठा बगल में दबाऊँगा और घर जा पहुँचूँगा। अगर इतने पर भी बकरी ने कुछ चीं-चपड़ की तो उसकी शामत ही आ जायगी।

मैं अभी ऊपर ही था कि बकरियों और भेड़ों का एक गोल न जाने किधर से आ निकला और पत्तियों पर पिल पड़ा। मैं ऊपर से चीख रहा हूँ मगर कौन सुनता है। चरवाहे का कहीं पता नहीं। कहीं दुबक रहा होगा कि देख लिया जाऊँगा तो गालियाँ पड़ेगी। झल्लाकर नीचे उतरने लगा। एक-एक पल में पत्तियाँ गायब होती जाती थी। उतरकर एक-एक की टांग तोडूँगा।

यकायक पाँव फिसला और मैं दस फिट की ऊँचाई से नीचे आ रहा। कमर में ऐसी चोट आयी कि पाँच मिनट तक आँखों तले अंधेरा छा गया। खैरियत हुई कि और ऊपर से नहीं गिरा, नहीं तो यहीं शहीद हो जाता। बारे, मेरे गिरने के धमाके से बकरियाँ भागी और थोड़ी-सी पत्तियाँ बच रहीं। जब जरा होश ठिकाने हुए तो मैंने उन पत्तियों को जमा करके एक गट्ठा बनाया और मजदूरों की तरह उसे कंधे पर रखकर शर्म की तरह छिपाये घर चला। रास्ते में कोई दुर्घटना न हुई। जब मकान कोई चार फलाँग रह गया और मैंने कदम तेज किये कि कहीं कोई देख न ले तो वह काछी समाने से आता दिखायी दिया। कुछ न पूछो उस वक्त मेरी क्या हालत हुई। रास्ते के दोनो तरफ खेतों की ऊँची मेड़ें थीं जिनके ऊपर नागफनी निकलेगा और भगवान् जाने क्या सितम ढाये। कहीं मुड़ने का रास्ता नहीं और बदल ली और सिर झुकाकर इस तरह निकल जाना चाहता था कि कोई मजदूर है। तले की साँस तले थी, ऊपर की ऊपर, जैसे वह काछी कोई ख़ूँख़ार शेर हो। बार-बार ईश्वर को याद कर रहा था कि हे भगवान्, तू ही आफत के मारे हुओं का मददगार है, इस मरदूद की जबान बन्द कर दे। एक क्षण के लिए, इसकी आँखों की रोशनी गायब कर दे...आह, वह यंत्रणा का क्षण जब मैं उसके बराबर एक गज के फासले से निकला! एक-एक कदम तलवार

की धार पर पड़ रहा था शैतानी आवाज कानों में आयी — कौन है रे, कहाँ से पत्तियाँ तोड़े लाता है!

मुझे मालूम हुआ, नीचे से जमीन निकल गयी है और मैं उसके गहरे पेट में जा पहुँचा हूँ। रोएँ बर्छियाँ बने हुए थे, दिमाग में उबाल-सा आ रहा था, शरीर को लकवा-सा मार गया, जवाब देने का होश न रहा। तेजी से दो-तीन कदम आगे बढ़ गया, मगर वह ऐच्छिक क्रिया न थी, प्राण-रक्षा की सहज क्रिया थी कि एक जालिम हाथ गट्ठे पर पड़ा और गट्ठा नीचे गिर पड़ा। फिर मुझे याद नहीं, क्या हुआ। मुझे जब होश आया तो मैं अपने दरवाजे पर पसीने से तर खड़ा था गोया मिरगी के दौरे के बाद उठा हूँ। इस बीच मेरी आत्मा पर उपचेतना का आधिपत्य था और बकरी की वह घृणित आवाज, वह कर्कश आवाज, वह हिम्मत तोड़नेवाली आवाज, वह दुनिया की सारी मुसीबतों का खुलासा, वह दुनिया की सारी लानतों की रूह कानों में चुभी जा रही थी।

बीवी ने पूछा — आज कहाँ चले गये थे? इस चुड़ैल को जरा बाग भी न ले गये,जीना मुहाल किये देती है। घर से निकलकर कहाँ चली जाऊँ!

मैंने इतमीनान दिलाया — आज चिल्ला लेने दो, कल सबसे पहला यह काम करूँगा कि इसे घर से निकाल बाहर करूँगा, चाहे कसाई को देना पड़े।

'और लोग न जाने कैसे बकरियाँ पालते हैं।'

'बकरी पालने के लिए कुत्ते का दिमाग चाहिए।'

सुबह को बिस्तर से उठकर इसी फिक्र में बैठा था कि इस काली बला से क्योंकर मुक्ति मिले कि सहसा एक गड़रिया बकरियों का एक गल्ला चराता हुआ आ निकला। मैंने उसे पुकारा और उससे अपनी बकरी को चराने की बात कही। गड़रिया राजी हो गया। यही उसका काम था। मैंने पूछा — क्या लोगे?

'आठ आने बकरी मिलते हैं हजूर।'

'मैं एक रुपया दूँगा लेकिन बकरी कभी मेरे सामने न आवे।'

गड़रिया हैरत में रह गया — मरकही है क्या बाबूजी?

'नही, नहीं, बहुत सीधी है, बकरी क्या मारेगी, लेकिन मैं उसकी सूरत नहीं देखना चाहता।'

'अभी तो दूध देती है?'

'हाँ, सेर-सवा सेर दूध देती है।'

‘दूध आपके घर पहुँच जाया करेगा।’

‘तुम्हारी मेहरबानी।’

जिस वक्त बकरी घर से निकली है मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे घर का पाप निकला जा रहा है। बकरी भी खुश थी गोया कैद से छूटी है, गड़रिये ने उसी वक्त दूध निकाला और घर में रखकर बकरी को लिये चला गया। ऐसा बेगराज गाहक उसे जिन्दगी में शायद पहली बार ही मिला होगा।

एक हफ्ते तक दूध थोड़ा-बहुत आता रहा फिर उसकी मात्रा कम होने लगी, यहाँ तक कि एक महीना खत्म होते-होते दूध बिलकुल बन्द हो गया। मालूम हुआ बकरी गाभिन हो गयी है। मैंने जरा भी ऐतराज न किया काछी के पास गाय थी, उससे दूध लेने लगा। मेरा नौकर खुद जाकर दुह लाता था।

कई महीने गुजर गये। गड़रिया महीने में एक बार आकर अपना रुपया ले जाता। मैंने कभी उससे बकरी का जिक्र न किया। उसके खयाल ही से मेरी आत्मा काँप जाती थी। गड़रिये को अगर चेहरे का भाव पढ़ने की कला आती होती तो वह बड़ी आसानी से अपनी सेवा का पुरस्कार दुगना कर सकता था।

एक दिन मैं दरवाजे पर बैठा हुआ था कि गड़रिया अपनी बकरियों का गल्ला लिये आ निकला। मैं उसका रुपया लाने

अन्दर गया, कि क्या देखता हूँ मेरी बकरी दो बच्चों के साथ मकान में आ पहुंची। वह पहले सीधी उस जगह गयी जहां बंधा करती थी फिर वहाँ से आँगन में आयी और शायद परिचय दिलाने के लिए मेरी बीवी की तरफ ताकने लगी। उन्होंने दौड़कर एक बच्चे को गोद में ले लिया और कोठरी में जाकर महीनों का जमा चोकर निकाल लायीं और ऐसी मुहब्बत से बकरी को खिलाने लगीं कि जैसे बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई सहेली आ गयी हो। न व पुरानी कटुता थी न वह मनमुटाव। कभी बच्चे को चुमकारती थीं। कभी बकरी को सहलाती थीं और बकरी डाकगाड़ी की रफ्तार से चोकर उड़ा रही थी।

तब मुझसे बोलीं — कितने खूबसूरत बच्चे है!

‘हाँ, बहुत खूबसूरत।’

‘जी चाहता है, एक पाल लूँ।’

‘अभी तबियत नहीं भरी?’

‘तुम बड़े निर्मोही हो।’

चोकर खत्म हो गया, बकरी इतमीनान से विदा हो गयी। दोनों बच्चे भी उसके पीछे फुदकते चले गये। देवी जी आँख में आँसू भरे यह तमाशा देखती रहीं।

गड़रिये ने चिलम भरी और घर से आग माँगने आया। चलते वक्त बोला — कल से दूध पहुँचा दिया करूँगा। मालिक।

देवीजी ने कहा — और दोनों बच्चे क्या पियेंगे?

'बच्चे कहाँ तक पियेंगे बहूजी। दो सेर दूध अच्छा न होता था, इस मारे नहीं लाया।'

मुझे रात को वह मर्मान्तक घटना याद आ गयी।

मैंने कहा — दूध लाओ या न लाओ, तुम्हारी खुशी, लेकिन बकरी को इधर न लाना।

उस दिन से न वह गड़रिया नजर आया न वह बकरी, और न मैंने पता लगाने की कोशिश की। लेकिन देवीजी उसके बच्चों को याद करके कभी-कभी आँसू बहा रोती हैं।

['वारदात' से]

क्रिकेट मैच

1 जनवरी, 1935

आज क्रिकेट मैच में मुझे जितनी निराशा हुई मैं उसे व्यक्त नहीं कर हार सकता। हमारी टीम दुश्मनों से कहीं ज्यादा मजबूत था मगर हमें हार हुई और वे लोग जीत का डंका बजाते हुए ट्राफी उड़ा ले गये। क्यों? सिर्फ इसलिए कि हमारे यहाँ नेतृत्व के लिए योग्यता शर्त नही। हम नेतृत्व के लिए धन-दौलत जरूरी समझते हैं। हिज हाइनेस कप्तान चुने गये, क्रिकेट बोर्ड का फैसला सबको मानना पड़ा। मगर कितने दिलों में आग लगी, कितने लोगों ने हुक्मे हाकिम समझकर इस फैसले को मंजूर किया, जोश कहाँ, संकल्प कहाँ, खून की आखिरी बूंद गिरा देने का उत्साह कहाँ। हम खेले और जाहिरा दिल लगाकर खेले। मगर यह सच्चाई के लिए जान देनेवालों की फौज न थी। खेल में किसी का दिल न था।

मैं स्टेशन पर खड़ा अपना तीसरे दर्जे का टिकट लेने की फिक्र में था कि एक युवती ने जो अभी कार से उतरी थी आगे बढ़कर मुझसे हाथ मिलाया और बोली — आप भी तो इसी गाड़ी से चल रहे हैं मिस्टर जफर?

मुझे हैरत हुई कि यह कौन लड़की है और इसे मेरा नाम क्योंकर मालूम हो गया? मुझे एक पल के लिए सकता-सा हो गया कि जैसे शिष्टाचार और अच्छे आचरण की सब बातें दिमाग से गायब हो गई हों। सौन्दर्य में एक ऐसी शान होती है जो बड़ों-बड़ों का सिर झुका देती है। मुझे अपनी तुच्छता की ऐसी अनुभूति कभी न हुई थी। मैंने निजाम हैदराबाद से, हिज एक्सेलेन्सी वायसराय से, महाराज मैसूर से हाथ मिलाया, उनके साथ बैठकर खाना खाया मगर यह कमजोरी मुझ पर कभी न छाई थी। बस, यहाँ जी चाहता था कि अपनी पलकों से उसके पाँव चूम लूँ। यह वह सलोनापन ना था जिस पर हम जान देते हैं, न वह नजाकत जिसकी कवि लोग कसमें खाते हैं। उस जगह बुद्धि की कांति थी, गंभीरता थी, गरिमा थी, उमंग थी और थी आत्म-अभिव्यक्ति की निस्संकोच लालसा। मैंने सवाल-भरे अंदाज से कहा — जी हाँ।

यह कैसे पूछूँ कि मेरी आपसे भेंट कब हुई। उसकी बेतकल्लुफी कह रही थी वह मुझसे परिचित है। मैं बेगाना कैसे बनूँ। इसी

सिलसिले में मैंने अपने मर्द होने क फर्ज अदा कर दिया — मेरे लिए कोई खिदमत?

उसने मुस्कराकर कहा — जी हाँ, आपसे बहुत-से काम लूँगी। चलिए, अन्दर वेटिंग रुम में बैठें। लखनऊ जा रहे होंगे? मै भी वहीं चल रही हूँ।

वेटिंग रुम आकर उसने मुझे आराम कुर्सी पर बिठाया और खुद एक मामूली कुर्सी पर बैठकर सिगरेट केस मेरी तरफ बढ़ाती हुई बोली — आज तो आपकी बौलिंग बड़ी भयानक थी, वर्ना हम लोग पूरी इनिंग से हारते।

मेरा ताज्जुब और बढ़ा। इस सुन्दरी को क्या क्रिकेट से भी शौक है! मुझे उसके सामने आरामकुर्सी पर बैठते झिझक हो रही थी। ऐसी बदतमीजी मैंने कभी न की थी। ध्यान उसी तरफ लगा था, तबियत में कुछ घुटन-सी हो रही थी। रगों में वह तेजी और तबियत में वह गुलाबी नशा न था जो ऐसे मौके पर स्वभावतः मुझ पर छा जाना चाहिए था। मैंने पूछा — क्या आप वहीं तशरीफ रखती थीं।

उसने अपना सिगरेट जलाते हुए कहा — जी हाँ, शुरु से आखिर तक। मुझे तो सिर्फ आपका खेल जँचा। और लोग तो कुछ बेदिल-से हो रहे थे और मैं उसके राज समझ रही हूँ। हमारे

यहाँ लोगों में सही आदमियों को सही जगह पर रखने का माद्दा ही नहीं है। जैसे इस राजनीतिक पस्ती ने हमारे सभी गुणों को कुचल डाला हो। जिसके पास धन है उसे हर चीज का अधिकार है। वह किसी ज्ञान, विज्ञान के, साहित्यिक-सामाजिक जलसे का सभापति हो सकता है, इसकी योग्यता उसमें हो या न हो। नई इमारतों का उद्घाटन उसके हाथों कराया जाता है, बुनियादें उसके हाथ रखवाई जाती हैं, सांस्कृतिक आंदोलनों का नेतृत्व उसे दिया जाता है, वह कान्वोकेशन के भाषण पढ़ेगा, लड़कों को इनाम बाँटेगा, यह सब हमारी दास-मनोवृत्ति का प्रसाद है। कोई ताज्जुब नहीं कि हम इतने नीच और गिरे हुए हैं। जहां हुक्म और अख्तियार का मामला है वहाँ तो खैर मजबूरी है, हमें लोगों के पैर चूमने ही पड़ते हैं मगर जहां हम अपने स्वतंत्र विचार और स्वतन्त्र आचरण से काम लें सकते हैं वहाँ भी हमारी जी हुजूरी की आदत हमारा गला नहीं छोड़ती। इस टीम का कप्तान आपको होना चाहिए था, तब देखती दुश्मन क्यों बाजी ले जाता। महाराजा साहब में इस टीम का कप्तान बनने की इतनी ही योग्यता है जितनी आप में असेम्बली का सभापति बनने की या मुझमें सिनेमा ऐक्टिंग की।

बिल्कुल वही भाव जो मेरे दिल में थे मगर उसकी जबान से निकलकर कितने असरदार और कितने आँख खोलनेवाले हो गए।

मैंने कहा — आप ठीक कहती हैं। सचमुच यह हमारी कमजोरी है।

–आपको इस टीम में शरीक न होना चाहिए था।

–मैं मजबूर था।

इस सुन्दरी का नाम मिस हेलेन मुकर्जी है। अभी इंग्लैण्ड से आ रही है। यही क्रिकेट मैच देखने के लिए बम्बई उतर गई थी। इंगलैंड में उसने डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की है और जनता की सेवा उसके जीवन का लक्ष्य हैं। वहाँ उसने एक अखबार में मेरी तस्वीर देखी थी और मेरा जिक्र भी पढ़ा था तब से वह मेरे लिए अच्छा ख्याल रखती है। यहाँ मुझे खेलते देखकर वह और भी प्रभावित हुई। उसका इरादा है कि हिन्दुस्तान की एक नई टीम तैयार की जाए और उसमें वही लोग लिए जाएँ जो राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के अधिकारी हैं। उसका प्रस्ताव है कि मैं इस टीम का कप्तान बनाया जाऊँ। इसी इरादे से वह सारे हिन्दुस्तान का दौरा करना चाहती है। उसके स्वर्गीय पिता डा. एन. मुकर्जी ने बहुत काफी सम्पत्ति छोड़ी है और वह उसकी सम्पूर्ण उत्तराधिकारिणी है। उसके प्रस्ताव सुनकर मेरा सर आसमान में उड़ने लगा। मेरी जिन्दगी का सुनहरा सपना इतने अप्रत्याशित ढंग से वास्तविकता का रूप ले सकेगा, यह कौन सोच सकता

था। अलौकिक शक्ति में मेरा विश्वास नहीं मगर आज मेरे शरीर का रोआ-रोआ कृतज्ञता और भक्ति भावना से भरा हुआ था। मैंने उचित और विनम्र शब्दों में मिस हेलेन को धन्यवाद दिया।

गाड़ी की घण्टी हुई। मिस मुकर्जी ने फर्स्ट क्लास के दो टिकट मँगवाए। मैं विरोध न कर सका। उसने मेरा लगेज उठवाया, मेरा हैट खुद उठा लिया और बेधड़क एक कमरे में जा बैठी और मुझे भी अन्दर बुला लिया। उसका खानसामा तीसरे दर्जे में बैठा। मेरी क्रिया-शक्ति जैसे खो गई थी। मैं भगवान् जाने क्यों इन सब मामलों में उसे अगुवाई करने देता था जो पुरुष होने के नाते मेरे अधिकार की चीज थी। शायद उसके रूप, उसकी बौद्धिक गरिमा, उसकी उदारता ने मुझ पर रोब डाल दिया था कि जैसे उसने कामरूप की जादूगरनियों की तरह मुझे भेड़ बना लिया हो और मेरी अपनी इच्छा शक्ति लुप्त हो गई हो। इतनी ही देर में मेरा अस्तित्व उसकी इच्छा में खो गया था। मेरे स्वाभिमान की यह माँग थी कि मैं उसे अपने लिए फ़र्स्ट क्लास का टिकट न मँगवाने देता और तीसरे ही दर्जे में आराम से बैठता और अगर पहले दर्जे में बैठना था तो इतनी ही उदारता से दोनों के लिए खुद पहले दर्जे का टिकट लाता, लेकिन अभी तो मेरी क्रियाशक्ति लुप्त हो गई थी।

2 जनवरी —

मैं हैरान हूँ हेलेन को मुझसे इतनी हमदर्दी क्यों है और यह सिर्फ दोस्ताना हमदर्दी नहीं है। इसमें मुहब्बत की सच्चाई है। दया में तो इतना आतिथ्य-सत्कार नहीं हुआ करता, और रही मेरे गुणों की स्वीकृति तो मैं अक़्ल से इतना खाली नहीं हूँ कि इस धोखे में पड़ूँ। गुणों की स्वीकृति ज्यादा से ज्यादा एक सिगरेट और एक प्याली चाय पा सकती है। यह सेवा-सत्कार तो मैं वहीं पाता हूँ जहां किसी मैच में खेलने के लिए मुझे बुलाया जाता है। तो भी वहाँ भी इतने हार्दिक ढंग से मेरा सत्कार नहीं हो, सिर्फ रस्मी खातिरदारी बरती जाती है। उसने जैसे मेरी सुविधा और मेरे आराम के लिए अपने को समर्पित कर दिया हो। मैं तो शायद अपनी प्रेमिका के सिवा और किसी के साथ इस हार्दिकता का बर्ताव न कर सकता। याद रहे, मैंने प्रेमिका कहा है पत्नी नहीं कहा। पत्नी की हम खातिरदारी नहीं करते, उससे तो खातिरदारी करवाना ही हमारा स्वभाव हो गया है और शायद सच्चाई भी यही है। मगर फिलहाल तो मैं इन दोनों नेमतों में से एक का भी हाल नहीं जानता। उसके नाश्ते, डिनर, लंच में तो मैं शरीक था ही, हर स्टेशन पर (वह डाक थी था और खास-खास स्टेशनों पर ही रुकती थीं) मेवे और फल मँगवाती और मुझे आग्रहपूर्वक

खिलाती। कहाँ की क्या चीज मशहूर है, इसका उसे खूब पता है। मेरे दोस्तों और घरवालों के लिए तरह-तरह के तोहफे खरीदे मगर हैरत यह है कि मैंने एक बार भी उसे मना न किया। मना क्योंकर करता, मुझसे पूछकर तो लाती नहीं। जब वह एक चीज लाकर मुहब्बत के साथ मुझे भेंट करती है तो मैं कैसे इन्कार करूँ! खुदा जाने क्यों मैं मर्द होकर भी उसके सामने औरत की तरह शर्मीला, कम बोलने वाला हो जाता हूँ कि जैसे मेरे मुँह में जबान ही नहीं। दिन की थकान की वजह से रात-भर मुझे बेचैनी रही सर में हल्का-सा दर्द था मगर मैंने इस दर्द को बढ़ाकर कहा। अकेला होता तो शायद इस दर्द की जरा भी पर वाह न करता मगर आज उसकी मौजूदगी में मुझे उस दर्द को जाहिर करने में मजा आ रहा था। वह मेरे सर में तेल की मालिश करने लगी और मैं खामखाह निढाल हुआ जाता था। मेरी बेचैनी के साथ उसकी परेशानी बढ़ती जाती थी। मुझसे बार-बार पूछती, अब दर्द कैसा है और मैं अनमने ढंग से कहता — अच्छा हूँ। उसकी नाजुक हथेलियों के स्पर्श से मेरे प्राणों में गुदगुदी होती थी। उसका वह आकर्षक चेहरा मेरे सर पर झुका है, उसकी गर्म साँसे मेरे माथे को चूम रही है और मैं गोया जन्नत के मजे ले रहा हूँ। मेरे दिल में अब उस पर फतेह पाने की ख्वाहिश झकोले ले रही है। मैं चाहता हूँ वह मेरे नाज उठाये। मेरी

तरफ से कोई ऐसी पहल न होनी चाहिए जिससे वह समझ जाये कि मैं उस पर लट्टू हो गया हूँ। चौबीस घंटे के अन्दर मेरी मनःस्थिति में कैसे यह क्रांति हो जाती है, मैं क्योंकर प्रेम के प्रार्थी से प्रेम का पात्र बन जाता हूँ। वह बदस्तूर उसी तल्लीनता से मेरे सिर पर हाथ रक्खे बैठी हुई है। तब मुझे उस पर रहम आ जाता है और मैं भी उस एहसास से बरी नहीं हूँ मगर इस माशूकी में आज जो लुत्फ आया उस पर आशिकी निछावर है। मुहब्बत करना गुलामी है, मुहब्बत किया जाना बादशाहत।

मैंने दया दिखलाते हुए कहा — आपको मेरी वजह से बड़ी तकलीफ हुई।

उसने उमगकर कहा — मुझे क्या तकलीफ हुई। आप दर्द से बेचैन थे और मैं बैठी थी। काश, यह दर्द मुझे हो जाता!

मैं सातवें आसमान पर उड़ जा रहा था।

5 जनवरी —

कल शाम को हम लखनऊ पहुँच गये। रास्ते में हेलेन से सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक प्रश्नों पर खूब बातें हुईं। ग्रेजुएट तो भगवान की दया से मैं भी हूँ और तब से फुर्सत के

वक्त किताबें भी देखता ही रहा हूँ, विद्वानों की संगत में भी बैठा हूँ लेकिन उसके ज्ञान के विस्तार के आगे कदम-कदम पर मुझे अपनी हीनता का बोध होता है। हर एक प्रश्न पर उसकी अपनी राय है और मालूम होता है कि उसने छानबीन के बाद वह राय कायम की है। उसके विपरीत मैं उन लोगों मैं हूँ जो हवा के साथ उड़ते हैं, जिनके क्षणिक प्रेरणाएँ उलट-पुलटकर रख देती हैं। मैं कोशिश करता था कि किसी तरह उस पर अपनी अक़्ल का सिक्का जमा दूँ मगर उसके दृष्टिकोण मुझे बेज़बान कर देते थे। जब मैंने देखा कि ज्ञान-विज्ञान की बातों में मैं उससे न जीत सकूँगा तो मैंने एबीसीनिया और इटली की लड़ाई काजिक्र छेड़ दिया जिस पर मैंने अपनी समझ में बहुत कुछ पढ़ा था और इंग्लैण्ड और फ्रांस ने इटली पर दबाव डाला है उसकी तारीफ में मैंने अपनी वाक्-शक्ति खर्च कर दी। उसने एक मुस्कराहट के साथ कहा — आपका यह ख्याल है कि इंग्लैण्ड और फ्रांस सिर्फ इंसानियत और कमजोर की मदद करने की भावना से प्रभावित हो रहे हैं तो आपकी गलती है। उनकी साम्राज्य-लिप्सा यह नहीं बर्दाश्त कर सकती कि दुनिया की कोई दूसरी ताकत फले-फूले। मुसोलिनी वही कर रहा है जो इंग्लैण्ड ने कितनी ही बार किया है आज भी कर रहा है। यह सारा बहुरूपियापन सिर्फ एबीसीनिया में व्यावसायिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए है। इंग्लैण्ड को

अपने व्यापार के लिए बाजारों की जरूरत है, अपनी बढ़ी हुई आबादी के लिए जमीन के टुकड़ों की जरूरत है, अपने शिक्षितों के लिए ऊँचे पदों की जरूरत है तो इटली को क्यों न हो। इटली जो कुछ कर रहा है ईमानदारी के साथ एलानिया कर रहा है। उसने कभी दुनिया के सब लोगों के साथ भाईचारे का डंका नहीं पीटा, कभी शान्ति का राग नहीं अलापा। वह तो साफ कहता है कि संघर्ष ही जीवन का लक्षण है। मनुष्य की उन्नति लड़ाई ही के जरिये होती है। आदमी के अच्छे गुण लड़ाई के मैदान में ही खुलते हैं। सबकी बराबरी के दृष्टिकोण को वह पागलपन रहता है। वह अपना शुमार भी उन्हें बड़ी कौमों में करता है जिन्हें रंगीन आबादियों पर हुकूमत करने का हक है। इसलिए हम उसकी कार्य-प्रणाली को समझ सकते हैं। इंग्लैण्ड ने हमेशा धोखेबाजी से काम लिया है। हमेशा एक राष्ट्र के विभिन्न तत्वों में भेद डालकर या उनके आपसी विरोधों को राजनीति के आधार बनाकर उन्हें अपना पिछलग्गू बनाया है। मैं तो चाहती हूँ कि दुनिया में इटली, जापान और जर्मनी खूब तरक्की करें और इंग्लैण्ड को आधिपत्य टूटे। तभी दुनिया में असली जनतंत्र और शांति पैदा होगी। वर्तमान सभ्यता जब तक मिट न जायेगी, दुनिया में शांति का राज्य न होगा। कमजोर कौमों को जिन्दा रहने का कोई हक नहीं, उसी तरह जिस तरह कमजोर पौधों को। सिर्फ

इसलिए नहीं कि उनका अस्तित्व स्वयं उनके लिए कष्ट का कारण है बल्कि इसलिए कि वही दुनिया के इस झगड़े और रक्तपात के लिए जिम्मेदार हैं।

मैं भला क्यों इस बात से सहमत होने लगा। मैंने जवाब तो दिया और इन विचारों को इतने ही जोरदार शब्दों में खंडन भी किया। मगर मैंने देखा कि इस मामले में वह संतुलित बुद्धि से काम नहीं लेना चाहती या नहीं ले सकती।

स्टेशन पर उतरते ही मुझे यह फिक्र सवार हुई कि हेलेन का अपना मेहमान कैसे बनाऊँ। अगर होटल में ठहराऊँ तो भगवान् जाने अपने दिल में क्या कहे। अगर अपने घर ले जाऊँ तो शर्म मालूम होती हैं। वहाँ ऐसी रुचि-सम्पन्न और अमीरों जैसे स्वभाव वाली युवती के लिए सुविधा की क्या सामग्रियाँ हैं। यह संयोग की बात है कि मैं क्रिकेट अच्छा खेलने लगा और पढ़ना-लिखना, छोड़-छोड़कर उसी का हो रहा और एक स्कूल का मास्टर हूँ मगर घर की हालत बदस्तूर है। वही पुरा, अंधेरा, टूटा-फूटा मकान, तंग गली में, वही पुराने रग-ढंग, वही पुरा ढच्चर। अम्मा तो शायद हेलेन को घर में कदम ही न रखने दें। और यहाँ तक नौबत ही क्यों आने लगी, हेलेन खुद दरवाजे ही से भागेगी। काश, आज अपना मकान होता, सजा-सँवरा, मैं इस काबिल होता

कि हेलेन की मेहमानदारी कर सकता, इससे ज्यादा खुशनसीबी और क्या हो सकती थी लेकिन बेसरोसामनी का बुरा हो!

मैं यही सोच रहा था कि हेलेन ने कुली से असबाब उठावाया और बाहर आकर एक टैक्सी बुला ली। मेरे लिए इस टैक्सी में बैठ जाने के सिवा दूसरा चारा क्या बाकी रह गया थ। मुझे यकीन है, अगर मै। उसे अपने घर ले जाता तो उस बेसरोसामनी के बावजूद वह खुश होती। हेलेन रुचि-सम्पन्न है मगर नखरेबाज नहीं है। वह हर तरह की आजमाइश और तजुर्बे के लिए तैयार रहती है। हेलेन शायद आजमाइशों को और नागवार तजुर्बों को बुलाती है। मगर मुझ में न यह कल्पना है न वह साहस।

उसने जरा गौर से मेरा चेहरा देखा होता तो उसे मालूम हो जाता कि उस पर कितनी शर्मिन्दगी और कितनी बेचारगी झलक रही थी। मगर शिष्टाचार का निबाह तो जरूरी था, मैंने आपत्ति की, मैं तो आपको अपना मेहमान बनाना चाहता थ मगर आप उल्टा मुझे होटल लिए जा रही हैं।

उसने शरारत से कहा — इसीलिए कि आप मेरे काबू से बाहर न हो जाएँ। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की बात क्या होती कि आपके आतिथ्य सत्कार का आनन्द उठाऊँ लेकिन प्रेम ईर्ष्यालु होता है, यह आपको मालूम है। वहाँ आपके इष्ट मित्र आपके

वक्त का बड़ा हिस्सा लेंगे,आपको मुझसे बात करने का वक्त ही न मिलेगा और मर्द आम तौर पर कितने बेमुरब्बत ओर जल्द भूल जाने वाले होते हैं इसका मुझे अनुभव हो चुका है। मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी अलग नहीं छोड़ सकती। मुझे अपने सामने देखकर तुम मुझे भूलना भी चाहो तो नहीं भूल सकते।

मुझे अपनी इस ख़ुशनसीबी पर हैरत ही नहीं, बल्कि ऐसा लगने लगा कि जैसे सपना देख रहा हूँ। जिस सुन्दरी की एक नजर पर मैं अपने को कुर्बान कर देता वह इस तरह मुझसे मुहब्बत का इजहार करे। मेरा तो जी चाहता था कि इसी बात पर उनके कदमों को पकड़ कर सीने से लगा लूँ और आँसुओं से तर कर दूँ।

होटल में पहुंचे। मेरा कमरा अलग था। खाना हमने साथ खाया और थोड़ी देर तक वहीं हरी-हरी घास पर टहलते रहे।
खिलाड़ियों को कैसे चुना जाय, यही सवाल था। मेरा जी तो यही चाहता था कि सारी रात उसके साथ टहलता रहूँ लेकिन उसने कहा — आप अब आराम करें, सुबह बहुत काम है। मैं अपने कमरे में जाकर लेट रहा मगर सारी रात नींद नहीं आई। हेलेन का मन अभी तक मेरी आँखों से छिपा हुआ था, हर क्षण वह मेरे लिए पहेली होती जा रही है।

12 जनवरी —

आज दिन-भर लखनऊ के क्रिकेटरों का जमाव रहा। हेलेन दीपक थी और पतिंगे उसके गिर्द मँडरा रहे थे। यहाँ से मेरे अलावा दो लोगों का खेल हेलेन को बहुत पसन्द आया — बृजेन्द्र और सादिक। हेलेन उन्हें आल इंडिया टीम में रखना चाहती थी। इसमें कोई शक नहीं कि दोनों इस फन के उस्ताद हैं लेकिन उन्होंने जिस तरह शुरुआत की है उससे तो यही मालूम होता है कि वह क्रिकेट खेलने नहीं अपनी किस्मत की बाजी खेलने आये हैं। हेलन किस मिजाज की औरत है, यह समझना मुश्किल है। बृजेन्द्र मुझसे ज्यादा सुन्दर है, यह मैं भी स्वीकार करता हूँ, रहन-सहन से पूरा साहब है। लेकिन पक्का शोहदा, लोफर। मैं नहीं चाहता कि हेलेन उससे किसी तरह का सम्बन्ध रक्खे। अदब तो उसे छू नहीं गया। बदजबान परले सिरे का, बेहूदा गन्दे मजाक, बातचीत का ढंग नहीं और मौके-महल की समझ नहीं। कभी-कभी हेलेन से ऐसे मतलब-भरे इशारे कर जाता है कि मैं शर्म से सिर झुका लेता हूँ लेकिन हेलेन को शायद उसका बाजारूपन, उसका छिछोरूपन महसूस नहीं होता। नहीं, वह शायद उसके गन्दे इशारों का मजा लेती है। मैंने कभी

उसके माथे पर शिकन नहीं देखी। यह मैं नहीं कहता कि वह हँसमुखपन कोई बुरी चीज है, न जिन्दादिली का मैं दुश्मन हूँ लेकिन एक लेडी के साथ तो अदब और कायदे का लिहाज रखना ही चाहिए।

सादिक एक प्रतिष्ठित कुल का दीपक है, बहुत ही शुद्ध आचरण, यहाँ तक कि उसे ठण्डे स्वभाव का भी कह सकते हैं, बहुत घमंडी, देखने में चिड़चिड़ा लेकिन अब वह भी शहीदों में दाखिल हो गया है। कल आप हेलेन को अपने शेर सुनाते रहे और वह खुश होती रही। मुझे तो उन शेरों में कुछ मजा न आया। इससे पहले मैंने इन हजरत को कभी शायरी करते नहीं देखा, यह मस्ती कहाँ से फट पड़ी है? रूप में जादू की ताकत है और क्या कहूँ। इतना भी न सूझा कि उसे शेर ही सुनाना है तो हसरत या जिगर या जोश के कलाम से दो-चार शेर याद कर लेता। हेलेन सका कलाम पढ़ थोड़े ही बैठी है। आपको शेर कहने की क्या जरूरत मगर यही बात उनसे कह दूँ तो बिगड़ जाएँगे, समझेंगे मुझे जलन हो रही है। मुझे क्यों जलन होने लगी। हेलेन की पूजा करनेवालों में एक मैं ही हूँ? हाँ, इतना जरूर चाहता है कि वह अच्छे-बुरे की पहचान कर सके, हर आदमी के बेतकल्लुफी मुझे पसन्द नहीं, मगर हेलेन की नजरों में सब बराबर हैं। वह बारी-बारी से सबसे अलग हो जाती है और सबसे प्रेम करती है।

किसकी ओर ज्यादा झुकी है, यह फैसला करना मुश्किल है। सादिक की धन-सम्पत्ति से वह जरा भी प्रभावित नहीं जान पड़ती। कल शाम को हम लोग सिनेमा देखने गये थे। सादिक ने आज असाधारण उदारता दिखाई। जेब से वह रुपया निकाल कर सबके लिए टिकट लेने चले। मियाँ सादिक जो इस अमीरी के बावजूद तंगदिल आदमी हैं, मैं तो कंजूस कहूँगा, हेलेन ने उनकी उदारता को जगा दिया है। मगर हेलेन ने उन्हें रोक लिया और खुद अन्दर जाकर सबके लिए टिकट लाई। और यों भी वह इतनी बेदर्दी से रुपया खर्च करती है कि मियाँ सादिक के छक्के छूट जाते हैं। जब उनका हाथ जेब में जाता है, हेलेन के रुपये काउन्टर पर जा पहुँचते हैं। कुछ भी हो, मैं तो हेलेन के स्वभाव-ज्ञान पर जान देता हूँ। ऐसा मालूम होता है वह हमारी फर्माइशों का इन्तजार करती रहती है और उनको पूरा करने में उसे खास मजा आता है। सादिक साहब को उसने अलग भेंट कर दिया जो योरोप के दुर्लभ चित्रों की अनुकृतियों का संग्रह है और जो उसने योरोप की तमाम चित्रशालाओं में जाकर खुद इकट्ठा किया है। उसकी आँखें कितनी सौंदर्य-प्रेमी है। बृजेन्द्र जब शाम को अपना नया सूट पहन कर आया, जो उसने अभी सिलाया है, तो हेलेन ने मुस्करा कर कहा — देखों कहीं नजर न लग जाय तुम्हें! आज तो तुम दूसरे युसूफ बने हुए हो। बृजेन्द्र

बाग-बाग हो गया। मैंने जब लय के साथ अपनी ताजा गजल सुनाई तो वह एक-एक शेर पर उछल-उछल पड़ी। अदभुत काव्यर्मज्ञ है। मुझे अपनी कविता-रचना पर इतनी खुशी कभी न हुई थी मगर तारीफ जब सबका बुलावा हो जाये तो उसकी क्या कीमत। मियाँ सादिक को कभी अपनी सुन्दरता का दावा नहीं हुआ। भीतरी सौंदर्य से आप जितने मालामाल हैं बाहरी सौंदर्य में उतने ही कंगाल। मगर आज शराब के दौर में ज्यों ही उनकी आँखों में सुर्खी आई हेलेन ने प्रेम से पगे हुए स्वर में कहा — भई, तुम्हारी ये आँखें तो जिगर के पार हुई जाती हैं। और सादिक साहब उस वक्त उसके पैरों पर गिरते — गिरते रुक गये। लज्जा बाधक हुई। उनकी आँखों की ऐसी तारीफ शायद ही किसी ने की हो। मुझे कभी अपने रूप-रंग, चाल-ढाल की तारीफ सुनने नहीं हो सका कि मैं खूबसूरत हूँ। यह भ्ज्ञभ् जनता कि हेलेन का यह सब सत्कार कोई मतलब नहीं रखता। लेकिन अब मुझे भी यह बेचैनी होने लगी कि देखो मुझ पर क्या इनायत होती है। कोई बात न थी, मगर मैं बेचैन रहा। जब मैं शाम को यूनिवर्सिटी ग्राउण्ड से खेल की प्रैक्टिस करके आ रहा था तो मेरे ये बिखरे हुए बाल कुछ और ज्यादा बिखरे गये थे। उसने आसक्त नेत्रों से देखकर फौरन कहा — तुम्हारी इन बिखरी हुई

जुल्फों पर निसार होने की जी चाहता है! मैं निहाल हो गया, दिल में क्या-क्या तूफान उठे कह नहीं सकता।

मगर खुदा जाने क्यों हम तीनों में से एक भी उसकी किसी अंदाज या रूप की प्रशंसा शब्दों में नहीं कर पाता। हमें लगता है कि हमें ठीक शब्द नहीं मिलते। जो कुछ हम कह सकते हैं उससे कहीं ज्यादा प्रभावित हैं। कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती।

1 फरवरी — हम दिल्ली आ गये। इसी बीच में मुरादाबाद, नैनीताल, देहरादून वगैरह जगहों के दौरे किये मगर कहीं कोई खिलाड़ी न मिला। अलीगढ़ और दिल्ली से कई अच्छे खिलाड़ियों के मिलने की उम्मीद है इसलिए हम लोग वहाँ कई दिन रहेंगे। एलेविन पूरी होते ही हम लोग बम्बई आ जाएँगे और वहाँ एक महीने प्रैक्टिस करेंगे। मार्च में आस्ट्रेलियन टीम यहाँ से रवाना होगी। तब तक वह हिन्दुस्तान में सारे पहले से निश्चित मैच खेल चुकी होगी। हम उससे आखिरी मैच खेलेंगे और खुदा ने चाहा तो हिन्दुस्तान की सारी शिकस्तों का बदला चुका देंगे। सादिक और बृजेन्द्र भी हमारे साथ घूमते रहे। मैं तो न चाहता था कि ये लोग आएँ मगर हेलेन को शायद प्रेमियों के जमघट में मजा आता हैं हम सबके सब एक ही होटल में हैं और सब हेलेन के मेहमान हैं। स्टेशन पर पहुंचे तो सैकड़ों आदमी हमारा

स्वागत करने के लिए मौजूद थे। कई औरतें भी थीं, लेकिन हेलेन को न मालूम क्यों औरतों से आपत्ति है। उनकी संगत से भागती है, खासकर सुन्दर औरतों की छाया से भी दूर रहती है हालांकि उसे किसी सुन्दरी से जलने का कोई कारण नहीं है। यह मानते हुए भी कि हुस्न उस पर खत्म नहीं हो गया है, उसमें आकर्षण के ऐसे तत्व मौजूद हैं कि कोई परी भी उसके मुकाबे में नहीं खड़ी हो सकती। नख-शिख ही तो सब कुछ नहीं है, रुचि का सौंदर्य, बातचीत का सौंदर्य, अदाओं का सौंदर्य भी तो कोई चीज है। प्रेम उसके दिल में है या नहीं खुदा जाने लेकिन प्रेम के प्रदर्शन में वह बेजोड़ है। दिलजोई और नाजबरदारी के फन में हम जैसे दिलदारों को भी उससे शर्मिन्दा होना पड़ता है। शाम को हम लोग नई दिल्ली की सैर को गए। दिलकश जगह है, खुली हुई सड़कें, जमीन के खूबसूरत टुकड़े, सुहानी रबिशे। उसको बनाने में सरकार ने बेदरेग रुपया खर्च किया है और बेजरूरत। यह रकम रिआया की भलाई पर खर्च की जा सकती थी मगर इसको क्या कीजिए कि जनसाधारण इसके निर्माण से जितने प्रभावित हैं, उतने अपनी भलाई की किसी योजना से न होते। आप दस-पाँच मदरसे ज्यादा खोल देते या सड़कों की मरम्मत में या, खेती की जांच-पड़ताल में इस रुपये को खर्च कर देते मगर जनता को शान-शौकत, धन-वैभव से आज भी जितना प्रेम है उतना

आपके रचनात्मक कामों से नहीं है। बादशाह की जो कल्पना उसके रोम-रोम में घुल गई है वह अभी सदियों तक न मिटेगी। बादशाह के लिए शान-शौकत जरूरी है। पानी की तरह रुपया बहाना जरूरी है। किफायतशार या कंजूस बादशाह चाहे वह एक-एक पैसा प्रजा की भलाई के लिए खर्च करे, इतना लोकप्रिय नहीं हो सकता। अंग्रेज मनोविज्ञान के पंडित हैं। अंग्रेज ही क्यों हर एक बादशाह जिसने अपने बाहुबल और अपनी बुद्धि से यह स्थान प्राप्त किया है स्वभावतः मनोविज्ञान का पण्डित होता है। इसके बगैर जनता पर उसे अधिकार क्यों कर प्राप्त होता। खैर, यह तो मैंने यूँ ही कहा। मुझे ऐसा अन्देशा हो रहा है शायद हमारी टीम सपना ही रूह जाए। अभी से हम लोगों में अनबन रहने लगी है। बृजेन्द्र कदम-कदम पर मेरा विरोध करता है। मैं आम कहूँ तो वह अदबदाकर इमली कहेगा और हेलेन को उससे प्रेम है। जिन्दगी के कैसे-कैसे मीठे सपने देखने लगा था मगर बृजेन्द्र, कृतघ्न-स्वार्थी बृजेन्द्र मेरी जिन्दगी तबाह किए डालता है। हम दोनों हेलेन के प्रिय पात्र नहीं रूह सकते, यह तय बात है; एक को मैदान से हटाना पड़ेगा।

7 फरवरी —

शुक्र है दिल्ली में हमारा प्रयत्न सफल हुआ। हमारी टीम में तीन नये खिलाड़ी जुड़े-जाफर, मेहरा और अर्जुन सिंह। आज उनके कमाल देखकर आस्ट्रेलियन क्रिकेटरों की धाक मेरे दिल से जाती रही। तीनों गेंद फेंकते हैं। जाफर अचूक गेंद फेंकता है, मेहरा सब्र की आजमाइश करता है और अर्जुन बहुत चालाक है। तीनों दृढ़ स्वभाव के लोग हैं, निगाह के सच्चे अकथ। अगर कोई इन्साफ से पूछे तो मैं कहूँगा कि अर्जुन मुझसे बेहतर खेलता है। वह दो बार इंग्लैण्ड हो आया है। अंग्रेजी रहन-सहन से परिचित है और मिजाज पहचाननेवाला भी अव्वल दर्जे का है, सभ्यता और आचार का पुतला। बृजेन्द्र का रंग फीका पड़ गया। अब अर्जुन पर खास कृपा दृष्टि है और अर्जुन पर फतह पाना मेरे लिए आसान नहीं है, मुझे तो डर है वह कहीं मेरी रूह का रोड़ा न बन जाए।

25 फरवरी —

हमारी टीम पूरी हो गई। दो प्लेयर हमें अलीगढ़ से मिले, तीन लाहौर से और एक अजमेर से और कल हम बम्बई आ गए।

हमने अजमेर, लाहौर और दिल्ली में वहाँ की टीमों से मैच खेले और उन पर बड़ी शानदार फतह पाई। आज बम्बई की हिन्दू टीम से हमारा मुकाबला है और मुझे यकीन है कि मैदान हमारे हाथ रहेगा। अर्जुन हमारी टीम का सबसे अच्छा खिलाड़ी है और हेलेन उसकी इतनी खातिरदारी करती है लेकिन मुझे जलन नहीं होती, इतनी खातिरदारी तो मेहमान की ही की जा सकती है। मेहमान से क्या डर। मजे की बात यह है कि हर व्यक्ति अपने को हेलेन को कृपा-पात्र समझता है और उससे अपने नाज उठवाता है। अगर किसी के सिर में दर्द है तो हेलेन का फर्ज है कि उसकी मिजाजपुर्सी करे, उसके सर में चन्दन तक घिसकर लगा दे। मगर उसके साथ ही उसका रोब हर एक के दिल पर इतना छाया हुआ है कि उसके किसी काम की कोई आलोचना करने का साहस नहीं कर सकता। सब के सब उसकी मर्जी के गुलाम हैं। वह अगर सबके नाज उठाती है तो हुकूमत भी हर एक पर करती है। शामियाने में एक से एक सुन्दर औरतों का जमघट है मगर हेलेन के कैदियों की मजाल नहीं कि किसी की तरफ देखकर मुस्करा भी सकें। हर एक के दिल पर ऐसा डर छाया रहता है कि जैसे वह हर जगह पर मौजूद है। अर्जुन ने एक मिस पर यूँ ही कुछ नजर डाली थी, हेलेन ने ऐसी प्रलय की आँख से उसे देखा कि सरदार साहब का रंग उड़ गया। हर एक

समझता है कि वह उसकी तकदीर की मालिक है और उसे अपनी तरफ से नाराज करके वह शायद जिन्दा न रूह सकेगा। औरों की तो मैं क्या कहूँ, मैंने ही गोया अपने को उसके हाथों बेच दिया हैं। मुझे तो अब ऐसा लग रहा है कि मुझमें कोई ऐसी चीज खत्म हो गई है जो पहले मेरे दिल में डाह की आग-सी जला दिया करती थी। हेलेन अब किसी से बोले, किसी से प्रेम की बातें करे, मुझे गुस्सा नहीं आता। दिल पर चोट लगती जरूर है मगर इसका इजहार अकेले में आँसू बहाकर करने को जी चाहता है, वह स्वाभिमान कहाँ गायब हो गया नहीं कह सकता। अभी उसकी नाराजगी से दिल के टुकड़े हो गए थे कि एकाएक उसकी एक उचटती हुई-सी निगाह ने या एक मुस्कराहट ने गुदगुदी पैदा कर दी। मालूम नहीं उसमें वह कौन-सी ताकत है जो इतने हौसलामंद नौजवान दिलों पर हुकूमत कर रही है। उसे बहादुरी कहूँ। चालाकी और फुर्ती कहूँ, हम सब जैसे उसके हाथों की कठपुतलियाँ हैं। हममें अपनी कोई शाख्सियत, कोई हस्ती नहीं है। उसने अपने सौन्दर्य से, अपनी बुद्धि से, अपने धन से और सबसे ज्यादा सबको समेट सकने की अपनी ताकत से हमारे दिलों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है।

1 मार्च —

कल आस्ट्रेलियन टीम से हमारा मैच खत्म हो गया। पचास हजार से कम तमाशाइयों की भीड़ न थी। हमने पूरी इनिंग्स से उनको हराया और देवताओं की तरह पुजे। हममें से हर एक ने दिलोजान से काम किया और सभी यकसां तौर पर फूल हुए थे। मैच खत्म होते ही शहरवालों की तरफ से हमें एक शानदार पार्टी दी गई। ऐसी पार्टी तो शायद वाइसराय के सम्मान में भी न दी जाती होगी। मैं तो तारीफों और बधाइयों के बोझ से दब गया, मैंने 44 रनों में पाँच खिलाड़ियों का सफाया कर दिया था। मुझे खुद अपने भयानक गेंद फेंकने पर अचरज हो रहा था। जरूर कोई अलौकिक शक्ति हमारा साथ दे रही थी। इस भीड़ में बम्बई का सौंदर्य अपनी पूरी शान और रंगीनी के साथ चमक रहा था और मुझे दावा है कि सुन्दरता की दृष्टि से यह शहर जितना भाग्यशाली है, दुनिया का कोई दूसरा शहर शायद ही हो। मगर हेलेन इस भीड़ में भी सबकी दृष्टियों का केन्द्र बनी हुई थी। यह जालिम महज हसीन नहीं है, मीठी बोलती भी है और उसकी अदाएँ भी मीठी हैं। सारे नौजवान परवानों की तरह उस पर मंडला रहे थे, एक से एक खूबसूरत, मनचले, और हेलेन उनकी भावनाओं से खेल रही थी, उसी तरह जैसे वह हम लोगों की

भावनाओं से खेल करती थी। महाराजकुमार जैसा सुन्दर जवान मैंने आज तक नहीं देखा। सूरत से रोब टपकता है। उनके प्रेम ने कितनी सुन्दरियों का दुख दिया है कौन जाने। मर्दाना दिलकशी का जादू-सा बिखेरता चलता है। हेलेन उनसे भी वैसी ही आजाद बेतकल्लुफी से मिली जैसे दूसरे हजारों नौजवानों से। उनके सौन्दर्य का, उनकी दौलत का उस पर जरा भी असर न था। न जाने इतना गर्व, इतना स्वाभिमान उसमें कहाँ से आ गया। कभी नहीं डगमगाती, कहीं रोब में नहीं आती, कभी किसी की तरफ नहीं झुकती। वही हंसी-मजाक है, वही प्रेम का प्रदर्शन, किसी के साथ कोई विशेषता नहीं, दिलजोई सब की मगर उसी बेपरवाही की शान के साथ।

हम लोग सैर करके कोई दस बजे रात को होटल पहुंचे तो सभी जिन्दगी के नए सपने देख रहे थे। सभी के दिलों में एक धुकधुकी-सी हो रही थी कि देखें जब क्या होता है। आशा और भय ने सभी के दिलों में एक तूफान-सा उठा रक्खा था गोया आज हर एक के जीवन की एक स्मरणीय घटना होनेवाली है। जब क्या प्रोग्राम है, इसकी किसी को खबर न थी। सभी जिन्दगी के सपने देख रहे थे। हर एक के दिल पर एक पागलपन सवार था, हर एक को यकीन था कि हेलेन की दृष्टि उस पर है मगर यह अंदेशा भी हर एक के दिल में था कि खुदा न खास्ता कहीं

हेलेन ने बेवफाई की तो यह जान उसके कदमों पर रख देगा, यहाँ से जिन्दा घर जाना कयामत था।

उसी वक्त हेलेन ने मुझे अपने कमरे में बुला भेजा। जाकर देखता हूँ तो सभी खिलाड़ी जमा हैं। हेलेन उस वक्त अपनी शर्बती बेलदार साड़ी में आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। मुझे उस पर झुंझलाहट हुई, इस आम मजमे में मुझे बुलाकर कवायद कराने की क्या जरूरत थी। मैं तो खास बर्ताव का अधिकारी था। मैं भूल रहा था कि शायद इसी तरह उनमें से हर एक अपने को खास बर्ताव का अधिकारी समझता हो।

हेलेन ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा — दोस्तों, मैं कह नहीं सकती कि आप लोगों की कितनी कृतज्ञ हूँ और आपने मेरी जिंदगी की कितनी बड़ी आरज़ू पूरी कर दी। आपमें से किसी को मिस्टर रतन लाल की याद आती है?

रतन लाल! उसे भी कोई भूल सकता है! वह जिसने पहली बार हिन्दुस्तान की क्रिकेट टीम को इंग्लैण्ड की धरती पर अपने जौहर दिखाने का मौका दिया, जिसने अपने लाखों रुपयों इस चीज की नजर किए और आखिर बार-बार की पराजयों से निराश होकर वहीं इंग्लैण्ड में आत्महत्या कर ली। उसकी वह सूरत अब भी हमारी आँखों के सामने फिर रही है।

सब ने कहा — खूब अच्छी तरह, अभी बात ही कै दिन की हैं।

आज इस शानदार कामयाबी पर मैं आपको बधाई देती हूँ। भगवान ने चाहा तो अगले साल हम इंग्लैण्ड का दौरा करेंगे। आप अभी से इस मोर्चे के लिए तैयारियाँ कीजिए। लुत्फ जो जब है कि हम वहाँ एक मैच भी न हारें, मैदान बराबर हमारे हाथ रहे। दोस्तों, यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। किसी लक्ष्य का पूरा करने के लिए जो काम किया जाता है उसी का नाम जिन्दगी है। हमें कामयाबी वहीं होती हैं जहाँ हम अपने पूरे हौसले से काम में लगे हों, वही लक्ष्य हमारा स्वप्न हो, हमारा प्रेम हो, हमारे जीवन का केन्द्र हो। हममें और इस लक्ष्य के बीच में और कोई इच्छा, कोई आरजू दीवार की तरह न खड़ी हो। माफ कीजिएगा, आपने अपने लक्ष्य के लिए जीना नहीं सीखा। आपके लिए क्रिकेट सिर्फ एक मनोरंजन है। आपको उससे प्रेम नहीं। इसी तरह हमारे सैकड़ों दोस्त हैं जिनका दिल कहीं और होता है, दिमाग कहीं और, और वह सारी जिन्दगी का नाकाम रहते हैं। आपके लिए मै। ज्यादा दिलचस्पी की चीज थी, क्रिकेट तो सिर्फ मुझे खुश करने का जरिया था। फिर भी आप कामयाब हुए। मुल्क में आप जैसे हजारों नौजवान हैं जो अगर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए जीना और मरना सीख जाए तो चमत्कार कर दिखाइए। जाइए और वह कमाल हासिल कीजिए। मेरा रूप और

मेरी रातें वासना का खिलौना बनने के लिए नहीं हैं। नौजवानों की आँखों को खुश करने और उनके दिलों में मस्ती पैदा करने के लिए जीना मैं शर्मनाक समझती हूँ। जीवन का लक्ष्य इससे कहीं ऊँचा है। सच्ची जिन्दगी वही है जहां हम अपने लिए नहीं सबके लिए जीते हैं।

हम सब सिर झुकाये सुनते रहे और झल्लाते रहे। हेलेन कमरे से निकलकर कार पर जा बैठी। उसने अपनी रवानगी का इन्तजाम पहले ही कर लिया था। इसके पहले कि हमारे होश-हवास सही हों और हम परिस्थिति समझें, वह जा चुकी थी।

हम सब हफ्ते-भर तक बम्बई की गलियों, होटलों, बंगलों की खाक छानते रहे, हेलेन कहीं न थी और ज्यादा अफसोस यह है कि उसने हमारी जिंदगी का जो आइडियल रखा वह हमारी पहुँच से ऊँचा है। हेलेन के साथ हमारी जिन्दगी का सारा जोश और उमंग खत्म हो गई।

[‘जमाना’, जुलाई, 1937]

खुदी

मुन्नी जिस वक्त दिलदारनगर में आयी, उसकी उम्र पाँच साल से ज्यादा न थी। वह बिलकुल अकेली न थी, माँ-बाप दोनों न मालूम मर गये या कहीं परदेस चले गये थे। मुन्नी सिर्फ इतना जानती थी कि कभी एक देवी उसे खिलाया करती थी और एक देवता उसे कंधे पर लेकर खेतों की सैर कराया करता था। पर वह इन बातों का जिक्र कुछ इस तरह करती थी कि जैसे उसने सपना देखा हो। सपना था या सच्ची घटना, इसका उसे ज्ञान न था। जब कोई पूछता तेरे माँ-बाप कहाँ गये? तो वह बेचारी कोई जवाब देने के बजाय रोने लगती और यों ही उन सवालों को टालने के लिए एक तरफ हाथ उठाकर कहती — ऊपर। कभी आसमान की तरफ़ देखकर कहती — वहाँ। इस 'ऊपर' और 'वहाँ' से उसका क्या मतलब था यह किसी को मालूम न होता। शायद मुन्नी को यह खुद भी मालूम न था।

बस, एक दिन लोगों ने उसे एक पेड़ के नीचे खेलते देखा और इससे ज्यादा उसकी बाबत किसी को कुछ पता न था। लड़की की सूरत बहुत प्यारी थी। जो उसे देखता, मोह जाता। उसे

खाने-पीने की कुछ फ़िक्र न रहती। जो कोई बुलाकर कुछ दे देता, वही खा लेती और फिर खेलने लगती। शक्ल-सूरज से वह किसी अच्छे घर की लड़की मालूम होती थी। ग़रीब-से-ग़रीब घर में भी उसके खाने को दो कौर और सोने को एक टाट के टुकड़े की कमी न थी। वह सबकी थी, उसका कोई न था।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। मुन्नी अब कुछ काम करने के क़ाबिल हो गयी। कोई कहता, ज़रा जाकर तालाब से यह कपड़े तो धो ला। मुन्नी बिना कुछ कहे-सुने कपड़े लेकर चली जाती। लेकिन रास्ते में कोई बुलाकर कहता, बेटी, कुएँ से दो घड़े पानी तो खींच ला, तो वह कपड़े वहीं रखकर घड़े लेकर कुएँ की तरफ चल देती। जरा खेत से जाकर थोड़ा साग तो ले आ और मुन्नी घड़े वहीं रखकर साग लेने चली जाती। पानी के इन्तज़ार में बैठी हुई औरत उसकी रूह देखते-देखते थक जाती। कुएँ पर जाकर देखती है तो घड़े रखे हुए हैं। वह मुन्नी को गालियाँ देती हुई कहती, आज से इस कलमुँही को

कुछ खाने को न दूँगी। कपड़े के इन्तज़ार में बैठी हुई औरत उसकी रूह देखते-देखते थक जाती और गुस्से में तालाब की तरफ़ जाती तो कपड़े वहीं पड़े हुए मिलते। तब वह भी उसे गालियाँ देकर कहती, आज से इसको कुछ खाने को न दूँगी। इस तरह मुन्नी को कभी-कभी कुछ खाने को न मिलता और तब

उसे बचपन याद आता, जब वह कुछ काम न करती थी और लोग उसे बुलाकर खाना खिला देते थे। वह सोचती किसका काम करूँ, किसका न करूँ जिसे जवाब दूँ वही नाराज़ हो जायेगा। मेरा अपना कौन है, मैं तो सब की हूँ। उसे ग़रीब को यह न मालूम था कि जो सब का होता है वह किसी का नहीं होता। वह दिन कितने अच्छे थे, जब उसे खाने-पीने की और किसी की खुशी या नाखुशी की परवाह न थी। दुर्भाग्य में भी बचपन का वह समय चैन का था।

कुछ दिन और बीते, मुन्नी जवान हो गयी। अब तक वह औरतों की थी, अब मर्दों की हो गयी। वह सारे गाँव की प्रेमिका थी पर कोई उसका प्रेमी न था। सब उससे कहते थे — मैं तुम पर मरता हूँ, तुम्हारे वियोग में तारे गिनता हूँ, तुम मेरे दिलोजान की मुराद हो, पर उसका सच्चा प्रेमी कौन है, इसकी उसे खबर न होती थी। कोई उससे यह न कहता था कि तू मेरे दुख-दर्द की शरीक हो जा। सब उससे अपने दिल का घर आबाद करना चाहते थे। सब उसकी निगाह पर, एक मद्धिम-सी मुस्कराहट पर कुर्बान होना चाहते थे; पर कोई उसकी बाँह पकड़नेवाला, उसकी लाज रखनेवाला न था। वह सबकी थी, उसकी मुहब्बत के दरवाजे सब पर खुले हुए थे; पर कोई उस पर अपना ताला न

डालता था जिससे मालूम होता कि यह उसका घर है, और किसी का नहीं।

वह भोली-भाली लड़की जो एक दिन न जाने कहाँ से भटककर आ गयी थी, अब गाँव की रानी थी। जब वह अपने उन्नत वक्षों को उभारकर रूप-गर्व से गर्दन उठाये, नजाकत से लचकती हुई चलती तो मनचले नौजवान दिल थामकर रूह जाते, उसके पैरों तले आँखें बिछाते। कौन था जो उसके इशारे पर अपनी जान न निसार कर देता। वह अनाथ लड़की जिसे कभी गुड़ियाँ खेलने को न मिलीं, अब दिलों से खेलती थी। किसी को मारती थी। किसी को जिलाती थी, किसी को ठुकराती थी, किसी को थपकियाँ देती थी, किसी से रुठती थी, किसी को मनाती थी। इस खेल में उसे क़त्ल और खून का-सा मज़ा मिलता था। अब पाँसा पलट गया था। पहले वह सबकी थी, कोई उसका न था; अब सब उसके थे, वह किसी की न थी। उसे जिसे चीज़ की तलाश थी, वह कहीं न मिलती थी। किसी में वह हिम्मत न थी जो उससे कहता, आज से तू मेरी है। उस पर दिल न्यौछावर करने वाले बहुतेरे थे, सच्चा साथी एक भी न था। असल में उन सरफिरों को वह बहुत नीची निगाह से देखती थी। कोई उसकी मुहब्बत के क़ाबिल नहीं था। ऐसे पस्त-हिम्मतों को वह खिलौनों से ज्यादा महत्व न

देना चाहती थी, जिनका मारना और जिलाना एक मनोरंजन से अधिक कुछ नहीं।

जिस वक्त़ कोई नौजवान मिठाइयों के थाल और फूलों के हार लिये उसके सामने खड़ा हो जाता तो उसका जी चाहता; मुँह नोच लूँ। उसे वह चीजें कालकूट हलाहल जैसी लगतीं। उनकी जगह वह रूखी रोटियाँ चाहती थी, सच्चे प्रेम में डूबी हुई। गहनों और अशर्फियों के ढेर उसे बिच्छू के डंक जैसे लगते। उनके बदले वह सच्ची, दिल के भीतर से निकली हुई बातें चाहती थी जिनमें प्रेम की गंध और सच्चाई का गीत हो। उसे रहने को महल मिलते थे, पहनने को रेशम, खाने को एक-से-एक व्यंजन, पर उसे इन चीजों की आकांक्षा न थी। उसे आकांक्षा थी, फूस के झोंपड़े, मोटे-झोटे सूखे खाने। उसे प्राणघातक सिद्धियों से प्राणपोषक निषेध कहीं ज्यादा प्रिय थे, खुली हवा के मुकाबले में बन्द पिंजरा कहीं ज्यादा चाहता!

एक दिन एक परदेसी गाँव में आ निकला। बहुत ही कमजोर, दीन-हीन आदमी था। एक पेड़ के नीचे सत्तू खाकर लेटा। एकाएक मुन्नी उधर से जा निकली। मुसाफिर को देखकर बोली — कहाँ जाओगे?

मुसाफिर ने बेरुखी से जवाब दिया — जहन्नुम!

मुन्नी ने मुस्कराकर कहा — क्यों, क्या दुनिया में जगह नहीं?

'औरों के लिए होगी, मेरे लिए नहीं।'

'दिल पर कोई चोट लगी है?'

मुसाफिर ने ज़हरीली हंसी हँसकर कहा — बदनसीबों की तक़दीर में और क्या है! रोना-धोना और डूब मरना, यही उनकी जिन्दगी का खुलासा है। पहली दो मंजिल तो तय कर चुका, अब तीसरी मंज़िल और बाकी है, कोई दिन वह पूरी हो जायेगी; ईश्वर ने चाहा तो बहुत जल्द।

यह एक चोट खाये हुए दिल के शब्द थे। जरूर उसके पहलू में दिल है। वर्ना यह दर्द कहाँ से आता? मुन्नी बहुत दिनों से दिल की तलाश कर रही थी बोली — कहीं और वफा की तलाश क्यों नहीं करते?

मुसाफिर ने निराशा के भव से उत्तर दिया — तेरी तक़दीर में नहीं, वर्ना मेरा क्या बना — बनाया घोंसला उजड़ जाता? दौलत मेरे पास नहीं। रूप-रंग मेरे पास नहीं, फिर वफा की देवी मुझ पर क्यों मेहरबान होने लगी? पहले समझता था वफा दिल के बदले मिलती है, अब मालूम हुआ और चीजों की तरह वह भी सोने-चाँदी से खरीदी जा सकती है।

मुन्नी को मालूम हुआ, मेरी नज़रों ने धोखा खाया था। मुसाफिर बहुत काला नहीं, सिर्फ साँवला। उसका नाक-नक्शा भी उसे आकर्षक जान पड़ा। बोली — नहीं, यह बात नहीं, तुम्हारा पहला खयाल ठीक था।

यह कहकर मुन्नी चली गयी। उसके हृदय के भाव उसके संयम से बाहर हो रहे थे। मुसाफिर किसी खयाल में डूब गया। वह इस सुन्दरी की बातों पर गौर कर रहा था, क्या सचमुच यहाँ वफा मिलेगी? क्या यहाँ भी तक़दीर धोखा न देगी?

मुसाफिर ने रात उसी गाँव में काटी। वह दूसरे दिन भी न गया। तीसरे दिन उसने एक फूस का झोंपड़ा खड़ा किया। मुन्नी ने पूछा — यह झोंपड़ा किसके लिए बनाते हो?

मुसाफिर ने कहा — जिससे वफा की उम्मीद है।

'चले तो न जाओगे?'

'झोंपड़ा तो रहेगा।'

'खाली घर में भूत रहते हैं।'

'अपने प्यारे का भूत ही प्यारा होता है।'

दूसरे दिन मुन्नी उस झोंपड़े में रहने लगी। लोगों को देखकर ताज्जुब होता था। मुन्नी उस झोंपड़े में नही रह सकती। वह उस

भोले मुसाफिर को जरूर दगा देगी, यह आम खयाल था, लेकिन मुन्नी फूली न समाती थी। वह न कभी इतनी सुन्दर दिखायी पड़ी थी, न इतनी खुश। उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था, जिसके पहलू में दिल था।

2

लेकिन मुसाफिर को दूसरे दिन यह चिन्ता हुई कि कहीं यहाँ भी वही अभागा दिन न देखना पड़े। रूप में वफा कहाँ? उसे याद आया, पहले भी इसी तरह की बातें हुई थीं, ऐसी ही कसम खायी गयी थीं, एक दूसरे से वादे किए गए थे। मगर उन कच्चे धागों को टूटते कितनी देर लगी? वह धागे क्या फिर न टूट जाएँगे? उसके क्षणिक आनन्द का समय बहुत जल्द बीत गया और फिर वही निराशा उसके दिल पर छा गयी। इस मरहम से भी उसके जिगर का ज़ख़्म न भरा। तीसरे रोज वह सारे दिन उदास और चिन्तित बैठा रहा और चौथे रोज लापता हो गया। उसकी यादगार सिर्फ उसकी फूस की झोंपड़ी रह गयी।

मुन्नी दिन-भर उसकी राह देखती रही। उसे उम्मीद थी कि वह जरूर आयेगा। लेकिन महीनों गुजर गये और मुसाफिर न लौटा।

कोई खत भी न आया। लेकिन मुन्नी को उम्मीद थी, वह जरूर आएगा।

साल बीत गया। पेड़ों में नयी-नयी कोपलें निकलीं, फूल खिले, फल लगे, काली घटाएँ आयीं, बिजली चमकी, यहाँ तक कि जाड़ा भी बीत गया और मुसाफिर न लौटा। मगर मुन्नी को अब भी उसके आने की उम्मीद थी; वह जरा भी चिन्तित न थी, भयभीत न थीं वह दिन-भर मजदूरी करती और शाम को झोंपड़े में पड़ रहती। लेकिन वह झोंपड़ा अब एक सुरक्षित किला था, जहां सिरफिरों के निगाह के पाँव भी लंगड़े हो जाते थे।

एक दिन वह सर पर लकड़ी का गट्ठा लिए चली आती थी। एक रसियों ने छेड़खानी की — मुन्नी, क्यों अपने सुकुमार शरीर के साथ यह अन्याय करती हो? तुम्हारी एक कृपा दृष्टि पर इस लकड़ी के बराबर सोना न्यौछावर कर सकता हूँ।

मुन्नी ने बड़ी घृणा के साथ कहा — तुम्हारा सोना तुम्हें मुबारक हो, यहाँ अपनी मेहनत का भरोसा है।

'क्यों इतना इतराती हो, अब वह लौटकर न आयेगा।'

मुन्नी ने अपने झोंपड़े की तरफ इशारा करके कहा — वह गया कहाँ जो लौटकर आएगा? मेरा होकर वह फिर कहाँ जा सकता हैं? वह तो मेरे दिल में बैठा हुआ है!

इसी तरह एक दिन एक और प्रेमीजन ने कहा — तुम्हारे लिए मेरा महल हाजिर है। इस टूटे-फूटे झोंपड़े में क्यों पड़ी हो?

मुन्नी ने अभिमान से कहा — इस झोंपड़े पर एक लाख महल न्यौछावर हैं। यहाँ मैंने वह चीज़ पाई है, जो और कहीं न मिली थी और न मिल सकती है। यह झोंपड़ा नहीं है, मेरे प्यारे का दिल है!

इस झोंपड़े में मुन्नी ने सत्तर साल काटे। मरने के दिन तक उसे मुसाफिर के लौटने की उम्मीद थी, उसकी आखिरी निगाहें दरवाजे की तरफ लगी हुई थीं। उसके खरीदारों में कुछ तो मर गए, कुछ जिन्दा हैं, मगर जिस दिन से वह एक की हो गयी, उसी दिन से उसके चेहरे पर दीप्ति दिखाई पड़ी जिसकी तरफ़ ताकते ही वासना की आँखें अंधी हो जातीं। खुदी जब जाग जाती है तो दिल की कमजोरियाँ उसके पास आते डरती हैं।

[‘खाके परवाना’ से]

ग़ैरत की कटार

कितनी अफ़सोसनाक, कितनी दर्दभरी बात है कि वही औरत जो कभी हमारे पहलू में बसती थी उसी के पहलू में चुभने के लिए हमारा तेज खंजर बेचैन हो रहा है। जिसकी आँखें हमारे लिए अमृत के छलकते हुए प्याले थीं वही आँखें हमारे दिल में आग और तूफान पैदा करें! रूप उसी वक्त तक राहत और खुशी देता है जब तक उसके भीतर एक रूहानी नेमत होती हैं और जब तक उसके अन्दर औरत की वफ़ा की रूह हरकत कर रही हो वर्ना वह एक तकलीफ़ देने चाली चीज़ है, ज़हर और बदबू से भरी हुई, इसी क़ाबिल कि वह हमारी निगाहों से दूर रहे और पंजे और नाखून का शिकार बने। एक जमाना वह था कि नईमा हैदर की आरजुओं की देवी थी, यह समझना मुश्किल था कि कौन तलबगार है और कौन उस तलब को पूरा करने वाला। एक तरफ पूरी-पूरी दिलजोई थी, दूसरी तरफ पूरी-पूरी रजा। तब तक़दीर ने पांसा पलटा। गुलो-बुलबुल में सुबह की हवा की शरारतें शुरू हुईं। शाम का वक्त था। आसमान पर लाली छायी हुई थी। नईमा उमंग और ताजुगी और शौक से उमड़ी हुई कोठे

पर आयी।शफ़क़ की तरह उसका चेहरा भी उस वक्त खिला हुआ था। ऐन उसी वक्त वहाँ का सूबेदार नासिर अपने हवा की तरह तेज घोड़े पर सवार उधर से निकला, ऊपर निगाह उठी तो हुस्न का करिश्मा नजर आया कि जैसे चांद शफ़क़ के हौज में नहाकर निकला है। तेज़ निगाह जिगर के पार हुई। कलेजा थामकर रह गया। अपने महल को लौटा, अधमरा, टूटा हुआ। मुसाहबों ने हकीम की तलाश की और तब रूह-रास्म पैदा हुई। फिर इश्क की दुश्वार मंज़िलों तय हुईं। वफ़ा ओर हया ने बहुत बेरुखी दिखायी। मगर मुहब्बत के शिकवे और इश्क़ की कुफ्र तोड़नेवाली धमकियाँ आखिर जीतीं। अस्मत का खलाना लुट गया। उसके बाद वही हुआ जो हो सकता था। एक तरफ से बदगुमानी, दूसरी तरफ से बनावट और मक्कारी। मनमुटाव की नौबत आयी, फिर एक-दूसरे के दिल को चोट पहुँचाना शुरू हुआ। यहाँ तक कि दिलों में मैल पड़ गयी। एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गये। नईमा ने नासिर की मुहब्बत की गोद में पनाह ली और आज एक महीने की बेचैन इन्तजारी के बाद हैदर अपने जज्बात के साथ नंगी तलवार पहलू में छिपाये अपने जिगर के भड़कते हुए शोलों को नईमा के खून से बुझाने के लिए आया हुआ है।

2

आधी रात का वक्त था और अंधेरी रात थी। जिस तरह आसमान के हरमसरा में हुसन के सितारे जगमगा रहे थे, उसी तरह नासिर का हरम भी हुस्न के दीपों से रोशन था। नासिर एक हफ्ते से किसी मोर्चे पर गया हुआ है इसलिए दरबान गाफ़िल हैं। उन्होंने हैदर को देखा मगर उनके मुँह सोने-चांदी से बन्द थे। ख्वाजासराओं की निगाह पड़ी लेकिन वह पहले ही एहसान के बोझ से दब चुके थे। खवासों और कनीजों ने भी मतलब-भरी निगाहों से उसका स्वागत किया और हैदर बदला लेने के नशे में गुनहगार नईमा के सोने के कमरे में जा पहुँचा, जहां की हवा संदल और गुलाब से बसी हुई थी।

कमरे में एक मोमी चिराग़ जल रहा था और उसी की भेद-भरी रोशनी में आराम और तकल्लुफ़ की सजावटें नज़र आती थीं जो सतीत्व जैसी अनमोल चीज़ के बदले में खरीदी गयी थीं। वहीं वैभव और ऐश्वर्य की गोद में लेटी हुई नईमा सो रही थी।

हैदर ने एक बार नईया को आँख भर देखा। वही मोहिनी सूरत थी, वही आकर्षक जावण्य और वही इच्छाओं को जगानेवाली ताजगी। वही युवती जिसे एक बार देखकर भूलना असम्भव था।

हाँ, वही नईमा थी, वही गोरी बाँहें जो कभी उसके गले का हार बनती थीं, वही कस्तूरी में बसे हुए बाल जो कभी कन्धों पर लहराते थे, वही फूल जैसे गाल जो उसकी प्रेम-भरी आँखों के सामने लाल हो जाते थे। इन्हीं गोरी-गोरी कलाइयों में उसने अभी-अभी खिली हुई कलियों के कंगन पहनाये थे और जिन्हें वह वफा के कंगन समझ था। इसकी गले में उसने फूलों के हार सजाये थे और उन्हें प्रेम का हार खयाल किया था। लेकिन उसे क्या मालूम था कि फूलों के हार और कलियों के कंगन के साथ वफा के कंगन और प्रेम के हार भी मुरझा जायेंगे।

हाँ, यह वही गुलाब के-से होंठ हैं जो कभी उसकी मुहब्बत में फूल की तरह खिल जाते थे जिनसे मुहब्बत की सुहानी महक उड़ती थी और यह वही सीना है जिसमें कभी उसकी मुहब्बत और वफ़ा का जलवा था, जो कभी उसके मुहब्बत का घर था। मगर जिस फूल में दिल की महक थी, उसमें दग़ा के कांटे हैं।

3

हैदर ने तेज कटार पहलू से निकाली और दबे पाँव नईमा की तरफ़ आया लेकिन उसके हाथ न उठ सके। जिसके साथ उम्र-

भर जिन्दगी की सैर की उसकी गर्दन पर छुरी चलाते हुए उसका हृदय द्रवित हो गया। उसकी आँखें भीग गयीं, दिल में हसरत-भरी यादगारों का एक तूफान-सा तक़दीर की क्या खूबी है कि जिस प्रेम का आरम्भ ऐसा खुशी से भरपूर हो उसका अन्त इतना पीड़ाजनक हो। उसके पैर थरथराने लगे। लेकिन स्वाभिमान ने ललकारा, दीवार पर लटकी हुई तस्वीरें उसकी इस कमज़ोरी पर मुस्करायीं।

मगर कमजोर इरादा हमेशा सवाल और अलील की आड़ लिया करता है। हैदर के दिल में खयाल पैदा हुआ, क्या इस मुहब्बत के बाब्र को उजाड़ने का अल्ज़ाम मेरे ऊपर नहीं है? जिस वक्त बदगुमानियों के अंखुए निकले, अगर मैंने तानों और धिक्कारों के बजाय मुहब्बत से काम लिया होता तो आज यह दिन न आता। मेरे जुल्मों ने मुहब्बत और वफ़ा की जड़ काटी। औरत कमजोर होती है, किसी सहारे के बग़ैर नहीं रूह सकती। जिस औरत ने मुहब्बत के मज़े उठाये हों, और उल्फ़ात की नाजबरदारियाँ देखी हों वह तानों और जिल्लतों की आँच क्या सह सकती है? लेकिन फिर ग़ैरत ने उकसाया, कि जैसे वह धुंधला चिराग़ भी उसकी कमजोरियों पर हँसने लगा। स्वाभिमान और तर्क में सवाल-जवाब हो रहा था कि अचानक नईमा ने करवट बदली ओर अंगड़ाई ली। हैदर ने फौरन तलवार उठायी, जान के खतरे में आगा-पीछा

कहाँ? दिल ने फैसला कर लिया, तलवार अपना काम करनेवाली ही थी कि नईमा ने आँखें खोल दीं। मौत की कटार सिर पर नजर आयी। वह घबराकर उठ बैठी। हैदर को देखा, परिस्थिति समझ में आ गयी। बोली — हैदर!

4

हैदर ने अपनी झेंप को गुस्से के पर्दे में छिपाकर कहा — हाँ, मैं हूँ हैदर!

नईमा सिर झुकाकर हसरत-भरे ढंग से बोली — तुम्हारे हाथों में यह चमकती हुई तलवार देखकर मेरा कलेजा थरथरा रहा है। तुम्हीं ने मुझे नाज़बरदारियों का आदी बना दिया है। ज़रा देर के लिए इस कटार को मेरी आँखें से छिपा लो। मैं जानती हूँ कि तुम मेरे खून के प्यासे हो, लेकिन मुझे न मालूम था कि तुम इतने बेरहम और संगदिल हो। मैंने तुमसे दग़ा की है, तुम्हारी ख़तावार हूँ लेकिन हैदर, यक़ीन मानो, अगर मुझे चन्द आखिरी बातें कहने का मौक़ा न मिलता तो शायद मेरी रूह को दोज़ख में भी यही आरज़ू रहती। मौत की सज़ा से पहले आपने घरवालों से आखिरी मुलाक़ात की इजाज़त होती है। क्या तुम मेरे लिए इतनी

रियायत के भी रवादार न थे? माना कि अब तुम मेरे लिए कोई नहीं हो मगर किसी वक्त थे और तुम चाहे अपने दिल में समझते हो कि मैं सब कुछ भूल गयी लेकिन मैं मुहब्बत को इतनी जल्दी भूल जाने वाली नहीं हूँ। अपने ही दिल से फैसला करो। तुम मेरी बेवफ़ाइयाँ चाहे भून जाओ लेकिन मेरी मुहब्बत की दिल तोड़नेवाली यादगारें नहीं मिटा सकते। मेरी आखिरी बातें सुन लो और इस नापाक जिन्दगी का हिस्सा पाक करो। मैं साफ़-साफ़ कहती हूँ इस आखिरी वक्त में क्यों डरूँ। मेरी कुछ दुर्गत हुई है उसके जिम्मेदार तुम हो। नाराज न होना। अगर तुम्हारा ख्य़ाल है कि मैं यहाँ फूलों की सेज पर सोती हूँ तो वह ग़लत है। मैंने औरत की शर्म खोकर उसकी क़द्र जानी है। मैं हसीन हूँ, नाजुक हूँ; दुनिया की नेमतें मेरे लिए हाज़िर हैं, नासिर मेरी इच्छा का गुलाम है लेकिन मेरे दिल से यह खयाल कभी दूर नहीं होता कि वह सिर्फ़ मेरे हुस्न और अदा का बन्दा है। मेरी इज्जत उसके दिल में कभी हो भी नहीं सकती। क्या तुम जानते हो कि यहाँ खवासों और दूसरी बीवियों के मतलब-भरे इशारे मेरे खून और जिगर को नहीं लजाते? ओफ्, मैंने अस्मत खोकर अस्मत की क़द्र जानी है लेकिन मैं कह चुकी हूँ और फिर कहती हूँ, कि इसके तुम जिम्मेदार हो।

हैदर ने पहलू बदलकर पूछा — क्योंकर?

नईमा ने उसी अन्दाज से जवाब दिया — तुमने बीवी बनाकर नहीं, माशूक बनाकर रक्खा। तुमने मुझे नाजुबरदारियों का आदी बनाया लेकिन फ़र्ज का सबक नहीं पढ़ाया। तुमने कभी न अपनी बातों से, न कामों से मुझे यह खयाल करने का मौक़ा दिया कि इस मुहब्बत की बुनियाद फ़र्ज पर है, तुमने मुझे हमेशा हुसन और मस्तियों के तिलिस्म में फँसाए रक्खा और मुझे ख्वाहिशों का गुलाम बना दिया। किसी किश्ती पर अगर फ़र्ज का मल्लाह न हो तो फिर उसे दरिया में डूब जाने के सिवा और कोई चारा नहीं। लेकिन अब बातों से क्या हासिल, अब तो तुम्हारी गैरत की कटार मेरे खून की प्यासी है ओर यह लो मेरा सिर उसके सामने झुका हुआ है। हाँ, मेरी एक आखिरी तमन्ना है, अगर तुम्हारी इजाजत पाऊँ तो कहूँ।

यह कहते-कहते नईमा की आँखों में आँसुओं की बाढ़ आ गई और हैदर की ग़ैरत उसके सामने ठहर न सकी। उदास स्वर में बोला — क्या कहती हो?

नईमा ने कहा — अच्छा इजाज़त दी है तो इनकार न करना। मुझें एक बार फिर उन अच्छे दिनों की याद ताज़ा कर लेने दो जब मौत की कटार नहीं, मुहब्बत के तीर जिगर को छेदा करते थे, एक बार फिर मुझे अपनी मुहब्बत की बाँहों में ले लो। मेरी आख़िरी बिनती है, एक बार फ़िर अपने हाथों को मेरी गर्दन का

हार बना दो। भूल जाओ कि मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, भूल जाओ कि यह जिस्म गन्दा और नापाक है, मुझे मुहब्बत से गले लगा लो और यह मुझे दे दो। तुम्हारे हाथों में यह अच्छी नहीं मालूम होती। तुम्हारे हाथ मेरे ऊपर न उठेंगे। देखो कि एक कमजोर औरत किस तरह ग़ैरत की कटार को अपने जिगर में रख लेती है।

यह कहकर नईमा ने हैदर के कमजोर हाथों से वह चमकती हुई तलवार छीन ली और उसके सीने से लिपट गयी। हैदर झिझका लेकिन वह सिर्फ़ ऊपरी झिझक थी। अभिमान और प्रतिशोध-भावना की दीवार टूट गयी। दोनों आलिंगन पाश में बंध गए और दोनों की आँखें उमड़ आयीं।

नईमा के चेहरे पर एक सुहानी, प्राणदायिनी मुस्कराहट दिखायी दी और मतवाली आँखों में खुशी की लाली झलकने लगी। बोली — आज कैसा मुबारक दिन है कि दिल की सब आरजुएँ पूरीद होती हैं

लेकिन यह कमबख़्त आरजुएँ कभी पूरी नहीं होतीं। इस सीने से लिपटकर मुहब्बत की शराब के बगैर नहीं रहा जाता। तुमने मुझे कितनी बार प्रेम के प्याले हैं। उस सुरही और उस प्याले की याद नहीं भूलती। आज एक बार फिर उल्फ़त की शराब के

दौर चलने दो, मौत की शराब से पहले उल्फ़त की शराब पिला दो। एक बार फिर मेरे हाथों से प्याला ले लो। मेरी तरफ़ उन्हीं प्यार की निगाहों से देखकर, जो कभी आँखों से न उतरती थीं, पी जाओ। मरती हूँ तो खुशी से मरूँ।

नईमा ने अगर सतीत्व खोकर सतीत्व का मूल्य जाना था, तो हैदर ने भी प्रेम खोकर प्रेम का मूल्य जाना था। उस पर इस समय एक मदहोशी छायी हुई थी। लज्जा और याचना और झुका हुआ सिर, यह गुस्से और प्रतिशोध के जानी दुश्मन हैं और एक गौरत के नाजुक हाथों में तो उनकी काट तेज तलवार को मात कर देती है। अंगूरी शराब के दौर चले और हैदर ने मस्त होकर प्याले पर प्याले खाली करने शुरू किये। उसके जी में बार-बार आता था कि नईमा के पैरों पर सिर रख दूँ और उस उजड़े हुए आशियाने को आदाब कर दूँ। फिर मस्ती की कैफ़ियत पैदा हुई और अपनी बातों पर और अपने कामों पर उसे अख्तियार न रहा। वह रोया, गिड़गिड़ाया, मिन्नतें कीं, यहाँ तक कि उन दग़ा के प्यालों ने उसका सिर झुका दिया।

3

हैदर कई घण्टे तक बेसुध पड़ा रहा। वह चौंका तो रात बहुत कम बाक़ी रह गयी थी। उसने उठना चाहा लेकिन उसके हाथ-पैर रेशम की डोरियों से मजबूत बंधे हुए थे। उसने भौचक होकर इधर-उधर देखा। नईमा उसके सामने वही तेज़ कटार लिये खड़ी थी। उसके चेहरे पर एक क़ातिलों जैसी मुस्कराहट की लाली थी। फ़र्जी माशूक के खूनीपन और खंजरबाजी के तराने वह बहुत बार गा चुका था मगर इस वक्त उसे इस नज्जारे से शायराना लुत्फ़ उठाने का जीवट न था। जान का खतरा, नशे के लिए तुर्शी से ज्यादा क़ातिल है। घबराकर बोला — नईम!

नईमा ने लहजे में कहा — हाँ, मैं हूँ नईमा।

हैदर गुस्से से बोला — क्या फिर दग़ा का वार किया?

नईमा ने जवाब दिया — जब वह मर्द जिसे खुदा ने बहादुरी और क़ूवत का हौसला दिया है, दग़ा का वार करता है तो उसे मुझसे यह सवाल करने का कोई हक़ नहीं। दग़ा और फ़रेब औरतों के हथियार हैं क्योंकि औरत कमजोर होती है। लेकिन तुमको मालूम हो गया कि औरत के नाजुक हाथों में ये हथियार कैसी काट करते हैं। यह देखो — यह आबदार शमशीर है, जिसे तुम ग़ैरत

की कटार कहते थे। अब वह ग़ैरत की कटार मेरे जिगर में नहीं, तुम्हारे जिगर में चुभेगी। हैदर, इन्सान थोड़ा खोकर बहुत कुछ सीखता है। तुमने इज्जत और आबरू सब कुछ खोकर भी कुछ न सीखा। तुम मर्द थे। नासिर से तुम्हारी होड़ थी। तुम्हें उसके मुक़ाबिले में अपनी तलवार के जौहर दिखाना था लेकिन तुमने निराला ढंग अख्तियार किया और एक बेकस और पर दग़ा का वार करना चाहा और अब तुम उसी औरत के समाने बिना हाथ-पैर के पड़े हुए हो। तुम्हारी जान बिलकुल मेरी मुट्ठी में है। मैं एक लम्हे में उसे मसल सकती हूँ और अगर मैं ऐसा करूँ तो तुम्हें मेरा शुक्रगुज़ार होना चाहिये क्योंकि एक मर्द के लिए

ग़ैरत की मौत बेग़ैरती की जिन्दगी से अच्छी है। लेकिन मैं तुम्हारे ऊपर रहम करूँगी — मैं तुम्हारे साथ फ़ैयाजी का बर्ताव करूँगी क्योंकि तुम ग़ैरत की मौत पाने के हक़दार नहीं हो। जो ग़ैरत चन्द मीठी बातों और एक प्याला शराब के हाथों बिक जाय वह असली ग़ैरत नहीं है। हैदर, तुम कितने बेवकूफ़ हो, क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि जिस औरत ने अपनी अस्मत जैसी अनमोल चीज देकर यह ऐश ओर तकल्लुफ़ पाया वह जिन्दा रहकर इन नेमतों का सुख जूटना चाहती है। जब तुम सब कुछ खोकर जिन्दगी से तंग नहीं हो तो मैं कुछ पाकर क्यों मौत की ख्वाहिश करूँ? अब रात बहुत कम रह गयी है। यहाँ से जान

लेकर भागो वर्ना मेरी सिफ़ारिश भी तुम्हें नासिर के गुस्से की आग से रन बचा सकेगी। तुम्हारी यह ग़ैरत की कटार मेरे क़ब्जे में रहेगी और तुम्हें याद दिलाती रहेगी कि तुमने इज्जत के साथ ग़ैरत भी खो दी।

[‘जमाना’, जुलाई, 1995]

घमण्ड का पुतला

शाम हो गयी थी। मैं सरयू नदी के किनारे अपने कैम्प में बैठा हुआ नदी के मजे ले रहा था कि मेरे फुटबाल ने दबे पाँव पास आकर मुझे सलाम किया कि जैसे वह मुझसे कुछ कहना चाहता है।

फुटबाल के नाम से जिस प्राणी का जिक्र किया गया वह मेरा अर्दली था। उसे सिर्फ एक नजर देखने से यक़ीन हो जाता था कि यह नाम उसके लिए पूरी तरह उचित है। वह सिर से पैर तक आदमी की शकल में एक गेंद था। लम्बाई-चौड़ाई बराबर। उसका भारी-भरकम पेट, जिसने उस दायरे के बनाने में खास हिस्सा लिया था, एक लम्बे कमरबन्द में लिपटा रहता था, शायद इसलिए कि वह इन्तहा से आगे न बढ़ जाए। जिस वक्त वह तेजी से चलता था बल्कि यों कहिए लुढ़कता था तो साफ़ मालूम होता था कि कोई फुटबाल ठोकर खाकर लुढ़कता चला आता है। मैंने उसकी तरफ देखकर पूछ — क्या कहते हो?

इस पर फुटबाल ने ऐसी रोनी सूरत बनायी कि जैसे कहीं से पिटकर आया है और बोला — हुजूर, अभी तक यहाँ रसद का

कोई इन्तजाम नहीं हुआ। जमींदार साहब कहते हैं कि मैं किसी का नौकर नहीं हूँ।

मेंने इस निगाह से देखा कि जैसे मैं और ज्यादा नहीं सुनना चाहता। यह असम्भव था कि मजिस्ट्रेट की शान में जमींदार से ऐसी गुस्ताखी होती। यह मेरे हाकिमाना गुस्से को भड़काने की एक बदतमीज़ कोशिश थी। मैंने पूछा — ज़मीदार कौन है?

फुटबाल की बाँछें खिल गयीं, बोला — क्या कहूँ, कुँअर सज्जनसिंह। हुजूर, बड़ा ढीठ आदमी है।

रात आयी है और अभी तक हुजूर के सलाम को भी नहीं आया। घोड़ों के सामने न घास है न दाना। लश्कर के सब आदमी भूखे बैठे हुए हैं। मिट्टी का एक बर्तन भी नहीं भेजा।

मुझे जमींदारों से रात-दिन साबक़ा रहता था मगर यह शिकायत कभी सुनने में नहीं आयी थी। इसके विपरीत वह मेरी ख़ातिर-तवाजों में ऐसी जाँफ़िशानी से काम लेते थे जो उनके स्वाभिमान के लिए ठीक न थी। उसमें दिल खोलकर आतिथ्य-सत्कार करने का भाव तनिक भी न होता था। न उसमें शिष्टाचार था, न वैभव का प्रदर्शन जो ऐब है। इसके बजाय वहाँ बेजा रसूख की फ़िक्र और स्वार्थ की हवस साफ़ दिखायी देती भी और इस रसूख बनाने की कीमत काव्योचित अतिशयोक्ति के साथ गरीबों से वसूल की

जाती थी, जिनका बेकसी के सिवा और कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं। उनके बात करने के ढंग में वह मुलामियत और आजिजी बरती जाती थी जिसका स्वाभिमान से बैर है और अक्सर ऐसे मौके आते थे, जब इन खातिरदारियों से तंग होकर दिल चाहता था कि काश इन खुशामदी आदमियों की सूरत न देखनी पड़ती।

मगर आज फुटबाल की ज़बान से यह कैफियत सुनकर मेरी जो हालत हुई उसने साबित कर दिया कि रोज-रोज की खातिरदारियों और मीठी-मीठी बातों ने मुझ पर असर किये बिना नहीं छोड़ा था। मैं यह हुक्म देनेवाला ही था कि कुँअर सज्जनसिंह को हाजिर करो कि एकाएक मुझे खयाल आया कि इन मुफ़्तखोर चपरासियों के कहने पर एक प्रतिष्ठित आदमी को अपमानित करना न्याय नहीं है।

मैंने अर्दली से कहा — बनियों के पास जाओ, नकद दाम देकर चीजें लाओ और याद रखो कि मेरे पास कोई शिकायत न आये।

अर्दली दिल में मुझे कोसता हुआ चला गया।

मगर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब वहाँ एक हफ्ते तक रहने पर भी कुँअर साहब से मेरी भेंट न हुई। अपने आदमियों और लश्करवालों की ज़बान से कुँअर साहब की ढिठाई, घमण्ड और हेकड़ी की कहानियाँ रोज सुना करता। और मेरे दुनिया देखे

हुए पेशकार ने ऐसे अतिथि-सत्कार-शून्य गाँव में पड़ाव डालने के लिए मुझे कई बार इशारों से समझाने-बुझाने की कोशिश की। ग़ालिबन मैं पहला आदमी था जिससे यह भूल हुई थी और अगर मैंने जिले के नक्शे के बदले लश्करवालों से अपने दौरे का प्रोग्राम बनाने में मदद ली होती तो शायद इस अप्रिय अनुभव की नौबत न आती। लेकिन कुछ अजब बात थी कि कुँअर साहब को बुरा-भला कहना मुझ पर उल्टा असर डालता था। यहाँ तक कि मुझे उस आदमी से मुलामात करने की इच्छा पैदा हुई जो सर्वशक्तिमान् आफ़सरों से इतना ज्यादा अलग-थलग रह सकता है।

2

सुबह का वक्त था, मैं गढ़ी में गया। नीचे सरयू नदी लहरें मार रही थी। उस पार साखू का जंगल था। मीलों तक बादामी रेत, उस पर खरबूज़ और तरबूज़ की क्यारियाँ थीं। पीले-पीले फूलों-से लहराती हुई बगुलों और मुर्गाबियों के गोल-के-गोल बैठे हुए थे! सूर्य देवता ने जंगलों से सिर निकाला, लहरें जगमगायीं, पानी में तारे निकले। बड़ा सुहाना, आत्मिक उल्लास देनेवाला दृश्य था।

मैंने खबर करवायी और कुँअर साहब के दीवानखाने में दाखिल हुआ लम्बा-चौड़ा कमरा था। फर्श बिछा हुआ था। सामने मसनद पर एक बहुत लम्बा-तड़गा आदमी बैठा था। सर के बाल मुड़े हुए, गले में रुद्राक्ष की माला, लाल-लाल, ऊँचा माथा-पुरुषोचित अभिमान की इससे अच्छी तस्वीर नहीं हो सकती। चेहरे से रोबदाब बरसता था।

कुँअर साहब ने मेरे सलाम को इस अन्दाज से लिया कि जैसे वह इसके आदी हैं। मसनद से उठकर उन्होंने बहुत बड़प्पन के ढंग से मेरी अगवानी की, खैरियत पूछी, और इस तकलीफ़ के लिए मेरा शुक्रिया अदा रिने के बाद इतर और पान से मेरी तवाजो की। तब वह मुझे अपनी उस गढ़ी की सैर कराने चले जिसने किसी ज़माने में ज़रूर आसफुद्दौला को ज़िच किया होगा मगर इस वक्त बहुत टूटी-फीटी हालत में थी। यहाँ के एक-एक रोड़े पर कुँअर साहब को नाज़ था। उनके खानदानी बड़प्पन ओर रोबदाब का जिक्र उनकी ज़बान से सुनकर विश्वास न करना असम्भव था। बयान करने का ढंग यक़ीन को मजबूर करता था और वे उन कहानियों के सिर्फ पासबान ही न थे बल्कि वह उनके ईमान का हिस्सा थीं। और जहां तक उनकी शक्ति में था, उन्होंने अपनी आन निभाने में कभी कसर नहीं की।

कुँअर सज्जनसिंह खानदानी रईस थे। उनकी वंश-परम्परा यहाँ-वहाँ टूटती हुई अन्त में किसी महात्मा ऋषि से जाकर मिल जाती थी। उन्हें तपस्या और भक्ति और योग का कोई दावा न था लेकिन इसका गर्व उन्हें अवश्य था कि वे एक ऋषि की सन्तान हैं। पुरखों के जंगली कारनामे भी उनके लिए गर्व का कुछ कम कारण न थे। इतिहास में उनका कहीं जिक्र न हो मगर खानदानी भाट ने उन्हें अमर बनाने में कोई कसर न रखी थी और अगर शब्दों में कुछ ताकत है तो यह गढ़ी रोहतास या कालिंजर के किलों से आगे बढ़ी हुई थी। कम-से-कम प्राचीनता और बर्बादी के बाह्म लक्षणों में तो उसकी मिसाल मुश्किल से मिल सकती थी, क्योंकि पुराने जमाने में चाहे उसने मुहासरों और सुरंगों को हेच समझा हो लेकिन वक्त वह चीटियों और दीमकों के हमलों का भी सामना न कर सकती थी।

कुँअर सज्जनसिंह से मेरी भेंट बहुत संक्षिप्त थी लेकिन इस दिलचस्प आदमी ने मुझे हमेशा के लिए अपना भक्त बना लिया। बड़ा समझदार, मामले को समझनेवाला, दूरदर्शी आदमी था। आखिर मुझे उसका बिन पैसों का गुलाम बनना था।

3

बरसात में सरयू नदी इस जोर-शोर से चढ़ी कि हज़ारों गाँव बरबाद हो गए, बड़े-बड़े तनावर दरख्त़ तिनकों की तरह बहते चले जाते थे। चारपाइयों पर सोते हुए बच्चे-औरतें, खूँटों पर बँधे हुए गाय और बैल उसकी गरजती हुई लहरों में समा गए। खेतों में नाच चलती थी।

शहर में उड़ती हुई खबरें पहुँचीं। सहायता के प्रस्ताव पास हुए। सैकड़ों ने सहानुभूति और शौक के अरजेण्ट तार जिले के बड़े साहब की सेवा में भेजे। टाउनहाल में क़ौमी हमदर्दी की पुरशोर सदाएँ उठीं और उस हंगामे में बाढ़-पीड़ितों की दर्दभरी पुकारें दब गयीं।

सरकार के कानों में फरियाद पहुँची। एक जांच कमीशन तैयार किया गया। जमींदारों को हुक्म हुआ कि वे कमीशन के सामने अपने नुकसानों को विस्तार से बतायें और उसके सबूत दें। शिवरामपुर के महाराजा साहब को इस कमीशन का सभापति बनाया गया। जमींदारों में रेल-पेल शरूँ हुई। नसीब जागे। नुकसान के तखमीन का फैसला करने में काव्य-बुद्धि से काम लेना पड़ा। सुबह से शाम तक कमीशन के सामने एक जमघट

रहता। आनरेबुल महाराजा साहब को सांस लेने की फुरसत न थी दलील और शाहदत का काम बात बनाने और खुशामद से लिया जाता था। महीनों यही कैफ़ियत रही। नदी किनारे के सभी जमींदार अपने नुकसान की फरियादें पेश कर गए, अगर कमीशन से किसी को कोई फायदा नहीं पहुँचा तो वह कुँअर सज्जनसिंह थे। उनके सारे मौजे सरयू के किनारे पर थे और सब तबाह हो गए थे, गढ़ी की दीवारें भी उसके हमलों से न बच सकी थीं, मगर उनकी जबान ने खुशामद करना सीखा ही न था और यहाँ उसके बगैर रसाई मुश्किल थी। चुनांचे वह कमीशन के सामने न आ सके। मियाद खतम होने पर कमीशन ने रिपोर्ट पेश की, बाढ़ में डूबे हुए इलाकों में लगान की आम माफी हो गयी। रिपोर्ट के मुताबिक सिर्फ सज्जनसिंह वह भाग्यशाली जमींदार थे। जिनका कोई नुकसान नहीं हुआ था। कुँअर साहब ने रिपोर्ट सुनी, मगर माथे पर बल न आया। उनके आसामी गढ़ी के सहन में जमा थे, यह हुक्म सुना तो रोने-धोने लगे। तब कुँअर साहब उठे और बुलन्द आवाज में बोले — मेरे इलाके में भी माफी है। एक कौड़ी लगान न लिया जाए। मैंने यह वाकया सुना और खुद ब खुद मेरी आँखों से आँसू टपक पड़े बेशक यह वह आदमी है जो हुकूमत और अख्तियार के तूफान में जड़ से उखड़ जाय मगर झुकेगा नहीं।

4

वह दिन भी याद रहेगा जब अयोध्या में हमारे जादू-सा करनेवाले कवि शंकर को राष्ट्र की ओर से बधाई देने के लिए शानदार जलसा हुआ। हमारा गौरव, हमारा जोशीला शंकर योरोप और अमरीका पर अपने काव्य का जादू करके वापस आया था अपने कमालों पर घमण्ड करनेवाले योरोप ने उसकी पूजा की थी। उसकी भावनाओं ने ब्राउनिंग और शेली के प्रेमियों को भी अपनी वफ़ा का पाबन्द न रहने दिया। उसकी जीवन-सुधा से योरोप के प्यासे जी उठे। सारे सभ्य संसार ने उसकी कल्पना की उड़ान के आगे सिर झुका दिये। उसने भारत को योरोप की निगाहों में अगर ज्यादा नहीं तो यूनान और रोम के पहलू में बिठा दिया था।

जब तक वह योरोप में रहा, दैनिक अखबारों के पन्ने उसकी चर्चा से भरे रहते थे। यूनिवर्सिटियों और विद्वानों की सभाओं ने उस पर उपाधियों की मूसलाधार वर्षा कर दी। सम्मान का वह पदक जो योरोपवालों का प्यारा सपना और जिन्दा आरजू है, वह पदक हमारे जिन्दादिल शंकर के सीने पर शोभा दे रहा था और उसकी

वापसी के बाद उन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हिन्दोस्तान के दिल और दिमाग अयोध्या में जमा थे।

इसी अयोध्या की गोद में श्री रामचंद्र खेलते थे और यहीं उन्होंने वाल्मीकि की जादू-भरी लेखनी की प्रशंसा की थी। उसी अयोध्या में हम अपने मीठे कवि शंकर पर अपनी मुहब्बत के फूल चढ़ाने आये थे। इस राष्ट्रीय कर्तव्य में सरकारी हुक्काम भी बड़ी उदारतापूर्वक हमारे साथ सम्मिलित थे।

शंकर ने शिमला और दार्जिलिंग के फरिश्तों को भी अयोध्या में खींच लिया था। अयोध्या को बहुत इन्तजार के बाद यह दिन देखना नसीब हुआ।

जिस वक्त शंकर ने उस विराट पण्डाल में पैर रखा, हमारे हृदय राष्ट्रीय गौरव और नशे से मतवाले हो गये। ऐसा महसूस होता था कि हम उस वक्त किसी अधिक पवित्र, अधिक प्रकाशवान् दुनिया के बसनेवाले हैं। एक क्षण के लिए — अफसोस है कि सिर्फ एक क्षण के लिए — अपनी गिरावट और बर्बादी का खयाल हमारे दिलों से दूर हो गया। जय-जय की आवाजों ने हमें इस तरह मस्त कर दिया जैसे महुअर नाग को मस्त कर देता है।

एड्रेस पढ़ने का गौरव मुझको प्राप्त हुआ था। सारे पण्डाल में खामोशी छायी हुई थी। जिस वक्त मेरी जबान से यह शब्द निकले — ऐ राष्ट्र के नेता! ऐ हमारे आत्मिक गुरु! हम सच्ची मुहब्बत से तुम्हें बधाई देते हैं और सच्ची श्रद्धा से तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाते हैं...यकायक मेरी निगाह उठी और मैंने एक हृष्ट-पुष्ट हैकल आदमी को ताल्लुकेदारों की कतार से उठकर बाहर जाते देखा। यह कुँअर सज्जनसिंह थे। मुझे कुँअर साहब की यह बेमौक़ा हरकत, जिसे अशिष्टता समझने में कोई बाधा नहीं है, बुरी मालूम हुई। हजारों आँखें उनकी तरफ हैरत से उठीं।

जलसे के खत्म होते ही मैंने पहला काम जो किया वह कुँअर साहब से इस चीज के बारे में जवाब तलब करना था।

मैंने पूछा — क्यों साहब आपके पास इस बेमौका हरकत का क्या जवाब है?

सज्जनसिंह ने गम्भीरता से जवाब दिया — आप सुनना चाहें तो जवाब दूँ।

“शौक से फरमाइये।”

“अच्छा तो सुनिये। मैं शंकर की कविता का प्रेमी हूँ। शंकर की इज्जत करता हूँ, शंकर पर गर्व करता हूँ, शंकर को अपने और

अपनी कौम के ऊपर एहसान करनेवाला समझता हूँ मगर उसके साथ ही उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानने या उनके चरणों में सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

मैं आश्चर्य से उसका मुँह ताकता रह गया। यह आदमी नहीं, घमण्ड का पुतला हैं देखें यह सिर कभी झुकता या नहीं।

5

पूरनमासी का पूरा चांद सरयू के सुनहरे फर्श पर नाचता था और लहरें खुशी से गलु मिल-मिलकर गाती थीं। फागुन का महीना था, पेड़ों में कोपलें निकली थीं और कोयल कूकने लगी थी।

मैं अपना दौरा करके सदर लौटता था। रास्ते में कुँअर सज्जनसिंह से मिलने का चाव मुझे उनके घर तक ले गया, जहां अब मैं बड़ी बेतकल्लुफी से जाता-आता था।

मैं शाम के वक्त नदी की सैर को चला। वह प्राणदायिनी हवा, वह उड़ती हुई लहरें, वह गहरी निस्तबधता-सारा दृश्य एक आकर्षक सुहाना सपना था। चांद के चमकते हुए गीत से जिस तरह लहरें झूम रही थीं, उसी तरह मीठी चिन्ताओं से दिल उमड़ा

आता था। मुझे ऊँचे कगार पर एक पेड़ के नीचे कुछ रोशनी दिखायी दी। मैं ऊपर चढ़ा। वहाँ बरगद की घनी छाया में धूनी जल रही थी। उसके सामने एक साधू पैर फैलाये बरगद की एक मोटी जटा के सहारे लेटे हुए थे। उनका चमकता हुआ चेहरा आग की चमक को लजाता था। नीले तालाब में कमल खिला हुआ था।

उनके पैरों के पास एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था। उसकी पीठ मेरी तरफ थी। वह उस साधू के पैरों पर अपना सिर रखे हुए था। पैरों को चूमता था और आँखों से लगता था। साधू अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखे हुए थे कि जैसे वासना धैर्य और संतोष के आँचल में आश्रय ढूँढ रही हो। भोला लड़का माँ-बाप की गोद में आ बैठा था।

एकाएक वह झुका हुआ सर उठा और मेरी निगाह उसके चेहरे पर पड़ी। मुझे सकता-सा हो गया। यह कुँअर सज्जनसिंह थे। वह सर जो झुकना न जानता था, इस वक्त जमीन छू रहा था। वह माथा जो एक ऊँचे मंसबदार के सामने न झुका, जो एक प्रतानी वैभवशाली महाराज के सामने न झुका, जो एक बड़े देशप्रेमी कवि और दार्शनिक के सामने न झूका, इस वक्त एक साधु के क़दमों पर गिरा हुआ था। घमण्ड, वैराग्य के सामने सिर झुकाये खड़ा था।

मेरे दिल में इस दृश्य से भक्ति का एक आवेग पैदा हुआ। आँखों के सामने से एक परदा-सा हटा और कुँअर सज्जन सिंह का आत्मिक स्तर दिखायी दिया। मैं कुँअर साहब की तरफ से लिपट गया और बोला — मेरे दोस्त, मैं आज तक तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से बिल्कुल बेखबर था। आज तुमने मेरे हृदय पर उसको अंकित कर दिया कि वैभव और प्रताप, कमाल और शोहरत यह सब घटिया चीजें हैं, भौतिक चीजें हैं। वासनाओ में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकायें, वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही वे महान् गुण हैं जिनकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े वैभवशाली और

प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यही वह ताक़त है जो वैभव और प्रताप को, घमण्ड की शराब के मतवालों को और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती है। ऐ तपस्या के एकान्त में बैठनेवाली आत्माओ! तुम धन्य हो कि घमण्ड के पुतले भी पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।

कुँअर सज्जनसिंह ने मुझे छाती से लगाकर कहा — मिस्टर वागले, आज आपने मुझे सच्चे गर्व का रूप दिखा दिया और में कह सकता हूँ कि सच्चा गर्व सच्ची प्रार्थना से कम नहीं।
विश्वास मानिये मुझे इस वक्त ऐसा मालूम होता है कि गर्व में भी

आत्मिकता को पाया जा सकता है। आज मेरे सिर में गर्व का जो नशा है, वह कभी नहीं था।

['ज़माना', अगस्त, 1996]

जंजाल

दबाने से इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं, हमें इसमें सन्देह है। सम्भव है कुछ मामलों में ऐसा होता हो, लेकिन प्रायः सहनशीलता बन्द हवा की तरह आँधी की पूर्व-पीठिका हुआ करती है।

पार्वती को अपने पति के साथ रहते हुए पाँच साल से ज्यादा हो गए लेकिन उसने उनसे कभी कोई फरमाइश नहीं की। यदि वह कभी दबी जबान से या परोक्ष रूप से किसी गहने या कपड़े की चर्चा करती तो सुरेन्द्रनाथ अत्यन्त बेबसी के साथ कहते — मेरी आमदनी और खर्च का हिसाब तुम्हारे हाथ में है। यदि इसमें कोई गुंजाइश दिखाई दे तो जो चाहे चीजें बनवा लो।

इससे अधिक प्रसन्नता की बात मेरे लिये क्या होगी कि तुम्हें गहनों से सजी देखूँ।' यह उत्तर सुनकर पार्वती सिर झुका लेती और सोचती कि मैं सारी उम्र यूँ ही नंगी-बुच्ची बनी बैठी रहूँगी। कभी सोचती है कि यह खर्च न करूँ, इस मद में कमी करूँ, लेकिन चूल कभी ठीक नहीं बैठती थी।

उसके पास पहले के भी कुछ गहने थे लेकिन वह उन्हें भी नहीं पहनती थी। त्योहार या उत्सव में भी वह प्रायः सादी साड़ी पहनकर ही रूह जाती थी। वह अपनी महरी और पड़ोसिनों को दिखाना चाहती थी कि उसे गहनों की भूख नहीं है, लेकिन यह इस समय अपने दुर्भाग्य और पति की निर्धनता की घोषणा थी। उसे रह-रहकर विचार आता कि मेरे लिये सुरेन्द्र जितना कुछ कर सकते हैं उतना नहीं करते। वे मेरी अनापत्ति और सीधेपन का नाजायज फायदा उठाते हैं। निराश होकर वह कभी-कभी सुरेन्द्र से झगड़ना चाहती, झगड़ती, मुँह फेरकर बात करती, उसे सुना-सुनाकर अपने भाग्य को कोसती। सुरेन्द्र समझ जाते कि इस समय हवा का रुख बदला हुआ है, बचकर निकल जाते। कभी-कभी गंगा स्नान या किसी मेले से लौटकर पार्वती पर गहनों का उन्माद-सा छा जाता। वह संकल्प करती कि एक बार मन की निकाल ही लूँ, जो दो-चार सौ रुपये बचे हुए हैं उनकी कोई चीज बनवा लूँ, कल की चिन्ता में कहाँ तक मरूँ। लेकिन एक क्षण में उसका यह उन्माद उड़न छू हो जाता, यहाँ तक कि लगातार सहन करने के कारण उसकी सजने के शौक की इच्छाएँ मरकर मन के एक कोने में पड़ी रहती थीं।

मगर आज पाँच साल के बाद यह इच्छा जाग्रत हुई है। इसमें बेचैनी नहीं है लेकिन बेचैनी से भी ज्यादा दुःखदायी उदासी है।

पार्वती के छोटे भाई की शादी होने वाली है, उसके मायके से बुलावा आया है। इस समारोह में भाग लेना जरूरी है। गहनों का पहनना आवश्यक हो गया। इस अवसर पर सुरेन्द्र भी अपनी विवशता का बहाना न कर सके। इस समय यह उपाय भी सफल होता दिखाई नहीं दिया।

शाम के समय सुरेन्द्र बाहर से लपके हुए आए। उनका चेहरा चमक रहा था। उन्होंने पार्वती के हाथ में एक पोटली रख दी। पार्वती ने खोलकर देखा तो पोटली में एक जड़ाऊ कंगन, एक चन्द्रहार और झुमके दिखाई दिए। पार्वती कुछ सहम-सी गई। उसे सपने में भी उम्मीद नहीं थी कि सुरेन्द्र उसके लिये इतनी और ऐसी कीमती चीजें लाएँगे। खुशी के बदले एक व्याकुलता, एक भय का अनुभव हुआ। वह डरते-डरते बोली — ये कितने के हैं?

सुरेन्द्र — पसन्द तो हैं न?

पार्वती — पहले दाम तो बताओ।

सुरेन्द्र — चार सौ।

पार्वती — सच?

सुरेन्द्र — मेरे पास और रुपये कहाँ थे?

पार्वती — उधार तो नहीं लेने पड़े?

सुरेन्द्र — नहीं, उधार क्या लेना।

पार्वती — तब पसन्द हैं।

सुरेन्द्र ने वास्तविकता छिपानी चाही थी लेकिन अपनी विशाल-हृदयता का बखान किए बिना न रह सके। सोचा कि इन्हें क्या पता चलेगा कि इनके लिए इस समय कितने बोझ के नीचे दबा जा रहा हूँ। बोले — सच-सच कह दूँ!बारह सौ लगे।

पार्वती ने पति को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए कहा — तो इतनी चीजें लाने की क्या जरूरत थी?

दानवीर जैसी लापरवाही के साथ सुरेन्द्र बोले — एक मुद्दत के बाद जब जेवर बनवाने लगा तो कंजूसी करने बैठता। शर्म भी तो कोई चीज है।' पार्वती ने पति की ओर कृतज्ञता की दृष्टि से देखा। उसमें कुछ प्यार की झलक थी कुछ शिकायत की, कुछ गर्व की कुछ परेशानी की। उसने और अधिक प्रश्न न किए कि कहीं कोई ऐसी बात कानों में न पड़ जाय जिससे इन गहनों को वापस कर देना ही जरूरी हो जाय। जिस व्यक्ति के हलक में प्यास से काँटे पड़े हुए हों वह यह नहीं पूछता कि बर्तन कैसा है और पानी किसने भरा है।

2

एक हफ्ते तक पार्वती एक दूसरी ही दुनिया में रही। उसके अन्दाज में एक शान, बातों में अभिमान और चेहरे से अमीरी झलकती थी। कितने ही ऐसे काम जिन्हें वह पहले निस्संकोच कर लिया करती थी, अब उसे दूभर लगने लगे। यहाँ तक कि अपनी नन्हीं बच्ची तारा को गोद में लेते हुए भी उसे अपने कपड़े मैले होने की आशंका होने लगती, लेकिन वह स्वयं अपने व्यवहार में आए इस परिवर्तन से अनजान थी।

सातवें दिन उसका भाई आया और पार्वती मायके चली। उसने सुरेन्द्र से हर तीसरे दिन पत्र भेजने का आश्वासन लिया। उनके सामने खड़ी घंटों रोती रही, ऐसा मालूम होता था कि बिछुड़ने के दुःख से उसका कलेजा फटा जा रहा है। लेकिन घर से निकलते ही दिखावे की इच्छा उसके मन पर छा गई। वह गाड़ी के एक जनाने डिब्बे में आकर बैठी, जिसमें अधिकांश महिलाएँ निम्न वर्ग की थीं। उन्होंने पार्वती को आतंकित दृष्टि से देखा और इधर-उधर सिमट गईं। पार्वती खिड़की के सामने जाकर ऐसे बैठी मानो इतनी आवभगत उसका जन्मसिद्ध अधिकार हो। उसे गाड़ी में भले खानदान की केवल एक ही महिला दिखाई दी। उसका

चेहरा गम्भीर था। वह एक साफ साड़ी पहने हुए थी, पैरों में सलीपर थे, हाथों में चूड़ियाँ, लेकिन शरीर पर गहने के नाम पर एक तार तक न था। वह निम्न वर्ग की कई महिलाओं के बीच हाथ-पाँव सिकोड़े बैठी थी। मन ही मन पार्वती ने कहा — निस्सन्देह सुन्दर महिला है, लेकिन सम्मान कहाँ। कोई बात भी तो नहीं पूछता, एक कोने में दबी बैठी है। शरीर पर चार गहने होते तो यही सब ओछी महिलाएँ इसका सम्मान करतीं।

नीचे फर्श पर पार्वती के निकट ही एक गरीब महिला बैठी हुई थी। उसकी गोद में एक बच्चा था, जो रह-रहकर इतने जोर से खाँसता और चीख मारता कि पार्वती मन ही मन झुँझलाकर रह जाती। जब उससे रहा न गया तो उसने उस महिला से कहा — तुम दूसरी पटरी पर जा बैठो। इस लड़के के खाँसने से मुझे नींद नहीं आ रही है।' गरीब महिला ने पार्वती की ओर आश्चर्य से देखा और धीरे से सरक गई।

रात आधी से अधिक बीत गई थी। खिड़कियों से ठंडी हवा आ रही थी। गरीब महिला ने खिड़कियाँ बन्द करनी चाहीं तो पार्वती ने आदेशात्मक स्वर में कहा — नहीं, रहने दो। मुझे गर्मी लग रही है।' धीरे-धीरे बच्चे की खाँसी बढ़ने लगी। कुछ देर तक तो वह चिल्लाता रहा, फिर उसका गला पड़ गया। उसने दूध पीना छोड़ दिया। सामने बैठी सीधी-सादी महिला कुछ देर तक तो

बच्चे को देखती रही, फिर उसने उस गरीब महिला के पास आकर बच्चे को गोद में ले लिया। बच्चे की हालत खराब थी, सीने पर बलगम जमा हुआ था, लगता था कि निमोनिया की शुरुआत है। उसने फौरन अपना बक्स खोलकर उसमें से एक दवा निकाली और हवा से बचाकर बच्चे के सीने पर हल्के हाथ से मलने लगी। फिर दूसरी शीशी से एक चम्मच दवा निकालकर बच्चे को पिलाई। गाड़ी की सब महिलाएँ आकर बच्चे के निकट खड़ी हो गईं। निरन्तर एक घंटा तेल मालिश करने के बाद उस भली महिला ने अपने बक्से से एक फलालैन का टुकड़ा निकालकर बच्चे के सीने पर बाँध दिया। बच्चा सो गया।

वह रात के तीन बजे तक बच्चे को गोद में लिए एक-एक घंटे पर दवा पिलाती रही। बच्चे ने दूध पीना शुरू किया, उसके गले की घरघराहट रुक गई और वह मौत के फंदे से निकल आया। बच्चे की माँ अपनी उपकारिणी के पाँवों पर गिर पड़ी और रो-रोकर उसे धन्यवाद देने लगी।

इलाहाबाद में पार्वती और वह सीधी-सादी महिला, दोनों उतरीं। पार्वती का भाई आकर कुलियों को पुकारने लगा। जब कोई कुली न आया तो पार्वती को ही अपने सन्दूक, बिस्तर आदि उतार-उतारकर भाई को देने पड़े। उसकी रेशमी जाकट चिरक गई। उधर उस गम्भीर सीधी-सादी महिला ने जैसे ही अपना

बिस्तर उठाया तो लपककर एक महिला ने उसके हाथों से बिस्तर ले लिया, दूसरी ने उसका सन्दूक उतार लिया, तीसरी ने उसका दवाओं का बक्स उठाया और कई महिलाएँ उसे धर्मशाला तक पहुँचाने आईं। बीमार बच्चे की माँ बार-बार उसके आगे हाथ जोड़ती और पैरों पर गिरती। दूसरी महिलाएँ भी उससे गले मिलीं। ऐसा लगता था मानो वे अपने किसी आत्मीय से बिछुड़ रही हों। लेकिन किसी ने पार्वती की बात भी न पूछी। उसके जाने से सब महिलाओं को सच्ची खुशी हुई, मानो सिर से एक बला ही टल गई। अब उन्हें जरा कमर सीधी करने की जगह तो मिलेगी। बीमार बच्चे की माँ ने तो उसे घृणा की दृष्टि से देखा और मन ही मन उसे जी भरकर कोसा।

पार्वती ने मन में कहा — इस सीधी-सादी औरत ने तो अच्छा ही रंग जमा लिया। सभी महिलाएँ अनुचरी बन गईं, मानो कोई मन्त्र ही फूँक दिया हो। गँवारों के बीच तो ऐसा हो सकता है, परन्तु किसी भले घर में इसे कौन घास डालेगा।

पार्वती का मायका शहर से सटी एक ऐसी बस्ती में था जिसे न शहर कह सकते थे, न देहात। वहाँ शहर की तो एक भी सुविधा न थी मगर देहात के सभी कष्ट मौजूद थे। न शहर की सड़कें, लालटेनें, नालियाँ थीं न देहात का विस्तार, हरियाली और हवा। वहाँ का दूध शहर वाले पीते थे, सब्जी शहर वाले खाते थे, लकड़ी शहर वाले जलाते थे। वहाँ के मजदूर काम करने शहर में जाते थे। खाने-पीने की चीजें वहाँ शहर से आकर ही बिकती थीं। पार्वती के पिता के पास कुछ जमीन थी लेकिन वे मजदूरों की कमी के कारण खेती न कर सकते थे। उसके दोनों भाई अंग्रेजी पढ़ते और वकालत का सपना देखते थे। भोले-भाले से चालाक बनने की धुन सवार थी।

बेटी का ठाट-बाट देखकर पार्वती की माँ फूली न समाई। उसकी दुनिया उन्हीं इने-गिने मकानों और उनके निवासियों तक सीमित थी। वहाँ के गहने-कपड़े, शादी-ब्याह, झगड़े-टंटे उसके अस्तित्व की धुरी थे। वह उनमें ही बसती थी और उन्हीं का सपना देखती थी। मुहल्ले में किसी के घर बच्चा पैदा होना उसके लिये पनामा नहर के उद्घाटन से भी बड़ी घटना थी, और किसी घर में एक नये कंठे का बनना देहली के निर्माण से कहीं अधिक शानदार। पार्वती को देखकर बाग-बाग हो गई। उसे साथ लेकर पड़ोसिनों के घर गई। जो भी उसके कंगन और

चन्द्रहार को देखता, लोटपोट हो जाता। माँ सामने वाले की सामर्थ्य के अनुसार उन गहनों का मूल्य बढ़ाती रहती थी। दो-तीन दिन पूरे मुहल्ले में उन गहनों की नुमाईश हुई। पार्वती का सिक्का जम गया, उसका रौब बैठ गया।

पार्वती की चाल-ढाल से एक शान टपकती थी। वह खाना खाने बैठती तो नाक सिकोड़ लेती, घी बेस्वाद है; पानी पीती तो मुँह बनाकर, ठंडा नहीं है। माँ सबको सुना-सुनाकर कहती — भला इनसे पूछो, घर का सा सुख यहाँ कहाँ मिलेगा। वहाँ अपने मन का खाती थी, अपने मन का पहनती थी। यहाँ गृहस्थी में तो मोटा-महीन सब मिलेगा। मगर बेचारी में जरा भी ऐंठ नहीं है, वही पुराना स्वभाव है, वही अल्हड़पन।'

पार्वती की बिटिया तारा पूरे मुहल्ले की गुड़िया बनी हुई थी। सभी छोटे-बड़े उसे गोद में उठाते और प्यार से चूमते। कोई कहता, बेटी यह हँसली हमको दे दो, तो तारा तोतली बोली में कहती — हमाली है।

कोई पूछता, बेटी ये कड़े किसने बनवाए हैं, तारा कहती — मेले बाबूदी ने।

शादी का दिन निकट आ गया। रस्म-रिवाज होने लगे। मुहल्ले की औरतें बन-सँवरकर आने लगीं, लेकिन पार्वती उन सबकी रानी

लगती थी। सभी औरतों की दृष्टि उसके कंगन, चन्द्रहार और झुमकों पर ही टिकी रहती। सब उससे दबती, उसका लिहाज करती, उसकी हाँ में हाँ मिलाती।

पार्वती को यह सम्मान केवल अपने गहनों के बल पर ही मिल रहा था। बरात चलने के दिन न्यौते में सुरेन्द्रनाथ भी आए। जब वे शाम के समय घर में गए तो मुस्कराकर पार्वती ने कहा, -- आज जी चाहता है कि तुम्हारी पान-फूल से पूजा करूँ।'

मुस्कराकर सुरेन्द्र ने कहा — 'बना रही हो।'

पार्वती — 'नहीं, सच कहती हूँ। इस समय मन यही चाहता है। तुम्हारे इन गहनों ने मेरा बोलबाला कर दिया। सारे मुहल्ले में धाक जम गई, सबकी सब पानी भरती हैं। ये न होते तो

झूठे भी कोई बात न पूछता। अपनी जमा अपने घर में है, लेकिन नेकनामी मुफ्त। ऐसा सौदा और क्या होगा!'

सुरेन्द्र -- 'मैं जानता तो दो-एक चीजें और ले लेता।'

पार्वती — 'ओह! तब तो सारे मुहल्ले में मैं ही मैं होती। औरत की इज्जत गहने-कपड़े से होती है, नहीं तो अपने माँ-बाप भी आँख से गिरा देते हैं।'

सुरेन्द्र पछताए कि और गहने क्यों न खरीद लिए। भले ही दो-चार सौ और उधार हो जाते, इसकी लालसा तो मिटती।

4

पार्वती को मायके में रहते दो महीने हो गए। सुरेन्द्र को दफ्तर से छुट्टी न मिली कि आकर ले जाते। शादी का सब काम पूरा हुआ, मेहमान बिदा हो गए, सन्नाटा छा गया। धीरे-धीरे पड़ोसिनों का आना-जाना भी बन्द हुआ। पार्वती के गहनों के चार दिन के साम्राज्य का अन्त हो गया। वही गहने थे वही कपड़े, मगर अब उन्हें देखने में क्या आनन्द आता। अब पूरे-पूरे दिन पार्वती अकेली बैठी रहती। कभी कोई औरत मिलने आ भी जाती तो बस दो-चार बातें करके ही अपनी रूह लेती। किसी को भी अपने घर के कामकाज से फुर्सत न थी। यह अकेलापन पार्वती को बहुत अखरता। मायके से उसका मन उचाट हो गया। उसे पता चल गया कि नित्य नये गहने बनते रहने से ही उसकी बात बनी रूह सकती है, पुराने तमाशे को कोई मुफ्त में भी नहीं देखता।

कोढ़ में खाज यह हुई कि और भी कई घरों में उसके जैसे गहने बनने लगे। यहाँ तक कि एक मनचले शौकीन बनिये ने, जिसे

नमक के काम में बड़ा भारी लाभ हुआ था, कलकत्ते के बने हुए कंगन और हार मँगवाए, जिन्होंने पार्वती का रंग फीका कर दिया। रही-सही बात भी जाती रही। रेत की दीवार भरभराकर ढह गिरी।

एक दिन पार्वती अकेली बैठी सुरेन्द्र को पत्र लिख रही थी कि अब यहाँ जरा सा भी मन नहीं लगता। दो दिन की छुट्टी मिले तो मुझे ले जाओ। इतने में उसकी बचपन की सहेली बागेश्वरी उससे मिलने आई। वह पार्वती के साथ खेली हुई थी। उसका ब्याह एक गरीब खानदान में हुआ था लेकिन उसके पति ने रंगून जाकर खूब पैसा कमाया और चार-पाँच साल के बाद लौटा तो पत्नी के लिए एक मोतियों का हार लेता आया। बागेश्वरी आज ही मायके आई थी। पार्वती ने उसका मोतियों का हार देखा तो आँखें खुल गईं, दो हजार से कम का नहीं होगा। पार्वती ने उसकी प्रशंसा तो की लेकिन उसका दिल बैठा जाता था; जैसे कोई ईर्ष्यालु कवि अपने नौसिखिये प्रतिद्वंद्वी की कला की प्रशंसा करने में कंजूसी करे।

यह रोग पार्वती की आत्मा में घुन की तरह लग गया। उसने दूसरों के घर आना-जाना छोड़ दिया, मन मारे अपने घर में ही बैठी रहती। उसे ऐसा लगता था कि अब औरतें, यहाँ तक कि उसकी माँ भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देख रही हैं। पहले

गहनों की चर्चा में उसे एक विशेष आनन्द मिलता था, अब वह भूलकर भी गहनों की चर्चा नहीं करती। मानो अब उसे इस सम्बन्ध में मुँह खोलने का भी मन न हो।

आखिरकार एक दिन उसने अपने सब गहने उतारकर बक्से में रख दिए और ठान लिया कि इन्हें खोलूँगी नहीं। उसे इन गहनों के खरीदने पर पछतावा होने लगा। दिखावे की चाह में जिन्दगी के सुख-चैन में बेकार खलल पड़ गया। वह बिना गहनों के ही अच्छी थी कि यह मुफ्त की उलझन तो नहीं थी। घर के रुपये गँवाकर यह सिरदर्द खरीदना बड़ा महँगा सौदा है। तीज के दिन पार्वती की माँ ने कहा — 'बेटी, आज मुहल्ले की सब औरतें स्नान करने जा रही हैं। तुम भी चलोगी?'

पार्वती ने उपेक्षा से कहा — 'नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।'

माँ — 'चलती क्यों नहीं। बरस-बरस का त्योहार है, सब अपने मन में क्या कहेंगी?'

पार्वती — 'जो चाहे कहें, मैं तो जाऊँगी नहीं।'

क्वार के दिन थे। सुरेन्द्र को अभी तक छुट्टी नहीं मिली थी। पार्वती ने जल-भुनकर उन्हें कई चिट्ठियाँ लिखी थीं, पर इधर दो हफ्ते से पत्र लिखना बन्द कर दिया था। उसे अपनी जिन्दगी बोझ लगती थी। मुहल्ले में बुखार और चेचक का प्रकोप था, कोई किसी के घर आता-जाता न था। नाश्ते के बदले घरों में काढ़ा पकता था। अस्पताल में मेला सा लगा रहता था। वैद्य और हकीम पत्थर के देवता बने हुए थे। एक दिन पार्वती की माँ ने कहा — 'बेटी, आज शीतला देवी आ रही हैं। चलो, उनसे मिल आएँ।'

पार्वती — 'शीतला देवी कौन हैं?'

माँ — 'यह तो नहीं जानती, मगर कभी-कभी यहाँ आया करती हैं। औरत क्या है देवी ही है।'

पार्वती — 'क्या करती हैं?'

माँ — 'यहाँ तो जब आती हैं, बीमारों की दवा-दारू करती हैं और किसी से एक पैसा भी नहीं लेतीं।'

पार्वती — 'तो घर की मालदार होंगी?'

माँ — 'नहीं, सुनती हूँ कि सिलाई करके गुजर-बसर करती हैं। ब्याह के बाद ही पति हैजे से मर गया, उसका मुँह तक नहीं देखा। तब से इसी भाँति काम कर रही हैं।'

पार्वती — 'तो क्या अभी उम्र अधिक नहीं है?'

माँ — 'नहीं, अभी उम्र ही क्या है। नारायण ने जैसी शक्ल-सूरत दी है, वैसा ही स्वभाव है। किसी महल में होती तो महल जगमगा उठता। ऐसी हँसमुख, ऐसी मिलनसार कि पास से हटने का मन नहीं होता। जब तक यहाँ रहती हैं, भीड़ लगी रहती है। पूरा मुहल्ला घेरे रहता है।'

इतने में महरी ने आकर कहा — 'बहूजी, शीतला देवी आई हैं और पाठशाला में बैठी हुई लड़कियों से कुछ पूछ रही हैं। कई लड़कियों को तो इनाम भी दिए हैं। मैं भी जाती हूँ, जरा दर्शन कर आऊँ।'

माँ ने कहा — 'अरी तू पानी तो भर दे, न जाने कब तक लौटेगी।'

महरी — 'अभी लौटी आती हूँ। कहीं ऐसा न हो कि चली जाएँ।'

महरी के जाने के एक घंटे बाद पार्वती की वही मोतियों के हार वाली सहेली आकर बोली — ’चलो बहन, शीतला देवी से मिल आएँ। मुहल्ले की सभी औरतें जा रही हैं।’

पार्वती को भी उत्कंठा हुई। तारा को एक अच्छी सी फ्रॉक पहना दी परन्तु स्वयं वही सादी सी साड़ी पहने हुए शीतला से मिलने चली। गहने नहीं पहने।

जब दोनों सहेलियाँ पाठशाला में पहुँची तो औरतों और बच्चों की भीड़ जमा थी। शीतला देवी जमीन पर बैठी हुई बच्चों को देख रही थी और बक्स से निकाल-निकालकर दवा देती जाती थी। मानो पेड़ों की छाँव में एक उजला कुंड था — वैसा ही मौन, गम्भीर, शान्तिमय और सुन्दर! शीतला की आँखों से एक चित्ताकर्षक पवित्रता झलक रही थी। पार्वती ने उसे पहचान लिया। यह वही सीधी-सादी महिला थी जिसे उसने गाड़ी में देखा था। पार्वती ने देखा कि इस औरत के सामने मैं कैसी निकृष्ट हूँ। और कुछ मैं ही नहीं, मुहल्ले की वे सभी औरतें जो गहनों से गोंड़नी की भाँति सजी हुई हैं इस औरत के सामने सेविकाओं की भाँति खड़ी हैं। यदि ये सभी अपने को सोने से मँढ़वा लें तो भी क्या! क्या इनका ऐसा सम्मान हो सकता है? इससे बात करके कौन निहाल नहीं हो जाता। और जो बीमार हैं वे तो मानो बिना दाम के ही गुलाम हैं। सचमुच इसी का नाम सम्मान है। यह

क्या कि चार औरतें आवें और आँखें मटका-मटकाकर हमारे गहनों का बखान करने लगें, मानो हमारा शरीर नहीं बल्कि गहनों की नुमाईश का मैदान ही हो।

आज से एक महीना पहले शायद इस प्रकार के विचार पार्वती के मन में न उभरते। लेकिन आजकल गहनों से उसका मन फिरा हुआ था। सामान्य रूप से दार्शनिक विचारों के मूल में निराशा और उदासी ही होती है। पार्वती चित्रलिखित सी खड़ी शीतला देवी का तौर तरीका, बात करने का ढंग और आत्मीयतापूर्ण व्यवहार ध्यान से देखती रही। वह सोचती थी — 'यह औरत कितनी सुन्दर है लेकिन इसके साथ ही इच्छाओं से कितनी मुक्त। मैं सम्मान की भूखी हूँ लेकिन मैं जिसे सम्मान समझती थी, वह यथार्थ से कितना दूर है। मैं अभी तक छाया के पीछे ही भाग रही थी, आज उसका वास्तविक रूप दिखाई दिया है।'

जब शाम ढल गई और भीड़ छँटी तो शीतला देवी की दृष्टि पार्वती पर पड़ी। वह उसे तत्काल पहचानकर बोली — 'बहन, तुम्हें तो मैंने रेलगाड़ी में देखा था।'

पार्वती ने कहा — 'हाँ, उस दिन मैं यहाँ आ रही थी।'

शीतला देवी ने पार्वती को सर से पाँव तक देखा और फिर उसकी सहेली बागेश्वरी की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

मुस्कराकर बागेश्वरी ने कहा — 'कुछ दिनों से गहने नहीं पहनती।'

शीतला — 'क्या गहनों से नाराज हैं?'

बागेश्वरी — 'इनका मन ही जाने।'

पार्वती — 'आप भी तो नहीं पहनती।'

शीतला — 'मुझे मयस्सर ही कहाँ। मैं तो भिखारिन हूँ, बहनों की सेवा करती हूँ और पुण्य के मार्ग में वे जो कुछ दे देती हैं, उसी से अपना पेट पालती हूँ।'

पार्वती — 'मुझे भी अपने जैसी भिखारिन बना दीजिए।'

शीतला देवी हँसकर उठ खड़ी हुई और बोली — 'भीख माँगने से भीख देना बहुत अच्छा है।'

रात में जब पार्वती लेटी तो शीतला देवी का दमकता चेहरा उसकी आँखों में नाच रहा था जो उसके मन को खींचे लेता था। उसने सोचा — क्या मैं भी शीतला देवी बन सकती हूँ? तत्काल सुरेन्द्र उसके सामने आकर खड़े हो गए, तारा रो-रोकर उसकी गोद में आने के लिए मचलने लगी।

जीवन की इच्छाओं की एक बाढ़ ही उठ खड़ी होकर टक्कर मारने लगी। नहीं, शीतला देवी बनना मेरे वश में नहीं है, लेकिन मैं एक बात कर सकती हूँ और वह अवश्य करूँगी।

6

एक सप्ताह में पार्वती अपनी ससुराल आ पहुँची। सुरेन्द्र ने उसका मुरझाया मुँह देखा तो आश्चर्य से बोले — 'गहनों से रूठ गईं क्या?'

पार्वती — 'पुराने हो गए, नये बनवा दो।'

सुरेन्द्र — 'अभी तो इन्हीं का हिसाब चुकता नहीं हुआ।'

पार्वती — 'मैं एक उपाय बताती हूँ। इन गहनों को वापस कर दो। वापस तो हो जाएँगे?'

सुरेन्द्र — 'हाँ, बहुत आसानी से। इन दो महीनों में सोने का भाव बहुत चढ़ गया है।'

पार्वती — 'तो कल वापस कर आना।'

सुरेन्द्र — 'पहनोगी क्या?'

पार्वती — 'दूसरे गहने बनवाऊँगी।'

सुरेन्द्र — 'और रुपए कहाँ हैं?'

पार्वती — 'उन गहनों में रुपये नहीं लगेंगे।'

सुरेन्द्र — 'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।'

पार्वती — 'ये गहने जी के जंजाल हैं। इनसे मन भर गया। इन्हें बेचकर किसी बैंक में जमा कर दो।

हर महीने मुझे उसका ब्याज दे दिया करना।'

सुरेन्द्र ने बात हँसी में उड़ानी चाही लेकिन पार्वती के हावभाव से ऐसा दृढ़ संकल्प प्रकट होता था कि वे उस विषय में गम्भीरता से विचार करने पर विवश हो गए।

दूसरे महीने में शीतला देवी के नामबारह रुपये का एक गुमनाम मनीऑर्डर पहुँचा। कूपन में लिखा हुआ था, यह तुच्छ धनराशि स्वीकार कीजिए। ईश्वर की इच्छा हुई तो यह धनराशि स्थायी रूप से प्रतिमाह मिलती रहेगी। आप इसे जिस भाँति चाहें खर्च करें। अब से दुआएँ ही मेरा आभूषण होंगी। ये धातु के टुकड़े तो जी के जंजाल हैं, इनसे मेरा मन भर गया है।

[उर्दू से, तहजीबे निस्वाँ, उर्दू मासिक, अगस्त 1918]

जुरमाना

ऐसा शायद ही कोई महीना जाता कि अलारक्खी के वेतन से कुछ जुरमाना न कट जाता। कभी-कभी तो उसे 6) के 5) ही मिलते, लेकिन वह सब कुछ सहकर भी सफाई के दारोग़ा मु. खैरात अली खाँ के चंगुल में कभी न आती। खाँ साहब की मातहती में सैकड़ों मेहतरानियाँ थीं।

किसी की भी तलब न कटती, किसी पर जुर्माना न होता, न डाँट ही पड़ती। खाँ साहब नेकनाम थे, दयालु थे। मगर अलारक्खी उनके हाथों बराबर ताड़ना पाती रहती थी। वह कामचोर नहीं थी, बेअदब नहीं थी, फूहड़ नहीं थी, बदसूरत भी नहीं थी; पहर रात को इस ठण्ड के दिनों में वह झाड़ू लेकर निकल जाती और नौ बजे तक एक-चित्त होकर सडक पर झाड़ू लगाती रहती। फिर भी उस पर जुर्माना हो जाता। उसका पति हुसेनी भी अवसर पाकर उसका काम कर देता, लेकिन अलारक्खी की क़िस्मत में जुर्माना देना था। तलब का दिन औरों के लिए हँसने का दिन था अलारक्खी के लिए रोने का। उस दिन उसका मन जैसे सूली पर

टँगा रहता। न जाने कितने पैसे कट जाएँगे? वह परीक्षा वाले छात्रों की तरह बार-बार जुर्माना की रकम का तखमीना करती।

उस दिन वह थककर जरा दम लेने के लिए बैठ गयी थी। उसी वक्त दारोगाजी अपने इक्के पर आ रहे थे। वह कितना कहती रही हजूरअली, मैं फिर काम करूँगी, लेकिन उन्होंने एक न सुनी थी, अपनी किताब में उसका नाम नोट कर लिया था। उसके कई दिन बाद फिर ऐसा ही हुआ। वह हलवाई से एक पैसे के सेवड़े लेकर खा रही थी। उसी वक्त दारोग़ा न जाने किधर से निकल पड़ा था और फिर उसका नाम लिख लिया गया था। न जाने कहाँ छिपा रहता है? जरा भी सुस्ताने लगे कि भूत की तरह आकर खड़ा हो जाता है। नाम तो उसने दो ही दिन लिखा था, पर जुर्माना कितना करता है — अल्ला जाने! आठ आने से बढ़कर एक रुपया न हो जाए। वह सिर झुकाये

वेतन लेने जाती और तखमीने से कुछ ज्यादा ही कटा हुआ पाती। काँपते हुए हाथों से रुपये लेकर आँखों में आँसू भरे लौट आती। किससे फरियाद करे, दारोग़ा के सामने उसकी सुनेगा कौन?

आज फिर वही तलब का दिन था। इस महीने में उसकी दूध पीती बच्ची को खाँसी और ज्वर आने लगा था। ठण्ड भी खूब

पड़ी थी। कुछ तो ठण्ड के मारे और कुछ लड़की के रोने-चिल्लाने के कारण उसे रात-रात-भर जागना पड़ता था। कई दिन काम पर जाने में देर हो गयी। दारोग़ा ने उसका नाम लिख लिया था। अबकी आधे रुपये कट जाएँगे। आधे भी मिल जाएँ तो ग़नीमत है। कौन जाने कितना कटा है? उसने तड़के बच्ची को गोद में उठाया और झाड़ू लेकर सडक पर जा पहुँची।

मगर वह दुष्ट गोद से उतरती ही न थी। उसने बार-बार दारोग़ा के आने की धमकी दी — अभी आता होगा, मुझे भी मारेगा, तेरे भी नाक-कान काट लेगा। लेकिन लड़की को अपने नाक-कान कटवाना मंजूर था, गोद से उतरना मंजूर न था; आखिर जब वह डराने-धमकाने, प्यारने-पुचकारने, किसी उपाय से न उतरी तो अलारक्खी ने उसे गोद से उतार दिया और उसे रोती-चिल्लाती छोड़कर झाड़ू लगाने लगी। मगर वह अभागिनी एक जगह बैठकर मन-भर रोती भी न थी। अलारक्खी के पीछे लगी हुई बार-बार उसकी साड़ी पकड़कर खींचती, उसकी टाँग से लिपट जाती, फिर जमीन पर लोट जाती और एक क्षण में उठकर फिर रोने लगती।

उसने झाड़ू तानकर कहा — चुप हो जा, नहीं तो झाड़ू से मारूँगी, जान निकल जाएगी; अभी दारोग़ा दाढ़ीजार आता होगा...

पूरी धमकी मुँह से निकल भी न पाई थी कि दारोग़ा खैरातअली खाँ सामने आकर साइकिल से उतर पड़ा। अलारक्खी का रंग उड़ गया, कलेजा धक्-धक् करने लगा! या मेरे अल्लाह, कहीं इसने सुन न लिया हो! मेरी आँखें फूट जाएँ। सामने से आया और मैंने देखा नहीं। कौन जानता था, आज पैरगाड़ी पर आ रहा है? रोज तो इक्के पर आता था। नाड़ियों में रक्त का दौड़ना बन्द हो गया। झाड़ू हाथ में लिए निःस्तब्ध खड़ी रह गयी।

दारोग़ा ने डाँटकर कहा — काम करने चलती है तो एक पुच्छिल्ला साथ ले लेती है। इसे घर पर क्यों नहीं छोड़ आयी?

अलारक्खी ने कातर स्वर में कहा — इसका जी अच्छा नहीं है हुजूर, घर पर किसके पास छोड़ आती।

'क्या हुआ है इसको!'

'बुखार आता है हुजूर!'

'और तू इसे यों छोड़कर रुला रही है। मरेगी कि जियेगी?'

'गोद में लिये-लिये काम कैसे करूँ हुजूर!

'छुट्टी क्यों नहीं ले लेती!'

'तलब कट जाती हुजूर, गुजारा कैसे होता?'

‘इसे उठा ले और घर जा। हुसेनी लौटकर आये तो इधर झाड़ू लगाने के लिए भेज देना।’

अलारक्खी ने लड़की को उठा लिया और चलने को हुई, तब दारोग़ाजी ने पूछा — मुझे गाली क्यों दे रही थी?

अलारक्खी की रही-सही जान भी निकल गयी। काटो तो लहू नहीं। थर-थर काँपती बोली — नहीं हुजूर, मेरी आँखें फूट जाएँ जो तुमको गाली दी हो।

और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

2

सन्ध्या समय हुसेनी और अलारक्खी दोनों तलब लेने चले। अलारक्खी बहुत उदास थी।

हुसेनी ने सान्त्वना दी — तू इतनी उदास क्यों है? तलब ही न कटेगी — काटने दे अबकी से तेरी जान की कसम खाता हूँ, एक घूँट दारूँ या ताड़ी नहीं पिऊँगा।

‘मैं डरती हूँ, बरखास्त न कर दे मेरी जीभ जल जाय! कहाँ से कहाँ ...

‘बरखास्त कर देगा, कर दे, उसका अल्ला भला करे! कहाँ तक रोयें!’

‘तुम मुझे नाहक लिये चलते हो। सब-की-सब हँसेंगी।’

‘बरखास्त करेगा तो पूछूँगा नहीं किस इलजाम पर बरखास्त करते हो, गाली देते किसने सुना? कोई अन्धेर है, जिसे चाहे, बरखास्त कर दे और कहीं सुनवाई न हुई तो पंचों से फरियाद करूँगा। चौधरी के दरवाजे पर सर पटक दूँगा।’

‘ऐसी ही एकता होती तो दारोग़ा इतना जरीमाना करने पाता?’

‘जितना बड़ा रोग होता है, उतनी दवा होती है, पगली!’

फिर भी अलारक्खी का मन शान्त न हुआ। मुख पर विषाद का धुआँ-सा छाया हुआ था। दारोग़ा क्यों गाली सुनकर भी बिगड़ा नहीं, उसी वक्त उसे क्यों नहीं बरखास्त कर दिया, यह उसकी समझ में न आता था। वह कुछ दयालु भी मालूम होता था। उसका रहस्य वह न समझ पाती थी, और जो चीज हमारी समझ में नहीं आती उसी से हम डरते हैं। केवल जुरमाना करना होता तो उसने किताब पर उसका नाम लिखा होता। उसको निकाल बाहर करने का निश्चय कर चुका है, तभी दयालु हो गया था। उसने सुना था कि जिन्हें फाँसी दी जाती है, उन्हें अन्त समय खूब

पूरी मिठाई खिलायी जाती है, जिससे मिलना चाहें उससे मिलने दिया जाता है। निश्चय बरखास्त करेगा।

म्युनिसिपैलिटी का दफ्तर आ गया। हजारों मेहतरानियाँ जमा थीं, रंग-बिरंग के कपड़े पहने, बनाव-सिंगार किये। पान-सिगरेट वाले भी आ गये थे, खोमचे वाले भी। पठानों का एक दल भी अपने असामियों से रुपये वसूली करने आ पहुँचा था। वह दोनों भी जाकर खड़े हो गये। वेतन बँटने लगा। पहले मेहतरानियों का नम्बर था। जिसका नाम पुकारा जाता वह लपककर जाती और अपने रुपये लेकर दारोग़ाजी को मुफ्त की दुआएँ देती हुई चली जाती। चम्पा के बाद अलारक्खी का नाम बराबर पुकारा जाता था। आज अलारक्खी का नाम उड़ गया था। चम्पा के बाद जहूरन का नाम पुकारा गया जो अलारक्खी के नीचे था।

अलारक्खी ने हताश आँखों से हुसेनी को देखा। मेहतरानियाँ उसे देख-देखकर कानाफूसी करने लगीं। उसके जी में आया, घर चली जाए। यह उपहास नहीं सहा जाता। जमीन फट जाती कि उसमें समा जाती।

एक के बाद दूसरा नाम आता गया और अलारक्खी सामने के वृक्षों की ओर देखती रही। उसे अब इसकी परवा न थी कि

किसका नाम आता है, कौन जाता है, कौन उसकी ओर ताकता है, कौन उस पर हँसता है।

सहसा अपना नाम सुनकर वह चौंक पड़ी! धीरे से उठी और नवेली बहू की भाँति पग उठाती हुई चली। खजांची ने पूरे 6) उसके हाथ पर रख दिये।

उसे आश्चर्य हुआ। खजांची ने भूल तो नहीं की? इन तीन बरसों में पूरा वेतन तो कभी मिला नहीं। और अबकी तो आधा भी मिले तो बहुत है। वह एक सेकंड वहाँ खड़ी रही कि शायद खजांची उससे रुपया वापस माँगे। जब खजांची ने पूछा, अब क्यों खड़ी है। जाती क्यों नहीं? तब वह धीरे से बोली — यह तो पूरे रुपये हैं।

खजांची ने चकित होकर उसकी ओर देखा!

'तो और क्या चाहती है, कम मिलें?'

'कुछ जरीमाना नहीं है?'

'नहीं, अबकी कुछ जरीमाना नहीं है।'

अलारक्खी चली, पर उसका मन प्रसन्न न था। वह पछता रही थी कि दारोग़ाजी को गाली क्यों दी।

तथ्य

वह भेद अमृत के मन में हमेशा ज्यों-का-त्यों बना रहा और कभी न खुला। न तो अमृत की नजरों से न उसकी बातों से और न रंग-ढंग से ही पूर्णिमा को कभी इस बात का नाम को भी भ्रम हुआ कि साधारण पड़ोसियों का जिस तरह बरताव होना चाहिए और लड़कपन की दोस्ती का जिस तरह निबाह होना चाहिए उसके सिवा अमृत का मेरे साथ और किसी प्रकार का सम्बन्ध है या हो सकता है। बेशक जब वह घड़ा लेकर कुँए पर पानी खींचने के लिए जाती थी तब अमृत भी ईश्वर जाने कहाँ से वहाँ आ पहुँचता था और जबरदस्ती उसके हाथ से घड़ा छीनकर उसके लिए पानी खींच देता था और जब वह अपनी गाय को सानी देने लगती थी तब वह उसके हाथ से भूसे की टोकरी ले लेता था और गाय की नांद में सानी डाल देता था। जब वह बनिये की दूकान पर कोई चीज लेने जाती थी तब अमृत भी अक्सर उसे रास्ते में मिल जाया करता था और उसका काम कर देता था।

पूर्णिमा के घर में कोई दूसरा लड़का या आदमी नहीं था। उनके पिता का कई साल पहले परलोकवास हो चुका था और उसकी माँ परदे में रहती थी। जब अमृत पढ़ने जाने लगता तब पूर्णिमा के घर जाकर पूछ लिया करता कि बाजार से कुछ मँगवाना तो नहीं है। उसके घर में खेती-बारी होती थी, गायें-भैंसें थीं और बाग-बगीचे भी थे। वह अपने घरवालों की नजर बचाकर फसल की चीजें सौगात के तौर पर पूर्णिमा के घर दे आता था लेकिन पूर्णिमा उसकी इन खातिरदारियों को उसकी भलमनसाहत और खाने-पीने से सन्तुष्ट होने के सिवा और क्या समझे और क्यों समझे? एक गाँव में रहने वाले चाहे किसी प्रकार का रक्त-सम्बन्ध या कोई रिश्तेदारी न रखते हों, लेकिन फिर भी गाँव के रिश्ते से भाई-बहन होते ही तो हैं। इसलिए इन खातिरदारियों में कोई खास बात न थी।

एक दिन पूर्णिमा ने उससे कहा भी, कि तुम दिन-भर मदरसे में रहते हो, मेरा जी घबराता है। अमृत ने सीधी तरह से कह दिया — क्या करूँ, इम्तहान पास आ गया है।

"मैं सोचा करती हूँ कि जब मैं चली जाऊँगी, तब तुम्हें कैसे देखूँगी और तुम क्यों मेरे घर आओगे?"

अमृत ने घबराकर पूछा — कहाँ चली जाओगी?

पूर्णिमा लजा गई। फिर बोली — जहाँ तुम्हारी बहनें चली गयीं, जहाँ सब लड़कियाँ चली जाती हैं।

अमृत ने निराश भाव से कहा — अच्छा, यह बात?

इतना कहकर अमृत चुप हो गया। अभी तक यह बात कभी उसके ध्यान में ही नहीं आयी थी कि पूर्णिमा कहीं चली भी जाएगी। इतनी दूर तक सोचने की उसे फुरसत ही नहीं थी। प्रसन्नता तो वर्तमान में ही मस्त रहती है। यदि भविष्य की बातें सोचने लगे तो फिर प्रसन्नता ही क्यों रहे?

और अमृत जितनी जल्दी इस दुर्घटना के होने की कल्पना कर सकता था, उससे पहले ही यह दुर्घटना एक खबर के रूप में सामने आ ही गयी। पूर्णिमा के ब्याह की एक जगह बातचीत हो गयी। अच्छा दौलतमन्द खानदान था और साथ ही इज्जतदार भी। पूर्णिमा की माँ ने उसे बहुत खुशी से मंजूर भी कर लिया। गरीबी की उस हालत में उसकी नजरों में जो चीज सबसे ज्यादा प्यारी थी,वह दौलत थी। और यहाँ पूर्णिमा के लिए सब तरह से सुखी रहकर जिन्दगी बिताने के सामान मौजूद थे। मानो उसे मुँहमाँगी मुराद मिल गयी हो। इससे पहले वह मारे फिक्र के घुली जाती थी। लड़की के ब्याह का ध्यान आते ही उसका कलेजा धड़कने लगता था। अब मानो परमात्मा ने अपने एक ही

कटाक्ष से उसकी सारी चिन्ताओं और विकलताओं का अन्त कर दिया।

अमृत ने सुना तो उसकी हालत पागलों की-सी हो गई। वह बेतहाशा पूर्णिमा के घर की तरफ दौड़ा, मगर फिर लौट पड़ा। होश ने उसके पैर रोक दिये। वह सोचने लगा कि वहाँ जाने से क्या फायदा? आखिर उसमें उसका कसूर ही क्या है? और किसी का क्या कसूर है? अपने घर आया और मुँह ढँककर लेट रहा। पूर्णिमा चली जाएगी। फिर वह कैसे रहेगा? वह विचलित-सा होने लगा। वह जिन्दा ही क्यों रहे? जिन्दगी में रखा ही क्या है? लेकिन यह भाव भी दूर हो गया। और उसका स्थान लिया उस निःस्तब्धता ने, जो तूफान के बाद आती है। वह उदासीन हो गया। जब पूर्णिमा जाती ही है, तो वह उसके साथ कोई सम्बन्ध क्यों रखे? क्यों मिले-जुले? और अब पूर्णिमा को उसकी परवाह ही क्यों होने लगी? और परवाह थी ही कब? वह आप ही उसके पीछे कुत्तों की तरह दुम हिलाता रहता था। पूर्णिमा ने तो कभी बात भी नहीं पूछी। और अब उसे क्यों न अभिमान हो? एक लखपति की स्त्री बनने जा रही है! शौक से बने। अमृत भी जिन्दा रहेगा। मरेगा नहीं। यही इस जमाने की वफादारी की रस्म है।

लेकिन यह सारी तेजी दिल के अन्दर-ही-अन्दर थी और निरर्थक थी। भला उसमें इतनी हिम्मत कहाँ थी कि जाकर पूर्णिमा की

माँ से कह दे कि पूर्णिमा मेरी है और मेरी ही रहेगी! गजब हो जाएगा। गाँव में आफत मच जाएगी। ऐसी बातें न गाँव की कहानियों में कभी सुनी हैं और न देहातों में कभी देखी हैं? और पूर्णिमा का यह हाल था कि दिन भर उसका रास्ता देखा करती थी। वह सोचती थी कि क्यों मेरे दरवाजे से होकर निकल जाता है और क्यों अन्दर नहीं आता? कभी रास्ते में मुलाकात हो जाती है तो मानो उसकी परछाहीं से भागता है। वह पानी की कलसी लेकर कुँए पर खड़ी रहती है और सोचती है कि वह आता होगा। लेकिन वह कहीं दिखाई ही नहीं देता।

एक दिन वह उसके घर गयी और उससे जवाब माँगा। उसने पूछा — तुम आजकल आते क्यों नहीं? बस उसी समय उसका गला भर आया। उसे याद आ गया कि अब वह इस गाँव में थोड़े ही दिनों की मेहमान है।

लेकिन अमृत चुपचाप ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। लापरवाही से उसने सिर्फ इतना कहा — इम्तहान पास आ गया है। फुरसत नहीं मिलती।

फिर कुछ ठहरकर उसने कहा — सोचता हूँ कि जब तुम जा ही रही हो ...। वह कहना ही चाहता था कि — तो फिर अब मुहब्बत क्यों बढ़ाऊँ! मगर उसे ध्यान आ गया कि बहुत मूर्खता

की बात है। अगर कोई रोगी मरने जा रहा है, तो क्या इसी विचार से उसका इलाज छोड़ दिया जाता है कि वह मरेगा ही? इसके विपरीत ज्यों-ज्यों उसकी हालत और भी ज्यादा खराब होती जाती है, त्यों-त्यों लोग और भी अधिक तत्परता से उसकी चिकित्सा करते हैं। और जब उसका अन्तिम समय आ जाता है, तब तो दौड़-धूप की हद ही नहीं रहती। उसने बात का रुख बदलकर कहा — सुना है, वह लोग भी बहुत मालदार हैं।

पूर्णिमा ने उसके ये अन्तिम शब्द सुने ही नहीं या उनका जवाब देने की जरूरत नहीं समझी। उसके कानों में तो जवाब का पहला हिस्सा गूँज रहा था?

उसने बहुत ही दुःखपूर्ण भाव से कहा — तो इसमें मेरा क्या कसूर है? मैं अपनी खुशी से तो जा नहीं रही हूँ? जाना पड़ता है, इसलिए जा रही हूँ।

यह कहते-कहते मारे लज्जा के उसका चेहरा लाल हो गया। जितना उसे कहना चाहिए था, शायद उससे ज्यादा वह कह गयी थी। मुहब्बत में भी शतरंज की-सी चालें होती हैं। अमृत ने उसकी तरफ इस तरह देखा कि मानो वह इस बात की जाँच करना चाहता है कि इन शब्दों में कुछ अर्थ भी है या नहीं। क्या अच्छा होता कि उसकी आँखों में आर-पार देखने की शक्ति होती!

इस तरह तो सभी लड़कियाँ निराश भाव से बात करती हैं। मानो ब्याह होते ही उनकी जान पर आ बनेगी। मगर सभी लड़कियाँ एक-न एक दिन अच्छे-अच्छे गहने और कपड़े पहनकर और पालकी में बैठकर चली जाती हैं। इन बातों से उसको कोई सन्तोष नहीं हुआ।

फिर डरते-डरते बोला — तब तुम्हें मेरी याद क्यों आएगी?

उसके माथे पर पसीना आ गया। उसे ऐसी बेढब शरमिन्दगी हुई कि जी चाहा कि कमरे से बाहर भाग जाऊँ। पूर्णिमा की ओर देखने की हिम्मत भी नहीं हुई। कहीं वह समझ न गयी हो।

पूर्णिमा ने सिर झुकाकर मानो अपने दिल से कहा — तुम मुझे इतना निर्मोही समझते हो! मैं बेकसूर हूँ और मुझसे रूठते हो। तुम्हें इस समय मेरे साथ सहानुभूति होनी चाहिए थी। तुम्हें उचित था कि तुम मुझे ढाढ़स देते। और तुम मुझसे तने बैठे हो। तुम्हीं बतलाओ कि मेरे लिए और कौन-सा दूसरा रास्ता है। जो मेरे अपने हैं, वही मुझे गैर के घर भेज रहे हैं। वहाँ मुझ पर क्या बीतेगी? मेरी क्या हालत होगी? क्या यही गम मेरी जान लेने के लिए काफी नहीं है जो तुम उसमें अपना गुस्सा भी मिलाये देते हो?

उसके गला फिर भर आया। आज पूर्णिमा को इस प्रकार दुःखी और उदास देखकर अमृत को विश्वास हो गये कि इसके अन्दर भी एक छिपी हुई वेदना है। उसका ओछापन और स्वार्थपरता मानो कालिख बनकर उसके चेहरे पर चमकने लगी। पूर्णिमा के इन शब्दों में पूरी सत्यता थी। और साथ ही कितनी फटकार और कितना अपमान भी भरा हुआ था। जो पराये हों उनसे शिकायत ही क्यों करे? अवश्य ही ऐसी अवस्था में उसे पूर्णिमा को ढाढ़स दिलाना चाहिए था। यह उसका कर्तव्य उसे बहुत प्रसन्नता के साथ पूरा करना चाहिए था। पूर्णिमा ने प्रेम का एक नया आदर्श उसके सामने रख दिया था और उसका विवेक इस आदर्श से बचकर नहीं निकलने देता था।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम भी एक स्वार्थ-त्याग है, परन्तु बहुत बड़ा और जिगर को जलाने वाला है।

उसने लज्जित होकर कहा — माफ करो पूर्णिमा! मेरी भूल थी; बल्कि बेवकूफी थी।

पूर्णिमा का ब्याह हो गया। अमृत जी-जान से उसके ब्याह के प्रबन्ध में लगा रहा। दूल्हा अधेड़ था। तोंदल और भोंडा था और साथ ही बहुत घमण्डी और बद-मिजाज भी था। लेकिन अमृत ऐसी तत्परता से उसकी खातिरदारी कर रहा था कि मानो वह कोई देवता हो और उसकी एक ही मुस्कराहट उसे स्वर्ग में पहुँचा देगी। पूर्णिमा के साथ बातचीत करने का अमृत को अवसर ही नहीं मिला। और न उसने अवसर निकालने का कोई प्रयास किया। वह पूर्णिमा को जब देखता था, तब वह रोती ही रहती थी। और अमृत आँखों की जबान से जहाँ तक हो सकता था, बिना कुछ कहे ही उसे जितना ढाढ़स और तसल्ली दे सकता था, वह देता था और उसके प्रति सहानुभूति दिखलाता था।

तीसरे दिन पूर्णिमा रो-धोकर ससुराल विदा हो गई। अमृत ने उसी दिन शिवजी के मन्दिर में जाकर परम निष्ठा तथा भक्ति से भरे हुए दिल से प्रार्थना की कि पूर्णिमा सदा सुखी रहे। जब नया और ताजा गम हो तो फिर इधर-उधर के और फालतू विचारों का भला कहाँ प्रवेश हो सकता है! दुःख तो आत्मा के रोगों का नाशक है। परन्तु मन में उसे एक तरह की शून्यता का अनुभव हो रहा था। मानो अब उसका जीवन उजाड़ हो गया था। अब उसका कोई उद्देश्य या कोई कामना नहीं रूह गयी थी।

3

तीन बरस बाद पूर्णिमा फिर मैके आयी। इस बीच में अमृत का भी ब्याह हो गया था। और जीवन का जुआ गरदन पर रखे हुए लकीर पीटता चला जा रहा था। परन्तु उसके मन में एक ऐसी अस्पष्ट-सी वासना दबी हुई थी, जिसे वह कोई स्पष्ट रूप नहीं दे सकता था। वह वासना थर्मामीटर के पारे की तरह उसके अन्दर सुरक्षित थी। अब पूर्णिमा ने आकर उसमें गरमी पैदा कर दी थी और वह पारा चढ़कर सरसाम की सीमा तक जा पहुँचा था। उसकी गोद में दो बरस का एक प्यारा-सा बच्चा था; अमृत उस बच्चे को दिन-रात मानो गले से बाँधे रहता था। वह सबेरे और सन्ध्या उसे गोद में लेकर टहलने जाया करता था। और उसके लिए बाजार से तरह-तरह के खिलौने और मिठाइयाँ लाया करता था। सबेरा होते ही उसके जलपान के लिए हलुआ और दूध लेकर पहुँचा जाता था। उसे नहलाता-धुलाता और उसके बाल साफ करता था। उसके फोड़े-फुन्सियाँ धोकर उन पर मलहम लगाता था। ये सभी सेवाएँ उसने अपने जिम्मे ले ली थीं। बच्चा भी उसके साथ इतना हिल-मिल गया था कि पल-भर के लिए भी उसका गला न छोड़ता था। यहाँ तक कि कभी-कभी उसी के

पास सो भी जाता था। और पूर्णिमा के आकर बुलाने पर भी उसके साथ नहीं जाता था।

अमृत पूछता — तुम किसके बेटे हो।

बच्चा कहता — टुमाले।

अमृत मारे आनन्द के मतवाला होकर उसे गले से लगा लेता था।

पूर्णिमा का रूप अब और भी निखर आया था। कली खिलकर फूल हो गयी थी। अब उसके स्वभाव में अहमन्यता और अभिमान आ गया था और साथ ही बनाव-सिंगार से प्रेम भी हो गया था।

सोने के गहनों से सजकर और रेशमी साड़ी पहनकर अब वह और भी अधिक आकर्षक हो गयी थी। और ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह अमृत से कुछ बचना चाहती है। बिना कोई विशेष आवश्यकता हुए उससे बहुत कम बोलती है। और जो कुछ बोलती भी है, वह इस ढंग से बोलती है कि मानो अमृत पर कोई एहसान कर रही है। अमृत उसके बच्चे के लिए इतनी जान देता है और उसकी फ़रमाइशों को कितने शौक से पूरा करता है, लेकिन ऊपर से देखने पर यही जान पड़ता था कि पूर्णिमा की निगाहों में उसकी इन सब सेवाओं का कोई मूल्य ही नहीं था।

मानो सेवा करना अमृत का कर्तव्य ही है। और वह कर्तव्य उसे पूरा करना चाहिए। इसके लिए वह किसी प्रकार के धन्यवाद या कृतज्ञता का अधिकारी नहीं है।

जब बच्चा रोता है, तब वह उसे धमकाती है कि खबरदार, रोना नहीं। नहीं तो मामाजी तुमसे कभी न बोलेंगे। और इतना सुनते ही बच्चा चुप हो जाता है।

जब उसे किसी चीज की जरूरत होती है तब वह अमृत को बुलाकर मानो आज्ञा के रूप में उससे कह देती है। और अमृत भी तुरन्त उस आज्ञा का पालन करता है। मानो वह उसका गुलाम हो। और वह भी शायद यही समझती है कि मैंने अमृत से गुलामी का पट्टा लिखा लिया है।

छः महीने मैके रहकर पूर्णिमा फिर ससुराल चली गयी। अमृत उसे पहुँचाने के लिए स्टेशन तक आया था। जब वह गाड़ी में बैठ गयी तब अमृत ने बच्चा उसकी गोद में दे दिया। अमृत की आँखों से आँसू की बूँद टपक पड़ी और उसने मुँह फेर लिया और आँखों पर हाथ फेरकर आँसू पोंछ डाला। पूर्णिमा को अपने आँसू कैसे दिखलाए? क्योंकि उसकी आँखें तो बिलकुल खुश्क थीं। लेकिन फिर भी उसका जी नहीं मानता था। वह सोचता था कि न-जाने अब फिर कब मुलाकात हो!

पूर्णिमा ने कुछ अभिमान के साथ कहा — बच्चा कई दिन तक तुम्हारे लिए बहुत हुड़केगा।

अमृत ने भरे हुए गले से कहा — मुझे तो उम्र-भर भी इसकी सूरत नहीं भूलेगी।

“कभी-कभी एकाध पत्र तो भेज दिया करो।”

“भेजूँगा?”

“मगर मैं जवाब नहीं दूँगी, यह समझ लो।”

“मत देना। मैं माँगता तो नहीं। ...मगर याद रखना।”

गाड़ी चल पड़ी। अमृत उसकी खिड़की की ओर देखता रहा। गाड़ी के कोई एक फरलांग निकल जाने पर उसने देखा कि पूर्णिमा ने खिड़की से सिर निकालकर उसकी तरफ देखा और फिर बच्चे को गोद में लेकर उसे जरा-सा दिखला दिया।

अमृत का हृदय उस समय उड़कर पूर्णिमा के पास पहुँच जाना चाहता था। वह इतना प्रसन्न है कि मानो उसका उद्देश्य सिद्ध हो गया हो।

4

उसी वर्ष पूर्णिमा की माँ का देहान्त हो गया। पूर्णिमा उस समय सफर में थी। वह अपनी माँ को अन्तिम समय न देख सकी। जहाँ तक हो सकता था, अमृत ने पहले तो उसकी पूरी चिकित्सा की और उसके मर जाने पर उसका क्रिया कर्म भी कर दिया। ब्राह्मणों को भी और बिरादरीवालों को भी भोजन कराया, मानो स्वयं उसी की माँ मर गयी हो। स्वयं उसके पिता का देहान्त हो ही चुका था, इसलिए वह आप ही अपने घर का मालिक हो गया था। कोई उसका हाथ पकड़ने वाला नहीं था।

पूर्णिमा अब किस नाते से मैके आती? और फिर अब उसे इतनी फुरसत कहाँ थी! अपने घर की मालेकिन थी। घर किस पर छोड़कर आती? उसे दो बच्चे और भी हुए। पहला लड़का बड़ा होकर स्कूल में पढ़ने लगा। छोटा देहात के मदरसे में पढ़ता था। अमृत साल में एक बार नाई को भेजकर उन सबकी खैर-सल्ला मँगा लिया करता था। पूर्णिमा सब प्रकार से सुखी और निश्चिन्त है, और उसकी तसल्ली के लिए इतना ही काफी था। अमृत के लड़के भी सयाने हो गये थे। वह घर-गृहस्थी की चिन्ताओं में फँसा रहता था। फिर उसकी उम्र भी चालीस से

आगे निकल गयी थी। परन्तु फिर भी पूर्णिमा की स्मृति अभी तक उसके हृदय की गम्भीरतर भाग में सुरक्षित थी।

5

अचानक एक दिन अमृत ने सुना कि पूर्णिमा के पति का देहान्त हो गया। परन्तु आश्चर्य यह था कि उसे कोई दुःख नहीं हुआ। वह यों ही अपने मन में यह निश्चय कर बैठा था कि इस खबीस बुड्ढे के साथ पूर्णिमा का जीवन कभी ईर्ष्या के योग्य नहीं हो सकता। कर्तव्य की विवशता और पतिव्रत धर्म के पालन के विचार से उसने कभी अपना हार्दिक कष्ट प्रकट नहीं किया था।

परन्तु यह असम्भव है कि सभी प्रकार के सुख और निश्चिन्तता के रहते हुए भी उस घृणित व्यक्ति के साथ उसे कोई विशेष प्रेम रहा हो। यह तो भारतवर्ष ही है, जहाँ ऐसी अप्सराएँ ऐसे अयोग्य कुपात्रों के गले बाँध दी जाती हैं। और नहीं तो यह पूर्णिमा किसी दूसरे देश में होती, तो उस देश के नवयुवक उस पर निछावर हो जाते। उसकी मरी वासनाएँ फिर जीवित हो गयीं।

अब उसमें वह पहले वाली झिझक नहीं है। और न उसकी जबान पर वह पहले वाली मौन की मोहर ही है। और फिर

पूर्णिमा भी अब स्वतन्त्र है। अवस्था के धर्म ने अवश्य ही उसे अधिक दयालु बना दिया होगा। वह शोखी, अल्हड़पन और लापरवाही तो कभी की विदा हो चुकी होगी।

उस लड़कपन की जगह अब उसमें अनुभवी स्त्रियों की वे सब बातें आ गयी होंगी, जो प्रेम का आदर करती हैं और उसकी इच्छुक होती हैं। वह पूर्णिमा के घर मातम-पुरसी करने जाएगा और उसे अपने साथ ले आएगा। और जहाँ तक हो सकेगा, उसकी सेवा करेगा। अब पूर्णिमा के केवल सामीप्य से ही उसका सन्तोष हो जाएगा। वह केवल उसके मुँह से यह सुनकर ही हार्दिक सन्तोष प्राप्त करेगा कि वह भी उसे याद करती है। अब भी उससे वही बचपन का-सा प्रेम करती है। बीस साल पहले उसने पूर्णिमा की जो सूरत देखी थी, उसका शरीर भरा हुआ था, गालों पर लाली थी, अंगों में कोमलता थी। उसकी खिंची हुई ठोढ़ी थी जो मानो अमृत के भरे हुए कुण्ड के समान थी। उसकी मुस्कराहट मादक थी। बस उसका वही रूप अब भी बहुत ही थोड़े परिवर्तन के साथ उसकी आँखों में समाया हुआ था। और वह परिवर्तन उस एकान्त की आँखों में उसे और भी अधिक प्रिय जान पड़ने लगा था। अवश्य ही समय की प्रगति का उस पर कुछ-न-कुछ प्रभाव होगा। परन्तु पूर्णिमा के शरीर में किसी ऐसे परिवर्तन की वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था जिससे

उसकी मनोहरता में कोई अन्तर आ जाए। और अब वह केवल ऊपरी रूप का उतना अधिक इच्छुक भी नहीं रह गया था, जितना उसके मधुर वचनों का भूखा था। वह उसकी प्रेमपूर्ण दृष्टि और उसके विश्वास का ही विशेष इच्छुक था। अपने पुरुषोचित आत्माभिमान के कारण कदाचित् वह यह भी समझता था कि वह पूर्णिमा की अतृप्त प्रेमभावना को अपनी नाजबरदारियों और प्रेम के आवेश से सुरक्षित रखेगा और अपनी पिछली भूल-चूक का मार्जन कर डालेगा।

संयोग से पूर्णिमा स्वयं ही एक दिन अपने छोटे बच्चे के साथ अपने घर आ गयी। उसकी एक विधवा मौसी थी जो उसकी माँ के साथ ही अपने वैधव्य के दिन काट रही थी। वह अभी तक जीती थी। इस प्रकार वह सूना घर फिर से बस गया।

जब अमृत ने यह समाचार सुना तब वह बड़े शौक से मानो मदमत्त होकर उसके घर की तरफ दौड़ा। वह अपने लडकपन और जवानी की मधुर स्मृतियों को अपने मन की झोली में अच्छी तरह सँभालता हुआ ले जा रहा था। उस समय उसकी अवस्था ठीक उस छोटे बच्चे के समान थी जो अपने हमजोली को देखकर उसके साथ खेलने के लिए टूटे-फूटे खिलौने लेकर दौड़ पड़ता है।

लेकिन उसकी सूरत देखते ही उसका सारा शौक और सारी उमंग मानो बुझ-सी गयी। वह निःस्तब्ध होकर खड़ा रह गया। पूर्णिमा उसके सामने आकर सिर झुकाकर खड़ी हो गई। सफेद साड़ी के घूँघट से आधा मुँह छिपा हुआ था, लेकिन कमर झुक गयी थी। बाँहें सूत-सी पतली, पैर के पिछले भाग की रगें उभरी हुईं, आँसू बह रहे थे और चेहरे का रंग बिलकुल पीला पड़ गया था मानो कफ़न में लपेटी हुई लाश खड़ी हो।

पूर्णिमा की मौसी ने आकर कहा — बैठो बेटा! देखते हो इसकी हालत सूखकर काँटा हो गयी है। एक क्षण को भी आँसू नहीं थमते। सिर्फ एक समय सूखी रोटियाँ खाती है और किसी चीज से मतलब नहीं। नमक छोड़ दिया है, घी-दूध सब त्याग दिया है। बस रूखी रोटियों से काम। इस पर आये दिन व्रत रखती है। कभी एकादशी, कभी इतवार और कभी मंगल। एक चटाई बिछाकर जमीन पर सोती है। घड़ी रात रहे उठकर पूजा-पाठ करने लगती है। लड़के समझाते हैं, मगर किसी की नहीं सुनती। कहती है कि जब भगवान् ने सुहाग ही उठा लिया, तो फिर सब कुछ मिथ्या है। जी बहलाने के लिए यहाँ आयी थी। मगर यहाँ भी रोने के सिवा दूसरा काम नहीं। कितना समझाती हूँ कि बेटी, भाग्य में जो कुछ लिखा था, वह हुआ। अब सब्र करो। भगवान ने तुम्हें बाल-बच्चे दिये हैं! उनको पालो। घर में ईश्वर का दिया

सब कुछ है। चार को खिलाकर खा सकती हो। मन पवित्र होना चाहिए। शरीर को दुःख देने से क्या लाभ? लेकिन सुनती ही नहीं। अब तुम समझाओ तो शायद माने।

अमृत ऊपर से देखने में तो निःस्तब्ध; परन्तु अन्दर हृदय-विदारक वेदना छिपाए हुए खड़ा था। मानो जिस नींव पर उसने जिन्दगी की इमारत खड़ी की थी, वह हिल गयी हो। आज उसे मालूम हुआ कि जन्म भर उसने जिस वस्तु को तथ्य समझ रखा था, वह वास्तव में मृग-तृष्णा थी, अथवा केवल स्वप्न था। पूर्णिमा के इस विकट आत्म-संयम और तपस्वियों के-से आचरण के सामने उसकी समस्त वासनाओं और प्रेम की उमंगों का नाश हो गया था और उसके जीवन का यह नया तथ्य आकर उपस्थित हो गया था कि यदि मन में मिट्टी को देवता बनाने की शक्ति है तो मनुष्य को देवता बनाने की शक्ति है। पूर्णिमा उसी घृणित मनुष्य को देवता बनाकर उसकी पूजा कर रही थी।

उसने शान्त भाव से कहा — तपस्विनी को हम जैसे स्वार्थी लोग कैसे समझा सकते हैं, मौसी? हम लोगों का कर्तव्य इसके चरणों पर सिर झुकाना है, इसे समझाना नहीं।

पूर्णिमा ने मुँह पर का घूँघट हटाते हुए कहा — तुम्हारा बच्चा तुम्हें अभी तक पूछा करता है।

ताँगेवाले की बड़

लेखक को इलाहाबाद मे एक बार ताँगे मे लम्बा सफर करने का संयोग हुआ। ताँगे वाले मियाँ जम्मन बड़े बातूनी थे। उनकी उम्र पचास के करीब थी, उनकी बड़ से रास्ता इस आसानी से तस हुआ कि कुछ मालूम ही न हुआ। मै पाठकों के मनोरंजन के लिए उनकी जीवन और बड़ पेश करता हूँ।

1

जुम्मन — कहिए बाबूजी, ताँगा – वह तो इस तरफ देखते ही नहीं, शायद इक्का लेंगे। मुबारक। कम खर्च बालानशीन, मगर कमर रह जायगी बाबूजी, सडक खराब है, इक्के मे तकलीफ होगी। अखबार मे पढ़ा होगा कल चार इक्के इसी सड़क पर उलट गये। चुंगी (म्युनिस्पिलटी) सलामत रहे, इक्के बिल्कुल बन्द हो जायेंगे। मोटर, जारी तो सड़क खराब करे और नुकसान हो हम गरीब इक्केवालों का। कुछ दिनों मे हवाई जहाज में सवारियाँ चलेंगी, तब

हम इक्केवालों कों सड़क मिल जायेगी। देखेंगे उस वक्त इन लारियों को कौन पूछता है, अजायबघरों मे देखने को मिले तो मिलें। अभी तो उनके दिमाग ही नही मिलते। अरे साहब, रास्ता निकलना दुश्वार कर दिया है, गोया कुल सड़क उन्ही के वास्ते है और हमारे वास्ते पटरी और धूल! अभी ऐठतें है, हवाई जहाजों को आने दीजिए। क्यो हुजूर, इन मोटर वाले की आधी आमदनी लेकर सरकार सड़क की मरम्मत मे क्यों नही खर्च करती? या पेट्रोल पर चौगुना टैक्स लगा दे। यह अपने को टैक्सी कहते है, इसके माने तो टैक्स देने वाले है। ऐ हुजूर, मेरी बुढिया कहती है इक्का छोड़ ताँगा लिया, मगर अब ताँगे मे भी कुछ नही रहा, मोटर लो। मैने जवाब दिया कि अपने हाथ-पैर की सवारी रखोगी या दूसरे के। बस हुजूर वह चुप हे गयी। और सुनिए, कल की बात है कल्लन ने मोटर चलाया, मियाँ एक दरख्त से टकरा गये, वही शहीद हो गये। एक बेवा और दस बच्चे यतीम छोड़े। हुजूर, मै गरीब आदमी हूँ, अपने बच्चों को पाल लेता हूँ, और क्या चाहिए। आज कुछ कम चालीस साल से इक्केवानी करता हूँ, थोड़े दिन और रहे वह भी इसी तरह चाबुक लिये कट जायेंगे। फिर हुजूर देखें, तो इक्का, ताँगा और घोड़ा गिरे पर भी कुछ-न-कुछ दे ही जायेगा। बरअक्स इसके मोटर बन्द हो जाय तो हुजूर उसका लोहा दो रुपये मे भी कोई न लेगा। हुजूर घोड़ा घोड़ा ही है, सवारियाँ

पैदल जा रही है, या हाथी की लाश खींच रही है। हुजूर घोड़े पर हर तरह का काबू और हर सूरत मे नफा। मोटर मे कोई आराम थोड़े ही है। ताँगे मे सवारी भी सो रही है, हम भी सो रहे है और घोड़ा भी सो रहा है मगर मंजिल तय हो रही है। मोटर के शोर से तो कान के पर्दे फटते है और हांकने वाले को तो जैस चक्की पीसना पड़ता है।

2

ऐ हुजूर, औरतों भी इक्के-ताँगे को बड़ी बेदर्दी से इस्तेमाल करती है। कल की बात है, सात-आठ औरतें आई और पूछने लगी कि तिरेबेनी का क्यो लोगे। हुजूर निर्ख तो तय है, कोई व्हाइटवे की दुकान तो है नहीं कि साल मे चार बार सेल हो। निर्ख से हमारी मजदूरी चुका दो और दुआएँ लो। यों तो हुजूर मालिक है, चाहें एक बर कुछ न दें मगर सरकार, औरतें एक रूपए का काम हे तो आठ ही आना देती हैं। हुजूर हम तो साहब लोगों का काम करते है। शरीफ हमेशा शरीफ रहते है ओर हुजूर औरत हर जगह औरत ही रहेगी। एक तो पर्दे के बहाने से हम लोग हटा दिए जाते है। इक्के-ताँगे मे दर्जनों सवारियाँ और बच्चे बैठ जाते

है। एक बार इक्के की कमानी टूटी तो उससे एक न दो पूरी तेरह औरतें निकल आई। मै गरीब आदमी मर गया। हुजूर सबको हैरत होती है कि किस तरह ऊपर नीचे बैठ लेती है कि कैंची मारकर बैठती है। ताँगे मे भी जान नही बचती। दोनों घुटनों पर एक-एक बच्चा को भी ले लेती है। इस तरह हुजूर ताँगे के अन्दर सर्कस का-सा नक्शा हो जाता है। इस पर भी पूरी-पूरी मजदूरी यह देना जानती ही नहीं। पहले तो पर्दे को जोर था। मर्दों से बातचीत हुई और मजदूरी मिल गई। जब से नुमाइश हुई, पर्दा उखड गया और औरतें बाहर आने-जानें लगी। हम गरीबों का सरासर नुकसान होता है। हुजूर हमारा भी अल्लाह मालिक है। साल मे मै भी बराबर हो रहता हूँ। सौ सुनार की तो एक लोहार की भी हो जाती है। पिछले महीने दो घंटे सवारी के बाद आठ आने पैसे देकर बी अन्दर भागीं। मेरी निगाह जो ताँगे पर पड़ी तो क्या देखता हूँ कि एक सोने का झुमका गिरकर रह गया। मै चिल्लाया माई यह क्या, तो उन्होने कहा अब एक हब्बा और न मिलेगा और दरवाजा बन्द। मै दो-चार मिनट तक तो तकता रह गया मगर फिर वापस चला आया। मेरी मजदूरी माई के पास रही गई और उनका झुमका मेरे पास।

3

कल की बात है, चार स्वराजियों न मेरा ताँगा किया, कटरे से स्टेशन चले, हुकुम मिला कि तेज चलों। रास्ते-भर गाँधीजी की जय! गाँधीजी की जय! पुकारते गए। कोई साहब बाहर से आ रहे थे और बड़ी भीड़ और जुलूस थे। कठपुतली की तरह रास्ते-,भर उछलते-कूदते गए। स्टेशन पहुँचकर मुश्किल से चार आने दिए। मैंने पूरा किराया माँगा, मगर वहाँ गांधी जी की जय! गाँधी जी की जय के सिवाय क्या था! मै चिल्लाया मेरा पेट! मेरा पेट! मेरा ताँगा थिएटर का स्टेज था, आप नाचे-कूदे और अब मजदूरी नी देते! मगर मै चिल्लाता ही रहा, वह भीड़ मे गायब हो गए। मै तो समझता हू कि लोग पागल हो गए है, स्वराज माँगते है, इन्ही हरकतों पर स्वराज मिलेगा! ऐ हुजूर अजब हवा चल रही है। सुधर तो करते नही, स्वराज माँगते है। अपने करम तो पहले दुरुस्त होले। मेरे लड़के को बरगलाया, उसने सब कपड़े इकट्ठे किए और लगा जिद करने कि आग लाग दूँगा। पहले तो मैंने समझाया कि मै गरीब आदमी हूँ, कहा से और कपड़े लाऊँगा, मगर जब वह न माना तो मैंने गिराकर उसको खूब मारा। फिर क्या था होश ठिकाने हो गए। हुजूर जब वक्त आएगा तो हमीं इक्के-ताँगेवाला स्वराज हाँककर लाएँगे। मोटर पर स्वराज हर्गिज

न आएगा। पहले हमको पूरी मजदूरी दो फिर स्वराज माँगो। हुजूर औरतें तो औरतें हम उनसे न जबान खोल सकते है न कुछ कह सकते है, वह जो कुछ दे देती है, लेना पड़ता है। मगर कोई-कोई नकली शरीफ लोग औरतों के भी कान काटते है। सवार होने से पहले हमारे नम्बर देखते है, अगर कोई चील रास्ते मे उनकी लापरवाही से गिर जाय तो वह भी हमारे सिर ठोकते है और मजा यह कि किराया कम दे तो हम उफ न करें। एक बार का जिक्र सुनिए, एक नकली 'वेल-वेल' करके लाट साहब के दफ्तर गए, मुझको बाहर छोड़ा और कहाँ कि एक मिनट मे आते है, वह दिन है कि आज तक इन्तजार ही कर रहा हूँ। अगर यह हजरत कही दिखाई दिये तो एक बार तो दिल खोलकर बदला ले लूँगा फिर चाहे जो कुछ हो।

4

अब न पहले के-से मेहरबान रहे न पहले की-सी हालत। खुदा जाने शराफत कहाँ गायब हो गई। मोटर के साथ हवा हुई जाती है। ऐ हुजूर आप ही जैसे साहब लोग हम इक्केवालों की कद्र करते थे, हमसे भी इज्जत पेश आते थे। अब वह वक्त है कि

हम लोग छोटे आदमी है, हर बात पर गाली मिलती है, गुस्सा सहना पड़ता है। कल दो बाबू लोग जा रहे थे, मैंने पूछा, ताँगा– तो एक ने कहा, नही हमको जल्दी है। शायद यह मजाक होगा। आगे चलकर एक साहब पूछते है कि टैक्सी कहाँ मिलेगी? अब कहिए यह छोटा शहर है, हर जगह जल्द से जल्द हम लोग पहुँचा देते है। इस पर भी हमीं बतलाएँ कि टैक्सी कहाँ मिलेगी। अन्धेरे है अन्धेरे! खयाल तो कीजिए यह नन्हीं सी जान घोड़ों की, हम और हमारे बाल-बच्चे और चौदह आने घंटा। हुजूर, चौदह आने मे तो घोड़ी को एक कमची भी लगाने को जी नही चाहता। हुजूर हमें तो कोई चौबीस घंटे के वास्ते मोल ले ले।

कोई-कोई साहब हमीं से नियारियापन करते है। चालीस साल से हुजूर, यही काम कर रहा हूँ। सवारी को देखा और भाँप गए कि क्या चाहते है। पैसा मिला और हमारी घोड़ी के पर निकल आए। एक साहब ने बड़े तूम-तड़ाक के बाद घंटों के हिसाब से ताँगा तय किया और वह भी सरकारी रेट से कम। आप देखे कि चुंगी ही ने रेट मुकर्रर करते वक्त जान निकाल ली है लेकिन कुछ लोग बगैर तिलों के तेल निकालना चाते है। खैर मैंने भी बेकारी मे कम रेट ही मान लिया। फिर जनाब थोड़ी दूर चलकर हमारा ताँगा भी जनाजे की चाल चलने लगा। वह कह रहे है कि

भाई जरा तेज चलो, मै कहता हूँ कि रोज का दिन है, घोड़ी का दम न टूटे। तब वह फरमाते है, हमें क्या तुम्हें ही घंटा देर मे होगा। सरकार मुझे तो इसमें खुशी है आप ही सवार रहे और गुलाम आपको फिराता रहे।

5

लाट साहब के दफ्तर में एक बड़े बाबू थे। कटरे मे रहते थे। खुदा झूठ न बुलवाए उनकी कमर तीन गज से कम न होगी। उनको देखकर इक्के-ताँगेवाले आगे हट जाते थे। कितने ही इक्के वह तोड़ चुक थे। इतने भारी होने पर भी इस सफाई से कूदते थे कि खुद कभी चोट न खाई। यह गुलाम ही कि हिम्मत थी कि उनको ले जाता था। खुदा उनको खुश रक्खे, मजदूरी भी अच्छी देते थे। एक बार मै ईंदू का इक्का लिए जा रहा था, बाबू मिल गए और कहा कि दफ्तर तक पहुँचा दोगे? आज देर हो गई है, तुम्हारे घोड़े मे सिर्फ ढाँचा ही रह गया है। मैने जवाब दिया, यह मेरा घोड़ा नही है, हुजूर तो डबल मजदूरी देते है, हुकुम दे तो दो इक्के एक साथ बांध लू और फिर चलूँ।

6

और सुनिए, एक सेठजी ने इक्का भाड़ा किया। सब्जी मंडी से सब्जी वगैरह ली और भगाते हुए स्टेशन आए। इनाम की लालच मे मै घोड़ी पीटता लाया। खुदा जानता है, उस रोज जानवर पर बड़ी मार पड़ी। मेरे हाथ दर्द करने लगे। रेल का वक्त सचमुच बहुत ही तंग था। स्टेशन पर पहुँचे तो मेरे लिए वही चवन्नी। मै बोला यह क्या? सेठ जी कहते है, तुम्हारा भाड़ा तख्ती दिखाओ। मैंने कहा देर करे आप और मेरा घोड़ा मुफ्त पीटा जाय। सेठजी जवाब देते है कि भई तुम भी तो जल्दी फरागत पा गए और चोट तुम्हारे तो लगी नही। मैंने कहा कि महाराज इस जानवर पर तो दया कीजिए। तब सेठजी ढीले पड़े और कहाँ, हाँ इस गरीब का जरूर लिहाज होना चाहिए और अपनी टोकरी से चार पत्ते गोभी के निकाले और घोड़ी को खिलाकर चल दिए। यह भी शायद मजाक होगा मगर मै गरीब मुफ्त मरा। उस वक्त से घोड़ी का हाजमा बदल गया।

अजब वक्त आ गा है, पब्लिक अब दूसरों का तो लिहाज ही नही करती। रंग-ढंग तौर-तरीका सभी कुछ बदल गए है। जब हम अपनी मजदूरी माँगते है तो जवाब मिलता है कि तुम्हारी

अमलदारी है, खुली सड़क पर लूट लो! अपने जानवरों को सेठजी हलुआ-जलेबी खिलाएगें, मगर हमारी गर्दन मारेंगे। कोई दिन थे, कि हमको किराये के अलावा मालपूर भी मिलते थे।

अब भी इस गिरे जमाने मे भी कभी-कभी शरीफ रईस नजर आ ही जाते है। एक बार का जिक्र सुनिए, मेरे ताँगे मे सवारियाँ बैठी। कश्मीरी होटल से निकलकर कुछ थोड़ी-सी चढ़ी थी। कीटगंज पहुँचकर सामने वाले ने चौरास्ता आने से पहले ही चौदह आने दिये और उतर गया। फिर पिछली एक सवारी ने उतरकर चौदह आने दिए। अब तीसरी उतरती नही। मैंने कहा कि हजरत चौरहा आ गया। जवाब नदारद। मैंने कहा कि बाबू इन्हे भी उतार लो। बाबू ने देखा-भाला मगर वह नशे मे चूर है उतार कौन! बाबू बोले अब क्या करें। मैंने कहा — क्या करोगे। मामला तो बिल्कुल साफ है। थाने जाइए और अगर दस मिनट मे कोई वारिस ने पैदा हो तो माल आपका।

बस हुजूर, इस पेश मे भी नित नये तमाशे देखने मे आते है। इन आँखों सब कुछ देखा है हुजूर। पर्दे पड़ते थे, जाजिमें बाँधी जाती थी, घटाटोप लगाये जाते थे, तब जनानी सवारियाँ बैठती थी। अब हुजूर अजब हालत है, पर्दा गया हवा के बहाने से। इक्का कुछ सुखो थोड़ा ही छोड़ा है। जिसको देखो यही कहता था कि इक्का नही ताँगा लाओं, आराम को न देखा। अब जान को नही देखते

और मोटर-मोटर, टैक्सी-टैक्सी पुकारते है। हुजूर हमें क्या हम तो दो दिन के मेहमान है, खुदा जो दिखायेगा, देख लेंगे।

[‘जमाना’ सितम्बर, 1926]

तिरसूल

अंधेरी रात है, मूसलाधार पानी बरस रहा है। खिड़कियों पर पानी के थप्पड़ लग रहे हैं। कमरे की रोशनी खिड़की से बाहर जाती है तो पानी की बड़ी-बड़ी बूँदें तीरों की तरह नोकदार, लम्बी, मोटी, गिरती हुई नजर आ जाती हैं। इस वक्त अगर घर में आग भी लग जाय तो शायद मैं बाहर निकलने की हिम्मत न करूँ। लेकिन एक दिन जब ऐसी ही अंधेरी भयानक रात के वक्त मैं मैदान में बन्दूक लिये पहरा दे रहा था। उसे आज तीस साल गुजर गये। उन दिनों मैं फौज में नौकर था। आह! वह फौजी जिन्दगी कितने मजे से गुजरती थी। मेरी जिन्दगी की सबसे मीठी, सबसे सुहानी यादगारें उसी जमाने से जुड़ी हुई हैं। आज मुझे इस अंधेरी कोठरी में अखबारों के लिए लेख लिखते देखकर कौन समझेगा कि इस नीमजान, झुकी हुई कमरवाले खस्ताहाल आदमी में भी कभी हौसला और हिम्मत और जोश का दरिया लहरे मारता था। क्या-क्या दोस्त थे जिनके चेहरों पर हमेशा मुस्कराहट नाचती रहती थी। शेरदिल रामसिंह और मीठे गलेवाले देवीदास की याद क्या कभी दिल से मिट सकती है?

वह अदन, वह बसरा, वह मिस्त्र; बस आज मेरे लिए सपने हैं। यथार्थ है तो यह तंग कमरा और अखबार का दफ्तर।

हाँ, ऐसी ही अंधेरी डरावनी सुनसान रात थी। मैं बारक के सामने बरसाती पहने हुए खड़ा मैग्जीन का पहरा दे रहा था। कंधे पर भरा हुआ राइफल था। बारक के से दो-चार सिपाहियों के गाने की आवाजें आ रही थीं, रूह-रहकर जब बिजली चमक जाती थी तो सामने के ऊँचे पहाड़ और दरख्त और नीचे का हरा-भरा मैदान इस तरह नजर आ जाते थे जैसे किसी बच्चे की बड़ी-बड़ी काली भोली पुतलियों में खुशी की झलक नजर आ जाती है।

धीरे-धीरे बारिश ने तुफानी सूरत अख्तियार की। अंधकार और भी अंधेरा, बादल की गरज और भी डरावनी और बिजली की चमक और भी तेज हो गयी। मालूम होता था प्रकृति अपनी सारी शक्ति से जमीन को तबाह कर देगी।

यकायक मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे सामने से किसी चीज की परछाई-सी निकल गयी। पहले तो मुझे खयाल हुआ कि कोई जंगली जानवर होगा लेकिन बिजली की एक चमक ने यह खयाल दूर कर दिया। वह कोई आदमी था, जो बदन को चुराये पानी में भीगता हुआ एक तरफ जा रहा था। मुझे हैरत हुई कि इस मूसलाधार वर्षा में कौन आदमी बारक से निकल सकता है और

क्यों? मुझे अब उसके आदमी होने में कोई सन्देह न था। मैंने बन्दूक सम्हाल ली और फौजी कायदे के मुताबिक पुकारा — हाल्ट, हू कम्स देअर? फिर भी कोई जवाब नहीं। कायदे के मुताबिक तीसरी बार ललकारने पर अगर जवाब न मिले तो मुझे बन्दूक दाग देनी चाहिए थी। इसलिए मैंने बन्दूक हाथ में लेकर खूब जोर से कड़ककर कहा — हाल्ट, हू कम्स देअर? जवाब तो अबकी भी न मिला मगर वह परछाई मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। अब मुझे मालूम हुआ कि वह मर्द नहीं औरत है। इसके पहले कि मैं कोई सवाल करूँ उसने कहा — सन्तरी, खुदा के लिए चुप रहो। मैं हूँ लुईसा।

मेरी हैरत की कोई हद न रही। अब मैंने उस पहचान लिया। वह हमारे कमांडिंग अफसर की बेटी लुईसा ही थी। मगर इस वक्त इस मूसलाधार मेह और इस घटाटोप अंधेरे में वह कहाँ जा रही है? बैरक में एक हजार जवान मौजूद थे जो उसका हुक्म पूरा कर सकते थे। फिर वह नाजुकबदन औरत इस वक्त क्यों निकली और कहाँ के लिए निकली? मैंने आदेश के स्वर में पूछा — तुम इस वक्त कहाँ जा रही हो?

लुईसा ने विनती के स्वर में कहा — माफ करो सन्तरी, यह मैं नहीं बता सकती और तुमसे प्रार्थना करती हूँ यह बात किसी से न कहना। मैं हमेशा तुम्हारी एहसानमन्द रहूँगी।

यह कहते-कहते उसकी आवाज इस तरह काँपने लगी जैसे किसी पानी से भरे हुए बर्तन की आवाज। मैंने उसी सिपाहियाना अन्दाज में कहा — यह कैसे हो सकता है। मैं फौज का एक अदना सिपाही हूँ। मुझे इतना अख्तियार नहीं। मैं कायदे के मुताबिक आपको अपने सार्जेन्ट के सामने ले जाने के लिए मजबूर हूँ।

'लेकिन क्या तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारे कमांडिंग अफसर की लड़की हूँ?

मैंने जरा हँसकर जवाब दिया — अगर मैं इस वक्त कमांडिंग अफसर साहब को भी ऐसी हालत में देखूँ तो उनके साथ भी मुझे यही सख्ती करनी पड़ती। कायदा सबके लिए एक-सा है और एक सिपाही को किसी हालत में उसे तोड़ने का अख्तियार नही है।

यह निर्दय उत्तर पाकर उसने करुणा स्वर में पूछा — तो फिर क्या तदबीर है?

मुझे उस पर रहम तो आ रहा था लेकिन कायदों की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। मुझे नतीजे का जरा भी डर न था। कोर्टमार्शल या तनज्जुली या और कोई सजा मेरे ध्यान में न थी। मेरा अन्तःकरण भी साफ था। लेकिन कायदे को कैसे तोड़ूँ। इसी हैस-बैस में खड़ा था कि लुईसा ने एक कदम बढ़कर

मेरा हाथ पकड़ लिया और निहायत पुरदर्द बेचैनी के लहाजे में बोली — तो फिर मैं क्या करूँ?

ऐसा महसूस हो रहा था कि जैसे उसका दिल पिघला जा रहा हो। मैं महसूस कर रहा था कि उसका हाथ काँप रहा था। एक बार जी में आया जाने दूँ। प्रेमी के संदेश या अपने वचन की रक्षा के सिवा और कौन-सी शक्ति इस हालत में उसे घर से निकलने पर मजबूर करती? फिर मैं क्यों किसी की मुहब्बत की रूह का काटा बनूँ। लेकिन कायदे ने फिर जबान पकड़ ली। मैंने अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश न करके मुँह फेरकर कहा — और कोई तदबीर नहीं है।

मेरा जवाब सुनकर उसकी पकड़ ढीली पड़ गई कि जैसे शरीर में जान न हो पर उसने अपना हाथ हटाया नहीं, मेरे हाथ को पकड़े हुए गिड़गिड़ा कर बोली — संतरी, मुझ पर रहम करो। खुदा के लिए मुझ पर रहम करों मेरी इज्जत खाक में मत मिलाओ। मैं बड़ी बदनसीब हूँ।

मेरे हाथ पर आँसुओं के कई गरम कतरे टपक पड़े। मूसलाधार बारिश का मुझ पर जर्रा-भर भी असर न हुआ था लेकिन इन चन्द बूँदों ने मुझे सर से पाँव तक हिला दिया।

मैं बड़े पसोपेश में पड़ गया। एक तरफ कायदे और कर्ज की आहनी दीवार थी, दूसरी तरफ एक सुकुमार युवती की विनती-भरा आग्रह। मैं जानता था अगर उसे सार्जेन्ट के सिपुर्द कर दूँगा तो सवेरा होते ही सारे बटालिन में खबर फैल जाएगी, कोर्टमार्शल होगा, कमांडिंग अफसर की लड़की पर भी फौज का लौह कानून कोई रियायत न कर सकेगा। उसके बेरहम हाथ उस पर भी बेदर्दी से उठेंगे। खासकर लड़ाई के जमाने में। और अगर इसे छोड़ दूँ तो इतनी ही बेदर्दी से कानून मेरे साथ पेश आयेगा। जिन्दगी खाक में मिल जायेगी। कौन जाने कल जिन्दा भी रहूँ या नहीं। कम से कम तनज्जुली तो होगी ही। भेद छिपा भी रहे तो क्या मेरी अन्तरात्मा मुझे सदा न धिक्कारेगी? क्या मैं फिर किसी के सामने इसी दिलेर ढंग से ताक सकूँगा? क्या मेरे दिल में हमेशा एक चोर-सा न समाया रहेगा?

लुईसा बोल उठी — सन्तरी!

विनती का एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला। वह अब निराशा की उस सीमा पर पहुँच चुकी थी जब आदमी की वाक्शक्ति अकेले शब्दों तक सीमित हो जाती है। मैंने सहानुभूति के स्वर मे कहा — बड़ी मुश्किल मामला है।

'सन्तरी, मेरी इज्जत बचा लो। मेरे सामर्थ्य में जो कुछ है वह तुम्हारे लिए करने को तैयार हूँ।'

मैंने स्वाभिमानपूर्वक कहा — मिस लुईसा, मुझे लालच न दीजिए, मैं लालची नहीं हूँ। मैं सिपाही हूँ इसलिए मजबूर हूँ कि फौजी कानून को तोड़ना एक सिपाही के लिए दुनिया में सबसे बड़ा जुर्म है।

'क्या एक लड़की के सम्मान की रक्षा करना नैतिक कानून नहीं है? क्या फौजी कानून नैतिक कानून से भी बड़ा है?' – लुईसा ने जरा जोश में भरकर कहा।

इस सवाल का मेरे पास क्या जवाब था। मुझसे कोई जवाब न बन पड़ा। फौजी कानून अस्थाई, परिवर्तनशील होता है, परिवेश के अधीन होता है। नैतिक कानून अटल और सनातन होता है, परिवेश से ऊपर। मैंने कायल होकर कहा — जाओ मिस लुईसा, तुम अब आजाद हो, तुमने मुझे लाजवाब कर दिया। मैं फौजी कानून तोड़कर इस नैतिक कर्त्तव्य को पूरा करूँगा। मगर तुमसे केवल वही प्रार्थना है कि आगे फिर कभी किसी सिपाही को नैतिक कर्त्तव्य का उपदेश न देना क्योंकि फौजी कानून फौजी कानून है। फौज किसी नैतिक, आत्मिक या ईश्वरीय कानून की परवाह नहीं करता।

लुईसा ने फिर मेरा हाथ पकड़ लिया और एहसान में डूबे हुए लहजे में बोली — सन्तरी, भगवान् तुम्हें इसका फल दे।

मगर फौरन उसे संदेह हुआ कि शायद यह सिपाही आइन्दा किसी मौके पर यह भेद न खोल दे इसलिए अपने और भी इतमीनान के खयाल से उसने कहा — मेरी आबरू अब तुम्हारे हाथ है।

मैंने विश्वास दिलाने वाले ढंग से कहा — मेरी ओर से आप बिल्कुल इतमीनान रखिए।

'कभी किसी से नहीं कहोगे न?'

'कभी नहीं।'

'कभी नहीं?'

'हाँ, जीते जी कभी नहीं।'

'अब मुझे इतमीनान हो गया, सन्तरी। लुईसा तुम्हारी इस नेकी और एहसान को मौत की गोद में जाते वक्त भी न भूलेगी। तुम जहाँ रहोगे तुम्हारी यह बहन तुम्हारे लिए भगवान से प्रार्थना करती रहेगी। जिस वक्त तुम्हें कभी जरूरत हो, मेरी याद करना। लुईसा दुनिया के उस पर्दा पर होगी तब भी तुम्हारी खिदमत के लिए हाजिर होगी। वह आज से तुम्हें अपना भाई समझती है। सिपाही की जिन्दगी में ऐसे मौके आते हैं, जब उसे

एक खिदमत करने वाली बहन की जरूरत होती है। भगवान न करे तुम्हारी जिन्दगी में ऐसा मौका आयें लेकिन अगर आयें तो लुईसा अपना फर्ज अदा करने में कभी पीछे न रहेगी। क्या मैं अपने नेकमिजाज भाई का नाम पूछ सकती हूँ?’

बिजली एक बार चमक उठी। मैंने देखा लुईसा की आँखों में आँसू भरे हुए हैं। बोला — लुईसा इन हौसला बढ़ाने वाली बातों के लिए मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ। लेकिन मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह नैतिकता और हमदर्दी के नाते कर रहा हूँ। किसी इनाम की मुझे इच्छा नहीं है। मेरा नाम पूछकर क्या करेगी?

लुईसा ने शिकायत के स्वर में कहा — क्या बहन के लिए भाई का नाम पूछना भी फौजी कानून के खिलाफ है?

इन शब्द में कुछ ऐसी सच्चाई, कुछ ऐस प्रेम, कुछ ऐसा अपनापन भरा हुआ था, कि मेरी आँखों मे बरबस आँसू भर आये।

बोला — नहीं लुईसा, मैं तो सिर्फ यही चाहता हूँ कि इस भाई जैसे सलूक में स्वार्थ की छाया भी न रहने पाये। मेरा नाम श्रीनाथ सिंह है।

लुईसा ने कृतज्ञता व्यक्त करने के तौर पर मेरा हाथ धीरे से दबाया और थैंक्स कहकर चली गई। अंधेरे के कारण बिल्कुल नजर न आया कि वह कहाँ गई और न पूछना ही उचित था। मैं

वहीं खड़ा-खड़ा इस अचानक मुलाकात के पहलुओं को सोचता रहा। कमांडिंग अफसर की बेटी क्या एक मामूली सिपाही को और वह भी जो काल आदमी हो, कुत्ते से बदत्तर नहीं समझती? मगर वही औरत आज मेरे साथ भाई का रिश्ता कायम करके फूली नहीं समाती थी।

2

इसके बाद कई साल बीत गये। दुनिया में कितनी ही क्रान्तियाँ हो गई। रुस की जारशाही मिट गई, जर्मन को कैसर दुनिया के स्टेज से हमेशा के लिए बिदा हो गया, प्रातंत्र की एक शताब्दी में जितना उन्नती हुई थी, उतनी इन थोड़े-से सालों में हो गई। मेरे जीवन में भी कितने ही परिर्वतन हुए। एक टांग युद्ध के देवता की भेंट हो गई, मामूली से लेफ्टिनेंट हो गया।

एक दिन फिर ऐसी चमक और गरज की रात थी। मैं क्वार्टर मैं बैठ हुआ कप्तान नाक्स और लेफ्टिनेंट डाक्टर चन्द्रसिंह से इसी घटना की चर्चा कर रहा था जो दस-बारह साल पहले हुई थी, सिर्फ लुईसा का नाम छिपा रखा था। कप्तान नाक्स को इस चर्चा में असाधारण आनन्द आ रहा था।

वह बार-बार एक-एक बात पूछता और घटना क्रम मिलाने के लिए दुबारा पूछता था। जब मैंने आखिर में कहा कि उस दिन भी ऐसा ही अंधेरी रात थी, ऐसी ही मूसलाधार बारिश हो रही थी और यही वक्त था तो नाक्स अपनी जगह स उठकर खड़ा हो गया और बहुत उद्विग्न होकर बोला — क्या उस औरत का नाम लुईसा तो नहीं था?

मैंने आश्चर्य से कहा — आपको उसका नाम कैसे मालूम हुआ? मैंने तो नहीं बतलाया', पर नाक्स की आँखों में आँसू भर आये। सिसकियाँ लेकर बोले — यह सब आपको अभी मालूम हो जाएगा। पहले यह बतलाइए कि आपका नाम श्रीनाथ सिंह हैं या चौधरी।

मैंने कहा — मेरा नाम श्रीनाथ सिंह है। अब लोग मुझे सिर्फ चौधरी कहते है। लेकिन उस वक्त चौधरी का नाम से मुझे कोई न जानता था। लोग श्रीनाथ कहते थे।

कप्तान नाक्स अपनी कुर्सी खींचकर मेरे पास आ गये और बोले — तब तो आप मेरे पुराने दोस्त निकाले। मुझे अब तब नाम के बदल जाने से धोखा हो रहा था, वर्ना आपका नाम तो मुझे खूब याद है। हाँ, ऐसा याद है कि शायद मरते दम तक भी न भूलूँ क्योंकि यह उसकी आखिर वसीयत है। यह कहते-कहते नाक्स

खामोश हो गये और आँखें बन्द करके सर मेज पर रख लिया। मेरा आश्चर्य हर क्षण बढ़ता ज रहा था और लेफ्टिनेंट डा. चन्द्रसिंह भी सवाल-भरी नजरों से एक बार मेरी तरफ और दूसरी बार कप्तान नाक्स के चेहरे की तरफ देख रहे थे।

दो मिनट तक खामोश रहने के बाद कप्तान नाक्स ने सर उठाया और एक लम्बी सांस लेकर बोले — क्यों लेफ्टिनेंट चौधरी, तुम्हें याद है एक बार एक अंग्रेज सिपाही ने तुम्हें बुरी गाली दी थी?

मैंने कहा — हाँ, खूब याद है। वह कारपोरल था मन उसका शिकायत कर दी थी और उसका कोर्ट-मर्शाल हुआ था। व कारपोरल के पद से गिर कर मामूली सिपाही बना दिया गया था। हाँ, उसका नाम भी याद आ गया क्रूप या क्रूप...

कप्तान नाक्स ने बात काटते हुए कहा — किरपिन। उसकी और मेरी सूरत में आपको कुछ मेल दिखाई पड़ता है? मैं ही वह किरपिन हूँ। मेरा नाम सी, नाक्स है, किरपिन नाक्स। जिस तरह उन दिनों आपको लोग श्रीनाथ कहते थे उसी तरह मुझे भी किरपिन कहा करते थे।

अब जो मैंने गौर से नाक्स की तरफ देखा तो पहचाना गया। बेशक वह किरपिन ही था। मैं आश्चर्य से उसकी ओर ताकने

लगा। लुईसा से उसका क्या सम्बन्ध हो सकता है, यह मेरी समझ में उस वक्त भी न आया।

कप्तान नाक्स बोले — आज मुझे सारी कहानी कहनी पड़ेगी। लेफ्टिनेण्ट चौधरी, तुम्हारी वजह से जब मै कारपोरल से मामूली सिपाही बनाया गया और जिल्लद भी कुछ कम न हुई तो मेरे दिल में ईर्ष्या और प्रतिशोध की लपटें-सी उठने लगीं। मैं हमेशा इसी फिक्र में रहता था कि किस तरह तुम्हें जलील करूँ किस तरह अपनी जिल्लत का बदला लूँ। मैं तुम्हारी एक-एक हरकत को एक-एक बात को ऐब ढूँढ़ने वाली नजरों से देखा करता था। इन दस-बारह सालों में तुम्हारी सूरत बहुत कुछ बदल गई और मेरी निगाहों में भी कुछ फर्क आ गया है जिसके कारण मैं तुम्हें पहचान न सका लेकिन उस वक्त तुम्हारी सूरत हमेशा मेरी आँखों के सामने रहती थी। उस वक्त मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी तमन्ना यही थी कि किसी तरह तुम्हें भी नीचे गिराऊँ। अगर मुझे मौका मिलता तो शायद मैं तुम्हारी जान लेने से भी बाज न आता।

कप्तान नाक्स फिर खामोश हो गये। मैं और डाक्टर चन्द्रसिंह टकटकी लगाये कप्तान नाक्स की तरफ देख रहे थे।

नाक्स ने फिर अपनी दास्तान शुरु की — उस दिन, रात को जब लुईसा तुमसे बातें कर रही थी, मैं अपने कमरे में बैठा हुआ तुम्हें दूर से देख रहा था। मुझे उस वक्त मालूम था कि वह लुईसा है। मैं सिर्फ यह देख रहा था कि तुम पहरा देते वक्त किसी औरत का हाथ पकड़े उससे बातें कर रहे हो। उस वक्त मुझे जितनी पाजीपन से भरी हुई खुशी हुई व बयान नहीं कर सकता। मैंने सोचा, अब इसे जलील करूँगा। बहुत दिनों के बाद बच्चा फँसे हैं। अब किसी तरह न छोड़ूँगा। यह फैसला करके मैं कमरे से निकाला और पानी में भीगता हुआ तुम्हारी तरफ चला। लेकिन जब तक मैं तुम्हारे पास पहुँचूँ लुईसा चली गई थी। मजबूर होकर मैं अपने कमरे लौट आया। लेकिन फिर भी निराश न था, मैं जानता था कि तुम झूठ न बोलोगे और जब मैं कमांडिंग अफसर से तुम्हारी शिकायत करूँगा तो तुम अपना कसूर मान लोगो। मेरे दिल की आग बुझाने के लिए इतना इतमीनान काफी था। मेरी आरजू पूरी होने में अब कोई संदेह न था।

मैंने मुस्कराकर कहा — लेकिन आपने मेरी शिकायत तो नहीं की? क्या बाद को रहम आ गया?

नाक्स ने जवाब दिया — जी, रहम किस मरदूद को आता था। शिकायत न करने का दूसरा ही कारण था, सबेरा होते ही मैंने सबसे पहला काम यही किया कि सीधे कमांडिंग अफसर के पास

पहुँचा। तुम्हें याद होगा मैं उनके बड़े बेटे राजर्स को घुड़सवारी सिखाया करता था इसलिए वहाँ जाने में किसी किस्म की झिझक या रुकावट न हुई। जब मैं पहुँचा तो राजर्स ने कहा — आज इतनी जल्दी क्यों किरपिन? अभी तो वक्त नहीं हुआ? आज बहुत खुश नजर आ रहे हो?

मैंने कुर्सी पर बैठते हुए कहा — हाँ-हाँ, मालूम है। मगर तुमने उसे गाली दी थी। मैंने किसी कदर झेंपते हुए कहा — मैंने गाली नहीं दी थी सिर्फ ब्लडी कहा था। सिपाहियों में इस तरह की बदजबानी एक आम बात है मगर एक राजपूत ने मेरी शिकायत कर दी थी। आज मैंने उसे एक संगीन जुर्म में पकड़ लिया हैं। खुदा ने चाहा तो कल उसका भी कोर्ट-मार्शल होगा। मैंने आज रात को उसे एक औरत से बातें करते देखा है। बिलकुल उस वक्त जब वह ड्यूटी पर था। वह इस बात से इन्कार नहीं कर सकता। इतना कमीना नहीं है।

लुईसा के चेहरे का रंग का कुछ हो गया। अजीब पागलपन से मेरी तरफ देखकर बोली — तुमने और क्या देखा?

मैंने कहा — जितना मैंने देखा है उतना उस राजपूत को जलील करने के लिए काफी है। जरूर उसकी किसी से आशानाई है और वह औरत हिन्दोस्तानी नहीं, कोई योरोपियन लेडी है। मैं

कसम खा सकता हूँ, दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े बिलकुल उसी तरह बातें कर रहे थे, जैसे प्रेमी-प्रेमिका किया करते हैं।

लुईसा के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। चौधरी मैं कितना कमीना हूँ, इसका अन्दाजा तुम खुद कर सकते हो। मैं चाहता हूँ, तुम मुझे कमीना कहो। मुझे धिक्कारो। मैं दरिन्दे-वहशी से भी ज्यादा बेरहम हूँ, काले साँप से भी ज्यादा जहरीला हूँ। वह खड़ी दीवार की तरफ ताक रही थी कि इसी बीच राजर्स का कोई दोस्त आ गया। वह उसके साथ चला गया। लुईसा मेरे साथ अकेली रह गई तो उसने मेरी ओर प्रार्थना-भरी आँखों से देखकर कहा — किरपिन, तुम उस राजपूत सिपाही की शिकायत मत करना।

मैंने ताज्जुब से पूछा — क्यों?

लुईसा ने सर झुकाकर कह — इसलिए कि जिस औरत को तुमने उसके साथ बातें करते देखा वह मैं ही था।

मैंने और भी चकित होकर कहा — तो क्या तुम उसे...

लुईसा ने बात काटकर कहा — चुप, वह मेरा भाई है। बात यह है कि मैं कल रात को एक जगह जा रही थी — तुमसे छिपाऊँगी नहीं, किरपिन जिसको मैं दिलोजान से ज्यादा चाहती हूँ, उससे रात को मिलने का वादा था, वह मेरा इन्तजार में पहाड़ के

दामन में खड़ा था। अगर मैं न जाती तो उसकी कितनी दिलशिकनी होती मैं ज्योंही मैगजीन के पास पहुँची उस राजपूत सिपाही ने मुझे टोक दिया। वह मुझे फौजी कायदे के मुताबिक सार्जेन्ट के पास ले जाना चाहता था लेकिन मेरे बहुत अनुनय-विनय करने पर मेरी लाज रखने के लिए फौजी कानून तोड़ने को तैयार हो गया। सोचो, उसने आनन सिर कितनी बड़ी जिम्मेदारी ली। मैंने उसे अपना भाई कहकर पुकार है और उसने भी मुझे बहन कहा है। सोचो अगर तुम उसकी शिकायत करोगे तो उसकी क्या हालत होगी वह नाम न बतलायेगा, इसका मुझे पूरा विश्वास है। अगर उसके गले पर तलवार भी रख दी जाएगी, तो भी वह मेरा नाम न बतायेगा, मैं नहीं चाहती कि एक नेक काम करने का उसे यह इनाम मिले। तुम उसकी शिकायत हरगिज मत करना। तुमसे यही मेरी प्रार्थना है।

मैंने निर्दय कठोरता से कहा — उसने मेरी शिकायत करके मुझे जलील किया है। ऐसा अच्छा मौका पाकर मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता। जब तुम को यकीन है कि वह तुम्हारा नाम नहीं बतायेगा तो फिर उसे जहन्नुम में जाने दो।

लुईसा ने मेरी तरफ घृणापूर्वक देखकर कह — चुप रहो किरपिन, ऐसी बातें मुझसे न करो। मैं इसे कभी गवारा न करूँगी कि मेरी इज्जत-आबरु के लिए उसे जिल्लत और बदनामी का निशान

बनना पड़े। अगर तुम मेरी न मानोगे तो मैं सच कहती हूँ, मैं खुदकुशी कर लूँगी।

उस वक्त तो मैं सिर्फ प्रतिशोध का प्यासा था। अब मेरे ऊपर वासना का भूत सवार हुआ। मैं बहुत दिनों से दिल में लुईसा की पूजा किया करता था लेकिन अपनी बात कहने का साहस न कर सकता था। अब उसको बस में लाने का मुझे मौका मिला। मैंने सोचा अगर यह उस राजपूत सिपाही के लिए जान देने को तैयार है तो निश्चय ही मेरी बात पर नाराज नहीं हो सकती। मैंने उसी निर्दय स्वार्थपरता के साथ कहा — मुझे सख्त अफसोस है मगर अपने शिकार को छोड़ नहीं सकता।

लुईसा ने मेरी तरफ बेकस निगाहों से देखकर कहा — यह तुम्हारा आखिरी फैसला है?

मैंने निर्दय निर्लज्जता से कहा — नही लुईसा, यह आखिरी फैसला नहीं है। तुम चाहो तो उसे तोड़ सकती हो, यह बिलकुल तुम्हारे इमकान में है। मैं तुमसे कितना मुहब्बत करता हूँ, यह आज शायद तुम्हें मालूम न हो। मगर इन तीन सालों में तुम एक पल के लिए भी मेरे दिल से दूर नहीं हुई। अगर तुम मेरी तरफ से अपने दिल को नर्म कर लो, मेरी मोहब्बत को कद्र करो तो मै सब कुछ करने को तैयार हूँ। मैं आज एक मामूली सिपाही हूँ,

और मेरे मुँह से मुहब्बत का निमन्त्रण पाकर शायद तुम दिल में हँसती होगी, लेकिन एक दिन मैं भी कप्तान हो जाऊँगा और तब शायद हमारे बीच इतनी बड़ी खाई न रहेगी।

लुईसा ने रोकर कहा — किरपिन, तुम बड़े बेरहम हो, मैं तुमको इतना जालिम न समझती थी। खुदा ने क्यों तुम्हें इतना संगदिल बनाया, क्या तुम्हें ए बेकस औरत पर जरा भी रहम नहीं आता

मैं उसकी बेचारगी पर दिल में खुश होकर बोला — जो खुद संगदिल हो उसे दूसरों की संगदिली की शिकायत करने का क्या हक है?

लुईसा ने गम्भीर स्वर में कहा — मैं बेरहम नहीं हूँ किरपिन, खुदा के लिए इन्साफ करो। मेरा दिल दूसरे का हो चुका, मैं उसके बगैर जिन्दा नहीं रह सकती और शायद वह भी मेरे बगैर जिन्दा न रहे। मैं अपनी बातों रखने के लिए, अपने ऊपर नेकी करने वाले एक आदमी की आबरु बचाने के लिए

अपने ऊपर जबर्दस्ती करके अगर तुमसे शादी कर भी लूँ तो नतीजा क्या होगा? जोर-जबर्दस्ती से मुहब्बत नहीं पैदा होती। मैं कभी तुमसे मुहब्बत न करूँगी...

दोस्तों, आनी बेशर्मी और बेहायई का पर्दाफाश करते हुए मेरे दिल को दिल को बड़ी सख्त तकलीफ हो रही है। मुझे उस वक्त

वासना ने इतना अन्धा बना दिया था कि मेरे कानों पर जूँ तक न रेंगी। बोला — ऐसा मत ख्याल करो लुईसा। मुहब्बत अपना अपना असर जरूर पैदा करती है। तुम इस वक्त मुझे न चाहो लेकिन बहुत दिन न गुजरने पाएँगे कि मेरी मुहब्बत रंग लाएगी, तुम मुझे स्वार्थी और कमीना समझ रही हो, समझो, प्रेम स्वार्थी होता है ही है, शायद वह कमीना भी होता है। लेकिन मुझे विश्वास है कि यह नफरत और बेरुखी बहुत दिनों तक न रहेगी। मैं अपने जानी दुश्मन को छोड़ने के लिए ज्यादा से ज्यादा कीमत लूँगा, जो मिल सके।

लुईसा पंद्रह मिनट तक भीषण मानसिक यातना की हालत में खड़ी रही। जब उसकी याद आती है तो जी चाहता है गले में छुरी मार लूँ। आखिर उसने आँसू-भरी निगाहों से मेरी तरफ देखकर कहा — अच्छी बात है किरपिन, अगर तुम्हारी यह इच्छा है तो यही सही। तुम वक्त जाओं, मुझे खूब जी भरकर रो लेने दो।

यह कहते-कहते कप्तान नाक्स फूट-फूटकर रोने लगे। मैंने कहा — अगर आपको यह दर्द-भरी दास्तान कहने में दुःख हो रहा है तो जाने दीजिए।

कप्तान नाक्स ने गला साफ करके कहा — नहीं भाई, वह किस्सा के पास जाता, और उसके दिल से अपने प्रतिद्वन्द्वी के खयाल को मिटाने की कोशिश करता। वह मुझे देखते ही कमरे से बाहर निकल आती, खुश हो-होकर बातें करती। यहाँ तक कि मैं समझने लगा कि उसे मुझसे प्यार हो गया है। इसी बीच योरोपियन लड़ाई छिड़ गई। हम और तुम दोनों लड़ाई पर चले गए तुम फ्रांस गये, मैं कमांडिंग अफसर के साथ मिस्र गया। लुईसा अपने चचा के साथ यहीं रह गई। राजर्स भी उसके के साथ रह गया। तीन साल तक मैं लाम पर रहा। लुईसा के पास से बराबर खत आते रहे। मैं तरक़्क़ी पाकर लेफ्टिनेण्ट हो गया और कमांडिंग अफसर कुछ दिन और जिन्दा रहते तो जरूर कप्तान हो जाता। मगर मेरी बदनसीबी से वह एक लड़ाई में मारे गये। आप लोगों को उस लड़ाई का हाल मालूम ही है। उनके मरने के एक महीने बाद मैं छुट्टी लेकर घर लौटा। लुईसा अब भी अपने चचा के साथ ही थी। मगर अफसोस, अब न वह हुस्न थी न वह जिन्दादिली, घुलकर काँटा हो गई थी, उस वक्त मुझे उसकी हालत देखकर बहुत रंज हुआ। मुझे अब मालूम हो गया कि उसकी मुहब्बत कितनी सच्ची और कितनी गहरी थी। मुझ से शादी का वादा करके भी वह अपनी भावनाओं पर विजय न पा सकी थी।

शायद इसी गम में कुढ़-कुढ़कर उसकी यह हालत हो गई थी। एक दिन मैंने उससे कहा — लुईसा, मुझे ऐसा खयाल होता है कि शायद तुम अपने पुराने प्रेमी को भूल नहीं सकीं। अगर मेरा यह खयाल ठीक है तो मैं उस वादे से तुमको मुक्त करता हूँ, तुम शौक से उसके साथ शादी कर लो। मेरे लिए यही इतमीनान काफी होगा कि मैं दिन रहते घर आ गया। मेरी तरफ से अगर कोई मलाल हो तो उसे निकाल डालो।

लुईसा की बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू की बूँदें टपकने लगीं। बोली — वह अब इस दुनिया में नहीं है किरपिन, आज छः महीने हुए वह फ्रांस में मारे गये। मैं ही उसकी मौत का कारण हुई — यही गम है। फौज से उनका कोई संबंध न था। अगर वह मेरी ओर से निराश न हो जाते तो कभी फौज में भर्ती होते। मरने ही के लिए वह फौज में गए। मगर तुम अब आ गए, मैं बहुत जल्द अच्छी हो जाऊँगी। अब मुझमें तुम्हारी बीवी बनने की काबलियत ज्यादा हो गई। तुम्हारे पहलू में अब कोई काँटा नहीं रहा और न मेरे दिल में कोई गम।

इन शब्दों में व्यंग भरा हुआ था, जिसका आशय यह था कि मैंने लुईसा के प्रेमी की ही जान ली। इसकी सच्चाई से कौन इन्कार कर सकता है। इसके प्रायश्चित की अगर कोई सूरत थी ताक यहीं कि लुईसा की इतनी खातिरदारी, इतनी दिलजोई करूँ, उस

पर इस तरह न्यौछावर हो जाऊँ कि उसके दिल से यह दुख निकल जाय।

इसके एक महीने बाद शादी का दिन तय हो गया। हमारी शादी भी हो गई। हम दोनों घर आए। दोस्तों की दावत हुई। शराब के दौर चले। मैं अपनी ख़ुशनसीबी पर फूला नहीं समाता था और मैं ही क्यों मेरे इष्टमित्र सब मेरी ख़ुशक़िस्मत पर मुझे बधाई दे रहे थे।

मगर क्या मालूम था तकदीर मुझे यों सब्ज बाग दिखा रही है, क्या मालूम था कि यह वह रास्ता है, जिसके पीछे जालिम शिकारी का जाल बिछा हुआ है। मैं तो दोस्तों की खातिर-तवाजों में लगा हुआ था, उधर लुईसा अन्दर कमरे में लेटी हुई इस दुनिया से रुखसत होने का सामान कर रही थी। मैं एक दोस्त की बधाई का धन्यवाद दे रहा था कि राजर्स ने आकर कहा — किरपिन, चलो लुईसा तुम्हें बुला रही है। जल्द। उसकी न जाने क्या हालत हो रही है। मेरे पैरों तले से जमीन खिसक गई। दौड़ता हुआ लुईसा के कमरे में आया।

कप्तान नाक्स की आँखों से फिर आँसू बहने लगे, आवाज फिर भारी हो गई। जरा दम लेकर उन्होंने कहा — अन्दर जाकर देखा तो लुईसा कोच पर लेटी हुई थी। उसका शरीर ऐंठ रहा

था। चेहरे पर भी उसी एँठन के लक्षण दिखाई दे रहे थे। मुझे देखकर बोली — किरपिन, मेरे पास आ जाओ। मैंने शादी करके अपना वचन पूरा कर दिया। इससे ज्यादा मैं तुम्हें कुछ और न दे सकती थी क्योंकि मैं अपनी मुहब्बत पहले ही दूसरी की भेंट कर चुकी हूँ, मुझे माफ करना मैंने जहर खा लिया है और बस कुछ घड़ियों की मेहमान हूँ।

मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। दिल पर एक नश्तर-सा लगा। घुटने टेककर उसके पास बैठ गया। रोता हुआ बोला — लुईसा, यह तुमने क्या किया हाय क्या तुम मुझे दाग देकर जल्दी चली जाओगी, क्या अब कोई तदबीर नहीं है?

फौरन दौड़कर एक डाक्टर के मकान पर गया। मगर आह जब तक उसे साथ लेकर आऊँ मेरी वफा की देवी, सच्ची लुईसा हमेशा के लिए मुझसे जुदा हो गई थी। सिर्फ उसके सिरहाने एक छोटा-सा पुर्जा पड़ा हुआ था जिस पर उसने लिखा था, अगर तुम्हें मेरा भाई श्रीनाथ नजर आये तो उससे कह देना, लुईसा मरते वक्त भी उसका एहसान नहीं भूली।

यह कहकर नाक्स ने अपनी वास्केट की जेब से एक मखमली डिबिया निकाली और उसमें से कागज का एक पुर्जा निकालकर दिखाते हुए कहा — चौधरी, यही मेरे उस अस्थायी सौभाग्य की

स्मृति है जिसे आज तक मैंने जान से ज्यादा संभाल कर रखा हैं आज तुमसे परिचय हो गए होगे, मगर शुक्र है कि तुम जीते-जागते मौजूद हो। यह अमानत तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ। अब अगर तुम्हारे जी में आए तो मुझे गोली मार दो, क्योंकि उस स्वर्गिक जीव का हत्यारा मैं हूँ।

यह कहते-कहते कप्तान नाक्स फैलकर कुर्सी पर लेट गए। हम दोनों ही की आँखों से आँसू जारी थे मगर जल्दी ही हमें अपने तात्कालिक कर्तव्य की याद आ गई। नाक्स को सान्त्वना देने के लिए मैं कुर्सी से उठकर उनके पास गया, मगर उनका हाथ पकड़ते ही मेरे शरीर में कंपकंपी-सी आ गई। हाथ ठंडा था। ऐसा ठंडा जैसा आखिर घड़ियों में होता है। मैंने घबराकर उनके चेहरे की तरफ देखा और डाक्टर चन्द्र को पुकारा। डाक्टर साहब ने आकर ने आकर फौरन उनकी छाती पर हाथ रखा और दर्द-भरे लहजे में बोले — दिल की धड़कड़ा उठी, कड़... कड़.. कड़..

[‘सिंह’ से]

त्रिया-चरित्र

सेठ लगनदास जी के जीवन की बगिया फलहीन थी। कोई ऐसा मानवीय, आध्यात्मिक या चिकित्सात्मक प्रयत्न न था जो उन्होंने न किया हो। यों शादी में एक पत्नीव्रत के कायल थे मगर जरूरत और आग्रह से विवश होकर एक-दो नहीं पाँच शादियाँ कीं, यहाँ तक कि उम्र के चालीस साल गुजर गए और अँधेरे घर में उजाला न हुआ। बेचारे बहुत रंजीदा रहते। यह धन-संपत्ति, यह ठाट-बाट, यह वैभव और यह ऐश्वर्य क्या होंगे। मेरे बाद इनका क्या होगा, कौन इनको भोगेगा। यह ख्याल बहुत अफसोसनाक था। आखिर यह सलाह हुई कि किसी लड़के को गोद लेना चाहिए। मगर यह मसला पारिवारिक झगड़ों के कारण के सालों तक स्थगित रहा। जब सेठ जी ने देखा कि बीवियों में अब तक बदस्तूर कशमकश हो रही है तो उन्होंने नैतिक साहस से काम लिया और होनहार अनाथ लड़के को गोद ले लिया। उसका नाम रखा गया मगनदास। उसकी उम्र पाँच-छः साल से ज्यादा न थी। बला का जहीन और तमीजदार। मगर औरतें सब कुछ कर सकती हैं, दूसरे के बच्चे को अपना नहीं समझ सकतीं। यहाँ तो

पाँच औरतों का साझा था। अगर एक उसे प्यार करती तो बाकी चार औरतों का फ़र्ज था कि उससे नफरत करें। हाँ, सेठ जी उसके साथ बिलकुल अपने लड़के की सी मुहब्बत करते थे। पढ़ाने को मास्टर रक्खें, सवारी के लिए घोड़े। रईसी ख्याल के आदमी थे। राग-रंग का सामान भी मुहैया था। गाना सीखने का लड़के ने शौक किया तो उसका भी इंतजाम हो गया। गरज जब मगनदास जवानी पर पहुँचा तो रईसाना दिलचस्पियों में उसे कमाल हासिल था। उसका गाना सुनकर उस्ताद लोग कानों पर हाथ रखते। शहसवार ऐसा कि दौड़ते हुए घोड़े पर सवार हो जाता। डील-डौल, शक्ल सूरत में उसका-सा अलबेला जवान दिल्ली में कम होगा। शादी का मसला पेश हुआ। नागपुर के करोड़पति सेठ मक्खनलाल बहुत लहराये हुए थे। उनकी लड़की से शादी हो गई। धूमधाम का जिक्र किया जाए तो किस्सा वियोग की रात से भी लम्बा हो जाए। मक्खनलाल का उसी शादी में दीवाला निकल गया। इस वक्त मगनदास से ज्यादा ईर्ष्या के योग्य आदमी और कौन होगा? उसकी जिन्दगी की बहार उमंगों पर भी और मुरादों के फूल अपनी शबनमी ताजगी में खिल-खिलकर हुस्न और ताजगी का समाँ दिखा रहे थे। मगर तकदीर की देवी कुछ और ही सामान कर रही थी। वह सैर-सपाटे के इरादे से जापान गया हुआ था कि दिल्ली से खबर आई

कि ईश्वर ने तुम्हें एक भाई दिया है। मुझे इतनी खुशी है कि ज्यादा अर्से तक जिन्दा न रूह सकूँ। तुम बहुत जल्द लौट आओं।

मगनदास के हाथ से तार का कागज छूट गया और सर में ऐसा चक्कर आया कि जैसे किसी ऊँचाई से गिर पड़ा है।

2

मगनदास का किताबी ज्ञान बहुत कम था। मगर स्वभाव की सज्जनता से वह खाली हाथ न था। हाथों की उदारता ने, जो समृद्धि का वरदान है, हृदय को भी उदार बना दिया था। उसे घटनाओं की इस कायापलट से दुख तो जरूर हुआ, आखिर इन्सान ही था, मगर उसने धीरज से काम लिया और एक आशा और भय की मिली-जुली हालत में देश को रवाना हुआ।

रात का वक्त था। जब अपने दरवाजे पर पहुँचा तो नाच-गाने की महफिल सजी देखी। उसके कदम आगे न बढ़े लौट पड़ा और एक दुकान के चबूतरे पर बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इतना तो उसे यकीन था कि सेठ जी उसके साथ भी भलमनसी और मुहब्बत से पेश आयेंगे बल्कि शायद अब और

भी कृपा करने लगें। सेठानियाँ भी अब उसके साथ गैरों का-सा वर्ताव न करेंगी। मुमकिन है मझली बहू जो इस बच्चे की खुशनसीब माँ थीं, उससे दूर-दूर रहें मगर बाकी चारों सेठानियों की तरफ से सेवा-सत्कार में कोई शक नहीं था। उनकी डाह से वह फायदा उठा सकता था। ताहम उसके स्वाभिमान ने गवारा न किया कि जिस घर में मालिक की हैसियत से रहता था उसी घर में अब एक आश्रित की हैसियत से जिन्दगी बसर करे। उसने फैसला कर लिया कि सब यहाँ रहना न मुनासिब है, न मसलहत। मगर जाऊँ कहाँ? न कोई ऐसा फन सीखा, न कोई ऐसा इल्म हासिल किया जिससे रोजी कमाने की सूरत पैदा होती। रईसाना दिलचस्पियाँ उसी वक्त तक कद्र की निगाह से देखी जाती हैं जब तक कि वे रईसों के आभूषण रहें। जीविका बन कर वे सम्मान के पद से गिर जाती है। अपनी रोजी हासिल करना तो उसके लिए कोई ऐसा मुश्किल काम न था। किसी सेठ-साहूकार के यहाँ मुनीम बन सकता था, किसी कारखाने की तरफ से एजेंट हो सकता था, मगर उसके कन्धे पर एक भारी जुआ रक्खा हुआ था, उसे क्या करे। एक बड़े सेठ की लड़की जिसने लाड़-प्यार मे परवरिश पाई, उससे यह कंगाली की तकलीफें क्योंकर झेली जाएगी क्या मक्खनलाल की लाड़ली बेटी एक ऐसे आदमी के साथ रहना पसन्द करेगी जिसे रात की रोटी

का भी ठिकाना नहीं! मगर इस फिक्र में अपनी जान क्यों खपाऊँ। मैंने अपनी मर्जी से शादी नहीं की मैं बराबर इनकार करता रहा। सेठ जी ने जबर्दस्ती मेरे पैरों में बेड़ी डाली है। अब वही इसके जिम्मेदार हैं। मुझ से कोई वास्ता नहीं। लेकिन जब उसने दुबारा ठंडे दिल से इस मसले पर गौर किया तो बचाव की कोई सूरत नजर न आई। आखिरकार उसने यह फैसला किया कि पहले नागपुर चलूँ, जरा उन महारानी के तौर-तरीके को देखूँ, बाहर-ही-बाहर उनके स्वभाव की, मिजाज की जाँच करूँ। उस वक्त तय करूँगा कि मुझे क्या करके चाहिये। अगर रईसी की बू उनके दिमाग से निकल गई है और मेरे साथ रूखी रोटियाँ खाना उन्हें मंजूर है, तो इससे अच्छा फिर और क्या, लेकिन अगर वह अमीरी ठाट-बाट के हाथों बिकी हुई हैं तो मेरे लिए रास्ता साफ है। फिर मैं हूँ और दुनिया का गम। ऐसी जगह जाऊँ जहाँ किसी परिचित की सूरत सपने में भी न दिखाई दे। गरीबी की जिल्लत नहीं रहती, अगर अजनबियों में जिन्दगी बसरा की जाए। यह जानने-पहचानने वालों की कनखियाँ और कनबतियाँ हैं जो गरीबी को यन्त्रणा बना देती हैं। इस तरह दिल में जिन्दगी का नक्शा बनाकर मगनदास अपनी मर्दाना हिम्मत के भरोसे पर नागपुर की तरफ चला, उस मल्लाह की तरह जो किश्ती और पाल के बगैर नदी की उमड़ती हुई लहरों में अपने को डाल दे।

3

शाम के वक्त सेठ मक्खनलाल के सुंदर बगीचे में सूरज की पीली किरणें मुरझाये हुए फूलों से गले मिलकर विदा हो रही थीं। बाग के बीच में एक पक्का कुआँ था और एक मौलसिरी का पेड़। कुँए के मुँह पर अंधेरे की नीली-सी नकाब थी, पेड़ के सिर पर रोशनी की सुनहरी चादर। इसी पेड़ में एक नौजवान थका-माँदा कुएँ पर आया और लोटे से पानी भरकर पीने के बाद जगत पर बैठ गया। मालिन ने पूछा — कहाँ जाओगे? मगनदास ने जवाब दिया कि जाना तो था बहुत दूर, मगर यहीं रात हो गई। यहाँ कहीं ठहरने का ठिकाना मिल जाएगा?

मालिक — चले जाओ सेठ जी की धर्मशाला में, बड़े आराम की जगह है।

मगनदास — धर्मशाले में तो मुझे ठहरने का कभी संयोग नहीं हुआ। कोई हर्ज न हो तो यहीं पड़ा रहूँ। यहाँ कोई रात को रहता है?

मालिक — भाई, मैं यहाँ ठहरने को न कहूँगी। यह बाई जी की बैठक है। झरोखे में बैठकर सेर किया करती हैं। कहीं देख-भाल लें तो मेरे सिर में एक बाल भी न रहे।

मगनदास — बाई जी कौन?

मालिक — यही सेठ जी की बेटी। इन्दिरा बाई।

मगनदास — यह गजरे उन्हीं के लिए बना रही हो क्या?

मालिन — हाँ, और सेठ जी के यहाँ है ही कौन? फूलों के गहने बहुत पसन्द करती हैं।

मानदास — शौकीन औरत मालूम होती हैं?

मालिक — भाई, यही तो बड़े आदमियों की बातें है। वह शौक न करें तो हमारा-तुम्हारा निबाह कैसे हो। और धन है किस लिए। अकेली जान पर दस लौंडियाँ हैं। सुना करती थी कि भगवान आदमी का हल भूत जोतता है वह आँखों देखा। आप-ही-आप पंखा चलने लगे। आप-ही-आप सारे घर में दिन का-सा उजाला हो जाए। तुम झूठ समझते होगे, मगर मैं आँखों देखी बात कहती हूँ।

उस गर्व की चेतना के साथ जो किसी नादान आदमी के सामने अपनी जानकारी के बयान करने में होता है, बूढ़ी मालिन अपनी

सर्वज्ञता का प्रदर्शन करने लगी। मगनदास ने उकसाया — होगा भाई, बड़े आदमी की बातें निराली होती हैं। लक्ष्मी के बस में सब कुछ है। मगर अकेली जान पर दस लौंडियाँ? समझ में नहीं आता।

मालिन ने बुढ़ापे के चिड़चिड़ेपन से जवाब दिया — तुम्हारी समझ मोटी हो तो कोई क्या करे! कोई पान लगाती है, कोई पंखा झलती है, कोई कपड़े पहनाती है, दो हजार रुपये में तो सेजगाड़ी आयी थी, चाहो तो मुँह देख लो, उस पर हवा खाने जाती हैं। एक बंगालिन गाना-बजाना सिखाती है, मेम पढ़ाने आती है, शास्त्री जी संस्कृत पढ़ाते हैं, कागद पर ऐसी मूरत बनाती हैं कि अब बोली और अब बोली। दिल की रानी हैं, बेचारी के भाग फूट गए। दिल्ली के सेठ लगनदास के गोद लिये हुए लड़के से ब्याह हुआ था। मगर राम जी की लीला सत्तर बरस के मुर्दे को लड़का दिया, कौन पतियायेगा। जब से यह सुनावनी आई है, तब से बहुत उदास रहती है। एक दिन रोती थीं। मेरे सामने की बात है। बाप ने देख लिया। समझाने लगे। लड़की को बहुत चाहते हैं। सुनती हूँ दामाद को यहीं बुलाकर रक्खेंगे। नारायन करे, मेरी रानी दूधों नहाय पतों फले। माली मर गया था, उन्होंने आड़ न ली होती तो घर भर के टुकड़े माँगती।

मगनदास ने एक ठण्डी साँस ली। बेहतर है, अब यहाँ से अपनी इज्जत-आबरू लिये हुए चल दो। यहाँ मेरा निबाह न होगा। इन्दिरा रईसजादी है। तुम इस काबिल नहीं हो कि उसके शौहर बन सको। मालिन से बोला — ता धर्मशाले में जाता हूँ। जाने वहाँ खाट-वाट मिल जाती है कि नहीं, मगर रात ही तो काटनी है किसी तरह कट ही जाएगी रईसों के लिए मखमली गद्दे चाहिए, हम मजदूरों के लिए पुआल ही बहुत है।

यह कहकर उसने लुटिया उठाई, डण्डा सम्हाला और दर्दभरे दिल से एक तरफ चल दिया।

उस वक्त इन्दिरा अपने झरोखे पर बैठी हुई इन दोनों की बातें सुन रही थी। कैसा संयोग है कि स्त्री को स्वर्ग की सब सिद्धियाँ प्राप्त हैं और उसका पति आवरों की तरह मारा-मारा फिर रहा है। उसे रात काटने का ठिकाना नहीं।

4

मगनदास निराश विचारों में डूबा हुआ शहर से बाहर निकल आया और एक सराय में ठहरा जो सिर्फ इसलिए मशहूर थी, कि वहाँ शराब की एक दुकान थी। यहाँ आस-पास से मजदूर लोग

आ-आकर अपने दुख को भुलाया करते थे। जो भूले-भटके मुसाफिर यहाँ ठहरते, उन्हें होशियारी और चौकसी का व्यावहारिक पाठ मिल जाता था। मगनदास थका-माँदा ही, एक पेड़ के नीचे चादर बिछाकर सो रहा और जब सुबह को नींद खुली तो उसे किसी पीर-औलिया के ज्ञान की सजीव दीक्षा का चमत्कार दिखाई पड़ा जिसकी पहली मंजिल वैराग्य है। उसकी छोटी-सी पोटली, जिसमें दो-एक कपड़े और थोड़ा-सा रास्ते का खाना और लुटिया-डोर बंधी हुई थी, गायब हो गई। उन कपड़ों को छोड़कर जो उसके बदर पर थे अब उसके पास कुछ भी न था और भूख, जो कंगाली में और भी तेज हो जाती है, उसे बेचैन कर रही थी। मगर दृढ़ स्वभाव का आदमी था, उसने किस्मत का रोना रोया किसी तरह गुजर करने की तदबीरें सोचने लगा। लिखने और गणित में उसे अच्छा अभ्यास था मगर इस हैसियत में उससे फायदा उठाना असम्भव था। उसने संगीत का बहुत अभ्यास किया था। किसी रसिक रईस के दरबार में उसकी क़द्र हो सकती थी। मगर उसके पुरुषोचित अभिमान ने इस पेशे को अख्यितार करने इजाजत न दी। हाँ, वह आला दर्जे का घुड़सवार था और यह फन मजे में पूरी शान के साथ उसकी रोजी का साधन बन सकता था यह पक्का इरादा करके उसने हिम्मत से कदम आगे बढ़ाये। ऊपर से देखने पर यह बात यकीन के

काबिल नही मालूम होती मगर वह अपना बोझ हलका हो जाने से इस वक्त बहुत उदास नहीं था। मर्दाना हिम्मत का आदमी ऐसी मुसीबतों को उसी निगाह से देखता है,जिसमे एक होशियार विद्यार्थी परीक्षा के प्रश्नों को देखता है उसे अपनी हिम्मत आजमाने का, एक मुश्किल से जूझने का मौका मिल जाता है उसकी हिम्मत अनजाने ही मजबूत हो जाती है। अकसर ऐसे मार्के मर्दाना हौसले के लिए प्रेरणा का काम देते हैं। मगनदास इस जोश से कदम बढ़ाता चला जाता था कि जैसे कायमाबी की मंजिल सामने नजर आ रही है। मगर शायद वहाँ के घोड़ों ने शरारत और बिगड़ैलपन से तौबा कर ली थी या वे स्वाभाविक रूप बहुत मजे मे धीमे-धीमे चलने वाले थे। वह जिस गाँव में जाता निराशा को उकसाने वाला जवाब पाता आखिरकार शाम के वक्त जब सूरज अपनी आखिरी मंजिल पर जा पहुँचा था, उसकी कठिन मंजिल तमाम हुई। नागरघाट के ठाकुर अटलसिंह ने उसकी चिन्ता मो समाप्त किया।

यह एक बड़ा गाँव था। पक्के मकान बहुत थे। मगर उनमें प्रेतात्माएँ आबाद थीं। कई साल पहले प्लेग ने आबादी के बड़े हिस्से का इस क्षणभंगुर संसार से उठाकर स्वर्ग में पहुच दिया था। इस वक्त प्लेग के बचे-खुचे वे लोग गाँव के नौजवान और शौकीन जमींदार साहब और हल्के के कारगुजार ओर रोबीले

थानेदार साहब थे। उनकी मिली-जुली कोशिशों से गाँव मे सतयुग का राज था। धन दौलत को लोग जान का अजाब समझते थे। उसे गुनाह की तरह छुपाते थे। घर-घर में रुपये रहते हुए लोग कर्ज ले-लेकर खाते और फटेहालों रहते थे। इसी में निबाह था। काजल की कोठरी थी, सफेद कपड़े पहनना उन पर धब्बा लगाना था। हुकूमत और ज़बर्दस्त का बाजार गर्म था। अहीरों को यहाँ आँजन के लिए भी दूध न था। थाने में दूध की नदी बहती थी। मवेशीखाने के मुहर्रिर दूध की कुल्लियाँ करते थे। इसी अंधेरनगरी को मगनदास ने अपना घर बनाया। ठाकुर साहब ने असाधारण उदारता से काम लेकर उसे रहने के लिए एक मकान भी दे दिया। जो केवल बहुत व्यापक अर्थों में मकान कहा जा सकता था। इसी झोंपड़ी में वह एक हफ्ते से जिन्दगी के दिन काट रहा है। उसका चेहरा जर्द है। और कपड़े मैले हो रहे है। मगर ऐसा मालूम होता है कि उस अब इन बातों की अनुभूति ही नही रही। जिन्दा है मगर जिन्दगी रुखसत हो गई है। हिम्मत और हौसला मुश्किल को आसान कर सकते है आँधी और तूफान से बचा सकते हैं मगर चेहरे को खिला सकना उनके सामर्थ्य से बाहर है टूटी हुई नाव पर बैठकर मल्हार गाना हिम्मत काम नही हिमाकत का काम है।

एक रोज जब शाम के वक्त वह अंधेरे मे खाट पर पड़ा हुआ था। एक औरत उसके दरवाजे पर आकर भीख माँगने लगी। मगनदास का आवाज परिचित जान पड़ी। बहार आकर देखा तो वही चम्पा मालिन थी। कपड़े तार-तार, मुसीबत की रोती हुई तसबीर। बोला — मालिन? तुम्हारी यह क्या हालत है। मुझे पहचानती हो।?

मालिन ने चौंककर देखा और पहचान गई। रोकर बोली — बेटा, अब बताओ मेरा कहाँ ठिकाना लगे? तुमने मेरा बना बनाया घर उजाड़ दिया न उसे दिन तुमसे बात करती ने मुझे पर यह बिपत पड़ती। बाई ने तुम्हें बैठे देख लिया, बातें भी सुनी सुबह होते ही मुझे बुलाया और बरस पड़ी नाक कटवा लूँगी, मुँह में कालिख लगवा दूँगी, चुड़ैल, कुटनी, तू मेरी बात किसी गैर आदमी से क्यों चलाये? तू दूसरों से मेरी चर्चा करे? वह क्या तेरा दामाद था, जो तू उससे मेरा दुखड़ा रोती थी? जो कुछ मुँह मे आया बकती रही मुझसे भी न सहा गया। रानी रुठेंगी अपना सुहाग लेंगी! बोली — बाई जी, मुझसे कसूर हुआ, लीजिए अब जाती हूँ छींकते नाक कटती है तो मेरा निबाह यहाँ न होगा। ईश्वर ने मुँह दिया हैं तो आहार भी देगा चार घर से माँगूँगी तो मेरे पेट को हो जाएगा।। उस छोकरी ने मुझे खड़े खड़े निकलवा दिया। बताओ मैने तुमसे उसकी कौन सी शिकायत की थी? उसकी क्या चर्चा की थी? मै

तो उसका बखान कर रही थी। मगर बड़े आदमियों का गुस्सा भी बड़ा होता है। अब बताओ मै किसकी होकर रहूँ? आठ दिन इसी दिन तरह टुकड़े माँगते हो गये है। एक भतीजी उन्हीं के यहाँ लौंडियों में नौकर थी, उसी दिन उसे भी निकाल दिया। तुम्हारी बदौलत, जो कभी न किया था, वह करना पड़ा तुम्हें कहो का दोष लगाऊँ किस्मत में जो कुछ लिखा था, देखना पड़ा।

मगनदास सन्नाटे में जो कुछ लिखा था। आह मिजाज का यह हाल है, यह घमण्ड, यह शान! मालिन का इत्मीनन दिलाया उसके पास अगर दौलत होती तो उसे मालामाल कर देता सेठ मक्खनलाल की बेटी को भी मालूम हो जाता कि रोजी की कूंजी उसी के हाथ में नहीं है। बोला — तुम फिक्र न करो, मेरे घर मे आराम से रहो अकेले मेरा जी भी नहीं लगता। सच कहो तो मुझे तुम्हारी तरह एक औरत की तलाशा थी, अच्छा हुआ तुम आ गयीं।

मालिन ने आँचल फैलाकर असीम दिया — बेटा तुम जुग-जुग जियों बड़ी उम्र हो यहाँ कोई घर मिले तो मुझे दिलवा दो। मैं यही रहूँगी तो मेरी भतीजी कहाँ जाएगी। वह बेचारी शहर में किसके आसरे रहेगी।

मगनलाल के खून में जोश आया। उसके स्वाभिमान को चोट लगी। उन पर यह आफत मेरी लायी हुई है। उनकी इस आवारागर्दी को जिम्मेदार मैं हूँ। बोला — कोई हर्ज न हो तो उसे भी यहीं ले आओ। मैं दिन को यहाँ बहुत कम रहता हूँ। रात को बाहर चारपाई डालकर पड़ रहा करूँगा। मेरी वहज से तुम लोगों को कोई तकलीफ न होगी। यहाँ दूसरा मकान मिलना मुश्किल है यही झोपड़ा बड़ी मुश्किलों से मिला है। यह अंधेरनगरी है जब तुम्हारी सुभीता कहीं लग जाय तो चली जाना।

मगनदास को क्या मालूम था कि हजरते इश्क उसकी जबान पर बैठे हुए उससे यह बात कहला रहे है। क्या यह ठीक है कि इश्क पहले माशूक के दिल में पैदा होता है?

5

नागपुर इस गॉव से बीस मील की दूरी पर था। चम्मा उसी दिन चली गई और तीसरे दिन रम्भा के साथ लौट आई। यह उसकी भतीजी का नाम था। उसके आने से झोंपड़े में जान सी पड़ गई। मगनदास के दिमाग में मालिन की लड़की की जो तस्वीर थी उसका रम्भा से कोई मेल न था वह सौंदर्य नाम की चीज का

अनुभवी जौहरी था मगर ऐसी सूरत जिसपर जवानी की ऐसी मस्ती और दिल का चैन छीन लेनेवाला ऐसा आकर्षण हो उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसकी जवानी का चाँद अपनी सुनहरी और गम्भीर शान के साथ चमक रहा था। सुबह का वक्त था मगनदास दरवाजे पर पड़ा ठण्डी-ठण्डी हवा का मजा उठा रहा था। रम्भा सिर पर घड़ा रक्खे पानी भरने को निकली मगनदास ने उसे देखा और एक लम्बी साँस खींचकर उठ बैठा। चेहरा-मोहरा बहुत ही मोहम। ताजे फूल की तरह खिला हुआ चेहरा आँखों में गम्भीर सरलता मगनदास को उसने भी देखा। चेहरे पर लाज की लाली दौड़ गई। प्रेम ने पहला वार किया।

मगनदास सोचने लगा — क्या तकदीर यहाँ कोई और गुल खिलाने वाली है! क्या दिल मुझे यहाँ भी चैन न लेने देगा। रम्भा, तू यहाँ नाहक आयी, नाहक एक गरीब का खून तेरे सर पर होगा। मैं तो अब तेरे हाथों बिक चुका, मगर क्या तू भी मेरी हो सकती है? लेकिन नहीं, इतनी जल्दबाजी ठीक नहीं दिल का सौदा सोच-समझकर करना चाहिए। तुमको अभी जब्त करना होगा। रम्भा सुन्दरी है मगर झूठे मोती की आब और ताब उसे सच्चा नहीं बना सकती। तुम्हें क्या खबर कि उस भोली लड़की के कान प्रेम के शब्द से परिचित नहीं हो चुके है? कौन कह सकता है कि उसके सौन्दर्य की वाटिका पर किसी फूल चुननेवाले के

हाथ नही पड़ चुके है? अगर कुछ दिनों की दिलबस्तगी के लिए कुछ चाहिए तो तुम आजाद हो मगर यह नाजुक मामला है, जरा सम्हल के कदम रखना। पेशेवर जातों मे दिखाई पड़नेवाला सौन्दर्य अकसर नैतिक बन्धनों से मुक्त होता है।

तीन महीने गुजर गये। मगनदास रम्भा को ज्यों ज्यों बारीक से बारीक निगाहों से देखता त्यों-त्यों उस पर प्रेम का रंग गाढा होता जाता था। वह रोज उसे कुँए से पानी निकालते देखता वह रोज घर में झाड़ू देती, रोज खाना पकाती आह मगनदास को उन ज्वार की रोटियाँ में मजा आता था, वह अच्छे से अच्छे व्यंजनों में, भी न आया था। उसे अपनी कोठरी हमेशा साफ सुधरी मिलती न जाने कौन उसके बिस्तर बिछा देता। क्या यह रम्भा की कृपा थी? उसकी निगाहें शर्मीली थी उसने उसे कभी अपनी तरफ चंचल आँखो स ताकते नही देखा। आवाज कैसी मीठी उसकी हंसी की आवाज कभी उसके कान में नही आई। अगर मगनदास उसके प्रेम में मतवाला हो रहा था तो कोई ताज्जुब की बात नही थी। उसकी भूखी निगाहें बेचैनी और लालसा में डुबी हुई हमेशा रम्भा को ढुढां करतीं। वह जब किसी गाँव को जाता तो मीलों तक उसकी जिद्दी और बेताब आँखें मुड़-मुड़कर झोंपड़े के दरवाजे की तरफ आती। उसकी ख्याति आस पास फैल गई थी मगर उसके स्वभाव की मुसीबत और उदारहृदयता से अकसर लोग अनुचित

लाभ उठाते थे इन्साफपसन्द लोग तो स्वागत सत्कार से काम निकाल लेते और जो लोग ज्यादा समझदार थे वे लगातार तकाजों का इन्तजार करते चूंकि मगनदास इस फन को बिलकुल नहीं जानता था। बावजूद दिन रात की दौड़ धूप के गरीबी से उसका गला न छुटता। जब वह रम्भा को चक्की पीसते हुए देखता तो गेहूँ के साथ उसका दिल भी पिस जाता था।वह कुएँ से पानी निकालती तो उसका कलेजा निकल आता। जब वह पड़ोस की औरत के कपड़े सीती तो कपड़ों के साथ मगनदास का दिल छिद जाता। मगर कुछ बस था न काबू।

मगनदास की हृदयभेदी दृष्टि को इसमें तो कोई संदेह नहीं था कि उसके प्रेम का आकर्षण बिलकुल बेअसर नही है वर्ना रम्भा की उन वफा से भरी हुई खातिरदरियों की तुक कैसा बिठाता वफा ही वह जादू है रूप के गर्व का सिर नीचा कर सकता है। मगर। प्रेमिका के दिल में बैठने का माद्दा उसमें बहुत कम था। कोई दूसरा मनचला प्रेमी अब तक अपने वशीकरण में कामायाब हो चुका होता लेकिन मगनदास ने दिल आशकि का पाया था और जबान माशूक की।

एक रोज शाम के वक्त चम्पा किसी काम से बाजार गई हुई थी और मगनदास हमेशा की तरह चारपाई पर पड़ा सपने देख रहा था। रम्भा अदभूत छटा के साथ आकर उसके समने खडी हो

गई। उसका भोला चेहरा कमल की तरह खिला हुआ था। और आँखों से सहानुभूति का भाव झलक रहा था। मगनदास ने उसकी तरफ पहले आश्चर्य और फिर प्रेम की निगाहों से देखा और दिल पर जोर डालकर बोला — आओं रम्भा, तुम्हें देखने को बहुत दिन से आँखें तरस रही थीं।

रम्भा ने भोलेपन से कहा — मैं यहाँ न आती तो तुम मुझसे कभी न बोलते।

मगनदास का हौसला बढा, बोला — बिना मर्जी पाये तो कुत्ता भी नही आता।

रम्भा मुस्कराई, कली खिल गई — मै तो आप ही चली आई।

मगनदास का कलेजा उछल पड़ा। उसने हिम्मत करके रम्भा का हाथ पकड़ लिया और भावावेश से काँपती हुई आवाज मे बोला — नहीं रम्भा ऐसा नही है। यह मेरी महीनों की तपस्या का फल है।

मगनदास ने बेताब होकर उसे गले से लगा लिया। जब वह चलने लगी तो अपने प्रेमी की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखकर बोली — अब यह प्रीत हमको निभानी होगी।

पौ फटने के वक्त जब सूर्य देवता के आगमन की तैयारियाँ हो रही थी मगनदास की आँखें खुली रम्भा आटा पीस रही थी। उस शांत्तिपूर्ण सन्नाटे में चक्की की घुमर-घुमर बहुत सुहानी मालूम होती थी और उससे सूर मिलाकर आपने प्यारे ढंग से गाती थी।

झुलनियाँ मोरी पानी में गिरी
मैं जानूँ पिया मौको मनैहैं
उलटी मनावन मोको पड़ी
झुलनियाँ मोरी पानी मे गिरी

साल भर गुजर गया। मगनदास की मुहब्बत और रम्भा के सलीके न मिलकर उस वीरान झोंपड़े को कुंज बाग बना दिया। अब वहाँ गायें थी। फूलों की क्यारियाँ थीं और कई देहाती ढंग के मोढ़े थे। सुख-सुविधा की अनेक चीजे दिखाई पड़ती थी।

एक रोज सुबह के वक्त मगनदास कही जाने के लिए तैयार हो रहा था कि एक सम्भ्रान्त व्यक्ति अंग्रेजी पोशाक पहने उसे ढूढंता हुआ आ पहुँचा और उसे देखते ही दौड़कर गले से लिपट गया। मगनदास और वह दोनों एक साथ पढ़ा करते थे। वह अब वकील हो गया। था। मगनदास ने भी अब पहचाना और कुछ झेंपता और कुछ झिझकता उससे गले लिपट गया। बड़ी देर तक दोनों दोस्त बातें करते रहे। बातें क्या थीं घटनाओं और संयोगो की एक लम्बी कहानी थी। कई महीने हुए सेठ लगन

का छोटा बच्चा चेचक की नजर हो गया। सेठ जी ने दुख क मारे आत्महत्या कर ली और अब मगनदास सारी जायदाद, कोठी इलाके और मकानों का एकछत्र स्वामी था। सेठानियों में आपसी झगड़े हो रहे थे। कर्मचारियों न गबन को अपना ढंग बना रक्खा था। बड़ी सेठानी उसे बुलाने के लिए खुद आने को तैयार थी, मगर वकील साहब ने उन्हे रोका था। जब मदनदास न मुस्काराकर पुछा — तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि मै यहाँ हूँ तो वकील साहब ने फरमाया — महीने भर से तुम्हारी टोह में हूँ। सेठ मक्खनलाल ने अता-पता बतलाया। तूम दिल्ली पहुँचें और मैंने अपना महीने भर का बिल पेश किया।

रम्भा अधीर हो रही थी। कि यह कौन है और इनसे क्या बातें हो रही है? दस बजते-बजते वकील साहब मगनदास से एक हफ्ते के अन्दर आने का वादा लेकर विदा हुए उसी वक्त रम्भा आ पहुँची और पूछने लगी — यह कौन थे। इनका तुमसे क्या काम था?

मगनदास ने जवाब दिया — यमराज का दूत।

रम्भा — क्या असगुन बकते हो!

मगन — नहीं नहीं रम्भा, यह असगुन नही है, यह सचमुच मेरी मौत का दूत था। मेरी खुशियों के बाग को रौंदने वाला मेरी

हरी-भरी खेती को उजाड़ने वाला रम्भा मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, मैंने तुम्हें अपने फरेब के जाल में फँसाया है, मुझे माफ करो। मुहब्बत ने मुझसे यह सब करवाया मैं मगनसिंह ठाकूर नहीं हूँ। मैं सेठ लगनदास का बेटा और सेठ मक्खनलाल का दामाद हूँ।

मगनदास को डर था कि रम्भा यह सुनते ही चौक पड़ेगी ओर शायद उसे जालिम, दगाबाज कहने लगे। मगर उसका ख्याल गलत निकला! रम्भा ने आँखो में आँसू भरकर सिर्फ इतना कहा — तो क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे?

मगनदास ने उसे गले लगाकर कहा — हाँ।

रम्भा — क्यों?

मगन — इसलिए कि इन्दिरा बहुत होशियार सुन्दर और धनी है।

रम्भा — मैं तुम्हें न छोडूँगी। कभी इन्दिरा की लौंडी थी, अब उनकी सौत बनूँगी। तुम जितनी मेरी मुहब्बत करोगे। उतनी इन्दिरा की तो न करोगे, क्यों?

मगनदास इस भोलेपन पर मतवाला हो गया। मुस्कराकर बोला — अब इन्दिरा तुम्हारी लौंडी बनेगी, मगर सुनता हूँ वह बहुत

सुन्दर है। कहीं मै उसकी सूरत पर लुभा न जाऊँ। मर्दो का हाल तुम नही जानती मुझे अपने ही से डर लगता है।

रम्भा ने विश्वासभरी आँखो से देखकर कहा — क्या तुम भी ऐसा करोगे? उँह जो जी में आये करना, मै तुम्हें न छोडूँगी। इन्दिरा रानी बने, मै लौंडी हूँगी, क्या इतने पर भी मुझे छोड़ दोगे?

मगनदास की आँखें डबडबा गयीं, बोला — प्यारी, मैंने फैसला कर लिया है कि दिल्ली न जाऊँगा यह तो मै कहने ही न पाया कि सेठ जी का स्वर्गवास हो गया। बच्चा उनसे पहले ही चल बसा था। अफसोस सेठ जी के आखिरी दर्शन भी न कर सका। अपना बाप भी इतनी मुहब्बत नही कर सकता। उन्होने मुझे अपना वारिस बनाया हैं। वकील साहब कहते थे। कि सेठारियों मे अनबन है। नौकर चाकर लूट मार — मचा रहे हैं। वहाँ का यह हाल है और मेरा दिल वहाँ जाने पर राजी नहीं होता दिल तो यहाँ है वहाँ कौन जाए।

रम्भा जरा देर तक सोचती रही, फिर बोली-तो मै तुम्हें छोड़ दूँगीं इतने दिन तुम्हारे साथ रही। जिन्दगी का सुख लुटा अब जब तक जिऊँगी इस सूख का ध्यान करती रहूँगी। मगर तुम मुझे भूल तो न जाओगे? साल में एक बार देख लिया करना और इसी झोंपड़े में।

मगनदास ने बहुत रोका मगर आँसू न रुक सके बोले — रम्भा, यह बाते ने करो, कलेजा बैठा जाता है। मै तुम्हें छोड़ नही सकता इसलिए नही कि तुम्हारे उपर कोई एहसान है। तुम्हारी खातिर नहीं, अपनी खातिर वह शान्ति वह प्रेम, वह आनन्द जो मुझे यहाँ मिलता है और कहीं नही मिल सकता। खुशी के साथ जिन्दगी बसर हो, यही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। मुझे ईश्वर ने यह खुशी यहाँ दे रक्खी है तो मै उसे क्यो छोड़ूँ? धन-दौलत को मेरा सलाम है मुझे उसकी हवस नहीं है।

रम्भा फिर गम्भीर स्वर में बोली — मै तुम्हारे पाँव की बेड़ी न बनूँगी। चाहे तुम अभी मुझे न छोड़ो लेकिन थोड़े दिनों में तुम्हारी यह मुहब्बत न रहेगी।

मगनदास को कोड़ा लगा। जोश से बोला — तुम्हारे सिवा इस दिल में अब कोई और जगह नहीं पा सकता।

रात ज्यादा आ गई थी। अष्टमी का चाँद सोने जा चुका था। दोपहर के कमल की तरह साफ आसमान में सितारे खिले हुए थे। किसी खेत के रखवाले की बाँसुरी की आवाज, जिसे दूरी ने तासीर, सन्नाटे न सुरीलापन और अंधेरे ने आत्मिकता का आकर्षण दे दिया था। कानों में आ जा रही थी कि जैसे कोई पवित्र आत्मा नदी के किनारे बैठी हुई पानी की लहरों से या दूसरे

किनारे के खामोश और अपनी तरफ खीचनेवाले पेड़ो से अपनी जिन्दगी की गम की कहानी सुना रही है।

मगनदास सो गया मगर रम्भा की आँखों में नींद न आई।

6

सुबह हुई तो मगनदास उठा और रम्भा पुकारने लगा। मगर रम्भा रात ही को अपनी चाची के साथ वहाँ से कही चली गयी मगनदास को उसे मकान के दरो दीवार पर एक हसरत-सी छायी हुई मालूम हुई कि जैसे घर की जान निकल गई हो। वह घबराकर उस कोठरी में गया जहां रम्भा रोज चक्की पीसती थी, मगर अफसोस आज चक्की एकदम निश्चल थी। फिर वह कुँए की तरह दौड़ा गया लेकिन ऐसा मालूम हुआ कि कुँए ने उसे निगल जाने के लिए अपना मुँह खोल दिया है। तब वह बच्चो की तरह चीख उठा रोता हुआ फिर उसी झोपड़ी में आया। जहाँ कल रात तक प्रेम का वास था। मगर आह, उस वक्त वह शोक का घर बना हुआ था। जब जरा आँसू थमे तो उसने घर में चारों तरफ निगाह दौड़ाई। रम्भा की साड़ी अरगनी पर पड़ी हुई थी। एक पिटारी में वह कंगन रक्खा हुआ था। जो मगनदास ने उसे

दिया था। बर्तन सब रक्खे हुए थे, साफ और सुधरे। मगनदास सोचने लगा — रम्भा तूने रात को कहा था — मै तुम्हें छोड़ दूँगीं। क्या तूने वह बात दिल से कही थी? मैने तो समझा था, तू दिल्लगी कर रही हैं। नहीं तो मुझे कलेजे में छिपा लेता। मैं तो तेरे लिए सब कुछ छोड़ बैठा था। तेरा प्रेम मेरे लिए सक कुछ था, आह, मै यों बेचैन हूँ, क्या तू बेचैन नही है? हाय तू रो रही है। मुझे यकीन है कि तू अब भी लौट आएगी। फिर सजीव कल्पनाओं का एक जमघट उसके सामने आया — वह नाजुक अदाएँ वह मतवाली आँखें वह भोली भाली बातें, वह अपने को भूली हुई-सी मेहरबानियाँ वह जीवन दायी। मुस्कान वह आशिकों जैसी दिलजोइयाँ वह प्रेम का नाश, वह हमेशा खिला रहने वाला चेहरा, वह लचक-लचककर कुँए से पानी लाना, वह इन्तजार की सूरत वह मस्ती से भरी हुई बेचैनी — यह सब तस्वीरें उसकी निगाहों के सामने हसरतनाक बेताबी के साथ फिरने लगी। मगनदास ने एक ठण्डी साँस ली और आँसुओं और दर्द की उमड़ती हुई नदी को मर्दाना जब्त से रोककर उठ खड़ा हुआ। नागपुर जाने का पक्का फैसला हो गया। तकिये के नीच से सन्दूक की कुँजी उठायी तो कागज का एक टुकड़ा निकल आया यह रम्भा की विदा की चिट्ठी थी —

प्यारे,

मै बहुत रो रही हूँ मेरे पैर नहीं उठते मगर मेरा जाना जरूरी है। तुम्हे जागाऊँगी। तो तुम जाने न दोगे। आह कैसे जाऊँ अपने प्यारे पति को कैसे छोड़ूँ! किस्मत मुझसे यह आनन्द का घर छुड़वा रही है। मुझे बेवफा न कहना, मै तुमसे फिर कभी मिलूँगी। मै जानती हूँ। कि तुमने मेरे लिए यह सब कुछ त्याग दिया है। मगर तुम्हारे लिए जिन्दगी में। बहुत कुछ उम्मीदे हैं मैं अपनी मुहब्बत की धुन में तुम्हें उन उम्मीदो से क्यों दूर रक्खूँ! अब तुमसे जुदा होती हूँ। मेरी सुध मत भूलना। मैं तुम्हें हमेशा याद रखूगीं। यह आनन्द के लिए कभी न भूलेंगे। क्या तूम मुझे भूल सकोगें?

तुम्हारी प्यारी

रम्भा।

7

मगनदास को दिल्ली आए हुए तीन महीने गुजर चुके हैं। इस बीच उसे सबसे बड़ा जो निजी अनुभव हुआ वह यह था कि रोजी की फिक्र और धन्धों की बहुतायत से उमड़ती हुई भावनाओं का जोर कम किया जा सकता है। डेढ़ साल पहले का बेफिक्र

नौजवान अब एक समझदार और सूझ-बूझ रखने वाला आदमी बन गया था। सागर घाट के उस कुछ दिनों के रहने से उसे रिआया की इन तकलीफों का निजी ज्ञान हो गया, था जो कारिन्दों और मुख्तारों की सख्तियों की बदौलत उन्हे उठानी पड़ती है। उसने उसे रियासत के इन्तजाम में बहुत मदद दी और गो कर्मचारी दबी जबान से उसकी शिकायत करते थे। और अपनी किस्मतों और जमाने के उलट फेर को कोसते थे मगर रिआया खुश थी। हाँ, जब वह सब धंधों से फुरसत पाता तो एक भोली भाली सूरतवाली लड़की उसके खयाल के पहलू में आ बैठती और थोड़ी देर के लिए सागर घाट का वह हरा भरा झोंपड़ा और उसकी मस्तिया आँखें के सामने आ जातीं। सारी बाते एक सुहाने सपने की तरह याद आ आकर उसके दिल को मसोसने लगती लेकिन कभी कभी खूद बखुद — उसका ख्याल इन्दिरा की तरफ भी जा पहुँचता गो उसके दिल मे रम्भा की वही जगह थी मगर किसी तरह उसमे इन्दिरा के लिए भी एक कोना निकल आया था। जिन हालातों और आफतों ने उसे इन्दिरा से बेजार कर दिया था वह अब रुखसत हो गयी थीं। अब उसे इन्दिरा से कुछ हमदर्दी हो गयी। अगर उसके मिजाज में घमण्ड है, हुकूमत है तकल्लूफ है शान है तो यह उसका कसूर नहीं यह रईसजादो की आम कमजोरियाँ है यही उनकी शिक्षा है। वे बिलकुल बेबस

और मजबूर है। इन बदले हुए और संतुलित भावो के साथ जहां वह बेचैनी के साथ रम्भा की याद को ताजा किया करता था वहा इन्दिरा का स्वागत करने और उसे अपने दिल में जगह देने के लिए तैयार था। वह दिन दूर नहीं था जब उसे उस आजमाइश का सामना करना पड़ेगा। उसके कई आत्मीय अमीराना शान-शौकत के साथ इन्दिरा को विदा कराने के लिए नागपुर गए हुए थे। मगनदास की बतियत आज तरह तरह के भावो के कारण, जिनमें प्रतीक्षा और मिलन की उत्कंठा विशेष थी, उचाट सी हो रही थी। जब कोई नौकर आता तो वह सम्हल बैठता कि शायद इन्दिरा आ पहुँची आखिर शाम के वक्त जब दिन और रात गले मिले रहे थे, जनानखाने में जोर शोर के गाने की आवाजों ने बहू के पहुचने की सूचना दी।

सुहाग की सुहानी रात थी। दस बज गये थे। खुले हुए हवादार सहन में चाँदनी छिटकी हुई थी, वह चाँदनी जिसमें नशा है। आरजू है। और खिंचाव है। गमलों में खिले हुए गुलाब और चम्मा के फूल चाँद की सुनहरी रोशनी में ज्यादा गम्भीर ओर खामोश नजर आते थे। मगनदास इन्दिरा से मिलने के लिए चला। उसके दिल से लालसाएँ जरूर थी मगर एक पीड़ा भी थी। दर्शन की उत्कण्ठा थी मगर प्यास से खोली। मुहब्बत नही प्राणों को खिचाव था जो उसे खीचे लिए जाताथा। उसके दिल में

बैठी हुई रम्भा शायद बार-बार बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी। इसीलिए दिल में धड़कन हो रही थी। वह सोने के कमरे के दरवाजे पर पहुँचा रेशमी पर्दा पड़ा हुआ था। उसने पर्दा उठा दिया अन्दर एक औरत सफेद साड़ी पहने खड़ी थी। हाथ में चन्द खूबसूरत चूड़ियों के सिवा उसके बदन पर एक जेवर भी न था। ज्योंही पर्दा उठा और मगनदास ने अन्दर कदम रक्खा वह मुस्कराती हुई उसकी तरफ बढी मगनदास ने उसे देखा और चकित होकर बोला। “रम्भा!“ और दोनो प्रेमावेश से लिपट गये। दिल में बैठी हुई रम्भा बाहर निकल आई थी।

साल भर गुजरने के वाद एक दिन इन्दिरा ने अपने पति से कहा। क्या रम्भा को बिलकुल भूल गये? कैसे बेवफा हो! कुछ याद है, उसने चलते वक्त तुमसे या बिनती की थी?

मगनदास ने कहा — खूब याद है। वह आवाज भी कानों में गूँज रही है। मैं रम्भा को भोली-भाली लड़की समझता था। यह नहीं जानता था कि यह त्रिया चरित्र का जादू है। मै अपनी रम्भा का अब भी इन्दिरा से ज्यादा प्यार करता हूँ। तुम्हें डाह तो नहीं होती?

इन्दिरा ने हँसकर जवाब दिया डाह क्यों हो। तुम्हारी रम्भा है तो क्या मेरा मगनसिंह नहीं है। मैं अब भी उस पर मरती हूँ।

दूसरे दिन दोनों दिल्ली से एक राष्ट्रीय समारोह में शरीक होने का बहाना करके रवाना हो गए और सागर घाट जा पहुचें। वह झोंपड़ा वह मुहब्बत का मन्दिर वह प्रेम भवन फूल और हरियाली से लहरा रहा था चम्पा मालिन उन्हें वहाँ मिली। गाँव के जमींदार उनसे मिलने के लिए आये। कई दिन तक फिर मगनसिह को घोड़े निकालना पडें। रम्भा कुँए से पानी लाती खाना पकाती। फिर चक्की पीसती और गाती। गाँव की औरतें फिर उससे अपने कुर्ते और बच्चो की लेसदार टोपियाँ सिलाती है। हा, इतना जरूर कहती कि उसका रंग कैसा निखर आया है, हाथ पाँव कैसे मुलायम यह पड़ गये है किसी बड़े घर की रानी मालूम होती है। मगर स्वभाव वही है, वही मीठी बोली है। वही मुरौवत, वही हँसमुख चेहरा।

इस तरह एक हफ्ते इस सरल और पवित्र जीवन का आनन्द उठाने के बाद दोनो दिल्ली वापस आये और अब दस साल गुजरने पर भी साल में एक बार उस झोंपड़े के नसीब जागते हैं। वह मुहब्बत की दीवार अभी तक उन दोनो प्रेमियों को अपनी छाया में आराम देने के लिए खड़ी है।

[जमाना, जनवरी 1913]

दाराशिकोह का दरबार

शहजादा दाराशिकोह शाहजहाँ के बड़े बेटे थे और बाह्य तथा आन्तरिक गुणों से परिपूर्ण। यद्यपि वे थे तो वली अहद मगर साहिबे किरान सानी [1] ने उनकी बुद्धिमत्ता, विशेषता, गुणों और कलात्मकता को देखकर व्यावहारिक रूप में पूरे साम्राज्य की व्यवस्था उन्हीं को सौंप रखी थी। वे अन्य शहजादों की तरह सम्बद्ध प्रान्तों की सूबेदारी पर नियुक्त न किए जाते, वरन् राजधानी में ही उपस्थित रहते और अपने सहयोगियों की सहायता से साम्राज्य का कार्यभार संभालते। खेद का विषय है कि यद्यपि उनको योग्य, अनुभवी, गर्वोन्नत, आज्ञाकारी बनाने के लिए व्यावहारिकता की पाठशाला में शिक्षा दी गई, लेकिन देश की जनता को उनकी ओर से कोई स्मरणीय लाभ नहीं हुआ।

---

[1] 'साहिबे किरान' तैमूर की उपाधि थी। उसकी छठी पीढ़ी के बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी। मुगल बादशाहों में से शाहजहाँ के लिये सर्वप्रथम 'साहिबे किरान सानी' का विरुद प्रयुक्त हुआ और उसके पश्चात् शाह शुजा, मुराद बख्श, शाह आलम प्रथम, जहाँदार शाह, फर्रूखसियर, मुहम्मद शाह द्वितीय और अकबर द्वितीय के लिए भी इसी विरुद का प्रयोग किये जाने के प्रमाण मिलते हैं।

इतिहासकारों का कथन है कि यदि औरंगजेब के स्थान पर शहजादा दाराशिकोह को गद्दी मिलती तो हिन्दुस्तान एक बहुत शक्तिशाली संयुक्त साम्राज्य हो जाता। यह कथन हालाँकि किसी सीमा तक एक मानवीय गुण पर आधारित है, क्योंकि मृत्यु के पश्चात् प्रायः लोग मनुष्यों की प्रशंसा किया करते हैं, फिर भी यह देखना बहुत कठिन नहीं है कि इसमें सच्चाई की झलक भी पाई जाती है।

शहजादा दाराशिकोह अकबर का अनुयायी था। वह केवल नाम का ही अकबर द्वितीय नहीं था, उसके विचार भी वैसे ही थे और उन विचारों को व्यावहारिकता में लाने का तरीका भी बिल्कुल मिलता हुआ नहीं, बल्कि उसके विचार अधिक रुचिकर थे और उनको व्यवहार में लाने के तरीके, नियमों और सिद्धान्तों में अधिक रुचि। उसकी गहन चिन्तन दृष्टि ने देख लिया था कि हिन्दुस्तान में स्थायी रूप से साम्राज्य का बना रहना सम्भव नहीं जब तक कि हिन्दुओं और मुसलमानों में मेल-मिलाप और एकता स्थापित नहीं हो जाती। वह भली-भाँति जानता था कि शक्ति से साम्राज्य की जड़ नहीं जमती। साम्राज्य की स्थिरता व नित्यता के लिए यह आवश्यक है कि शासकगण लोकप्रिय सिद्धान्तों और सरल कानूनों से जनता के दिलों में घर कर लें। पत्थर के मजबूत किलों के बदले दिलों में घर करना अधिक महत्त्वपूर्ण है

और सेना के बदले जनता की मुहब्बत व जान छिड़कने पर अधिक भरोसा करना आवश्यक है। दाराशिकोह ने इन सिद्धान्तों का व्यवहार करना प्रारम्भ किया था। उसने एक अत्यन्त रोचक तथा सार्थक पुस्तक लिखी थी जिसमें अकाट्य तर्कों से यह सिद्ध किया था कि मुसलमानों की नित्यता हिन्दुओं से एकता व संगठन पर आधारित है। उसकी दृष्टि में बाबा कबीरदास, गुरु नानक जैसे महापुरुषों का बहुत सम्मान था क्योंकि दूसरे पैगम्बर मानव जाति में भेद उत्पन्न करते थे लेकिन ये महानुभाव सर्वधर्म समभाव की शिक्षा देते थे।

इस समय हिन्दू तथा मुसलमान, दोनों जातियाँ दो बच्चों की सी हालत में थीं। एक ने तो कुछ ही दिन पहले दूध छोड़ा था, दूसरा अभी दूध-पीता था। दाराशिकोह का विचार था कि इस दूध-पीते बच्चे पर दूसरे को बलिदान कर देना अहितकर होगा। हालाँकि उसके दूध के दाँत टूट गए हैं, लेकिन अब वे दाँत निकलेंगे जो और भी ज्यादा मजबूत होंगे। दाँत निकलने से पहले ही चने चबवाना अमानवीयता है। क्यों न दोनों बच्चों का साथ-साथ पालन-पोषण हो। अगर एक को अधिक दूध दिया जाये तो दूसरे को पौष्टिक चीजें दी जाएँ।

इस जातीय एकता के लिये दाराशिकोह के मन में भी वही बात आई जो अकबर के मन में आई थी। अर्थात् दोनों जातियों के

हृदय से विजेता और विजित, आधिपत्य और अधीनता की भावना समाप्त हो जाए। दोनों खुले हृदय से मिलें, आपस में वैवाहिक सम्बन्ध हों, मेल-जोल बढ़े। न कोई हिन्दू रहे न कोई मुसलमान, बल्कि दोनों भारतभूमि के निवासी हों, दोनों में पृथक्-पृथक् होने का कोई चिह्न शेष न रूह जाये। शहजादा इस एकता में अकबर से भी एक इंच आगे था। अकबर ने राजाओं की पुत्रियों से विवाह किया था, राजाओं को उचित प्रतिष्ठा प्रदान की थी, हिन्दुओं पर से उस जजिया का भार हटा दिया था जो उन्हें हिन्दू होने के कारण देना पड़ता था, लेकिन शहजादे का कहना था कि राजकन्याओं से ही विवाह क्यों किया जाए, मुगल परिवार की लड़कियाँ भी राजाओं को क्यों न ब्याह दी जाएँ। उसने भली-भाँति समझ लिया था कि भारतवासी अपनी लड़कियों का विवाह दूसरी जातियों में करने को अपना अपमान तथा तिरस्कार समझते हैं। और जब उनकी लड़कियाँ ली जाती हैं मगर मुसलमानों द्वारा लड़कियाँ दी नहीं जाती तब यह भावना और भी दृढ़ हो जाती है। सच्चा मेलजोल उसी दशा में होगा जब लड़की और लड़के में कोई अन्तर शेष न रह जाये। उसने स्वयं अग्रगामी बनना चाहा था, केवल अवसर की प्रतीक्षा में था।

शहजादा दाराशिकोह केवल समाज सुधारक नहीं था, उसके सिर पर ज्ञान तथा प्रतिष्ठा की पगड़ी भी बँधी हुई थी। उसने भारत

की सभी प्रमुख भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, विशेषकर संस्कृत से तो उसे प्यार सा हो गया था। घंटों हौज के किनारे बैठा पतंजलि या गौतम का दर्शन पढ़ता, चिन्तन करता और रोता। एशियाई भाषाओं के अतिरिक्त उसने यूरोप की भी कई भाषाओं में निपुणता प्राप्त कर ली थी। लातिनी, यूनानी तथा इबरानी भाषाओं पर उसकी अच्छी पकड़ थी। फ्रांसीसी, अंग्रेजी तथा जर्मन जैसी आधुनिक भाषाएँ, जिनका अभी तक इतना विकास नहीं हुआ था कि उनकी विशेषता व सौन्दर्य दूसरे देशों को आकर्षित करता, उसे प्रभावित नहीं कर सकीं, फिर भी उन भाषाओं से वह नितान्त अनभिज्ञ नहीं था। थोड़ी बहुत बातचीत समझ लेता और टूटे-फूटे शब्दों में अपने विचार भी प्रकट कर लेता था। वह इतने बड़े देश पर शासन करता था और उसके साथ-साथ अपनी व्यक्तिगत शिक्षा के लिये भी ऐसा प्रयास करता था; यह सोचकर आश्चर्य होता है कि उसकी क्षमताएँ कैसी थीं और मस्तिष्क कैसा।

दाराशिकोह ने वह गलती न की जो अकबर ने की थी। अकबर के सलाहकार या तो हिन्दू थे या मुसलमान और इसका स्वाभाविक परिणाम यह था कि दोनों में निरन्तर तू-तू मैं-मैं चला करती थी। यदि अकबर जैसा दृढ़ संकल्पी शासक न होता तो उस वर्ग को बिल्कुल भी वश में नहीं रख सकता था जिसमें

मानसिंह, अबुल फजल जैसे मनोमस्तिष्क के लोग थे। स्पष्ट है कि ऐसे सलाहकारों की सम्मति कभी निरर्थक नहीं होगी, हरेक अपनी जाति की ओर ही खींचेगा। इस भय से शहजादे ने अपने सलाहकार अंग्रेजों से लिए थे क्योंकि उनसे अनुचित पक्षपात की आशंका नहीं हो सकती थी। पहले अपने दरबारियों से हरेक बात की पूछताछ करता और तब अपने फिरंगी सलाहकारों से राय लेकर निर्णय करता।

तीसरे पहर का समय है। शहजादा दाराशिकोह का दरबारे खास सजा है। अच्छी और नेक सलाह देने वाले सलाहकार पद के अनुरूप सजी-धजी पोशाकों में उपस्थित हैं। ठीक मध्य में एक जड़ाऊ सिंहासन है जिस पर शहजादे साहब विराजमान हैं। उनके चेहरे से चिन्तामग्न तथा विचारमग्न होना स्पष्ट होता है। हाथ में एक शाही फरमान है जिसे वे रूह-रहकर व्याकुल दृष्टि से देखते हैं और फिर कुछ सोचने लगते हैं। सिंहासन से सटी हुई एक रत्नजटित कुर्सी पर हेनरी बोजे बैठा हुआ है, जो शहजादे का मनपसंद सलाहकार है और उसकी सलाह का बड़ा सम्मान किया जाता है।

हेनरी बोजे के बराबर में दूसरी जड़ाऊ कुर्सी पर मालपेका बैठा हुआ है। सिंहासन के बाईं ओर फ्रांसीसी पर्यटक बर्नियर एक कुर्सी पर बैठा हुआ कुछ सोच रहा है और उसके बराबर में एक

दूसरी कुर्सी पर पुर्तगाली राजदूत जोजरेट बैठा है। पूरे दरबार में आश्चर्यजनक मौन पसरा हुआ है। चारों ओर के दरवाजे बन्द हैं। सलाहकारों की आँखें बार-बार शहजादे की ओर उठती हैं लेकिन उन्हें चुप देखकर फिर नीची हो जाती हैं। थोड़ी देर बाद शहजादे साहब ने कहा — महानुभावो! शायद आप लोगों को कंधार अभियान की तबाही का समाचार मिला हो।'

इस संक्षिप्त से वाक्य ने उपस्थित महानुभावों के मुँह का रंग उड़ा दिया। हरेक व्यक्ति सन्नाटे में आ गया और कई मिनट तक किसी को बोलने का भी साहस न हुआ। अन्ततः हेनरी बोजे ने कहा — यह समाचार सुनकर हमें अत्यधिक शोक हुआ, हम सच्चे हृदय से साम्राज्य के पक्षधर हैं।'

पादरी जोजरेट — 'मगर समझ में नहीं आता कि असफलता क्यों हुई। गोले उतारने वाले, सेना को व्यवस्थित करने वाले तो प्रायः फिरंगी थे जिनके सिरों पर हजरत मसीह की कृपा थी। उनका असफल रहना समझ में नहीं आता।'

यह कहकर उन्होंने गले से मसीह की छोटी सी तस्वीर निकाली और बड़े सम्मान के साथ चूमी।

अब डाक्टर बर्नियर की बारी आई। पहले उन्होंने दर्शकों को उस दृष्टि से देखा जो सत्यनिष्ठ भी थी और सत्यवक्ता भी।

इसके पश्चात् बोले — महानुभावो! सच पूछिए तो इस अभियान की सफलता में मुझे पहले से ही सन्देह था। शहजादा मुहीउद्दीन इसके भाग्यविधाता बनने के योग्य नहीं थे। इसलिए नहीं कि उनमें यह योग्यता नहीं है, बल्कि केवल इसलिए कि वे अपने वैमनस्य को दबा नहीं सकते। मुझे विश्वास है कि इस असफलता का कारण राजा जगत सिंह का अलग रहना है।'

इसके पश्चात् कई मिनट तक सन्नाटा रहा।

अन्ततः शहजादे साहब ने चुप्पी को यूँ तोड़ा — महानुभावो! मैं इस वाद-विवाद में नहीं पड़ता कि इस असफलता का वास्तविक कारण क्या है। इस बात की छानबीन करना उचित नहीं है। आप भली प्रकार जानते हैं कि ऐसा करना बुद्धिमानी के प्रतिकूल होगा।'

शहजादे साहब ने ये शब्द रुक-रुककर कहे। प्रतीत होता था कि इस समय ये मन में उभरने वाले विचारों से परेशान हो रहे हैं, जैसे कोई आन्तरिक दुविधा में पड़ा हो। मन पहले कहता हो अच्छा है ऐसा कर लेकिन फिर दिशा बदल जाता हो। अपनी बात समाप्त करके शहजादे ने उपस्थित लोगों को सार्थक दृष्टि से देखा। जो कुछ वाणी न कह सकी थी, आँखों ने कह दिया।

पादरी जोजरेट ने शहजादे को उत्तर देते हुए कहा — जहाँपनाह! धृष्टता क्षमा हो। गुलाम की तुच्छ राय तो यह है कि इस असफलता के कारणों पर प्रत्येक दृष्टि से विचार कर लें, भले ही वे कितने ही अरुचिकर क्यों न हों, ताकि भविष्य के लिये उन महत्त्वपूर्ण कारणों की रोकथाम भी कर ली जाये। असफलता हमें गलतियों से परिचित करा देती है, इसलिए मेरी दृष्टि में सफलताओं का इतना महत्त्व नहीं है जितना कि असफलताओं का। निस्संदेह सांसारिक अनुभव का असफलता से बढ़कर और कोई शिक्षक नहीं होता।'

यह कहकर पादरी साहब ने दर्शकों को गर्वोन्नत दृष्टि से देखा मानो उस समय उन्होंने कोई असाधारण काम किया हो। और निस्संदेह शहजादे साहब के वक्तव्य पर आपत्ति करना कोई साधारण काम नहीं था। उनकी सलाह सबको अच्छी लगी। शहजादे साहब ने भी समर्थन करते हुए कहा — पादरी साहब! आप जो कहते हैं बहुत ठीक है। बेशक मैं गलती पर था लेकिन शायद आपने मेरे स्वर से यह तो अवश्य समझ लिया होगा कि मुझे जान बूझकर गलती करनी पड़ती है। इस असफलता के कारणों की खोज में मुझे मन से कोई आपत्ति नहीं। लेकिन ..... लेकिन किसी समय आँख बन्द करना ही ठीक होता है, विशेषकर उस समय जबकि शाही खानदान के एक वरिष्ठ सदस्य की

प्रतिष्ठा में अन्तर आता हो। बस, इस समय तो हम केवल इस बात का निर्णय करना चाहते हैं कि क्या सदा के लिए कंधार से हाथ खींच लेना उचित है? इस समय तक कंधार पर दो अभियान हो चुके हैं लेकिन दोनों के दोनों असफल रहे। आपसे छिपा नहीं है कि इन दूर के अभियानों में साम्राज्य को भारी खर्च सहन करना पड़ता है।'

यह सुनते ही अरस्तू के खानदानी सलाहकारों के सिर पुनः लटक गए। निस्संदेह समस्या अत्यन्त जटिल थी और उसे सुलझाने के लिए सोच-विचार करने की भी आवश्यकता थी। पन्द्रह मिनट तक तो सबके सब अपना आपा खोए बैठे रहे, उसके बाद वाद-विवाद इस प्रकार प्रारम्भ हुआ —

हेनरी बोजे — 'कंधार पर मुगल बादशाहों का अधिकार कब से है?'

डाक्टर बर्नियर — 'शहंशाह बाबर के शुभ युग से।'

हेनरी बोजे — 'दीर्घकालीन शासन होने पर भी वहाँ इस खानदान का प्रभुत्व स्थापित नहीं हुआ।'

बर्नियर — 'इसका कारण यही है कि शहंशाह बाबर के बाद भारत के सम्राट् हिन्दुस्तान के मामलों में इतने व्यस्त रहने लगे

कि कंधार पर पर्याप्त ध्यान न दे सके। इसी कारण दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध दिन प्रतिदिन कमजोर होने लगे।'

बोजे — 'संक्षेप में इसका अर्थ यह है कि भारत के सम्राटों को कंधार से उतना फायदा नहीं था कि उसको भी भारत का एक प्रान्त समझकर पर्याप्त ध्यान देते। यदि ऐसा करते तो कंधार कभी सिर न उठा पाता।'

बर्नियर — 'निस्संदेह, भारत के सम्राटों का अधिकांश समय हिन्दू राजाओं को अधीन करने और प्रान्तों के वैमनस्य और उपद्रव शान्त करने में व्यतीत होता था। हजरत अर्श आशियानी ने हालाँकि एक बार कंधार को एक अभियान भेजना चाहा था लेकिन कुछ न कुछ रुकावटों से तंग आकर इरादा छोड़ दिया। अन्तिम रूप से यह कहना आसान नहीं है कि भारत के सम्राट् कंधार से क्यों बेखबर रहे। सम्भव है कि दूरी के विचार अथवा असफलता के भय अथवा भरे पूरे खजाने की गरीबी के कारण ऐसा न कर सके हों।'

मालपेका — 'मगर क्या वही चिन्ताएँ इस समय भी सामने नहीं हैं। दक्खिन की उलझनें इतनी बढ़ गई हैं कि अब उनको सुलझाना बहुत कठिन है, और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि दक्खिन — विजय कंधार-विजय से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण

है। भारत और कंधार के मध्य जो दूरी थी वह तिलमात्र भी कम नहीं हुई। और अब असफलता का भय पहले से भी अधिक है क्योंकि अब ईरान के शासक भी कंधार की सहायता के लिये कटिबद्ध हैं।'

पादरी जोजरेट — 'ठीक कहा, मगर अब भारत के सिंहासन पर वह बादशाह नहीं है जिसे दूरी या असफलता का भय अपने संकल्प से डिगा सके। पूर्ववर्ती सम्राटों के काल में भारत का साम्राज्य शैशवावस्था में था। अब उसकी जवानी उठान पर है। उस काल में भारत पर हजरत मसीह की कृपा नहीं हुई थी। अल्लाह ताला साहिबे किरान सानी को दीर्घायु करें, उनके पवित्र मस्तक पर तो मसीह ने अपने हाथों से ऐश्वर्य का मुकुट रख दिया है।'

इस प्रभावशाली तर्क पर शहजादा दाराशिकोह के होठों पर क्षीण सी मुस्कराहट दिखाई देने लगी। दो-तीन मिनट विचारमग्न रहकर डाक्टर बर्नियर बोले — महानुभावो! साम्राज्य की नित्यता के लिए आवश्यक है कि प्रतिपक्षी शक्तियाँ उसका लोहा मानें। दूसरे की दृष्टि में महत्त्व कम हो जाना उसके लिए प्राणघातक जहर है। यदि विपक्षियों के मन में उसका आतंक बैठ जाये तो फिर साम्राज्य अटल है। जब तक कि आन्तरिक बीमारियाँ उनकी तबाही का कारण न हों, दक्खिन की उलझनें बढ़ती ही

जाती हैं। मरहठों ने उपद्रव फैलाने पर कमर बाँध ली है। जाटों ने भी कुछ सिर उठाया है। बस, यह समय भारतीय साम्राज्य के लिये बहुत ही नाजुक तथा खतरनाक है। इस नाजुक समय में कंधार से बेखबर होना इन उपद्रवियों को शेर बना देगा।

यदि साहिबे किरान सानी ने अली मर्दान खाँ को शरण न दी होती और कंधार के लिये दो अभियान कूच न कर चुके होते तो इस समय उस देश से किनारा कर लेने में तनिक भी हानि नहीं थी। मगर जब संसार पर यह खुल गया है कि भारत के सम्राट् कंधार पर अधिकार जमाना चाहते हैं और इस काम के लिए उद्यत हैं तो फिर इस संकल्प से पीछे हटना साम्राज्य के लिए बहुत भयावह होगा। अब तो भारत का यह कथन होना चाहिए कि लड़ेंगे, मरेंगे मगर कंधार को नहीं छोड़ेंगे। यदि इस समय कंधार से हाथ खींच लिया तो मरहठों में स्वाभाविक रूप से यह विचार उत्पन्न होगा कि यदि इसी भाँति उपद्रव मचाते रहें तो हम भी कंधार की भाँति स्वतंत्र हो जाएँगे, दक्खिन के शाहों को हमारी क्षमता का अन्दाजा हो जाएगा। ईरान-नरेश समझेगा कि भारत में अब दम नहीं रहा तो वह कंधार से होता हुआ काबुल तक चला आएगा। और क्या आश्चर्य कि भारत की ओर भी मुँह कर ले, फिर तो काबुल के अफगान सिर उठाए बिना नहीं मानेंगे। संक्षेप

में यह कि इस समय कंधार अभियान से मुँह मोड़ना बहुत भयावह है।'

डाक्टर बर्नियर के उग्र तथा हितकर व्याख्यान ने श्रोताओं को प्रभावित कर दिया। शहजादा साहब तो सन्नाटे में आ गये। उन्होंने अभी तक यह नहीं सोचा था कि कंधार से अलग होने के क्या परिणाम होंगे, क्या — क्या कठिनाइयाँ सामने आएँगी। अब डाक्टर बर्नियर के मुँह से इस दुष्परिणाम का वर्णन सुनकर उनके होश उड़ गये। फिर हेनरी बोजे के इस भाषण ने कुछ ढाढ़स बँधाया — महानुभावो! डाक्टर बर्नियर साहब एक भ्रम में पड़ गये। सम्भवतः उनको ज्ञात नहीं है कि साम्राज्यों को अपना सिक्का जमाने के लिए केवल सेनाओं की ही आवश्यकता नहीं। ऐसे साम्राज्य जिनकी शक्ति हथियारों पर आधारित होती है, लम्बे समय तक नहीं बने रहते। बल्कि आवश्यकता है नैतिक बल की ताकि जनता के मन में उसकी ओर से कोई विपरीत धारणा उत्पन्न न हो। साम्राज्य का हरेक कथन तथा कार्य न्याय व समानता के समर्थन में हो, कोई उसे लालची न समझे। जब तक साम्राज्य इस कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा, न तो उसकी धाक दिलों में बैठेगी और न ही अन्य विपक्षी शक्तियाँ उसका लोहा मानेंगी। मैं मानता हूँ कि साम्राज्य को बहुत साहसी होना चाहिए ताकि जनता के दिल में भी जोश पैदा हो, अपने शासकों से साहस

का पाठ पढ़े, लेकिन यह ध्यान रहे कि साहस निरर्थक न हो। निरर्थक साहस और लोभ, दोनों समानार्थी शब्द हैं। मैं एक उदाहरण देकर समझाता हूँ कि सार्थक और निरर्थक साहस से मेरा क्या मंतव्य है। यूरोपीय देश बड़ी तत्परता से जहाज बना रहे हैं। सेनाओं की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। उन जहाजों पर दूर-दूर के देशों की यात्रा की जाती है, अन्य देशों से व्यापारिक अथवा क्षेत्रीय सम्बन्ध बनाए जाते हैं, नयी बस्तियाँ बसाई जाती हैं। इसे मैं सार्थक साहस कहता हूँ। लेकिन जब किसी कमजोर देश या शक्ति को तलवार के बल पर अधीन करने की कोशिश की जाती है तो मैं उसे निरर्थक साहस कहता हूँ क्योंकि उसके आवरण में अनीति और असमानता छिपी रहती है। अब आप स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि भारतीय साम्राज्य का कंधार को अभियान भेजना सार्थक है या निरर्थक। मैं कहता हूँ निरर्थक है, नितान्त निरर्थक। और अत्यन्त खेद का विषय है कि जनता का भी यही विचार है यद्यपि उसकी आवाज आपके कानों तक नहीं पहुँची। अब विचार कीजिए कि यह भावना उत्पन्न हो जाना कितना भयंकर है क्योंकि जब अन्य शक्तियाँ देखेंगी कि भारत विजय या विश्वविजय हेतु सन्नद्ध है तो वे शक्ति-संतुलन के लिए अपनी सेना बढ़ाएँगी और क्या आश्चर्य है कि आपस में संगठित होकर हिन्दुस्तान पर ही चढ़ दौड़ें। जहाँपनाह! डाक्टर

बर्नियर साहब ने कहा है कि अब भारत का यह संकल्प होना चाहिए कि लड़ेंगे, मरेंगे पर कंधार नहीं छोड़ेंगे। ये उनके मुँह से निकले हुए शब्द हैं। मैं उनकी अनुमति से कुछ शब्द और बढ़ाता हूँ अर्थात् कंधार को नहीं छोड़ेंगे! नहीं छोड़ेंगे! सारा संसार उलट-पलट हो जाये मगर कंधार को नहीं छोड़ेंगे! सारा संसार इकट्ठा हो जाये, हम मिट्टी में मिल जायें मगर हमसे कंधार नहीं छूटेगा! महानुभावो! ध्यान तो दीजिए यह सलाह है! एक छोटे से प्रान्त के लिये एक शानदार साम्राज्य को खतरे में डालना! मैं यह नहीं कहता कि खतरा सन्निकट है मगर खतरा सिर पर भी होता तो डाक्टर साहब के कथनानुसार हिन्दुस्तान को जान पर खेल जाना चाहिये था। यह सलाह नीतिसम्मत नहीं। नीतिसम्मत सलाह उसे कहते हैं कि साँप मर जाए और लाठी न टूटे। माना कि आपने पुनः कंधार को एक जबर्दस्त अभियान भेजा। मान लीजिए कि मामला लम्बा खिंचा। ईरान का शाह अपनी पूरी शक्ति के साथ आ डटा तो आपको सहायता की आवश्यकता हुई। और इस प्रकार आठ महीने बीत गये। नवें महीने में जब बर्फ पड़ने लगी तो आपको विवश होकर हटना पड़ा और शत्रु ने उस अवसर का दिल खोलकर लाभ उठाया। बताइये अपमान, दुर्दशा और असफलता के अतिरिक्त क्या हाथ लगा? आप कहेंगे कि हम पूरी शक्ति से कंधार पर आक्रमण करेंगे और आठ महीने

में ही उसे अधिकार में ले लेंगे। आप पूरी शक्ति से उधर गये, इधर हमारी जरा-जरा सी हलचल की टोह लेने वाले दक्खिनवासी, मरहठे और जाट मैदान खाली देखकर आ चढ़े। बताइये, उस समय भारत की सत्ता क्या करेगी? क्या किले की दीवारें लड़ेंगी या कलम पकड़ने वाले मुंशी, या सौदा बेचने वाले व्यापारी? जहाँपनाह! मैं डाक्टर साहब से सहमत हूँ कि सत्ता को अपना सिक्का जमाने की कोशिश करनी चाहिये। निस्सन्देह यदि उसकी धाक जम जाये तो बहुत अच्छा है मगर इसके लिए सत्ता को ही दाँव पर लगा देना कौन सी नीति है? यदि देश की वास्तविक शक्ति को आघात पहुँचाए बिना आप अपनी धाक जमा सकते हैं तो शौक से जमाइये, मगर मैं एक बार नहीं सौ बार कहूँगा कि यदि ऐसा करने से देश कमजोर होता हो तो इसका विचार भी मत कीजिए। दो अभियानों का असफल हो जाना स्पष्टतः सिद्ध करता है कि कंधार को जीतना मुँह का निवाला नहीं। लगभग आधी सदी के खूनखराबे के बाद भी दक्खिन के देशों का मुकाबले के लिए तैयार रहना उनकी आन्तरिक शक्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। मैं डंके की चोट कहता हूँ कि यह साम्राज्य उन दोनों उद्दण्ड शत्रुओं का सामना एक साथ नहीं कर सकता। कंधार और दक्खिन, दोनों पर विजय पाना कठिन है। इनमें से

एक ले लीजिये, कंधार या दक्खिन। मेरी सलाह यह है कि कंधार पर दक्खिन को वरीयता दीजिएगा।

जहाँपनाह! मेरा विचार है कि संसार के प्रत्येक प्रसिद्ध देश का पतन इसी कारण से हुआ कि उसने अपनी चादर से बाहर पाँव फैलाने की कोशिश की। उनके दुस्साहस लोभ-लालच की सीमा तक पहुँच गये। ईरान, यूनान, इटली, रोम सबने सीमा से अधिक पाँव फैलाये। केवल सैन्य शक्ति तथा तलवार के बल पर दूर-दूर के देशों को अधिकार में रखना चाहा, लेकिन परिणाम क्या हुआ।

उन्हें अधीन करने के अभिमान में अपनी शक्ति खो बैठे, यहाँ तक कि न केवल अपने अधिकृत क्षेत्रों से ही हाथ धो बैठना पड़ा बल्कि अपने जत्थे को भी खो बैठे। उनका नाम इतिहास से सदा के लिए मिट गया। इस गलती में भारत क्यों पड़े? अन्य देशों से प्रेरणा क्यों न ग्रहण करे? हिन्दुस्तान विस्तृत देश है। यदि हिन्दुस्तान की आबादी पच्चीस वर्षों में दोगुनी भी हो जाए तो सदियों तक तंगी की शिकायत भी सुनने को नहीं मिलेगी। कंधार को अधीनस्थ देशों में सम्मिलित करना युद्ध के खर्चे को अत्यधिक बढ़ाना है क्योंकि वहाँ की पहाड़ी जातियाँ सदा झगड़े और उपद्रव का बोलबाला रखेंगी और उन विद्रोहों को दबाने के लिए एक भारी सेना रखनी पड़ेगी। बस, केवल साम्राज्य को

विस्तार देने के विचार से कंधार पर आक्रमण करना या अभियान भेजना मेरी दृष्टि में उचित नहीं है।'

उस समय डाक्टर बर्नियर विचार-प्रवाह में डूबे हुए थे। उन्होंने हेनरी बोजे की आपत्तियों का खण्डन करने के लिए कुछ नोट किया था। उनके चेहरे से तनिक भी उत्साह या उतावलापन नहीं झलक रहा था। लोगों की दृष्टि उन पर लगी हुई थी कि देखें अब ये क्या उत्तर देते हैं। अन्ततः वे कई मिनट के असमंजस के पश्चात् बोले — महानुभावो! मुझे अत्यन्त खेद है कि इस समय मुझे कुछ अरुचिकर सच्चाइयों को प्रकट करना पड़ता है। परन्तु क्योंकि सच्चाइयाँ बहुत कम रुचिकर होती हैं, आशा है कि आप लोग मुझे क्षमा करेंगे। मेरे विद्वान् मित्र हेनरी बोजे साहब ने कहा है कि शासन की स्थापना और स्थायित्व नैतिक गुणों पर आधारित है, न कि प्राकृतिक गुणों पर। जिसका अर्थ यह है कि ऐ भूखण्ड के बादशाह! यह मार-काट किसलिए? यह लड़ाई-झगड़ा किसलिए? यह पैदल व सवार किसलिए? इन्हें नरक में फेंकिए। कुछ ईश्वरवादी, पवित्र, धर्मात्मा बुजुर्गों से कहिए कि जनपथ पर खड़े होकर उपदेश दिया करें, बस बाकी अल्लाह-अल्लाह खैर सल्ला। फिर देखिये कि कैसे झन्नाटे का शासन चलता है। आश्चर्य है कि मिस्टर बोजे साहब व्यापक अनुभव होने पर भी ऐसी बेतुकी गलती में पड़ गये। हम यह नहीं कहते कि जो

सिद्धान्त उन्होंने बताया है वह गलत है। लेशमात्र भी नहीं, वह बिल्कुल ठीक है।

लेकिन सिद्धान्त का ठीक होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि व्यावहारिक रूप में वह सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता हो। सम्भवतः ये विद्वान् यूटोपिया के लोकतंत्र का सपना देख रहे थे। वे भूल गये थे कि यूटोपिया का अस्तित्व सपने तक ही सीमित है और यहाँ उसकी चर्चा करना निरर्थक है। मैं मिस्टर बोजे से पूछता हूँ, भगवान् ने अच्छाई के साथ बुराई भी पैदा की थी। उनका उत्तर होगा नहीं, भगवान् ने अच्छाई पैदा की। अच्छाई की अनुपस्थिति बुराई है।

इस पर भी जिधर देखिए बुराई का ही बोलबाला है। अच्छाई और बुराई की जो पहली लड़ाई अदन के बाग में हुई, उसमें भी मैदान बुराई के ही हाथ रहा। संसार में मशाल लेकर ढूँढ़िए तब भी अच्छे आदमी कठिनाई से इतने मिल सकेंगे जो एक नगर बसा सकें। सारा संसार बुराई से भरा हुआ है। ऐसी दशा में क्योंकर सम्भव है कि कोई शासन बना रूह सके जब तक कि वह आतंकियों, उपद्रवियों, विद्रोहियों, अत्याचारियों के दमन के लिए सदा तत्पर न रहे। भगवान् से हमारी प्रार्थना है कि मिस्टर बोजे किसी देश के बादशाह हों और वे अपने सिद्धान्तों का पालन

करके सारे संसार को पाठ पढ़ाए कि नैतिक गुणों पर शासन कैसे बना रहता है।

जहाँपनाह! कौन नहीं जानता कि मनुष्य जाति के कर्त्तव्य पृथक्-पृथक् हैं। बाप का कर्त्तव्य बेटे के कर्त्तव्य से पृथक् है। बाप का कर्त्तव्य बेटे की शिक्षा-दीक्षा, रोटी-कपड़ा और अन्य आवश्यकताएँ उपलब्ध करना है। और बेटे का कर्त्तव्य है माता-पिता की आज्ञा का पालन करना और उनकी सेवा करना। बादशाह का कर्त्तव्य जनता के कर्त्तव्य से बिल्कुल पृथक् है। प्रजापालन तथा न्यायप्रियता बादशाहों के उच्चतम कर्त्तव्य हैं और आज्ञापालन तथा कृतज्ञता जनता के। यदि पिता अपने बेटे को मारे तो उसे कोई भी बुरा नहीं कह सकता, लेकिन पिता की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल पुत्र का एक कठोर वाक्य कहना भी पाप है। यदि सामान्य व्यक्ति बिना आज्ञा के दूसरे की वस्तुएँ ले ले तो उसे चोरी या लूट कहेंगे, लेकिन अपने अधीन करने के लिए एक बादशाह का दूसरे बादशाह पर आक्रमण करना लेशमात्र भी अनुचित नहीं है। राज्य का विस्तार करना तो बादशाहों का सर्वाधिक मुख्य कर्त्तव्य है क्योंकि प्रजापालन उसका एक विशेष अंग है। राज्य-विस्तार से व्यापार का विकास होता है, उद्योग-धन्धों की प्रगति होती है, प्रजा का राष्ट्रीय उत्साह बढ़ता है, देशभक्ति उत्पन्न होती है, अपनी जाति के कारनामों पर गर्व होता

है। क्या ये सब विशेष और लाभदायक परिणाम नहीं हैं? प्राचीन राष्ट्रों के विनाश को राज्य-विस्तार से सम्बद्ध करना बुद्धिमानी के प्रतिकूल है। रोम, ईरान तथा यूनान का नाम इस कारण नहीं मिटा कि उन्होंने अपने अधिकृत क्षेत्र को विस्तार दिया वरन् इस कारण से कि उनमें आलस्य, भीरुता, आरामतलबी, विषय लोलुपता और दुराचरण बढ़ गया। वे प्रकृति के उस कानून से प्रभावित हो गये जिसे प्रकृति का चुनाव कहते हैं। सृष्टि के आरम्भ से समस्त जीवधारियों में वह खींचतान, वह आपाधापी मची हुई है जिसे जीवन-संघर्ष कहें तो असंगत न होगा। इस जीवन-संघर्ष में शक्तिशाली की विजय होती है और जो दुर्बल तथा निर्बल हैं वे हारते हैं और उनका नाम अशुद्ध लेख की भाँति सदा के लिए जीवन-पृष्ठ से मिट जाता है। इस कानून का प्रभाव मनुष्य और पशु, सभी पर एक समान होता है। पशुओं की सैकड़ों प्रजातियाँ विलुप्त हो गईं और सैकड़ों बड़ी-बड़ी जातियाँ गुमनाम, क्योंकि एक विशेष अवधि के पश्चात् प्रत्येक जाति में वे बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जो धन, ऐश्वर्य, बड़प्पन तथा वैभव से सम्बद्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त काल की गति प्रगति पर है और जब कोई एक जाति दीर्घकाल तक बनी रहती है तो उसमें सहसा पुरानेपन की गन्ध आने लगती है। और, क्योंकि प्रगतिशीलता एक मानवीय गुण है, यह जाति अपनी परम्पराओं, सभ्यता और संस्कृति में ऐसे

परिवर्तन नहीं कर सकती जो वर्तमान काल के अनुकूल हों। अन्ततः नयी-नयी जातियाँ उठ खड़ी होती हैं जिनका उत्साह नया होता है, पुरानी जातियाँ उनका सामना नहीं कर सकतीं। क्या मिस्टर बोजे का आशय यह है कि हिन्दुस्तान इस जीवन-संघर्ष से मुँह फेर ले और डरपोक माना जाय और दूसरे नये देशों का शिकार बने? देखिये, आज योरोप में कैसे उत्साह से जीवन-संघर्ष हो रहा है। कौन सी सत्ता ऐसी है जो अपनी सीमाओं से बाहर पाँव फैलाने के लिये प्राणपन से प्रयास नहीं कर रही है। जहाज बनाए जा रहे हैं, उन पर हजारों मील की भयंकर यात्रा की जा रही है, कौड़ियों की भाँति रुपया फूँका जा रहा है और आदमियों की जानें अत्यल्प मूल्य पर बेची जा रही हैं। क्यों? इसलिए कि नयी बस्तियाँ बनाई जाएँ, देश का व्यापार विस्तृत हो, धन में वृद्धि हो और देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए जगह बने। दो सदियों में फ्रांस की जनसंख्या चौगुनी हो जायेगी। यदि अभी से रोकथाम न की जाए तो उसके लिए क्या जीवनाधार होगा। हम यह नहीं कहते कि इस समय हिन्दुस्तान को तंगी अनुभव हो रही है। नहीं, अभी बहुत से विस्तृत क्षेत्र नितान्त निर्जन हैं लेकिन निकट भविष्य में यहाँ भी आवश्यक रूप से तंगी अनुभव होगी। जनसंख्या का बढ़ना एक प्राकृतिक नियम है, इसे कोई नहीं रोक सकता।

हिन्दुस्तान योरोपीय देशों का अनुसरण और भविष्य के लिए अभी से प्रयास क्यों न करे। आगत काल को वर्तमान काल से अधिक मूल्यवान समझा जाता है।'

डाक्टर बर्नियर जिस समय अपने स्थान पर बैठे, सभाजनों ने प्रशंसा की बौछार कर दी।

विशेषकर शहजादे साहब को उनका भाषण बहुत अच्छा लगा, तत्काल सिंहासन से उतरकर उनसे हाथ मिलाया। हेनरी बोजे साहब मन ही मन में कटे जा रहे थे। वे समझते थे कि डाक्टर बर्नियर का सम्मान मेरा परोक्ष अपमान है क्योंकि डाक्टर साहब उनसे बहुत कम मतभेद किया करते थे, और अगर करते भी थे तो मुँह की खाते थे। मगर इस समय मैदान उन्हीं के हाथ रहा।

कुछ मिनटों के मौन के बाद भी जब हेनरी बोजे साहब अपने स्थान से न हिले तो पादरी जोजरेट ने यूँ मोती बिखराए — महानुभावो! मेरी जानकारी में सभ्य राष्ट्रों की विजयश्री से कभी यह आशय नहीं लिया जाना चाहिये कि अपने देश का ही फायदा सोचें, अपने देश को ही दौलत से मालामाल तथा निहाल करें और केवल अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए अन्य देशों की गरदन पर

आज्ञापालन का जुआ रख दें। बल्कि इन विजयों से विजित देशों का लाभ दृष्टि में रहना चाहिए।

यूनान की विजयों ने यूनान का केवल यश ही नहीं बढ़ाया बल्कि उसके विजित राष्ट्रों में ज्ञान व सभ्यता, उद्योग व व्यवसाय तथा सत्कलाओं की आधारशिला रखी। सारे यूरोप ने ही नहीं बल्कि सारे संसार ने यूनान के ही सांस्कृतिक विद्यालय में शिक्षा पाई है। यूनान ने संसार को सबसे पहले राजनीति के सिद्धान्त सिखाये। दर्शन और तर्कशास्त्र, पिंगल व रसायनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र व संगीतशास्त्र सब इसी यूनानी मस्तिष्क के खिलौने हैं। आज योरोप में यह आँखें चुँधिया देने वाला प्रकाश कहाँ होता यदि यूनान ने अपनी संस्कृति की प्रज्ज्वलित मशाल से उस घटाटोप अंधेरे को दूर न कर दिया होता। यूनान का इतिहास उन बलिदानों से भरा पड़ा है जो यूनानियों ने दूसरों को सभ्य बनाने के लिए किये। इटली की विजयों ने संसार पर वह उपकार किया जिसे वे अनन्त काल तक भूल नहीं सकते। जिसने सभ्य अनीश्वरवादियों को आदमी बनाया, जिसने संसार की मुक्ति का द्वार खोल दिया। महानुभावो! वह कौन सा उपकार है?

वह यह है कि इटली ने मसीह के मिशन को सारे संसार में फैलाया, मसीही प्रकाश से असत्य का अंधकार दूर किया। इटली से ही आध्यात्मिक प्यास बुझाने वाले पानी का स्रोत फूटा।

जहाँपनाह! कौन कहता है कि इटली का नामोनिशान मिट गया? कौन कहता है कि इटली की सत्ता विनष्ट हो गई? आज का संसार एक बड़ी इटली है और संसार के समस्त राज्य इटली का नाम रोशन कर रहे हैं। यदि सन् 200 ई. में इटली की बादशाहत उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी तो आज चौथे आकाश तक पहुँची हुई है। हरेक देश की संस्कृति, नैतिकता तथा व्यवहार, सत्ता के सिद्धान्त जो आज संसार में प्रचलित हैं, इटली की टकसाल में ही ढलकर निकले हैं। यहाँ तक कि हम पर यूनान का जो प्रभाव पड़ा है, वह भी इटली के कारण ही है। इटली की भाषा लैटिन ही आज संसार के सभ्य देशों की मान्य भाषा है।

भगवान् ने भारत को एशिया में ज्ञान तथा सभ्यता का खजांची बनाया है और अब कुछ दिनों से उसे अमूल्य मसीही रत्न भी सौंपे जाने लगे हैं। बस, उसका कर्त्तव्य है कि अन्य एशियाई देशों को अपनी सम्पदा से यश प्रदान करे, दिल खोलकर उस खजाने को लुटाए, विशाल हृदयता दिखाये, दानशीलता का प्रमाण दे। यदि इस अकूत सम्पदा से वह स्वयं लाभ उठाएगा तो स्वार्थी कहलाएगा, आने वाली पीढ़ियाँ उस पर कंजूसी का आरोप लगाएँगी। यदि वह संस्कृति का प्याला स्वयं पियेगा और दूसरे देशों को उससे आनन्दित नहीं होने देगा तो उस पर अपना ही

पेट भरने का आरोप लगाया जाएगा। बस, उसका कर्त्तव्य है कि कंधार को यह प्याला पिलाए और मन में समझे कि वह इस कार्य को करने के लिए ईश्वर द्वारा नियुक्त किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कंधार यह प्याला सरलता से नहीं पियेगा, मगर इसका कारण यह है कि वह इसके आनन्द को नहीं जानता, इसके लाभों से अनभिज्ञ है। अब भारत का कर्त्तव्य है कि उसे इसका आनन्द दे और इसका लाभ उसके मन में जमा दे।'

पादरी जोजरेट ने अपना भाषण समाप्त किया ही था कि खानदानी शहजादे ने सिंहासन से उतरकर उनसे हाथ मिलाया। हर्ष के आवेग से डाक्टर बर्नियर साहब का मुँह खिल उठा, मगर हेनरी बोजे साहब का चेहरा बुझ गया क्योंकि उन पर स्पष्टतः प्रकट हो गया कि अब मेरी सलाह स्वीकार किए जाने की तनिक भी आशा शेष नहीं रही। पादरी साहब का क्या पूछना! वे तो समझते थे आज जग जीत लिया। और क्यों न समझते! अब तक किसी ने इस दृष्टि से कंधार अभियान पर विचार नहीं किया था। यह पादरी साहब की ही सूझबूझ है।

इस भाषण के पश्चात् कई मिनट तक सन्नाटा रहा। अन्ततः शहजादे साहब ने कहा —

‘महानुभावो! मैं आपका हृदय से आभारी हूँ कि आपने अपने बुद्धिमत्तापूर्ण वक्तव्यों से मुझे प्रफुल्लित किया। जिस समय मैंने इस दीवाने खास में पाँव रखा था, मैं कंधार अभियान का धुर विरोधी था। दो निरन्तर पराजयों ने मेरा साहस तोड़ दिया था और स्वाभाविक रूप से मेरे मन में यह विचार उत्पन्न होता था कि ईश्वर ने इस प्रकार हमारे भ्रामक उत्साह का दण्ड दिया है। मगर डाक्टर बर्नियर और पादरी जोजरेट के प्रभावशाली वक्तव्यों ने मेरे विचारों की कायापलट कर दी और अब मेरा यह निश्चय है कि यथासम्भव कंधार को हाथों से न निकलने दूँगा। मैं कंधार को हिन्दुस्तान का एक प्रान्त बना दूँगा और यह कोई नयी बात नहीं है।

संस्कृत किताबें प्रमाण हैं कि प्राचीन काल में जब आर्यों की तूती बोल रही थी, तब कंधार भारत का एक प्रान्त था, दोनों देशों के शासकों में वैवाहिक सम्बन्ध थे। राजा धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी कंधार की राजपुत्री थी। दोनों बहनों में अब तनिक मनोमालिन्य हो गया है, लेकिन मैं उन्हें पुनः गले मिलाऊँगा।’

इस वक्तव्य के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

[उर्दू मासिक ’आजाद’, सितम्बर 1908]

दूसरी शादी

जब मैं अपने चार साल के लड़के रामसरूप को गौर से देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता हे कि उसमें वह भोलापन और आकर्षण नहीं रहा जो कि दो साल पहले था। वह मुझे अपने सुर्ख और रंजीदा आँखों से घूरता हुआ नजर आता है। उसकी इस हालत को देखकर मेरा कलेजा काँप उठता है और मुझे वह वादा याद आता है जो मैंने दो साल हुए उसकी माँ के साथ, जबकि वह मृत्यु-शय्या पर थी, किया था। आदमी इतना स्वार्थी और अपनी इन्द्रियों का इतना गुलाम है कि अपना फर्ज किसी-किसी वक्त ही महसूस करता है। उस दिन जबकि डाक्टर नाउम्मीद हो चुके थे, उसने रोते हुए मुझसे पूछा था, क्या तुम दूसरी शादी कर लोगे? जरूर कर लेना। फिर चौंककर कहा, मेरे राम का क्या बनेगा? उसका ख्याल रखना, अगर हो सके।

मैंने कहा — हाँ-हाँ, मैं वादा करता हूँ कि मैं कभी दूसरी शादी न करूँगा और रामसरूप, तुम उसकी फिक्र न करो, क्या तुम अच्छी न होगी? उसने मेरी तरफ हाथ फेंक दिया, जैसे कहा, लो अलविदा। दो मिनट बाद दुनिया मेरी आँखों में अंधेरी हो गई।

रामसरूप बे-माँ का हो गया। दो-तीन दिन उसको कलेजे से चिमटाये रखा। आखिर छुट्टी पूरी होने पर उसको पिता जी के सुपुर्द करके मैं फिर अपनी ड्यूटी पर चला गया।

दो-तीन महीने दिल बहुत उदास रहा। नौकरी की, क्योंकि उसके सिवाय चारा न था। दिल में कई मंसूबे बाँधता रहा। दो-तीन साल नौकरी करके रुपया लेकर दुनिया की सैर को निकल जाऊँगा, यह करूँगा, वह करूँगा, अब कहीं दिल नहीं लगता।

घर से खत बराबर आ रहे थे कि फलाँ-फलाँ जगह से नाते आ रहे है, आदमी बहुत अच्छे हैं, लड़की अकल की तेज और खूबसूरत है, फिर ऐसी जगह नहीं मिलेगी। आखिर करना है ही, कर लो। हर बात में मेरी राय पूछी जाती थी।

लेकिन मैं बराबर इनकार किये जाता था। मैं हैरान था कि इंसान किस तरह दूसरी शादी पर आमादा हो सकता है! जबकि उसकी सुन्दर और पतिप्राणा स्त्री को, जो कि उसके लिए स्वर्ग की एक भेंट थी, भगवान ने एक बार छीन लिया।

वक्त बीतता गया। फिर यार-दोस्तों के तकाजे शुरू हो गये। कहने लगे, जाने भी दो, औरत पैरों की जूती है, जब एक फट गई, दूसरी बदल ली। स्त्री का कितना भयानक अपमान है, यह कहकर मैं उनका मुँह बन्द कर दिया करता था। जब हमारी

सोसायटी जिसका इतना बड़ा नाम है, हिन्दू विधवा को दुबारा शादी कर लेने की इजाजत नहीं देती तो मुझको शोभा नहीं देता कि मैं दुबारा एक कुंवारी से शादी कर लूँ जब तक यह कलंक हमारी कौम से दूर नहीं हो जाता, मैं हर्गिज, कुँवारी तो दूर की बात है, किसी विधवा से भी ब्याह न करूँगा। खयाल आया, चलो नौकरी छोड़कर इसी बात का प्रचार करें। लेकिन मंच पर अपने दिल के खयालात जबान पर कैसे लाऊँगा। भावनाओं को व्यावहारिक रूप देने में, चरित्र मजबूत बनाने में, जो कहना उसे करके दिखाने में, हममें कितनी कमी हैं, यह मुझे उस वक्त मालूम हुआ जबकि छः माह बाद मैंने एक कुंवारी लड़की से शादी कर ली।

घर के लोग खुश हो रहे थे कि चलो किसी तरह माना। उधर उस दिन मेरी बिरादरी के दो-तीन पढ़े-लिखें रिश्तेदारों ने डाँट बताई — तुम जो कहा करते थे मैं बेवा से ही शादी करूँगा, लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया करते थे, अब वह तमाम बातें किधर गई? तुमने तो एक उदाहरण भी न रखा जिस पर हम चल सकते मुझ पर जैसे घड़ों पानी फिर गया। आँखें खुल गई। जवानी के जोश में क्या कर गुजरा। पुरानी भावनाएँ फिर उभर आई और आज भी मैं उन्हीं विचारों में डूबा हुआ हूँ।

सोचा था — नौकर लड़के को नहीं सम्हाल सकता, औरतें ही इस काम के लिए ठीक है। ब्याह कर लेने पर, जब औरत घर में आयेगी तो रामसरूप को अपने पास बाहर रख सकूँगा और उसका खासा ख्याल रखूँगा लेकिन वह सब कुछ गलत अक्षर की तरह मिट गया। रामस्वरूप को आज फिर वापस गाँव पिता जी के पास भेजने पर मजबूर हूँ। क्यों, यह किसी से छिपा नहीं। औरत का अपने सौतेले बेटे से प्यार करना एक असम्भव बात है। ब्याह के मौके पर सुना था लड़की बड़ी नेक हैं, स्वजनों का खास ख्याल रखेगी और अपने बेटे की तरह समझेगी लेकिन सब झूठ। औरत चाहे कितनी नेकदिल हो वह कभी अपने सौतेले बच्चे से प्यार नहीं कर सकती।

और यह हार्दिक दुख वह वादा तोड़ने की सजा है जो कि मैंने एक नेक बीबी से उसके आखिरी वक्त में किया था।

['चन्दर', सितम्बर, 1931]

देवी

बूढ़ों में जो एक तरह की बच्चों की-सी बेशर्मी आ जाती है वह इस वक्त भी तुलिया में न आई थी, यद्यपि उसके सिर के बाल चांदी हो गये थे। और गाल लटक कर दाढ़ों के नीचे आ गये थे। वह खुद भी निश्चित रूप से अपनी उम्र न बता सकती थी, लेकिन लोगों का अनुमान था कि वह सौ की सीमा को पार कर चुकी है। और अभी तक चलती तो अंचल से सिर ढाँककर, आँखें नीची किये हुए, मानो नवेली बहू है। थी तो चमारिन, पर क्या मजाल कि किसी घर का पकवान देखकर उसका जी ललचाया। गाँव में ऊँची जातों के बहुत-से घर थे। तुलिया का सभी जगह आना-जाना था। सारा गाँव उसकी इज्जत करता था और गृहिणियाँ तो उसे श्रद्धा की आँखों से देखती थीं। उसे आग्रह के साथ अपने घर बुलाती, उसके सिर में तेल डालती, माँग में सेंदूर भरती, कोई अच्छी चीज पकाई होती, जैसे हलवा या खीर या पकौड़ियाँ, तो उसे खिलाना चाहतीं, लेकिन बुढ़िया को जीभ से सम्मान कहीं प्यारा था। कभी न खाती। उसके आगे-पीछे कोई न था। उसके टोले के लोग कुछ तो गाँव छोड़कर भाग गये थे,

कुछ प्लेग और मलेरिया की भेंट हो गये थे और अब थोड़े-से खंडहर मानो उनकी याद में नंगे सिर खड़े छाती-सी पीट रहे थे। केवल तुलिया की मंड़ैया ही जिन्दा बच रही थी, और यद्यपि तुलिया जीवन-यात्रा की उस सीमा के निकट पहुँच चुकी थी, जहाँ आदमी धर्म और समाज के सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता हैं और अब श्रेष्ठ प्राणियों को भी उससे उसकी जात के कारण कोई भेद न था, सभी उसे अपने घर में आश्रय देने को तैयार थे, पर मान-प्रिय बुढ़िया क्यों किसी का एहसान ले, क्यों अपने मालिक की इज्जत में बट्टा लगाये, जिसकी उसने सौ बरस पहले केवल एक बार सूरत देखी थी। हाँ, केवल एक बार!

तुलिया की जब सगाई हुई तो वह केवल पाँच साल की थी और उसका पति अठारह साल का बलिष्ठ युवक था। विवाह करके वह कमाने पूरब चला गया। सोचा, अभी इस लड़की के जवान होने में दस —बारह साल की देर है। इतने दिनों में क्यों न कुछ धन कमा लूँ और फिर निश्चिन्त होकर खेती-बारी करूँ। लेकिन तुलिया जवान भी हुई, बूढ़ी भी हो गई, वह लौटकर घर न आया। पचास साल तक उसके खत हर तीसरे महीने आते रहे। खत के साथ जवाब के लिए एक पता लिखा हुआ लिफाफा भी होता था और तीस रुपये का मनीआर्डर। खत में वह बराबर अपनी विवशता, पराधीनता और दुर्भाग्य का रोना रोता था — क्या

करूँ तूला, मन में तो बड़ी अभिलाषा है कि अपनी मंड़ैया को आबाद कर देता और तुम्हारे साथ सुख से रहता, पर सब कुछ नसीब के हाथ है, अपना कोई बस नहीं। जब भगवान लावेंगे तब आऊँगा। तुम धीरज रखना, मेरे जीते जी तुम्हें कोई कष्ट न होगा। तुम्हारी बांह पकड़ी है तो मरते दम तक निबाह करूँगा। जब आँखें बन्द हो जाएँगी तब क्या होगा, कौन जाने? प्रायः सभी पत्रों में थोड़े-से — फेरफार के साथ यही शब्द और यही भाव होते थे। हाँ, जवानी के पत्रों में विरह की जो ज्वाला होती थी, उसकी जगह अब निराशा की राख ही रूह गई थी। लेकिन तुलिया के लिए सभी पत्र एक-से प्यारे थे, मानो उसके हृदय के अंग हों। उसने एक खत भी कभी न फाड़ा था — ऐसे शगुन के पत्र कहीं फाड़े जाते हैं — उनका एक छोटा-सा पोथा जमा हो गया था। उनके कागज का रंग उड़ गया था, स्याही भी उड़ गई थी, लेकिन तुलिया के लिए वे अभी उतने ही सजीव, उतने ही सतृष्ण, उतने ही व्याकुल थे। सब के सब उसकी पेटारी में लाल डोरे से बंधे हुए, उसके दीर्घ जीवन से संचित सोहाग की भांति, रखे हुए थे। इन पत्रों को पाकर तुलिया गद्‌गद हो जाती। उसके पाँव जमीन पर न पड़ते, उन्हें बार-बार पढ़वाती और बार-बार रोती। उस दिन वह अवश्य केशों में तेल डालती, सिन्दूर से माँग भरवाती, रंगीन साड़ी पहनती, अपनी पुरखिनों के चरन छूती और

आशीर्वाद लेती। उसका सोहाग जाग उठता था। गाँव की विरहिनियों के लिए पत्र पत्र नहीं, जो पढ़कर फेंक दिया जाता है, अपने प्यारे परदेसी के प्राण हैं, देह से मूल्यवान। उनमें देह की कठोरता नहीं, कलुषता नहीं, आत्मा की आकुलता और अनुराग है। तुलिया पति के पत्रों ही को शायद पति समझती थी। पति का कोई दूसरा रूप उसने कहाँ देखा था?

रमणियाँ हंसी से पूछती — क्यों बुआ, तुम्हें फूफा की कुछ याद आती है — तुमने उनको देखा तो होगा? और तुलिया के झुर्रियों से भरे हुए मुखमण्डल पर यौवन चमक उठता, आँखों में लाली आ जाती। पुलककर कहती — याद क्यों नहीं आती बेटा, उनकी सूरत तो आज भी मेरी आँखें के समाने हैं बड़ी-बड़ी आँखें, लाल-लाल ऊँचा माथा, चौड़ी छाती, गठी हुई देह, ऐसा तो अब यहाँ कोई पट्ठा ही नहीं है। मोतियों के-से दांत थे बेटा। लाल-लाल कुरता पहने हुए थे। जब ब्याह हो गया तो मैंने उनसे कहा, मेरे लिए बहुत-से गहने बनवाओगे न, नहीं मैं तुम्हारे घर नहीं रहूँगी। लड़कपन था बेटा, सरम-लिहाज कुछ थोड़ा ही था। मेरी बात सुनकर वह बड़े जोर से ठट्ठा मारकर हँसे और मुझे अपने कंधे पर बैठाकर बोले — मैं तुझे गहनों से लाद दूँगा, तुलिया, कितने गहने पहनेगी। मैं परदेस कमाने जाता हूँ, वहाँ से रुपये भेजूँगा, तू बहुत-से गहने बनवाना। जब वहाँ से आऊँगा तो अपने साथ भी

सन्दूक-भर गहने लाऊँगा। मेरा डोला हुआ था बेटा, माँ-बाप की ऐसी हैसियत कहाँ थी कि उन्हें बारात के साथ अपने घर बुलाते उन्हीं के घर मेरी उनसे सगाई हुई और एक ही दिन में मुझे वह कुछ ऐसे भाये कि जब वह चलने लगे तो मैं उनके गले लिपट कर रोती थी और कहती थी कि मुझे भी अपने साथ ले चलो, मैं तुम्हारा खाना पकाऊँगी, तुम्हारी खाट बिछाऊँगी, तुम्हारी धोती छाँटूगी। वहाँ उन्हीं के उमर के दो-तीन लड़के और बैठे हुए थे। उन्हीं के सामने वह मुस्करा कर मेरे कान में बोले — और मेरे साथ सोयेगी नहीं? बस, मैं उनका गला छोड़कर अलग खड़ी हो गई और उनके ऊपर एक कंकड़ फेंककर बोली — मुझे गाली दोगे तो कहे देती हूँ, हाँ!

और यह जीवन-कथा नित्य के सुमिरन और जाप से जीवन-मन्त्र बन गयी थी। उस समय कोई उसका चेहरा देखता! खिला पड़ता था। घूंघट निकालकर भाव बताकर, मुँह फेरकर हँसती हुई, मानो उसके जीवन में दुख जैसी कोई चीज है ही नहीं। वह अपने जीवन की इस पुण्य स्मृति का वर्णन करती, अपने अन्तस्तल के इस प्रकाश को दर्शाती जो सौ बरसों से उसके जीवन-पथ को कांटों और गढ़ों से बचाता आता था। कैसी अनन्त अभिलाषा था, जिसे जीवन-सत्यों ने जरा भी धूमिल न कर पाया था।

2

वह दिन भी थे, जब तुलिया जवान थी, सुंदर थी और पतंगों को उसके रूप-दीपक पर मँडराने का नशा सवार था। उनके अनुराग और उन्माद तथा समर्पण की कथाएँ जब वह काँपते हुए स्वरों और सजल नेत्रों से कहती तो शायद उन शहीदों की आत्माएँ स्वर्ग में आनन्द से नाच उठती होंगी, क्योंकि जीते जी उन्हें जो कुछ न मिला वही अब तुलिया उन पर दानों हाथों से निछावर कर रही थी। उसकी उठती हुई जवानी थी। जिधर से निकल जाती युवक समाज कलेजे पर हाथ रखकर रूह जाता। तब बंसीसिंह नाम का एक ठाकुर था, बड़ा छैला, बड़ा रसिया, गाँव का सबसे मनचला जवान, जिसकी तान रात के सन्नाटे में कोस-भर से सुनायी पड़ती थी। दिन में सैकड़ों बार तुलिया के घर के चक्कर लगाता। तालाब के किनारे, खेत में, खलिहान में, कुँए पर, जहाँ वह जाती, परछाईं की तरह उसके पीछे लगा रहता। कभी दूध लेकर उसके घर आता, कभी घी लेकर। कहता, तुलिया, मैं तुझसे कुछ नहीं चाहता, बस जो कुछ मैं तुझे भेंट किया करूँ, वह ले लिया कर। तू मुझसे नहीं बोलना चाहती मत बोल, मेरा मुँह नहीं देखना चाहती, मत देख लेकिन मेरे चढ़ावों को ठुकरा मत। बस, मैं इसी से सन्तुष्ट हो जाऊँगा। तुलिया ऐसी भोली न थी, जानती

थी यह उंगली पकड़ने की बातें हैं, लेकिन न जाने कैसे वह एक दिन उसके धोखे में आ गयी — नहीं, धोखे में नहीं आयी — उसकी जवानी पर उसे दया आ गयी। एक दिन वह पके हुए कलमी आमों की एक टोकरी लाया! तुलिया ने कभी कलमी आम न खाये थे। टोकरी उससे ले ली। फिर तो आये दिन आम की डलियाँ आने लगीं। एक दिन जब तुलिया टोकरी लेकर घर में जाने लगी तो बंसी ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर अपने सीने पर रख लिया और चट उसके पैरों पर गिर पड़ा। फिर बोला — तुलिया, अगर अब भी तुझे मुझ पर दया नहीं आती तो आज मुझे मार डाल। तेरे हाथों से मर जाऊँ, बस यही साध है।

तुलिया न टोकरी पटक दी, अपने पाँव छुड़ाकर एक पग पीछे हट गयी ओर रोषभरी आँखों से ताकती हुई बोली — अच्छा ठाकुर, अब यहाँ से चले जाव, नहीं तो या तो तुम न रहूँगी। तुम्हारे आमों में आग लगे, और तुमको क्या कहूँ! मेरा आदमी काले कोसों मेरे नाम पर बैठा हुआ है इसीलिए कि मैं यहाँ उसके साथ कपट करूँ! वह मर्द है, चार पैसे कमाता है, क्या वह दूसरी न रख सकता था? क्या औरतों की संसार में कमी है? लेकिन वह मेरे नाम पर चाहे न हो। पढ़ोगे उसकी चिट्ठियाँ जो मेरे नाम भेजता है? आप चाहे जिस दशा में हो, मैं कौन यहाँ बेठी देखती हूँ, लेकिन मेरे पास बराबर रुपये भेजता है। इसीलिए कि मैं यहाँ दूसरों से

विहार करूँ? जब तक मुझको अपनी और अपने को मेरा समझता रहेगा, तुलिया उसी की रहेगी, मन से भी, करम से भी। जब उससे मेरा ब्याह हुआ तब मैं पाँच साल की अल्हड़ छोकरी थी। उसने मेरे साथ कौन-सा सुख उठाया? बांह पकड़ने की लाज ही तो निभा रहा है! जब वह मर्द होकर प्रीत निभाता है तो मैं औरत होकर उसके साथ दगा करूँ!

यह कहकर वह भीतर गयी और पत्रों की पिटारी लाकर ठाकुर के सामने पटक दी। मगर ठाकुर की आँखों का तार बँधा हुआ था, ओठ बिचके जा रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि भूमि में धंसा जा रहा है।

एक क्षण के बाद उसने हाथ जोड़कर कहा — मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया तुलिया। मैंने तुझे पहचाना न था। अब इसकी यही सजा है कि इसी क्षण मुझे मार डाल। ऐसे पापी का उद्धार का यही एक मार्ग है।

तुलिया को उस पर दया नहीं आयी। वह समझती थी कि यह अभी तक शरारत किये जाता है। झल्लाकर बोली — मरने को जी चाहता है तो मर जाव। क्या संसार में कुँए-तालाब नहीं, या तुम्हारे पास तलवार-कटार नहीं है। मैं किसी को क्यों मारूँ?

ठाकुर ने हताश आँखों से देखा।

"तो यही तेरा हुक्म है?"

"मेरा हुक्म क्यों होने लगा? मरने वाले किसी से हुक्म नहीं माँगते।"

ठाकुर चला गया और दूसरे दिन उसकी लाश नदी में तैरती हुई मिली। लोगों ने समझा तड़के नहाने आया होगा, पाँव फिसल गया होगा। महीनों तक गाँव में इसकी चर्चा रही, पर तुलिया ने जबान तक न खोली, उधर का आना-जाना बन्द कर दिया।

बंसीसिंह के मरते ही छोटे भाई ने जायदाद पर कब्जा कर लिया और उसकी स्त्री और बालक को सताने लगा। देवरानी ताने देती, देवर ऐब लगाता। आखिर अनाथ विधवा एक दिन जिन्दगी से तंग आकर घर से निकल पड़ी। गाँव में सोता पड़ गया था। तुलिया भोजन करके हाथ में लालटेन लिये गाय को रोटी खिलाने निकली थी। प्रकाश में उसने ठकुराइन को दबे पाँव जाते देखा। सिसकती और अंचल से आँसू पोंछती जाती थी। तीन साल का बालक गोद में था।

तुलिया ने पूछा — इतनी रात गये कहाँ जाती हो ठकुराइन? सुनो, बात क्या है, तुम तो रो रही हो।

ठकुराइन घर से जा तो रही थी, पर उसे खुद न मालूम था कहाँ। तुलिया की ओर एक बार भीत नेत्रों से देखकर बिना कुछ

जवाब दिये आगे बढ़ी। जवाब कैसे देती? गले में तो आँसू भरे हुए थे और इस समय न जाने क्यों और उमड़ आये थे।

तुलिया सामने आकर बोली — जब तक तुम बता न दोगी, मैं एक पग भी आगे न जाने दूँगी।

ठकुराइन खड़ी हो गयी और आँसू-भरी आँखों से क्रोध में भरकर बोली — तू क्या करेगी पूछकर? तुझसे मतलब?

'मुझसे कोई मतलब ही नहीं? क्या मैं तुम्हारे गाँव में नहीं रहती? गाँव वाले एक-दूसरे के दुख-दर्द में साथ न देंगे तो कौन देगा?'

'इस जमाने में कौन किसका साथ देता है तुलिया? जब अपने घरवालों ने ही साथ नहीं दिया और तेरे भैया के मरते ही मेरे खून के प्यासे हो गये, तो फिर मैं और किससे आशा रखूँ? तुझसे मेरे घर का हाल कुछ छिपा है? वहाँ मेरे लिए अब जगह नहीं है। जिस देवर-देवरानी के लिए मैं प्राण देती थी, वही अब मेरे दुश्मन हैं। चाहते हैं कि यह एक रोटी खाय और अनाथों की तरह पड़ी रहे। मैं रखेली नहीं हूँ उढ़री हूँ, ब्याहता हूँ, दस गाँव के बीच में ब्याह के आयी हूँ। अपनी रत्ती-भी जायदाद न छोड़ूँगी ओर अपना राधा लेकर रहूँगी।'

'तेरे भैया', ये दो शब्द तुलिया को इतने प्यारे लगे कि उसने ठकुराइन को गले लगा लिया ओर उसका हाथ पकड़कर बोली

— तो बहिन, मेरे घर में चलकर रहो। और कोई साथ दे या न दे, तुलिया मरते दम तक तुम्हारा साथ देगी। मेरा घर तुम्हारे लायक नहीं है, लेकिन घर में और कुछ नहीं शान्ति तो है और मैं कितनी ही नीच हूँ, तुम्हारी बहिन तो हूँ।

ठकुराइन ने तुलिया के चेहरे पर अपनी विस्मय-भरी आँखें जमा दीं।

'ऐसा न हो मेरे पीछे मेरा देवर तुम्हारा भी दुश्मन हो जाय।'

'मैं दुश्मनों से नहीं डरती, नहीं इस टोले में अकेली न रहती।'

'लेकिन मैं तो नहीं चाहती कि मेरे कारन तुझ पर आफत आवे।'

'तो उनसे कहने ही कौन जाता है, और किसे मालूम होगा कि अन्दर तुम हो।'

ठकुराइन को ढाढ़स बँधा। सकुचाती हुई तुलिया के साथ अन्दर आयी। उसका हृदय भारी था। जो एक विशाल पक्के की स्वामिनी थी, आज इस झोपड़ी में पड़ी हुई है।

घर में एक ही खाट थी, ठकुराइन बच्चे के साथ उस पर सोती। तुलिया जमीन पर पड़ रहती। एक ही कम्बल था, ठकुराइन उसको ओढ़ती, तुलिया टाट का टुकड़ा ओढ़कर रात काटती। मेहमान का क्या सत्कार करे, कैसे रक्खे, यही सोचा करती।

ठकुराइन के जुठे बरतन माँजना, कपड़े छांटना, उसके बच्चे को खिलाना ये सारे काम वह इतने उमंग से करती, मानो देवी की उपासना कर रही हो। ठकुराइन इस विपत्ति में भी ठकुराइन थी, गर्विणी, विलासप्रिय, कल्पनाहीन। इस तरह रहती थी मानो उसी का घर है और तुलिया पर इस तरह रोब जमाती थी मानो वह उसकी लौंडी है। लेकिन तुलिया अपने अभागे प्रेमी के साथ प्रीति की रीति का निबाह कर रही थी, उसका मन कभी न मैला होता, माथे पर कभी न बल पड़ता।

एक दिन ठकुराइन ने कहा — तुला, तुम बच्चे को देखती रहना, मैं दो-चार दिन के लिए जरा बाहर जाऊँगी। इस तरह तो यहाँ जिन्दगी-भर तुम्हारी रोटियाँ तोड़ती रहूँगी, पर दिल की आग कैसे ठण्डी होगी? इस बेहया को इसकी जाल कहाँ कि उसकी भावज कहाँ चली गयी। वह तो दिल में खुश होगा कि अच्छा हुआ उसके मार्ग का कांटा हट गया। ज्यों ही पता चला कि मैं अपने मैके नहीं गयी, कहीं और पड़ी हूँ, वह तुरन्त मुझे बदनाम कर देगा और तब सारा समाज उसी का साथ देगा। अब मुझे कुछ अपनी फिक्र करनी चाहिए।

तुलिया ने पूछा — कहाँ जाना चाहती हो बहिन? कोई हर्ज न हो तो मैं भी साथ चलूँ। अकेली कहाँ जाओगी?

‘उस सांप को कुचलने के लिए कोई लाठी खोजूँगी।’

तुलिया इसका आशक न समझ सकी। उसके मुख की ओर ताकने लगी।

ठकुराइन ने निर्लज्जता के साथ कहा — तू इतनी मोटी-सी बात भी नहीं समझी! साफ-साफ ही सुनना चाहती है? अनाथ स्त्री के पास अपनी रक्षा का अपने रूप के सिवा दूसरा कौन अस्त्र है? अब उसी अस्त्र से काम लूँगी। जानती है, इस रूप के क्या दाम होंगे? इस भेड़िये का सिर। इस परगने का हाकिम जो कोई भी हो उसी पर मेरा जादू चलेगा। और ऐसा कौन मर्द है जो किसी युवती के जादू से बच सके, चाहे वह ऋषि ही क्यों न हो। धर्म जाता है जाय, मुझ परवाह नहीं। मैं यह नहीं देख सकती कि मैं बन-बन की पत्तियाँ तोड़ूँ और वह शोहदा मूँछों पर ताव देकर राज करे।

तुलिया को मालूम हुआ कि इस अभिमानिनी के हृदय पर कितनी गहरी चोट हैं इस व्यथा को शान्त करने के लिए वह जान ही पर नहीं खेल रही है, धर्म पर खेल रही है जिसे वह प्राणों से भी प्रिय समझती है। बंसीसिंह की वह प्रार्थी मूर्ति उसकी आँखों के समाने आ खड़ी हुई। वह बलिष्ठ था, अपनी फौलादी शक्ति से वह बड़ी आसानी के साथ तुलिया पर बल प्रयोग कर सकता था,

ओर उस रात के सन्नाटे में उस अनाथा की रक्षा करने वाला ही कौन बैठा हुआ था। पर उसकी सतीत्व-भरी भर्त्सना ने बंसीसिंह को किस तरह मोहित कर लिया, जैसे कोई काला भयंकर नाग महुअर का सुरीला राग सुनकर मस्त हो गया हो। उसी सच्चे सूरमा की कुली-मर्यादा आज संकट में है। क्या तुलिया उस मर्यादा को लुटने देगी और कुछ न करेगी? नहीं-नहीं! अगर बंसीसिंह ने उसके सत् को अपने प्राणों से प्रिय समझा तो वह भी उसकी आबरू को अपने धर्म से बचायेगी।

उसने ठकुराइन को तसल्ली देते हुए कहा — अभी तुम कहीं मत जाओ बहिन पहले मुझे अपनी शक्ति आजमा लेने दो। मेरी आबरू चली भी गयी तो कौन हँसेगा। तुम्हारी आबरू के पीछे तो एक कुल की आबरू है।

ठकुराइन ने मुस्कराकर उसको देखा। बोली — तू यह कला क्या जाने तुलिया?

‘कौन-सी कला?’

‘यही मर्दों को उल्लू बनाने की।’

‘मैं नारी हूँ?’

‘लेकिन पुरुषों का चरित्र तो नहीं जानती?’

‘यह तो हम-तुम दोनों माँ के पेट से सीखकर आयी हैं।’

‘कुछ बता तो क्या करेगी?’

‘वही जो तुम करने जा रही हो। तुम परगने के हाकिम पर अपना जादू डालना चाहती हो, मैं तुम्हारे देवर पर ज़ाला फेंकूगी।’

‘बड़ा घाघ है तुलिया।’

‘यही तो देखना है।’

3

तुलिया ने बाकी रात कार्यक्रम और उसका विधान सोचने में काटी। कुशल सेनापति की भांति उसने धावे और मार-काट की एक योजना-सी मन में बना ली। उसे अपनी विजय का विश्वास था। शत्रु निश्शंक था, इस धावे की उसे जरा भी खबर न थी।

बंसीसिंह का छोटा भाई गिरधर कंधे पर छः फीट का मोटा लट्ठ रखे अकड़ता चला आता था कि तुलिया ने पुकारा — ठाकुर, तनिक यह घास का गट्ठा उठाकर मेरे सिर पर रख दो। मुझसे नहीं उठता।

दोपहर हो गया था। मजदूर खेतों में लौटकर आ चुके थे। बगूले उठने लगे थे। तुलिया एक पेड़ के नीचे घास का गट्ठा रखे खड़ी थी। उसके माथे से पसीने की धार बह रही थी।

ठाकुन ने चौंककर तुलिया की ओर देखा उसी वक्त तुलिया का अंचल खिसक गया और नीचे की लाल चोली झलक पड़ी। उसने झट अंचल सम्हाल लिया, पर उतावली में जूड़े में गुँथी हुई फूलों की बेनी बिजली की तरह आँखें में कौंद गयी। गिरधर का मन चंचली हो उठा। आँखों में हल्का-सा नशा पैदा हुआ और चेहरे पर हल्की-सी सुर्खी और हल्की-सी मुस्कराहट। नस-नस में संगीत-सा गूँज उठा।

उसने तुलिया को हजारों बार देखा था, प्यासी आँखों, ललचायी आँखों से, मगर तुलिया अपने रूप और सत् के घमण्ड में उसकी तरह कभी आँखें तक न उठाती थी। उसकी मुद्रा और ढंग में कुछ ऐसी रुखाई, कुछ ऐसी निठुरता होती थी कि ठाकुर के सारे हौसले पस्त हो जाते थे, सारा शौक ठण्डा पड़ जाता था। आकाश में उड़ने वाले पंछी पर उसके जाल और दाने का क्या असर हो सकता था? मगर आज वह पंछी सामने वाली डाली पर आ बैठा था और ऐसा जान पड़ता था कि भूखा है। फिर वह क्यों न दाना और जाल लेकर दौड़े।

उसने मस्त होकर कहा — मैं पहुँचाये देता हूँ तुलिया, तू क्यों सिर पर उठायेगी।

'और कोई देख ले तो यही कहे कि ठाकुर को क्या हो गया है?'

'मुझे कुत्तों के भूँकने की परवा नहीं है।'

'लेकिन मुझे तो है।'

ठाकुर ने न माना। गट्ठा सिर पर उठा लिया और इस तरह आकाश में पाँव रखता चला मानो तीनों लोक का खजाना लूटे लिये जाता है।

4

एक महीना गुजर गया। तुलिया ने ठाकुर पर मोहिनी डाल दी थी और अब उसे मछली की तरह खेला रही थी। कभी बंसी ढीली कर देती, कभी कड़ी। ठाकुर शिकार करने चला था, खुद जाल में फंस गया। अपना इंसान और धर्म और प्रतिष्ठा सब कुछ होम करके वह देवी का वरदान न पा सकता था। तुलिया आज भी उससे उतनी ही दूर थी जितनी पहले।

एक दिन वह तुलिया से बोला — इस तरह कब तक जलायेगी तुलिया? चल कहीं भाग चलें।

तुलिया ने फंदे को और कसा — हाँ, और क्या। जब तुम मुँह फेर लो तो कहीं की न रहूँ। दीन से भी जाऊँ, दुनिया से भी!

ठाकुर ने शिकायत के स्वर में कहा — अब भी तुझे मुझ पर विश्वास नहीं आता?

'भौंरे फूल का रस लेकर उड़ जाते हैं।'

'और पतंगे जलकर राख नहीं हो जाते?'

'पतियाऊँ कैसे?'

'मैंने तेरा कोई हुक्म टाला है?'

'तुम समझते होगे कि तुलिया को एक रंगीन साड़ी और दो-एक छोटे-मोटे गहने देकर फँसा लूँगा। मैं ऐसी भोली नहीं हूँ।'

तुलिया ने ठाकुर के दिल की बात भांप ली थी। ठाकुर हैरत में आकर उसका मुँह ताकने लगा।

तुलिया ने फिर कहा — आदमी अपना घर छोड़ता है तो पहले कहीं बैठने का ठिकाना कर लेता है।

ठाकुर प्रसन्न होकर बोला — तो तू चलकर मेरे घर में मालेकिन बनकर रूह। मैं तुझसे कितनी बार कह चुका।

तुलिया आँखें मटकाकर बोली — आज मालेकिन बनकर रहूँ कल लौंडी बनकर भी न रहने पाऊँ, क्यों?

'तो जिस तरह तेरा मन भरे वह कर। मैं तो तेरा गुलाम हूँ।'

'बचन देते हो?'

'हाँ, देता हूँ। एक बार नहीं, सौ बार, हजार बार।'

'फिर तो न जाओगे?'

'वचन देकर फिर जाना नामर्दों का काम है।'

'तो अपनी आधी जमीन-जायदाद मेरे नाम लिख दो।'

ठाकुर अपने घर की एक कोठरी, दस-पाँच बीघे खेत, गहने-कपड़े तो उसके चरणों पर चढ़ा देने को तैयार था, लेकिन आधी जायदाद उसके नाम लिख देने का साहस उसमें न था। कल को तुलिया उससे किसी बात पर नाराज हो जाय, तो उसे आधी जायदाद से हाथ धोना पड़े। ऐसी औरत का क्या एतबार! उसे गुमान तक न था कि तुलिया उसके प्रेम की इतनी कड़ी परीक्षा लेगी। उसे तुलिया पर क्रोध आया। यह चमार की बिटिया जरा सुन्दर क्या हो गयी है कि समझती है, मैं अप्सरा हूँ। उसी मुहब्बत केवल उसके रूप का मोह थी। वह मुहब्बत, जो अपने

को मिटा देती है और मिट जाना ही अपने जीवन की सफलता समझती है, उसमें न थी।

उसने माथे पर बल लाकर कहा — मैं न जानता था, तुझे मेरी जमीन-जायदाद से प्रेम है तुलिया, मुझसे नहीं!

तुलिया ने छूटते ही जवाब दिया — तो क्या मैं न जानती थी कि तुम्हें मेरे रूप और जवानी ही से प्रेम है, मुझसे नहीं?

'तू प्रेम को बाजार का सौदा समझती है?'

'हाँ, समझती हूँ। तुम्हारे लिए प्रेम चार दिन की चांदनी होगी, मेरे लिए तो अंधेरा पाख हो जायगा। मैं जब अपना सब कुछ तुम्हें दे रही हूँ तो उसके बदले में सब कुछ लेना भी चाहती हूँ। तुम्हें अगर मुझसे प्रेम होता तो तुम आधी क्या पूरी जायदाद मेरे नाम लिख देते। मैं जायदाद क्या सिर पर उठा ले जाऊँगी? लेकिन तुम्हारी नीयत मालूम हो गयी। अच्छा ही हुआ। भगवान न करे कि ऐसा कोई समय आवे, लेकिन दिन किसी के बराबर नहीं जाते, अगर ऐसा कोई समय आया कि तुमको मेरे सामने हाथ पसारना पड़ा तो तुलिया दिखा देगी कि औरत का दिल कितना उदार हो सकता है।'

तुलिया झल्लायी हुई वहाँ से चली गयी, पर निराश न थी, न बेदिल। जो कुछ हुआ वह उसके सोचे हुए विधान का एक अंग

था। इसके आगे क्या होने वाला है इसके बारे में भी उसे कोई सन्देह न था।

5

ठाकुर ने जायदाद तो बचा ली थी, पर बड़े महँगे दामो। उसके दिल का इतमीनान गायब हो गया था। जिन्दगी में जैसे कुछ रूह ही न गया हो। जायदाद आँखों के समाने थी, तुलिया दिल के अन्दर। तुलिया जब रोज समाने आकर अपनी तिर्छी चितवनों से उसके हृदय में बाण चलाती थी, तब वह ठोस सत्य थी। अब जो तुलिया उसके हृदय में बैठी हुई थी, वह स्वप्न थी जो सत्य से कहीं ज्यादा मादक है, विदरक है।

कभी-कभी तुलिया स्वप्न की एक झलक-सी नजर आ जाती, और स्वप्न ही की भांति विलीन भी हो जाती। गिरधर उससे अपने दिल का दर्द कहने का अवसर ढूँढ़ता रहता लेकिन तुलिया उसके साये से भी परहेज करती। गिरधर को अब अनुभव हो रहा था कि उसके जीवन को सूखी बनाने के लिए उसकी जायदाद जितनी जरूरी है, उससे कहीं ज्यादा जरूरी तुलिया है। उसे अब अपनी कृपणता पर क्रोध आता। जायदाद क्या तुलिया के नाम रही, क्या

उसके नाम। इस जरा-सी बात में क्या रक्खा है। तुलिया तो इसलिए अपने नाम लिखा रही थी कि कहीं मैं उसके साथ बेवफाई कर जाऊँ तो वह अनाथ न हो जाय। जब मैं उसका बिना कौड़ी का गुलाम हूँ तो बेवफाई कैसी? मैं उसके साथ बेवफाई करूँगा, जिसकी एक निगाह के लिए, एक शब्द के लिए तरसता रहता हूँ। कहीं उससे एक बार एकान्त में भेंट हो जाती तो उससे कह देता — तूला, मेरे पास जो कुछ है, वह सब तुम्हारा है। कहो बखशिशनामा लिख हूँ, कहो बयनामा लिख दूँ। मुझसे जो अपराध हुआ उसके लिए नादिम हूँ। जायदाद से मनुष्य को जो एक संस्कार-गत प्रेम है, उसी ने मेरे मुँह से वह शब्द निकलवाये। यही रिवाजी लोभ मेरे और तुम्हारे बीच में आकर खड़ा हो गया। पर अब मैंने जाना कि दुनिया में वही चीज सबसे कीमती है जिससे जीवन में आनन्द और अनुराग पैदा हो। अगर दरिद्रता और वैराग्य में आनन्द मिले तो वही सबसे प्रिय वस्तु है, जिस पर आदमी जमीन और मिल्कियत सब कुछ होम कर देगा। आज भी लाखों माई के लाल हैं, जो संसार के सुखों पर लात मारकर जंगलों और पहाड़ों की सैर करने में मस्त हैं। और उस वक्त मैं इतनी मोटी-सी बात न समझा। हाय रे दुर्भाग्य!

6

एक दिन ठाकुर के पास तुलिया ने पैगाम भेजा — मैं बीमार हूँ, आकर देख जाव, कौन जाने बचूँ कि न बचूँ।

इधर कई दिन से ठाकुर ने तुलिया को न देखा था। कई बार उसके द्वार के चक्कर भी लगाए, पर वह न दीख पड़ी। अब जो यह संदेशा मिला तो वह जैसे पहाड़ से नीचे गिर पड़ा। रात के दस बजे होंगे। पूरी बात भी न सुनी और दौड़ा। छाती धड़क रही थी और सिर उड़ा जाता था, तुलिया बीमार है! क्या होगा भगवान्! तुम मुझे क्यों नहीं बीमार कर देते? मैं तो उसके बदले मरने को भी तैयार हूँ। दोनों ओर के काले-काले वृक्ष मौत के दूतों की तरह दौड़े चले आते थे। रह-रहकर उसके प्राणों से एक ध्वनि निकलती थी, हसरत और दर्द में डूबी हुई — तुलिया बीमार है!

उसकी तुलिया ने उसे बुलाया है। उस कृतघ्नी, अधम, नीच, हत्यारे को बुलाया है कि आकर मुझे देख जाओ, कौन जाने बचूँ कि न बचूँ। तू अगर न बचेगी तुलिया तो मैं भी न बचूँगा, हाय, न बचूँगा!! दीवार से सिर फोड़कर मर जाऊँगा। फिर मेरी और तेरी चिता एक साथ बनेगी, दोनों के जनाजे एक साथ निकलेंगे।

उसने कदम और तेज किए। आज वह अपना सब कुछ तुलिया के कदमों पर रख देगा। तुलिया उसे बेवफा समझती है। आज वह दिखाएगा, वफा किसे कहते हैं। जीवन में अगर उसने वफा न की तो मरने के बाद करेगा। इस चार दिन की जिन्दगी में जो कुछ न कर सका वह अनन्त युगों तक करता रहेगा। उसका प्रेम कहानी बनकर घर-घर फैल जाएगा।

मन में शंका हुई, तुम अपने प्राणों का मोह छोड़ सकोगे? उसने जोर से छाती पीटी ओर चिल्ला उठा — प्राणों का मोह किसके लिए? और प्राण भी तो वही है, जो बीमार है। देखूँ मौत कैसे प्राण ले जाती है, और देह को छोड़ देती है।

उसने धड़कते हुए दिल और थरथराते हुए पाँवों से तुलिया के घर में कदम रक्खा। तुलिया अपनी खाट पर एक चादर ओढ़े सिमटी पड़ी थी, और लालटेन के अन्धे प्रकाश में उसका पीला मुख मानो मौत की गोद में विश्राम कर रहा था।

उसने उसके चरणों पर सिर रख दिया और आँसुओं में डूबी हुई आवाज से बोला — तूला, यह अभागा तुम्हारे चरणों पर पड़ा हुआ है। क्या आँखें न खोलेगी?

तुलिया ने आँखें खोल दीं और उसकी ओर करुण दृष्टि डालकर कराहती हुई बोली — तुम हो गिरधर सिंह, तुम आ गए? अब मैं

आराम से मरूँगी। तुम्हें एक बार देखने के लिए जी बहुत बेचैन था। मेरा कहा — सुना माफ कर देना और मेरे लिए रोना मत। इस मिट्टी की देह में क्या रक्खा है गिरधर! वह तो मिट्टी में मिल जाएगी। लेकिन मैं कभी तुम्हारा साथ न छोड़ूँगी। परछाईं की तरह नित्य तुम्हारे साथ रहूँगी। तुम मुझे देख न सकोगे, मेरी बातें सुन न सकोगे, लेकिन तुलिया आठों पहर सोते-जागते तुम्हारे साथ रहेगी। मेरे लिए अपने को बदनाम मत करना गिरधर! कभी किसी के सामने मेरा नाम जबान पर न लाना। हाँ, एक बार मेरी चिता पर पानी के छींटे मार देना। इससे मेरे हृदय की ज्वाला शान्त हो जायगी।

गिरधर फूट-फूटकर रो रहा था। हाथ में कटार होती तो इस वक्त जिगर में मार लेता और उसके सामने तड़पकर मर जाता।

जरा दम लेकर तुलिया ने फिर कहा — मैं बचूँगी नहीं गिरधर, तुमसे एक बिनती करती हूँ, मानोगी?

गिरधर ने छाती ठोककर कहा — मेरी लाश भी तेरे साथ ही निकलेगी तुलिया। अब जीकर क्या करूँगा और जिऊँ भी तो कैसे? तू मेरा प्राण हे तुलिया।

उसे ऐसा मालूम हुआ तुलिया मुस्कराई।

‘नहीं-नहीं, ऐसी नादानी मत करना। तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, उनका पालन करना। अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम है, तो ऐसा कोई काम मत करना जिससे किसी को इस प्रेम की गन्ध भी मिले। अपनी तुलिया को मरने के पीछे बदनाम मत करना।

गिरधर ने रोकर कहा — जैसी तेरी इच्छा।

‘मेरी तुमसे एक बिनती है।’

‘अब तो जिऊँगी ही इसीलिए कि तेरा हुक्म पूरा करूँ, यही मेरे जीवन का ध्येय होगा।’

‘मेरी यही विनती है कि अपनी भाभी को उसी मान-मर्यादा के साथ रखना जैसे वह बंसीसिंह के सामने रहती थी। उसका आधा उसको दे देना।

‘लेकिन भाभी तो तीन महीने से अपने मैके में है, और कह गई है कि अब कभी न आऊँगी।’

‘यह तुमने बुरा किया है गिरधर, बहुत बुरा किया है। अब मेरी समझ में आया कि क्यों मुझे बुरे-बुरे सपने आ रहे थे। अगर चाहते हो कि मैं अच्छी हो जाऊँ, तो जितनी जल्दी हो सके, लिखा-पढ़ी करके कागज-पत्तर मेरे पास रख दो। तुम्हारी यह बददियानती ही मेरी जान का गाहक हो रही है। अब मुझे मालूम

हुआ कि बंसीसिंह क्यों मुझे बार-बार सपना देते थे। मुझे और कोई रोग नहीं है। बंसीसिंह ही मुझे सता रहे हैं। बस, अभी जाओ। देर की तो मुझे जीता न पाओगे। तुम्हारी बेइन्साफी का दंड बंसीसिंह मुझे दे रहे हैं।'

गिरधर ने दबी जबान से कहा — लेकिन रात को कैसे लिखा-पढ़ी होगी तूली। स्टाम्प कहाँ मिलेगा? लिखेगा कौन? गवाह कहाँ हैं?

'कल साँझ तक भी तुमने लिखा-पढ़ी कर ली तो मेरी जान बच जाएगी, गिरधर। मुझे बंसीसिंह लगे हुए हैं, वही मुझे सता रहे हैं, इसीलिए कि वह जानते हैं तुम्हें मुझसे प्रेम है। मैं तुम्हारे ही प्रेम के कारन मारी जा रही हूँ। अगर तुमने देर की तो तुलिया को जीता न पाओगे।'

'मैं अभी जाता हूँ तुलिया। तेरा हुक्म सिर और आँखों पर। अगर तूने पहले ही यह बात मुझसे कह दी होती तो क्यों यह हालत होती? लेकिन कहीं ऐसा न हो, मैं तुझे देख न सकूँ और मन की लालसा मन में ही रह जाय।'

'नहीं-नहीं, मैं कल साँझ तक नहीं मरूँगी, विश्वास रक्खो।'

गिरधर उसी छन वहाँ से निकला और रातों-रात पच्चीस कोस की मंजिल काट दी। दिन निकलते-निकलते सदर पहुँचा, वकीलों से सलाह-मशविरा किया, स्टाम्प लिया, भावज के नाम आधी जायदाद

लिखी, रजिस्ट्री कराई, और चिराग जलते-जलते हैरान-परीशान, थका-माँदा, बेदाना-पानी, आशा और दुराशा से काँपता हुआ आकर तुलिया के सामने खड़ा हो गया। रात के दस बज गए थे। उस वक्त न रेलें थीं, न लारियाँ, बेचारे को पचास कोस की कठिन यात्रा करनी पड़ी। ऐसा थक गया था कि एक-एक पग पहाड़ मालूम होता था। पर भय था कि कहीं देर तो अनर्थ हो जाएगा।

तुलिया ने प्रसन्न मन से पूछा — तुम आ गए गिरधर? काम कर आए?

गिरधर ने कागज उसके सामने रख दिया और बोला — हाँ तूला, कर आया, मगर अब भी तुम अच्छी न हुई तो तुम्हारे साथ मेरी जान भी जायगी। दुनिया चाहे हँसे, चाहे रोये, मुझे परवाह नहीं है। कसम ले लो, जो एक घूंट पानी भी पिया हो।

तुलिया उठ बैठी और कागज को अपने सिरहाने रखकर बोली — अब मैं बहुत अच्छी हूँ। सबेरे तक बिलकुल अच्छी हो जाऊँगी तुमने मेरे साथ जो नेकी की है, वह मरते दम तक न भूलूँगी। लेकिन अभी-अभी मुझे जरा नींद आ गई थी। मैंने सपना देखा कि बंसीसिंह मेरे सिरहाने खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं, तुलिया, तू ब्याहता है, तेरा आदमी हजार कोस पर बैठा तेरे नाम की माला जप रहा है। चाहता तो दूसरी कर लेता, लेकिन तेरे नाम

पर बैठा हुआ है और जन्म-भर बैठा रहेगा। अगर तूने उससे दगा की तो मैं तेरा दुश्मन हो जाऊँगा, और फिर जान लेकर ही छोड़ूँगा। अपना भला चाहती है तो अपने सत् पर रह। तूने उससे कपट किया, उसी दिन मैं तेरी सांसत कर डालूँगा। बस, यह कहकर वह लाल-लाल आँखों से मुझे तरेरते हुए चले गए।

गिरधर ने एक छन तुलिया के चेहरे की तरफ देखा, जिस पर इस समय एक दैवी तेज विराज रहा था, एकाएक जैसे उसकी आँखों के सामने से पर्दा हट गया और सारी साजिश समझ में आ गई। उसने सच्ची श्रद्धा से तुलिया के चरणों को चूमा और बोला — समझ गया तुलिया, तू देवी है।

['चांद', अप्रैल 1935]

देवी (2)

रात भीग चुकी थी। मैं बरामदे में खडा था। सामने अमीनुददौला पार्क नींद में डूबा खड़ा था। सिर्फ एक औरत एक तकियादार बेंच पर बैठी हुई थी। पार्क के बाहर सड़क के किनारे एक फकीर खड़ा राहगीरों को दुआएँ दे रहा था। खुदा और रसूल का वास्ता......राम और भगवान का वास्ता..... इस अंधे पर रहम करो।

सड़क पर मोटरों ओर सवारियों का ताँता बन्द हो चुका था। इक्के-दुक्के आदमी नजर आ जाते थे। फ़कीर की आवाज जो पहले नक्कारखाने में तूती की आवाज थी अब खुले मैदान की बुलंद पुकार हो रही थी! एकाएक वह औरत उठी और इधर उधर चौकन्नी आँखो से देखकर फकीर के हाथ में कुछ रख दिया और फिर बहुत धीमे से कुछ कहकर एक तरफ चली गयी। फकीर के हाथ मे कागज का टुकड़ा नजर आया जिसे वह बार बार मल रहा था। क्या उस औरत ने यह कागज दिया है?

यह क्या रहस्य है? उसके जानने के कुतूहल से अधीर होकर मै नीचे आया ओर फकीर के पास खड़ा हो गया। मेरी आहट पाते

ही फकीर ने उस कागज के पुर्जे को दो उंगलियों से दबाकर मुझे दिखाया। और पूछा — बाबा, देखो यह क्या चीज है?

मैंने देखा— दस रुपये का नोट था!

बोला— दस रुपये का नोट है, कहाँ पाया?

फकीर ने नोट को अपनी झोली में रखते हुए कहा — कोई खुदा की बन्दी दे गई है।

मैंने और कुछ न कहा। उस औरत की तरफ दौड़ा जो अब अंधेरे में बस एक सपना बनकर रह गयी थी।

वह कई गलियों मे होती हुई एक टूटे-फूटे गिरे-पड़े मकान के दरवाजे पर रुकी, ताला खोला और अन्दर चली गयी।

रात को कुछ पूछना ठीक न समझकर मै लौट आया।

रातभर मेरा जी उसी तरफ लगा रहा। एकदम तड़के मै फिर उस गली में जा पहुँचा। मालूम हुआ वह एक अनाथ विधवा है।

मैंने दरवाजे पर जाकर पुकारा — देवी, मैं तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ। औरत बहार निकल आयी। ग़रीबी और बेकसी की जिन्दा तस्वीर मैंने हिचकते हुए कहा — रात आपने फकीर को —

देवी ने बात काटते हुए कहा— अजी वह क्या बात थी, मुझे वह नोट पड़ा मिल गया था, मेरे किस काम का था।

मैंने उस देवी के कदमों पर सिर झुका दिया।

['प्रेमचालीसा' से]

दो बहनें

दोनों बहनें दो साल के बाद एक तीसरे नातेदार के घर मिलीं और खूब रो-धोकर खुश हुईं तो बड़ी बहन रूपकुमारी ने देखा कि छोटी बहन रामदुलारी सिर से पाँव तक गहनों से लदी हुई है, कुछ उसका रंग खुल गया है, स्वभाव में कुछ गरिमा आ गयी है और बातचीत करने में ज्यादा चतुर हो गयी है। कीमती बनारसी साड़ी और बेलदार उन्नावी मखमल के जम्पर ने उसके रूप को और भी चमका दिया — वही रामदुलारी, लड़कपन में सिर के बाल खोले, फूहड़-सी इधर-उधर खेला करती थी। अन्तिम बार रूपकुमारी ने उसे उसके विवाह में देखा था, दो साल पहले। तब भी उसकी शक्ल-सूरत में कुछ ज्यादा अन्तर न हुआ था। लम्बी तो हो गयी थी, मगर थी उतनी ही दुबली, उतनी ही फूहड़, उतनी ही मन्दबुद्धि। जरा-जरा सी बात पर रूठने वाली, मगर आज तो कुछ हालत ही और थी, जैसे कली खिल गयी हो और यह रूप इसने छिपा कहाँ रखा था? नहीं, आँखों को धोखा हो रहा है। यह रूप नहीं केवल आँखों को लुभाने की शक्ति है, रेशम और मखमल और सोने के बल पर वह रूपरेखा थोड़े ही बदल

जाएगी। फिर भी आँखों में समाई जाती है। पच्चासों स्त्रियाँ जमा हैं, मगर यह आकर्षण, यह जादू और किसी में नहीं। कहीं आईना मिलता तो वह जरा अपनी सूरत भी देखती। घर से चलते समय उसने आईना देखा था। अपने रूप को चमकाने के लिए जितना सोना चढ़ा सकती थी, उससे कुछ अधिक ही चढ़ाया था। लेकिन अब वह सूरत जैसे स्मृति से मिट गयी है, उसकी धुँधली-सी परछाहीं भर हृदय-पट पर है।

उसे फिर से देखने के लिए वह बेकरार हो रही है। वह अब तुलनात्मक दृष्टि से देखेगी, रामदुलारी में यह आकर्षण कहाँ से आया, इस रहस्य का पता लगाएगी। यों उसके पास मेकअप की सामग्रियों के साथ छोटा-सा आईना भी है, लेकिन भीड़-भाड़ में वह आईना देखने या बनाव-सिंगार की आदी नहीं है। ये औरतें दिल में न जाने क्या समझें। मगर यहाँ कोई आईना तो होगा ही। ड्राइंग-रूम में जरूर ही होगा। वह उठकर ड्रांइग-रूम में गयी और क़द्देआदम शीशे में अपनी सूरत देखी। वहाँ इस वक्त और कोई न था। मर्द बाहर सहन में थे, औरतें गाने-बजाने में लगी हुई थीं। उसने आलोचनात्मक दृष्टि से एक-एक अंग को, अंगों के एक-एक विन्यास को देखा। उसका अंग-विन्यास, उसकी मुखछवि निष्कलंक है। मगर वह ताजगी, वह मादकता, वह माधुर्य नहीं है। हाँ, नहीं है। वह अपने को धोखे में नहीं डाल

सकती। कारण क्या है? यही कि रामदुलारी आज खिली है, उसे खिले जमाना हो गया। लेकिन इस ख्याल से उसका चित्त शान्त नहीं होता। वह रामदुलारी से हेठी बनकर नहीं रह सकती। ये पुरुष भी कितने गावदी होते हैं।

किसी में भी सच्चे सौन्दर्य की परख नहीं। इन्हें तो जवानी और चंचलता और हाव-भाव चाहिए। आँखें रखकर भी अन्धे बनते हैं। भला इन बातों का आपसे क्या सम्बन्ध! ये तो उम्र के तमाशे हैं। असली रूप तो वह है, जो समय की परवाह न करे। उसके कपड़ों में रामदुलारी को खड़ा कर दो, फिर देखो, यह सारा जादू कहाँ उड़ जाता है। चुड़ैल-सी नजर आये। मगर इन अन्धों को कौन समझाये। मगर रामदुलारी के घरवाले तो इतने सम्पन्न न थे। विवाह में जो जोड़े और गहने आये थे, वे तो बहुत ही निराशाजनक थे। खुशहाली का दूसरा कोई सामान भी न था। इसके ससुर एक रियासत के मुख्तारआम थे, और दूल्हा कालेज में पढ़ता था। इस दो साल में कहाँ से यह हुन बरस गया। कौन जाने, गहने कहीं से माँग लायी हो। कपड़े भी माँगे हो सकते हैं। कुछ औरतों को अपनी हैसियत बढ़ाकर दिखाने की लत होती है। तो वह स्वाँग रामदुलारी को मुबारक रहे। मैं जैसी हूँ, वैसी अच्छी हूँ। प्रदर्शन का यह रोग कितना बढ़ता जाता है। घर में रोटियों का ठिकाना नहीं है, मर्द 25-30 रुपये पर क़लम घिस रहा

है; लेकिन देवीजी घर से निकलेंगी तो इस तरह बन-ठनकर, मानों कहीं की राजकुमारी हैं। बिसातियों के और दरजियों के तकाजे सहेंगी, बजाज के सामने हाथ जोड़ेंगी, शौहर की घुड़कियाँ खाएँगी, रोएँगी, रूठेंगी, मगर

प्रदर्शन के उन्माद को नहीं रोकतीं। घरवाले भी सोचते होंगे, कितनी छिछोरी तबियत है इसकी! मगर यहाँ तो देवीजी ने बेहयाई पर कमर बाँध ली है। कोई कितना ही हँसे, बेहया की बला दूर। उन्हें तो बस यही धुन सवार है कि जिधर से निकल जाएँ, उधर लोग हृदय पर हाथ रखकर रह जाएँ। रामदुलारी ने जरूर किसी से गहने और जेवर माँग लिये बेशर्म जो है!

उसके चेहरे पर आत्म-सम्मान की लाली दौड़ गयी। न सही उसके पास जेवर और कपड़े। उसे किसी के सामने लज्जित तो नहीं होना पड़ता! किसी से मुँह तो नहीं चुराना पड़ता। एक-एक लाख के तो उसके दो लड़के हैं। भगवान् उन्हें चिरायु करे, वह इसी में खुश है। खुद अच्छा पहन लेने और अच्छा खा लेने से जीवन का उद्देश्य नहीं पूरा हो जाता। उसके घरवाले गरीब हैं, पर उनकी इज्जत तो है, किसी का गला तो नहीं दबाते, किसी का शाप तो नहीं लेते!

इस तरह अपने मन को ढाढ़स देकर वह फिर बरामदे में आयी, तो रामदुलारी ने जैसे उसे दया की आँखों से देखकर कहा — जीजाजी की कुछ तरक्की-वरक्की हुई कि नहीं बहन! या अभी तक वही 75 रुपये पर कलम घिस रहे हैं?

रूपकुमारी की देह में आग-सी लग गयी। ओफ्फोह रे दिमाग़! मानों इसका पति लाट ही तो है। अकड़कर बोली — तरक्की क्यों नहीं हुई। अब सौ के ग्रेड में हैं। आजकल यह भी गनीमत है, नहीं अच्छे-अच्छे एम. ए. पासों को देखती हूँ कि कोई टके को नहीं पूछता। तेरा शौहर तो अब बी. ए. में होगा?

रामदुलारी ने नाक सिकोड़कर कहा — उन्होंने तो पढ़ना छोड़ दिया बहन, पढ़कर औकात खराब करना था और क्या। एक कम्पनी के एजेन्ट हो गये हैं। अब ढाई सौ रुपये माहवार पाते हैं। कमीशन ऊपर से। पाँच रुपये रोज सफर-खर्च के भी मिलते हैं। यह समझ लो कि पाँच सौ का औसत पड़ जाता है। डेढ़ सौ माहवार तो उनका निज खर्च है बहन! ऊँचे ओहदे के लिए अच्छी हैसियत भी तो चाहिए। साढ़े तीन सौ बेदाग़ घर दे देते हैं। उसमें से सौ रुपये मुझे मिलते हैं, ढाई सौ में घर का खर्च खुशफैली से चल जाता है। एम. ए. पास करके क्या करते!

रूपकुमारी इस कथन को शेखचिल्ली की दास्तान से ज्यादा महत्व नहीं देना चाहती, मगर रामदुलारी के लहजे में इतनी विश्वासोत्पादकता है कि वह अपनी निम्न चेतना में उससे प्रभावित हो रही है और उसके मुख पर पराजय की खिन्नता साफ झलक रही है। मगर यदि उसे बिलकुल पागल नहीं हो जाना है तो इस ज्वाला को हृदय से निकाल देना पड़ेगा। जिरह करके अपने मन को विश्वास दिलाना पड़ेगा कि इसके काव्य में एक चौथाई से ज्यादा सत्य नहीं है। एक चौथाई तक वह सह सकती है। इससे ज्यादा उससे न सहा जाएगा। इसके साथ ही उसके दिल में धड़कन भी है कि कहीं यह कथा सत्य निकली तो वह रामदुलारी को कैसे मुँह दिखाएगी। उसे भय है कि कहीं उसकी आँखों से आँसू न निकल पड़ें। कहाँ पछत्तर और कहाँ पाँच सौ! इतनी बड़ी रकम आत्मा की हत्या करके भी क्यों न मिले, फिर भी रूपकुमारी के लिए असह्य है। आत्मा का मूल्य अधिक से अधिक सौ रुपये हो सकता है। पाँच सौ किसी हालत में भी नहीं।

उसने परहास के भाव से पूछा — जब एजेण्टी में इतना वेतन और भत्ता मिलता है तो ये सारे कालेज बन्द क्यों नहीं हो जाते? हजारों लड़के क्यों अपनी जिन्दगी खराब करते हैं?

रामदुलारी बहन के खिसियानेपन का आनन्द उठाती हुई बोली — बहन, तुम यहाँ भूल कर रही हो। एम. ए. तो सभी पास हो सकते हैं, मगर एजेण्टी बिरले ही किसी को आती है। यह तो ईश्वर की देन है। कोई जिन्दगी-भर पढ़ता रहे, मगर यह जरूरी नहीं कि वह वह अच्छा एजेन्ट भी हो जाए। रुपये पैदा करना दूसरी बात है। आलिम-फ़ाज़िल हो जाना दूसरी बात। अपने माल की श्रेष्ठता का विश्वास पैदा कर देना, यह दिल में जमा देना कि इससे सस्ता और टिकाऊ माल बाजार में मिल ही नहीं सकता, आसान काम नहीं हैं एक-से-एक घाघों से उनका साबका पड़ता है। बड़े-बड़े राजाओं और रईसों का मत फेरना पड़ता है, तब जाके कहीं माल बिकता है। मामूली आदमी तो राजाओं और नवाबों के सामने ही न जा सके। पहुँच ही न हो। और किसी तरह पहुँच भी जाय तो जबान न खुले। पहले-पहले तो इन्हें भी झिझक हुई थी, मगर अब तो इस सागर के मगर हैं। अगले साल तरक्की होने वाली है।

रूपकुमारी की धमनियों में रक्त की गति जैसे बन्द हुई जा रही है। निर्दयी आकाश गिर क्यों नहीं पड़ता! पाषाण-हृदया धरती फट क्यों नहीं जाती! यह कहाँ का न्याय है कि रूपकुमारी जो रूपवती है, तमीज़दार है, सुघड़ है, पति पर जान देती है, बच्चों को प्राणों से ज्यादा चाहती है, थोड़े में गृहस्थी को इतने अच्छे ढंग से चलाती

है, उसकी तो यह दुर्गति, और यह घमण्डिन, बदतमीज, विलासिनी, चंचल, मुँहफट छोकरी, जो अभी तक सिर खोले घूमा करती थी, रानी बन जाए? मगर उसे अब भी कुछ आशा बाकी थी। शायद आगे चलकर उसके चित्त की शान्ति का कोई मार्ग निकल आये।

उसी परहास के स्वर में बोली — तब तो शायद एक हजार मिलने लगें?

‘एक हजार तो नहीं, पर छः सौ में सन्देह नहीं?’

‘कोई आँखों का अन्धा मालिक फँस गया होगा?’

व्यापारी आँखों के अन्धे नहीं होते दीदी! उनकी आँखें हमारी-तुम्हारी आँखों से कहीं तेज होती

हैं। जब तुम उन्हें छः हजार कमाकर दो, तब कहीं छः सौ मिलें। जो सारी दुनिया को चराये उसे कौन बेवकूफ बनाएगा।’

परहास से काम न चलते देखकर रूपकुमारी ने अपमान का अस्त्र निकाला — मैं तो इसे बहुत अच्छा पेशा नहीं समझती। सारे दिन झूठ के तूमार बाँधो। यह तो ठग-विद्या है!

रामदुलारी जोर से हँसी। बहन पर उसने पूरी विजय पायी थी।

'इस तरह तो जितने वकील-बैरिस्टर हैं; सभी ठग-विद्या करते हैं। अपने मुवक्किल के फायदे के लिए उन्हें क्या नहीं करना पड़ता? झूठी शहादतें तक बनानी पड़ती हैं। मगर उन्हीं वकीलों और बैरिस्टरों को हम अपना लीडर कहते हैं, उन्हें अपनी कौमी सभाओं का प्रधान बनाते हैं, उनकी गाड़ियाँ खींचते हैं, उन पर फूलों और अशर्फियों की वर्षा करते हैं, उनके नाम से सड़कें, प्रतिमाएँ और संस्थाएँ बनाते हैं। आजकल दुनिया पैसा देखती है। आजकल ही क्यों? हमेशा से धन की यही महिमा रही है। पैसे कैसे आएँ, यह कोई नहीं देखता। जो पैसे वाला है, उसी की पूजा होती है। जो अभागे हैं, अयोग्य हैं, या भीरु हैं, वे आत्मा और सदाचार की दुहाई देकर अपने आँसू पोंछते हैं। नहीं, आत्मा और सदाचार को कौन पूछता है।'

रूपकुमारी खामोश हो गयी। अब उसे यह सत्य उसकी सारी वेदनाओं के साथ स्वीकार करना पड़ेगा कि रामदुलारी सबसे ज्यादा भाग्यवान है। इससे अब त्राण नहीं। परहास या अनादर से वह अपनी तंगदिली का प्रमाण देने के सिवा और क्या पाएगी। उसे किसी बहाने से रामदुलारी के घर जाकर असलियत की छान-बीन करनी पड़ेगी। अगर रामदुलारी वास्तव में लक्ष्मी का वरदान पा गयी है तो रूपकुमारी अपनी किस्मत ठोंककर बैठ

रहेगी। समझ लेगी कि दुनिया में कहीं न्याय नहीं है, कहीं ईमानदारी की पूछ नहीं है।

मगर क्या सचमुच उसे इस विचार से सन्तोष होगा? यहाँ कौन ईमानदार है? वही, जिसे बेईमानी करने का अवसर नहीं है और न इतनी बुद्धि या मनोबल है कि वह अवसर पैदा कर ले। उसके पति 75 रुपये पाते हैं; पर क्या दस-बीस रुपये और ऊपर से मिल जाएँ तो वह खुश होकर ले न लेंगे? उनकी ईमानदारी और सत्यवादिता उसी समय तक है, जब तक अवसर नहीं मिलता। जिस दिन मौका मिला, सारी सत्यवादिता धरी रूह जाएगी। और क्या रूपकुमारी में इतना नैतिक बल है कि वह अपने पति को हराम का माल हज़म करने से रोक दे? रोकना तो दूर की बात है, वह प्रसन्न होगी, शायद पतिदेव की पीठ ठोकेगी। अभी उनके दफ्तर से आने के समय वह मन मारे बैठी रहती है। तब वह द्वार पर खड़ी होकर उनकी बाट जोहेगी, और ज्योंही वह घर में आएँगे, उनकी जेबों की तलाशी लेगी। आँगन में गाना-बजाना हो रहा था। रामदुलारी उमंग के साथ गा रही थी, और रूपकुमारी वहीं बरामदे में उदास बैठी हुई थी। न जाने क्यों उसके सिर में दर्द होने लगा था। कोई गाये, कोई नाचे, उससे प्रयोजन नहीं। वह तो अभागिन है। रोने के लिए पैदा की गयी है।

नौ बजे रात को मेहमान रुखसत होने लगे। रूपकुमारी भी उठी। एक्का मँगवाने जा रही थी कि रामदुलारी ने कहा — एक्का मँगवाकर क्या करोगी बहन, मुझे लेने के लिए कार आती होगी; चलो

दो-चार दिन मेरे यहाँ रहो, फिर चली जाना। मैं जीजाजी को कहला भेजूँगी तुम्हारा इन्तजार न करें।

रूपकुमारी का यह अन्तिम अस्त्र भी बेकार हो गया। रामदुलारी के घर जाकर हालचाल की टोल लेने की इच्छा गायब हो गयी। वह अब अपने घर जाएगी और मुँह ढाँपकर पड़ी रहेगी। इन फटेहालों में क्यों किसी के घर जाए। बोली — नहीं, अभी तो मुझे फुरसत नहीं है, बच्चे घबरा रहे होंगे। फिर कभी आऊँगी।

‘क्या रात-भर भी न ठहरोगी?’

‘नहीं।’

‘अच्छा बताओ, कब आओगी? मैं सवारी भेज दूँगी।’

‘मैं खुद कहला भेजूँगी।’

‘तुम्हें याद न रहेगी। साल-भर हो गया, भूलकर भी याद न किया। मैं इसी इन्तजार में थी कि दीदी बुलावें तो चलूँ। एक

ही शहर में रहते हैं, फिर भी इतनी दूर कि साल भर गुजर जाए और मुलाकात तक न हो।'

रूपकुमारी इसके सिवा और क्या कहे कि घर के कामों से छुट्टी नहीं मिलती। कई बार उसने इरादा किया कि दुलारी को बुलाये, मगर अवसर ही न मिला। सहसा रामदुलारी के पति मि. गुरुसेवक ने आकर बड़ी साली को सलाम किया। बिलकुल अँगरेजी सज-धज, मुँह में चुरुट, कलाई पर सोने की घड़ी, आँखों पर सुनहरी ऐनक, जैसे कोई सिविलियन हो। चेहरे से जेहानत और शराफत बरस रही थी। वह इतना रूपवान् और सजीला है, रूपकुमारी को अनुमान न था। कपड़े जैसे उसकी देह पर खिल रहे थे।

आशीर्वाद देकर बोली — आज यहाँ न आती तो मुझसे मुलाकात क्यों होती!

गुरुसेवक हँसकर बोला — यह उलटी शिकायत! क्यों न हो। कभी आपने बुलाया और मैं न गया?

'मैं नहीं जानती थी कि तुम अपने को मेहमान समझते हो। वह भी तो तुम्हारा ही घर है।'

रामदुलारी देख रही थी कि मन में उससे ईर्ष्या रखते हुए भी वह कितनी वाणी-मधुर, कितनी स्निग्ध, कितनी अनुग्रह-प्रार्थिनी होती जा रही है।

गुरुसेवक ने उदार मन से कहा — हाँ, अब मान गया भाभी साहब, बेशक मेरी गलती है। इस दृष्टि से मैंने विचार नहीं किया था। मगर आज तो मेरे घर रहिए।

'नहीं आज बिलकुल अवकाश नहीं है। फिर कभी आऊँगी। लड़के घबरा रहे होंगे।'

रामदुलारी बोली — मैं कितना कहके हार गयी, मानती ही नहीं।

दोनों बहनें कार की पिछली सीट पर बैठीं। गुरुसेवक ड्राइव करता हुआ चला। जरा देर में उसका मकान आ गया। रामदुलारी ने फिर बहन से उतरने के लिए आग्रह किया, पर वह न मानी। लड़के घबरा रहे होंगे। आखिर रामदुलारी उससे गले मिलकर अन्दर चली गयी। गुरुसेवक ने कार बढ़ायी।

रूपकुमारी ने उड़ती हुई निगाह से रामदुलारी का मकान देखा और वह ठोस सत्य एक शलाका की भाँति उसके कलेजे में चुभ गया।

कुछ दूर जाकर गुरुसेवक बोला — भाभी, मैंने तो अपने लिए अच्छा रास्ता निकाल लिया। अगर दो-चार साल इसी तरह काम करता रहा तो आदमी बन जाऊँगा।

रूपकुमारी ने सहानुभूति के साथ कहा — रामदुलारी ने मुझसे बताया था। भगवान् करे, जहाँ रहो, खुश रहो। मगर जरा हाथ-पैर सँभाल के रहना।

'मैं मालिक की आँख बचाकर एक पैसा भी लेना पाप समझता हूँ, भाभी। दौलत का मजा तो तभी है कि ईमान सलामत रहे। ईमान खोकर पैसे मिले तो क्या! मैं ऐसी दौलत को त्याज्य समझता हूँ, और आँख किसकी बचाऊँ। सब सियाह-सुफेद तो मेरे हाथ में है। मालिक तो रहा नहीं, केवल उसकी बेवा है। उसने सब कुछ मेरे हाथ में छोड़ रखा है। मैंने उसका कारोबार सँभाल न लिया होता तो सब कुछ चौपट हो जाता। मेरे सामने तो मालिक सिर्फ तीन महीने जिन्दा रहे। मगर आदमी को परखना खूब जानते थे। मुझे 100 रुपये पर रखा और एक महीने में 200 रुपये कर दिया। आप लोगों की दुआ से पहले ही महीने में मैंने बारह हजार का काम किया।'

'क्या काम करना पड़ता है?' रूपकुमारी ने बिना किसी उद्देश्य के पूछा।

‘वही मशीनों की एजेण्टी’ तरह-तरह की मशीनें मँगाना और बेचना। — ठण्डा जवाब था।

रूपकुमारी का मनहूस घर आ गया। द्वार पर एक लालटेन टिमटिमा रही थी। उसके पति उमानाथ द्वार पर टहल रहे थे। मगर रूपकुमारी ने गुरुसेवक से उतरने के लिए आग्रह नहीं किया।

एक बार शिष्टाचार के नाते कहा जरूर पर जोर नहीं दिया, और उमानाथ तो गुरुसेवक से मुखातिब भी न हुए।

रूपकुमारी को वह घर अब कब्रिस्तान-सा लग रहा था, जैसे फूटा हुआ भाग्य हो। न कहीं फर्श, न फरनीचर, न गमले। दो-चार टूटी-टाटी तिपाइयाँ, एक लँगड़ी मेज, चार-पाँच पुरानी-पुरानी खाटें, यही उस घर की बिसात थी। आज सुबह तक रूपकुमारी इसी घर में खुश थी। लेकिन अब यह घर उसे काटे खा रहा है। लड़के अम्माँ-अम्माँ करके दौड़े, मगर उसने दोनों को झिड़क दिया। उसके सिर में दर्द है, वह किसी से न बोलेगी, कोई उसे न छेड़े। अभी घर में खाना नहीं पका। पकाता कौन? लड़कों ने तो दूध पी लिया है, किन्तु उमानाथ ने कुछ नहीं खाया। इसी इन्तजार में थे कि रूपकुमारी आये तो पकाये। पर रूपकुमारी के सिर में दर्द है। मजबूर होकर बाजार से पूरियाँ लानी पड़ेंगी।

रूपकुमारी ने तिरस्कार के स्वर में कहा — तुम अब तक मेरा इन्तजार क्यों करते रहे? मैंने तो खाना पकाने की नौकरी नहीं लिखायी है, और जो रात को वहीं रह जाती? आखिर तुम कोई महराजिन क्यों नहीं रख लेते? क्या जिन्दगी भर मुझी को पीसते रहोगे?

उमानाथ ने उसकी तरफ आहत विस्मय की आँखों से देखा। उसके बिगड़ने का कोई कारण उनकी समझ में न आया। रूपकुमारी से उन्होंने हमेशा निरापद सहयोग पाया है, निरापद ही नहीं, सहानुभूतिपूर्ण भी। उन्होंने कई बार उससे महराजिन रख लेने का प्रस्ताव खुद किया था, पर उसने बराबर यही जवाब दिया कि आखिर में बैठे-बैठे क्या करूँगी? चार-पाँच रुपये का खर्च बढ़ाने से क्या फायदा? यह पैसे तो बच्चों के मक्खन में खर्च होते हैं। और आज वह इतनी निर्ममता से उलाहना दे रही है, जैसे गुस्से में भरी हो।

अपनी सफाई देते हुए बोले — महराजिन रखने के लिए तो मैंने खुद तुमसे कई बार कहा।

'तो लाकर रख क्यों न दिया? मैं उसे निकाल देती तो कहते!'

'हाँ यह गलती हुई।'

‘तुमने कभी सच्चे दिल से नहीं कहा, रूपकुमारी ने और भी प्रचण्ड होकर कहा — तुमने केवल मेरा मन लेने के लिए कहा। मैं ऐसी भोली नहीं हूँ कि तुम्हारे मन का रहस्य न समझूँ। तुम्हारे दिल में कभी मेरे आराम का विचार आया ही नहीं। तुम तो खुश थे कि अच्छी लौंडी मिल गयी है। एक रोटी खाती है और चुपचाप पड़ी रहती है। महज खाने और कपड़े पर। यह भी जब घर की जरूरतों से बचे। पचहत्तर रुपल्लियाँ लाकर मेरे हाथ पर रख देते हो और सारी दुनिया का खर्च। मेरा दिल ही जानता है, मुझे कितनी कतर — ब्योंत करनी पड़ती है। क्या पहनूँ और क्या ओढ़ूँ! तुम्हारे साथ जिन्दगी खराब हो गयी! संसार में ऐसे मर्द भी हैं, जो स्त्री के लिए आसमान के तारे तोड़ लाते हैं। गुरुसेवक ही को देखो, दूर क्यों जाओ। तुमसे कम पढ़ा है, उम्र में तुमसे कहीं कम है, मगर पाँच सौ का महीना लाता है, और रामदुलारी रानी बनी बैठी रहती है। तुम्हारे लिए यही 75 रुपये बहुत हैं। राँड़ माँड़ में ही मगन! तुम नाहक मर्द हुए, तुम्हें तो औरत होना चाहिए था। औरतों के दिल में कैसे-कैसे अरमान होते हैं। मगर मैं तो तुम्हारे लिए घर की मुर्गी का बासी साग हूँ। तुम्हें तो कोई तकलीफ होती नहीं। तुम्हें तो कपड़े भी अच्छे चाहिए, खाना भी अच्छा चाहिए, क्योंकि पुरुष हो, बाहर से कमाकर लाते हो। मैं चाहे जैसे रहूँ तुम्हारी बला से।’

वाग्बाणों का यह सिलसिला कई मिनट तक जारी रहा, और उमानाथ चुपचाप सुनते रहे। अपनी जान में उन्होंने रूपकुमारी को शिकायत का कभी मौका नहीं दिया। उनका वेतन कम है, यह सत्य है, पर यह उनके बस की बात तो नहीं। वह दिल लगाकर अपना काम करते हैं, अफसरों को खुश रखने की सदैव चेष्टा करते हैं इसी साल बड़े बाबू के छोटे सुपुत्र को छः महीने तक बिना नागा पढ़ाया, इसीलिए तो कि वह प्रसन्न रहें। अब वह और क्या करें। रूपकुमारी की खफ़गी का रहस्य वह समझ गये। अगर गुरुसेवक वास्तव में पाँच सौ रुपये लाता है तो बेशक वह भाग्य का बली है। लेकिन दूसरों की ऊँची पेशानी देखकर अपना माथा तो नहीं फोड़ा जाता। किसी संयोग से उसे यह अवसर मिल गया। मगर हर एक को तो ऐसे अवसर नहीं मिलते। वह इसका पता लगाएँगे कि सचमुच उसे पाँच सौ ही मिलते हैं, या महज डींग है। और मान लिया कि पाँच सौ मिलते हैं, तो क्या इससे रूपकुमारी को यह हक है कि वह उनको ताने दे, और उन्हें जली-कटी सुनाये। अगर इसी तरह वह भी रूपकुमारी से ज्यादा रूपवती और सुशीला रमणी को देखकर रूपकुमारी को कोसना शुरू करें तो कैसा हो! रूपकुमारी सुन्दरी है, मृदुभाषिणी है, त्यागमयी है लेकिन उससे बढ़कर सुन्दरी,

मृदुभाषिणी त्यागमयी देवियों से दुनिया खाली नहीं है। तो क्या इस कारण वह रूपकुमारी का अनादर करें?

एक समय था, जब उनकी नजरों में रूपकुमारी से ज्यादा रूपवती रमणी संसार में न थी; लेकिन वह उन्माद कब का शान्त हो गया। भावुकता के संसार से वास्तविक जीवन में आये उन्हें एक युग बीत गया। अब तो विवाहित जीवन का उन्हें काफी अनुभव हो गया है। एक को दूसरे के गुण-दोष मालूम हो गये हैं। अब तो सन्तोष ही में उनका जीवन सुखी रूह सकता है। मगर रूपकुमारी समझदार होकर भी इतनी मोटी-सी बात नहीं समझती!

फिर भी उन्हें रूपकुमारी से सहानुभूति ही हुई। वह उदार प्रकृति के आदमी थे और कल्पनाशील भी। उसकी कटु बातों का कुछ जवाब न दिया। शर्बत की तरह पी गये। अपनी बहन के ठाठ देखकर एक क्षण के लिए रूपकुमारी के मन में ऐसे निराशाजनक, अन्यायपूर्ण, दुःखद भावों का उठना बिलकुल स्वाभाविक है। रूपकुमारी कोई संन्यासिनी नहीं, विरागिनी नहीं कि हर एक दशा में अविचलित रहे।

इस तरह अपने मन को समझाकर उमानाथ ने गुरुसेवक के विषय में तहकीकात करने का संकल्प किया।

2

एक सप्ताह तक रूपकुमारी मानसिक अशान्ति की दशा में रही। बात-बात पर झुँझलाती, लड़कों को डाँटती; पति को कोसती, अपने नसीबों को रोती। घर का काम तो करना ही पड़ता था, लेकिन अब इस काम में उसे आनन्द न आता था। बेगार-सी टालती थी। घर की जिन पुरानी-धुरानी चीजों से उसका आत्मीय सम्बन्ध-सा हो गया था, जिनकी सफाई और सजावट में वह व्यस्त रहा करती थी, उनकी तरफ अब आँख उठाकर भी न देखती। घर में एक ही खिदमतगार था। उसने जब देखा, बहूजी घर की तरफ से खुद ही लापरवाह हैं तो उसे क्या गरज थी कि सफाई करता। जो चीज जहाँ पड़ी थी, वहीं पड़ी रहती। कौन उठाकर ठिकाने से रखे। बच्चे माँ से बोलते डरते थे, और उमानाथ तो उसके साये से भागते थे। जो कुछ सामने थाली में आ जाता उसे पेट में डाल लेते और दफ्तर चले जाते। दफ्तर से लौटकर दोनों बच्चों को साथ ले लेते और कहीं घूमने निकल जाते। रूपकुमारी से कुछ कहना बारूद में दियासलाई लगाना था। हाँ, उनकी यह तहक़ीकात जारी थी।

एक दिन उमानाथ दफ्तर से लौटे तो उनके साथ गुरुसेवक भी थे। रूपकुमारी ने आज कई दिनों के बाद परिस्थिति से सहयोग कर लिया था और इस वक्त झाडऩ लिए कुरसियाँ और तिपाइयाँ साफ कर रही थी, कि गुरुसेवक ने अन्दर पहुँचकर सलाम किया। रूपकुमारी दिल में कट गयी। उमानाथ पर ऐसा क्रोध आया कि उसका मुँह नोच ले। इन्हें लाकर यहाँ क्यों खड़ा कर दिया? न कहना, न सुनना, बस बुला लाये। उसे इस दशा में देखकर गुरुसेवक दिल में क्या कहता होगा। मगर इन्हें अक़्ल आयी ही कब थी। वह अपना परदा ढाँकती फिरती है और आप उसे खोलते फिरते हैं। जरा भी लज्जा नहीं। जैसे बेहयाई का बाना पहन लिया है। बरबस उसका अपमान करते हैं। न जाने उसने उनका क्या बिगाड़ा है?

आशीर्वाद देकर कुशल-समाचार पूछा और कुरसी रख दी। गुरुसेवक ने बैठते हुए कहा — आज भाई साहब ने मेरी दावत की है, मैं उनकी दावत पर तो न आता; लेकिन जब उन्होंने कहा, तुम्हारी भाभी का कड़ा तकाजा है, तब मुझे समय निकालना पड़ा था।

रूपकुमारी ने बात बनायी। घर का कलह छिपाना पड़ा — तुमसे उस दिन कुछ बातचीत न हो पायी। जी लगा हुआ था।

गुरुसेवक ने कमरे के चारों तरफ नजर दौड़ाकर कहा — इस पिंजड़े में तो आप लोगों को बड़ी तकलीफ होती होगी?

रूपकुमारी को ज्ञात हुआ, यह युवक कितना सुरुचिहीन, कितना अरसिक है। दूसरों के मनोभावों का आदर करना जैसे जानता ही नहीं। इसे इतनी-सी बात भी नहीं मालूम कि दुनिया में सभी भाग्यशाली नहीं होते। लाखों में एक ही कहीं भाग्यवान् निकलता है। और उसे भाग्यवान् ही क्यों कहा जाए? जहाँ बहुतों को दाना न मयस्सर हो, वहाँ थोड़े से आदमियों के भोग-विलास में कौन-सा सौभाग्य! जहाँ बहुत-से आदमी भूखों मर रहे हों, वहाँ दो-चार आदमी मोहनभोग उड़ायें तो यह उनकी बेहयाई और हृदयहीनता है, सौभाग्य कभी नहीं।

कुछ चिढ़कर बोली — पिंजड़े में कठघरे में रहने से अच्छा है। पिंजड़े में निरूह पक्षी रहते हैं, कठघरा तो घातक जन्तुओं का ही निवास स्थान है।

गुरुसेवक शायद यह संकेत न समझ सका, बोला — मेरा तो इस घर में दम घुट जाए। मैं आपके लिए अपने घर के पास ही एक मकान ठीक करा दूँगा। खूब लम्बा-चौड़ा। आपसे कुछ किराया न लिया जाएगा। मकान हमारी मालेकिन का है। मैं भी उसी के एक मकान में रहता हूँ। सैकड़ों मकान हैं उनके पास, सैकड़ों।

सब मेरे अख्तियार में है। जिसे जो मकान चाहूँ, दे दूँ। मेरे अख्तियार में है। किराया लूँ या न लूँ। मैं आपके लिए सबसे अच्छा मकान ठीक करूँगा। मैं आपका बहुत अदब करता हूँ।

रूपकुमारी समझ गयी, महाशय इस वक्त नशे में हैं। अभी यों बहक रहे हैं। अब उसने गौर से देखा तो उनकी आँखें सिकुड़ गयी थीं, गाल कुछ फूल गये थे। जबान भी लडख़ड़ाने लगी थी। एक जवान, खूबसूरत शरीफ चेहरा कुछ ऐसा शेखीबाज और निर्लज्ज हो गया कि उसे देखकर घृणा होती थी।

उसने एक क्षण बाद फिर बहकना शुरू किया — मैं आपका बहुत अदब करता हूँ, जी हाँ! आप मेरी बड़ी भाभी हैं। आपके लिए मेरी जान हाजिर है। आपके लिए एक मकान नहीं, सौ मकान तैयार हैं। मैं मिसेज लोहिया का मुख्तार हूँ। सब कुछ मेरे हाथ में है। सब कुछ, मैं जो कुछ कहता हूँ, वह आँखें बन्द करके मंजूर कर लेती हैं। मुझे अपना बेटा समझती हैं। मैं उसकी सारी जायदाद का मालिक हूँ। (मि. लोहिया ने मुझे 20 रुपये पर रखा, 20 रुपये पर। वह बड़ा मालदार था। मगर किसी को नहीं मालूम; उसकी दौलत कहाँ से आती थी किसी को नहीं मालूम। मेरे सिवा कोई नहीं जानता। वह खुफियाफरोश था। किसी से कहना नहीं। वह चोरी से कोकीन बेचता था। लाखों की आमदनी थी उसकी। अब वही व्यापार मैं करता हूँ। हर

शहर में हमारे खुफिया एजेन्ट हैं। मि. लोहिया ने मुझे इस फन में उस्ताद बना दिया। जी हाँ! मजाल नहीं कि मुझे कोई गिरफ्तार कर ले, बड़े-बड़े अफसरों से मेरा याराना है। उनके मुँह में नोटों के पुलिन्दे ठूँस-ठूँसकर उनकी आवाज बन्द कर देता हूँ। कोई चूँ नहीं कर सकता। दिन-दहाड़े बेचता हूँ। हिसाब में लिखता हूँ, एक हजार रिश्वत दी। देता हूँ, पाँच सौ। बाकी यारों का है। बेदरेग़ रुपये आते हैं और बेदरेग़ खर्च करता हूँ। बुढ़िया को तो राम नाम से मतलब है। सत्तर चूहे खाके अब हज करने चली है। कोई मेरा हाथ पकड़ने वाला नहीं, कोई बोलने वाला नहीं, (जेब से नोटों का एक बण्डल निकालकर) यह आपके चरणों की भेंट है। मुझे दुआ दीजिए कि इसी शान से जिन्दगी कट जाय जो आत्मा और सदाचार के उपासक हैं उन्हें कुबेर लातें मारता है। लक्ष्मी उनको पकड़ती है, जो उसके लिए अपना दीन और ईमान सब कुछ छोडऩे को तैयार हैं। मुझे बुरा न कहिए। मैं कौन मालदार हूँ? जितने धनी हैं, वे सब-के-सब लुटेरे हैं, पक्के लुटेरे, डाकू। कल मेरे पास रुपये हो जाएँ और मैं एक धर्मशाला बनवा दूँ। फिर देखिए मेरी कितनी वाह-वाह होती है। कौन पूछता है, मुझे दौलत कहाँ से मिली। जिस महात्मा को कहिए, बुलाकर उससे प्रशंसा करवा लूँ। मि. लोहिया को महात्माओं ने धर्म भूषण की उपाधि दी थी, इन स्वार्थी, पेट के बन्दरों ने। उस

बुड्ढे को जिससे बड़ा कुकर्मी संसार में न होगा। यहाँ तो लूट है। एक वकील आध घण्टा बहस करके पाँच सौ मार लेता है, एक डाक्टर जरा-सा नश्तर लगाकर एक हजार सीधा कर लेता है, एक जुआरी स्पेकुलेशन में एक-एक दिन में लाखों का वारा-न्यारा करता है। अगर उनकी आमदनी जायज है तो मेरी आमदनी भी जायज है। जी हाँ, जायज है, मेरी निगाह में बड़े-से-बड़े मालदार की भी कोई इज्जत नहीं। मैं जानता हूँ, वह कितना बड़ा हथकण्डेबाज है।

यहाँ जो आदमी आँखों में धूल झोंक सके, वही सफल है! गरीबों को लूटकर मालदार हो जाना समाज की पुरानी परिपाटी है। मैं भी वही करता हूँ, जो दूसरे करते हैं। जीवन का उद्देश्य है ऐसा करना। खूब लूटूँगा, खूब ऐश करूँगा और बुढ़ापे में खूब खैरात करूँगा। और एक दिन लीडर बन जाऊँगा। कहिए गिना दूँ। यहाँ कितने लोग जुआ खेल-खालकर करोड़पति हो गये, कितने औरतों का बाजार लगाकर करोड़पति हो गये ...।

सहसा उमानाथ ने आकर कहा — मि. गुरुसेवक, क्या कर रहे हो? चलो चाय पी लो। ठण्डी हो रही है।

गुरुसेवक ऐसा हड़बड़ा उठा, मानो अपने सचेत रहने का प्रमाण देना चाहता हो। मगर पाँव लडखड़ाये और जमीन पर गिर पड़ा।

फिर सँभलकर उठा और झूमता-झूमता, ठोकरें खाता, बाहर चला गया। रूपकुमारी ने आजादी की साँस ली। यहाँ बैठे-बैठे उसे हौलदिल-सा हो रहा था। कमरे की हवा जैसे कुछ भारी हो गयी थी। जो प्रेरणाएँ कई दिन से अच्छे-अच्छे मनोहर रूप भरकर उसके मन में आ रही थीं, आज उसे उनका असली वीभत्स, घिनावना रूप नजर आया। जिस त्याग, सादगी और साधुता के वातावरण में अब तक उसकी जिन्दगी गुजरी थी, उसमें इस तरह के दाँव-पेंच, छल-कपट और पतित स्वार्थ का घुसना बिलकुल ऐसा ही था, जैसे किसी बाग में साँड़ों का एक झुण्ड घुस आये। इन दामों वह दुनिया की सारी दौलत और सारा ऐश खरीदने को भी तैयार न हो सकती थी। नहीं, अब रामदुलारी के भाग्य से अपने भाग्य का बदला न करेगी। वह अपने हाल में खुश है।
रामदुलारी पर उसे दया आयी, जो भोग-विलास की धुन और अमीर कहलाने के मोह में अपनी आत्मा का सर्वनाश कर रही है। मगर वह बेचारी भी क्या करे? और गुरुसेवक का भी क्या दोष है। जिस समाज में दौलत पुजती है, जहाँ मनुष्य का मोल उसके बैंक-एकाउण्ट और टीम-टाम से आँका जाता है, जहाँ पग-पग पर प्रलोभनों का जाल बिछा हुआ है और समाज की कुव्यवस्था आदमी में ईर्ष्या, द्वेष, अपहरण और नीचता के भावों को

उकसाती और उभारती रहती है, गुरुसेवक और रामदुलारी उस जाल में फँस जाएँ, उस प्रवाह में बह जाएँ तो कोई अचरज नहीं।

उसी वक्त उमानाथ ने आकर कहा — गुरुसेवक यहाँ बैठा-बैठा क्या बहक रहा था? मैंने तो उसे विदा कर दिया। जी डरता था, कहीं पुलिस उसके पीछे न लगी हो, नहीं तो मैं भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिस जाऊँ।

रामकुमारी ने क्षमा-प्रार्थी नेत्रों से उन्हें देखकर जवाब दिया — वही अपनी खुफ़ियाफ़रोशी की डींग मार रहा था।

'मुझे भी मिसेज लोहिया से मिलने को कह गया।'

'जी नहीं, आप अपनी क्लर्की किये जाइए। इसी में हमारा कल्याण है।'

'मगर क्लर्की में वह ऐश कहाँ? क्यों न साल-भर की छुट्टी लेकर जरा उस दुनिया की भी सैर करूँ!'

'मुझे अब उस ऐश का मोह नहीं रहा।'

'दिल से कहती हो?'

'सच्चे दिल से।'

उमानाथ एक मिनट तक चुप रहने के बाद फिर बोले — मैं आकर तुमसे यह वृत्तान्त कहता तो तुम्हें विश्वास आता या नहीं, सच कहना?

‘कभी नहीं, मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि अपने स्वार्थ के लिए कोई आदमी दुनिया को विष खिला सकता है!’

‘मुझे सारा हाल पुलिस के सब इन्सपेक्टर से मालूम हो गया था। मैंने उसे खूब शराब पिला दी थी कि नशे में बहकेगा जरूर और सब कुछ उगल देगा।’

‘ललचता तो तुम्हारा जी भी था।’

‘हाँ ललचाता तो था, और अब भी ललचा रहा है। मगर ऐश करने के लिए जिस हुनर की जरूरत है,

वह कहाँ से लाऊँगा?’

‘ईश्वर न करे, वह हुनर तुममें आये। मुझे तो उस बेचारे पर तरस आती है। मालूम नहीं खैरियत से

घर पहुँच गया या नहीं!’

‘उसकी कार थी। कोई चिन्ता नहीं।’

रूपकुमारी एक क्षण जमीन की तरफ ताकती रही। फिर बोली — तुम मुझे दुलारी के घर पहुँचा दो।

अभी शायद मैं उसकी कुछ मदद कर सकूँ। जिस बाग की वह सैर कर रही है उसके चारों ओर निशाचर घात लगाये बैठे हैं। शायद मैं उसे बचा सकूँ।

उमानाथ ने देखा, उसकी छवि कितनी दया-पुलकित हो उठी है।

नबी का नीति-निर्वाह

हजरत मुहम्मद को इलहाम हुए थोड़े ही दिन हुए थे, दस-पाँच पड़ोसियों और निकट सम्बन्धियों के सिवा अभी और कोई उनके दीन पर ईमान न लाया था। यहाँ तक कि उनकी लड़की जैनब और दामाद अबुलआस भी, जिनका विवाह इलहाम के पहले ही हो चुका था, अभी तक नये धर्म में दीक्षित न हुए थे। जैनब कई बार अपने मैके गई थी और अपने पिता के ज्ञानोपदेश सुने थे। वह दिल से इसलाम पर श्रद्धा रखती थी, लेकिन अबुलआस के कारण दीक्षा लेने का साहस न कर सकती थी। अबुलआस विचार-स्वातन्त्र्य का समर्थक था। वह कुशल व्यापारी था। मक्के से खजूर, मेवे आदि जिन्सें लेकर बन्दरगाहों को चलाना किया करता था। बहुत ही ईमानदार, लेन-देन का खरा, श्रमशील मनुष्य था, जिसे इहलोक से इतनी फुर्सत न थी कि परलोक की चिन्ता करे। जैनब के सामने कठिन समस्या थी, आत्मा धर्म की ओर थी, हृदय पति की ओर, न धर्म को छोड़ सकती थी, न पति को। घर के अन्य प्राणी मूर्तिपूजक थे और इस नये सम्प्रदाय के शत्रु। जैनब अपनी लगन को छुपाती रहती, यहाँ तक कि पति से भी

अपनी व्यथा न कह सकती। वे धार्मिक सहिष्णुता के दिन न थे। बात-बात पर खून की नदियाँ बहती थीं। खानदान के खानदान मिट जाते थे। अरब की अलौकिक वीरता पारस्परिक कलहों में व्यक्त होती थी। राजनैतिक संगठन का नाम न था। खून का बदल खून, धनहानि का बदला खून, अपमान का बदला खून-मानव रक्त ही से सभी झगड़ों का निबटारा होता था। ऐसी अवस्था में अपने धर्मानुराग को प्रकट करना अबुलआस के शक्तिशाली परिवार को मुहम्मद और उनके गिने-गिनाये अनुयायियों से टकराना था। उधर प्रेम का बन्धन पैरों को जकड़े हुए था। नये धर्म में प्रविष्ट होना अपने प्राण-प्रिय पति से सदा के लिए बिछुड़ जाना था। कुरश जाति के लोग ऐसे मिश्रित विवाहों को परिवार के लिए कलंक समझते थे। माया और धर्म की दुविधा में पड़ी हुई जैनब कुढ़ती रहती थी।

2

धर्म का अनुराग एक दुर्लभ वस्तु है, किन्तु जब उसका वेग उठता है तब बड़े प्रचण्ड रूप से उठता है। दोपहर का समय था। धूप इतनी तेज थी कि उसकी ओर ताकते हुए आँखों से चिनगारियाँ

निकलती थीं। हजरत मुहम्मद अपने मकान में चिन्तामग्न बैठे हुए थे। निराशा चारों ओर अंधकार के रूप में दिखाई देती थी। खुदैजा भी पास बैठी हुई एक फटा कुर्ता सी रही थी। धन-सम्पत्ति सब कुछ इस लगन के भेंट हो चुकी थी। विधर्मियों का दुराग्रह दिनोंदिन बढ़ता जाता था। इसलाम के अनुयायियों को भांति-भांति की यातनाएँ दी जा रही थीं। स्वयं हजरत को घर से निकलना मुश्किल था। खौफ होता था कि कहीं लोग उन पर ईंट-पत्थर न फेंकने लगें। खबर आती थी कि आज अमुक मुसलमान का घर लूटा गया, आज फलाँ को लोगों नो आहत किया। हजरत ये खबरें सुन-सुनकर विकल हो जाते थे और बार-बार खुदा से धैर्य और क्षमा की याचना करते थे।

हजरत ने फरमाया — मुझे ये लोग अब यहाँ न रहने देंगे। मैं खुद सब कुछ झेल सकता हूँ पर अपने दोस्तों की तकलीफ नहीं देखी जाती।

खुदैजा — हमारे चले जाने से तो इन बेचारों को और भी कोई शरण न रहेगी। अभी कम से कम आपके पास आकर रो तो लेते हैं। मुसीबत में रोने का सहारा कम नहीं होता।

हजरत — तो मैं अकेले थोड़े ही जाना चाहता हूँ। मैं अपने सब दोस्तों को साथ लेकर जाने का इरादा रखता हूँ। अभी हम लोग

यहाँ बिखरे हुए हैं। कोई किसी की मदद को नहीं पहुँच सकता। हम बस एक ही जगह एक कुटुम्ब की तरह रहेंगे तो किसी को हमारे ऊपर हमला करने की हिम्मत न होगी। हम अपनी मिली हुई शक्ति से बालू का ढेर तो हो ही सकते हैं जिस पर चढ़ने का किसी को साहस न होगा।

सहसा जैनब घर में दाखिल हुई। उसके साथ न कोई आदमी था न कोई आदमजाद, ऐसा मालूम होता था कि कहीं से भगी चली आ रही हैं। खुदैजा ने उसे गले लगाकर कहा — क्या हुआ जैनब, खैरियत तो है?

जैनब ने अपने अन्तर्द्वन्द की कथा सुनाई और पिता से दीक्षा की प्रार्थना की। हजरत मुहम्मद आँखों में आँसू भरकर बोले — जैनब, मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती। लेकिन डरता हूँ कि तुम्हारा क्या हाल होगा।

जैनब — या हजरत, मैंने खुदा की रूह में सब कुछ त्याग देने का निश्चय किया हैं दुनिया के लिए अपनी आकबत को नहीं खोना चाहती।

हजरत — जैनब, खुदा की रूह में कांटे हैं।

जैनब — लगन को कांटों की परवाह नहीं होती।

हजरत — ससुराल से नाता टूट जायेगा।

जैनब — खुदा से तो नाता जुड़ जायेगा।

हजरत — और अबुलआस?

जैनब की आँखों में आँसू डबडबा आये। कातर स्वर से बोली — अब्बाजान, इसी बेड़ी ने इतने दिनों मुझे बांधे रक्खा था, नहीं तो मैं कब की आपकी शरण में आ चुकी होती। मैं जानती हूँ, उनसे जुदा होकर जीती न रहूँगी और शायद उनको भी मेरा वियोग दुस्सह होगा, पर मुझे विश्वास है कि एक दिन जरूर आयेगा जब वे खुदा पर ईमान लायेंगे और मुझे फिर उनकी सेवा का अवसर मिलेगा।

हजरत — बेटी, अबुलआस ईमानदार है, दयाशील है, सत्यवक्ता है, किन्तु उसका अहंकार शायद अन्त तक उसे ईश्वर से विमुख रखे है। वह तकदीर को नहीं मानता, आत्मा को नहीं मानता, स्वर्ग और नरक को नहीं मानता। कहता है — सृष्टि-संचालन के लिए खुदा की जरूरत ही क्या है? हम उससे क्यों डरें? विवेक और बुद्धि की हिदायत हमारे लिए काफी है?' ऐसा आदमी खुदा पर ईमान नहीं ला सकता। अधर्म को जीतना आसान है पर जब वह दर्शन का रूप धारण कर लेता है तो अजय हो जाता है।

जैनब ने निश्चयात्मक भाव से कहा — हजरत, आत्म का उपकार जिसमें हो मुझे वह चाहिए। मैं किसी इन्सान को अपने और खुदा के बीच न रहने दूँगी।

हजरत — खुदा तुझ पर दया करे बेटी। तेरी बातों ने दिल खुश कर दिया। यह कहकर उन्होंने जैनब को प्रेम से गले लगा दिया।

3

दूसरे दिन जैनब को जमा मसजिद में यथा विधि कलमा पढ़ाया गया।

कुरैशियों ने जब यह खबर पाई तब वे जल उठे। गजब खुदा का। इसलाम ने तो बड़े-बड़े घरों पर हाथ साफ करना शुरू किया। अगर यही हाल रहा तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायेगी कि उसका सामना करना कठिन हो जायगा। लोग अबुलआस के घर पर जमा हुए। अबूसिफियान ने, जो इस्लाम के शत्रुओं से सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे (और जो बाद को इसलाम पर ईमान लाया), अबुलआस से कहा — तुम्हें अपनी बीवी को तलाक देना पड़ेगा।

अबुलआस — हर्गिज नहीं।

अबूसिफियान — तो क्या तुम भी मुसलमान हो जाओगे?

अबुलआस — हर्गिज नहीं।

अबूसिफियान — जो उसे मुहम्मद ही के घर रहना पड़ेगा।

अबुलआस — हर्गिज नहीं, आप मुझे आज्ञा दीजिए कि उसे अपने घर लाऊँ।

अबूसिफियान — हर्गिज नहीं।

अबुलआस — क्या यह नहीं हो सकता कि मेरे घर में रूह कर वह अपने मतानुसार खुदा की बन्दगी करें?

अबूसिफियान — हर्गिज नहीं।

अबुलआस — मेरी कौम मेरे साथ इतनी भी सहानुभूति न करेगी?

अबूसिफियान — हर्गिज नहीं।

अबुलआस — तो फिर आप लोग मुझे अपने समाज से पतित कर दीजिए। मुझे पतित होना मंजूर है, आप लोग चाहें जो सजा दें, वह सब मंजूर है। पर मैं अपनी बीवी को तलाक नहीं दे सकता। मैं किसी की धार्मिक स्वाधीनता का अपहरण नहीं करना चाहता, वह भी अपनी बीवी की।

अबूसिफियान — कुरैश में क्या और लड़कियाँ नहीं हैं?

अबुलआस — जैनब की-सी कोई नहीं।

अबूसिफियान — हम ऐसी लड़कियाँ बता सकते हैं जो चांद को लज्जित कर दें।

अबुलआस — मैं सौन्दर्य का उपासक नहीं।

अबूसिफियान — ऐसी लड़कियाँ दे सकता हूँ जो गृह-प्रबन्ध में निपुण हों, बातें ऐसी करें जो मुँह से फूल झरें, भोजन ऐसा बनाये कि बीमार को भी रुचि हो, और सीने-पिरोने में इतनी कुशल कि पुराने कपड़े को नया कर दें।

अबुलआस — मैं इन गुणों में किसी का भी उपासक नहीं। मैं प्रेम और केवल प्रेम का भक्त हूँ और मुझे विश्वास है, कि जैनब का-सा प्रेम मुझे सारी दुनिया में नहीं मिल सकता।

अबूसिफियान — प्रेम होता तो तुम्हें छोड़कर दगा न करती।

अबुलआस — मैं नहीं चाहता कि प्रेम के लिए कोई अपने आत्मस्वतान्त्र्य का त्याग करे।

अबूसिफियान — इसका मतलब यह है कि तुम समाज के विरोधी बनकर रहना चाहते हो। अपनी आँखों की कसम, समाज अपने

ऊपर यह अत्याचार न होने देगा, मैं समझाये जाता हूँ, न मानोगे तो रोओगे।

4

अबूसिफियान और उनकी टोली के लोग तो धमकियाँ देकर उधर गये इधर अबुलआस ने लकड़ी सम्हाली और ससुराल जा पहुँचे। शाम हो गई थी। हजरत अपने मुरीदों के साथ मगरिब की नमाज पढ़ रहे थे। अबुलआस ने उन्हें सलाम किया और जब तक नमाज होती रही, गौर से देखते रहे। आदमियों की कतारों का एक साथ उठना-बैठना और सिजदे करना देखकर उनके दिल पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था। वह अज्ञात भाव से संगत के साथ बैठते, झुकते और खड़े हो जाते थे। वहाँ का एक-एक परमाणु इस समय ईश्वरमय हो रहा था। एक क्षण के लिए अबुलआस भी उसी भक्ति-प्रवाह में आ गये।

जब नमाज खत्म हो गई तब अबुलआस ने हजरत से कहा — मैं जैनब को विदा करने आया हूँ।

हजरत ने विस्मित होकर कहा — तुम्हें मालूम नहीं कि वह खुदा और रसूल पर ईमान ला चुकी है?

अबुलआस — जी हाँ, मालूम है।

हजरत — इस्लाम ऐसे सम्बन्धों का निषेध करता है।

अबुलआस — क्या इसका मतलब है कि जैनब ने मुझे तलाक दे दिया?

हजरत — अगर यही मतलब हो तो?

अबुलआस — तो कुछ नहीं, जैनब को खुदा और रसूल की बन्दगी मुबारक हो। मैं एक बार उससे मिलकर घर चला जाऊँगा और फिर कभी आपको अपनी सूरत न दिखाऊँगा। लेकिन उस दशा में अगर कुरैश जाति आपसे लड़ने के लिए तैयार हो जाय तो इसका इलजाम मुझ पर न होगा। हाँ, अगर जैनब मेरे साथ जायगी तो कुरैश के क्रोध का भाजन मैं हूँगा। आप और आपके मुरीदों पर कोई आफत न आयेगी।

हजरत — तुम दबाव में आकर जैनब को खुदा की तरफ से फेरने का तो यत्न न करोगी?

अबुलआस — मैं किसी के धर्म में विघ्न डालना लज्जाजनक समझता हूँ।

हजरत — तुम्हें लोग जैनब को तलाक देने पर तो मजबूर न करेंगे?

अबुलआस — मैं जैनब को तलाक देने के पहले जिन्दगी को तलाक दे दूँगा।

हजरत को अबुलआस की बातों से इतमीनान हो यगा। आस को हरम में जैनब से मिलने का अवसर मिला। आस ने पूछा — जैनब, मैं तुम्हें साथ ले चलने आया हूँ। धर्म के बदलने से कहीं तुम्हारा मन तो नहीं बदल गया?

जैनब रोती हुई पति के पैरों पर गिर पड़ी और बोली — स्वामी, धर्म बार-बार मिलता है, हृदय केवल एक बार। मैं आपकी हूँ। चाहे यहाँ रहूँ, चाहे वहाँ। लेकिन समाज मुझे आपकी सेवा में रहने देगा?

अबुलआस — यदि समाज न रहने देगा तो मैं समाज ही से निकल जाऊँगा। दुनिया में रहने के लिए बहुत स्थान है। रहा मैं, तुम खूब जानती हो कि किसी के धर्म में विघ्न डालना मेरे सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

जैनब चली तो खुदैजा ने उसे बदख्शां के लालों का एक बहुमूल्य हार विदाई में दिया।

5

इसलाम पर विधर्मियों के अत्याचार दिन-दिन बढ़ने लगे। अवहेलना की दशा में निकलकर उसने भय के क्षेत्र में प्रेवश किया। शत्रुओं ने उसे समूल नाश करने की आयोजना करना शुरू की। दूर-दूर के कबीलों से मदद माँगी गई। इसलाम में इतनी शक्ति न थी कि शस्त्रबल से शत्रुओं को दबा सके। हजरत मुहम्मद ने अन्त को मक्का छोड़कर मदीने की रूह ली। उनके कितने ही भक्तों ने उनके साथ हिजरत की। मदीने में पहुँचकर मुसलमानों में एक नई शक्ति, एक नई स्फूर्ति का उदय हुआ। वे निःशंक होकर धर्म का पालन करने लगे। अब पड़ोसियों से दबने और छिपने की जरूरत न थी। आत्मविश्वास बढ़ा। इधर भी विधर्मियों का सामना करने की तैयारियाँ होने लगीं।

एक दिन अबुलआस ने आकर स्त्री से कहा — जैनब, हमारे नेताओं ने इसलाम पर जेहाद करने की घोषणा कर दी।

जैनब ने घबराकर कहा — अब तो वे लोग यहाँ से चले गये फिर जेहाद की क्या जरूरत?

अबुलआस — मक्का से चले गये, अरब से तो नहीं चले गये, उनकी ज्यादतियाँ बढ़ती जा रही हैं। जिहाद के सिवा और कोई उपाय नहीं। मेरा उस जिहाद में शरीक होना बहुत जरूरी है।

जैनब — अगर तुम्हारा दिल तुम्हें मजबूर कर रहा है तो शौक से जाओ लेकिन मुझे भी साथ लेते चलो।

अबुलआस — अपने साथ?

जैनब — हाँ, मैं वहाँ आहत मुसलमानों की सेवा-सुश्रूषा करूँगी।

अबुलआस — शौक से चलो।

6

घोर संग्राम हुआ। दोनों दलों ने खूब दिल के अरमान निकाले। भाई भाई से, मित्र मित्र से, बाप बेटे से लड़ा। सिद्ध हो गया कि धर्म का बन्धन रक्त और वीर्य के बन्धन से सुदृढ़ है।

दोनों दल वाले वीर थे। अंतर यह था कि मुसलमानों में नया धर्मानुराग था, मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की आशा थी, दिलों में आत्मविश्वास था जो नवजात सम्प्रदायों का लक्षण है। विधर्मियों में बलिदान का यह भाव लुप्त था।

कई दिन तक लड़ाई होती रही। मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी, पर अन्त में उनके धर्मोत्साह ने मैदान मार लिया। विधर्मियों में अधिकांश काम आये, कुछ घायल हुए और कुछ कैद कर लिये गये। अबुलआस भी इन्हीं कैदियों में थे।

जैनब को ज्योंही यह मालूम हुआ उसने हजरत मुहम्मद की सेवा में अबुलआस का फदिया (मुक्तिधन) भेजा। यह वही बहुमूल्य हार था, जो खुदैजा ने उसे दिया था। वह अपने पिता को उस धर्म-संकट में नहीं डालना चाहती थी जो मुक्तिधन के अभाव की दशा में उन पर पड़ता। हजरत ने यह हार देखा तो खुदैजा की याद ताजी हो गई। मधुर स्मृतियों से चित्त चंचल हो उठा। अगर खुदैजा जीवित होती तो उसकी सिफारिश का असर उन पर इससे ज्यादा न होता जितना इस हार से हुआ, मानो स्वयं खुदैजा इस हार के रूप में आई थी। अबुलआस के प्रति हृदय कोमल हो गया। उसे सजा दी गई, यह हार ले लिया गया तो खुदैजा की आत्मा को कितना दुख होगा। उन्होंने कैदियों की फैसला करने के लिए एक पंचायत नियुक्त कर दी थी। यद्यपि पंचों में सभी हजरत के इष्ट-मित्र थे, पर इस्लाम की शिक्षा उनके दिलों में पुरानी आदतें, पुरानी चेष्टाएँ न मिटा सकी थीं। उनमें अधिकांश ऐसे थे जिनको अबुलआस से पारिवारिक द्वेष था, जो उनसे किसी पुराने खून का बदला लेना चाहते थे। इसलाम ने उन में क्षमा

और अहिंसा के भावों को अंकुरित न किया हो, पर साम्यवाद को उनके रोम-रोम में प्रतिष्ठ कर दिया था। वे धर्म के विषय में किसी के साथ रू-रियायत न कर सकते थे, चाहे वह हजरत का निकट सम्बन्धी ही क्यों न हो। अबुलआस सिर झुकाये पंचों के सामने खड़े थे और कैदी पेश होते थे। उनके मुक्तिधन का मुलाहिजा होता था और वे छोड़ दिये जाते थे। अबुलआस को कोई पूछता ही न था, यद्यपि वह हार एक तश्तरी में पंचों के सम्मुख रक्खा हुआ था। हजरत के मन में बार-बार प्रबल इच्छा होती थी कि सहाबियों से कहें यह हार कितना बहुमूल्य है। पर धर्म का बन्धन, जिसे उन्होंने स्वयं प्रतिष्ठित किया था, मुँह से एक शब्द भी न निकलने देता था। यहाँ तक कि समस्त बन्दीजन मुक्त हो गये, अबुलआस अकेला सिर झुकाये खड़ा रहा — हजरत मुहम्मद के दामाद के साथ इतना लिहाज भी न किया गया कि बैठने की आज्ञा तो दे दी जाती। सहसा जैद ने अबुलआस की ओर कटाक्ष करके कहा — देखा, खुदा इसलाम की कितनी हिमायत करता है। तुम्हारे पास हमसे पंचगुनी सेना थी, पर खुदा ने तुम्हारा मुँह काला किया। देखा या अब भी आँखें नहीं खुलीं?

अबुलआस ने विरक्त भाव से उत्तर दिया — जब आप लोग यह मानते हैं कि खुदा सबका मालिक है तब वह अपने एक बन्दे को दूसरे की गर्दन काटने में मदद न देगा। मुसलमानों ने इसलिए

विजय पायी कि गलत या सही उन्हें अटल विश्वास है कि मृत्यु के बाद हम स्वर्ग में जायेंगे। खुदा को आप नाहक बदनाम करते हैं।

जैद — तुम्हारा मुक्ति-धन काफी नहीं है।

अबुलआस — मैं इस हार को अपनी जान से ज्यादा कीमती समझता हूँ। मेरे घर में इससे बहुमूल्य और कोई वस्तु नहीं है।

जैद — तुम्हारे घर में जैनब हैं जिन पर ऐसे सैकड़ों हार कुर्बान किये जा सकते हैं।

अबुलआस — तो आपकी मंशा है कि मेरी बीवी मेरा फदिया हो। इससे तो यह कहीं बेहतर है कि मैं कत्ल कर दिया जाता। अच्छा, अगर मैं वह फदिया न दूँ तो?

जैद — तो तुम्हें आजीवन यहाँ गुलामों की तरह रहना पड़ेगा। तुम हमारे रसूल के दामाद हो, इस रिश्ते से हम तुम्हारा लिहाज करेंगे, पर तुम गुलाम ही समझे जाओगे।

हजरत मुहम्मद निकट बैठे हुए ये बातें सुन रहे थे। वे जानते थे कि जैनब और आस एक-दूसरे पर जान देते हैं। उनका वियोग दोनों ही के लिए घातक होगा। दोनों घुल-घुलकर मर जायँगे। सहाबियों को एक बार पंच चुन लेने के बाद उनके फैसले में

दखल देना नीति-विरुद्ध था। इससे इसलाम की मर्यादा भंग होती थी। कठिन आत्मवेदना हुई। यहाँ बैठे न रह सके। उठकर अन्दर चले गये। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि जैनब की गर्दन पर तलवार फेरी जा रही हैं। जैनब की दीन, करुणापूर्ण मूर्ति आँखों के सामने खड़ी मालूम होती थी। पर मर्यादा, निर्दय, निष्ठुर मर्यादा का बलिदान माँग रही थी।

अबुलआस के सामने भी विषम समस्या थी। इधर गुलामों का अपमान था, उधर वियोग की दारुण वेदना थी।

अन्त में उन्होंने निश्चय किया, यह वेदना सहूँगा, अपमान न सहूँगा। प्रेम को गौरव पर समर्पित कर दूँगा। बोले — मुझे आपका फैसला मंजूर है। जैनब मेरा फदिया होगी।

7

निश्चय किया गया कि जैद अबुलआस के साथ जाय और आबादी से बाहर ठहरे। आस घर जाकर तुरन्त जैनब को वहाँ भेज दें। आस पर इतना विश्वास था कि वे अपना वचन पूरा करेंगे।

अबुलआस घर पहुँचे तो जैनब उनसे गले मिलने दौड़ी। आस हट गये और कातर स्वर से बोले — नहीं जैनब, मैं तुमसे गले न मिलूँगा। मैं तुम्हें अपने फदिये के रूप में दे आया। अब मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तुम्हारा हार है, ले लो, और फौरन यहाँ से चलने की तैयारी करो। जैद तुम्हें लेने को आये हैं।

जैनब पर वज्र-सा गिर पड़ा। पैर बंध गये, वहीं चित्र की भांति खड़ी रह गयी। वज्र ने रक्त को जला दिया, आँसुओं को सुखा दिया, चेतना ही न रही, रोती और बिलखती क्या। एक क्षण के बाद उसने एक बार माथा ठोका-निर्दय तकदीर के सामने सिर झुका दिया। चलने को तैयार हो गयी। घोर नैराश्य इतना दुखदायी नहीं होता जितना हम समझते हैं। उसमें एक रसहीन शान्ति होती है। जहां सुख की आशा नहीं वहाँ दुख का कष्ट कहाँ!

मदीने में रसूल की बेटी की जितनी इज्जत होनी चाहिए उतनी होती थी। वह पितागृह की स्वामिनी थी। धन था, मान था, गौरव था, धर्म था, प्रेम न था। आँख में सब कुछ था, केवल पुतली न थी। पति के वियोग में रोया करती थी। जिन्दा थी, मगर जिन्दा दरागोर। तीन साल तीन युगों की भांति बीते। घण्टे, दिन और

वर्ष साधारण व्यवहारों के लिए है प्रेम के यहाँ समय का माप कुछ और ही है।

उधर अबुलआस द्विगुण उत्साह के साथ धनोपार्जन में लीन हुआ, महीनों घर न आता, हँसना-बोलना सब भूल गया। धन ही उसके जीवन का एक मात्र आधार था; उसके प्रणय-वंचित हृदय को किसी विस्मृतिकारक वस्तु की चाह थी। नैराश्य और चिन्ता बहुधा शराब से शान्त होती है, प्रेम उन्माद से। अबुलआस को धनोम्माद हो गया। धन के आवरण में छिपा हुआ वियोग-दुख था, माया के पर्दे में छिपा हुआ प्रेम-वैराग्य।

जाड़ों के दिन थे। नाड़ियों में रूधिर जमा जाता था। अबुलआस मक्का से माल लादकर एक काफिले के साथ चला। रकफों का एक दल भी साथ था। कुरैशियों ने मुसलमानों के कई काफिले लूट लिये थे। अबुलआस को संशय था कि मुसलमानों के कई काफिले लूट लिये थे। अबुलआस को संशय था कि मुसलमानों का आक्रमण होगा, इसलिए उन्होंने मदीने की राह छोड़ एक दूसरा रास्ता अख्तियार किया। पर दुदैव, मुसलमानों को टोह मिल ही गयी। जैद ने सत्तर चुने हुए आदमियों के साथ काफिले पर धावा कर दिया। धन के भक्त धर्म के सेवकों से क्या बाजी ले जाते। सत्तर के सात सौ को मार भगाया। कुछ मरे, अधिकांश

भागे, कुछ कैद हो गये। मुसलमानों को अतुल धन हाथ लगा। कैदी घाते में मिले। अबुलआस फिर कैद हो गया।

8

कैदियों के भाग्य-निर्णय के लिए नीति के अनुसार पंचायत चुनी गयी। जैनब को यह खबर मिली तो आशाएँ जाग उठीं; आशा मरती नहीं केवल सो जाती है। पिंजरे में बन्द पक्षी की भांति तड़फड़ाने लगी, पर क्या करे, किससे कहे, अबकी तो फदिये का भी कोई ठिकाना न था। या खुदा क्या होगा?

पंचों ने अबकी हजरत मुहम्मद ही को अपना प्रधान बनाया। हजरत ने इनकार किया, पर अन्त में उनके आग्रह से विवश हो गये।

अबुलआस सिर झुकाये बैठे हुए थे। हजरत ने एक बार उन पर करुणा-सूचक दृष्टि डाली, फिर सिर झुका लिया।

पंचायत शुरू हुई। अन्य कैदियों के घरों से मुक्तिधन आ गया था। वे मुक्त किये गये। अबुलआस के घर से मुक्तिधन न आया था। हजरत ने हुक्म दिया — इनका सारा माल और असबाब

जब्त कर लिया जाय और ये उस वक्त तक बन्दी रहें जब तक इन्हें कोई छुड़ाने न आये। उनके अंतिम शब्द ये थे — अबुलआस, इसलाम की रणनीति के अनुसार तुम गुलाम हो। तुम्हें बाजार में बेचकर रुपया मुसलमानों में तकसीम होना चाहिए था। पर तुम ईमानदार आदमी हो, इसलिए तुम्हारे साथ इतनी रिआयत की गयी।

जैनब दरवाजे के पास आड़ में बैठी हुई थी। हजरत का यह फैसला सुनकर रो पड़ी, तब घर से बाहर निकल आयी और अबुलआस का हाथ पकड़कर बोली — अगर मेरा शौहर गुलाम है तो मैं उसकी लौंडी हूँ। हम दोनों साथ बिकेंगे या साथ कैद होंगे।

हजरत — जैनब, मुझे लज्जित मत करो, मैं वही कर रहा हूँ जो मेरा कर्त्तव्य है; न्याय पर बैठने वाले मनुष्य को प्रेम और द्वेष दोनों ही से मुक्त होना चाहिए। यद्यपि इस नीति का संस्कार मैंने ही किया है, पर अब मैं उसका स्वामी नहीं, दास हूँ। अबुलआस से मुझे जितना प्रेम है यह खुदा के सिवा और कोई नहीं जान सकता। यह हुक्म देते हुए मुझे जितना मानसिक और आत्मिक कष्ट हो रहा है उसका अनुमान हर एक पिता कर सकता है। पर खुदा का रसूल न्याय और नीति को अपने व्यक्तिगत भावों से कलंकित नहीं कर सकता।

सहाबियों ने हजरत की न्याय-व्याख्या सुनी तो मुग्ध हो गये। अबू जफर ने अर्ज की — हजरत, आपने अपना फैसला सुना दिया, लेकिन हम सब इस विषय में सहमत हैं कि अबुलआस जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के यह दण्ड न्यायोचित होते हुए भी अति कठोर है और हम सर्वसम्मति से उसे मुक्त करते हैं और उसका लूटा हुआ धन लौटा देने की आज्ञा माँगते हैं।

अबुलआस हजरत मुहम्मद की न्यायपरायणता पर चकित हो गये। न्याय का इतना ऊँचा आदर्श! मर्यादा का इतना महत्व! आह, नीति पर अपना सन्तान-प्रेम तक न्यौछावर कर दिया! महात्मा, तुम धन्य हो। ऐसे ही ममता-हीन सत्पुरुषों से संसार का कल्याण होता है। ऐसे ही नीतिपालकों के हाथों जातियाँ बनती हैं, सभ्यताएँ परिष्कृत होती हैं।

मक्के आकर अबुलआस ने अपना हिसाब-किताब साफ किया, लोगों के माल लौटाये, ऋण चुकाये, और धन-बार त्यागकर हजरत मुहम्मद की सेवा में पहुँच गये।

जैनब की मुराद पूरी हुई।

[‘सरस्वती’, मार्च, 1924]

नसीहतों का दफ्तर

बाबू अक्षयकुमार पटना के एक वकील थे और बड़े वकीलों में समझे जाते थे। यानी रायबहादुरी के करीब पहुँच चुके थे। जैसा कि अकसर बड़े आदमियों के बारे में मशहूर है, इन बाबू साब का लड़कपन भी बहुत गरीबी में बीता था। माँ-बाप अब अपने शैतान लड़कों को डाँटते-डाँपटते तो बाबू अक्षयकुमार का नाम मिसाल के तौर पर पेश किया जाता था — अक्षय बाबू को देखो, आज दरवाजें पर हाथी झूमता है, कल पढ़ने को तेल नहीं मयस्सर होता था, पुआल जलाकर उसकी आँच में पढ़ते, सड़क की लालटेनों की रोशनी में सबक याद करते। विद्या इस तरह आती है। कोई-कोई कल्पनाशील व्यक्ति इस बात के भी साक्षी थे कि उन्होंने अक्षय बाबू को जुगनू की रोशनी में पढ़ते देखा है जुगनू की दमक या पुआल की आँच में स्थायी प्रकाश हो सकता है, इसका फैसला सुननेवालों की अक़्ल पर था। कहने का आशय यह है कि अक्षयकुमार का बचपन का जमाना बहुत ईर्ष्या करने योग्य न था और न वकालत का जमाना खुशनसीबियों की वह बाढ़ अपने साथ लाया जिसकी उम्मीद थी। बाढ़ का ज़िक्र ही क्या, बरसों

तक अकाल की सूरत थीं यह आशा कि सियाह गाउन कामधेनु साबित होगा और दुलिया की सारी नेमतें उसके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेगी, झूठ निकली। काला गाउन काले नसीब को रोशन न कर सका। अच्छे दिनों के इन्तजार में बहुत दिन गुजर गए और आखिरकार जब अच्छे दिन आये, जब गार्डन पार्टियों में शरीक होने की दावतें आने लगीं, जब वह आम जलसों में सभापति की कुर्सी पर शोभायमान होने लगे तो जवानी बिदा हो चुकी थी और बालों को खिजाब की जरूरत महसूस होने लगी थी। खासकर इस कारण से कि सुन्दर और हँसमुख हेमवती की खातिरदारी जरूरी थी जिसके शुभ आगमन ने बाबू अक्षयकुमार के जीवन की अन्तिम आकांक्षा को पूरा कर दिया था।

2

जिस तरह दानशीलता मनुष्य की दुर्गुणों को छिपा लेती है उसी तरह कृपणता उसके सद्गुणों पर पर्दा डाल देती है। कंजूस आदमी के दुश्मन सब होते हैं, दोस्त कोई नहीं होता। हर व्यक्ति को उससे नफरत होती है। वह गरीब किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता, आम तौर पर वह बहुत ही शान्तिप्रिय, गम्भीर, सबसे

मिलजुल कर रहनेवाला और स्वाभिमानी व्यक्ति होता हे मगर कंजूसी काला रंग है जिस पर दूसरा कोई रंग, चाहे कितना ही चटख क्यों न हों, नहीं चढ़ सकता। बाबू अक्षयकुमार भी कंजूस मशहूर थे, हालाँकि जैसा कायदा है, यह उपाधि उन्हें ईर्ष्या के दरबार से प्राप्त हुई थी। जो व्यक्ति कंजूस कहा जाता हो, समझ लो कि वह बहुत भाग्यशाली है और उससे डाह करने वाले बहुत हैं। अगर बाबू अक्षयकुमार कौड़ियों को दाँत से पकड़ते थे तो किसी का क्या नुकसान था। अगर उनका मकान बहुत ठाट-बाट से नहीं सजा हुआ था, अगर उनके यहाँ मुफ्तखोर ऊँघनेवाले नौकरों की फौज नहीं थी, अगर वह दो घोड़ों की फिटन पर कचहरी नहीं जाते थे तो किसी का क्या नुकसान था। उनकी जिन्दगी का उसूल था कि कौड़ियों की तुम फिक्र रखो, रुपये अपनी फिक्र आप कर लेंगे। और इस सुनहरे उसूल का कठोरता से पालन करने का उन्हें पूरा अधिकार था। इन्हीं कौड़ियों पर जवानी की बहारें और दिल की उमंगें न्यौछावर की थीं। आँखों की रोशनी और सेहत जैसी बड़ी नेमत इन्हीं कौड़ियों पर चढ़ाती थीं। उन्हें दाँतों से पकड़ते थे तो बहुत अच्छा करते थे, पलकों से उठाना चाहिए था।

लेकिन सुन्दर हँसमुख हेमवती का स्वभाव इसके बिलकुल उलटा था। अपनी दूसरी बहनों की तरह वह भी सुख-सुविधा पर जान

देती थी और गो बाबू अक्षयकुमार ऐसे नादान और ऐसे रुखे-सूखे नहीं थे कि उसकी कद्र करने के काबिल कमजोरियों की कद्र न करते (नहीं, वह सिंगार और सजावट की चीजों को देखकर कभी-कभी खुश होने की कोशिश भी करते थे) मगर कभी-कभी जब हेमवती उनकी नेक सलाहों ही परवाह न करके सीमा से आगे बढ़ जाती थी तो उस दिन बाबू साहब को उसकी खातिर अपनी वकालत की योग्यता का कुछ-न-कुछ हिस्सा जरूर खर्च करना पड़ता था।

एक रोज जब अक्षयकुमार कचहरी से आये तो सुन्दर और हँसमुख हेमवती ने एक रंगीन लिफाफा उनके हाथ में रख दिया। उन्होंने देखा तो अन्दर एक बहुत नफीस गुलाबी रंग का निमंत्रण था। हेमवती से बोले — इन लोगों को एक-न-एक खब्त सूझता ही रहता हैं। मेरे खयाल में इस ड्रामैटिक परफारमेंस की कोई जरूरत न थीं।

हेमवती इन बातों के सुनने की आदी थी, मुस्कराकर बोली — क्यों, इससे बेहतर और कौन खुशी का मौका हो सकता हैं।

अक्षय कुमार समझ गये कि अब बहस-मुबाहिसे की जरूरत आ गई, सम्हाल बैठे और बोले — मेरी जान, बी. ए. के इम्तहान में पास होना कोई गैर-मामूली बात नहीं है, हजारों नौजवान हर साल

पास होते रहते हैं। अगर मेरा भाई होता तो मैं सिर्फ उसकी पीठ ठोंककर कहता कि शाबाश, खूब मेहनत की। मुझे ड्रामा खेलने का खयाल भी न पैदा होता। डाक्टर साहब तो समझदार आदमी हैं, उन्हें क्या सूझी!

हेमवती — मुझे तो जाना ही पड़ेगा।

अक्षयकुमार — क्यों, क्या वादा कर लिया है?

हेमवती — डाक्टर साहब की बीवी खुद आई थी।

अक्षयकुमार — तो मेरी जान, तुम भी कभी उनके घर चली जाना, परसों जाने की क्या जरूरत है?

हेमवती — अब बता ही दूँ, मुझे नायिका का पार्ट दिया गया है और मैंने उस मंजूर कर लिया है।

यह कहकर हेमवती ने गर्व से अपने पति की तरफ देखा, मगर अक्षयकुमार को इस खबर से बहुत खुशी नहीं हुई। इससे पहले दो बार हेमवती शकुन्तला बन चुकी थी। इन दोनों मौकों पर बाबू साहब को काफी खर्च करना पड़ा था। उन्हें डर हुआ कि अब की हफ्ते में फिर घोष कम्पनी दो सौ का बिल पेश करेगी। और इस बात की सख्त जरूरत थी कि अभी से रोक-थाम की जाय। उन्होंने बहुत मुलायमियत से हेमवती का हाथ पकड़ लिया

और बहुत मीठे और मुहब्बत में लिपटे हुए लहजे में बोले — प्यारी, यह बला फिर तुमने अपने सर ले ली। अपनी तकलीफ और परेशानी का बिलकुल खयाल नहीं किया। यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारी परेशानी तुम्हारे इस प्रेमी को कितना परेशान करती है। मेरी जान, यह जलसे नैतिक दृष्टि से बहुत आपत्तिजनक होते हैं। इन्हीं मौकों पर दिलों में ईर्ष्या के बीज बोये जाते हैं। यहीं, पीठ पीछे बुराई करने की आदत पड़ती है और यहीं तानेबाजी और नोकझोंक की मश्क होती है। फलाँ लेडी हसीन है, इसलिए उसकी दूसरी बहनों का फर्ज है कि उससे जलें। मेरी जान, ईश्वर न करे कि कोई डाही बने मगर डाह करने के योग्य बनना तो अपने अख्तियार की बात नहीं। मुझे भय है कि तुम्हारा दाहक सौन्दर्य कितने ही दिलों को जलाकर राख कर देगा। प्यारी हेमू, मुझे दुख है कि तुमने मुझसे पूछे बगैर यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। मुझे विश्वास है, अगर तुम्हें मालूम होता कि मैं इसे पसन्द न करूँगा तो तुम हरगिज स्वीकार न करतीं।

सुन्दर और हँसमुख हेमवती इस मुहब्बत में लिपटी हुई तकरीर को बजाहिर बहुत गौर से सुनती रही। इसके बाद जान-बूझकर अनजान बनते हुए बोली — मैंने तो यह सोचकर मंजूर कर लिया था कि कपड़े सब पहले ही के रक्खें हुए हैं, ज्यादा सामान की जरूरत न होगी, सिर्फ चन्द घंटों की तकलीफ है और एहसान

मुफ्त। डाक्टरों को नाराज करना भी तो अच्छी बात नहीं है। मगर अब न जाऊँगी। मैं अभी उनको अपनी मजबूरी लिखे देती हूँ। सचमुच क्या फायदा, बेकार की उलझन।

यह सुनकर कि कपड़े सब पहले के रक्खें हुए हैं, कुछ ज्यादा खर्च न होगा, अक्षयकुमार के दिल पर से एक बड़ा बोझ उठ गया। डाक्टरों को नाराज करना भी तो अच्छी बात नहीं। यह जुमला भी मानी से खाली न था। बाबू साहब पछताये कि अगर पहले से यह हाल मालूम होता तो काहे को इस तरह रूखा-सूखा उपदेशक बनना पड़ता। गर्दन हिलाकर बोले — नहीं-नहीं मेरी जान, मेरा मंशा यह हरगिज नहीं कि तुम जाओं ही मत। जब तुम निमंत्रण स्वीकार कर चुकी हो तो अब उससे मुकरना इन्सानियत से हटी हुई बात मालूम होती है। मेरी सिर्फ यह मंशा थी कि जहाँ तक मुमकिन हो, ऐसे जलसों से दूर रहना चाहिये।

मगर हेमवती ने अपना फैसला बहाल रक्खा — अब मैं न जाऊँगी। तुम्हारी बातें गिरह में बाँध लीं।

दूसरे दिन शाम को अक्षयकुमार हवाखोरी को निकले। आनन्द बाग उस वक्त जोबन पर था। ऊँचे-ऊँचे सरो और अशोक की कतारों के बीच, लाल बजरी से सजी हुई सड़क ऐसी खूबसूरत मालूम होती थी कि जैसे कमल के पत्तों में फूल खिला हुआ है या नोकदार पलकों के बीच में लाल मतवाली आँखें जेब दे रही हैं। बाबू अक्षयकुमार इस क्यारी पर हवा के हल्के-फुल्के ताजगी देनेवाले झोंकों को मजा उठाते हुए एक सायेदार कुंज में जा बैठे। यह उनकी खास जगह थी। इस इनायतों की बस्ती में आकर थोड़ी देर के लिए उनके दिल पर फूलों के खिलेपन और पत्तों की हरियाली का बहुत ही नशीला असर होता था। थोड़ी देर के लिए उनका दिल भी फूल की तरह खिल जाता था। यहाँ बैठे उन्हें थोड़ी देर हुई थी कि उन्हें एक बूढ़ा आदमी अपनी तरफ आता हुआ दिखायी दिया। उसने सलाम किया और एक मोहरदार बन्द लिफाफा देकर गायब हो गया। अक्षय बाबू ने लिफाफा खोला और उसकी अम्बरी महक से रूह फड़क उठी। खत का मजमून यह था —

'मेरे प्यारे अक्षय बाबू, आप इस नाचीज के खत को पढ़कर बहुत हैरत में आएँगे, मगर मुझे आशा है कि आप मेरी इस ढिठाई को माफ करेंगे। आपके आचार-विचार, आपकी सुरुचि और आपके रहन-सहन की तारीफें सुन-सुनकर मेरे दिल में आपके लिए एक

प्रेम और आदर का भाव पैदा हो गया है। आपके सादे रहन-सहन ने मुझे मोहित कर लिया है। अगर हया-शर्म मेरा दामन न पकड़े होती तो मैं अपनी भावनाओं को और भी स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित करती। साल भर हुआ कि मैंने सामान्य पुरुषों की दुर्बलताओं से निराश होकर यह इरादा कर लिया था कि शेष जीवन खुशियों को सपना देखने में काटूँगी। मैंने ढूंढा, मगर जिस दिल की तलाश थी, न मिला। लेकिन जब से मैंने आपको देखा है, मुद्दतों की सोयी हुई उमंगें जाग उठी हैं। आपके चेहरे पर सुन्दरता और जवानी की रोशनी न सही मगर कल्पना की झलक मौजूद है, जिसकी मेरी निगाह में जयादा इज्जत हैं हालाँकि मेरा खयाल है कि अगर आपको अपने बहिरंग की चिन्ता होती तो शायद मेरे अस्तित्व का दुर्बल अंश ज्यादा प्रसन्न होता। मगर मैं रूप की भूखी नहीं हूँ। मुझे एक सच्चे, प्रदर्शन से मुक्त, सीने में दिल रखनेवाले इन्सान की चाह है और मैंने उसे पा लिया। मैंने एक चतुर पनडुब्बे की तरह समुन्दर की तह में बैठकर उस रतन को ढूंढ निकाला है, मेरी आपसे केवल यह प्रार्थना है कि आप कल रात को डाक्टर किचलू के मकान पर तशरीफ लायें। मैं आपका बहुत एहसान मानूँगी। वहाँ एक हरे कपड़े पहने स्त्री अशोकों के कुंज में आपके लिए आँखें बिछाये बैठी नजर आयेगी।'

इस खत को अक्षयकुमार ने दोबारा पढ़ा। इसका उनके दिल पर क्या असर हुआ, यह बयान करने की जरूरत नहीं। वह ऋषियों नहीं थे, हालाँकि ऐसे नाजुक मौके पर ऋषियों का फिसल जाना भी असम्भव नहीं। उन्हें एक नशा-सा महसूस होने लगा। जरूर इस परी ने मुझे यहाँ बैठे देखा होगा। मैंने आज कई दिन से आईना भी नहीं देखा, जाने चेहरे की क्या कैफियत हो रही हैं। इस खयाल से बेचैन होकर वह दौड़े हुए एक हौज पर गए और उसके साफ पानी में अपनी सूरत देखी, मगर संतोष न हुआ। बहुत तेजी से कदम बढ़ाते हुए मकान की तरफ चले और जाते ही आईने पर निगाह दौड़ाई। हजामत साफ नहीं है और साफा कमबख़्त खूबसूरती से नहीं बँधा। मगर तब भी मुझे कोई बदसूरत नहीं कह सकता। यह जरूर कोई आला दरजे की पढ़ी-लिखी, ऊँचे विचारों वाली स्त्री है। वर्ना मामूली औरतों की निगाह में तो दौलत और रूप के सिवा और कोई चीज जँचती ही नहीं। तो भी मेरा यह फूहड़पन किसी सुरुचि-सम्पन्न स्त्री को अच्छा नहीं मालूम हो सकता। मुझे अब इसका खयाल रखना होगा। आज मेरे भाग्य जागे हैं। बहुत मुद्दत के बाद मेरी कद्र करनेवाला एक सच्चा जौहरी नजर आया है। भारतीय स्त्रियों शर्म और हया की पुतली होती हैं। जब तक कि अपने दिल की

हलचलों से मजबूर न हो जाये वह ऐसा खत लिखने को साहस नहीं कर सकतीं।

इन्हीं खयालों में बाबू अक्षयकुमार ने रात काटी। पलक तक नहीं झपकी।

4

दूसरे दिन सुबह दस बजे तक बाबू अक्षयकुमार ने शहर की सारी फैशनेबुल दुकानों की सैर की। दुकानदार हैरत में थे कि आज बाबू साहब यहाँ कैसे भूल पड़े। कभी भूलकर भी न झाँकते थे, यह कायापलट क्योंकर हुई? गरज, आज उन्होंने बड़ी बेदर्दी से रुपया खर्च किया और जब घर चले तो फिटन पर बैठने की जगह न थी।

हेमवती ने उनके माथे पर से पसीना साफ करके पूछा — आज सबेरे से कहाँ गायब हो गये? अक्षयकुमार ने चेहरे को जरा गम्भीर बनाकर जवाब दिया — आज जिगर में कुछ दर्द था, डाक्टर चड्ढा के पास चला गया था।

हेमवती के सुन्दर हँसते हुए चेहरे पर मुस्कराहट-सी आ गयी, बोली — तुमने मुझसे बिलकुल जिक्र नहीं किया? जिगर का दर्द भयानक मर्ज है।

अक्षयकुमार — डाक्टर साहब ने कहा है, कोई डरने की बात नहीं है।

हेमवती — इसकी दवा डा0 किचलू के यहाँ बहुत अच्छी मिलती है। मालूम नहीं, डाक्टर चड्ढा मर्ज की तह तक पहुँचे भी या नहीं।

अक्षयकुमार ने हेमवती की तरफ एक बार चुभती हुई निगाहों से देखा और खाना खाने लगे। इसके बाद अपने कमरे में जाकर बैठे। शाम को जब वह पार्क, घंटाघर, आनन्द बाग की सैर करते हुए फिटन पर जा रहे थे तो उनके होंठों पर लाली और गालों पर जवानी की गुलाबी झलक मौजूद थीं। तो भी प्रकृति के अन्याय पर, जिसने उन्हें रूप की सम्पदा से वंचित रक्खा था, उन्हें आज जितना गुस्सा आया, शायद और कभी न आया हो। आज वह पतली नाक के बदले अपना खूबसूरत गाउन और डिप्लोमा सब कुछ देने क लिए तैयार थे।

डाक्टर साहब किचलू का खूबसूरत लताओं से सजा हुआ बँगला रात के वक्त दिन का समाँ दिखा रहा था। फाटक के खम्भे,

बरामदे की मेहराबें, सरों के पेड़ों की कतारें सब बिजली के बल्बों से जगमगा रही थीं। इन्सान की बिजली की कारीगरी अपना रंगारंग जादू दिखा रही थी। दरवाजे पर शुभागमन का बन्दनवार, पेड़ों पर रंग-बिरंगे पक्षी, लताओं में खिले हुए फूल, यह सब इसी बिजली की रोशनी के जलवे हैं। इसी सुहानी रोशनी में शहर के रईस इठलाते फिर रहे हैं। अभी नाटक शुरु करने में कुछ देर है। मगर उत्कण्ठा लोगों को अधीर करने पर लगी हैं। डाक्टर किचलू दरवाजे पर खड़े मेहमानों का स्वागत कर रहे हैं। आठ बजे होंगे कि बाबू अक्षयकुमार बड़ी आन-बान के साथ अपनी फिटन से उतरे। डाक्टर साहब चौंक पड़े, आज यह गूलर में कैसे फूल लग गए। उन्होंने बड़े उत्साह से आगे बढ़कर बाबू साहब का स्वागत किया और सर से पाँव तक उन्हें गौर से देखा। उन्हें कभी खयाल भी न हुआ था कि बाबू अक्षयकुमार ऐसे सुन्दर सजीले कपड़े पहने हुए गबरु नौजवान बन सकते हैं। कायाकल्प का स्पष्ट उदाहरण आँखों के सामने खड़ा था।

अक्षय बाबू को देखते ही इधर-उधर के लोग आकर उनके चारों ओर जमा हो गए। हर शख्स हैरत से एक-दूसरे का मुँह ताकता था। होंठ रुमाल की आड़ ढूंढने लगे, आँखें सरगोशियाँ करने लगीं। हर शख्स ने गैरमामूली तपाक से उनका मिज़ाज पूछा।

शराबियों की मजलिस और पीने की मनाही करने वाली हजरते वाइज की तशरीफआवरी का नज्ज़ारा पेश हो गया।

अक्षय बाबू बहुत झेंप रहे थे। उनकी आँखें ऊपर को न उठती थीं। इसलिए जब मिजाज़ापुर्सियों को तूफान दूर हुआ तो उन्होंने अपनी हरे कपड़ों वाली स्त्री की तलाश में चारों तरफ एक निगाह दौड़ायी और दिल में कहा — यह शोहदें हैं, मसखरे, मगर अभी-अभी उनकी आँखें खुली जाती हैं। मैं दिखा दूँगा कि मुझ पर भी सुन्दरियों की दृष्टि पड़ती है। ऐसी सुन्दरियाँ भी हैं जो सच्चे दिल से मेरे मिजाज़ की कैफियत पूछती हैं और जिनसे अपना दर्देदिल कहने में मैं भी रंगीन-बयान हो सकता हूँ। मगर उस हरे कपड़ों वाली प्रेमिका का कहीं पता न था। निगाहें चारों तरफ से घूम-घामकर नाकाम वापस आयीं।

आध घंटे के बाद नाटक शुरु हुआ। बाबू साहब निराश भाव से पैर उठाते हुए थियेटर हाल में गए और कुर्सी पर बैठ गए। बैठ क्या गए, गिर पड़े। पर्दा उठा। शकुन्तला अपनी दोनों सखियों के साथ सिर पर घड़ा रक्खें पौदों को सींचती हुई दिखाई दी। दर्शक बाग-बाग हो गये। तारीफों के नार नाबुलन्द हुए। शकुन्तला का जो काल्पनिक चित्र खिंच सकता है, वह आँखों के सामने खड़ा था — वही प्रेमिका का खुलापन, वही आकर्षक गम्भीरता, वही

मतवाली चाल, वही शर्मीली आँखें। अक्षय बाबू पहचान गए यह सुन्दर हँसमुख हेमवती थी।

बाबू अक्षयकुमार का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। इसने मुझसे वादा किया था कि मैं नाटक में न जाऊँगी। मैंने घंटों इस समझाया। अपनी असमर्थता लिखने पर तैयार थी। मगर सिर्फ — दूसरों को रिझाने और लुभाने के लिए, सिर्फ दूसरों के दिलों में अपने रूप और अपनी अदाओं को जादू फूँकने के लिए, सिर्फ दूसरी औरतों को जलाने के लिए उसने मेरी नसीहतों का और अपने वादे का, यहाँ तक कि मेरी अप्रसन्नता का भी जरा भी खयाल न किया!

हेमवती ने भी उड़ती हुई निगाहों से उनकी तरफ देखा। उनके बाँकपन पर उसे जरा भी ताज्जुब न हुआ। कम-से-कम वह मुस्करायी नहीं।

सारी महफिल बेसुध हो रही थी। मगर अक्षयबाबू का जी वहाँ न लगता था। वह बार-बार उठके बाहर जाते, इधर-उधर बेचैनी से आँखें फाड़-फाड़ देखते और हर बार झुँझलाकर वापस आते। यहाँ तक कि बारह बज गए और अब मायूस होकर उन्होंने अपने-आप को कोसना शुरु किया — मैं भी कैसा अहमक हूँ। एक शोख औरत के चकमे मे आ गया। जरूर इन्हीं बदमाशों में

से किसी की शरारत होगी। यह लोग मुझे देख-देखकर कैसा हँसते थे! इन्हीं में से किसी मसखरे ने यह शिगूफा छोड़ा है। अफसोस! सैकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, लज्जित हुआ सो अलग। कई मुकदमें हाथ से गए। हेमवती की निगाहों में जलील हो गया और यह सब सिर्फ इन हाहियों की खातिर! मुझसे बड़ा अहमक और कौन होगा!

इस तरह अपने ऊपर लानत भेजते, गुस्से में भरे हुए वे फिर महाफिल की तरफ चले कि एकाएक एक सरो के पेड़ के नीचे वह हरितवसना सुन्दरी उन्हें इशारे से अपनी तरफ बुलाती हुई नजर आयी। खुशी के मारे उनकी बाँछें खिल गई, दिलोंदिमाग पर एक नशा-सा छा गया। मस्ती के कदम उठाते, झूमते और ऐंठते उस स्त्री के पास आये और आशिकाना जोश के साथ बोले — ऐ रूप की रानी, मैं तुम्हारी इस कृपा के लिए हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। तुम्हें देखने के शौक में इस अधमरे प्रेमी की आँखें पथरा गई और अगर तुम्हें कुछ देर तक और यह आँखें देख न पातीं तो तुम्हें अपने रूप के मारे हुए की लाश पर हसरत के आँसू बहाने पड़ते। कल शाम ही से मेरे दिल की जो हालत हो रही है, उसका जिक्र बयान की ताकत से बाहर हैं। मेरी जान, मैं कल कचहरी न गया, और कई मुकदमें हाथ से खोए। मगर तुम्हारे दर्शन से आत्मा को जो आनन्द मिल रहा है, उस पर मैं

अपनी जान भी न्योछावर कर सकता हूँ। मुझे अब धैर्य नहीं है। प्रेम की आग ने संयम और धैर्य को जलाकर खाक कर दिया है। तुम्हें अपने हुस्न के दीवाने से यह पर्दा करना शोभा नहीं देता। शमा और परवाना में पर्दा कैसा। रूप की खान और ऐ सौन्दर्य की आत्मा! तेरी मुहब्बत भरी बातों ने मेरे दिल में आरज़ुओं का तूफान पैदा कर दिया है। अब यह दिल तुम्हारे ऊपर न्योछावर है और यह जान तुम्हारे चरणों पर अरूपित है।

यह कहते हुए बाबू अक्षयकुमार ने आशिकों जैसी ढिठाई से आगे बढ़कर उस हरितवसना सुन्दरी का घूँघट उठा दिया और हेमवती को मुस्कराते देखकर बेअख्तियार मुँह से निकला — अरे! और फिर कुछ मुँह से न निकला। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे आँखों के सामने से पर्दा हट गया। बोले। — यह सब तुम्हारी शरारत थी?

सुन्दर, हँसमुख हेमवती मुस्करायी और कुछ जवाब देना चाहती थीं, मगर बाबू अक्षयकुमार ने उस वक्त ज्यादा सवाल-जवाब का मौका न देखा। बहुत लज्जित होते हुए बोले — हेमवत, अब मुँह से कुद मत कहो, तुम जीतीं मैं हार गया। यह हार कभी न भूलेगी।

[जमाना, मई--जून 1992]

नेकी

सावन का महीना था। रेवती रानी ने पाँव में मेंहदी रचायी, माँग-चोटी सँवारी और तब अपनी बूढ़ी सास ने जाकर बोली — अम्माँ जी, आज भी मेला देखने जाऊँगी।

रेवती पण्डित चिन्तामणि की पत्नी थी। पण्डित जी ने सरस्वती की पूजा में ज्यादा लाभ न देखकर लक्ष्मी देवी की पूजा करनी शुरू की थी। लेन-देन का कार-बार करते थे मगर और महाजनों के विपरीत खास-खास हालतों के सिवा पच्चीस फीसदी से ज्यादा सूद लेना उचित न समझते थे।

रेवती की सास बच्चे को गोद में लिये खटोले पर बैठी थी। बहू की बात सुनकर बोली — भीग जाओगी तो बच्चे को जुकाम हो जायगा।

रेवती — नहीं अम्माँ, कुछ देर न लगेगी, अभी चली आऊँगी।

रेवती के दो बच्चे थे — एक लड़का, दूसरी लड़की। लड़की अभी गोद में थी और लड़का हीरामन सातवें साल में था। रेवती ने उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाये। नजर लगने से बचाने के लिए

माथे और गालों पर काजल के टीके लगा दिये, गुड़ियाँ पीटने के लिए एक अच्छी रंगीन छड़ी दे दी और अपनी सहेलियाँ के साथ मेला देखने चली।

कीरत सागर के किनारे औरतों का बड़ा जमघट था। नीलगूं घटाएँ छायी हुई थीं। औरतें सोलह सिंगार किए सागर के खुले हुए हरे-भरे सुन्दर मैदान में सावन की रिमझिम वर्षा की बहार लूट रही थीं। शाखों में झूले पड़े थे। कोई झूला झूलती कोई मल्हार गाती, कोई सागर के किनारे बैठी लहरों से खेलती। ठंडी-ठंडी खुशगवार पानी की हलकी-हलकी फुहार पहाड़ियों की निखरी हुई हरियावल, लहरों के दिलकश झकोले मौसम को ऐसा बना रहे थे कि उसमें संयम टिक न पाता था।

आज गुड़ियों की विदाई है। गुड़ियाँ अपनी ससुराल जायेंगी। कुंआरी लड़कियाँ हाथ-पाँव में मेंहदी रचाये गुड़ियों को गहने-कपड़े से सजाये उन्हें विदा करने आयी हैं। उन्हें पानी में बहाती हैं और छकछक-कर सावन के गीत गाती हैं। मगर सुख-चैन के आँचल से निकलते ही इन लाड़-प्यार में पली हुई गुड़ियों पर चारों तरफ से छड़ियों और लकड़ियों की बौछार होने लगती है।

रेवती यह सैर देख रही थी और हीरामन सागर की सीढ़ियों पर और लड़कियों के साथ गुड़ियाँ पीटने में लगा हुआ था। सीढ़ियों

पर काई लगी हुई थीं अचानक उसका पाँव फिसला तो पानी में जा पड़ा। रेवती चीख मारकर दौड़ी और सर पीटने लगी। दम के दम में वहाँ मर्दों और औरतों का ठट लग गया मगर यह किसी की इन्सानियत तकाजा न करती थी कि पानी में जाकर मुमकिन हो तो बच्चे की जान बचाये। सँवारे हुए बाल न बिखर जायेंगे! धुली हुई धोती न भींग जाएगी! कितने ही मर्दों के दिलों में यह मर्दाना खयाल आ रहे थे। दस मिनट गुजरे गयें मगर कोई आदमी हिम्मत करता नजर न आया। गरीब रेवती पछाड़ें खा रही थीं अचानक उधर से एक आदमी अपने घोड़े पर सवार चला जाता था। यह भीड़ देखकर उतर पड़ा और एक तमाशाई से पूछा — यह कैसी भीड़ है?

तमाशाई ने जवाब दिया — एक लड़का डूब गया है।

मुसाफिर — कहाँ?

तमाशाई — जहां वह औरत खड़ी रो रही है।

मुसाफिर ने फौरन अपनी गाढ़े की मिर्जई उतारी और धोती कसकर पानी में कूद पड़ा। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोग हैरान थे कि यह आदमी कौन हैं। उसने पहला गोता लगाया, लड़के की टोपी मिली। दूसरा गोता लगाया तो उसकी छड़ी हाथ में लगी और तीसरे गोते के बाद जब ऊपर आया तो लड़का

उसकी गोद में था। तमाशाइयों ने जोर से वाह-वाह का नारा बुलन्द किया। माँ दौड़कर बच्चे से लिपट गयी। इसी बीच पण्डित चिन्तामणि के और कई मित्र आ पहुँचे और लड़के को होश में लाने की फिक्र करने लगे। आध घण्टे में लड़के ने आँखें खोल दीं। लोगों की जान में जान आई। डाक्टर साहब ने कहा — अगर लड़का दो मिनट पानी में रहता तो बचना असम्भव था। मगर जब लोग अपने गुमनाम भलाई करने वाले को ढूँढ़ने लगे तो उसका कहीं पता न था। चारों तरफ आदमी दौड़ाये, सारा मेला छान मारा, मगर वह नजर न आया।

2

बीस साल गुजर गए। पण्डित चिन्तामणि का कारोबार रोज ब रोज बढ़ता गया। इस बीच में उसकी माँ ने सातों यात्राएँ कीं और मरीं तो ठाकुरद्वारा तैयार हुआ। रेवती बहू से सास बनी, लेन-देन, बही-खाता हीरामणि के साथ में आया हीरामणि अब एक हष्ट-पुष्ट लम्बा-तगड़ा नौजवान था। बहुत अच्छे स्वभाव का, नेक। कभी-कभी बाप से छिपाकर गरीब असामियों को यों ही कर्ज दे दिया करता। चिन्तामणि ने कई बार इस अपराध के

लिए बेटे को आँखें दिखाई थीं और अलग कर देने की धमकी दी थी। हीरामणि ने एक बार एक संस्कृत पाठशाला के लिए पचास रुपया चन्दा दिया। पण्डित जी उस पर ऐसे क्रुद्ध हुए कि दो दिन तक खाना नहीं खाया। ऐसे अप्रिय प्रसंग आये दिन होते रहते थे, इन्हीं कारणों से हीरामणि की तबीयत बाप से कुछ खिंची रहती थीं। मगर उसकी या सारी शरारतें हमेशा रेवती की साजिश से हुआ करती थीं। जब कस्बे की गरीब विधवायें या जमींदार के सताये हुए असामियों की औरतें रेवती के पास आकर हीरामणि को आँचल फैला-फैलाकर दुआएँ देने लगती तो उसे ऐसा मालूम होता कि मुझसे ज्यादा भाग्यवान और मेरे बेटे से ज्यादा नेक आदमी दुनिया में कोई न होगा। तब उसे बरबस वह दिन याद आ जाता तब हीरामणि कीरत सागर में डूब गया था और उस आदमी की तस्वीर उसकी आँखों के सामने खड़ी हो जाती जिसने उसके लाल को डूबने से बचाया था। उसके दिल की गहराई से दुआ निकलती और ऐसा जी चाहता कि उसे देख पाती तो उसके पाँव पर गिर पड़ती। उसे अब पक्का विश्वास हो गया था कि वह मनुष्य न था बल्कि कोई देवता था। वह अब उसी खटोले पर बैठी हुई, जिस पर उसकी सास बैठती थी, अपने दोनों पोतों को खिलाया करती थी।

आज हीरामणि की सत्ताईसवीं सालगिरह थी। रेवती के लिए यह दिन साल के दिनों में सबसे अधिक शुभ था। आज उसका दया का हाथ खूब उदारता दिखलाता था और यही एक अनुचित खर्च था जिसमें पण्डित चिन्तामणि भी शरीक हो जाते थे। आज के दिन वह बहुत खुश होती और बहुत रोती और आज अपने गुमनाम भलाई करनेवाले के लिए उसके दिल से जो दुआएँ निकलतीं वह दिल और दिमाग की अच्छी से अच्छी भावनाओं में रंगी होती थीं। उसी दिन की बदौलत तो आज मुझे यह दिन और यह सुख देखना नसीब हुआ है!

3

एक दिन हीरामणि ने आकर रेवती से कहा — अम्माँ, श्रीपुर नीलाम पर चढ़ा हुआ है, कहो तो मैं भी दाम लगाऊँ।

रेवती — सोलहों आना है?

हीरामणि — सोलहों आना। अच्छा गाँव है। न बड़ा न छोटा। यहाँ से दस कोस है। बीस हजार तक बोली चढ़ चुकी है। सौ-दो सौ में खत्म हो जायगी।

रेवती — अपने दादा से तो पूछो।

हीरामणि — उनके साथ दो घंटे तक माथापच्ची करने की किसे फुरसत है।

हीरामणि अब घर का मालिक हो गया था और चिन्तामणि की एक न चलने पाती। वह गरीब अब ऐनक लगाये एक गद्दे पर बैठे अपना वक्त खांसने में खर्च करते थे।

दूसरे दिन हीरामणि के नाम पर श्रूपुर खत्म हो गया। महाजन से जमींदार हुए अपने मुनीम और दो चपरासियों को लेकर गाँव की सैर करने चले। श्रूपुरवालों को खबर हुई। नये जमींदार का पहला आगमन था। घर-घर नजराने देने की तैयारियाँ होने लगीं। पाँचवें दिन शाम के वक्त हीरामणि गाँव में दाखिल हुए। दही और चावल का तिलक लगाया गया और तीन सौ असामी पहर रात तक हाथ बांधे हुए उनकी सेवा में खड़े रहे। सवेरे मुख्तारेआम ने असामियों का परिचय कराना शुरू किया। जो असामी जमींदार के सामने आता वह अपनी बिसात के मुताबिक एक या दो रुपये उनके पाँव पर रख देता। दोपहर होते-होते पाँच सौ रुपयों का ढेर लगा हुआ था।

हीरामणि को पहली बार जमींदारी का मजा मिला, पहली बार धन और बल का नशा महसूस हुआ। सब नशों से ज्यादा तेज, ज्यादा

घातक धन का नशा है। जब असामियों की फेहरिस्त खतम हो गयी तो मुख्तार से बोले — और कोई असामी तो बाकी नहीं है?

मुख्तार — हाँ महाराज, अभी एक असामी और है, तखत सिंह।

हीरामणि — वह क्यों नहीं आया?

मुख्तार — जरा मस्त है।

हीरामणि — मैं उसकी मस्ती उतार दूँगा। जरा कोई उसे बुला लाये।

थोड़ी देर में एक बूढ़ा आदमी लाठी टेकता हुआ आया और दण्डवत् करके जमीन पर बैठ गया, न नजर न नियाज। उसकी यह गुस्ताखी देखकर हीरामणि को बुखार चढ़ आया। कड़ककर बोले — अभी किसी जमींदार से पाला नही पड़ा हैं। एक-एक की हेकड़ी भुला दूँगा!

तखत सिंह ने हीरामणि की तरफ गौर से देखकर जवाब दिया — मेरे सामने बीस जमींदार आये और चले गये। मगर कभी किसी ने इस तरह घुड़की नहीं दी।

यह कहकर उसने लाठी उठाई और अपने घर चला आया।

बूढ़ी ठकुराइन ने पूछा — देखा जमींदार को कैसे आदमी है?

तखत सिंह — अच्छे आदमी हैं। मैं उन्हें पहचान गया।

ठकुराइन — क्या तुमसे पहले की मुलाकात है।

तखत सिंह — मेरी उनकी बीस बरस की जान-पहिचान है, गुड़ियों के मेलेवाली बात याद है न?

उस दिन से तखत सिंह फिर हीरामणि के पास न आया।

4

छः महीने के बाद रेवती को भी श्रूपुर देखने का शौक हुआ। वह और उसकी बहू और बच्चे सब श्रूपुर आये। गाँव की सब औरतें उससे मिलने आयीं। उनमें बूढ़ी ठकुराइन भी थी। उसकी बातचीत, सलीका और तमीज देखकर रेवती दंग रूह गयी। जब वह चलने लगी तो रेवती ने कहा — ठकुराइन, कभी-कभी आया करना, तुमसे मिलकर तबियत बहुत खुश हुई।

इस तरह दोनों औरतों में धीरे-धीरे मेल हो गया। यहाँ तो यह कैफियत थी और हीरामणि अपने मुख्तारेआम के बहकावे में आकर तखत सिंह को बेदखल करने की तरकीबें सोच रहा था।

जेठ की पूरनमासी आयी। हीरामणि की सालगिरह की तैयारियाँ होने लगीं। रेवती चलनी में मैदा छान रही थी कि बूढ़ी ठकुराइन

आयी। रेवती ने मुस्कराकर कहा — ठकुराइन, हमारे यहाँ कल तुम्हारा न्योता है।

ठकुराइन — तुम्हारा न्योता सिर-आँखों पर। कौन-सी बरसगाँठ है?

रेवती — उनतीसवीं।

ठकुराइन — नरायन करे अभी ऐसे-ऐसे सौ दिन तुम्हें और देखने नसीब हो।

रेवती — ठकुराइन, तुम्हारी जबान मुबारक हो। बड़े-बड़े जन्तर-मन्तर किये हैं तब तुम लोगों की दुआ से यह दिन देखना नसीब हुआ है। यह तो सातवें ही साल में थे कि इसकी जान के लाले पड़ गये। गुड़ियों का मेला देखने गयी थी। यह पानी में गिर पड़े। बारे, एक महात्मा ने इसकी जान बचायी। इनकी जान उन्हीं की दी हुई हैं बहुत तलाश करवाया। उनका पता न चला। हर बरसगाँठ पर उनके नाम से सौ रुपये निकाल रखती हूँ। दो हजार से कुछ ऊपर हो गये हैं। बच्चे की नीयत है कि उनके नाम से श्रीपुर में एक मंदिर बनवा दें। सच मानो ठकुराइन, एक बार उनके दर्शन हो जाते तो जीवन सफल हो जाता, जी की हवस निकाल लेते।

रेवती जब खामोश हुई तो ठकुराइन की आँखों से आँसू जारी थे।

दूसरे दिन एक तरफ हीरामणि की सालगिरह का उत्सव था और दूसरी तरफ तखत सिंह के खेत नीलाम हो रहे थे।

ठकुराइन बोली — मैं रेवती रानी के पास जाकर दुहाई मचाती हूँ।

तखत सिंह ने जवाब दिया — मेरे जीते-जी नहीं।

5

असाढ़ का महीना आया। मेघराज ने अपनी प्राणदायी उदारता दिखायी। श्रूपुर के किसान अपने-अपने खेत जोतने चले। तखतसिंह की लालसा भरी आँखें उनके साथ-साथ जातीं, यहाँ तक कि जमीन उन्हें अपने दामन में छिपा लेती।

तखत सिंह के पास एक गाय थी। वह अब दिन के दिन उसे चराया करता। उसकी जिन्दगी का अब यही एक सहारा था। उसके उपले और दूध बेचकर गुजर-बसर करता। कभी-कभी फाके करने पड़ जाते। यह सब मुसीबतें उसने झेंलीं मगर अपनी कंगाली का रोना रोने के लिए एक दिन भी हीरामणि के पास न गया। हीरामणि ने उसे नीचा दिखाना चाहा था मगर खुद उसे ही

नीचा देखना पड़ा, जीतने पर भी उसे हार हुई, पुराने लोहे को अपने नीच हठ की आँच से न झुका सका।

एक दिन रेवती ने कहा — बेटा, तुमने गरीब को सताया, अच्छा न किया।

हीरामणि ने तेज होकर जवाब दिया — वह गरीब नहीं है। उसका घमण्ड मैं तोड़ दूँगा।

दौलत के नशे में मतवाला जमींदार वह चीज तोड़ने की फिक्र में था जो कहीं थी ही नहीं। जैसे नासमझ बच्चा अपनी परछाईं से लड़ने लगता है।

6

साल भर तखतसिंह ने ज्यों-त्यों करके काटा। फिर बरसात आयी। उसका घर छाया न गया था। कई दिन तक मूसलधार मेंह बरसा तो मकान का एक हिस्सा गिर पड़ा। गाय वहाँ बँधी हुई थी, दबकर मर गयीं तखतसिंह को भी सख्त चोट आयी। उसी दिन से बुखार आना शुरू हुआ। दवा-दारू कौन करता, रोजी का सहारा था वह भी टूटा। जालिम बेदर्द मुसीबत ने कुचल

डाला। सारा मकान पानी से भरा हुआ, घर में अनाज का एक दाना नहीं, अंधेरे में पड़ा हुआ कराह रहा था कि रेवती उसके घर गयी। तखतसिंह ने आँखें खोलीं और पूछा — कौन है?

ठकुराइन — रेवती रानी हैं।

तखतसिंह — मेरे धन्यभाग, मुझ पर बड़ी दया की।

रेवती ने लज्जित होकर कहा — ठकुराइन, ईश्वर जानता है, मैं अपने बेटे से हैरान हूँ। तुम्हें जो तकलीफ हो मुझसे कहो। तुम्हारे ऊपर ऐसी आफत पड़ गयी और हमसे खबर तक न की?

यह कहकर रेवती ने रुपयों की एक छोटी-सी पोटली ठकुराइन के सामने रख दी।

रुपयों की झनकार सुनकर तखतसिंह उठ बैठा और बोला — रानी, हम इसके भूखे नहीं है। मरते दम गुनाहगार न करो

दूसरे दिन हीरामणि भी अपने मुसाहिबों को लिये उधर से जा निकला। गिरा हुआ मकान देखकर मुस्कराया। उसके दिल ने कहा, आखिर मैंने उसका घमण्ड तोड़ दिया। मकान के अन्दर जाकर बोला — ठाकुर, अब क्या हाल है?

ठाकुर ने धीरे से कहा — सब ईश्वर की दया है, आप कैसे भूल पड़े?

हीरामणि को दूसरी बार हार खानी पड़ी। उसकी यह आरजू कि तखतसिंह मेरे पाँव को आँखों से चूमे, अब भी पूरी न हुई। उसी रात को वह गरीब, आजाद, ईमानदार और बेगरज ठाकुर इस दुनिया से विदा हो गया।

7

बूढ़ी ठकुराइन अब दुनिया में अकेली थी। कोई उसके गम का शरीक और उसके मरने पर आँसू बहानेवाला न था। कंगाली ने गम की आँच और तेज कर दी थीं जरूरत की चीजें मौत के घाव को चाहे न भर सकें मगर मरहम का काम जरूर करती है।

रोटी की चिन्ता बुरी बला है। ठकुराइन अब खेत और चरागाह से गोबर चुन लाती और उपले बनाकर बेचती। उसे लाठी टेकते हुए खेतों को जाते और गोबर का टोकरा सिर पर रखकर बोझ में हाँफते हुए आते देखना बहुत ही दर्दनाक था। यहाँ तक कि हीरामणि को भी उस पर तरस आ गया। एक दिन उन्होंने आटा, दाल, चावल, थालियों में रखकर उसके पास भेजा। रेवती खुद लेकर गयी। मगर बूढ़ी ठकुराइन आँखों में आँसू भरकर बोला

— रेवती, जब तक आँखों से सूझता है और हाथ-पाँव चलते हैं, मुझे और मरनेवाले को गुनाहगार न करो।

उस दिन से हीरामणि को फिर उसके साथ अमली हमदर्दी दिखलाने का साहस न हुआ।

एक दिन रेवती ने ठकुराइन से उपले मोल लिये। गाँव मे पैसे के तीस उपले बिकते थे। उसने चाहा कि इससे बीस ही उपले लूँ। उस दिन से ठकुराइन ने उसके यहाँ उपले लाना बन्द कर दिया।

ऐसी देवियाँ दुनिया में कितनी है! क्या वह इतना न जानती थी कि एक गुप्त रहस्य जबान पर लाकर मैं अपनी इन तकलीफों का खात्मा कर सकती हूँ! मगर फिर वह एहसान का बदला न हो जाएगा! मसल मशहूर है नेकी कर और दरिया में डाल। शायद उसके दिल में कभी यह ख्याल ही नहीं आया कि मैंने रेवती पर कोई एहसान किया।

यह वजादार, आन पर मरनेवाली औरत पति के मरने के बाद तीन साल तक जिन्दा रही। यह जमाना उसने जिस तकलीफ से काटा उसे याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कई-कई दिन निराहार बीत जाते। कभी गोबर न मिलता, कभी कोई उपले चुरा ले

जाता। ईश्वर की मर्जी! किसी की घर भरा हुआ है, खानेवाला नहीं। कोई यो रो-रोकर जिन्दगी काटता है।

बुढ़िया ने यह सब दुख झेला मगर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया।

8

हीरामणि की तीसवीं सालगिरह आयी। ढोल की सुहानी आवाज सुनायी देने लगी। एक तरफ घी की पूड़ियाँ पक रही थीं, दूसरी तरफ तेल की। घी की मोटे ब्राह्मणों के लिए, तेल की गरीब-भूखे-नीचों के लिए।

अचानक एक औरत ने रेवती से आकर कहा — ठकुराइन जाने कैसी हुई जाती हैं। तुम्हें बुला रही हैं।

रेवती ने दिल में कहा — आज तो खैरियत से काटना, कहीं बुढ़िया मर न रही हो।

यह सोचकर वह बुढ़िया के पास न गयी। हीरामणि ने जब देखा, अम्माँ नहीं जाना चाहती तो खुद चला। ठकुराइन पर उसे कुछ दिनों से दया आने लगी थी। मगर रेवती मकान के दरवाजे से

उसे मना करने आयी। यह रहमदिल, नेकमिजाज, शरीफ रेवती थी।

हीरामणि ठकुराइन के मकान पर पहुँचा तो वहाँ बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। बूढ़ी औरत का चेहरा पीला था और जान निकलने की हालत उस पर छाई हुई थी। हीरामणि ने जो से कहा — ठकुराइन, मैं हूँ हीरामणि।

ठकुराइन ने आँखें खोली और इशारे से उसे अपना सिर नजदीक लाने को कहा। फिर रुक-रुककर बोली — मेरे सिरहाने पिटारी में ठाकुर की हड्डियाँ रखी हुई हैं, मेरे सुहाग का सेंदुर भी वहीं है। यह दोनों प्रयागराज भेज देना।

यह कहकर उसने आँखें बन्द कर ली। हीरामणि ने पिटारी खोली तो दोनों चीजें हिफाजत के साथ रक्खी हुई थीं। एक पोटली में दस रुपये भी रक्खे हुए मिले। यह शायद जानेवाले का सफर खर्च था!

रात को ठकुराइन के कष्टों का हमेशा के लिए अन्त हो गया।

उसी रात को रेवती ने सपना देखा — सावन का मेला है, घटाएँ छाई हुई हैं, मैं कीरत सागर के किनारे खड़ी हूँ। इतने में हीरामणि पानी में फिसल पड़ा। मै छाती पीट-पीटकर रोने लगी। अचानक एक बूढ़ा आदमी पानी में कूदा और हीरामणि को

निकाल लाया। रेवती उसके पाँव पर गिर पड़ी और बोली — आप कौन है?

उसने जवाब दिया — मैं श्रूपुर में रहता हूँ, मेरा नाम तखतसिंह है।

श्रूपुर अब भी हीरामणि के कब्जे में है, मगर अब रौनक दोबाला हो गयी है। वहाँ जाओ तो दूर से शिवाले का सुनहरा कलश दिखाई देने लगता है; जिस जगह तखत सिंह का मकान था, वहाँ यह शिवाला बना हुआ है। उसके सामने एक पक्का कुआँ और पक्की धर्मशाला है। मुसाफिर यहाँ ठहरते हैं और तखत सिंह का गुन गाते हैं। यह शिवाला और धर्मशाला दोनों उसके नाम से मशहूर हैं।

[उर्दू 'प्रेमपचीसी' से]

पंडित मोटेराम जी शास्त्री

पण्डित मोटेराम जी शास्त्री को कौन नही जानता! आप अधिकारियों का रूख देखकर काम करते है। स्वदेशी आन्दोलनों के दिनों मे अपने उस आन्दोलन का खूब विरोध किया था। स्वराज्य आन्दोलन के दिनों मे भी अपने अधिकारियों से राजभक्ति की सनद हासिल की थी। मगर जब इतनी उछल-कूद पर उनकी तकदीर की मीठी नींद न टूटी, और अध्यापन कार्य से पिण्ड न छूटा, तो अन्त मे अपनी एक नई तदबीर सोची। घर जाकर धर्मपत्नी जी से बोले — इन बूढ़े तोतों को रटाते-रटातें मेरी खोपड़ी पच्ची हुई जाती है। इतने दिनों विद्या-दान देने का क्या फल मिला जो और आगे कुछ मिलने की आशा करूँ।

धर्मपत्नी ने चिन्तित होकर कहा — भोजन का भी तो कोई सहारा चाहिए।

मोटेराम — तुम्हें जब देखो, पेट ही की फ्रिक पड़ी रहती है। कोई ऐसा विरला ही दिन जाता होगा कि निमन्त्रण न मिलते हो, और चाहे कोई निन्दा करें, पर मै परोसा लिये बिना नहीं आता हूँ। आज ही सब यजमान मरे जाते है? मगर जन्म-भर पेट ही

जिलाया तो क्या किया। संसार का कुछ सुख भी तो भोगन चाहिए। मैने वैद्य बनने का निश्चय किया है।

स्त्री ने आश्चर्य से कहा — वैद्य बनोगे, कुछ वैद्यकी पढ़ी भी है?

मोटे-वैद्यक पढने से कुछ नही होता, संसार मे विद्या का इतना महत्व नही जितना बुद्धि क। दो-चार सीधे-सादे लटके है, बस और कुछ नही। आज ही अपने नाम के आगे भिषगाचार्य बढ़ा लूँगा, कौन पूछने आता है, तुम भिषगाचार्य हो या नही। किसी को क्या गरज पड़ी है जो मेरी परीक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूँगा। उस पर शब्द लिखें होगे — यहाँ स्त्री पुरुषों के गुप्त रोगों की चिकित्सा विशेष रूप से की जाती है। दो-चार पैसे का हड़-बहेड़ा-आवँला कुट छानकर रख लूँगा। बस, इस काम के लिए इतना सामान पर्याप्त है। हाँ, समाचारपत्रों मे विज्ञापन दूँगा और नोटिस बँटवाऊँगा। उसमें लंका, मद्रास, रंगून, कराची आदि दूरस्थ स्थानों के सज्जनों की चिट्ठियाँ दर्ज की जाएँगी। ये मेरे चिकित्सा-कौशल के साक्षी होगें जनता को क्या पड़ी है कि वह इस बात का पता लगाती फिरे कि उन स्थानों मे इन नामों के मनुष्य रहते भी है, या नहीं फिर देखों वैद्य की कैसी चलती है।

स्त्री — लेकिन बिना जाने-बूझ दवा दोगे, तो फायदा क्या करेगी?

मोटे-फायदा न करेगी, मेरी बला से। वैद्य का काम दवा देना है, वह मृत्यु को परस्त करने का ठेका नही लेता, और फिर जितने आदमी बीमार पड़ते है, सभी तो नही मर जाते। मेरा यह कहना है कि जिन्हें कोई औषधि नही दी जाती, वे विकार शान्त हो जाने पर ही अच्छे हो जाते है। वैद्यों को बिना माँगे यश मिलता है। पाच रोगियों मे एक भी अच्छा हो गया, तो उसका यश मुझे अवश्य ही मिलेगा। शेष चार जो मर गये, वे मेरी निन्दा करने थोडे ही आवेगें। मैने बहुत विचार करके देख लिया, इससे अच्छा कोई काम नही है। लेख लिखना मुझे आता ही है, कवित्त बना ही लेता हूँ, पत्रों मे आयुर्वेद-महत्व पर दो-चार लेख लिख दूँगा, उनमें जहां-तहां दो-चार कवित्त भी जोड़ दूँगा और लिखूँगा भी जरा चटपटी भाषा मे। फिर देखों कितने उल्लू फँसते है यह न समझो कि मै इतने दिनो केवल बूढे तोते ही रटाता रहा हूँ। मै नगर के सफल वैद्यों की चालों का अवलोकन करता रहा हू और इतने दिनों के बाद मुझे उनकी सफलता के मूल-मंत्र का ज्ञान हुआ है। ईश्वर ने चाहा तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक सोने से लदी होगी।

स्त्री ने अपने मनोल्लास को दबाते हुए कहा — मै इस उम्र मे भला क्या गहने पहनूँगी, न अब वह अभिलाषा ही है, पर यह तो

बताओं कि तुम्हें दवाएँ बनानी भी तो नही आती, कैसे बनाओगे, रस कैसे बनेंगे, दवाओं को पहचानते भी तो नही हो।

मोटे — प्रिये! तुम वास्तव मे बड़ी मूर्ख हो। अरे वैद्यों के लिए इन बातों मे से एक भी आवश्यकता नही, वैद्य की चुटकी की राख ही रस है, भस्म है, रसायन है, बस आवश्यकता है कुछ ठाट-बाट की। एक बड़ा-सा कमरा चाहिए उसमें एक दरी हो, ताखों पर दस-पाँच शीशियाँ बोतल हो। इसके सिवा और कोई चीज दरकार नही, और सब कुछ बुद्धि आप ही आप कर लेती है। मेरे साहित्य-मिश्रित लेखों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा, तुम देख लेना। अलंकारो का मुझे कितना ज्ञान है, यह तो तुम जानती ही हो। आज इस भूमण्डल पर मुझे ऐसा कोई नही दिखता जो अलंकारो के विषय मे मुझसे पेश पा सके। आखिर इतने दिनों घास तो नही खोदी है! दस-पाँच आदमी तो कवि-चर्चा के नाते ही मेरे यहाँ आया जाया करेंगे। बस, वही मेरे दल्लाह होगें। उन्ही की मार्फत मेरे पास रोगी आवेंगे। मै आयुर्वेद-ज्ञान के बल पर नही नायिका-ज्ञान के बल पर धड़ल्ले से वैद्यक करूँगा, तुम देखती तो जाओ।

स्त्री ने अविश्वास के भाव से कहा — मुझे तो डर लगता है कि कही यह विद्यार्थी भी तुम्हारे हाथ से न जाए। न इधर के रहो ने उधर के। तुम्हारे भाग्य मे तो लड़के पढ़ाना लिखा है, और चारों ओर से ठोकर खाकर फिर तुम्हें वी तोते रटाने पड़ेंगे।

मोटे — तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास क्यों नही आता?

स्त्री — इसलिए कि तुम वहाँ भी धूर्तता करोगे। मै तुम्हारी धूर्तता से चिढ़ती हूँ। तुम जो कुछ नही हो और नही हो सकते,वक क्यो बनना चाहते हो? तुम लीडर न बन सके, न बन सके, सिर पटककर रह गये। तुम्हारी धूर्तता ही फलीभूत होती है और इसी से मुझे चिढ़ है। मै चाहती हूँ कि तुम भले आदमी बनकर रहो। निष्कपट जीवन व्यतीत करो। मगर तुम मेरी बात कब सुनते हो?

मोटे — आखिर मेरा नायिका-ज्ञान कब काम आवेगा?

स्त्री — किसी रईस की मुसाहिबी क्यो नही कर लेते? जहां दो-चार सुन्दर कवित्त सुना दोंगे। वह खुश हो जाएगा और कुछ न कुछ दे ही मारेगा। वैद्यक का ढोंग क्यों रचते हों!

मोटे — मुझे ऐसे-ऐसे गुर मालूम है जो वैद्यों के बाप-दादों को भी न मालूम होगे। और सभी वैद्य एक-एक, दो-दो रुपये पर मारे-मारे फिरते है, मै अपनी फीस पाँच रुपये रक्खूगा, उस पर सवारी का किराया अलग। लोग यही समझेंगे कि यह कोई बडे वैद्य है नही तो इतनी फीस क्यों होती?

स्त्री को अबकी कुछ विश्वास आया बोली — इतनी देर मे तुमने एक बात मतलब की कही है। मगर यह समझ लो, यहाँ तुम्हारा रंग न जमेगा, किसी दूसरे शहर को चलना पड़ेगा।

मोटे — (हँसकर) क्या मै इतना भी नही जानता। लखनऊ मे अड्डा जमेगा अपना। साल-भर मे वह धाक बाँध दूँ कि सारे वैद्य गर्द हो जाएँ। मुझे और भी कितने ही मन्त्र आते है। मै रोगी को दो-तीन बार देखे बिना उसकी चिकित्सा ही न करूँगा। कहूँगा, मै जब तक रोगी की प्रकृति को भली भांति पहचान न लूँ, उसकी दवा नही कर सकता। बोलो, कैसी रहेगी?

स्त्री की बाँछें खिल गई, बोली — अब मै तुम्हें मान गई, अवश्य चलेगी तुम्हारी वैद्यकी, अब मुझे कोई संदेह नही रहा। मगर गरीबों के साथ यह मंत्र न चलाना नही तो धोखा खाओगे।

2

साल भर गुजर गया।

भिषगाचार्य पण्डित मोटेराम जी शास्त्री की लखनऊ मे घूम मच गई। अलंकारों का ज्ञान तो उन्हे था ही, कुछ गा-बजा भी लेते

थे। उस पर गुप्त रोगों के विशेषज्ञ, रसिकों के भाग्य जागें। पण्डित जी उन्हें कवित सुनाते, हँसाते, और बलकारक औषधियाँ खिलाते, और वह रईसों मे, जिन्हें पुष्टिकारक औषधियों की विशेष चाह रहती है, उनकी तारीफों के पुल बाँधते। साल ही भर मे वैद्यजी का वह रंग जमा, कि बायद व शायद गुप्त रोगों के चिकित्सक लखनऊ मे एकमात्र वही थे। गुप्त रूप से चिकित्सा भी करते। विलासिनी विधवारानियों और शौकीन अदूरदर्शी रईसों मे आपकी खूब पूजा होने लगी। किसी को अपने सामने समझते ही न थे।

मगर स्त्री उन्हे बराबर समझाया करती कि रानियों के झमेलें मे न फँसों, नहीं कई दिन पछ्ताओगे।

मगर भावी तो होकर ही रहती है, कोई लाख समझाये-बुझाये। पंडितजी के उपासकों मे बिड़हल की रानी भी थी। राजा साहब का स्वर्गवास हो चुका था, रानी साहिबा न जाने किस जीर्ण रोग से ग्रस्त थी। पण्डितजी उनके यहाँ दिन मे पाँच-पाँच बार जाते। रानी साहिबा उन्हें एक क्षण के लिए भी देर हो जाती तो बेचैन हो जाती, एक मोटर नित्य उनके द्वार पर खड़ी रहती थी। अब पण्डित जी ने खूब केंचुल बदली थी। तंजेब की अचकन पहनते, बनारसी साफा बाधते और पम्प जूता डाटते थे। मित्रगण भी उनके साथ मोटर पर बैठकर दनदनाया करते थे। कई मित्रों को

रानी साहिबा के दरबार मे नौकर रखा दिया। रानी साहिबा भला अपने मसीहा की बात कैसी टालती।

मगर चर्खे जफाकार और ही षडयन्त्र रच रहा था।

एक दिन पण्डितजी रानी साहिबा की गोरी-गोरी कलाई पर एक हाथ रखे नब्ज देख रहे थे, और दूसरे हाथ से उनके हृदय की गति की परीक्षा कर रहे थे कि इतने मे कई आदमी सोटे लिए हुए कमरे मे घुस आये और पण्डितजी पर टूट पड़े। रानी भागकर दूसरे कमरे की शरण ली और किवाड़ बन्द कर लिए। पण्डितजी पर बेभाव पड़ने लगे। यों तो पण्डितजी भी दमखम के आदमी थे, एक गुप्ती सदैव साथ रखते थे। पर जब धोखे मे कई आदमियों ने धर दबाया तो क्या करते? कभी इसका पैकर पकड़ते कभी उसका। हाय-हाय! का शब्द मुँह से निकल रहा था पर उन बेरहमों को उन पर जरा भी दया न आती थी, एक आदम ने एक लात जमाकर कहा — इस दुष्ट की नाक काट लो।

दूसरा बोला — इसके मुँह मे कालिख और चूना लगाकर छोड़ दो।

तीसरा — क्यों वैद्यजी महाराज, बोलो क्या मंजूर है? नाक कटवाओगे या मुँह मे कालिख लगवाओगें?

पण्डित — भूलकर भी नही सरकार। हाय मर गया!

दूसरा — आज ही लखनऊ से रफरैट हो जाओं नही तो बुरा होगा।

पण्डित — सरकार मै आज ही चला जाऊँगा। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूँ। आप यहाँ मेरी सूरत न देखेंगे।

तीसरा — अच्छा भाई, सब कोई इसे पाँच-पाँच लाते लगाकर छोड़ दो।

पण्डित — अरे सरकार, मर जाऊँगा, दया करो

चौथा — तुम जैसे पाखंडियो का मर जाना ही अच्छा है। हाँ तो शुरू हो।

पंचलत्ती पड़ने लगी, धमाधम की आवाजें आने लगी। मालूम होता था नगाड़े पर चोट पड़ रही है। हर धमाके के बाद एक बार हाय की आवाज निकल आती थी, मानों उसकी प्रतिध्वनि हो।

पंचलत्ती पूजा समाप्त हो जाने पर लोगों ने मोटेराम जी को घसीटकर बाहर निकाला और मोटर पर बैठाकर घर भेज दिया, चलते-चलते चेतावनी दे दी, कि प्रातःकाल से पहले भाग खड़े होना, नही तो और ही इलाज किया जाएगा।

3

मोटेराम जी लंगड़ाते, कराहते, लकड़ी टेकते घर मे गए और धम से गिर पड़े चारपाई पर गिर पड़े। स्त्री ने घबराकर पूछा — कैसा जी है? अरे तुम्हारा क्या हाल है? हाय-हाय यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया!

मोटे — हाय भगवान, मर गया।

स्त्री — कहाँ दर्द है? इसी मारे कहती थी, बहुत रबड़ी न खाओं। लवणभास्कर ले आऊँ?

मोटे — हाय, दुष्टों ने मार डाला। उसी चाण्डालिनी के कारण मेरी दुर्गति हुई। मारते-मारते सबों ने भुरकुस निकाल दिया।

स्त्री — तो यह कहो कि पिटकर आये हो। हाँ, पिटे हो। अच्छा हुआ। हो तुम लातों ही के देवता। कहती थी कि रानी के यहाँ मत आया-जाया करो। मगर तुम कब सुनते थे।

मोटे — हाय, हाय! राँड, तुझे भी इसी दम कोसने की सूझी। मेरा तो बुरा हाल है और तू कोस रही है। किसी से कह दे, ठेला-वेला लावे, रातों-रात लखनऊ से भाग जाना है। नही तो सबेरे प्राण न बचेंगे।

स्त्री — नही, अभी तुम्हारा पेट नही भरा। अभी कुछ दिन और यहाँ की हवा खाओ! कैसे मजे से लड़के पढ़ाते थे, हाँ नही तो वैद्य बनने की सूझी। बहुत अच्छा हुआ, अब उम्र भर न भूलोगे। रानी कहाँ थी कि तुम पिटते रहे और उसने तुम्हारी रक्षा न की।

पण्डित — हाय, हाय वह चुड़ैल तो भाग गई। उसी के कारण। क्या जानता था कि यह हाल होगा, नहीं तो उसकी चिकित्सा ही क्यों करता?

स्त्री — हो तुम तकदीर के खोटे। कैसी वैद्यकी चल गई थी। मगर तुम्हारी करतूतों ने सत्यानाश मार दिया। आखिर फिर वही पढौनी करना पड़ी। हो तकदीर के खोटे।

प्रातःकाल मोटेराम जी के द्वार पर ठेला खड़ा था और उस पर असबाब लद रहा था। मित्रों मे एक भी नजर न आता था। पण्डित जी पड़े कराह रहे थे और स्त्री सामान लदवा रही थी।

['माधुरी' जनवरी, 1928]

पर्वत यात्रा

प्रातःकाल मुं. गुलाबाजखाँ ने नमाज पढ़ी, कपड़े पहने और महरी से किराये की गाड़ी लाने को कहा। शीरी बेगम ने पूछा — आज सबेरे — सबेरे कहाँ जाने का इरादा है?

गुल — जरा छोटे साहब को सलाम करने जाना है।

शीरीं — तो पैदल क्यों नही चले जाते? कौन बड़ी दूर है।

गुल — जो बात तुम्हारी समझ मे न आये, उसमें जबान न खोला करो।

शीरीं — पूछती तो हूँ पैदल चले जाने मे क्या हरज है? गाड़ीवाला एक रुपये से कम न लेगा।

गुल — (हँसकर) हुक्काम किराया नही देते। उसकी हिम्मत है कि मुझसे किराया माँगे! चालान करवा दूँ।

शीरीं — तुम तो हाकिम भी नही हो, तुम्हें वह क्यों ले जाने लगा!

गुल — हाकिम कैसे नही हूँ? हाकिम के क्या सींग-पूंछ होती है, जो मेरे नही है? हाकिम को दोस्त हाकिम से कम रोब नही

रखता। अहमक नही हूँ कि सौ काम छोड़कर हुक्काम की सलामी बजाया करती हूँ। यही इसी की बरकत है कि पुलिस माल दीवानी के अहलकार मुझे झुक-झुककर सलाम करते है, थानेदार ने कल जो सौगात भेजी थी, वह किसलिए? मै उनका दामाद तो नही हूँ। सब मुझसे डरते है।

इतने में महरी एक ताँगा लाई। खाँ साहब ने फौरन साफा बाँधा और चले। शीरी ने कहा — अरे, तो पान तो खाते जाओं!

गुल — हाँ, लाओं हाथ मे मेंहदी भी लगा दो। अरी नेकबख्त, हुक्काम के सामने पान खाकर जाना बेअदबी है।

शीरीं — आओगे कब तक? खाना तो यही खाओगें!

गुल — तुम मेरे खाने की फ्रिक न करना, शायद कुँअरसाहब के यहाँ चला जाऊँ। कोई मुझे पूछे तो कहला देना, बड़े साहब से मिलने गये है।

खाँ साहब आकर ताँगे पर बैठे। ताँगेवाले ने पूछा — हुजूर, कहाँ चलूँ?

गुल — छोटे साहब के बंगले पर। सरकारी काम से जाना है।

ताँगे — हुजूर को वहाँ कितनी देर लगेगी?

गुल — यह मै कैसे बता दूँ, यह तो हो नही सकता कि साहब मुझसे बार-बार बैठने को कहे और मै उठकर चला आऊँ। सरकारी काम है, न जाने कितनी देर लगे। बड़े अच्छे आदमी है बेचारे। मजाल नही कि जो बात कह दूँ, उससे इनकार कर दे। आदमी को गरूर न करना चाहिए। गरूर करना शैतान का काम है। मगर कई थानेदारों से जवाब तलब कर चुका हूँ। जिसको देखा कि रिआया को ईजा पहुँचाता है, उसके पीछे पड़ जाता हूँ।

ताँगे — हुजूर पुलिस बड़ा अंधेर करती है। जब देखो बेगार कभी आधी रत को बुला भेजा, कभी फजिर को। मरे जाते है हुजूर। उस पर हर मोड़ पर सिपाहियों को पैसे चाहिए। न दे, तो झूठा चालान कर दें।

गुल — सब जानता हूँ जी, अपनी झोपड़ी मे बैठा सारी दुनिया की सेर किया करता हूँ। वही बैठे-बैठे बदमाशों की खबर लिया करता हूँ। देखो, ताँगे को बंगले के भीतर न ले जाना। बाहर फाटक पर रोक देना।

ताँगे — अच्छा हुजूर। अच्छा, अब देखिये वह सिपाह मोड़ पर खड़ा है। पैसे के लिए हाथ फैलायेगा। न दूँ तो ललकारेगा। मगर आज कसम कुरान की, टका-सा जवाब दे दूँगा। हुजूर बैठे है तो क्या कर सकता है।

गुल — नही, नही, जरा-जरा सी बात पर मै इन छोटे आदमियों से नही लड़ता। पैसे दे देना। मै तो पीछे से बचा की खबर लूँगा। मुअत्तल न करा दूँ तो सही। दूबदू गाली-गलौज करना, इन छोटे आदमियों के मुँह लगना मेरी आदत नही।

ताँगेवाले को भी यह बात पसन्द आई। मोड़ पर उसने सिपाही को पैसे दे दिए। ताँगा साहब के बंगले पर पहुँचा। खाँ साहब उतरे, और जिस तरह कोई शिकारी पैर दबा-दबाकर चौकन्नी आँखो से देखता हुआ चलता है, उसी तरह आप बंगले के बरामदे मे जाकर खड़े हो गए। बैरा बरामदे मे बैठा था। आपने उसे देखते ही सलाम किया।

बैरा — हुजूर तो अंधेर करते है। सलाम हमको करना चाहिए और आप पहले ही हाथ उठा देते है।

गुल — अजी इन बातों मे क्या रक्खा है। खुदा की निगाह मे सब इन्सान बराबर है।

बैरा — हुजूर को अल्लाह सलामत रक्खें, क्या बात कही है। हक तो यह है पर आदमी अपने को कितना भूल जाता है! यहाँ तो छोटे-छोटे अमले भी इंतजार करते रहते है कि यह हाथ उठावें। साहब को इत्तला कर दूँ?

गुल — आराम मे हो तो रहने दो, अभी ऐसी कोई जल्दी नहीं।

बैरा — जी नही हुजूर हाजिरी पर से तो कभी के उठ चुके, कागज-वागज पढ़ते होगें।

गुल — अब इसका तुम्हें अख्तियार है, जैसा मौका हो वैसा करो। मौका-महल पहचानना तुम्हीं लोगो का काम है। क्या हुआ, तुम्हारी लड़की तो खैरियत से है न?

बैरा — हाँ हुजूर, अब बहुत मजे मे हे। जब से हुजूर ने उसके घरवालों को बुलाकर डाँट दिया है, तब से किसी ने चूँ भी नही किया। लड़की हुजूर की जान-माल को दुआ देती है।

बैरे ने साहब को खाँ साहब की इत्तला की, और एक क्षण मे खाँ साहब जूते उतार कर साहब के सामने जा खड़े हुए और सलाम करके फर्श पर बैठ गए। साहब का नाम काटन था।

काटन — ओ!ओ! यह आप क्या करता है, कुर्सी पर बैठिए, कुर्सी पर बैठिए।

काटन — नही, नहीं आप हमारा दोस्त है।

खाँ — हुजूर चाहे मेरे को आफताब बना दें, पर मै तो अपनी हकीकत समझता हूँ। बंदा उन लोगों मे नही है जो हुजूर के करम से चार हरफ पढ़कर जमीन पर पाँव नही रखते और हुजूर लोगों की बराबरी करने लगते है।

काटन — खाँ साहब आप बहुत अच्छे आदमी हैं। हम आत के पाँचवे दिन नैनीताल जा रहा है। वहाँ से लौटकर आपसे मुलाकात करेगा। आप तो कई बार नैनीताल गया होगा। अब तो सब रईस लोग वहाँ जाता है।

खाँ साहब नैनीताल क्या, बरेली तक भी न गये थे, पर इस समय कैसे कह देते कि मै वहाँ कभी नहीं गया। साहब की नजरों से गिर न जाते! साहब समझते कि यह रईस नही, कोई चरकटा है। बोले — हाँ हुजूर कई बार हो आया हूँ।

काटन — आप कई बार हो आया है? हम तो पहली दफा जाता है। सुना बहुत अच्छा शहर है।?

खाँ — बहुत बड़ा शहर है हुजूर, मगर कुछ ऐसा बड़ा भी नहीं है।

काटन — आप कहाँ ठहरता? वहाँ होटलो मे तो बहुत पैसा लगता है।

खाँ — मेरी हुजूर न पूछें, कभी कहीं ठहर गया, कभी कहीं ठहर गया। हुजूर के अकबाल से सभी जगह दोस्त है।

काटन — आप वहाँ किसी के नाम चिट्ठी दे सकता है कि मेरे ठहरने का बंदोबस्त कर दें। हम किफायत से काम करना

चाहता है। आप तो हर साल जाता है, हमारे साथ क्यों नहीं चलता।

खाँ साहब बड़ी मुश्किल में फंसे। अब बचाव का कोई उपाय न था। कहना पड़ा — जैसा हुजूर के साथ ही चला चलूँगा। मगर मुझे अभी जरा देर है हुजूर।

काटन — ओ कुछ परवाह नहीं, हम आपके लिए एक हफ्ता ठहर सकता है। अच्छा सलाम। आज ही आप अपने दोस्त को जगह का इन्तजाम करने को लिख दें। आज के सातवें दिन हम और आप साथ चलेगा। हम आपको रेलवे स्टेशन पर मिलेगा।

खाँ साहब ने सलाम किया, और बाहर निकले। ताँगे वाले से कहा — कुँअर शमशेर सिंह की कोठी पर चलो।

2

कुँअर शमशेर सिंह .खानदानी रईस थे। उन्हें अभी तक अंग्रेजी रहन-सहन की कवा न लगी थी। दस बजे दिन तक सोना, फिर दोस्तों और मुसाहिबों के साथ गपशप करना, दो बजे खाना खाकर फिर सोना, शाम को चौक की हवा खाना और घर आकर बारह-

एक बजे तक किसी परी का मुजरा देखना, यही उनकी दिनचर्या थी। दुनिया में क्या होता है, इसकी उन्हें कुछ खबर न होती थी। या हुई भी तो सुनी-सुनाई। खाँ साहब उनके दोस्तों में थे।

जिस वक्त खाँ साहब कोठी में पहुंचे दस बज गये थे, कुँअर साहब बाहर निकल आये थे, मित्रगण जमा थे। खाँ साहब को देखते ही कुँअर साहब ने पूछा — कहिए खाँ, साहब, किधर से?

खाँ साहब — जरा साहब से मिलने गया था। कई दिन बुला-बुला भेजा, मगर फुर्सत ही न मिलती थीं। आज उनका आदमी जबर्दस्ती खींच ले गया। क्या करता, जाना ही पड़ा। कहाँ तक बेरूखी करूँ।

कुँअर — यार, तुम न जाने अफसरों पर क्या जादू कर देते हो कि जो आता है तुम्हारा दम भरने लगता है। मुझे वह मन्त्र क्यों नहीं सिखा देते।

खाँ — मुझे खुद ही नहीं मालूम कि क्यों हुक्काम मुझ पर इतने मेहरबान रहते हैं। आपको यकीन न आवेगा, मेरी आवाज सुनते ही कमरे के दरवाजे पर आकर खड़े हो गये और ले जाकर अपनी खास कुर्सी पर बैठा दिया।

कुँअर — अपनी खास कुर्सी पर?

खाँ — हाँ साहब, हैरत में आ गया, मगर बैठना ही पड़ा। फिर सिगार मँगवाया, इलाइच, मेवे, चाय सभी कुछ आ गए। यों कहिए कि खासी दावत हो गई। यह मेहमानदारी देखकर मैं दंग रह गया।

कुँअर — तो वह सब दोस्ती भी करना जानते हैं।

खाँ — अजी दूसरा क्या खाँ के दोस्ती करेगा। अब हद हो गई कि मुझे अपने साथ नैनीताल चलने को मजबूर किया।

कुँअर — सच!

खाँ — कसम कुरान की। हैरान था कि क्या जबाब दूँ। मगर जब देखा कि किसी तरह नहीं मानते, तो वादा करना ही पड़ा। आज ही के दिन कूच है।

कुँअर — क्यों यार, मैं भी चला चलूँ तो क्या हरज हैं?

खाँ — सुभानअल्लाह, इससे बढ़कर क्या बात होगी।

कुँअर — भई, लोग, तरह-तरह की बातें करते हैं, इससे जाते डर लगता हैं। आप तो हो आये होंगे?

खाँ — कई बार हो आया हूँ। हाँ, इधर कई साल से नहीं गया।

कुँअर — क्यों साहब, पहाड़ों पर चढ़ते-चढ़ते दम फूल जाता होगा?

राधाकान्त व्यास बोले — धर्मावतार, चढ़ने को तो किसी तरह चढ़ भी जाइए पर पहाड़ों का पानी ऐसा खराब होता है कि एक बार लग गया तो प्राण ही लेकर छोड़ता है। बदरीनाथ की यात्रा करने जितने यात्री जाते हैं, उनमें बहुत कम जीते लौटते हैं और संग्रहणी तो प्रायः सभी को ही जाती हे।

कुँअर — हाँ, सूना तो हमने भी है कि पहाड़ों का पानी बहुत लगता है।

लाला सुखदयाल ने हामी भरी — गोसाई जी ने भी तो पहाड़ के पानी की निन्दा की है —

लागत अति पहाड़ का पानी।
बड़ दुख होत न जाई बखानी।।

खाँ — तो यह इतने अंग्रेज वहाँ क्यों जाते है साहब? ये लोग अपने वक्त के लुकमान है। इनका कोई काम मसलहत से खाली नहीं होता? पहाड़ों की सैर से कोई फायदा न होता तो क्यो जातें, जरा यह तो सोचिए।

व्यास — यही सोच-सोचकर तो हमारे रईस अपना सर्वनाश कर रहे है। उनकी देखी-देखी धन का नाश, धर्म का नाश, बल का नाश होता चला जाता है, फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं।

लाला — मेरे पिता जी एक बार किसी अंग्रेज के साथ पहाड़ पर गये। वहाँ से लौटे तो मुझे नसीहत की कि खबरदार, कभी पहाड़ पर न जाना। आखिर कोई बात देखी होगी, जमी तो यह नसीहत की।

वाजिद — हुजूर, खाँ साहब जाते हैं जाने दीजिए, आपको मैं जाने की सलाह न दूँगा। जरा सोचिए, कोसों की चढ़ाई, फिर रास्ता इतना खतरनाक कि खुदा की पनाह! जरा-सी पगड़डी और दोनों तरफ कोसों का खड्ड। नीचे देखा ओर थरथरा कर आदमी गिर पड़ा और जो कहीं पत्थरों में आग लग गई, तो चलिए वारा-न्यारा हो गया। जल-भुन के कबाब हो गये।

खाँ — और जो लाखों आदमी पहाड़ पर रहते हैं?

वाजिद — उनकी ओर बात है भाई साहब।

खाँ — और बात कैसी? क्या वे आदमी नहीं हैं?

वाजिद — लाखों आदमी दिन-भर हल जोतते हैं, फावड़े चलाते हैं, लकड़ी फाड़ते हैं, आप करेंगे? है आप में इतनी दम? हुजूर उस चढ़ाई पर चढ़ सकते हैं?

खाँ — क्यों नहीं टट्टुओं पर जाएँगे।

वाजिद — टट्टुओं पर छः कोस की चढ़ाई! होश की दवा कीजिए।

कुँअर — टट्टुओं पर! मई हमसे न जाया जायगा। कहीं टट्टू भड़के तो कहीं के न रहे।

लाला — गिरे तो हड्डियाँ तक न मिले!

व्यास — प्राण तक चूर-चूर हो जाय।

वाजिद — खुदावंद, एक जरा-सी ऊँचाई पर से आदमी देखता हैं, तो काँपने लगता है, न कि पहाड़ की चढ़ाई।

कुँअर — वहाँ सड़कों पर इधर-उधर ईंट या पत्थर की मुंडेर नहीं बनी हुई हैं?

वाजिद — खुदावंद, मंजिलों के रास्तें में मुंडेर कैसी!

कुँअर — आदमी का काम तो नहीं है।

लाला — सुना वहाँ घेघा निकल आता है।

कुँअर — अरे भई यह बुरा रोग है। तब मै वहाँ जाने का नाम भी न लूँगा।

खाँ — आप लाल साहब से पूछें कि साहब लोग जो वहाँ रहते हैं, उनको घेघा क्यों नहीं हो जाता?

लाला — वह लोग ब्रांडी पीते है। हम और आप उनकी बराबरी कर सकते हैं भला। फिर उनका अकबाल!

वाजिद — मुझे तो यकीन नहीं आता कि खाँ साहब कभी नैनीताल गये हों। इस वक्त डींग मार रहे है। क्यों साहब, आप कितने दिन वहाँ रहे?

खाँ — कोई चार बरस तक रहा था।

वाजिद — आप वहाँ किस मुहल्ले में रहते थे?

खाँ — (गड़बड़ा कर) जी — मैं।

वाजिद — आखिर आप चार बरस कहाँ रहे?

खाँ — देखिए याद आ जाय तो कहूँ।

वाजिद — जाइए भी। नैनीताल की सूरत तक तो देखी नहीं, गप हांक दी कि वहाँ चार बरस तक रहे!

खाँ — अच्छा साहब, आप ही का कहना सही। मैं कभी नैनीताल नहीं गया। बस, अब तो आप खुश हुए।

कुँअर — आखिर आप क्यों नहीं बताते कि नैनीताल में आप कहाँ ठहरे थे।

वाजिद — कभी गए हों, तब न बताएँ।

खाँ — कह तो दिया कि मैं नहीं गया, चलिए छुट्टी हुई। अब आप फरमाइए कुँअर साहब, आपको चलना है या नहीं? ये लोग

जो कहते हैं सब ठीक है। वहाँ घेघा निकल आता है, वहाँ का पानी इतना खराब है कि .खाना बिल्कुल नहीं हजम होता, वहाँ हर रोज दस-पाँच आदमी खड्ड में गिरा करते है। अब आप क्या फैसला करते है? वहाँ जो मजे है वह यहाँ ख्वाब में भी नहीं मिल सकते। जिन हुक्काम के दरवाजे पर घंटों खड़े रहने पर भी मुलाकात नहीं होती, उनसे वहाँ चौबीसों घंटों खड़े रहने पर भी मुलाकात नहीं होती। उनसे वहाँ चौबीसों घंटों का साथ रहेगा। मिसों के साथ झील में सैर करने का मजा अगर मिल सकता है तो वहीं। अजी सैकड़ों अंग्रेजों से दोस्ती हो जाएगी। तीन महीने वहाँ रहकर आप इतना नाम हासिल कर सकते हैं जितना यहाँ जिन्दगी-भर भी न होगा। बस, और क्या कहूँ।

कुँअर — वहाँ बड़े-बड़े अंग्रेजों से मुलाकात हो जाएगी?

खाँ — जनाब, दावतों के मारे आपको दम मारने की मोहलत न मिलेगी।

कुँअर — जी तो चाहता है कि एक बार देख ही आएँ।

खाँ — तो बस तैयारी कीजिए।

सभाजन ने जब देखा कि कुँअर साहब नैनीताल जाने के लिए तैयार हो गए तो सब के सब हाँ में हाँ मिलाने लगे।

व्यास — पर्वत-कंदराओं में कभी-कभी योगियों के दर्शन हो जाते है।

लाला — हाँ साहब, सुना है — दो-दो सौ साल के योगी वहाँ मिलते है।

जिसकी ओर एक बार आँख उठाकर देख लिया, उसे चारों पदार्थ मिल गये।

वाजिद — मगर हुजूर चलें, तो इस ठाठ से चलें कि वहाँ के लोग भी कहें कि लखनऊ के कोई रईस आये है।

लाला — लक्ष्मी हथिनी को जरूर ले चलिए। वहाँ कभी किसी ने हाथी की सूरत काहे को देखी होगी। जब सरकार सवार होकर निकलेंगे और गंगा-जमुनी हौदा चमकेगा तो लोग दंग हो जाएँगे।

व्यास — एक डंका भी हो, तो क्या पूछना।

कुँअर — नहीं साहब, मेरी सलाह डंके की नहीं है। देश देखकर भेष बनाना चाहिए।

लाला — हाँ, डंके की सलाह तो मेरी भी नहीं है। पर हाथी के गले में घंटा जरूर हो।

खाँ — जब तक वहाँ किसी दोस्त को तार दे दीजिए कि एक पूरा बंगला ठीक कर रक्खे। छोटे साहब को भी उसी में ठहरा लेंगे।

कुँअर — वह हमारे साथ क्यों ठहरने लगे। अफसर है।

खाँ — उनको लाने का जिम्मा हमारा। खींच-खींचकर किसी न किसी तरह ले ही आऊँगा।

कुँअर — अगर उनके साथ ठहरने का मौका मिले, तब तो मैं समझूँ नैनीताल का जाना पारस हो गया।

3

एक हफ्ता गुजर गया। सफर की तैयारियाँ हो गई। प्रातःकाल काटन साहब का खत आया कि आप हमारे यहाँ आएँगे या मुझसे स्टेशन पर मिलेंगे। कुँअर साहब ने जवाब लिखवाया कि आप इधर ही आ जाइएगा। स्टेशन का रास्ता इसी तरफ से है। मैं तैयार रहूँगा। यह खत लिखवा कर कुँअर साहब अन्दर गए तो देखा कि उनकी बड़ी साली रामेश्वरी देवी बैठी हुई है। उन्हें देखकर बोली — क्या आप सचमुच नैनीताल जा रहे है?

कुँअर — जी हाँ, आज रात की तैयारी है।

रामेश्वरी — अरे! आज ही रात को! यह नहीं हो सकता। कल बच्चा का मुंडन है। मैं एक न मानूँगी। आप ही न होगे तो लोग आकर क्या करेंगे।

कुँअर — तो आपने पहले ही क्यों न कहला दिया, पहले से मालूम होता तो मैं कल जाने का इरादा ही क्यों करता।

रामेश्वरी — तो इसमें लाचारी की कौन-सी बात हैं, कल न सही दो-चार दिन बाद सही।

कुँअर साहब की पत्नी सुशीला देवी बोली — हाँ, और क्या, दो-चार दिन बाद ही जाना, क्या साइट टली है?

कुँअर — आह! छोटे साहब से वादा कर चुका हूँ, वह रात ही को मुझे लेने आएँगे। आखिर वह अपने दिल में क्या कहेंगे?

रामेश्वरी — ऐसे-ऐसे वादे हुआ ही करते हैं। छोटे साहब के हाथ कुछ बिक तो गये नहीं हो।

कुँअर — मैं क्या कहूँ कि कितना मजबूर हूँ! बहुत लज्जित होना पड़ेगा।

रामेश्वरी — तो गया जो कुछ है वह छोटे साहब ही हैं, मैं कुछ नहीं!

कुँअर — आखिर साहब से क्या कहूँ, कौन बहाना करूँ?

रामेश्वरी — कह दो कि हमारे भतीजे का मुंडन हैं, हम एक सप्ताह तक नहीं चल सकते। बस, छुट्टी हुई।

कुँअर — (हँसकर) कितना आसान कर दिया है आपने इस समस्या कों ऐसा हो सकता है कहीं। कहीं मुँह दिखाने लायक न रहूँगा।

सुशीला — क्यों, हो सकने को क्या हुआ? तुम उसके गुलाम तो नहीं हो?

कुँअर — तुम लोग बाहर तो निकलती-पैठती नहीं हो, तुम्हें क्या मालूम कि अंग्रेजों के विचार कैसे होते है।

रामेश्वरी — अरे भगवान्! आखिर उसके कोई लड़का-बाला है, या निगोड़ नाठा है। त्योहार और व्योहार हिन्दू-मुसलमान सबके यहाँ होते है।

कुँअर — भई हमसे कुछ करते-धरते नहीं बनता।

रामेश्वरी — हमने कह दिया, हम जाने नहीं देगे। अगर तुम चले गये तो मुझे बड़ा रंज होगा। तुम्हीं लोगों से तो महफिल की शोभा होगी और अपना कौन बैठा हुआ है।

कुँअर — अब तो साहब को लिख भेजने का भी मौका नहीं है। वह दफ्तर चले गये होंगे। मेरा सब असबाब बंध चुका है।

नौकरों को पेशगी रुपया दे चुका कि चलने की तैयारी करें। अब कैसे रुक सकता हूँ!

रामेश्वरी — कुछ भी हो, जाने न पाओंगे।

सुशीला — दो-चार दिन बाद जाने में ऐसी कौन-सी बड़ी हानि हुई जाती हैं? वहाँ कौन लड्डू धरे हुए है?

कुँअर साहब बड़े धर्म-संकट में पड़े, अगर नहीं जाते तो छोटे साहब से झूठे पड़ते है। वह अपने दिल में कहेंगें कि अच्छे बेहुदे आदमी के साथ पाला पड़ा। अगर जाते है तो स्त्री से बिगाड़ होती हैं, साली मुँह फुलाती है। इसी चक्कर में पड़े हुए बाहर आये तो मियाँ वाजिद बोले — हुजूर इस वक्त कुछ उदास मालूम होते है।

व्यास — मुद्रा तेजहीन हो गई है।

कुँअर — भई, कुछ न पूछो, बड़े सकंट में हूँ।

वाजिद — क्या हुआ हुजूर, कुछ फरमाइए तो?

कुँअर — यह भी एक विचित्र ही देश है।

व्यास — धर्मावतार, प्राचीन काल से यह ऋषियों की तपोभूमि है।

लाला — क्या कहना है, संसार में ऐसा देश दूसरा नहीं।

कुँअर — जी हाँ, आप जैसे गौखे और किस देश में होंगे। बुद्धि तो हम लोगों को भी छू नहीं गई।

वाजिद — हुजूर, अक़्ल के पीछे तो हम लोग लट्ठ लिए फिरते है।

व्यास — धर्मावतार, कुछ कहते नहीं बनता। बड़ी हीन दशा है।

कुँअर — नैनीताल जाने को तैयार था। अब बड़ी साली कहती है कि मेरे बच्चे का मुंडन है, मैं न जाने दूँगी। चले जाओंगे तो मुझे रंज होगा। बतलाइए, अब क्या करूँ। ऐसी मूर्खता और कहाँ देखने में आएगी। पूछो मुंडन नाई करेगा, नाच-तमाशा देखने वालों की शहर में कमी नहीं, एक मैं न हूँगा न सही, मगर उनको कौन समझाये।

व्यास — दीनबन्धु, नारी-हठ तो लोक प्रसिद्ध ही है।

कुँअर — अब यह सोचिए कि छोटे साहब से क्या बहाना किया जायगा।

वाजिद — बड़ा नाज़ुक मुआमला आ पड़ा हुजूर।

लाला — हाकिम का नाराज हो जाना बुरा है।

वाजिद — हाकिम मिट्टी का भी हो, फिर भी हाकिम ही है।

कुँअर — मैं तो बड़ी मुसीबत में फँस गया।

लाला — हुजूर, अब बाहर न बैठे। मेरी तो यही सलाह है। जो कुछ सिर पर पड़ेगी, हम ओढ़ लेंगे।

वाजिद — अजी, पसीने की जगह खून गिरा देंगे। नमक खाया है कि दिल्लगी है।

लाला — हाँ, मुझे भी यही मुनासिब मालूम होता है। आप लोग कह दीजिए, बीमार हो गए है।

अभी यही बातें हो रही थी कि खिदमतगार ने आकर हाँते हुए कहा — सरकार, कोऊ आया है, तौन सरकार का बुलावत है।

कुँअर — कौन है पूछा नहीं?

खिद. – कोऊ रंगरेज है सरकार, लाला-लाल मुँह हैं, घोड़ा पर सवार है।

कुँअर — कहीं छोटे साहब तो नहीं हैं, भई मैं तो भीतर जाता हूँ। अब आबरू तुम्हारे हाथ है।

कुँअर साहब ने तो भीतर घुसकर दरवाजा बन्द कर लिया। वाजिदअली ने खिड़की से झाँककर देखा, तो छोटे साहब खड़े थे। हाथ-पाँव फूल गये। अब साहब के सामने कौन जाय? किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। एक दूसरे को ठेल रहा है।

लाला — बढ़ जाओं वाजिदअली। देखो क्या कहते हैं?

वाजिद — आप ही क्यों नहीं चले जाते?

लाला — आदमी ही तो वह भी हैं, कुछ खा तो न जाएगा।

वाजिद — तो चले क्यों नहीं जाते।

काटन साहब दो-तीन मिनट खड़े रहे। अब यहाँ से कोई न निकला तो बिगड़कर बोले — यहाँ कौन आदमी है? कुँअर साहब से बोलो, काटन साहब खड़ा है।

मियाँ वाजिद बौखलाये हुए आगे बढ़े और हाथ बांधकर बोले — खुदावंद, कुँअर साहब ने आज बहुत देर से खाना खाया, तो तबियत कुछ भारी हो गई है। इस वक्त आराम में हैं, बाहर नहीं आ सकते।

काटन — ओह! तुम यह क्या बोलता है? वह तो हमारे साथ नैनीताल जाने वाला था। उसने हमको खत लिखा था।

वाजिद — हाँ, हुजूर, जाने वाले तो थे, पर बीमार हो गये।

काटन — बहुत रंज हुआ।

वाजिद — हुजूर, इत्तफ़ाक है।

काटन — हमको बहुत अफसोस है। कुँअर साहब से जाकर बोलो, हम उनको देखना माँगता है।

वाजिद — हुजूर, बाहर नहीं आ सकते।

काटन — कुछ परवाह नहीं, हम अन्दर जाकर देखेंगा।

कुँअर साहब दरवाजे से चिमटे हुए काटन साहब की बातें सुन रहे थे। नीचे की सांस नीचे थी, ऊपर की ऊपर। काटन साहब को घोड़े से उतरकर दरवाजे की तरफ आते देखा, तो गिरते-पड़ते दौड़े और सुशीला से बोले — दुष्ट मुझे देखने घर में आ रहा है। मैं चारपाई पर ले जाता हूँ, चटपट लिहाफ निकलवाओं और मुझे ओढ़ा दो। दस-पाँच शीशियाँ लाकर इस गोलमेज पर रखवा दो।

इतने में वाजिदअली ने द्वार खटखटाकर कहा — महरी, दरवाजा खोल दो, साहब बहादुर कुँअर साहब को देखना चाहते है। सुशीला ने लिहाफ माँगा, पर गर्मी के दिन थे, जोड़े के कपड़े सन्दूकों में बन्द पड़ें थे। चटपट सन्दूक खोलकर दो-तीन मोटे-मोटे लिहाफ लाकर कुँअर साहब को ओढा दिये। फिर आलमारी से कई शीशियाँ और कई बोतल निकालकर मेज पर चुन दिये और महरी से कहा — जाकर किवाड़ खोल दो, मैं ऊपर चली जाती हूँ।

काटन साहब ज्यों ही कमरे में पहुंचे, कुँअर साहब ने लिहाफ से मुँह निकला लिया और कराहते हुए बोले — बड़ा कष्ट है हुजूर। सारा शरीर फुँका जाता है।

काटन — आप दोपहर तक तो अच्छा था, खाँ साहब हमसे कहता था कि आप तैयार हैं, कहाँ दरद है?

कुँअर — हुजूर पेट में बहुत दर्द हैं। बस, यही मालूम होता है कि दम निकल जायेगा।

काटन — हम जाकर सिविल सर्जन को भेज देता है। वह पेट का दर्द अभी अच्छा कर देगा। आप घबरायें नहीं, सिविल सर्जन हमारा दोस्त है।

काटन चला गया तो कुँअर साहब फिर बाहर आ बैठे। रोजा बख्शाने गये थे, नमाज गले पड़ी। अब यह फिक्र पैदा हुई कि सिविल सर्जन को कैसे टाला जाय।

कुँअर — भई, यह तो नई बला गले पड़ी।

वाजिद — कोई जाकर खाँ साहब को बुला लाओं। कहना, अभी चलिए ऐसा न हो कि वह देर करें और सिविल सर्जन यहाँ सिर पर सवार हो जाय।

लाला — सिविल सर्जन की फीस भी बहुत होगी?

कुँअर — अजी तुम्हें फीस की पड़ी है, यहाँ जान आफत में है। अगर सौ दो सौ देकर गला छूट जाय तो अपने को भाग्यवान समझूँ।

वाजिदअली ने फिटन तैयार कराई और खाँ साहब के घर पहुँचें देखा ते वह असबाब बँधवा रहे थे। उनसे सारा किस्सा बयान किया और कहा — अभी चलिए। आपको बुलाया है।

खाँ — मामला बहुत टेढ़ा है। बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ेगी। कसम खुदा की, तुम सबके सब गर्दन मार देने के लायक हो। जरा-सी देर के लिए मैं टल क्या गया कि सारा खेल ही बिगाड़ दिया।

वाजिद — खाँ साहब, हमसे तो उड़िए नहीं। कुँअर साहब बौखलाये हुए हैं। दो-चार सौ का वारा-न्यारा है। चलकर सिविल सर्जन को मना कर दीजिए।

खाँ — चलो, शायद कोई तरकीब सूझ जाये।

दोनों आदमी सिविल सर्जन की तरफ चले। वहाँ मालूम हुआ कि साहब कुँअर साहब के मकान पर गये है। फौरन फिटन घुमा दी, और कुँअर साहब की कोठी पर पहुंचे। देखा तो सर्जन साहब एनेमा लिये हुए कुँअर चाहब की चारपाई के सामने बैठे हुए है।

खाँ — मैं तो हुजूर के बंगले से चला आ रहा हूँ। कुँअर साहब का क्या हाल है?

डाक्टर — पेट मे दर्द है। अभी पिचकारी लगाने से अच्छा हो जायेगा।

कुँअर — हुजूर, अब दर्द बिल्कुल नहीं है। मुझे कभी-कभी यह मर्ज हो जाता है और आप ही आप अच्छा हो जाता है।

डाक्टर — ओ, आप डरता है। डरने की कोई बात नहीं हे। आप एक मिनट में अच्छा हो जाएगा।

कुँअर — हुजूर, मैं बिल्कुल अच्छा हूँ। अब कोई शिकायत नहीं है।

डाक्टर — डरने की कोई बात नहीं, यह सब आदमी यहाँ से हट जाय, हम एक मिनट में अच्छा कर देगा।

खाँ साहब ने डाक्टर से काम में कहा — हुजूर अपनी रात की डबल फीस और गाड़ी का किराया लेकर चले जाएँ, इन रईसों के फेर में न पड़ें, यह लोग बारहों महीने इसी तरह बीमार रहते है। एक हफ्ते तक आकर देख लिया कीजिए।

डाक्टर साहब की समझ में यह बात आ गई। कल फिर आने का वादा करके चले गये। लोगों के सिर से बला टली। खाँ साहब की कारगुजारी की तारीफ होने लगी!

कुँअर — खाँ साहब आप बड़े वक्त पर काम आये। जिन्दगी-भर आपका एहसान मानूँगा।

खाँ — जनाब, दो सौ चटाने पड़े। कहता था छोटे साहब का हुक्म हैं। मैं बिला पिचकारी लगाये न जाऊँगा। अंग्रेजों का हाल तो आप जानते है। बात के पक्के होते है।

कुँअर — यह भी कह दिया न कि छोटे साहब को मेरी बीमारी की इत्तला कर दें और कह दें, वह सफर करने लायक नहीं है।

खाँ — हाँ साहब, और रुपये दिये किसलिए, क्या मेरा कोई रिश्तेदार था? मगर छोटे साहब को होगी बड़ी तकलीफ। बेचारे ने आपको बंगले के आसरे पर होटल का इन्तजाम भी न किया था। मामला बेढब हुआ।

कुँअर — तो भई, मैं क्या करता, आप ही सोचिए।

खाँ — यह चाल उल्टी पड़ी। जिस वक्त काटन साहब यहाँ आये थे, आपको उनसे मिलना चाहिए था। साफ कह देते, आज एक सख्त जरूरत से रुकना पड़ा। लेकिन खैर, मैं साहब के साथ रहूँगा, कोई न कोई इंतजाम हो ही जायगा।

कुँअर — क्या अभी आप जाने का इरादा कर ही रहे है! हलफ से कहता हूँ, मैं आपको न जाने दूँगा, यहाँ न जाने कैसी पडें, मियाँ वाजिद देखों, आपको घर कहला दो,बारह न जायेंगे।

खाँ — आप अपने साथ मुझे भी डुबाना चाहते है। छोटे साहब आपसे नाराज भी हो जाएँ तो क्या कर लेंगे।, लेकिन मुझसे नाराज हो गये, तो खराब ही कर डालेंगे।

कुँअर — जब तक हम जिन्दा है भाई साहब, आपको कोई तिरछी नजर से नहीं देख सकता। जाकर छोटे साहब से कहिए, कुँअर साहब की हालत अच्छी नहीं, मैं अब नहीं जा सकता। इसमें मेरी तरफ से भी उनका दिल साफ हो जाएगा और आपकी दोस्ती देखकर आपकी और इज्जत करने लगेगा।

खाँ — अब वह इज्जत करें या न करें, जब आप इतना इसरार कर रहे है तो मैं भी इतना बे-मुरौवत नहीं हूँ कि आपको छोड़कर चला जाऊँ। यह तो हो ही नहीं सकता। जरा देर के लिए घर चला गया, उसका तो इतना तावान देना पड़ा नैनीताल चला जाऊँ तो शायद कोई आपको उठा ही ले जाय।

कुँअर — मजे से दो-चार दिन जलसे देखेंगे, नैनीताल में यह मजे कहाँ मिलते। व्यास जी, अब तो यों नहीं बैठा जाता। देखिए,

आपके भण्डार में कुछ हैं, दो-चार बोतलें निकालिए, कुछ रंग जमे।

[‘माधुरी’, अप्रैल, 1929 – [रतननाथ सरशर कृत ’सैरे कोहसार’ के आधार पर।]

पुत्र-प्रेम

बाबू चैतन्यदास ने अर्थशास्त्र खूब पढ़ा था, और केवल पढ़ा ही नहीं था, उसका यथायोग्य व्यवहार भी वे करते थे। वे वकील थे, दो-तीन गाँवों मे उनकी जमींदारी भी थी, बैंक में भी कुछ रुपये थे। यह सब उसी अर्थशास्त्र के ज्ञान का फल था। जब कोई खर्च सामने आता तब उनके मन में स्वभावतः प्रश्न होता था — इससे स्वयं मेरा उपकार होगा या किसी अन्य पुरुष का? यदि दो में से किसी का कुछ भी उपहार न होता तो वे बड़ी निर्दयता से उस खर्च का गला दबा देते थे। 'व्यर्थ' को वे विष के समाने समझते थे। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त उनके जीवन-स्तम्भ हो गये थे।

बाबू साहब के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्रभुदास था, छोटे का शिवदास। दोनों कालेज में पढ़ते थे। उनमें केवल एक श्रेणी का अन्तर था। दोनो ही चतुर, होनहार युवक थे। किन्तु प्रभुदास पर पिता का स्नेह अधिक था। उसमें सदुत्साह की मात्रा अधिक थी और पिता को उसकी जात से बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। वे उसे

विद्योन्नति के लिए इंग्लैण्ड भेजना चाहते थे। उसे बैरिस्टर बनाना उनके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

2

किन्तु कुछ ऐसा संयोग हुआ कि प्रभुदास को बी0ए0की परीक्षा के बाद ज्वर आने लगा। डाक्टरों की दवा होने लगी। एक मास तक नित्य डाक्टर साहब आते रहे, पर ज्वर में कमी न हुई दूसरे डाक्टर का इलाज होने लगा। पर उससे भी कुछ लाभ न हुआ। प्रभुदास दिनों दिन क्षीण होता चला जाता था। उठने-बैठने की शक्ति न थी यहाँ तक कि परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का शुभ-संवाद सुनकर भी उसके चेहरे पर हर्ष का कोई चिन्ह न दिखाई दिया। वह सदैव गहरी चिन्ता में डुबा रहता था। उसे अपना जीवन बोझ सा जान पड़ने लगा था। एक रोज चैतन्यदास ने डाक्टर साहब से पूछा यह क्या बात है कि दो महीने हो गये और अभी तक दवा कोई असर नहीं हुआ?

डाक्टर साहब ने सन्देहजनक उत्तर दिया — मैं आपको संशय में नही डालना चाहता। मेरा अनुमान है कि यह टयुबरक्युलासिस है।

चैतन्यदास ने व्यग्र होकर कहा — तपेदिक?

डाक्टर — जी हाँ उसके सभी लक्षण दिखायी देते है।

चैतन्यदास ने अविश्वास के भाव से कहा मानों उन्हे विस्मयकारी बात सुन पड़ी हो — तपेदिक हो गया!

डाक्टर ने खेद प्रकट करते हुए कहा — यह रोग बहुत ही गुप्तरीति से शरीर में प्रवेश करता है।

चैतन्यदास — मेरे खानदान में तो यह रोग किसी को न था।

डाक्टर — सम्भव है, मित्रों से इसके जर्म (कीटाणु) मिले हो।

चैतन्यदास कई मिनट तक सोचने के बाद बोले — अब क्या करना चाहिए।

डाक्टर — दवा करते रहिये। अभी फेफड़ों तक असर नहीं हुआ है इनके अच्छे होने की आशा है।

चैतन्यदास — आपके विचार में कब तक दवा का असर होगा?

डाक्टर — निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता। लेकिन तीन चार महीने में वे स्वस्थ हो जायेंगे। जाड़ों में इस रोग का जोर कम हो जाया करता है।

चैतन्यदास — अच्छे हो जाने पर ये पढने में परिश्रम कर सकेंगे?

डाक्टर — मानसिक परिश्रम के योग्य तो ये शायद ही हो सकें।

चैतन्यदास — किसी सैनेटोरियम (पहाड़ी स्वास्थयालय) में भेज दूँ तो कैसा हो?

डाक्टर — बहुत ही उत्तम।

चैतन्यदास — तब ये पूर्णरीति से स्वस्थ हो जाएँगे?

डाक्टर — हो सकते है, लेकिन इस रोग को दबा रखने के लिए इनका मानसिक परिश्रम से बचना ही अच्छा है।

चैतन्यदास नैराश्य भाव से बोले — तब तो इनका जीवन ही नष्ट हो गया।

गर्मी बीत गयी। बरसात के दिन आये, प्रभुदास की दशा दिनो दिन बिगड़ती गई। वह पड़े-पड़े बहुधा इस रोग पर की गई बड़े बड़े डाक्टरों की व्याख्याएँ पढ़ा करता था। उनके अनुभवों से अपनी अवस्था की तुलना किया करता था। उनके अनुभवों स अपनी अवस्था की तुलना किया करता। पहले कुछ दिनो तक तो वह अस्थिरचित-सा हो गया था। दो चार दिन भी दशा सँभली रहती तो पुस्तकें देखने लगता और विलायत यात्रा की चर्चा करता। दो चार दिन भी ज्वर का प्रकोप बढ़ जाता तो जीवन से निराश हो जाता। किन्तु कई मास के पश्चात जब उसे विश्वास

हो गया कि इस रोग से मुक्त होना कठिन है तब उसने जीवन की भी चिन्ता छोड़ दी पथ्यापथ्य का विचार न करता, घरवालों की निगाह बचाकर औषधियाँ जमीन पर गिरा देता मित्रों के साथ बैठकर जी बहलाता। यदि कोई उससे स्वास्थ्य के विषय में कुछ पूछता तो चिढ़कर मुँह मोड लेता। उसके भावों में एक शान्तिमय उदासीनता आ गई थी, और बातों में एक दार्शनिक मर्मज्ञता पाई जाती थी। वह लोक रीति और सामाजिक प्रथाओं पर बड़ी निर्भीकता से आलोचनाएँ किया करता। यद्यपि बाबू चैतन्यदास के मन में रह-रहकर शंका उठा करती थी कि जब परिणाम विदित ही है तब इस प्रकार धन का अपव्यय करने से क्या लाभ तथापि वे कुछ तो पुत्र-प्रेम और कुछ लोक मत के भय से धैर्य के साथ दवा दारू करते जाते थे।

जाड़े का मौसम था। चैतन्यदास पुत्र के सिरहाने बैठे हुए डाक्टर साहब की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे थे। जब डाक्टर साहब टैम्परेचर लेकर (थर्मामीटर लगाकर) कुर्सी पर बैठे तब चैतन्यदास ने पूछा — अब तो जाड़ा आ गया। आपको कुछ अन्तर मालूम होता है?

डाक्टर — बिलकुल नहीं, बल्कि रोग और भी दुस्साध्य होता जाता है।

चैतन्यदास ने कठोर स्वर में पूछा — तब आप लोग क्यो मुझे इस भ्रम में डाले हुए थे कि जाडे में अच्छे हो जायेंगे? इस प्रकार दूसरों की सरलता का उपयोग करना अपना मतलब साधने का साधन हो तो हो इसे सज्जनता कदापि नहीं कह सकते।

डाक्टर ने नम्रता से कहा — ऐसी दशाओं में हम केवल अनुमान कर सकते है। और अनुमान सदैव सत्य नही होते। आपको जेरबारी अवश्य हुई पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी इच्छा आपको भ्रम में डालने के नहीं थी।

शिवदास बड़े दिन की छुट्टियों में आया हुआ था, इसी समय वह कमरे में आ गया और डाक्टर साहब से बोला — आप पिता जी की कठिनाइयों का स्वयं अनुमान कर सकते हैं। अगर उनकी बात नागवार लगी तो उन्हे क्षमा कीजिएगा।

चैतन्यदास ने छोटे पुत्र की ओर वात्सल्य की दृष्टि से देखकर कहा — तुम्हें यहाँ आने की जरूरत थी? मै तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ कि यहाँ आया करो। लेकिन तुमको सब्र ही नही होता।

शिवदास ने लज्जित होकर कहा — मै अभी चला जाता हूँ। आप नाराज न हों। मै केवल डाक्टर साहब से यह पूछना चाहता था कि भाई साहब के लिए अब क्या करना चाहिए।

डाक्टर साहब ने कहा — अब केवल एक ही साधन और है इन्हे इटली के किसी सैनेटोरियम मे भेज देना चाहिये।

चैतन्यदास ने सजग होकर पूछा — कितना खर्च होगा? ‘ज्यादा स ज्यादा तीन हजार। साल भर रहना होगा? निश्चय है कि वहाँ से अच्छे होकर आवेंगे।

‘जी नहीं यह तो यह भयंकर रोग है साधारण बीमारियों में भी कोई बात निश्चय रूप से नही कही जा सकती।’

‘इतना खर्च करने पर भी वहाँ से ज्यों के त्यों लौटा आये तो?’

‘तो ईश्वर की इच्छा। आपको यह तसकीन हो जाएगी कि इनके लिए मै जो कुछ कर सकता था। कर दिया।’

4

आधी रात तक घर में प्रभुदास को इटली भेजने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद होता रहा। चैतन्यदास का कथन था कि एक संदिग्ध फल के लिए तीन हजार का खर्च उठाना बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल है। शिवदास फल उनसे सहमत था। किन्तु उसकी माता इस प्रस्ताव का बड़ी दृढता के साथ विरोध कर रही थी। अंत में

माता की धिक्कारों का यह फल हुआ कि शिवदास लज्जित होकर उसके पक्ष में हो गया बाबू साहब अकेले रह गये। तपेश्वरी ने तर्क से काम लिया। पति के सद्भावों को प्रज्वलित करेन की चेष्टा की। धन की नश्वरता की लोकोक्तियाँ कहीं इनं शस्त्रों से विजय लाभ न हुआ तो अश्रु वर्षा करने लगी। बाबू साहब जल-बिन्दुओं क इस शर प्रहार के सामने न ठहर सके। इन शब्दों में हार स्वीकार की — अच्छा भाई रोओं मत। जो कुछ कहती हो वही होगा।

तपेश्वरी — तो कब?

'रुपये हाथ में आने दो।'

'तो यह क्यों नही कहते कि भेजना ही नहीं चाहते?'

'भेजना चाहता हूँ किन्तु अभी हाथ खाली हैं। क्या तुम नहीं जानतीं?'

'बैक में तो रुपये है? जायदाद तो है? दो-तीन हजार का प्रबन्ध करना ऐसा क्या कठिन है?'

चैतन्यदास ने पत्नी को ऐसी दृष्टि से देखा मानो उसे खा जायेगें और एक क्षण के बाद बोले — बिलकुल बच्चों की-सी बातें करती हो। इटली में कोई संजीवनी नही रक्खी हुई है जो तुरन्त

चमत्कार दिखायेगी। जब वहाँ भी केवल प्रारबध ही की परीक्षा करनी है तो सावधानी से कर लेंगे। पूर्व पूरुषों की संचित जायदाद और रक्खे हुए रुपये मैं अनिश्चित हित की आशा पर बलिदान नहीं कर सकता।

तपेश्वरी ने डरते-डरते कहा — आखिर, आधा हिस्सा तो प्रभुदास का भी है?

बाबू साहब तिरस्कार करते हुए बोले — आधा नही, उसमें मै अपना सर्वस्व दे देता, जब उससे कुछ आशा होती, वह खानदान की मर्यादा मै और ऐश्वर्य बढ़ाता और इस लगाये। हुए लगाये हुए धन के फलस्वरूप कुछ कर दिखाता। मै केवल भावुकता के फेर में पड़कर धन का ह्रास नहीं कर सकता।

तपेश्वरी अवाक रह गयी। जीतकर भी उसकी हार हुई।

इस प्रस्ताव के छः महीने बाद शिवदास बी.ए पास हो गया। बाबू चैतत्यदास ने अपनी जमींदारी के दो आने बन्धक रखकर कानून पढने के निमित्त उसे इंग्लैड भेजा। उसे बम्बई तक खुद पहुँचाने गये। वहाँ से लौटे तो उनके अंतःकरण में सदिच्छायों से परिमित लाभ होने की आशा थी उनके लौटने के एक सप्ताह पीछे अभागा प्रभुदास अपनी उच्च अभिलाषाओं को लिये हुए परलोक सिधारा।

5

चैतन्यदास मणिकर्णिका घाट पर अपने सम्बन्धियों के साथ बैठे चिता-ज्वाला की ओर देख रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। पुत्र-प्रेम एक क्षण के लिए अर्थ-सिद्धांत पर गालिब हो गया था। उस विरक्तावस्था में उनके मन मे यह कल्पना उठ रही थी। — सम्भव है, इटली जाकर प्रभुदास स्वस्थ हो जाता। हाय! मैंने तीन हजार का मुँह देखा और पुत्र रत्न को हाथ से खो दिया। यह कल्पना प्रतिक्षण सजग होती थी और उनको ग्लानि, शोक और पश्चात्ताप के बाणों से बेध रही थी। रह रहकर उनके हृदय में वेदना की शूल-सी उठती थी। उनके अन्तर की ज्वाला उस चिता-ज्वाला से कम दग्धकारिणी न थी। अकस्मात उनके कानों में शहनाइयों की आवाज आयी। उन्होने आँख ऊपर उठाई तो मनुष्यों का एक समूह एक अर्थी के साथ आता हुआ दिखाई दिया। वे सब के सब ढोल बजाते, गाते, पुष्य आदि की वर्षा करते चले आते थे। घाट पर पहुँचकर उन्होने अर्थी उतारी और चिता बनाने लगे। उनमें से एक युवक आकर चैतन्यदास के पास खड़ा हो गया। बाबू साहब ने पूछा — किस मुहल्ले में रहते हो?

युवक ने जवाब दिया — हमारा घर देहात में है। कल शाम को चले थे। ये हमारे बाप थे। हम लोग यहाँ कम आते है, पर दादा की अन्तिम इच्छा थी कि हमें मणिकर्णिका घाट पर ले जाना।

चैतन्यदास — ये सब आदमी तुम्हारे साथ है?

युवक — हाँ और लोग पीछे आते है। कई सौ आदमी साथ आये है। यहाँ तक आने में सैंकड़ो उठ गये पर सोचता हूँ कि बूढे पिता की मुक्ति तो बन गई। धन और ही किसलिए।

चैतन्यदास — उन्हें क्या बीमारी थी?

युवक ने बड़ी सरलता से कहा, मानो वह अपने किसी निजी सम्बन्धी से बात कर रहा हो। — बीमार का किसी को कुछ पता नहीं चला। हरदम ज्वर चढा रहता था। सूखकर काँटा हो गये थे। चित्रकूट हरिद्वार प्रयाग सभी स्थानों में ले लेकर घूमे। वैद्यों ने जो कुछ कहा उसमे कोई कसर नही की।

इतने में युवक का एक और साथी आ गया। और बोला — साहब, मुँह देखा बात नहीं, नारायण लड़का दे तो ऐसा दे। इसने रुपयों को ठीकरे समझा। घर की सारी पूंजी पिता की दवा दारु में स्वाहा कर दी। थोड़ी सी जमीन तक बेच दी पर काल बली के सामने आदमी का क्या बस है।

युवक ने गदगद स्वर से कहा — भैया, रुपया पैसा हाथ का मैल है। कहाँ आता है कहाँ जाता है, मनुष्य नहीं मिलता। जिन्दगानी है तो कमा खाऊँगा। पर मन में यह लालसा तो नही रह गयी कि हाय! यह नही किया, उस वैद्य के पास नही गया नही तो शायद बच जाते। हम तो कहते है कि कोई हमारा सारा घर द्वार लिखा ले केवल दादा को एक बोल बुला दे। इसी माया-मोह का नाम जिन्दगानी हैं, नहीं तो इसमे क्या रक्खा है? धन से प्यारी जान जान से प्यारा ईमान। बाबू साहब आपसे सच कहता हूँ अगर दादा के लिए अपने बस की कोई बात उठा रखता तो आज रोते न बनता। अपना ही चित्त अपने को धिक्कारता। नहीं तो मुझे इस घड़ी ऐसा जान पड़ता है कि मेरा उद्धार एक भारी ऋण से हो गया। उनकी आत्मा सुख और शान्ति से रहेगी तो मेरा सब तरह कल्याण ही होगा।

बाबू चैतन्यदास सिर झुकाए ये बातें सुन रहे थे। एक-एक शब्द उनके हृदय में शर के समान चुभता था। इस उदारता के प्रकाश में उन्हें अपनी हृदय-हीनता, अपनी आत्मशून्यता अपनी भौतिकता अत्यन्त भयंकर दिखायी देती थी। उनके चित्त पर इस घटना का कितना प्रभाव पड़ा यह इसी से अनुमान किया जा सकता हैं कि प्रभुदास के अन्त्येष्टि संस्कार में उन्होने हजारों रुपये खर्च कर

डाले उनके सन्तप्त हृदय की शान्ति के लिए अब एकमात्र यही उपाय रह गया था।

[‘सरस्वती’, जून, 1932]

पैपुजी

सिद्धान्त का सबसे बड़ा दुश्मन है मुरौवत। कठिनाइयों, बाधाओं, प्रलोभनों का सामना आप कर सकते हैं दृढ़ संकल्प और आत्मबल से। लेकिन एक दिली दोस्त से बेमुरौबती तो नहीं की जाती, सिद्धान्त रहे या जाय। कई साल पहले मैंने जनेऊ हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की थी कि अब कभी किसी की बरात में न जाऊँगा, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। ऐसी विकट प्रतिज्ञा करने की जरूरत क्यों पड़ी, इसकी कथा लंबी है और आज भी उसे याद करके मेरी प्रतिज्ञा को जीवन मिल जाता है। बरात थी कायस्थों की। समधी थे मेरे पुराने मित्र। बारातियों में अधिकांश जान-पहचान के लोग थे। देहात में जाना था। मैंने सोचा, चलो दो-तीन दिन देहात की सैर रहेगी, चल पड़ा। लेकिन मुझे यह देखकर हैरत हुई कि बारातियों की वहाँ जाकर बुद्धि ही कुछ भ्रष्ट हो गई है। बात-बात पर झगड़ा-तकरार। सभी कन्यापक्षवालों से मानो लड़ने को तैयार। यह चीज नहीं आई, वह चीज नहीं भेजी, यह आदमी है या जानवर, पानी बिना बरफ के कौन पियेगा। गधे ने बरफ भेजी भी तो दस सेर। पूछो दस सेर

बरफ लेकिर आँखों में लगायें या किसी देवता को चढ़ाएँ! अजबचिल्ल-पों मची हुई थी। कोई किसी की न सुनता था। समधी साहब सिर पीट रहे थे कि यहाँ उनके मित्रों की जितनी दुर्गति हुई, उसका उन्हें उम्र-भर खेद रहेगा। वह क्या जानते थे कि लड़कीवाले इतने गँवार हैं। गँवार क्यों, मतलबी कहिए। कहने को शिक्षित हैं, सभ्य हैं, भद्र हैं, धन भी भगवान् की दया से कम नहीं, मगर दिल के इतने छोटे। दस सेर बरफ भेजते हैं! सिगरेट की एक डिबिया भी नहीं। फंस गया और क्या।

मैंने उनसे बिना सहानुभूति दिखाये कहा — सिगरेट नहीं भेजे तो कौन-सा बड़ा अनर्थ हो गया, खमीरा तम्बाकू तो दस सेर भेज दिया है, पीती क्यों नहीं घोल-घोल कर।

मेरे समधी मित्र ने विस्मय — भरी आँखों से मुझे मानो उन्हें कानों पर विश्वास न हो। ऐसी अनीति!

बोले — आप भी अजीब आदमी हैं, खमीरा यहाँ कौन पीता है। मुद्दत हुई लोगों ने गुड़गुड़ियाँ और फर्शियाँ गुदड़ी बाजार में बेच डालीं। थोड़े-से दकियानूसी अब भी हुक्का गुड़गुड़ाते हैं लेकिन बहुत कम। यहाँ तो ईश्वर की कृपा से सभी नई रोशनी, नये विचार, नये जमाने के लोग हैं और कन्यावाले यह बात जानते हैं, फिर भी सिगरेट नहीं भेजी, यहाँ कई सज्जन आठ-दस डिबियाँ

रोज पी जाते हैं। एक साहब तो बारह तक पहुँच जाते हैं। और चार-पाँच डिबियाँ तो आम बात है। इतने आदमियों के बीच में पाँच सौ डिबियाँ भी न हों तो क्या हो। और बरफ देखी आपने, जेसे दवा के लिए भेजी है। यहाँ इतनी बरफ घर-घर आती है। मैं तो अकेला ही दस सेर पी जाता हूँ। देहातियों को कभी अकल न आएगी, पढ़-लिख कितने ही जाए।

मैंने कहा — तो आपको अपने साथ एक गाड़ी सिगरेट और टन-भर बरफ लेते आना चाहिए था।

वह स्तम्भित हो गए — आप भंग तो नहीं खा गए?

--जी नहीं, कभी उम्र-भर नहीं खाई।

--तो फिर ऐसी ऊल-जलूल बातें क्यों करते हो?

--मैं तो सम्पूर्णतः अपने होश में हूँ।

--होश में रहने वाला आदमी ऐसी बात नहीं कर सकता। हम यहाँ लड़का ब्याहने आए हैं, लड़कीवालों को हमारी सारी फरमाइशें पूरी करनी पड़ेंगी, सारी। हम जो कुछ माँगेंगे उन्हें देना पड़ेगा, रो-रोकर देना पड़ेगा, दिल्लगी नहीं है। नाकों चने न चबवा दें तो कहिएगा। यह हमारा खुला हुआ अपमान है। द्वार पर बुलाकर जलील करना। मेरे साथ जो लोग आए हैं वे नाई-

कहार नहीं हैं, बड़े-बड़े आदमी हैं। मैं उनकी तौहीन नहीं देख सकता। अगर इन लोगों की यह जिद है तो बरात लौट जाएगी।

मैंने देखा यह इस वक्त ताव में हैं, इनसे बहस करना उचित नहीं। आज जीवन में पहली बार, केवल दो दिन के लिए, इन्हें एक आदमी पर अधिकार मिल गया है। उसकी गर्दन इनके पाँव के नीचे है। फिर उन्हें क्यों न नशा हो जाय क्यों न सिर फिर जाय, क्यों न उस दिल खोलकर रोब जमाएँ। वरपक्षवाले कन्यापक्षवालों पर मुद्दतों से हुकूमत करते चले आए हैं, और उस अधिकार को त्याग देना आसान नहीं। इन लोगों के दिमाग में इस वक्त यह बात कैसे आएगी कि तुम कन्यापक्षवालों के मेहमान हो और वे तुम्हें जिस तरह रखना चाहें तुम्हें रहना पड़ेगा। मेहमान को जो आदर-सत्कार, चूनी-चोकर, रूखा-सूखा मिले, उस पर उसे सन्तुष्ट होना चाहिए, शिष्टता यह कभी गवारा नहीं कर सकती कि वह जिनका मेहमान है, उनसे अपनी खातिरदारी का टैक्स वसूल करे। मैंने वहाँ से टल जाना ही मुनासिब समझा।

लेकिन जब विवाह का मुहूर्त आया, इधर से एक दर्जन व्हिस्की की बोतलों की फरमाइश हुई और कहा गया कि जब तक बोतलें न आ जाएगी हम विवाह-संस्कार के लिए मंडप में न जाएँगे। तब मुझसे न देखा गया। मैंने समझ लिया कि ये सब

एशु हैं, इंसानियत से खाली। इनके साथ एक क्षण रहना भी अपनी आत्मा का खून करना है। मैंने उसी वक्त प्रतिज्ञा की कि अब कभी किसी बरात में न जाऊँगा और अपना बोरिया-बकचा लेकर उसी क्षण वहाँ से चल दिया।

इसलिए जब गत मंगलवार को मेरे परम मित्र सुरेश बाबू ने मुझ अपने लड़के के विवाह का निमन्त्रण दिया तो मैंने सुरेश बाबू को दोनों हाथों से पकड़कर कहा — जी नहीं, मुझे कीजिए, मैं न जाऊँगा।

उन्होंने खिन्न होकर कहा — आखिर क्यों?

'मैंने प्रतिज्ञा कर ली है अब किसी बरात में न जाऊँगा।'

'अपने बेटे की बरात में भी नहीं?'

'बेटे की बरात में खुद अपना स्वामी रहूँगा।'

'तो समझ लीजिए यह आप ही का पुत्र है और आप यहाँ अपने स्वामी हैं।'

मैं निरुतर हो गया। फिर भी मैंने अपना पक्ष न छोड़ा।

'आप लोग वहाँ कन्यापक्षवालों से सिगरेट बर्फ, तेल, शराब आदि — आदि चीजों के लिए आग्रह तो न करेंगे?'

'भूलकर भी नहीं, इस विषय में मेरे विचार वहीं हैं जो आपके।'

‘ऐसा तो न होगा कि मेरे जैसे विचार रखते हुए भी आप वहीं दुराग्रहियों की बातों में आ जाएँ और वे अपने हथकन्डे शुरू कर दें?’

‘मैं आप ही को अपना प्रतिनिधि बनाता हूँ। आपके फैसले की वहाँ कहीं अपील न होगीं।’

दिल में तो मेरे अब भी कुछ संशय था, लेकिन इतना आश्वासन मिलने पर और ज्यादा अड़ना असज्जनता थी। आखिर मेरे वहाँ जाने से यह बेचारे तर तो नहीं जाएँगे। केवल मुझसे स्नेह रखने के कारण ही तो सब कुछ मेरे हाथों में सौंप रहे हैं। मैंने चलने का वादा कर लिया। लेकिन जब सुरश बाबू विदा होने लगे तो मैंने घड़े को जरा और ठोका —

‘लेन-देन का तो कोई झगड़ा नहीं है?’

‘नाम को नहीं। वे लोग अपनी खुशी से जो कुछ देंगे, वह हम ले लेंगे। माँगने न माँगने का अधिकार तो आपको रहेगा।’

‘अच्छी बात है, मैं चलूँगा।’

शुक्रवार को बरात चली। केवल रेल का सफर था और वह भी पचास मील का। तीसरे पहर के एक्सप्रेस से चले और शाम को कन्या के द्वार पर पहुँच गए। वहाँ हर तरह का सामान मौजूद

था। किसी चीज के माँगने की जरूरत न थी। बारातियों की इतनी खातिरदारी भी हो सकती है, इसकी मुझे कल्पना भी न थी। घराती इतने विनीत हो सकते हैं, कोई बात मुँह से निकली नहीं कि एक की जगह चार आदमी हाथ बांधे हाजिर!

लगन का मुहूर्त आया। हम सभी मंडप में पहुँचे। वहाँ तिल रखने की जगह भी न थी। किसी तरह धंस-धंसाकर अपने लिए जगह निकाली। सुरेश बाबू मेरे पीछे खड़े थे। बैठने को वहाँ जगह न थी।

कन्या-दान संस्कार शुरु हुआ। कन्या का पिता, एक पीताम्बर पहने आकर वर के सामने बैठ गया और उसके चरणों को धोकर उन पर अक्षत, फूल आदि चढ़ाने लगा। मैं अब तक सैकड़ों बरातों में जा चुका था, लेकिन विवाह-संस्कार देखने का मुझे कभी अवसर न मिला था। इस समय वर के सगे-संबंधी ही जाते हैं। अन्य बराती जनवासे में पड़े सोते हैं। या नाच देखते हैं, या ग्रामाफोन के रिकार्ड सुनते हैं। और कुछ न हुआ तो कई टोलियों में ताश खेलते हैं। अपने विवाह की मुझे याद नहीं। इस वक्त कन्या के वृद्ध पिता को एक युवक के चरणों की पूजा करते देखकर मेरी आत्मा को चोट लगी। यह हिन्दू विवाह का आदर्श है या उसका परहास? जामाता एक प्रकार से अपना पुत्र है, उसका धर्म है कि अपने धर्मपिता के चरण धोये, उस पर पान-फूल

चढ़ाये। यह तो नीति-संगत मालूम होता है। कन्या का पिता वर के पाँव पूजे यह तो न शिष्टता है, न धर्म, न मर्यादा। मेरी विद्रोही आत्मा किसी तरह शांत न रह सकी। मैंने झल्लाए हुए स्वर में कहा — यह क्या अनर्थ हो रहा है, भाइयो! कन्या के पिता का यह अपमान! क्या आप लोगों में आदमियत रही ही नहीं?

मंडप में सन्नाटा छा गया। मैं सभी आँखों का केन्द्र बन गया। मेरा क्या आशय है, यह किसी की समझ में न आया।

आखिर सुरेश बाबू ने पूछा — कैसा अपमान और किसका अपमान? यहाँ तो किसी का अपमान नहीं हो रहा है।

'कन्या का पिता वर के पाँव पूजे, यह अपमान नहीं तो क्या है?'

'यह अपमान नहीं, भाई साहब, प्राचीन प्रथा है।'

कन्या के पिता महोदय बोले — यह मेरा अपमान नहीं है मान्यवर, मेरा अहोभाग्य कि आज का यह शुभ अवसर आया। आप इतने ही से घबरा गये। अभी तो कम से कम एक सौ आदमी पैपुजी के इन्तजार में बैठे हुए हैं। कितने ही तरसते हैं कि कन्या होती तो वर के पाँव पूजकर अपना जन्म सफल करते।

मैं लाजवाब हो गया। समधी साहब पाँव पूज चुके तो स्त्रियों और पुरुषों का एक समूह वर की तरफ उमड़ पड़ा। और प्रत्येक प्राणी लगा उसके पाँव पूजने जो आता था, अपनी हैसियत के अनुसार कुछ न कुछ चढ़ा जाता था। सब लोग प्रसन्नचित्त और गदगद नेत्रों से यह नाटक देख रहे थे और मैं मन में सोच रहा था — जब समाज में औचित्य ज्ञान का इतना लोप हो गया है और लोग अपने अपमान को अपना सम्मान समझते हैं तो फिर क्यों न स्त्रियों की समाज में दुर्दशा हो, क्यों न वे अपने को पुरुष के पाँव की जूती समझें, क्यों न उनके आत्मसम्मान का सर्वनाश हो जाय!

जब विवाह-संस्कार समाप्त हो गया और वर-वधू मंडप से निकले तो मैंने जल्दी से आगे बढ़कर उसी थाल से थोड़े-से फूल चुन लिए और एक अर्द्ध-चेतना की दशा में, न जाने किन भावों से प्रेरित होकर, उन फूलों को वधू के चरणों पर रख दिया, और उसी वक्त वहाँ से घर चल दिया।

['माधुरी', अक्तूबर, 1935]

प्रतिशोध

माया अपने तिमंजिले मकान की छत पर खड़ी सड़क की ओर उद्विग्न और अधीर आँखों से ताक रही थी और सोच रही थी, वह अब तक आये क्यों नहीं? कहाँ देर लगायी? इसी गाड़ी से आने को लिखा था। गाड़ी तो आ गयी होगी, स्टेशन से मुसाफिर चले आ रहे हैं। इस वक्त तो कोई दूसरी गाड़ी नहीं आती। शायद असबाब वगैरह रखने में देर हुई, यार-दोस्त स्टेशन पर बधाई देने के लिए पहुँच गये हों, उनसे फुर्सत मिलेगी, तब घर की सुध आयेगी! उनकी जगह मैं होती तो सीधे घर आती। दोस्तों से कह देती, जनाब, इस वक्त मुझे माफ़ कीजिए, फिर मिलिएगा। मगर दोस्तों में तो उनकी जान बसती है!

मिस्टर व्यास लखनऊ के नौजवान मगर अत्यंत प्रतिष्ठित बैरिस्टरों में हैं। तीन महीने से वह एक राजनीतिक मुकदमें की पैरवी करने के लिए सरकार की ओर से लाहौर गए हुए हैं। उन्होंने माया को लिखा था — जीत हो गयी। पहली तारीख को मैं शाम की मेल में जरूर पहुँचूँगा। आज वही शाम है।

माया ने आज सारा दिन तैयारियों में बिताया। सारा मकान धुलवाया। कमरों की सजावट के सामान साफ करायें, मोटर धुलवायी। ये तीन महीने उसने तपस्या के काटे थे। मगर अब तक मिस्टर व्यास नहीं आये। उसकी छोटी बच्ची तिलोत्तमा आकर उसके पैरों में चिमट गयी और बोली — अम्माँ, बाबूजी कब आयेंगे?

माया ने उसे गोद में उठा लिया और चूमकर बोली — आते ही होंगे बेटी, गाड़ी तो कब की आ गयी।

तिलोत्तमा — मेरे लिए अच्छी गुड़ियाँ लाते होंगे।

माया ने कुछ जवाब न दिया। इन्तजार अब गुस्से में बदलता जाता था। वह सोच रही थी, जिस तरह मुझे हजरत परेशान कर रहे हैं, उसी तरह मैं भी उनको परेशान करूँगी। घण्टे-भर तक बोलूँगी ही नहीं। आकर स्टेशन पर बैठे हुए है? जलाने में उन्हें मजा आता है। यह उनकी पुरानी आदत है। दिल को क्या करूँ। नहीं, जी तो यही चाहता है कि जैसे वह मुझसे बेरुखी दिखलाते है, उसी तरह मैं भी उनकी बात न पूछूँ।

यकायक एक नौकर ने ऊपर आकर कहा — बहू जी, लाहौर से यह तार आया है।

माया अन्दर — ही — अन्दर जल उठी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि जैसे बड़े जोर की हरारत हो गयी हो। बरबस खयाल आया — सिवाय इसके और क्या लिखा होगा कि इस गाड़ी से न आ सकूँगा। तार दे देना कौन मुश्किल है। मैं भी क्यों न तार दे दूँ कि मै एक महीने के लिए मैके जा रही हूँ। नौकर से कहा — तार ले जाकर कमरे में मेज पर रख दो। मगर फिर कुछ सोचकर उसने लिफाफा ले लिया और खोला ही था कि कागज़ हाथ से छूटकर गिर पड़ा। लिखा था — मिस्टर व्यास को आज दस बजे रात किसी बदमाश ने कत्ल कर दिया।

2

कई महीने बीत गये। मगर खूनी का अब तक पता नहीं चला। खुफिया पुलिस के अनुभवी लोग उसका सुराग लगाने की फिक्र में परेशान हैं। खूनी को गिरफ्तार करा देनेवाले को बीस हजार रुपये इनाम दिये जाने का एलान कर दिया गया है। मगर कोई नतीजा नहीं। जिस होटल में मिस्टर व्यास ठहरे थे, उसी में एक महीने से माया ठहरी हुई है। उस कमरे से उसे प्यार-सा हो गया है। उसकी सूरत इतनी बदल गयी है कि अब उसे

पहचानना मुश्किल है। मगर उसके चेहरे पर बेकसी या दर्द का पीलापन नहीं क्रोध की गर्मी दिखाई पड़ती है। उसकी नशीली आँखों में अब खून की प्यास है और प्रतिशोध की लपट। उसके शरीर का एक-एक कण प्रतिशोध की आग से जला जा रहा है। अब यही उसके जीवन का ध्येय, यही उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा है। उसके प्रेम की सारी निधि अब यही प्रतिशोध का आवेग हैं। जिस पापी ने उसके जीवन का सर्वनाश कर दिया उसे अपने सामने तड़पते देखकर ही उसकी आँखें ठण्डी होंगी। खुफ़िया पुलिस भय और लोभ, जाँच और पड़ताल से काम ले रही है, मगर माया ने अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए एक दूसरा ही रास्ता अपनाया है। मिस्टर व्यास को प्रेत-विद्या से लगाव था। उनकी संगति में माया ने कुछ आरम्भिक अभ्यास किया था। उस वक्त उसके लिए यह एक मनोरंजन था। मगर अब यही उसके जीवन का सम्बल था। वह रोजाना तिलोत्तमा पर अमल करती और रोज-ब-रोज अभ्यास बढ़ाती जाती थी। वह उस दिन का इन्तजार कर रही थी जब अपने पति की आत्मा को बुलाकर उससे खूनी का सुराग लगा सकेगी। वह बड़ी लगन से, बड़ी एकाग्रचित्तता से अपने काम में व्यस्त थी। रात के दस बज गये थे।

माया ने कमरे को अंधेरा कर दिया था और तिलोत्तमा पर अभ्यास कर रही थी। यकायक उसे ऐसा मालूम कि कमरे में कोई दिव्य व्यक्तित्व आया। बुझते हुए दीपक की अंतिम झलक की तरह एक रोशनी नज़र आयी।

माया ने पूछा — आप कौन है?

तिलोत्तमा ने हँसकर कहा — तुम मुझे नहीं पहचानतीं? मैं ही तुम्हारा मनमोहन हूँ जो दुनिया में मिस्टर व्यास के नाम से मशहूर था।

‘आप खूब आये। मैं आपसे खूनी का नाम पूछना चाहती हूँ।’

‘उसका नाम है, ईश्वरदास।’

‘कहाँ रहता है?’

‘शाहजहाँपुर।’

माया ने मुहल्ले का नाम, मकान का नम्बर, सूरत-शक्ल, सब कुछ विस्तार के साथ पूछा और कागज पर नोट कर लिया। तिलोत्तमा जरा देर में उठ बैठी। जब कमरे में फिर रोशनी हुई तो माया का मुरझाया हुआ चेहरा विजय की प्रसन्नता से चमक रहा था। उसके शरीर में एक नया जोश लहरें मार रहा था कि जैसे प्यास से मरते हुए मुसाफिर को पानी मिल गया हो।

उसी रात को माया ने लाहौर से शाहजहाँपुर आने का इरादा किया।

3

रात का वक्त। पंजाब मेल बड़ी तेजी से अंधेरे को चीरती हुई चली जा रही थी। माया एक सेकेण्ड क्लास के कमरे में बैठी सोच रही थी कि शाहजहाँपुर में कहाँ ठहरेगी, कैसे ईश्वरदास का मकान तलाश करेगी और कैसे उससे खून का बदला लेगी। उसके बगल में तिलोत्तमा बेखबर सो रही थीं सामने ऊपर के बर्थ पर एक आदमी नींद में गाफ़िल पड़ा हुआ था।

यकायक गाड़ी का कमरा खुला और दो आदमी कोट-पतलून पहने हुए कमरे में दाखिल हुए। दोनो अंग्रेज थे। एक माया की तरफ बैठा और दूसरा दूसरी तरफ। माया सिमटकर बैठ गयी। इन आदमियों को यों बैठना उसे बहुत बुरा मालूम हुआ। वह कहना चाहती थी, आप लोग दूसरी तरफ बैठें, पर वही औरत जो खून का बदला लेने जा रही थी, सामने यह खतरा देखकर काँप उठी। वह दोनों शैतान उसे सिमटते देखकर और भी करीब आ गये। माया अब वहाँ न बैठी रह सकी। वह उठकर दूसरे बर्थ

पर जाना चाहती थी कि उनमें से एक ने उसका हाथ पकड़ लिया। माया ने जोर से हाथ छुड़ाने की कोशिश करके कहा — तुम्हारी शामत तो नहीं आयी है, छोड़ दो मेरा हाथ, सुअर?

इस पर दूसरे आदमी ने उठकर माया को सीने से लिपटा लिया। और लड़खड़ाती हुई जबान से बोला — वेल हम तुमको बहुत-सा रुपया देगा।

माया ने उसे सारी ताकत से ढ़केलने की कोशिश करते हुए कहा — हट जा हरामजादे, वर्ना अभी तेरा सर तोड़ दूँगी।

दूसरा आदमी भी उठ खड़ा हुआ और दोनों मिलकर माया को बर्थ पर लिटाने की कोशिश करने लगे। यकायक यह खटपट सुनकर ऊपर के बर्थ पर सोया हुआ आदमी चौका और उन बदमाशों की हरकत देखकर ऊपर से कूद पड़ा। दोनों गोरे उसे देखकर माया को छोड़ उसकी तरफ झपटे और उसे घूंसे मारने लगे। दोनों उस पर ताबड़तोड़ हमला कर रहे थे और वह हाथों से अपने को बचा रहा था। उसे वार करने का कोई मौका न मिलता था। यकायक उसने उचककर अपने बिस्तर में से एक छूरा निकाल दिया और आस्तीनें समेटकर बोला — तुम दोनों अगर अभी बाहर न चले गये तो मैं एक को भी जीता ना छोड़ूँगा।

दोनों गोरे छुरा देखकर डरे मगर वह भी निहत्थे न थे। एक ने जेब से रिवाल्वर निकल लिया और उसकी नली उस आदमी की तरफ करके बोला — निकल जाओ, रैस्कल!

माया थर-थर काँप रही थी कि न जाने क्या आफत आने वाली हे। मगर खतरा हमारी छिपी हुई हिम्मतों की कुंजी है। खतरे में पड़कर हम भय की सीमाओं से आगे बढ़ जाते हैं कुछ कर गुजरते हैं जिस पर हमें खुद हैरत होती है। वही माया जो अब तक थर-थर काँप रही थी, बिल्ली की तरह कूद कर उस गोरे की तरफ लपकी और उसके हाथ से रिवाल्वर खींचकर गाड़ी के नीचे फेंक दिया। गोरे ने खिसियाकर माया को दांत काटना चाहा मगर माया ने जल्दी से हाथ खींच लिया और खतरे की जंजीर के पास जाकर उसे जोर से खींचा। दूसरा गोरा अब तक किनारे खड़ा था। उसके पास कोई हथियार न था इसलिए वह छुरी के सामने न आना चाहता था। जब उसने देखा कि माया ने जंजीर खींच ली तो भीतर का दरवाजा खोलकर भागा। उसका साथी भी उसके पीछे-पीछे भागा। चलते-चलते छुरी वाले आदमी ने उसे इतने जोर से धक्का दिया कि वह मुँह के बल गिर पड़ा। फिर तो उसने इतनी ठोकरें, इतनी लातें और इतने घूँसे जमाये कि उसके मुँह से खून निकल पड़ा। इतने में गाड़ी रुक गयी और गार्ड लालटेन लिये आता दिखायी दिया।

4

मगर वह दोनों शैतान गाड़ी को रुकते देख बेतहाशा नीचे कूद पड़े और उस अंधेरे में न जाने कहाँ खो गये। गार्ड ने भी ज्यादा छानबीन न की और करता भी तो उस अंधेरे में पता लगाना मुश्किल था। दोनों तरफ खड्डे थे, शायद किसी नदी के पास थीं। वहाँ दो क्या दो सौ आदमी उस वक्त बड़ी आसानी से छिप सकते थे। दस मिनट तक गाड़ी खड़ी रही, फिर चल पड़ी।

माया ने मुक्ति की सांस लेकर कहा — आप आज न होते तो ईश्वर ही जाने मेरा क्या हाल होता आपके कहीं चोट तो नहीं आयी?

उस आदमी ने छुरे को जेब में रखते हुए कहा — बिलकुल नहीं। मैं ऐसा बेसुध सोया हुआ था कि उन बदमाशों के आने की खबर ही न हुई। वर्ना मैंने उन्हें अन्दर पाँव ही न रखने दिया होता। अगले स्टेशन पर रिपोर्ट करूँगा।

माया — जी नहीं, खामखाह की बदनामी और परेशानी होगी। रिपोर्ट करने से कोई फायदा नहीं। ईश्वर ने आज मेरी आबरू

रख ली। मेरा कलेजा अभी तक धड़-धड़ कर रहा है। आप कहाँ तक चलेंगे?

‘मुझे शाहजहाँपुर जाना है।’

‘वहीं तक तो मुझे भी जाना है। शुभ नाम क्या है? कम से कम अपने उपकारक के नाम से तो अपरिचित न रहूँ।

‘मुझे तो ईश्वरदास कहते हैं।

‘माया का कलेजा धक् से हो गया। जरूर यह वही खूनी है, इसकी शक्ल-सूरत भी वही है जो उसे बतलायी गयी थीं उसने डरते-डरते पूछा — आपका मकान किस मुहल्ले में है?

‘.....में रहता हूँ।

माया का दिल बैठ गया। उसने खिड़की से सिर बाहर निकालकर एक लम्बी सांस ली। हाय! खूनी मिला भी तो इस हालत में जब वह उसके एहसान के बोझ से दबी हुई है! क्या उस आदमी को वह खंजर का निशाना बना सकती है, जिसने बगैर किसी परिचय के सिर्फ हमदर्दी के जोश में ऐसे गाढ़े वक्त में उसकी मदद की? जान पर खेल गया? वह एक अजीब उलझन में पड़ गयी। उसने उसके चेहरे की तरफ देखा, शराफत झलक रही थी। ऐसा आदमी खून कर सकता है, इसमें उसे सन्देह था

ईश्वरदास ने पूछा — आप लाहौर से आ रही हैं न? शाहजहाँपुर में कहाँ जाइएगा?

'अभी तो कहीं धर्मशाला में ठहरूँगी, मकान का इन्तजाम करना हैं।'

ईश्वरदास ने ताज्जुब से पूछा — तो वहाँ आप किसी दोस्त या रिश्तेदार के यहाँ नहीं जा रही हैं?

'कोई न कोई मिल ही जाएगा।'

'यों आपका असली मकान कहाँ है?'

'असली मकान पहले लखनऊ था, अब कहीं नहीं है। मै बेवा हूँ।'

5

ईश्वर दास ने शाहजहाँपुर में माया के लिए एक अच्छा मकान तय कर दिया। एक नौकर भी रख दिया। दिन में कई बार हाल-चाल पूछने आता। माया कितना ही चाहती थी कि उसके एहसान न ले, उससे घनिष्ठता न पैदा करे, मगर वह इतना नेक, इतना बामुरौवत और शरीफ था कि माया मजबूर हो जाती थी।

एक दिन वह कई गमले और फर्नीचर लेकर आया। कई खूबसूरत तसवीरें भी थी। माया ने त्यौरियाँ चढ़ाकर कहा — मुझे साज-सामान की बिलकुल जरूरत नहीं, आप नाहक तकलीफ करते हैं।

ईश्वरदास ने इस तरह लज्जित होकर कि जैसे उससे कोई भूल हो गयी हो कहा — मेरे घर में यह चीजें बेकार पड़ी थीं, लाकर रख दी।

'मैं इन टीम-टाम की चीजों का गुलाम नहीं बनना चाहती।'

ईश्वरदास ने डरते-डरते कहा —अगर आपको नागवार हो तो उठवा ले जाऊँ?

माया ने देखा कि उसकी आँखें भर आयी हैं, मजबूर होकर बोली — अब आप ले आये हैं तो रहने दीजिए। मगर आगे से कोई ऐसी चीज न लाइएगा

एक दिन माया का नौकर न आया। माया ने आठ-नौ बजे तक उसकी रूह देखीं जब अब भी वह न आया तो उसने जूठे बर्तन माँजना शुरू किया। उसे कभी अपने हाथ से चौका —बर्तन करने का संयोग न हुआ था। बार-बार अपनी हालत पर रोना आता था एक दिन वह था कि उसके घर में नौकरों की एक पलटन थी, आज उसे अपने हाथों बर्तन माँजने पड़ रहे हैं। तिलोत्तमा दौड़-

दौड़ कर बड़े जोश से काम कर रही थी। उसे कोई फिक्र न थी। अपने हाथों से काम करने का, अपने को उपयोगी साबित करने का ऐसा अच्छा मौका पाकर उसकी खुशी की सीमा न रही।

इतने में ईश्वरदास आकर खड़ा हो गया और माया को बर्तन माँजते देखकर बोला — यह आप क्या कर रही हैं? रहने दीजिए, मैं अभी एक आदमी को बुलवाये लाता हूँ। आपने मुझे क्यों ने खबर दी, राम-राम, उठ आइये वहाँ से।

माया ने लापरवाही से कहा — कोई जरूरत नहीं, आप तकलीफ न कीजिए। मैं अभी माँजे लेती हूँ।

‘इसकी जरूरत भी क्या, मैं एक मिनट में आता हूँ।’

‘नहीं, आप किसी को न लाइए, मै इतने बर्तन आसानी से धो लूँगी।’

‘अच्छा तो लाइए मैं भी कुछ मदद करूँ।’

यह कहकर उसने डोल उठा लिया और बाहर से पानी लेने दौड़ा। पानी लाकर उसने मंजे हुए बर्तनों को धोना शुरू किया।

माया ने उसके हाथ से बर्तन छीनने की कोशिश करके कहा — आप मुझे क्यों शर्मिन्दा करते है?

रहने दीजिए, मैं अभी साफ़ किये डालती हूँ।

'आप मुझे शर्मिन्दा करती हैं या मैं आपको शर्मिन्दा कर रहा हूँ? आप यहाँ मुसाफ़िर हैं, मैं यहाँ का रहने वाला हूँ, मेरा धर्म है कि आपकी सेवा करूँ। आपने एक ज्यादती तो यह की कि मुझे जरा भी खबर न दी, अब दूसरी ज्यादती यह कर रही हैं। मै इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता।'

ईश्वरदास ने जरा देर में सारे बर्तन साफ़ करके रख दिये। ऐसा मालूम होता था कि वह ऐसे कामों का आदी है। बर्तन धोकर उसने सारे बर्तन पानी से भर दिये और तब माथे से पसीना पोंछता हुआ बोला — बाजार से कोई चीज लानी हो तो बतला दीजिए, अभी ला दूँ।

माया — जी नहीं, माफ कीजिए, आप अपने घर का रास्ता लीजिए।

ईश्वरदास — तिलोत्तमा, आओ आज तुम्हें सैर करा लायें।

माया — जी नहीं, रहने दीजिए। इस वक्त सैर करने नहीं जाती।

माया ने यह शब्द इतने रूखेपन से कहे कि ईश्वरदास का मुँह उतर गया। उसने दुबारा कुछ न कहा। चुपके से चला गया।

उसके जाने के बाद माया ने सोचा, मैंने उसके साथ कितनी बेमुरौवती की।

रेलगाड़ी की उस दुःखद घटना के बाद उसके दिल में बराबर प्रतिशोध और मनुष्यता में लड़ाई छिड़ी हुई थी। अगर ईश्वरदास उस मौके पर स्वर्ग के एक दूत की तरह न आ जाता तो आज उसकी क्या हालत होती, यह ख्याल करके उसके रोएँ खड़े हो जाते थे और ईश्वरदास के लिए उसके दिल की गहराइयों से कृतज्ञता के शब्द निकलते। क्या अपने ऊपर इतना बड़ा एहसान करने वाले के खून से अपने हाथ रंगेगी? लेकिन उसी के हाथों से उसे यह मनहूस दिन भी तो देखना पड़ा! उसी के कारण तो उसने रेल का वह सफर किया था वर्ना वह अकेले बिना किसी दोस्त या मददगार के सफर ही क्यों करती? उसी के कारण तो आज वह वैधव्य की विपत्तियाँ झेल रही है और सारी उम्र झेलेगी।

इन बातों का खयाल करके उसकी आँखें लाल हो जातीं, मुँह से एक गर्म आह निकल जाती और जी चाहता इसी वक्त कटार लेकर चल पड़े और उसका काम तमाम कर दे।

आज माया ने अन्तिम निश्चय कर लिया। उसने ईश्वरदास की दावत की थी। यही उसकी आखिरी दावत होगी। ईश्वरदास ने उस पर एहसान जरूर किये हैं लेकिन दुनिया में कोई एहसान, कोई नेकी उस शोक के दाग को मिटा सकती है? रात के नौ बजे ईश्वरदास आया तो माया ने अपनी वाणी में प्रेम का आवेग भरकर कहा — बैठिए, आपके लिए गर्म-गर्म पूड़ियाँ निकाल दूँ?

ईश्वरदास — क्या अभी तक आप मेरे इन्तजार में बैठी हुई हैं? नाहक गर्मी में परेशान हुई।

माया ने थाली परसकर उसके सामने रखते हुए कहा — मैं खाना पकाना नहीं जानती? अगर कोई चीज़ अच्छी न लगे तो माफ़ कीजिएगा।

ईश्वरदास ने खूब तारीफ़ करके एक-एक चीज खायीं। ऐसी स्वादिष्ट चीजें उसने अपनी उम्र में कभी न खायी थी।

'आप तो कहती थी मैं खाना पकाना नहीं जानती?'

'तो क्या मैं ग़लत कहती थी?'

'बिलकुल ग़लत। आपने खुद अपनी ग़लती साबित कर दीं। ऐसे खस्ते मैंने जिन्दगी में भी न खाये

थे।'

‘आप मुझे बनाते है, अच्छा साहब बना लीजिए।’

‘नहीं, मैं बनाता नहीं, बिलकुल सच कहता हूँ। किस-किस चीज की तारीफ करूँ? चाहता हूँ कि कोई ऐब निकालूँ, लेकिन सूझता ही नहीं। अबकी मैं अपने दोस्तों की दावत करूँगा तो आपको एक दिन तकलीफ दूँगा।’

‘हाँ, शौक़ से कीजिए, मैं हाजिर हूँ।’

खाते-खाते दस बज गये। तिलोत्तमा सो गयी। गली में भी सन्नाटा हो गया। ईश्वरदास चलने को तैयार हुआ, तो माया बोली — क्या आप चले जाएँगे? क्यों न आज यहीं सो रहिए? मुझे कुछ डर लग रहा है। आप बाहर के कमरे में सो रहिएगा, मैं अन्दर आँगन में सो रहूँगीं।

ईश्वरदास ने क्षण-भर सोचकर कहा — अच्छी बात है। आपने पहले कभी न कहा कि आपको इस घर में डर लगता है वर्ना मैं किसी भरोसे की बुड्ढी औरत को रात को सोने के लिए ठीक कर देता

।

ईश्वरदास ने तो कमरे में आसन जमाया, माया अन्दर खाना खाने गयी। लेकिन आज उसके गले के नीचे एक कौर भी न उतर

सका। उसका दिल जोर-जोर से धड़क रहा था। दिल पर एक डर-सा छाया हुआ था। ईश्वरदास कहीं जाग पड़ा तो? उसे उस वक्त कितनी शर्मिन्दगी होगी!

माया ने कटार को खूब तेज कर रखा था। आज दिन-भर उसे हाथ में लेकर अभ्यास किया। वह इस तरह वार करेगी कि खाली ही न जाये। अगर ईश्वरदास जाग ही पड़ा तो जानलेवा घाव लगेगा।

जब आधी रात हो गयी और ईश्वरदास के खर्राटों की आवाजें कानों में आने लगी तो माया कटार लेकर उठी पर उसका सारा शरीर काँप रहा था। भय और संकल्प, आकर्षण और घृणा एक साथ कभी उसे एक कदम आगे बढ़ा देती, कभी पीछे हटा देती। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारा मकान, सारा आसमान चक्कर खा रहा हैं कमरे की हर एक चीज घूमती हुई नजर आ रही थी। मगर एक क्षण में यह बेचैनी दूर हो गयी और दिल पर डर छा गया। वह दबे पाँव ईश्वरदास के कमरे तक आयी, फिर उसके क़दम वहीं जम गये। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। आह, मैं कितनी कमजोर हूँ, जिस आदमी ने मेरा सर्वनाश कर दिया, मेरी हरी-भरी खेती उजाड़ दी, मेरे लहलहाते हुए उपवन को वीरान कर दिया, मुझे हमेशा के लिए आग के जलते हुए कुंडों में डाल दिया, उससे मैं खून का बदला भी नहीं ले सकती! वह मेरी

ही बहनें थी, जो तलवार और बन्दूक लेकर मैदान में लड़ती थीं, दहकती हुई चिता में हँसते-हँसते बैठ जाती थी। उसे उस वक्त ऐसा मालूम हुआ कि मिस्टर व्यास सामने खडें हैं और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा कर रहे हैं, कह रहे है, क्या तुम मेरे खून का बदला न लोगी? मेरी आत्मा प्रतिशोध के लिए तड़प रही हैं। क्या उसे हमेशा-हमेशा यों ही तड़पाती रहोगी? क्या यही वफ़ा की शर्त थी? इन विचारों ने माया की भावनाओं को भड़का दिया।

उसकी आँखें खून की तरह लाल हो गयीं, होंठ दांतों के नीचे दब गये और कटार के हत्थे पर मुट्ठी बंध गयी। एक उन्माद-सा छा गया। उसने कमरे के अन्दर पैर रखा मगर ईश्वरदास की आँखें खुल गयी थीं।

कमरे में लालटेन की मद्धिम रोशनी थी। माया की आहट पाकर वह चौंका और सिर उठाकर देखा तो खून सर्द हो गया — माया प्रलय की मूर्ति बनी हाथ में नंगी कटार लिये उसकी तरफ चली आ रही थी!

वह चारपाई से उठकर खड़ा हो गया और घबड़ाकर बोला — क्या है बहन? यह कटार क्यों लिये हुए हो?

माया ने कहा — यह कटार तुम्हारे खून की प्यासी है क्योंकि तुमने मेरे पति का खून किया है।

ईश्वरदास का चेहरा पीला पड़ गया। बोला — मैंनें!

‘हाँ तुमने, तुम्हीं ने लाहौर में मेरे पति की हत्या की, जब वे एक मुकदमें की पैरवी करने गये थे। क्या तुम इससे इनकार कर सकते हो?मेरे पति की आत्मा ने खुद तुम्हारा पता बतलाया है।’

‘तो तुम मिस्टर व्यास की बीवी हो?’

‘हाँ, मैं उनकी बदनसीब बीवी हूँ और तुम मेरा सोहाग लूटनेवाले हो! गो तुमने मेरे ऊपर एहसान किये हैं लेकिन एहसानों से मेरे दिल की आग नहीं बुझ सकती। वह तुम्हारी खून ही से बुझेगी।’

ईश्वरदास ने माया की ओर याचना-भरी आँखों से देखकर कहा — अगर आपका यही फैसला है तो लीजिए यह सर हाजिर है। अगर मेरे खून से आपके दिल की आग बुझ जाय तो मैं खुद उसे आपके कदमों पर गिरा दूँगा। लेकिन जिस तरह आप मेरे खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाना अपना धर्म समझती हैं उसी तरह मैंने भी मिस्टर व्यास को क़त्ल करना अपना धर्म समझा। आपको मालूम है, वह एक राजनीतिक मुकदमें की पैरवी करने लाहौर गये थे। लेकिन मिस्टर व्यास ने जिस तरह अपनी ऊँची कानूनी लियाकत का इस्तेमाल किया, पुलिस को झुठी शहादतों के तैयार करने में जिस तरह मदद दी, जिस बेरहमी और बेदर्दी से

बेकस और ज्यादा बेगुनाह नौजवानों को तबाह किया, उसे मैं सह न सकता था। उन दिनों अदालत में तमाशाइयों की बेइन्ता भीड़ रहती थी। सभी अदालत से मिस्टर व्यास को कोसते हुए जाते थे मैं तो मुकदमे की हकीकत को जानता था। इस लिए मेरी अन्तरात्मा सिर्फ कोसने और गालियाँ देने से शांत न हो सकती थी। मैं आपसे क्या कहूँ। मिस्टर व्यास ने आँख खोलकर समझ-बूझकर झूठ को सच साबित किया और कितने ही घरानों को बेचिराग कर दिया आज कितनी माँए अपने बेटों के लिए खून के आँसू रो रही है, कितनी ही औरतें रंडापे की आग में जल रही है। पुलिस कितनी ही ज्यादतियाँ करे, हम परवाह नही करते। पुलिस से हम इसके सिवा और उम्मीद नही रखते। उसमे ज्यादातर जाहिल शोहदे लुच्चे भरे हुए है। सरकार ने इस महकमे को कायम ही इसलिए किया है कि वह रिआया को तंग करे। मगर वकीलों से हम इन्साफ की उम्मीद रखते है। हम उनकी इज्जत करते है। वे उच्चकोटि के पढ़े लिखे सजग लोग होते है। जब ऐसे आदमियों को हम पुलिस के हाथों की कठपुतली बना हुआ देखते है तो हमारे क्रोध की सीमा नहीं रहती मैं मिस्टर व्यास का प्रशंसक था। मगर जब मैने उन्हें बेगुनाह मुलजिमों से जबरन जुर्म का इकबाल कराते देखा तो मुझे उनसे नफरत हो गयी। गरीब मुलजिम रात दिन भर उल्टे

लटकाये जाते थे! सिर्फ इसलिए कि वह अपना जुर्म, तो उन्होने कभी नही किया, इकबाल कर ले! उनकी नाक में लाल मिर्च का धुआँ डाला जाता था! मिस्टर व्यास यह सारी ज्यादातियाँ सिर्फ अपनी आँखो से देखते ही नही थे, बल्कि उन्हीं के इशारे पर वह की जाती थी।

माया के चेहरे की कठोरता जाती रही। उसकी जगह जायज गुस्से की गर्मी पैदा हुई। बोली—इसका आपके के पास कोई सबूत है कि उन्होने मुलजिमों पर ऐसी सख्तियाँ की?

'यह सारी बातें आमतौर पर मशहूर थी। लाहौर का बच्चा बच्चा जानता है। मैने खुद अपनी आँखों से देखी इसके सिवा मैं और क्या सबूत दे सकता हूँ उन बेचारों का बस इतना कसूर था। कि वह हिन्दुस्तान के सच्चे दोस्त थे, अपना सारा वक्त प्रजा की शिक्षा और सेवा में खर्च करते थे। भूखे रहते थे, प्रजा पर पुलिस हुक्काम की सख्तियाँ न होने देते थे, यही उनका गुनाह था और इसी गुनाह की सजा दिलाने में मिस्टर व्यास पुलिस के दाहिने हाथ बने हुए थे!'

माया के हाथ से खंजर गिर पड़ा। उसकी आँखो मे आँसू भर आये, बोली मुझे न मालूम था कि वे ऐसी हरकतें भी कर सकते है।

ईश्वरदास ने कहा — यह न समझिए कि मै आपकी तलवार से डर कर वकील साहब पर झूठे इल्जाम, लगा रहा हूँ। मैने कभी जिन्दगी की परवाह नहीं की। मेरे लिए कौन रोने वाला बैठा हुआ है जिसके लिए जिन्दगी की परवाह करूँ। अगर आप समझती हैं कि मैंने अनुचित हत्या की है तो

आप इस तलवार को उठाकर इस जिन्दगी का खात्मा कर दीजिए, मै जरा भी न झिझकूँगा। अगर आप तलवार न उठा सके तो पुलिस को खबर कर दीजिए, वह बड़ी आसानी से मुझे दुनिया से रुखसत कर सकती है। सबूत मिल जाना मुश्किल न होगा। मैं खुद पुलिस के सामने जुर्म का इकबाल कर लेता मगर मै इसे जुर्म नही समझता। अगर एक जान से सैंकड़ों जाने बच जाएँ तो वह खून नही है। मैं सिर्फ इसलिए जिन्दा रहना चाहता हूँ कि शायद किसी ऐसे ही मौके पर मेरी फिर जरूरत पड़े।

माया ने रोते हुए — अगर तुम्हारा बयान सही है तो मै अपना, खून माफ करती हूँ तुमने जो किया या बेजा किया इसका फैसला ईश्वर करेंगे। तुमसे मेरी प्रार्थना है कि मेरे पति के हाथों जो घर तबाह हुए है। उनका मुझे पता बतला दो, शायद मै उनकी कुछ सेवा कर सकूँ।

[प्रेमचालीसा' से]

प्रेम की होली

गंगी का सत्रहवाँ साल था, पर वह तीन साल से विधवा थी, और जानती थी कि मैं विधवा हूँ, मेरे लिए संसार के सुखों के द्वार बन्द हैं। फिर वह क्यों रोये और कलपे? मेले से सभी तो मिठाई के दोने और फूलों के हार लेकर नहीं लौटते? कितनों ही का तो मेले की सजी दूकानें और उन पर खड़े नर-नारी देखकर ही मनोरंजन हो जाता है। गंगी खाती-पीती थी, हँसती-बोलती थी, किसी ने उसे मुँह लटकाये, अपने भाग्य को रोते नहीं देखा। घड़ी रात को उठकर गोबर निकालकर, गाय-बैलों को सानी देना, फिर उपले पाथना, उसका नित्य का नियम था। तब वह अपने भैया को गाय दुहाने के लिए जगाती थी। फिर कुँए से पानी लाती, चौके का धन्धा शुरू हो जाता। गाँव की भावजें उससे हँसी करतीं, पर एक विशेष प्रकार की हँसी छोड़कर सहेलियाँ ससुराल से आकर उससे सारी कथा कहतीं, पर एक विशेष प्रसंग बचाकर। सभी उसके वैधव्य का आदर करते थे। जिस छोटे से अपराध के लिए, उसकी भावज पर घुड़कियाँ पड़तीं, उसकी माँ को गालियाँ मिलतीं, उसके भाई पर मार पड़ती, वह उसके लिए क्षम्य था। जिसे

ईश्वर ने मारा है, उसे क्या कोई मारे! जो बातें उसके लिए वर्जित थीं उनकी ओर उसका मन ही न जाता था।

उसके लिए उसका अस्तित्व ही न था। जवानी के इस उमड़े हुए सागर में मतवाली लहरें न थीं, डरावनी गरज न थी, अचल शान्ति का साम्राज्य था।

2

होली आयी, सबने गुलाबी साडिय़ाँ पहनीं, गंगी की साड़ी न रंगी गयी। माँ ने पूछा — बेटी, तेरी साड़ी भी रंग दूँ। गंगी ने कहा — नहीं अम्माँ, यों ही रहने दो। भावज ने फाग गाया। वह पकवान बनाती रही। उसे इसी में आनन्द था।

तीसरे पहर दूसरे गाँव के लोग होली खेलने आये। यह लोग भी होली लौटाने जाएँगे। गाँवों में यही परस्पर व्यवहार है। मैकू महतो ने भंग बनवा रखी थी, चरस-गाँजा, माजूम सब कुछ लाये थे। गंगी ने ही भंग पीसी थी, मीठी अलग बनायी थी, नमकीन अलग। उसका भाई पिलाता था, वह हाथ धुलाती थी। जवान सिर नीचा किये पीकर चले जाते, बूढ़े, गंगी से पूछ लेते — अच्छी तरह हो न बेटी, या चुहल करते — क्यों री गंगिया भावज तुझे

खाना नहीं देती क्या, जो इतनी दुबली हो गयी है! गंगिया हँसकर रह जाती।। देह क्या उसके बस की थी। न जाने क्यों वह मोटी हुई थी।

भंग पीने के बाद लोग फाग गाने लगे। गंगिया अपनी चौखट पर खड़ी सुन रही थी। एक जवान ठाकुर गा रहा था। कितना अच्छा स्वर था, कैसा मीठा। गंगिया को बड़ा आनन्द आ रहा था।

माँ ने कई बार पुकारा — सुन जा। वह न गयी। एक बार गयी भी तो जल्दी से लौट आयी। उसका ध्यान उसी गाने पर था। न जाने क्या बात उसे खींचे लेती थी, बाँधे लेती थी। जवान ठाकुर भी बार-बार गंगिया की ओर देखता और मस्त हो-होकर गाता। उसके साथ वालों को आश्चर्य हो रहा था। ठाकुर को यह सिद्धि कहाँ मिल गयी! वह लोग विदा हुए तो गंगिया चौखटे पर खड़ी थी। जवान ठाकुर ने भी उसकी ओर देखा और चला गया।

गंगिया ने अपने बाप से पूछा — कौन गाता था दादा?

मैकू ने कहा — कोठार के बुद्धूसिंह का लड़का है, गरीबसिंह। बुद्धू रीति व्यवहार में आते-जाते थे।

उनके मरने के बाद अब वही लड़का आने-जाने लगा।

गंगी — यहाँ तो पहले पहल आया है?

मैकू — हाँ, और तो कभी नहीं देखा। मिजाज बिलकुल बाप का-सा है और वैसी ही मीठी बोली है।

घमण्ड तो छू नहीं गया। बुद्धू के बखार में अनाज रखने को जगह न थी, पर चमार को भी देखते तो पहले हाथ उठाते। वही इसका स्वभाव है। गोरू आ रहे थे। गंगी पगहिया लेने भीतर चली गयी। वही स्वर उसके कानों में गूँज रहा था।

कई महीने गुजर गये। एक दिन गंगी गोबर पाथ रही थी। सहसा उसने देखा, वही ठाकुर सिर झुकाये द्वार पर से चला जा रहा है। वह गोबर छोड़कर उठ खड़ी हुई। घर में कोई मर्द न था।

सब बाहर चले गये थे। यह कहना चाहती थी — ठाकुर! बैठो, पानी पीते जाव। पर उसके मुँह से बात न निकली। उसकी छाती कितने जोर से धडक रही थी। उसे एक विचित्र घबराहट होने लगी — क्या करे, कैसे उसे रोक ले। गरीबसिंह ने एक बार उसकी ओर ताका और फिर आँखें नीची कर लीं। उस दृष्टि में क्या बात थी कि गंगी के रोएँ खड़े हो गये। वह दौड़ी घर में गयी और माँ से बोली — अम्माँ, वह ठाकुर जा रहे हैं, गरीबसिंह।

माँ ने कहा — किसी काम से आये होंगे।

गंगी बाहर गयी तो ठाकुर चला गया था। वह फिर गोबर पाथने लगी, पर उपले टूट-टूट जाते थे, आप ही आप हाथ बन्द हो जाते, मगर फिर चौंककर पाथने लगती, जैसे कहीं दूर से उसके कानों में आवाज आ रही हो। वही दृष्टि आँखों के सामने थी। उसमें क्या जादू था? क्या मोहिनी थी?

उसने अपनी मूक भाषा में कुछ कहा। गंगी ने भी कुछ सुना। क्या कहा? यह वह नहीं जानती, पर वह दृष्टि उसकी आँखों में बसी हुई थी। रात को लेटी तब भी वही दृष्टि सामने थी। स्वप्न में भी वही दृष्टि दिखाई दी।

फिर कई महीने गुजर गये। एक दिन सन्ध्या समय मैकू द्वार पर बैठे सन कात रहे थे और गंगी बैलों को सानी चला रही थी कि सहसा चिल्ला उठी — दादा, दादा, ठाकुर।

मैकू ने सिर उठाया तो द्वार पर गरीबसिंह चला आ रहा था। राम-राम हुआ।

मैकू ने पूछा — कहाँ गरीबसिंह! पानी तो पीते जाव।

गरीब आकर एक माची पर बैठ गया। उसका चेहरा उतरा हुआ था। कुछ वह बीमार-सा जान पड़ता था। मैकू ने कहा — कुछ बीमार थे क्या?

गरीब — नहीं तो दादा!

मैकू — कुछ मुँह उतरा हुआ है, क्या सूद-ब्याज की चिन्ता में पड़ गये?

गरीब — तुम्हारे जीते मुझे क्या चिन्ता है दादा!

मैकू — बाकी दे दी न?

गरीब — हाँ दादा, सब बेबाक कर दिया।

मैकू ने गंगी से कहा — बेटी जा, कुछ ठाकुर को पानी पीने को ला। भैया हो तो कह देना चिलम दे जाए।

गरीब ने कहा — चिलम रहने दो दादा! मैं नहीं पीता।

मैकू — अबकी घर ही तमाकू बनी है, सवाद तो देखो। पीते तो हो?

गरीब — इतना बेअदब न बनाओ दादा। काका के सामने चिलम नहीं छुई। मैं तुमको उन्हीं की जगह देता हूँ।

यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं। मैकू का हृदय भी गद्गद हो उठा। गंगी हाथ की टोकरी लिये मूर्ति के समान खड़ी थी। उसकी सारी चेतना, सारी भावना, गरीबसिंह की बातों की ओर खिंची हुई थी! उसमें और कुछ सोचने की, और कुछ करने की शक्ति न थी। ओह! कितनी नम्रता है, कितनी सज्जनता, कितना अदब।

मैकू ने फिर कहा — सुना नहीं बेटी, जाकर कुछ पानी पीने को लाव! गंगी चौंक पड़ी। दौड़ी हुई घर में गयी। कटोरा माँजा, उसमें थोड़ी-सी राब निकाली। फिर लोटा-गिलास माँजकर शर्बत बनाया।

माँ ने पूछा — कौन आया है गंगिया?

गंगी — वह हैं ठाकुर गरीबसिंह। दूध तो नहीं है अम्माँ, रस में मिला देती?

माँ — है क्यों नहीं, हाड़ी में देख।

गंगी ने सारी मलाई उतारकर रस में मिला दी और लोटा-गिलास लिये बाहर निकली। ठाकुर ने उसकी ओर देखा। गंगी ने सिर झुका लिया! यह संकोच उसमें कहाँ से आ गया?

ठाकुर ने रस लिया और राम-राम करके चला गया।

मैकू बोला — कितना दुबला हो गया है।

गंगी — बीमार हैं क्या?

मैकू — चिन्ता है और क्या? अकेला आदमी है, इतनी बड़ी गिरस्ती; क्या करे।

गंगी को रात-भर नींद नहीं आयी। उन्हें कौन-सी चिन्ता है। दादा से कुछ कहा भी तो नहीं। क्यों इतने सकुचाते हैं। चेहरा कैसा पीला पड़ गया है।

सबेरे गंगी ने माँ से कहा — गरीबसिंह अबकी बहुत दुबले हो गये हैं अम्माँ!

माँ — अब वह बेफिक्री कहाँ है बेटी। बाप के जमाने में खाते थे और खेलते थे। अब तो गिरस्ती का जंजाल सिर पर है।

गंगी को इस जवाब से सन्तोष न हुआ। बाहर जाकर मैकू से बोली — दादा, तुमने गरीबसिंह को समझा नहीं दिया — क्यों इतनी चिन्ता करते हो?

मैकू ने आँखें फाड़कर देखा और कहा — जा, अपना काम कर।

गंगी पर मानो बज्रपात हो गया। वह कठोर उत्तर और दादा के मुँह से। हाय! दादा को भी उनका ध्यान नहीं। कोई उसका मित्र

नहीं। उन्हें कौन समझाए! अबकी वह आएँगे तो मैं खुद उन्हें समझाऊँगी।

गंगी रोज सोचती — वह आते होंगे, पर ठाकुर न आये। फिर होली आयी। फिर गाँव में फाग होने लगा। रमणियों ने फिर गुलाबी साडियाँ पहनीं। फिर रंग घोला गया। मैकू ने भंग, चरस, गाँजा मँगवाया। गंगी ने फिर मीठी और नमकीन भंग बनाई! द्वार पर टाट बिछ गया। व्यवहारी लोग आने लगे। मगर कोठार से कोई नहीं आया। शाम हो गयी। किसी का पता नहीं! गंगी बेकरार थी। कभी भीतर जाती, कभी बाहर आती। भाई से पूछती — क्या कोठार वाले नहीं आये?

भाई कहता — नहीं। दादा से पूछती — भंग तो नहीं बची, कोठार वाले आवेंगे तो क्या पीयेंगे? दादा कहते — अब क्या रात को आवेंगे, सामने तो गाँव है। आते होते तो दिखाई देते।

रात हो गयी, पर गंगी को अभी तक आशा लगी हुई थी। वह मन्दिर के ऊपर चढ़ गयी और कोठार की ओर निगाह दौड़ाई। कोई न आता था।

सहसा उसे उसी सिवाने की ओर आग दहकती हुई दिखाई दी। देखते-देखते ज्वाला प्रचण्ड हो गयी। यह क्या! वहाँ आज होली जल रही है। होली तो कल ही जल गयी। कौन जाने वहाँ

पण्डितों ने आज होली जलाने की सायत बतायी हो। तभी वे लोग आज नहीं आये। कल आएँगे।

उसने घर आकर मैकू से कहा — दादा, कोठार में तो आज होली जली है।

मैकू — दुत् पगली! होली सब जगह कल जल गयी।

गंगी — तुम मानते नहीं हो, मैं मन्दिर पर से देख आयी हूँ। होली जल रही है। न पतियाते हो तो चलो, मैं दिखा दूँ।

मैकू — अच्छा चल देखूँ।

मैकू ने गंगी के साथ मन्दिर की छत पर आकर देखा। एक मिनट तक देखते रहे। फिर बिना कुछ बोले नीचे उतर आये।

गंगी ने कहा — है होली कि नहीं, तुम न मानते थे?

मैकू — होली नहीं है पगली-चिता है। कोई मर गया है। तभी आज कोठार वाले नहीं आये।

गंगी का कलेजा धक्-से हो गया। इतने में किसी ने नीचे से पुकारा — मैकू महतो, कोठार के गरीबसिंह गुजर गये।

मैकू नीचे चले गये, पर गंगी वहीं स्तम्भित खड़ी रही। कुछ खबर न रही — मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, मालूम हुआ जैसे गरीबसिंह उस सुदूर चिता से निकलकर उसकी ओर देख रहा है — वही दृष्टि

थी, वही चेहरा, क्या उसे वह भूल सकती थी? उस दिवस से फिर कभी होली देखने नहीं गयी। होली हर साल आती थी, हर साल उसी तरह भंग बनती थी, हर साल उसी तरह फाग होता था; हर साल अबीर-गुलाल उड़ती थी, पर गंगी के लिए होली सदा के लिए चली गयी।

प्रेम-सूत्र

संसार में कुछ ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिन्हें दूसरों के मुख से अपनी स्त्री की सौंदर्य-प्रशंसा सुनकर उतना ही आनन्द होता है जितनी अपनी कीर्ति की चर्चा सुनकर। पश्चिमी सभ्यता के प्रसार के साथ ऐसे प्राणियों की संख्या बढ़ती जा रही है। पशुपतिनाथ वर्मा इन्हीं लोगों में थे। जब लोग उनकी परम सुन्दरी स्त्री की तारीफ करते हुए कहते — ओहो! कितनी अनुपम रूप-राशि है, कितनी अलौकिक सौन्दर्य है, तब वर्माजी मारे खुशी और गर्व के फूल उठते थे।

संध्या का समय था। मोटर तैयार खड़ी थी। वर्माजी सैर करने जा रहे थे, किन्तु प्रभा जाने को उत्सुक नहीं मालूम होती थी। वह एक कुर्सी पर बैठी हुई कोई उपन्यास पढ़ रही थी।

वर्मा जी ने कहा — तुम तो अभी तक बैठी पढ़ रही हो।

'मेरा तो इस समय जाने को जी नहीं चाहता।'

‘नहीं प्रिये, इस समय तुम्हारा न चलना सितम हो जाएगा। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी इस मधुर छवि को घर से बाहर भी तो लोग देखें।’

‘जी नहीं, मुझे यह लालसा नहीं है। मेरे रूप की शोभा केवल तुम्हारे लिए है और तुम्हीं को दिखाना चाहती हूँ।’

‘नहीं, मैं इतना स्वार्थान्ध नहीं हूँ। जब तुम सैर करने निकलो, मैं लोगों से यह सुनना चाहता हूँ कि कितनी मनोहर छवि है! पशुपति कितना भाग्यशाली पुरुष है!’

‘तुम चाहो, मैं नहीं चाहती। तो इसी बात पर आज मैं कहीं नहीं जाऊँगी। तुम भी मत जाओ, हम दोनों अपने ही बाग में टहलेंगे। तुम हौज के किनारे हरी घास पर लेट जाना, मैं तुम्हें वीणा बजाकर सुनाऊँगी। तुम्हारे लिए फूलों का हार बनाऊँगी, चांदनी में तुम्हारे साथ आँख-मिचौनी खेलूँगी।’

‘नहीं-नहीं, प्रभा, आज हमें अवश्य चलना पड़ेगा। तुम कृष्णा से आज मिलने का वादा कर आई हो। वह बैठी हमारा रास्ता देख रही होगी। हमारे न जाने से उसे कितना दुःख होगा!’

हाय! वही कृष्णा! बार-बार वही कृष्णा! पति के मुख से नित्य यह नाम चिनगारी की भांति उड़कर प्रभा को जलाकर भस्म् कर देता था।

प्रभा को अब मालूम हुआ कि आज ये बाहर जाने के लिए क्यों इतने उत्सुक हैं! इसीलिए आज इन्होंने मुझसे केशों को संवारने के लिए इतना आग्रह किया था। वह सारी तैयारी उसी कुलटा कृष्णा से मिलने के लिए थी!

उसने दृढ़ स्वर में कहा — तुम्हें जाना हो जाओ, मैं न जाऊँगी।

वर्माजी ने कहा — अच्छी बात है, मैं ही चला जाऊँगा।

2

पशुपति के जाने के बाद प्रभा को ऐसा जान पड़ा कि वह वाटिका उसे काटने दौड़ रही है। ईर्ष्या की ज्वाला से उसका कोमल शरीर-हृदय भस्म होने लगा। वे वहाँ कृष्णा के साथ बैठे विहार कर रहे होंगे — उसी नागिन के-से केशवाली कृष्णा के साथ, जिसकी आँखों में घातक विष भरा हुआ है! मर्दों की बुद्धि क्यों इतनी स्थूल होती है? इन्हें कृष्णा की चटक-मटक ने क्यों इतना मोहित कर लिया है? उसके मुख से मेरे पैर का तलवा कहीं सुन्दर है। हाँ, मैं एक बच्चे की माँ हूँ और वह नव यौवना है! जरा देखना चाहिए, उनमें क्या बातें हो रही हैं।

यह सोचकर वह अपनी सास के पास आकर बोली — अम्मा, इस समय अकेले जी घबराता है, चलिए कहीं घूम आवें।

सास बहू पर प्राण देती थी। चलने पर राजी हो गई। गाड़ी तैयार करा के दोनों घूमने चलीं। प्रभा का श्रृंगार देखकर भ्रम हो सकता था कि वह बहुत प्रसन्न है, किन्तु उसके अन्तस्तल में एक भीषण ज्वाला दहक रही थी, उसे छिपाने के लिए वह मीठे स्वर में एक गीत गाती जा रही थी।

गाड़ी एक सुरम्य उपवन में उड़ी जा रही थी। सड़क के दोनों ओर विशाल वृक्षों की सुखद छाया पड़ रही थी। गाड़ी के कीमती घोड़े गर्व से पूँछ और सिर उठाय टप-टप करते जा रहे थे। अहा! वह सामने कृष्णा का बंगला आ गया, जिसके चारों ओर गुलाब की बेल लगी हुई थी। उसके फूल उस समय निर्दय कांटों की भांति प्रभा के हृदय में चुभने लगे। उसने उड़ती हुई निगाह से बंगले की ओर ताका। पशुपति का पता न था, हाँ कृष्णा और उसकी बहन माया बगीचे में विचर रही थीं। गाड़ी बंगले के सामने से निकल ही चुकी थी कि दोनों बहनों ने प्रभा को पुकारा और एक क्षण में दोनों बालिकाएँ हिरनियों की भांति उछलती-कूदती फाटक की ओर दौड़ीं। गाड़ी रुक गई।

कृष्णा ने हँसकर सास से कहा — अम्मा जी, आज आप प्रभा को एकाध घण्टे के लिए हमारे पास छोड़ जाइए। आप इधर से लौटें तब इन्हें लेती जाइएगा, यह कहकर दोनों ने प्रभा को गाड़ी से बाहर खींच लिया। सास कैसे इन्कार करती। जब गाड़ी चली गई तब दोनों बहनों ने प्रभा को बगीचे में एक बेंच पर जा बिठाया। प्रभा को इन दोनों के साथ बातें करते हुए बड़ी झिझक हो रही थी। वह उनसे हँसकर बोलना चाहती थी, अपने किसी बात से मन का भाव प्रकट नहीं करना चाहती थी, किन्तु हृदय उनसे खिंचा ही रहा।

कृष्णा ने प्रभा की साड़ी पर एक तीव्र दृष्टि डालकर कहा — बहन, क्या यह साड़ी अभी ली है? इसका गुलाबी रंग तो तुम पर नहीं खिलता। कोई और रंग क्यों नहीं लिया?

प्रभा — उनकी पसन्द है, मैं क्या करती।

दोनों बहनें ठट्ठा मारकर हंस पड़ीं। फिर माया ने कहा — उन महाशय की रुचि का क्या कहना, सारी दुनिया से निराली है। अभी इधर से गये हैं। सिर पर इससे भी अधिक लाल पगड़ी थी।

सहसा पशुपति भी सैर से निकलता हुआ सामने से निकला। प्रभा को दोनों बहनों के साथ देखकर उसके जी में आया कि मोटर

रोक ले। वह अकेले इन दोनों से मिलना शिष्टाचार के विरूद्ध समझता था। इसीलिए वह प्रभा को अपने साथ लाना चाहता था। जाते समय वह बहुत साहस करने पर भी मोटर से न उतर सका। प्रभा को वहाँ देखकर इस सुअवसर से लाभ उठाने की उसकी बड़ी इच्छा हुई। लेकिन दोनों बहनों की हास्य ध्वनि सुनकर वह संकोचवश न उतरा।

थोड़ी देर तक तीनों रमणियाँ चुपचाप बैठी रहीं। तब कृष्णा बोली — पशुपति बाबू यहाँ आना चाहते हैं पर शर्म के मारे नहीं आये। मेरा विचार है कि संबंधियों को आपस में इतना संकोच न करना चाहिए। समाज का यह नियम कम से कम मुझे तो बुरा मालूम होता है। तुम्हारा क्या विचार है, प्रभा?

प्रभा ने व्यंग्य भाव से कहा — यह समाज का अन्याय है?

प्रभा इस समय भूमि की ओर ताक रही थी। पर उसकी आँखों से ऐसा तिरस्कार निकल रहा था जिसने दोनों बहनों के प्रहास को लज्जा-सूचक मौन में परिणत कर दिया। उसकी आँखों से एक चिनगारी-सी निकली, जिसने दोनों युवतियों के आमोद-प्रमोद और उस कुवृत्ति को जला डाला जो प्रभा के पति-परायण हृदय को बाणों से वेध रही थी, उस हृदय को जिसमें अपने पति के सिवा और किसी को जगह न थी।

माया ने जब देखा कि प्रभा इस वक्त क्रोध से भरी बैठी है, तब बेंच से उठ खड़ी हुई और बोली — आओ बहन, जरा टहलें, यहाँ बैठे रहने से तो टहलना ही अच्छा है।

प्रभा ज्यों की त्यों बैठी रही। पर वे दोनों बहने बाग मे टहलने लगीं। उस वक्त प्रभा का ध्यान उन दोनों के वस्त्राभूषण की ओर गया। माया बंगाल की गुलाबी रेशमी की एक महीन साड़ी पहने हुए थी जिसमें न जाने कितने चुन्नटें पड़ी हुई थीं। उसके हाथ में एक रेशमी छतरी थी जिसे उसने सूर्य की अमित किरणों से बचने के लिए खोल लिया था। कृष्णा के वस्त्र भी वैसे ही थे। हाँ, उसकी साड़ी पीले रंग की थी और उसके घूंघर वाले बाल साड़ी के नीचे से निकल कर माथे और गालों पर लहरा रहे थे।

प्रभा ने एक ही निगाह से ताड़ लिया कि इन दोनों युवतियों में किसी को उसके पति से प्रेम नहीं है। केवल आमोद लिप्सा के वशीभूत होकर यह स्वयं बदनाम होंगी और उसके सरल हृदय पति को भी बदनाम कर देंगी। उसने ठान लिया कि मैं अपने भ्रमर को इन विषाक्त पुष्पों से बचाऊँगी और चाहे जो कुछ हो उसे इनके ऊपर मंडराने न दूँगी, क्योंकि यहाँ केवल रूप और बास है, रस का नाम नहीं।

प्रभा अपने घर लौटते ही उस कमरे में गई, उसकी लड़की शान्ति अपनी दाई की गोद में खेल रही थी। अपनी नन्हीं जीती-जागती गुड़िया की सूरत देखते ही प्रभा की आँखें सजल हो गई। उसने मातृस्नेह से विभोर होकर बालिका को गोद में उठा लिया, मानो किसी भयंकर पशु से उसकी रक्षा कर रही है। उस दुस्सह वेदना की दशा में उसके मुँह से यह शब्द निकला गए — बच्ची, तेरे बाप को लोग तुझसे छीनना चाहते हैं! हाय, तू क्या अनाथ हो जाएगी? नहीं-नहीं, अगर मेरा, बस चलेगा तो मैं इन निर्बल हाथों से उन्हें बचाऊँगी।

आज से प्रभा विषादमय भावनाओं में मग्न रहने लगी। आने वाली विपत्ति की कल्पना करके कभी-कभी भयातुर होकर चिल्ला पड़ती, उसकी आँखों में उस विपत्ति की तस्वीर खींच जाती जो उसकी ओर कदम बढ़ाये चली आती थी, पर उस बालिका की तोतली बातें और उसकी आँखों की निःशंक ज्योति प्रभा के विकल हृदय को शान्त कर देती। वह लड़की को गोद में उठा लेती और वह मधुर हास्य-छवि जो बालिका के पतले-पतले गुलाबी ओठों पर खेलती होती, प्रभा की सारी शंकाओं और बाधाओं को छिन्न-भिन्न कर देती। उन विश्वासमय नेत्रों में आशा का प्रकाश उसे आश्वस्त कर देता।

हाँ! अभागिनी प्रभा, तू क्या जानती है क्या होनेवाला है?

3

ग्रीष्मकाल की चांदनी रात थी। सप्तमी का चांद प्रकृति पर अपना मन्द शीतल प्रकाश डाल रहा था। पशुपति मौलसिरी की एक डाली हाथ से पकड़े और तने से चिपटा हुआ माया के कमरे की ओर टकटकी लगाये ताक रहा था कमरे का द्वार खुला हुआ था और शान्त निशा में रेशमी साड़ियों की सरसराहट के साथ दो रमणियों की मधुर हास्य-ध्वनि मिलकर पशुपति के कानों तक पहुँचते-पहुँचते आकाश में विलीन हो जाती थी। एकाएक दोनों बहनें कमरे से निकलीं और उसी ओर चलीं जहां पशुपति खड़ा था। जब दोनों उस वृक्ष के पास पहुंची तब पशुपति की परछाईं देखकर कृष्णा चौंक पड़ी और बोली — है बहन! यह क्या है?

पशुपति वृक्ष के नीचे से आकर सामने खड़ा हो गया। कृष्णा उन्हें पहचान गई और कठोर स्वर में बोली — आप यहाँ क्या करते हैं? बतलाइए, यहाँ आपका क्या काम है? बोलिए, जल्दी।

पशुपति की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। इस अवसर के लिए उसने जो प्रेम-वाक्य रटे थे वे सब विस्मृत हो गये। सशंक होकर बोला — कुछ नहीं प्रिय, आज सन्ध्या समय जब मैं आपके मकान के

सामने से आ रहा था तब मैंने आपको अपनी बहन से कहते सुना कि आज रात को आप इस वृक्ष के नीचे बैठकर चांदनी का आनन्द उठाएँगी। मैं भी आपसे कुछ कहने के लिए....आपके चरणों पर अपना.समर्पित करने के लिए...

यह सुनते ही कृष्णा की आँखों से चंचल ज्वाला-सी निकली और उसके ओठों पर व्यंग्यपूर्ण हास्य की झलक दिखाई दी। बोली — महाशय, आप तो आज एक विचित्र अभिनय करने लगे, कृपा करके पैरों पर से उठिए और जो कुछ कहना चाहते हों, जल्द कह डालिए और जितने आँसू गिराने हों एक सेकेण्ड में गिरा दीजिए, मैं रुक-रुककर और घिघिया-घिघियाकर बातें करनेवालों को पसन्द नहीं करती। हाँ, और जरा बातें और रोना साथ-साथ न हों। कहिए क्या कहना चाहते हैं....आप न कहेंगे? लीजिए समय बीत गया, मैं जाती हूँ।

कृष्णा वहाँ से चल दी। माया भी उसके साथ ही चली गई। पशुपति एक क्षण तक वहाँ खड़ा रहा फिर वह भी उनके पीछे-पीछे चला। मानो वह सुई है जो चुम्बक के आकर्षण से आप ही आप खिंचा चला जाता है।

सहसा कृष्णा रुक गई और बोली — सुनिए पशुपति बाबू, आज संध्या समय प्रभा की बातों से मालूम हो गया कि उन्हें आपका और मेरा मिलना-जुलना बिल्कुल नहीं भाता...

पशुपति — प्रभा की तो आप चर्चा ही छोड़ दीजिए।

कृष्णा — क्यों छोड़ दूँ? क्या वह आपकी स्त्री नहीं है? आप इस समय उसे घर में अकेली छोड़कर मुझसे क्या कहने के लिए आये हैं? यही कि उसकी चर्चा न करूँ?

पशुपति — जी नहीं, यह कहने के लिए कि अब वह विरहाग्नि नहीं सही जाती।

कृष्णा ने ठठ्टा मारकर कहा — आप तो इस कला में बहुत निपुण जान पड़ते हैं। प्रेम! समर्पण! विरहाग्नि! यह शब्द आपने कहाँ सीखे!

पशुपति — कृष्णा, मुझे तुमसे इतना प्रेम है कि मैं पागल हो गया हूँ।

कृष्णा — तुम्हें प्रभा से क्यों प्रेम नहीं है?

पशुपति — मैं तो तुम्हारा उपासक हूँ।

कृष्णा — लेकिन यह क्यों भूल जाते हो कि तुम प्रभा के स्वामी हो?

पशुपति — तुम्हारा तो दास हूँ।

कृष्णा — मैं ऐसी बातें नहीं सुनना चाहती।

पशुपति — तुम्हें मेरी एक-एक बात सुननी पड़ेगी। तुम जो चाहो वह करने को मैं तैयार हूँ।

कृष्णा — अगर यह बातें कहीं वह सुन लें तो?

पशुपति — सुन ले तो सुन ले। मैं हर बात के लिए तैयार हूँ। मैं फिर कहता हूँ, कि अगर तुम्हारी मुझ पर कृपादृष्टि न हुई तो मैं मर जाऊँगा।

कृष्णा — तुम्हें यह बात करते समय अपनी पत्नी का ध्यान नहीं आता?

पशुपति — मैं उसका पति नहीं होना चाहता। मैं तो तुम्हारा दास होने के लिए बनाया गया हूँ। वह सुगन्ध जो इस समय तुम्हारी गुलाबी साड़ी से निकल रही है, मेरी जान है। तुम्हारे ये छोटे-छोटे पाँव मेरे प्राण हैं। तुम्हारी हंसी, तुम्हारी छवि, तुम्हारा एक-एक अंग मेरे प्राण हैं। मैं केवल तुम्हारे लिए पैदा हुआ हूँ।

कृष्णा — भई, अब तो सुनते-सुनते कान भर गए। यह व्याख्यान और यह गद्य-काव्य सुनने के लिए मेरे पास समय नहीं है। आओ माया, मुझे तो सर्दी लग रही है। चलकर अन्दर बैठें।

यह निष्ठुर शब्द सुनकर पशुपति की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। मगर अब भी उसका मन यही चाहता था कि कृष्णा के पैरों पर गिर पड़े और इससे भी करुण शब्दों में अपने प्रेम-कथा सुनाए। किन्तु दोनों बहनें इतनी देर में अपने कमरे में पहुँच चुकी थीं और द्वार बन्द कर लिया था। पशुपति के लिए निराश घर लौट आने के सिवा कोई चारा न रह गया।

कृष्णा अपने कमरे में जाकर थकी हुई-सी एक कुर्सी पर बैठ गई और सोचने लगी — कहीं प्रभा सुन ले तो बात का बतंगड़ हो जाय, सारे शहर में इसकी चर्चा होने लगे और हमें कहीं मुँह दिखाने को जगह न रहे। और यह सब एक जरा-सी दिल्लगी के कारण पर पशुपति का प्रम सच्चा हें, इसमें सन्देह नहीं। वह जो कुछ कहता है, अन्तःकरण से कहता है। अगर में इस वक्त जरा-सा संकेत कर दूँ तो वह प्रभा को भी छोड़ देगा। अपने आपे में नहीं है। जो कुछ कहूँ वह करने को तैयार है। लेकिन नहीं, प्रभा डरो मत, मै। तुम्हारा सर्वनाश न करूँगी। तुम मुझसे बहुत नीचे हों यह मेरे अनुपम सौन्दर्य के लिए गौरव की बात नहीं कि तुम जैसी रूप-विहीना से बाजी मार ले जाऊँ। अभागे पशुपति, तुम्हारे भाग्य में जो कुछ लिखा था वह हो चुका। तुम्हारे ऊपर मुझे दया आती है, पर क्या किया जाय।

4

एक खत पहले हाथ पड़ चुका था। यह दूसरा पत्र था, जो प्रभा को पतिदेव के कोट की जेब में मिला। कैसा पत्र था आह इसे पढ़ते ही प्रभा की देह में एक ज्वाला-सी उठने लगी। तो यों कहिए कि ये अब कृष्णा के दो चुके अब इसमें कोई सन्देह नहीं रहा। अब मेरे जीने को धिक्कार है जब जीवन में कोई सुख ही नहीं रहा, तो क्यों न इस बोझ को उतार कर फेंक दूँ। वही पशुपति, जिसे कविता से लेशमात्र भी रुचि न थी, अब कवि हो गया था और कृष्णा को छन्दों में पत्र लिखता था। प्रभा ने अपने स्वामी को उधर से हटाने के लिए वह सब कुछ किया जो उससे हो सकता था, पर प्रेम का प्रवाह उसके रोके न रुका और आज उस प्रवाह तके उसके जीवन की नौका निराधार वही चली जा रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रभा को अपने पति से सच्चा प्रेम था, लेकिन आत्मसमर्पण की तुष्टि आत्मसमर्पण से ही होती है। वह उपेक्षा और निष्ठुरता को सहन नही कर सकता। प्रभा के मन के विद्रोह का भाव जाग्रत होने लगा। उसके आत्माभिमान जाता रहा। उसके मन मे न जाने कितने भीषण संकल्प होते, किन्तु

अपनी असमर्थता और दीनता पर आप ही आप रोने लगती। आह! उसका सर्वस्व उससे छीन लिया गया और अब संसार मे उसका कोई मित्र नहीं, कोई साथी नही!

पशुपति आजकल नित्य बनाव-सवार मे मग्न रहता, नित्य नये-नये सूट बदलता। उसे आइने के सामने अपने बालों को सँवारते देखकर प्रभा की आँखों से आँसू बहने लगते। सह सारी तैयारी उसी दुष्ट के लिए हो रही है। यह चिन्ता जहरीले साँप की भांति उसे डस लेती थी; वह अब अपने पति को प्रत्येक बात प्रत्येक गति को सूक्ष्म दृष्टि से देखती। कितनी ही बातें जिन पर वह पहले ध्यान भी न देती थी, अब रहस्य से भरी हुई जान पड़ती। वह रात का न सोती, कभी पशुपति की जेब टटोलती, कभी उसकी मेज पर रक्खें हुए पत्रों को पढ़ती! इसी टोह मे वह रात-दिन पड़ी रहती।

वह सोचने लगी — मै क्या प्रेम-वंचिता बनी बैठी रहूँ? क्या मै प्राणेश्वरी नही बन सकती? क्या इसे परित्यक्ता बनकर ही काटना होगा! आह निर्दयी तूने मुझे धोखा दिया। मुझसे आँखें फेर ली। पर सबसे बड़ा अनर्थ यह किया कि मुझे जीवन का कलुषित मार्ग दिखा दिया। मै भी विश्वासघात करके तुझे धोखा देकर क्या कलुषित प्रेम का आन्नद नही उठा सकती? अश्रुधारा से सींचकर ही सही, पर क्या अपने लिए कोई वाटिका नही लगा सकती? वह

सामने के मकान मे घुँघराले बालोंवाला युवक रहता है और जब मौका पाता है, मेरी ओर सचेष्ट नेत्रों से देखता। क्या केवल एक प्रेम-कटाक्ष से मै उसके हृदय पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकती? अगर मै इस भांति निष्ठुरता का बदला लूँ तो क्या अनुचित होगा? आखिर मैंने अपना जीवन अपने पति को किस लिए सौंपा था? इसीलिए तो कि सुख से जीवन व्यतीत करूँ। चाहूँ और चाही जाऊँ और इस प्रेम-साम्राज्य की अधीश्वर बनी रहूँ। मगह आह! वे सारी अभिलाषाएँ धूल मे मिल गई। अब मेरे लिए क्या रह गया है? आज यदि मै मर जाऊँ तो कौन रोयेगा? नहीं, घी के चिराग जलाए जाएँगें। कृष्णा हँसकर कहेगी — अब बस हम है और तुम। हमारे बीच मे कोई बाधा, कोई कंटक नहीं है।

आखिर प्रभा इन कलुषित भावनाओं के प्रवाह मे बह चली। उसके हृदय में रातों को, निद्रा और आशाविहीन रातों को बड़े प्रबल वेग से यह तूफान उठने लगा। प्रेम तो अब किसी अन्य पुरुष के साथ कर सकती थी, यह व्यापार तो जीवन में केवल एक ही बार होता है। लेकिन वह प्राणेश्वरी अवश्य बन सकती थी और उसके लिए एक मधुर मुस्कान, एक बाँकी निगाह काफी थी। और जब वह किसी की प्रेमिका हो जायेगी तो यह विचार कि मैंने पति से उसकी बेवफाई का बदला ले लिया कितना

आनन्दप्रद होगा! तब वह उसके मुख की ओर कितने गर्व, कितने संतोष, कितने उल्लास से देखेगी।

सन्ध्या का समय था। पशुपति सैर करने गया था। प्रभा कोठे पर चढ गई और सामने वाले मकान की ओर देखा। घुंघराले बालों वाला युवक उसके कोठे की ओर ताक रहा था। प्रभा ने आज पहली बार उस युवक की ओर मुस्करा कर देखा। युवक भी मुस्कराया और अपनी गर्दन झुकाकर मानों यह संकेत किया कि आपकी प्रेम दृष्टि का भिखारी हूँ। प्रभा ने गर्व से भरी हुई दृष्टि इधर-उधर दौड़ाई, मानों वह पशुपति से कहना चाहती थी — तुम उस कुलटा के पैरो पड़ते हो और समझते हो कि मेरे हृदय को चोट नही लगती। लो तुम भी देखो और अपने हृदय पर चोट न लगने दो, तुम उसे प्यार करो, मै भी इससे हँसू-बोलू। क्यों? यह अच्छा नही लगता? इस दृश्य को शान्त चित से नही देख सकते? क्यों रक्त खौलने लगता है? मै वही तो कह रही हूँ जो तुम कर रहे हो!

आह! यदि पशुपति को ज्ञात हो जाता कि मेरी निष्ठुरता ने इस सती के हृदय की कितनी कायापलट कर दी है तो क्या उसे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप न होता, क्या वह अपने किये पर लज्जित न होता!

प्रभा ने उस युवक से इशारे मे कहा — आज हम और तुम पूर्व वाले मैदान में मिलेंगे और कोठे के नीचे उतर आई।

प्रभा के हृदय मे इस समय एक वही उत्सुकता थी जिसमें प्रतिकार का आनन्द मिश्रित था। वह अपने कमरे मे जाकर अपने चुने हुए आभूषण पहनने लगी। एक क्षण मे वह एक फालसई रंग की रेशमी साड़ी पहने कमरे से निकली और बाहर जाना ही चाहती थी कि शान्ता ने पुकारा — अम्मा जी, आप कहाँ जा रहा है, मै भी आपके साथ चलूँगी।

प्रभा ने झट बालिका को गोद मे उठा लिया और उसे छाती से लगाते ही उसके विचारों ने पलटा खाया। उन बाल नेत्रों मे उसके प्रति कितना असीम विश्वास, कितना सरल स्नेह, कितना पवित्र प्रेम झलक रहा था। उसे उस समय माता का कर्त्तव्य याद आया। क्या उसकी प्रेमाकांक्षा उसके वात्सल्य भाव को कुचल देगी? क्या वह प्रतिकार की प्रबल इच्छा पर अपने मातृ-कर्त्तव्य को बलिदान कर देगी? क्या वह अपने क्षणिक सुख के लिए उस बालिका का भविष्य, उसका जीवन धूल में मिला देगी? प्रभा की आँखों से आँसू की दो बूँदें गिर पड़ी। उसने कहा — नही, कदापि नहीं, मै अपनी प्यारी बच्ची के लिए सब कुछ सह सकती हूँ।

5

एक महीना गुजर गया। प्रभा अपनी चिन्ताओं को भूल जाने की चेष्टा करती रहती थी, पर पशुपति नित्य किसी न किसी बहने से कृष्णा की चर्चा किया करता। कभी-कभी हँसकर कहता — प्रभा, अगर तुम्हारी अनुमति हो तो मै कृष्णा से विवाह कर लूँ। प्रभा इसके जवाब मे रोने के सिवा और क्या कर सकती थी?

आखिर एक दिन पशुपति ने उसे विनयपूर्ण शब्दों में कहा — कहा कहूँ प्रभा, उस रमणी की छवि मेरी आँखों से नही उतरती। उसने मुझे कहीं का नही रक्खा। यह कहकर उसने कई बार अपना माथा ठोका। प्रभा का हृदय करूणा से द्रवित हो गया। उसकी दशा उस रोगी की-सी थी जो यह जानता हो कि मौत उसके सिर पर खेल रही हैं, फिर भी उसकी जीवन-लालसा दिन-दिन बढती जाती हो। प्रभा इन सारी बातों पर भी अपने पति से प्रेम करती थी और स्त्री-सुलभ स्वभाव के अनुसार कोई बहाना खोजती थी कि उसके अपराधों को भूल जाय और उसे क्षमाकर दे।

एक दिन पशुपति बड़ी रात गये घर आया और रात-भर नींद मे ’कृष्णा! कृष्णा!’ कहकर बर्राता रहा। प्रभा ने अपने प्रियतम का यह आर्तनाद सुना और सारी रात चुपके-चुपके रोया की–बस रोया की!

प्रातः काल वह पशुपति के लिए दूध का प्याला लिये खड़ी थी कि वह उसके पैरा पर गिर पड़ा और बोला — प्रभा, मेरी तुमसे एक विनय है, तुम्हीं मेरी रक्षा कर सकती हो, नहीं मै मर जाऊँगा। मै जनता हूँ कि यह सुनकर तुम्हें बहुत कष्ट होगा, लेकिन मुझ पर दया करों। मै तुम्हारी इस कृपा को कभी न भूलूँगा। मुझ पर दया करो।

प्रभा काँपने लगी। पशुपति क्या कहना चाहता है, यह उसका दिल साफ बता रहा था। फिर भी वह भयभीत होकर पीछे हट गई और दूध का प्याला मेज पर रखकर अपने पीले मुख को काँपते हुए हाथों से छिपा लिया। पशुपति ने फिर भी सब कुछ ही कह डाला। लालसाग्नि अब अन्दर न रूह सकती थी, उसकी ज्वाला बाहर निकल ही पड़ी। तात्पर्य यह था कि पशुपति ने कृष्णा के साथ विवाह करना निश्चय कर लिया था। वह से दूसरे घर मे रक्खेगा और प्रभा के यहाँ दो रात और एक रात उसके यहाँ रहेगा।

ये बातें सुनकर प्रभा रोई नहीं, वरन स्तम्भित होकर खड़ी रूह गई। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके गले मे कोई चीज अटकी हुई है और वह सांस नही ले सकती।

पशुपति ने फिर कहा — प्रभा, तुम नही जानती कि जितना प्रेम तुमसे मुझे आज है उतना पहले कभी नही था। मै तुमसे अलग नही हो सकता। मै जीवन-पर्यन्त तुम्हें इसी भांति प्यार करता रहूँगा। पर कृष्णा मुझे मार डालेगी। केवल तुम्हीं मेरी रक्षा कर सकती हो। मुझे उसके हाथ मत छोड़ों, प्रिये!

अभागिनी प्रभा! तुझसे पूछ-पूछ कर तेरी गर्दन पर छुरी चलाई जा रही है! तू गर्दन झुका देगी या आत्मगौरव से सिर उठाकर कहेगी — मै यह नीच प्रस्ताव नही सुन सकती।

प्रभा ने इन बातों मे एक भी न की। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी। जब होश आया, कहने लगी — बहुत अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा! लेकिन मुझे छोड़ दो, मै अपनी माँ के घर जाऊँगी, मेरी शान्ता मुझे दे दों।

यह कहकर वह रोती हुई वहाँ से शांता को लेने चली गई और उसे गोद में लेकर कमरे से बाहर निकली। पशुपति लज्जा और ग्लानि से सिर झुकायें उसके पीछे-पीछे आता रहा और कहता रहा — जैसी तुम्हारी इच्छा हो प्रभा, वह करो, और मै क्या कहूँ,

किंतु मेरी प्यारी प्रभा, वादा करों कि तुम मुझे क्षमा कर दोगी।
किन्तु प्रभा ने उसको कुछ जवाब न दिया और बराबर द्वार की ओर चलती रही। तब पशुपति ने आगे बढ़कर उसे पकड लिया और उसके मुरझाये हुए पर अश्रु-सिंचित कपोलों को चूम-चूमकर कहने लगा — प्रिये, मुझे भूल न जाना, तुम्हारी याद मेरे हृदय मे सदैव बनी रहेगी। अपनी अंगूठी मुझे देती जाओ, मै उसे तुम्हारी निशानी समझ कर रक्खूँगा और उसे हृदय से लगाकर इस दाह को शीतल करूँगा। ईश्वर के लिए प्रभा, मुझे छोड़ना मत, मुझसे नाराज न होना–एक सप्ताह के लिए अपनी माता के पास जाकर रहो। फिर मै तुम्हें जाकर लाऊँगा।

प्रभा ने पशुपति के कर-पाश से अपने को छुड़ा लिया और अपनी लड़की का हाथ पकड़े हुए गाड़ी की ओर चली। उसने पशुपति को न कोई उत्तर दिया और न यह सुना कि वह क्या कर रहा है।

6

अम्माँ, आप क्यों हँस रही है?

‘कुछ तो नहीं बेटी।’

‘वह पीले-पीले पुराने कागज तुम्हारे हाथ में क्या हैं?’

‘ये उस ऋण के पुर्जे हैं जो वापस नही मिला।’

‘ये तो पुराने खत मालूम होते है?’

‘नही बेटी।’

बात यह थी कि प्रभा अपनी चौदह वर्ष की युवती पुत्री के सामने सत्य का पर्दा नही खोलना चाहती थी। हाँ, वे कागज वास्तव मे एक ऐसे कर्ज के पुर्जे थे जो वापस नही मिला। ये वही पुराने पत्र थे जो आज एक किताब मे रक्खें हुए मिले थे और ऐसे फूल की पंखड़ियों की भांति दिखाई देते थे जिनका रंग और गंध किताब मे रक्खें-रक्खें उड़ गई हो, तथापि वे सुख के दिनों को याद दिला रहे थे और इस कारण प्रभा की दृष्टि मे वे बहुमूल्य थे।

शांता समझ गई कि अम्मा कोई ऐसा काम कर रही है जिसकी खबर मुझे नही करना चाहती और इस बात से प्रसन्न होकर कि मेरी दुखी माता आज अपना शोक भूल गई है और जितनी देर तक वह इस आनन्द मे मग्न रहे उतना ही अच्छा है, एक बहाने से बाहर चली गई। प्रभा जब कमरे मे अकेली रूह गई तब उसने पत्रों का फिर पढ़ना शुरू किया।

आह! इन चौदह वर्षो मे क्या कुछ नही हो गया! इस समय उस विरहणी के हृदय मे कितनी ही पूर्व स्मृतियाँ जाग्रत हो गई, जिन्होंने हर्ष और शोक के स्रोत एक साथ ही खोल दिए।

प्रभा के चले जाने के बाद पशुपति ने बहुत चाहा कि कृष्णा से उसका विवाह हो जाय पर वह राजी न हुई। इसी नैराश्य और क्रोध की दशा मे पशुपति एक कम्पनी का एजेन्ट होकर योरोप चला गया। तब फिर उसे प्रभा की याद आई। कुछ दिनों तक उसके पास से क्षमाप्रार्थना-पूर्ण पत्र आते रहे, जिनमें वह बहुत जल्द घर आकर प्रभासे मिलने के वादे करता रहा औ प्रेम के इस नये प्रवाह में पुरानी कटुताओ कों जलमग्न कर देने के आशामय स्वप्न देखता रहा। पति-परायणा प्रभा के संतप्त हृदय मे फिर आशा की हरियाली लहराने लगी, मुरझाई हुई आशा-लताएँ फिर पल्लवित होने लगी! किन्तु यह भी भाग्य की एक क्रीड़ा ही थी। थोड़े ही दिनों मे रसिक पशुपति एक नये प्रेम-जाल मे फंस गया और तब से उसके पत्र आने बन्द हो गये। इस वक्त प्रभा के हाथ मे वही पत्र थे जो उसके पति ने योरोप से उस समय भेजे थे जब नैराश्य का घाव हरा था। कितनी चिकनी-चुपडी बातें थी। कैसे-कैसे दिल खुश करने वाले वादे थे! इसके बाद ही मालूम हुआ कि पशुपति ने एक अंग्रेज लड़की से विवाह कर लिया है। प्रभा पर वज्र-सा गिर पड़ा — उसके हृदय के टुकड़े हो

गये — सारी आशाओं पर पानी फिर गय। उसका निर्बल शरीर इस आघात का सहन न कर सका। उसे ज्वर आने लगा। और किसी को उसके जीवन की आशा न रही। वह स्वयं मृत्यु की अभिलाषिणी थी और मालूम भी होता था कि मौत किसी सरूप की भांति उसकी देह से लिपट गई है। लेकिन बुलाने से मौत भी नही आती। ज्वर शान्त हो गया और प्रभा फिर वही आशाविहीन जीवन व्यतीत करने लगी।

7

एक दिन प्रभा ने सुना कि पशुपति योरोप से लौट आया है और वह योरोपीय स्त्री उसके साथ नही है। बल्कि उसके लौटने क कारण वही स्त्री हुई है। वह औरत बारह साल तक उसकी सहयोगिनी रही पर एक दिन एक अंग्रेज युवक के साथ भाग गई। इस भीषण और अत्यन्त कठोर आघात ने पशुपति की कमर तोड़ दी। वह नौकरी छोड़कर घर चला आया। अब उसकी सूरत इतनी बदल गई थी उसके मित्र लोग उससे बाजार मे मिलते तो उसे पहचान न सकते थे — मालूम होता था, कोई

बूढ़ा कमर झुकाये चला जाता है। उसके बाल तक सफेद हो गये।

घर आकर पशुपति ने एक दिन शान्ता को बुला भेजा। इस तरह शांता उसके घर आने-जाने लगी। वह अपने पिता की दशा देखकर मन ही मन कुढ़ती थी।

इसी बीच मे शान्ता के विवाह के सन्देश आने लगे, लेकिन प्रभा को अपने वैवाहिक जीवन मे जो अनुभव हुआ था वह उसे इन सन्देशों को लौटने पर मजबूर करता था। वह सोचती, कहीं इस लड़की की भी वही गति न हो जो मेरी हुई हैं। उसे ऐसा मालूम होता था कि यदि शान्त का विवाह हो गया तो इस अन्तिम अवस्था मे भी मुझे चैन न मिलेगा और मरने के बाद भी मै पुत्री का शोक लेकर जाऊँगी। लेकिन अन्त मे एक ऐसे अच्छे घराने से सन्देश आया कि प्रभा उसे ना ही न कर सकी। घर बहुत ही सम्पन्न था, वर भी बहुत ही सुयोग्य। प्रभा को स्वीकार ही करना पड़ेगा। लेकिन पिता की अनुमति भी आवश्यक थी। प्रभा ने इस विषय में पशुपति को एक पत्र लिखा और शान्ता के ही हाथ भेज दिया। जब शान्ता पत्र लेकर चली गई तब प्रभा भोजन बनाने चली गई। भाति-भांति की अमंगल कल्पनाएँ उसके मन मे आने लगी और चूल्हे से निकलते धुएँ मे उसे एक चित्र-सा दिखाई दिया कि शान्ता के पतले-पतले होंठ सूखे हुए है और वह काँप

रही है और जिस तरह प्रभा पतिगृह से आकर माता की गोद मे गिर गई थी उसी तर शान्ता भी आकर माता की गोद मे गिर पड़ी है।

8

पशुपति ने प्रभा का पत्र पढ़ा तो उसे चुप-सी लग गई। उसने अपना सिगरेट जलाया और जोर-जोर कश खींचने लगा।

फिर वह उठ खड़ा हुआ और कमरे मे टहलने लगा। कभी मूँछों को दांतों से काटता की खिचड़ी दाढ़ी को नीचे की ओर खींचता।

सहसा वह शान्ता के पास आकर खड़ा हो गया और काँपते हुए स्वर मे बोला — बेटी जिस घर को तेरी माँ स्वीकार करती हो उसे मै कैसे नाही कर सकता हूँ। उन्होने बहुत सोच-समझकर हामी भरी होगी। ईश्वर करे तुम सदा सौभाग्यवती रहो। मुझे दुख है तो इतना ही कि जब तू अपने घर चली जायेगी तब तेरी माता अकेली रह जायगी। कोई उसके आँसू पोंछने वाला न रहेगा। कोई ऐसा उपाय सोच कि तेरी माता का क्लेश दूर हो और मै भी इस तरह मारा-मारा न फिरूँ। ऐसा उपाय तू ही निकाल सकती है। सम्भव है लज्जा और संकोच के कारण मै

अपने हृदय की बात तुझसे कभी न कह सकता, लेकिन अब तू जा रही है और मुझे संकोच का त्याग करने के सिवा कोई उपाय नही है। तेरी माँ तुझे प्यार करती है और तेरा अनुरोध कभी न टालेगी। मेरी दशा जो तू अपनी आँखों से देश रही है यही उनसे कह देना। जा, तेरा सौभाग्य अमर हो।

शान्ता रोती हुई पिता की छाती से लिपट गई और यह समय से पहले बूढ़ा हो जाने वाला मनुष्य अपनी दुर्वासनाओं का दण्ड भोगने के बाद पश्चात्ताप और ग्लानि के आँसू बहा-बहाकर शान्ता के केशराशि को भिगोने लगा।

पतिपरायणा प्रभा क्या शान्ता का अनुरोध टाल सकती थी? इस प्रेम-सूत्र ने दोनों भग्न-हृदय को सदैव के लिए मिला दिया।

[‘सरस्वती’ जनवरी, 1926]

बड़े बाबू

तीन सौ पैंसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट की लगातार और अनथक दौड़-धूप के बाद मैं आखिर अपनी मंजिल पर धड़ से पहुँच गया। बड़े बाबू के दर्शन हो गए। मिट्टी के गोले ने आग के गोले का चक्कर पूरा कर लिया। अब तो आप भी मेरी भूगोल की लियाकत के कायल हो गए। इसे रूपक न समझिएगा।

बड़े बाबू में दोपहर के सूरज की गर्मी और रोशनी थी और मैं क्या और मेरी बिसात क्या, एक मुट्ठी खाक। बड़े बाबू मुझे देखकर मुस्कराये। हाय, यह बड़े लोगों की मुस्कराहट, मेरा अधमरा-सा शरीर काँपते लगा। जी में आया बड़े बाबू के कदमों पर बिछ जाऊँ। मैं काफिर नहीं, गालिब का मुरीद नहीं, जन्नत के होने पर मुझे पूरा यकीन है, उतरा ही पूरा जितना अपने अंधेरे घर पर। लेकिन फरिश्ते मुझे जन्नत ले जाने के लिए आए तो भी यकीनन मुझे वह जबरदस्त खुशी न होती जो इस चमकती हुई मुस्कराहट से हुई। आँखों में सरसों फूल गई। सारा दिल और दिमाग एक बगीचा बन गया।

कल्पना ने मिस्र के ऊँचे महल बनाने शुरु कर दिये। सामने कुर्सियों, पर्दों और खस की टट्टियों से सजा-सजाया कमरा था। दरवाजे पर उम्मीदवारों की भीड़ लगी हुई थी और ईजानिब एक कुर्सी पर शान से बैठे हुए सबको उसका हिस्सा देने वाले खुदा के दुनियाबी फ़र्ज अदा कर रहे थे। नजर-मियाज़ का तूफ़ान बरपा था और मैं किसी तरफ़ आँख उठाकर न देखता था कि जैसे मुझे किसी से कुछ लेना-देना नहीं।

अचानक एक शेर जैसी गरज ने मेरे बनते हुए महल में एक भूचाल-सा ला दिया — क्या काम है?

हाय रे, ये भोलापन! इस पर सारी दुनिया के हसीनों का भोलापन और बेपरवाही निसार है।

इस डयाढ़ी पर माथा रगड़ते-रगड़ते तीने सौ पैंसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट गुजर गए। चौखट का पत्थर घिसकर जमीन से मिल गया। ईदू बिसाती की दुकान के आधे खिलौने और गोवर्द्धन हलवाई की आधी दुकान इसी डयौढ़ी की भेंट चढ़ गयी और मुझसे आज सवाल होता है, क्या काम है!

मगर नहीं, यह मेरी ज्यादती हैं सरासर जुल्म। जो दिमाग़ बड़े-बड़े मुल्की और माली तमद्दुनी मसलों में दिन-रात लगा रहता है, जो दिमाग़ डाकूमेंटों, सरकुलरों, परवानों, हुक्मनामों, नक्शों वग़ैरह के

बोझ से दबा जा रहा हो, उसके नजदीक मुझ जैसे खाक के पुतले की हस्ती ही क्या।

मच्छर अपने को चाहे हाथी समझ ले पर बैल के सींग को उसकी क्या खबर। मैंने दबी जबान में कहा — हुजूर की क़दमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बड़े बाबू गरजे — क्या काम है?

अबकी बार मेरे रोएँ खड़े हो गए। खुदा के फ़जल से लहीम-शहीम आदमी हूँ, जिन दिनों कालेज में था, मेरे डील-डौल और मेरी बहादुरी और दिलेरी की धूम थी। हाकी टीम का कप्तान, फुटवाल टीम का नायब कप्तान और क्रिकेट का जनरल था। कितने ही गोरों के जिस्म पर अब भी मेरी बहादुरी के दाग़ बाकी होंगे। मुमकिन है, दो-चार अब भी बैसाखियाँ लिए चलते या रेंगते हों।

'बम्बई क्रानिकल' और 'टाइम्स' में मेरे गेंदों की धूम थी। मगर इस वक्त बाबू साहब की गरज सुनकर मेरा शरीर काँपने लगा। काँपते हुए बोला — हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बड़े बाबू ने अपना स्लीपरदार पैर मेरी तरफ़ बढ़ाकर कहा — शौक से लीजिए, यह कदम हाजिर है, जितने बोसे चाहे लीजिए, बेहिसाब मामले हैं, मुझसे कसम ले लीजिए जो मैं गिनूँ, जब तक

आपका मुँह न थक जाए, लिए जाइए! मेरे लिए इससे बढ़कर खुशनसीबी का क्या मौका होगा? औरों को जो बात बड़े जप-तप, बड़े संयम-व्रत से मिलती है, वह मुझे बैठे-बिठाये बग़ैर हड़-फिटकरी लगाए

हासिल हो गयी। वल्लाह, हूँ मैं भी खुशनसीब। आप अपने दोस्त-अहबाब, आत्मीय-स्वजन जो हों, उन सबको लायें तो और भी अच्छा, मेरे यहाँ सबको छूट है!

हंसी के पर्दे में यह जो जुल्म बड़े बाबू कर रहे थे उस पर शायद अपने दिल में उनको नाज हो। इस मनहूस तकदीर का बुरा हो, जो इस दरवाज़े का भिखारी बनाए हुए है। जी में तो आया कि हज़रत के बढ़े हुए पैर को खींच लूँ और आपको जिन्दगी-भर के लिए सबक दे दूँ कि बदनसीबों से दिल्लगी करने का यह मजा हैं मगर बदनसीबी अगर दिल पर जब्र न कराये, जिल्लत का अहसास न पैदा करे तो वह बदनसीबी क्यों कहलाए। मैं भी एक जमाने में इसी तरह लोगों को तकलीफ पहुँचाकर हँसता था। उस वक्त इन बड़े बाबुओं की मेरी निगाह में कोई हस्ती न थी। कितने ही बड़े बाबुओं को रुलाकर छोड़ दिया। कोई ऐसा प्रोफेसर न था, जिसका चेहरा मेरी सूरत देखते ही पीला न पड़ जाता हो। हजार-हजार रुपया पाने वाले प्रोफेसरों की मुझसे कोर दबती थी। ऐसे क्लर्कों को मैं समझता ही क्या था। लेकिन अब

वह जमाना कहाँ। दिल में पछ्ताया कि नाहक कदमबोसी का लफ़्ज जबान पर लाया। मगर अपनी बात कहना जरूरी था। मैं पक्का इरादा करके आया था कि उस ड्योढ़ी से आज कुछ लेकर ही उठूँगा। मेरे धीरज और बड़े बाबू के इस तरह जान-बूझकर अनजान बनने में रस्साकशी थी। दबी ज़बान से बोला — हुजूर, ग्रेजुएट हूँ।

शुक्र है, हज़ार शुक्र हैं, बड़े बाबू हँसे। जैसे हाँडी उबल पड़ी हो। वह गरज और वह करख्त आवाज न थी। मेरा माथा रगड़ना आखिर कहाँ तक असर न करता। शायद असर को मेरी दुआ से दुश्मनी नहीं। मेरे कान बड़ी बेक़रारी से वे लफ़्ज सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे जिनसे मेरी रूह को खुशी होगी। मगर आह, जितनी मायूसी इन कानों को हुई है उतनी शायद पहाड़ खोदने वाले फ़रहाद को भी न हुई होगी। वह मुस्कराहट न थी, मेरी तक़दीर की हंसी थी। हुजूर ने फ़रमाया — बड़ी खुशी की बात है, मुल्क और क़ौम के लिए इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या हो सकती है। मेरी दिली तमन्ना है, मुल्क का हर एक नौजवान ग्रेजुएट हो जाए। ये ग्रेजुएट ज़िन्दगी के जिस मैदान में जाय, उस मैदान को तरक्की ही देगा — मुल्की, माली, तमद्दुनी (मजहबी) ग़रज कि हर एक किस्म की तहरीक का जन्म और तरक्की ग्रेजुएटों ही पर मुनहसर है। अगर मुल्क में ग्रेजुएटों का

यह अफ़सोसनाक अकाल न होता तो असहयोग की तहरीक क्यों इतनी जल्दी मुर्दा हो जाती! क्यों बने हुए रंगे सियार, दग़ाबाज जरूपस्त लीडरों को डाकेजनी के ऐसे मौके मिलते! तबलीग क्यों मुबल्लिगे अले हुस्सलाम की इल्लत बनती! ग्रेजुएट में सच और झूठ की परख, निगाह का फैलाव और जाँचने-तोलने की क़ाबलियत होना जरूरी बात है। मेरी आँखें तो ग्रेजुएटों को देखकर नशे के दर्जे तक खुशी से भर उठती हैं। आप भी खुदा के फ़जल से अपनी क़िस्म की बहुत अच्छी मिसाल हैं, बिल्कुल अप-टू-डेट। यह शेरवानी तो बरकत एण्ड को की दुकान की सिली हुई होगी। जूते भी डासन के हैं। क्यों न हो। आप लोंगों ने कौम की जिन्दगी के मैयार को बहुत ऊँचा बना दिया है और अब वह बहुत जल्द अपनी मंजिल पर पहुँचेगी। ब्लैकबर्ड पेन भी है, वेस्ट एण्ड की रिस्टवाच भी है। बेशक अब कौमी बेड़े को ख्वाजा खिज़र की जरूरत भी नहीं। वह उनकी मिन्नत न करेगा।

हाय तक़दीर और वाय तक़दीर! अगर जानता कि यह शेरवानी और फ़ाउंटेनपेन और रिस्टवाज यों मज़ाक का निशाना बनेगी, तो दोस्तों का एहसान क्यों लेता। नमाज़ बख्शवाने आया था, रोज़े गले पड़े। किताबों में पढ़ा था, ग़रीबी की हुलिया ऐलान है अपनी नाकामी का, न्यौता देना है अपनी जिल्लत कों। तजुर्बा भी यही

कहता था। चीथड़े लगाये हुए भिखमंगों को कितनी बेदर्दी से दुतकारता हूँ लेकिन जब कोई हजरत सूफी-साफ़ी बने हुए, लम्बे-लम्बे बाल कंधों पर बिखेरे, सुनहरा अमामा सर पर बांका-तिरछा शान से बांधे, संदली रंग का नीचा कुर्ता पहने, कमरे में आ पहुँचते हैं

तो मजबूर होकर उनकी इज्जत करनी पड़ती है और उनकी पाकीज़गी के बारे में हजारों शुबहे पैदा होने पर भी छोटी-छोटी रक़म जो उनकी नज़र की जाती हे, वह एक दर्जन भिखारियों को अच्छा खाना खिलाने के सामान इकट्ठा कर देती। पुरानी मसल है — भेस से ही भीख मिलती है। पर आज यह बात ग़लत साबित हो गयी। अब बीवी साहिबा की वह तम्बीह याद आयी जो उसने चलते वक्त दी थी — क्यों बेकार अपनी बेइज्जती कराने जा रहे हो। वह साफ़ समझेंगे कि यह माँगे-जांचे का ठाठ है।

ऐसे रईस होते तो मेरे दरवाजे पर आते क्यों। उस वक्त मैंने इस तम्बीह को बीवी की कमनिगाह और उसका गँवारूपन समझा था। पर अब मालूम हुआ कि गँवारिनें भी कभी-कभी सूझ की बातें कहते हैं।

मगर अब पछ्ताना बेकार है। मैंने आज़िज़ी से कहा — हुज़ूर, कहीं मेरी भी परवरिश फ़रमायें।

बड़े बाबू ने मेरी तरफ़ इस अन्दाज से देखा जैसे मैं किसी दूसरी दुनिया का कोई जानवर हूँ

और बहुत दिलासा देने के लहजे में बोले — आपकी परवरिश खुदा करेगा। वही सबका रज्ज़ाक है, दुनिया

जब से शुरु हुई तब से तमाम शायर, हकीम और औलिया यही सिखाते आये हैं कि खुदा पर भरोसा रख और हम हैं कि उनकी हिदायत को भूल जाते हैं। लेकिन खैर, मैं आपको नेक सलाह देने में कंजूसी न करूँगा। आप एक अखबार निकाल लीजिए। यकीन मानिए इसके लिए बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे होने की

जरूरत नहीं और आप तो खुदा के फ़ज़ल से ग्रेजुएट है।, स्वादिष्ट तिलाओं और स्तम्भन-बटियों के नुस्खें लिखिए। तिब्बे अकबर में आपको हज़ारों नुस्खे मिलेंगे। लाइब्रेरी जाकर नकल कर लाइए और अखबार में नये नाम से छापिए। कोकशास्त्र तो आपने पढ़ा ही होगा अगर न पढ़ा हो तो एक बार पढ़ जाइए और अपने अखबार में शादी के मर्जो के तरीके लिखिए। कामेन्द्रिय के नाम जितने ज्यादा आ सकें, बेहतर है फिर देखिए कैसे डाक्टर और प्रोफेसर और डिप्टी कलेक्टर आपके भक्त हो

जाते हैं। इसका खयाल रहे कि यह काम हकीमाना अन्दाज़ से किया जाए। ब्योपारी और हकीमाना अन्दाज में थोड़ा फ़र्क़ है, ब्योपारी सिर्फ़ अपनी दवाओं की तारीफ़ करता है, हकीम परिभाषाओं और सूक्तियों को खोलकर अपने लेखों को इल्मी रंग देता है। ब्योपारी की तारीफ से लोग चिढ़ते हैं, हकीम की तारीफ़ भरोसा दिलाने वाली होती है। अगर इस मामले में कुछ समझने-बूझने की जरूरत हो तो रिसाला 'दरवेश' हाज़िर हैं अगर इस काम में आपको कुछ दिक्कत मालूम होती हो, तो स्वामी श्रद्धानन्द की खिदमत में जाकर शुद्धि पर आमादगी जाहिर कीजिए — फिर देखिए आपकी कितनी खातिर-तवाजों होती है। इतना समझाये देता हूँ कि शुद्धि के लिए फौरन तैयार न हो जाइएगा।

पहले दिन तो दो-चार हिन्दू धर्म की किताबें माँग लाइयेगा। एक हफ्ते के बाद जाकर कुछ एतराज कीजिएगा। मगर एतराज ऐसे हो जिनका जवाब आसानी से दिया जा सके इससे स्वामीजी को आपकी छान-बीन और जानने की ख्वाहिश का यकीन हो जायेगा। बस, आपकी चांदी है। आप इसके बाद इसलाम की मुखालिफत पर दो-एक मजमून या मजमूनों का सिलसिला किसी हिन्दू रिसाले में लिख देंगे तो आपकी जिन्दगी और रोटी का मसला हल हो जाएगा। इससे भी सरल एक नुस्खा है — तबलीग़ी मिशन में शरीक हो जाइए, किसी हिन्दू औरत, खासकर

नौजवान बेवा, पर डोरे डालिए। आपको यह देखकर हैरत होगी कि वह कितनी आसानी से आपसे मुहब्बत करने लग जाती है। आप उसकी अंधेरी जिन्दगी के लिए एक मशाल साबित होंगे। वह उज़्र नहीं करती, शौक से इसलाम कबूल कर लेगी। बस, अब आप शहीदों में दाखिल हो गए। अगर जरा एहतियात से काम करते रहें तो आपकी जिन्दगी बड़े चैन से गुजरेगी। एक ही खेवे में दीनो-दुनिया दोनों ही पार हैं। जनाब लीडर बन जाएँगे वल्लाह, एक हफ्ते में आपका शुमार नामी-गरामी लोगों में होने लगेगा, दीन के सच्चे पैरोकार। हजारों सीधे-सादे मुसलमान आपको दीन की डूबती हुई किश्ती का मल्लाह समझेंगे। फिर खुदा के सिवा और किसी को खबर न होगी कि आपके हाथ क्या आता है और वह कहाँ जाता है और खुदा कभी राज नहीं खोला करता, यह आप जानते ही हैं। ताज्जुब है कि इन मौकों पर आपकी निगाह क्यों नहीं जाती! मैं तो बुड्ढा हो गया और अब कोई नया काम नहीं सीख सकता, वर्ना इस वक्त लीडरों का लीडर होता।

इस आग की लपट जैसे मज़ाक ने जिस्म में शोले पैदा कर दिये। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। धीरज हाथ से छूटा जा रहा था। मगर कहरे दरवेश बर जाने दरवेश(भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर) के मुताबिक सर झुकाकर खड़ा रहा।

जितनी दलीलें दिमाग में कई दिनों से चुन-चुनकर रखी थीं, सब धरी रह गयीं। बहुत सोचने पर भी कोई नया पहलू ध्यान में न आया। यों खुदा के फ़ज़ल से बेवकूफ़ या कुन्दजेहन नहीं हूँ, अच्छा दिमाग पाया है। इतने सोच-विचार से कोई अच्छी-सी गजल हो जाती। पर तबीयत ही तो है, न लड़ी। इत्तफाक से जेब में हाथ डाला तो अचानक याद आ गया कि

सिफारिशी खतों का एक पोथा भी साथ लाया हूँ। रोब का दिमाग पर क्या असर पड़ता है इसका आज तजुर्बा हो गया। उम्मीद से चेहरा फूल की तरह खिल उठा। खतों का पुलिन्दा हाथ में लेकर बोला — हुजूर, यह चन्द खत हैं इन्हें मुलाहिजा फरमा लें।

बड़े बाबू ने बण्डल लेकर मेज़ पर रख दिया और उस पर एक उड़ती हुई नज़र डालकर बोले — आपने अब तक इन मोतियों को क्यों छिपा रक्खा था?

मेरे दिल में उम्मीद की खुशी का एक हंगामा बरपा हो गया। जबान जो बन्द थी, खुल गयी। उमंग से बोला — हुजूर की शान-शौकत ने मुझ पर इतना रोब डाल दिया और कुछ ऐसा जादू कर दिया कि मुझे इन खतों की याद न रही। हुजूर से मैं बिना नमक-मिर्च लगाये सच-सच कहता हूँ कि मैंने इनके लिए

किसी तरह की कोशिश या सिफारिश नहीं पहुँचायी। किसी तरह की दौड़-भाग नहीं की।

बड़े बाबू ने मुस्कराकर कहा — अगर आप इनके लिए ज्यादा से ज्यादा दौड़-भाग करने में भी अपनी ताक़त खर्च करते तो भी मैं आपको इसके लिए बुरा-भला न कहता। आप बेशक बड़े खुशनसीब हैं कि यह नायाब चीज़ आपको बेमाँग मिल गई, इसे जिन्दगी के सफ़र का पासपोर्ट समझिए। वाह, आपको खुदा के फ़ज़ल से एक एक से एक कद्रदान नसीब हुए। आप जहीन हैं, सीधे-सच्चे हैं, बेलौस हैं, फर्माबरदार है। ओफ्फोह, आपके गुणों की तो कोई इन्तहा ही नहीं है। कसम खुदा की, आप में तो तमाम भीतरी और बाहरी कमाल भरे हुए हैं। आप में सूझ-बूझ गम्भीरता, सच्चाई, चौकसी, कुलीनता, शराफत, बहादुरी, सभी गुण मौजूद हैं। आप तो नुमाइश में रखे जाने के क़ाबिल मालूम होते हैं कि दुनिया आपको हैरत की निगाह से देखे तो दाँतों तले उंगली दबाये। आज किसी भले का मुँह देखकर उठा था कि आप जैसे पाकीज़ा आदमी के दर्शन हुए। यह वे गुण हैं जो जिन्दगी के हर एक मैदान में आपको शोहरत की चोटी तक पहुँचा सकते हैं। सरकारी नौकरी आप जैसे गुणियों की शान के क़ाबिल नहीं। आपको यह कब गवारा होगा। इस दायरे में आते

ही आदमी बिलकुल जानवर बन जाता है। बोलिए, आप इसे मंजूर कर सकते हैं? हरगिज़ नहीं।

मैंने डरते-डरते कहा — जनाब, जरा इन लफ्जों को खोलकर समझा दीजिए। आदमी के जानवर बन जाने से आपकी क्या मंशा है?

बड़े बाबू ने त्योरी चढ़ाते हुए कहा — या तो कोई पेचीदा बात न थी जिसका मतलब खोलकर बतलाने की जरूरत हो। तब तो मुझे बात करने के अपने ढंग में कुछ तरमीम करनी पड़ेगी। इस दायरे के उम्मीदवारों के लिए सबसे जरूरी और लाज़िमी सिफ़त सूझ-बूझ है। मैं नहीं कह सकता कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह इस लफ्ज से अदा होता है या नहीं। इसका अंग्रेजी लफ्ज है इनटुइशन — इशारे के असली मतलब को समझना। मसलन अगर सरकार बहादुर यानी हाकिम जिला को शिकायत हो कि आपके इलाके में इनकम टैक्स कम वसूल होता है तो आपका फ़र्ज है कि उसमें अंधाधुन्ध इजाफ़ा करें। आमदनी की परवाह न करें। आमदनी का बढ़ना आपकी सूझबूझ पर मुनहसर है! एक हल्की-सी धमकी काम कर जाएगी और इनकम टैक्स दुगुना-तिगुना हो जाएगा। यकीनन आपको इस तरह अपना ज़मीर (अन्तःकरण) बेचना गवारा न होगा।

मैंने समझ लिया कि मेरा इम्तहान हो रहा है, आशिकों जैसे जोश और सरगर्मी से बोला — मैं तो इसे जमीर बेचना नहीं समझता, यह तो नमक का हक़ है। मेरा ज़मीर इतना नाज़ुक नहीं है।

बड़े बाबू ने मेरी तरफ़ क़द्रदानी की निगाह से देखकर कहा — शाबाश, मुझे तुमसे ऐसे ही जवाब की उम्मीद थी। आप मुझे होनहार मालूम होते हैं। लेकिन शायद यह दूसरी शर्त आपको मंजूर न हो।

इस दायरे के मुरीदों के लिए दूसरी शर्त यह है कि वह अपने को भूल जाएँ। कुछ आया आपकी समझ में?

मैंने दबी जबान में कहा — जनाब को तकलीफ़ तो होगी मगर जरा फिर इसको खोलकर बतला दीजिए।

बड़े बाबू ने त्योरियों पर बल देते हुए कहा — जनाब, यह बार-बार का समझाना मुझे बुरा मालूम होता है। मैं इससे ज्यादा आसान तरीक़े पर खयालों को ज़ाहिर नहीं कर सकता। अपने को भूल जाना बहुत ही आम मुहावरा हैं। अपनी खुदी को मिटा देना, अपनी शख्सियत को फ़ना कर देना, अपनी पर्सनालिटी को खत्म कर देना। आपकी वज़ा-कज़ा से आपके बोलने, बात करने के ढंग से, आपके तौर-तरीकों से आपकी हिन्दियत मिट जानी चाहिए। आपके मज़हबी, अखलाकी और तमद्दुनी असरों का

बिलकुल ग़ायब हो जाना ज़रुर हैं। मुझे आपके चेहरे से मालूम हो रहा है कि इस समझाने पर भी आप मेरा मतलब नहीं समझ सके। सुनिए, आप ग़ालिबन मुसलमान हैं। शायद आप अपने अक़ीदों में बहुत पक्के भी हों। आप नमाज़ और रोज़े के पाबन्द हैं?

मैंने फ़ख से कहा — मैं इन चीजों का उतना ही पाबन्द हूँ जितना कोई मौलवी हो सकता हैं।

मेरी कोई नमाज़ क़ज़ा नहीं हुई। सिवाय उन वक्तों के जब मैं बीमार था।

बड़े बाबू ने मुस्कराकर कहा — यह तो आपके अच्छे अखलाक ही कह देते हैं। मगर इस दायरे में आकर आपको अपने अक़ीदे और अमल में बहुत कुछ काट-छाट करनी पड़ेगी। यहाँ आपका मज़हब मज़हबियत का जामा अख्तियार करेगा। आप भूलकर भी अपनी पेशानी को किसी सिजदे में न झुकाएँ, कोई बात नहीं। आप भूलकर भी ज़कात के झगड़े में न फँसें, कोई बात नहीं। लेकिन आपको अपने मजहब के नाम पर फ़रियाद करने के लिए हमेशा आगे रहना और दूसरों को आमादा करना होगा। अगर आपके ज़िले में दो डिप्टी कलक्टर हिन्दू हैं और मुसलमान सिर्फ़ एक, तो आपका फ़र्ज होगा कि हिज एक्सेलेंसी गवर्नर की खिदमत

में एक डेपुटेशन भेजने के लिए कौम के रईसों में आमादा करें। अगर आपको मालूम हो कि किसी म्युनिसिपैलिटी ने क़साइयों को शहर से बाहर दूकान रखने की तजवीज़ पास कर दी है तो

आपका फ़र्ज होगा कि कौम के चौधरियों को उस म्युनिसिपैलिटी का सिर तोड़ने के लिए तहरीक करें। आपको सोते-जागते, उठते-बैठते जात-पाँत का राग अलापना चाहिए। मसलन इम्तहान के नतीजों में अगर आपको मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या मुनासिब से कम नज़र आये तो आपको फौरन चांसकर के पास एक गुमनाम ख़त लिख भेजना होगा कि इस मामले में जरूर ही सख्ती से काम लिया गया है।

यह सारी बातें उसी इनटुइशनवाली शर्त के भीतर आ जाती हैं। आपको साफ़-साफ़ शब्दों में या इशारों से यह काम करने से लिए हिदायत न की जाएगी। सब कुछ आपकी सूझ-सूझ पर मुनहसर होगा। आप में यह जौहर होगा तो आप एक दिन जरूर ऊँचे ओहदे पर पहुँचेंगे। आपको जहां तक मुमकिन हो, अंग्रेजी में लिखना और बोलना पड़ेगा। इसके बग़ैर हुक्काम आपसे खुश न होंगे। लेकिन क़ौमी ज़बान की हिमायत और प्रचार की सदा आपकी ज़बान से बराबर निकलती रहनी चाहिए। आप शौक़ से अखबारों का चन्दा हज़म करें, मंगनी की किताबें पढ़ें चाहे वापसी के वक्त किताब के फट-चिंथ जाने के कारण आपको माफ़ी ही

क्यों न माँगनी पड़े, लेकिन जबान की हिमायत बराबर जोरदार तरीके से करते रहिए। खुलासा यह कि आपको जिसका खाना उसका गाना होगा। आपको बातों से, काम से और दिल से अपने मालिक की भलाई में और मजबूती से उसको जमाये रखने में लगे रहना पड़ेगा। अगर आप यह खयाल करते हों कि मालिक की खिदमत के ज़रिये कौम की खिदमत की करूँगा तो यह झूठ बात है, पागलपन है, हिमाक़त है। आप मेरा मतलब समझ गये होंगे। फ़रमाइए, आप इस हद तक अपने को भूल सकते हैं?

मुझे जवाब देने में जरा देर हुई। सच यह है कि मैं भी आदमी हूँ और बीसवीं सदी का आदमी हूँ। मैं बहुत जागा हुआ न सही, मगर बिलकुल सोया हुआ भी नहीं हूँ, मैं भी अपने मुल्क और क़ौम को बुलन्दी पर देखना चाहता हूँ। मैंने तारीख पढ़ी है और उससे इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मज़हब दुनिया में सिर्फ एक है और उसका नाम है — दर्द। मज़हब की मौजूदा सूरत धड़ेबंदी के सिवाय और कोई हैसियत नहीं रखती। खतने या चोटी से कोई बदल नहीं जाता। पूजा के लिए कलिसा, मसजिद, मन्दिर की मैं बिलकुल जरूरत नहीं समझता। हाँ, यह मानता हूँ कि घमण्ड और खुदगरजी को दबाये रखने के लिए कुछ करना जरूरी है। इसलिए नहीं कि उससे मुझे जन्नत मिलेगी या मेरी मुक्ति होगी, बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि मुझे दूसरों के हक़ छीनने से नफ़रत

होगी। मुझमें खुदी का खासा जुज़ मौजूद है। यों अपनी खुशी से कहिए तो आपकी जूतियाँ सीधी करूँ लेकिन हुकूमत की बरदाश्त नहीं। महकूम

बनना शर्मनाक समझता हूँ। किसी ग़रीब को जुल्म का शिकार होते देखकर मेरे खून में गर्मी पैदा हो जाती है। किसी से दबकर रहने से मर जाना बेहतर समझता हूँ। लेकिन खयाल हालतों पर तो फ़तह नहीं पा सकता। रोज़ी फ़िक्र तो सबसे बड़ी। इतने दिनों के बाद बड़े बाबू की निगाहे करम को अपनी ओर मुड़ता देखकर मैं इसके सिवा कि अपना सिर झुका दूँ, दूसरा कर ही क्या सकता था। बोला — जनाब, मेरी तरफ़ से भरोसा रक्खें। मालिक की खिदमत में अपनी तरफ़ से कुछ उठा न रक्खूँगा।

'ग़ैरत को फ़ना कर देना होगा।'

'मंजूर।'

'शराफत के जज्बों को उठाकर ताक़ पर रख देना होगा।'

'मंजूर।'

'मुखबिरी करनी पड़ेगी?'

'मंजूर।'

‘तो बिस्मिल्लाह, कल से आपका नाम उम्मीदवारों की फ़ेहरिस्त में लिख दिया जायेगा।’

मैंने सोचा था कल से कोई जगह मिल जायेगी। इतनी जिल्लत क़बूल करने के बाद रोजी की फ़िक्र से तो आज़ाद हो जाऊँगा। अब यह हक़ीकत खुली। बरबस मुँह से निकला — और जगह कब तक मिलेगी?

बड़े बाबू हँसे, वही दिल दुखानेवाली हँसी जिसमें तौहीन का पहलू खास था — जनाब, मैं कोई ज्योतिषी नहीं, कोई फ़कीर-दरवेश नहीं, बेहतर है इस सवाल का जवाब आप किसी औलिया से पूछें।

दस्तरखान बिछा देना मेरा काम है। खाना आयेगा और वह आपके हलक में जायेगा, यह पेशीनगोई मैं नहीं कर सकता।

मैंने मायूसी के साथ कहा — मैं तो इससे बड़ी इनायत का मुन्तज़िर था।

बड़े बाबू कुर्सी से उठकर बोले — क़सम खुदा की, आप परले दर्जे के कूड़मग्ज़ आदमी हैं। आपके दिमाग में भूसा भरा है। दस्तरखान का आ जाना आप कोई छोटी बात समझते हैं? इन्तज़ार का मज़ा आपकी निगाह में कोई चीज़ ही नहीं? हालांकि इन्तजार में इन्सान उमरें गुज़ार सकता है। अमलों से आपका

परिचय हो जाएगा। मामले बिठाने, सौदे पटाने के सुनहरे मौके हाथ आयेंगे। हुक्काम के लड़के पढ़ाइये। अगर गंडे-तावीज का फ़न सीख लीजिए तो आपके हक़ में बहुत मुफ़ीद हो। कुछ हकीमी भी सीख लीजिए। अच्छे होशियार सुनारों से दोस्ती पैदा कीजिए,क्योंकि आपको उनसे अक्सर काम पड़ेगा। हुक्काम की औरतें आप ही के मार्फ़त अपनी जरूरतें पूरी करायेंगी। मगर इन सब लटकों से ज्यादा कारगर एक और लटका है, अगर वह हुनर आप में है, तो यक़ीनन आपके इन्तजार की मुद्दत बहुत कुछ कम हो सकती है। आप बड़े-बड़े हाकिमों के लिए तफ़रीह का सामान जुटा सकते हैं!

बड़े बाबू मेरी तरफ़ कनखियों से देखकर मुस्कराये। तफ़रीह के सामान से उनका क्या मतलब है, यह मैं न समझ सका। मगर पूछते हुए भी डर लगता था कि कहीं बड़े बाबू बिगड़ न जाएँ और फिर मामला खराब हो जाए। एक बेचैनी की-सी हालत में जमीन की तरफ ताकने लगा।

बड़े बाबू ताड़ तो गये कि इसकी समझ में मेरी बात न आयी लेकिन अबकी उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़े। न ही उनके लहजे में हमदर्दी की झलक फ़रमायी — यह तो ग़ैर-मुमकिन है किक आपने बाज़ार की सैर न की हो।

मैंने शर्माते हुए कहा — नहीं हुजूर, बन्दा इस कूचे को बिलकुल नहीं जानता।

बड़े बाबू — तो आपको इस कूचे की खाक छाननी पड़ेगी। हाकिम भी आँख-कान रखते हैं। दिन-भर की दिमागी थकन के बाद स्वभावतः रात को उनकी तबियत तफ़रीह की तरफ़ झुकती हैं। अगर आप उनके लिए आँखों को अच्छा लगनेवाले रूप और कानों को भानेवाले संगीत का इन्तज़ाम सस्ते दामों कर सकते हैं या कर सकें तो...

मैंने किसी क़दर तेज़ होकर कहा — आपका कहने का मतलब यह है कि मुझे रूप की मंडी की दलाली करनी पड़ेगी?

बड़े बाबू — तो आप तेज़ क्यों होते हैं, अगर अब तक इतनी छोटी-सी बात आप नहीं समझे तो यह मेरा क़सूर है या आपकी अक़्ल का!

मेरे जिस्म में आग लग गयी। जी में आया कि बड़े बाबू को जुजुत्सू के दो-चार हाथ दिखाऊँ, मगर घर की बेसरोसामानी का खयाल आ गया। बीवी की इन्तजार करती हुई आँखें और बच्चों की भूखी सूरतें याद आ गयीं। जिल्लत का एक दरिया हलक़ से नीचे ढकेलते हुए बोला — जी नहीं, मैं तेज़ नहीं हुआ था। ऐसी बेअदबी मुझसे नहीं हो सकती। (आँखों में आँसू भरकर) जरूरत

ने मेरी ग़ैरत को मिटा दिया है। आप मेरा नाम उम्मीदवारों में दर्ज कर दें। हालात मुझसे जो कुछ करायेंगे वह सब करूँगा और मरते दम तक आपका एहसानमन्द रहूँगा।

[‘खाके परवाना’ से]

बन्द दरवाजा

सूरज क्षितिज की गोद से निकला, बच्चा पालने से — वही स्निग्धता, वही लाली, वही खुमार, वही रोशनी। मैं बरामदे में बैठा था। बच्चे ने दरवाजे से झाँका। मैंने मुस्कराकर पुकारा। वह मेरी गोद में आकर बैठ गया। उसकी शरारतें शुरू हो गईं। कभी कलम पर हाथ बढ़ाया, कभी कागज पर। मैंने गोद से उतार दिया। वह मेज का पाया पकड़े खड़ा रहा। घर में न गया। दरवाजा खुला हुआ था।

एक चिड़िया फुदकती हुई आई और सामने के सहन में बैठ गई। बच्चे के लिए मनोरंजन का यह नया सामान था। वह उसकी तरफ लपका। चिड़िया जरा भी न डरी। बच्चे ने समझा अब यह परदार खिलौना हाथ आ गया। बैठकर दोनों हाथों से चिड़िया को बुलाने लगा। चिड़िया उड़ गई, निराश बच्चा रोने लगा। मगर अन्दर के दरवाजे की तरफ ताका भी नहीं। दरवाजा खुला हुआ था।

गरम हलवे की मीठी पुकार आई। बच्चे का चेहरा चाव से खिल उठा। खोमचेवाला सामने से गुजरा। बच्चे ने मेरी तरफ याचना

की आँखों से देखा। ज्यों-ज्यों खोमचेवाला दूर होता गया, याचना की आँखें रोष में परिवर्तित होती गईं। यहाँ तक कि जब मोड़ आ गया और खोमचेवाला आँख से ओझल हो गया तो रोष ने पुर जोर फरियाद की सूरत अख्तियार की। मगर मैं बाजर की चीजें बच्चों को नहीं खाने देता। बच्चे की फरियाद ने मुझ पर कोई असर न किया। मैं आगे की बात सोचकर और भी तन गया। कह नहीं सकता बच्चे ने अपनी माँ की अदालत में अपील करने की जरूरत समझी या नहीं। आम तौर पर बच्चे ऐसी हालतों में माँ से अपील करते हैं। शायद उसने कुछ देर के लिए अपील मुल्तबी कर दी हो। उसने दरवाजे की तरफ रूख न किया। दरवाजा खुला हुआ था।

मैंने आँसू पोंछने के खयाल से अपना फाउण्टेनपेन उसके हाथ में रख दिया। बच्चे को जैसे सारे जमाने की दौलत मिल गई। उसकी सारी इन्द्रियाँ इस नई समस्या को हल करने में लग गई। एकाएक दरवाजा हवा से खुद-ब-खुद बन्द हो गया। पट की आवाज बच्चे के कानों में आई। उसने दरवाजे की तरफ देखा। उसकी वह व्यस्तता तत्क्षण लुप्त हो गई। उसने फाउण्टेनपेन को फेंक दिया और रोता हुआ दरवाजे की तरफ चला क्योंकि दरवाजा बन्द हो गया था।

[‘प्रेमचालीसा’ से]

बाँका जमींदार

ठाकुर प्रद्युम्न सिंह एक प्रतिष्ठित वकील थे और अपने हौसले और हिम्मत के लिए सारे शहर में मशहूर। उनके दोस्त अकसर कहा करते कि अदालत की इजलास में उनके मर्दाना कमाल ज्यादा साफ तरीके पर जाहिर हुआ करते हैं। इसी की बरकत थी कि बावजूद इसके कि उन्हें शायद ही कभी किसी मामले में सुर्खरुई हासिल होती थी, उनके मुवक्किलों की भक्ति-भावना में जरा भर भी फर्क नहीं आता था। इन्साफ की कुर्सी पर बैठनेवाले बड़े लोगों की निडर आजादी पर किसी प्रकार का सन्देह करना पाप ही क्यों न हो, मगर शहर के जानकार लोग ऐलानिया कहते थे कि ठाकुर साहब जब किसी मामले में जिद पकड़ लेते हैं तो उनका बदला हुआ तेवर और तमतमाया हुआ चेहरा इन्साफ को भी अपने वश में कर लेता है। एक से ज्यादा मौकों पर उनके जीवट और जिगर ने वे चमत्कार कर दिखाये थे जहाँ कि इन्साफ और कानून के जवाब दे दिया। इसके साथ ही ठाकुर साहब मर्दाना गुणों के सच्चे जौहरी थे। अगर मुवक्किल को कुश्ती में कुछ पैठ हो तो यह जरूरी नहीं था कि वह उनकी सेवाएँ प्राप्त

करने के लिए रुपया-पैसा दे। इसीलिए उनके यहाँ शहर के पहलवानों और फेकैतों का हमेशा जमघट रहता था और यही वह जबर्दस्त प्रभावशाली और व्यावहारिक कानूनी बारीकी थी जिसकी काट करने में इन्साफ को भी आगा-पीछा सोचना पड़ता। वे गर्व और सच्चे गर्व की दिल से कदर करते थे। उनके बेतकल्लुफ घर की ड्योढ़ियाँ बहुत ऊँची थी वहाँ झुकने की जरूरत न थी। इन्सान खूब सिर उठाकर जा सकता था। यह एक विश्वस्त कहानी है कि एक बार उन्होंने किसी मुकदमें को बावजूद बहुत विनती और आग्रह के हाथ में लेने से इनकार किया। मुवक्किल कोई अक्खड़ देहाती था। उसने जब आरजू-मिन्नत से काम निकलते न देखा तो हिम्मत से काम लिया। वकील साहब कुर्सी से नीचे गिर पड़े और बिफरे हुए देहाती को सीने से लगा लिया।

2

धन और धरती के बीच आदिकाल से एक आकर्षण है। धरती में साधारण गुरुत्वाकर्षण के अलावा एक खास ताकत होती है, जो हमेशा धन को अपनी तरफ खींचती है। सूद और तमस्सुक और व्यापार, यह दौलत की बीच की मंजिलें हैं, जमीन उसकी आखिरी

मंजिल है। ठाकुर प्रद्युम्न सिंह की निगाहें बहुत अर्से से एक बहुत उपजाऊ मौजे पर लगी हुई थीं। लेकिन बैंक का एकाउण्ट कभी हौसले को कदम नहीं बढ़ाने देता था। यहाँ तक कि एक दफा उसी मौजे का जमींदार एक कत्ल के मामले में पकड़ा गया। उसने सिर्फ रस्मों-रिवाज के माफिक एक आसामी को दिन भर धूप और जेठ की जलती हुई धूप में खड़ा रखा था लेकिन अगर सूरज की गर्मी या जिस्म की कमजोरी या प्यास की तेजी उसकी जानलेवा बन जाय तो इसमें जमींदार की क्या खता थी। यह शहर के वकीलों की ज्यादती थी कि कोई उसकी हिमायत पर आमदा न हुआ या मुमकिन है जमींदार के हाथ की तंगी को भी उसमें कुछ दखल हो। बहरहाल, उसने चारों तरफ से ठोकरें खाकर ठाकुर साहब की शरण ली। मुकदमा निहायत कमजोर था। पुलिस ने अपनी पूरी ताकत से धावा किया था और उसकी कुमक के लिए शासन और अधिकार के ताजे से ताजे रिसाले तैयार थे। ठाकुर साहब अनुभवी सँपेरों की तरह साँप के बिल में हाथ नहीं डालते थे लेकिन इस मौके पर उन्हें सूखी मसलहत के मुकाबले में अपनी मुरादों का पल्ला झुकता हुआ नजर आया। जमींदार को इतमीनान दिलाया और वकालतनामा दाखिल कर दिया और फिर इस तरह जी-जान से मुकदमे की पैरवी की, कुछ इस तरह जान लड़ायी कि मैदान से जीत का डंका बजाते हुए

निकले। जनता की जबान इस जीत का सेहरा उनकी कानूनी पैठ के सर नहीं, उनके मर्दाना गुणों के सर रखती है क्योंकि उन दिनों वकील साहब नजीरों और दफाओं की हिम्मततोड़ पेचीदगियों में उलझने के बजाय दंगल की उत्साहवर्द्धक दिलचस्पियों में ज्यादा लगे रहते थे लेकिन यह बात जरा भी यकीन करने के काबिल नहीं मालूम होती। ज्यादा जानकार लोग कहते हैं कि अनार के बमगोलों और सेब और अंगूर की गोलियों ने पुलिस के, इस पुरशोर हमले को तोड़कर बिखेर दिया गरज कि मैदान हमारे ठाकुर साहब के हाथ रहा। जमींदार की जान बची। मौत के मुँह से निकल आया उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला — ठाकुर साहब, मैं इस काबिल तो नहीं कि आपकी खिदमत कर सकूँ। ईश्वर ने आपको बहुत कुछ दिया है लेकिन कृष्ण भगवान् ने गरीब सुदामा के सूखे चावल खुशी से कबूल किए थे। मेरे पास बुजुर्गों की यादगार छोटा-सा वीरान मौजा है उसे आपकी भेंट करता हूँ। आपके लायक तो नहीं लेकिन मेरी खातिर इसे कबूल कीजिए। मैं आपका जस कभी न भूलूँगा। वकील साहब फड़क उठे। दो-चार बार निस्पृह बैरागियों की तरह इन्कार करने के बाद इस भेंट को कबूल कर लिया। मुँह-माँगी मुराद मिली।

3

इस मौजे के लोग बेहद सरदश और झगड़ालू थे, जिन्हें इस बात का गर्व था कि कभी कोई जमींदार उन्हें बस में नहीं कर सका। लेकिन जब उन्होंने अपनी बागडोर प्रद्युम्न सिंह के हाथों में जाते देखी तो चौकड़ियाँ भूल गये, एक बदलगाम घोड़े की तरह सवार को कनखियों से देखा, कनौतियाँ खड़ी कीं, कुछ हिनहिनाये और तब गर्दनें झुका दीं। समझ गये कि यह जिगर का मजबूत आसन का पक्का शहसवार है।

असाढ़ का महीना था। किसान गहने और बर्तन बेच-बेचकर बैलों की तलाश में दर-ब-दर फिरते थे। गाँवों की बूढ़ी बनियाइन नवेली दुलहन बनी हुई थी और फाका करने वाला कुम्हार बरात का दूल्हा था मजदूर मौके के बादशाह बने हुए थे। टपकती हुई छतें उनकी कृपादृष्टि की रूह देख रही थी। घास से ढके हुए खेत उनके ममतापूर्ण हाथों के मुहताज। जिसे चाहते थे बसाते थे, जिस चाहते थे उजाड़ते थे। आम और जामुन के पेड़ों पर आठों पहर निशानेबाज मनचले लड़कों का धावा रहता था। बूढ़े गर्दनों में झोलियाँ लटकाये पहर रात से टपके की खोज में घूमते नजर आते थे जो बुढ़ापे के बावजूद भोजन और जाप से ज्यादा

दिलचस्प और मज़ेदार काम था। नाले पुरशोर, नदियाँ अथाह, चारों तरफ हरियाली और खुशहाली। इन्हीं दिनों ठाकुर साहब मौत की तरह, जिसके आने की पहले से कोई सूचना नहीं होती, गाँव में आये। एक सजी हुई बरात थी, हाथी और घोड़े, और साज-सामान, लठैतों का एक रिसाला-सा था। गाँव ने यह तूमतड़ाक और आन-बान देखी तो रहे-सहे होश उड़ गये। घोड़े खेतों में ऐंड़ने लगे और गुंडे गलियों में। शाम के वक्त ठाकुर साहब ने अपने असामियों को बुलाया और बुलन्द आवाज में बोले — मैंने सुना है कि तुम लोग सरकश हो और मेरी सरकशी का हाल तुमको मालूम ही है। अब ईंट और पत्थर का सामना है। बोलो क्या मंजूर है?

एक बूढ़े किसान ने बेद के पेड़ की तरह काँपते हुए जवाब दिया — सरकार, आप हमारे राजा हैं। हम आपसे ऐंठकर कहाँ जायेंगे।

ठाकुर साहब तेवर बदलकर बोले — तो तुम लोग सब के सब कल सुबह तक तीन साल का पेशगी लगान दाखिल कर दो और खूब ध्यान देकर सुन लो कि मैं हुक्म को दुहराना नहीं जानता वर्ना मैं गाँव में हल चलवा दूँगा और घरों को खेत बना दूँगा।

सारे गाँव में कोहराम मच गया। तीन साल का पेशगी लगान और इतनी जल्दी जुटाना असम्भव था। रात इसी हैस-बैस में कटी। अभी तक आरजू-मिन्नत के बिजली जैसे असर की उम्मीद बाकी थी। सुबह बड़ी इन्तजार के बाद आई तो प्रलय बनकर आई। एक तरफ तो जोर जबर्दस्ती और अन्याय-अत्याचार का बाजार गर्म था, दूसरी तरफ रोती हुई आँखों, सर्द आहों और चीख-पुकार का, जिन्हें सुननेवाला कोई न था। गरीब किसान अपनी-अपनी पोटलियाँ लादे, बेकस अन्दाज से ताकते, आँखें में याचना भरे बीवी-बच्चों को साथ लिये रोते-बिलखते किसी अज्ञात देश को चले जाते थे। शाम हुई तो गाँव उजड़ गया।

4

यह खबर बहुत जल्द चारों तरफ फैल गयी। लोगों को ठाकुर साहब के इन्सान होने पर सन्देह होने लगा। गाँव वीरान पड़ा हुआ था। कौन उसे आबाद करे। किसके बच्चे उसकी गलियों में खेलें। किसकी औरतें कुओं पर पानी भरें। राह चलते मुसाफिर तबाही का यह दृश्य आँखों से देखते और अफसोस करते। नहीं मालूम उन वीराने देश में पड़े हुए गरीबों पर क्या

गुजरी। आह, जो मेहनत की कमाई खाते थे और सर उठाकर चलते थे, अब दूसरों की गुलामी कर रहे हैं।

इस तरह पूरा साल गुजर गया। तब गाँव के नसीब जागे। जमीन उपजाऊ थी। मकान मौजूद। धीरे-धीरे जुल्म की यह दास्तान फीकी पड़ गयी। मनचले किसानों की लोभ-दृष्टि उस पर पड़ने लगी। बला से जमींदार जालिम हैं, बेरहम हैं, सख्तियाँ करता है, हम उसे मना लेंगे। तीन साल की पेशगी लगान का क्या जिक्र वह जैसे खुश होगा, खुश करेंगे। उसकी गालियों को दुआ समझेंगे, उसके जूते अपने सर-आँखों पर रक्खेंगे। वह राजा हैं, हम उनके चाकर हैं। जिन्दगी की कशमकश और लड़ाई में आत्मसम्मान को निबाहना कैसा मुश्किल काम है! दूसरा अषाढ़ आया तो वह गाँव फिर बगीचा बना हुआ था। बच्चे फिर अपने दरवाजों पर घरौंदे बनाने लगे, मर्दों के बुलन्द आवाज के गाने खेतों में सुनाई दिये व औरतों के सुहाने गीत चक्कियों पर। जिन्दगी के मोहक दृश्य दिखाई देने लगे।

साल भर गुजरा। जब रबी की दूसरी फसल आयी तो सुनहरी बालों को खेतों में लहराते देखकर किसानों के दिल लहराने लगते थे। साल भर परती जमीन ने सोना उगल दिया थां औरतें खुश थीं कि अब के नये-नये गहने बनवायेंगे, मर्द खुश थे कि अच्छे-अच्छे बैल मोल लेंगे और दारोगा जी की खुशी का तो अन्त ही

न था। ठाकुर साहब ने यह खुशखबरी सुनी तो देहात की सैर को चले। वही शानशौकत, वही लठैतों का रिसाला, वही गुंडों की फौज! गाँववालों ने उनके आदर सत्कार की तैयारियाँ करनी शुरू कीं। मोटे-ताजे बकरों का एक पूरा गला चौपाल के दरवाजे पर बाँधा लकड़ी के अम्बार लगा दिये, दूध के हौज भर दिये। ठाकुर साहब गाँव की मेड़ पर पहुँचे तो पूरे एक सौ आदमी उनकी अगवानी के लिए हाथ बाँधे खड़े थे। लेकिन पहली चीज जिसकी फरमाइश हुई वह लेमनेड और बर्फ थी। असामियों के हाथों के तोते उड़ गये। यह पानी की बोतल इस वक्त वहाँ अमृत के दामों बिक सकती थी। मगर बेचारे देहाती अमीरों के चोचले क्या जानें। मुजरिमों की तरह सिर झुकाये भौंचक खड़े थे। चेहरे पर झेंप और शर्म थी। दिलों में धड़कन और भय। ईश्वर! बात बिगड़ गई है, अब तुम्हीं सम्हालो।,’

बर्फ की ठण्डक न मिली तो ठाकुर साहब की प्यास की आग और भी तेज हुई, गुस्सा भड़क उठा, कड़ककर बोले — मैं शैतान नहीं हूँ कि बकरों के खून से प्यास बुझाऊँ, मुझे ठंडा बर्फ चाहिए और यह प्यास तुम्हारे और तुम्हारी औरतों के आँसुओं से ही बुझेगी। एहसानफरामोश, नीच मैंने तुम्हें जमीन दी, मकान दिये और हैसियत दी और इसके बदले में तुम ये दे रहे हो कि मैं खड़ा पानी को तरसता हूँ! तुम इस काबिल नहीं हो कि तुम्हारे

साथ कोई रियायत की जाय। कल शाम तक मैं तुममें से किसी आदमी की सूरत इस गाँव में न देखूँ वर्ना प्रलय हो जायेगा। तुम जानते हो कि मुझे अपना हुक्म दुहराने की आदत नहीं है। रात तुम्हारी है, जो कुछ ले जा सको, ले जाओ। लेकिन शाम को मैं किसी की मनहूस सूरत न देखूँ। यह रोना और चीखना फिजू है, मेरा दिल पत्थर का है और कलेजा लोहे का, आँसुओं से नहीं पसीजता।

और ऐसा ही हुआ। दूसरी रात को सारे गाँव कोई दिया जलानेवाला तक न रहा। फूलता-फलता गाँव भूत का डेरा बन गया।

5

बहुत दिनों तक यह घटना आस-पास के मनचले किस्सागोयों के लिए दिलचस्पियों का खजाना बनी रही। एक साहब ने उस पर अपनी कलम। भी चलायी। बेचारे ठाकुर साहब ऐसे बदनाम हुए कि घर से निकलना मुश्किल हो गया। बहुत कोशिश की गाँव आबाद हो जाय लेकिन किसकी जान भारी थी कि इस अंधेर नगरी में कदम रखता जहाँ मोटापे की सजा फाँसी थी। कुछ

मजदूर-पेशा लोग किस्मत का जुआ खेलने आये मगर कुछ महीनों से ज्यादा न जम सके। उजड़ा हुआ गाँव खोया हुआ एतबार है जो बहुत मुश्किल से जमता है। आखिर जब कोई बस न चला तो ठाकुर साहब ने मजबूर होकर आराजी माफ करने का काम आम ऐलान कर दिया लेकिन इस रियासत से रही-सही साख भी खो दी। इस तरह तीन साल गुजर जाने के बाद एक रोज वहाँ बंजारों का काफिला आया। शाम हो गयी थी और पूरब तरफ से अंधेरे की लहर बढ़ती चली आती थी। बंजारों ने देखा तो सारा गाँव वीरान पड़ा हुआ है।, जहाँ आदमियों के घरों में गिद्ध और गीदड़ रहते थे। इस तिलिस्म का भेद समझ में न आया। मकान मौजूद हैं, जमीन उपजाऊ है, हरियाली से लहराते हुए खेत हैं और इन्सान का नाम नहीं! कोई और गाँव पास न था वहीं पड़ाव डाल दिया। जब सुबह हुई, बैलों के गलों की घंटियों ने फिर अपना रजत-संगीत अलापना शुरू किया और काफिला गाँव से कुछ दूर निकल गया तो एक चरवाहे ने जोर-जबर्दस्ती की यह लम्बी कहानी उन्हें सुनायी। दुनिया भर में घूमते फिरने ने उन्हें मुश्किलों का आदी बना दिया था। आपस में कुद मशविरा किया और फैसला हो गया। ठाकुर साहब की ड्योढ़ी पर जा पहुँचे और नजराने दाखिल कर दिये। गाँव फिर आबाद हुआ।

यह बंजारे बला के चीमड़, लोहे की-सी हिम्मत और इरादे के लोग थे जिनके आते ही गाँव में लक्ष्मी का राज हो गया। फिर घरों में से धुएँ के बादल उठे, कोल्हाड़ों ने फिर धुएँ ओर भाप की चादरें पहनीं, तुलसी के चबूतरे पर फिर से चिराग जले। रात को रंगीन तबियत नौजवानों की अलापें सुनायी देने लगीं। चरागाहों में फिर मवेशियों के गल्ले दिखाई दिये और किसी पेड़ के नीचे बैठे हुए चरवाहे की बाँसुरी की मद्धिम और रसीली आवाज दर्द और असर में डूबी हुई इस प्राकृतिक दृश्य में जादू का आकर्षण पैदा करने लगी।

भादों का महीना था। कपास के फूलों की सुर्ख और सफेद चिकनाई, तिल की ऊदी बहार और सन का शोख पीलापन अपने रूप का जलवा दिखाता था। किसानों की मड़ैया और छप्परों पर भी फल-फूल की रंगीनी दिखायी देती थी। उस पर पानी की हलकी-हलकी फुहारें प्रकृति के सौंदर्य के लिए सिंगार करनेवाली का कमा दे रही थीं। जिस तरह साधुओं के दिल सत्य की ज्योति से भरे होते हैं, उसी तरह सागर और तालाब साफ-शफ़्फ़ाफ़ पानी से भरे थे। शायद राजा इन्द्र कैलाश की तरावट भरी ऊँचाइयों से उतरकर अब मैदानों में आनेवाले थे। इसीलिए प्रकृति ने सौन्दर्य और सिद्धियों और आशाओं के भी भण्डार खोल दिये थे। वकील साहब को भी सैर की तमन्ना ने गुदगुदाया।

हमेशा की तरह अपने रईसाना ठाट-बाट के साथ गाँव में आ पहुँचे। देखा तो संतोष और निश्चिन्तता के वरदान चारों तरफ स्पष्ट थे।

6

गाँववालों ने उनके शुभागमन का समाचार सुना, सलाम को हाजिर हुए। वकील साहब ने उन्हें अच्छे-अच्छे कपड़े पहने, स्वाभिमान के साथ कदम मिलाते हुए देखा। उनसे बहुत मुस्कराकर मिले। फसल का हाल-चाल पूछा। बूढ़े हरदास ने एक ऐसे लहजे में जिससे पूरी जिम्मेदारी और चौधरूपे की शान टपकती थी, जवाब दिया — हुजूर के कदमों की बरकत से सब चैन है। किसी तरह की तकलीफ नहीं आपकी दी हुई नेमत खाते हैं और आपका जस गाते हैं। हमारे राजा और सरकार जो कुछ हैं, आप हैं और आपके लिए जान तक हाजिर है।

ठाकुर साहब ने तेवर बदलकर कहा — मैं अपनी खुशामद सुनने का आदी नहीं हूँ।

बूढ़े हरदास के माथे पर बल पड़े, अभिमान को चोट लगी। बोला — मुझे भी खुशामद करने की आदत नहीं है।

ठाकुर साहब ने ऐंठकर जवाब दिया — तुम्हें रईसों से बात करने की तमीज नहीं। ताकत की तरह तुम्हारी अक़्ल भी बुढ़ापे की भेंट चढ़ गई।

हरदास ने अपने साथियों की तरफ देखा। गुस्से की गर्मी से सब की आँख फैली हुई और धीरज की सर्दी से माथे सिकुड़े हुए थे। बोला — हम आपकी रैयत हैं लेकिन हमको अपनी आबरू प्यारी है और चाहे आप जमींदार को अपना सिर दे दें आबरू नहीं दे सकते।

हरदास के कई मनचले साथियों ने बुलन्द आवाज में ताईद की — आबरू जान के पीछे है।

ठाकुर साहब के गुस्से की आग भड़क उठी और चेहरा लाल हो गया, और जोर से बोले — तुम लोग जबान सम्हालकर बातें करो वर्ना जिस तरह गले में झोलियाँ लटकाये आये थे उसी तरह निकाल दिये जाओगे। मैं प्रद्युम्न सिंह हूँ, जिसने तुम जैसे कितने ही हेकड़ों को इसी जगह कुचलवा डाला है। यह कहकर उन्होंने अपने रिसाले के सरदार अर्जुनसिंह को बुलाकर कहा — ठाकुर, अब इन चींटियों के पर निकल आये हैं, कल शाम तक इन लोगों से मेरा गाँव साफ हो जाए।

हरदास खड़ा हो गया। गुस्सा अब चिनगारी बनकर आँखों से निकल रहा था। बोला — हमने इस गाँव को छोड़ने के लिए नहीं बसाया है। जब तक जियेंगे इसी गाँव में रहेंगे, यहीं पैदा होंगे और यहीं मरेंगे। आप बड़े आदमी हैं और बड़ों की समझ भी बड़ी होती है। हम लोग अक्खड़ गंवार हैं। नाहक गरीबों की जान के पीछ मत पड़िए। खून-खराबा हो जायेगा। लेकिन आपको यही मंजूर है तो हमारी तरफ से आपके सिपाहियों को चुनौती है, जब चाहे दिल के अरमान निकाल लें।

इतना कहकर ठाकुर साहब को सलाम किया और चल दिया। उसके साथी गर्व के साथ अकड़ते हुए चले। अर्जुनसिंह ने उनके तेवर देखे। समझ गया कि यह लोहे के चने हैं लेकिन शोहदों का सरदार था, कुछ अपने नाम की लाज थी। दूसरे दिन शाम के वक्त जब रात और दिन में मुठभेड़ हो रही थी, इन दोनों जमातों का सामना हुआ। फिर वह धौल-धप्पा हुआ कि जमीन थर्रा गयी। जबानों ने मुँह के अन्दर वह मार्के दिखाये कि सूरज डर के मारे पश्छिम में जा छिपा। तब लाठियों ने सिर उठाया लेकिन इससे पहले कि वह डाक्टर साहब की दुआ और शुक्रिये की मुस्तहक हों अर्जुनसिंह ने समझदारी से काम लिया। ताहम उनके चन्द आदमियों के लिए गुड़ और हल्दी पीने का सामान हो चुका था।

वकील साहब ने अपनी फौज की यह बुरी हालतें देखीं, किसी के कपड़े फटे हुए, किसी के जिस्म पर गर्द जमी हुई, कोई हाँफते-हाँफते बेदम (खून बहुत कम नजर आया क्योंकि यह एक अनमोल चीज है और इसे डंडों की मार से बचा लिया गया) तो उन्होंने अर्जुनसिंह की पीठ ठोकी और उसकी बहादुरी और जाँबाजी की खूब तारीफ की। रात को उनके सामने लड्डू और इमरतियों की ऐसी वर्षा हुई कि यह सब गर्द-गुबार धुल गया। सुबह को इस रिसाले ने ठंडे-ठंडे घर की रूह ली और कसम खा गए कि अब भूलकर भी इस गाँव का रूख न करेंगे।

तब ठाकुर साहब ने गाँव के आदमियों को चौपाल में तलब किया। उनके इशारे की देर थी। सब लोग इकट्ठे हो गए। अख्तियार और हुकूमत अगर घमंड की मसनद से उतर आए तो दुश्मनों को भी दोस्त बना सकती है। जब सब आदमी आ गये तो ठाकुर साहब एक-एक करके उनसे बगलगीर हुए ओर बोले — मैं ईश्वर का बहु ऋणी हूँ कि मुझे गाँव के लिए जिन आदमियों की तलाश थी, वह लोग मिल गये। आपको मालूम है कि यह गाँव कई बार उजड़ा और कई बार बसा। उसका कारण यही था कि वे लोग मेरी कसौटी पर पूरे न उतरते थे। मैं उनका दुश्मन नहीं था लेकिन मेरी दिली आरजू यह थी कि इस गाँव में वे लोग आबाद हों जो जुल्म का मर्दों की तरह सामना

करें, जो अपने अधिकारों और रिआयतों की मर्दों की तरह हिफाजत करें, जो हुकूमत के गुलाम न हों, जो रोब और अख्तियार की तेज निगाह देखकर बच्चों की तरह डर से सहम न जाएँ। मुझे इतमीनान है कि बहुत नुकसान और शर्मिंदगी और बदनामी के बाद मेरी तमन्नाएँ पूरी हो गयीं। मुझे इतमीनान है कि आप उल्टी हवाओं और ऊँची-ऊँची उठनेवाली लहरों का मुकाबला कामयाबी से करेंगे। मैं आज इस गाँव से अपना हाथ खींचता हूँ। आज से यह आपकी मिल्कियत है। आप ही इसके जमींदार और मालिक हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि आप फलें-फूलें ओर सरसब्ज हों।

इन शब्दों ने दिलों पर जादू का काम किया। लोग स्वामिभक्ति के आवेश से मस्त हो-होकर ठाकुर साहब के पैरों से लिपट गये और कहने लगे — हम आपके, कदमों से जीते-जी जुदा न होंगे। आपका-सा कद्रदान और रिआया-परवर बुजुर्ग हम कहाँ पायेंगे। वीरों की भक्ति और सहानुभूति, वफादारी और एहसान का एक बड़ा दर्दनाक और असर पैदा करने वाला दृश्य आँखों के सामने पेश हो गया। लेकिन ठाकुर साहब अपने उदार निश्चय पर दृढ़ रहे और गो पचास साल से ज्यादा गुजर गये हैं। लेकिन उन्हीं बंजारों के वारिस अभी तक मौजा साहषगंज के माफीदार हैं। औरतें अभी तक ठाकुर प्रद्युम्न सिंह की पूजा और मन्नतें करती हैं

और गो अब इस मौजे के कई नौजवान दौलत और हुकूमत की बुलंदी पर पहुँच गये हैं लेकिन बूढ़े और अक्खड़ हरदास के नाम पर अब भी गर्व करते हैं। और भादों सुदी एकादशी के दिन अभी उसी मुबारक फतेह की यादगार में जश्न मनाये जाते हैं।

[जमाना, अक्तूबर 1913]

बोहनी

उस दिन जब मेरे मकान के सामने सड़क की दूसरी तरफ एक पान की दुकान खुली तो मैं बाग-बाग हो उठा। इधर एक फर्लांग तक पान की कोई दुकान न थी और मुझे सड़क के मोड़ तक कई चक्कर करने पड़ते थे। कभी वहाँ कई-कई मिनट तक दुकान के सामने खड़ा रहना पड़ता था। चौराहा है, गाहकों की हरदम भीड़ रहती है। यह इन्तजार मुझको बहुत बुरा लगता था पान की लत मुझे कब पड़ी, और कैसे पड़ी, यह तो अब याद नहीं आता लेकिन अगर कोई बना-बनाकर गिलौरियाँ देता जाय तो शायद मैं कभी इन्कार न करूँ। आमदनी का बड़ा हिस्सा नहीं तो छोटा हिस्सा जरूर पान की भेंट चढ़ जाता है। कई बार इरादा किया कि पानदान खरीद लूँ लेकिन पानदान खरीदना कोई खाला जी का घर नहीं और फिर मेरे लिए तो हाथी खरीदने से किसी तरह कम नहीं है। और मान लो जान पर खेलकर एक बार खरीद लूँ तो पानदान कोई परी की थैली तो नहीं कि इधर इच्छा हुई और गिलौरियाँ निकल पड़ीं। बाजार से पान लाना, दिन में पाँच बार फेरना, पानी से तर करना, सड़े हुए टुकड़ों को

तराश्कर अलग करना क्या कोई आसान काम है! मैंने बड़े घरों की औरतों को हमेशा पानदान की देखभाल और प्रबन्ध में ही व्यस्त पाया है। इतना सरदर्द उठाने की क्षमता होती तो आज मैं भी आदमी होता। और अगर किसी तरह यह मुश्किल भी हल हो जाय तो सुपाड़ी कौन काटे? यहाँ तो सरौते की सूरत देखते ही कंपकंपी छूटने लगती है। जब कभी ऐसी ही कोई जरूरत आ पड़ी, जिसे टाला नहीं जा सकता, तो सिल पर बट्टे से तोड़ लिया करता हूँ लेकिन सरौते से काम लूँ यह गैर-मुमकिन। मुझे तो किसी को सुपाड़ी काटते देखकर उतना ही आश्चर्य होता है जितना किसी को तलवार की धार पर नाचते देखकर। और मान लो यह मामला भी किसी तरह हल हो जाय, तो आखिरी मंजिल कौन फतेह करे। कत्था और चूना बराबर लगाना क्या कोई आसान काम है? कम से कम मुझे तो उसका ढंग नहीं आता। जब इस मामले में वे लोग रोज गलतियाँ करते हैं तो इस कला में दक्ष हैं तो मैं भला किस खेत की मूली हूँ। तमोली ने अगर चूना ज्यादा कर दिया तो कत्था और ले लिया, उस पर उसे एक डांट भी बतायी, आँसू पूंछ गये। मुसीबत का सामना तो उस वक्त हो होता है, जब किसी दोस्त के घर जायँ। पान अन्दर से आयी तो इसके सिवाय कि जान-बूझकर मक्खी निगलें, समझ-बूझकर जहर का घूंट गले से नीचे उतारें और चारा ही क्या है।

शिकायत नहीं कर सकते, सभ्यता बाधक होती है। कभी-कभी पान मुँह में डालते ही ऐसा मालूम होता है, कि जीभ पर कोई चिनगारी पड़ गयी, गले से लेकर छाती तक किसी ने पारा गरम करके उड़ेल दिया, मगर घुटकर रह जाना पड़ता है। अन्दाजे में इस हद तक गलती हो जाय यह तो समझ में आने वाली बात नहीं। मैं लाख अनाड़ी हूँ लेकिन कभी इतना ज्यादा चूना नहीं डालता,हाँ दो-चार छाले पड़ जाते हैं। तो मैं समझता हूँ, यही अन्तःपुर के कोप की अभिव्यक्ति है। आखिर वह आपकी ज्यादतियों का प्रोटेस्ट क्यों कर करें। खामोश बायकाट से आप राजी नहीं होते, दूसरा कोई हथियार उनके हाथ में है नही।

भंवों की कमान और बरौनियों का नेजा और मुस्कराहट का तीर उस वक्त बिलकुल कोई असर नहीं करते जब आप आँखें लाल किये, आस्तीनें समेटे इसलिए आसमान सर पर उठा लेते हैं कि नाश्ता और पहले क्यों नहीं तैयार हुआ, तब सालन में नमक और पान में चूना ज्यादा कर देने के सिवाय बदला लेने का उनके हाथ में और क्या साधन रह जाता है!

खैर, तीन-चार दिन के बाद एक दिन मैं सुबह के वक्त तम्बोलिन की दुकान पर गया तो उसने मेरी फरमाइश पूरी करने में ज्यादा मुस्तैदी न दिखलायी। एक मिनट तक तो पान फेरती रही, फिर अन्दर चली गयी और कोई मसाला लिये हुए निकली। मैं दिल

में खुश हुआ कि आज बड़े विधिपूर्वक गिलौरियाँ बना रही है। मगर अब भी वह सड़क की ओर प्रतीक्षा की आँखों से ताक रही थी कि जैसे दुकान के सामने कोई ग्राहक ही नहीं और ग्राहक भी कैसा, जो उसका पड़ोसी है और दिन में बीसियों ही बार आता है! तब तो मैंने जरा झुंझलाकर कहा — मैं कितनी देर से खड़ा हूँ, कुछ इसकी भी खबर है?

तम्बोलिन ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा — हाँ बाबू जी, आपको देर तो बहुत हुई लेकिन एक मिनट और ठहर जाइए। बुरा न मानिएगा बाबू जी, आपके हाथ की बोहनी अच्छी नहीं है। कल आपकी बोहनी हुई थी, दिन में कुल छः आने की बिक्री हुई। परसो भी आप ही की बोहनी थी, आठ आने के पैसे दुकान में आये थे। इसके पहले दो दिन पंडित जी की बोहनी हुई थी, दोपहर तक ढाई रुपये आ गये थे। कभी किसी का हाथ अच्छा नहीं होता बाबू जी!

मुझे गोली-सी लगी। मुझे अपने भाग्यशाली होने का कोई दवा नहीं है, मुझसे ज्यादा अभागे दुनिया में नहीं होंगे। इस साम्राज्य का अगर में बादशाह नहीं, तो कोई ऊँचा मंसबदार जरूर हूँ। लेकिन यह मैं कभी गवारा नहीं कर सकता कि नहूसत का दाग बर्दाश्त कर लूँ। कोई मुझसे बोहनी न कराये, लोग सुबह को

मेरा मुँह देखना अपशकुन समझे, यह तो घोर कलंक की बात है।

मैंने पान तो ले लिया लेकिन दिल में पक्का इरादा कर लिया कि इस नहूसत के दाग को मिटाकर ही छोड़ूँगा। अभी अपने कमरे में आकर बैठा ही था कि मेरे एक दोस्त आ गये। बाजार साग-

भाजी लेने जा रहे थे। मैंने उनसे अपनी तम्बोलिन की खूब तारीफ की। वह महाशय जरा सौंदर्य-प्रेमी थे और मजाकिया भी। मेरी ओर शरारत-भरी नजरों से देखकर बोले — इस वक्त तो भाई, मेरे पास पैसे नहीं हैं और न अभी पानों की जरूरत ही है। मैंने कहा — पैसे मुझसे ले लो।

‘हाँ, यह मंजूर है, मगर कभी तकाजा मत करना।’

‘यह तो टेढ़ी खीर है।’

‘तो क्या मुफ्त में किसी की आँख में चढ़ना चाहते हो?’

मजबूर होकर उन हजरत को एक ढोली पान के दाम दिये। इसी तरह जो मुझसे मिलने आया,

उससे मैंने तम्बोलिन का बखान किया। दोस्तों ने मेरी खूब हंसी उड़ायी, मुझ पर खूब फबतियाँ कसीं, मुझे ’छिपे रुस्तम’ — भगतजी’ और न जाने क्या-क्या नाम दिये गये लेकिन मैंने सारी

आफतें हँसकर टालीं। यह दाग मिटाने की मुझे धुन सवार हो गयी।

दूसरे दिन जब मैं तम्बोलिन की दुकान पर गया तो उसने फौरन पान बनाये और मुझे देती हुई बोली — बाबू जी, कल तो आपकी बोहनी बहुत अच्छी हुई, कोई साढे तीन रुपये आये। अब रोज बोहनी करा दिया करो।

2

तीन-चार दिन लगातार मैंने दोस्तों से सिफारिशें कीं, तम्बोलिन की स्तुति गायी और अपनी गिरह से पैसे खर्च करके सुर्खरुई हासिल की। लेकिन इतने ही दिनों में मेरे खजाने में इतनी कमी हो गयी कि खटकने लगी। यह स्वांग अब ज्यादा दिनों तक न चल सकता था, इसलिए मैंने इरादा किया कि कुछ दिनों उसकी दुकान से पान लेना छोड़ दूँ। जब मेरी बोहनी ही न होगी, तो मुझे उसकी बिक्री की क्या फिक्र होगी। दूसरे दिन हाथ-मुँह धोकर मैंने एक इलायची खा ली और अपने काम पर लग गया।

लेकिन मुश्किल से आधा घण्टा बीता हो, कि किसी की आहट मिली। आँख ऊपर को उठाता हूँ तो तम्बोलिन गिलौरियाँ लिये

सामने खड़ी मुस्करा रही है। मुझे इस वक्त उसका आना जी पर बहुत भारी गुजरा लेकिन इतनी बेमुरौवती भी तो न हो सकती थी कि दुत्कार दूँ। बोला — तुमने नाहक तकलीफ की, मैं तो आ ही रहा था।

तम्बोलिन ने मेरे हाथ में गिलौरियाँ रखकर कहा — आपको देर हुई तो मैंने कहा मैं ही चलकर बोहनी कर आऊँ। दुकान पर ग्राहक खड़े हैं, मगर किसी की बोहनी नहीं की।

क्या करता, गिलौरियाँ खायीं और बोहनी करायी। जिस चिन्ता से मुक्ति पाना चाहता था, वह फर फन्दे की तरह गर्दन पर चिपटी हुई थी। मैंने सोचा था, मेरे दोस्त दो-चार दिन तक उसके यहाँ पान खायेंगे तो आप ही उससे हिल जायेंगे और मेरी सिफारिश की जरूरत न रहेगी। मगर तम्बोलिन शायद पान के साथ अपने रूप का भी कुछ मोल करती थी इसलिए एक बार जो उसकी दुकान पर गया, दुबारा न गया। एक-दो रसिक नौजवान अभी तक आते थे, वह लोग एक ही हँसी में पान और रूप-दर्शन दोनों का आनन्द उठाकर चलते बने थे। आज मुझे अपनी साख बनाये रखने के लिए फिर पूरे डेढ़ रुपये खर्च करने पड़े, बधिया बैठ गयी।

दूसरे दिन मैंने दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया, मगर जब तम्बोलिन ने नीचे से चीखना, चिल्लाना और खटखटाना शुरू किया तो मजबूरन दरवाजा खोलना पड़ा। आँखें मलता हुआ नीचे गया, जिससे मालूम हो कि आज नींद आ गयी थी। फिर बोहनी करानी पड़ी। और फिर वही बला सर पर सवार हुई। शाम तक दो रुपये का सफाया हो गया। आखिर इस विपत्ति से छुटकारा पाने का यही एक उपाय रह गया कि वह घर छोड़ दूँ।

3

मैंने वहाँ से दो मील पर एक अनजान मुहल्ले में एक मकान ठीक किया और रातों-रात असबाब उठवाकर वहाँ जा पहुँचा। वह घर छोड़कर मैं जितना खुश हुआ शायद कैदी जेलखाने से भी निकलकर उतना खुश न होता होगा। रात को खूब गहरी नींद सोया, सबेरा हुआ तो मुझे उस पंछी की आजादी का अनुभव हो रहा था जिसके पर खुल गये हैं। बड़े इतमीनान से सिगरेट पिया, मुँह-हाथ धोया, फिर अपना सामान ढंग से रखने लगा। खाने के लिए किसी होटल की भी फिक्र थी, मगर उस हिम्मत तोड़नेवाली बला से फतेह पाकर मुझे जो खुशी हो रही थी, उसके मुकाबले

में इन चिन्ताओं की कोई गिनती न थी। मुँह-हाथ धोकर नीचे उतरा। आज की हवा में भी आजादी का नशा था हर एक चीज मुस्कराती हुई मालूम होती थी। खुश-खुश एक दुकान पर जाकर पान खाये और जीने पर चढ़ ही रहा था कि देखा वह तम्बोलिन लपकी जा रही है। कुछ न पूछो, उस वक्त दिल पर क्या गुजरी। बस, यही जी चाहता था कि अपना और उसका दोनों का सिर फोड़ लूँ। मुझे देखकर वह ऐसी खुश हुई जैसे कोई धोबी अपना खोया हुआ गधा पा गया हो। और मेरी घबराहट का अन्दाजा बस उस गधे की दिमागी हालत से कर लो! उसने दूर ही से कहा — वाह बाबू जी, वाह, आप ऐसा भागे कि किसी को पता भी न लगा। उसी मुहल्ले में एक से एक अच्छे घर खाली हैं। मुझे क्या मालूम था कि आपको उस घर में तकलीफ थी। नहीं तो मेरे पिछवाड़े ही एक बड़े आराम का मकान था। अब मैं आपको यहाँ न रहने दूँगी। जिस तरह हो सकेगा, आपको उठा ले जाऊँगी। आप इस घर का क्या किराया देते हैं?

मैंने रोनी सूरत बना कर कहा — दस रुपये।

मैंने सोचा था कि किराया इतना कम बताऊँ जिसमें यह दलील उसके हाथ से निकल जाय। इस घर का किराया बीस रुपये हैं, दस रुपये में तो शायद मरने को भी जगह न मिलेगी। मगर

तम्बोलिन पर इस चकमे का कोई असर न हुआ। बोली — इस जरा-से घर के दस रुपये! आप आठ ही दीजियेगा और घर इससे अच्छा न हो तो जब भी जी चाहे छोड़ दीजिएगा। चलिए, मैं उस घर की कुंजी लेती आई हूँ। इसी वक्त आपको दिखा दूँ।

मैंने त्योरी चढ़ाते हुए कहा — आज ही तो इस घर में आया हूँ, आज ही छोड़ कैसे सकता हूँ। पेशगी किराया दे चुका हूँ।

तम्बोलिन ने बड़ी लुभावनी मुस्कराहट के साथ कहा — दस ही रुपये तो दिये हैं, आपके लिए दस रुपये कौन बड़ी बात हैं यही समझ लीजिए कि आप न चले तो मैं उजड़ जाऊँगी। ऐसी अच्छी बोहनी वहाँ और किसी की नहीं है। आप नहीं चलेंगे तो मैं ही अपनी दुकान यहाँ उठा लाऊँगी।

मेरा दिल बैठ गया। यह अच्छी मुसीबत गले पड़ी। कहीं सचमुच चुड़ैल अपनी दुकान न उठा

लाये। मेरे जी में तो आया कि एक फटकार बताऊँ पर जबान इतनी बेमुरौवत न हो सकी। बोला — मेरा कुछ ठीक नहीं है, कब तक रहूँ, कब तक न रहूँ। आज ही तबादला हो जाय तो भागना पड़े। तुम न इधर की रहो, न उधर की।

उसने हसरत-भरे लहजे में कहा — आप चले जायेंगे तो मैं भी चली जाऊँगी। अभी आज तो आप जाते नहीं।

‘मेरा कुछ ठीक नहीं है।’

‘तो मैं रोज यहाँ आकर बोहनी करा लिया करूँगी।’

‘इतनी दूर रोज आओगी?’

‘हाँ चली आऊँगी। दो मीन ही तो है। आपके हाथ की बोहनी हो जायेगी। यह लीजिए गिलौरियाँ लाई हूँ। बोहनी तो करा दीजिए।’

मैंने गिलौरियाँ लीं, पैसे दिये और कुछ गश की-सी हालत में ऊपर जाकर चारपाई पर लेट गया।

अब मेरी अक़्ल कुछ काम नहीं करती कि इन मुसीबतों से क्योंकर गला छुड़ाऊँ। तब से इसी फिक्र में पड़ा हुआ हूँ। कोई भागने की रूह नजर नहीं आती। सुर्खरू भी रहना चाहता हूँ, बेमुरौवती भी नहीं करना चाहता और इस मुसीबत से छुटकारा भी पाना चाहता हूँ। अगर कोई साहब मेरी इस करुण स्थिति पर मुझे ऐसा कोई उपाय बतला दें तो जीवन-भर उसका कृतज्ञ रहूँगा।

[‘प्रेमचालीसा’ से]

मंदिर और मस्जिद

चौधरी इतरतअली 'कड़े' के बड़े जागीरदार थे। उनके बुजुर्गों ने शाही जमाने में अंग्रेजी सरकार की बड़ी-बड़ी खिदमत की थीं। उनके बदले में यह जागीर मिली थी। अपने सुप्रबन्धन से उन्होंने अपनी मिल्कियत और भी बढ़ा ली थी और अब इस इलाके में उनसे ज्यादा धनी-मानी कोई आदमी न था। अंग्रेज हुक्काम जब इलाके में दौरा करने जाते तो चौधरी साहब की मिजाजपुर्सी के लिए जरूर आते थे। मगर चौधरी साहब खुद किसी हाकिम को सलाम करने न जाते, चाहे वह कमिश्नर ही क्यों न हो। उन्होंने कचहरियों में न जाने का व्रत-सा कर लिया था। किसी इजलास-दरबार में भी न जाते थे। किसी हाकिम के सामने हाथ बांधकर खड़ा होना और उसकी हर एक बात पर 'जी हुजूर' करना अपनी शान के खिलाफ समझते थे। वह यथासाध्य किसी मामले-मुक़दमे में न पड़ते थे, चाहे अपना नुकसान ही क्यों न होता हो। यह काम सोलहों आने मुख्तारों के हाथ में था, वे एक के सौ करें या सौ के एक। फारसी और अरबी के आलिम थे, शरा के बड़े पाबन्द, सूद को हराम समझते, पांचों वक्त की नमाज अदा करते,

तीसों रोजे रखते और नित्य कुरान की तलावत (पाठ) करते थे। मगर धार्मिक संकीर्णता कहीं छू तक नहीं गयी थी। प्रातःकाल गंगा-स्नान करना उनका नित्य का नियम था। पानी बरसे, पाला पड़े, पर पाँच बजे वह कोस-भर चलकर गंगा तट पर अवश्य पहुँच जाते। लौटते वक्त अपनी चांदी की सुरही गंगाजल से भर लेते और हमेशा गंगाजी पीते। गंगाजी के सिवा वह और कोई पानी पीते ही न थे। शायद कोई योगी-यती भी गंगाजल पर इतनी श्रद्धा न रखता होगा। उनका सारा घर, भीतर से बाहर तक, सातवें दिन गऊ के गोबर से लीपा जाता था। इतना ही नही, उनके यहाँ बगीचे में एक पण्डित बारहों मास दुर्गा पाठ भी किया करते थे। साधु-संन्यासियों का आदर-सत्कार तो उनके यहाँ जितनी उदारता और भक्ति से किया जाता था, उस पर राजों को भी आश्चर्य होता था। यों कहिए कि सदाव्रत चलता था। उधर मुसलमान फकीरों का खाना बावर्चीखाने में पकता था और कोई सौ-सवा सौ आदमी नित्य एक दस्तरखान पर खाते थे। इतना दान-पुण्य करने पर भी उन पर किसी महाजन का एक कौड़ी का भी कर्ज न था। नीयत की कुछ ऐसी बरकत थी कि दिन-दिन उन्नति ही होती थी। उनकी रियासत में आम हुक्म था कि मुर्दों को जलाने के लिए, किसी यज्ञ या भोज के लिए, शादी-ब्याह के लिए सरकारी जंगल से जितनी लकड़ी चाहे काट लो, चौधरी

साहब से पूछने की जरूरत न थी। हिंदू असामियों की बारात में उनकी ओर से कोई न कोई जरूर शरीक होता था। नवेद के रुपये बंधे हुए थे, लड़कियों के विवाह में कन्यादान के रुपये मुकर्रर थे, उनको हाथी, घोड़े, तंबू, शामियाने, पालकी-नालकी, फर्श-जाजिमें, पंखे-चंवर, चांदी के महफिली सामान उनके यहाँ से बिना किसी दिक्कत के मिल जाते थे, माँगने-भर की देर रहती थी। इस दानी, उदार, यशस्वी आदमी के लिए प्रजा भी प्राण देने को तैयार रहती थी।

2

चौधरी साहब के पास एक राजपूत चपरासी था भजनसिंह। पूरे छः फुट का जवान था, चौड़ा सीना, बाने का लठैत, सैकड़ों के बीच से मारकर निकले आने वाला। उसे भय तो छू भी नहीं गया था। चौधरी साहब को उस पर असीम विश्वास था, यहाँ तक कि हज करने गये तो उसे भी साथ लेते गये थे। उनके दुश्मनों की कमी न थी, आस-पास के सभी जमींदार उनकी शक्ति और कीर्ति से जलते थे। चौधरी साहब के खौफ के मारे वे अपने असामियों पर मनमाना अत्याचार न कर सकते थे, क्योंकि वह निर्बलों का

पक्ष लेने के लिए सदा तैयार रहते थे। लेकिन भजनसिंह साथ हो, तो उन्हें दुश्मन के द्वार पर भी सोने में कोई शंका न थी। कई बार ऐसा हुआ कि दुश्मनों ने उन्हें घेर लिया और भजनसिंह अकेला जान पर खेलकर उन्हें बेदाग निकाल लाया। ऐसा आग में कूद पड़ने वाला आदमी भी किसी ने कम देखा होगा। वह कहीं बाहर जाता तो जब तक खैरितयत से घर न पहुँच जाय, चौधरी साहब को शंका बनी रहती थी कि कहीं किसी से लड़ न बैठा हो। बस, पालतू भेड़े की-सी दशा थी, जो जंजीर से छुटते ही किसी न किसी से टक्कर लेने दौड़ता है। तीनों लोक में चौधरी साहब कि सिवा उसकी निगाहों में और कोई था ही नही। बादशाह कहो, मालिक कहो, देवता कहो, जो कुछ थे चौधरी साहब थे।

मुसलमान लोग चौधरी साहब से जला करते थे। उनका ख्याल था कि वह अपने दीन से फिर गये हैं। ऐसा विचित्र जीवन-सिद्धांत उनकी समझ में क्योंकर आता। मुसलमान, सच्चा मुसलमान है तो गंगाजल क्यों पिये, साधुओं का आदर-सत्कार क्यों करे, दुर्गापाठ क्यों करावे? मुल्लाओं में उनके खिलाफ हंडिया पकती रहती थी और हिन्दुओं को जक देने की तैयारियाँ होती रहती थीं। आखिर यह राय तय पायी कि ठीक जन्माष्टमी कि दिन ठाकुरद्वारे पर हमला किया जाय और हिन्दुओं का सिर नीचा

कर दिया जाय, दिखा दिया जाय कि चौधरी साहब के बल पर फूले-फूले फिरना तुम्हारी भूल है। चौधरी साहब कर ही क्या लेंगे। अगर उन्होंने हिन्दुओं की हिमायत की, तो उनकी भी खबर ली जायगी, सारा हिन्दूपन निकल जायगा।

3

अंधेरी रात थी, कड़े के बड़े ठाकुरद्वारे में कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। एक वृद्ध महात्मा पोपले मुँह से तंबूरो पर ध्रुपद अलाप रहे थे और भक्तजन ढोल-मजीरे लिये बैठे थे कि इनका गाना बन्द हो, तो हम अपनी कीर्तन शुरू करें। भंडारी प्रसाद बना रहा था। सैकड़ों आदमी तमाशा देखने के लिए जमा थे।

सहसा मुसलमानों का एक दल लाठियाँ लिये हुए आ पहुँचा, और मंदिर पर पत्थर बरसाना शुरू किया। शोर मच गया — पत्थर कहाँ से आते हैं! ये पत्थर कौन फेंक रहा है! कुछ लोग मंदिर के बाहर निकलकर देखने लगे। मुसलमान लोग तो घात में बैठे ही थे, लाठियाँ जमानी शुरू कीं। हिन्दुओं के हाथ में उस समय

ढोल-मंजीरे के सिवा और क्या था। कोई मंदिर में आ छिपा, कोई किसी दूसरी तरफ भागा। चारों तरफ शोर मच गया।

चौधरी साहब को भी खबर हुई। भजनसिंह से बोले — ठाकुर, देखो तो क्या शोर-गुल है? जाकर बदमाशों को समझा दो और न माने तो दो-चार हाथ चला भी देना मगर खून-खच्चर न होने पाये।

ठाकुर यह शोर-गुल सुन-सुनकर दांत पीस रहे थे, दिल पर पत्थर की सिल रक्खे बैठे थे। यह आदेश सुना तो मुँहमाँगी मुराद पायी। शत्रु-भंजन डंडा कंधे पर रक्खा और लपके हुए मंदिर पहुंचे। वहाँ मुसलमानों ने घोर उपद्रव मचा रक्खा था। कई आदमियों का पीछा करते हुए मंदिर में घुस गये थे, और शीशे के सामान तोड़-फोड़ रहे थे।

ठाकुर की आँखों में खून उतर आया, सिर पर खून सवार हो गया। ललकारते हुए मंदिर मे घुस गया और बदमाशों को पीटना शुरू किया, एक तरफ तो वह अकेला और दूसरी तरफ पचासों आदमी! लेकिन वाह रे शेर! अकेले सबके छक्के छुड़ा दिये, कई आदमियों को मार गिराया। गुस्से में उसे इस वक्त कुछ न सूझता था, किसी के मरने-जीने की परवा न थी। मालूम नहीं, उसमें इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी थी। उसे ऐसा जान पड़ता

था कि कोई दैवी शक्ति मेरी मदद कर रही है। कृष्ण भगवान् स्वयं उसकी रक्षा करते हुए मालूम होते थे। धर्म-संग्राम में मनुष्यों से अलौकिक काम हो जाते हैं।

उधर ठाकुर के चले आने के बाद चौधरी साहब को भय हुआ कि कहीं ठाकुर किसी का खून न कर डालो, उसके पीछे खुद भी मंदिर में आ पहुंचे। देखा तो कुहराम मचा हुआ हैं। बदमाश लोग अपनी जान ले-लेकर बेतहाशा भागे जा रहे हैं, कोई पड़ा कराह रहा है, कोई हाय-हाय कर रहा है। ठाकुर को पुकारना ही चाहते थे कि सहसा एक आदमी भागा हुआ आया और उनके सामने आता-आता जमीन पर गिर पड़ा। चौधरी साहब ने उसे पहचान लिया और दुनिया आँखों में अंधेरी हो गयी। यह उनका इकलौता दामाद और उनकी जायदाद का वारिस शाहिद हुसैन था!

चौधरी ने दौड़कर शाहिद को संभाला और जोर से बोला — ठाकुर, इधर आओ — लालटेन!....लालटेन! आह, यह तो मेरा शाहिद है!

ठाकुर के हाथ-पाँव फूल गये। लालटेन लेकर बाहर निकले। शाहिद हुसैन ही थे। उनका सिर फट गया था और रक्त उछलता हुआ निकल रहा था।

चौधरी ने सिर पीटते हुए कहा — ठाकुर, तूने तो मेरा चिराग ही गुल कर दिया।

ठाकुर ने थरथर काँपते हुए कहा — मालिक, भगवान् जानते हैं मैंने पहचाना नहीं।

चौधरी — नहीं, मैं तुम्हारे ऊपर इलजाम नहीं रखता। भगवान् के मंदिर में किसी को घुसने का अख्तियार नहीं है। अफसोस यही है कि खानदान का निशान मिट गया, और तुम्हारे हाथों! तुमने मेरे लिए हमेशा अपनी जान हथेली पर रक्खी, और खुदा ने तुम्हारे ही हाथों मेरा सत्यानाश करा दिया।

चौधरी साहब रोते जाते थे और ये बातें कहते जाते थे। ठाकुर ग्लानि और पश्चात्ताप से गड़ा जाता था। अगर उसका अपना लड़का मारा गया होता, तो उसे इतना दुःख न होता। आह! मेरे हाथों मेरे मालिक का सर्वनाश हुआ! जिसके पसीने की जगह वह खून बहाने को तैयार रहता था, जो उसका स्वामी ही नहीं, इष्ट था, जिसके जरा-से इशारे पर वह आग में कूद सकता था, उसी के वंश की उसने जड़ काट दी! वह उसकी आस्तीन का सांप निकला! रुंधे हुए कंठ से बोला — सरकार, मुझसे बढ़कर अभागा और कौन होगा। मेरे मुँह में कालिख लग गयी।

यह कहते-कहते ठाकुर ने कमर से छुरा निकाल लिया। वह अपनी छाती में छुरा घोंपकर कालिमा को रक्त से धोना ही चाहते थे कि चौधरी साहब ने लपककर छुरा उनके हाथों से छीन लिया और बोले — क्या करते हो, होश संभालो। ये तकदीर के करिश्मे हैं, इसमे तुम्हारा कोई कसूर नहीं, खुदा को जो मंजूर था, वह हुआ। मैं अगर खुद शैतान के बहकावे में आकर मन्दिर में घुसता और देवता की तौहीन करता, और तुम मुझे पहचानकर भी कत्ल कर देते तो मैं अपना खून माफ कर देता। किसी के दीन की तौहीन करने से बड़ा और कोई गुनाह नहीं हैं। गो इस वक्त मेरा कलेजा फटा जाता है, और यह सदमा मेरी जान ही लेकर छोड़ेगा, पर खुदा गवाह है कि मुझे तुमसे जरा भी मलाल नहीं है। तुम्हारी जगह मैं होता, तो मैं भी यही करता, चाहे मेरे मालिक का बेटा ही क्यों न होता। घरवाले मुझे तानो से छेदेंगे, लड़की रो-रोकर मुझसे खून का बदला माँगेंगी, सारे मुसलान मरे खून के प्यासे हो जाएँगे, मैं काफिर और बेदीन कहा जाऊँगा, शायद कोई दीन का पक्का नौजवान मुझे कत्ल करने पर भी तैयार हो जाय, लेकिन मै हक से मुँह न मोड़ूँगा। अंधेरी रात है, इसी दम यहाँ से भाग जाओ, और मेरे इलाके में किसी छावनी में छिप जाओ। वह देखो, कई मुसलमान चले आ रहे हैं — मेरे घरवाले भी हैं — भागो, भागो!

4

साल-भर भजनसिंह चौधरी साहब के इलाके में छिपा रहा। एक ओर मुसलमान लोग उसकी टोह में लगे रहते थे, दूसरी ओर पुलिस। लेकिन चौधरी उसे हमेशा छिपाते रहते थे। अपने समाज के ताने सहे, अपने घरवालों का तिरस्कार सहा, पुलिस के वार सहे, मुल्लाओं की धमकियाँ सहीं, पर भजनसिंह की खबर किसी का कानों-कान न होने दी। ऐसे वफादार स्वामिभक्त सेवक को वह जीते जी निर्दय कानून के पंजे में न देना चाहते थे।

उनके इलाके की छावनियों में कई बार तलाशियाँ हुईं, मुल्लाओं ने घर के नौकरों, मामाओं, लौंडियों को मिलाया, लेकिन चौधरी ने ठाकुर को अपने एहसानों की भांति छिपाये रक्खा।

लेकिन ठाकुर को अपने प्राणों की रक्षा के लिए चौधरी साहब को संकट में पड़े देखकर असहय वेदना होती थी। उसके जी में बार-बार आता था, चलकर मालिक से कह दूँ — मुझे पुलिस के हवाले कर दीजिए। लेकिन चौधरी साहब बार-बार उसे छिपे रहने की ताकीद करते रहते थे।

जाड़ों के दिन थे। चौधरी साहब अपने इलाके का दौर कर रहे थे। अब वह मकान पर बहुत कम रहते थे। घरवालों के शब्द-बाणों से बचने का यही उपाय था। रात को खाना खाकर लेटे ही थे कि भजनसिंह आकर सामने खड़ा हो गया। उसकी सूरत इतनी बदल गई थी कि चौधरी साहब देखकर चौंक पड़े। ठाकुर ने कहा — सरकार अच्छी तरह है?

चौधरी — हाँ, खुदा का फजल है। तुम तो बिल्कुल पहचाने ही नही जाते। इस वक्त कहाँ से आ रहे हो?

ठाकुर — मालिक, अब तो छिपकर नहीं रहा जाता। हुक्म हो तो जाकर अदालत में हाजिर हो जाऊँ। जो भाग्य में लिखा होगा, व होगा। मेरे कारन आपको इतनी हैरानी हो रही है, यह मुझसे नहीं देखा जाता।

चौधरी — नहीं ठाकुर, मेरे जीते जी नही। तुम्हें जान-बूझकर भाड़ के मुँह में नहीं डाल सकता। पुलिस अपनी मर्जी के माफिक शहादातें बना लेगी, और मुफ्त में तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा। तुमने मेरे लिए बड़े-बड़े खतरे सहे हैं। अगर मैं तुम्हारे लिए इतना भी न कर सकूँ, तो मुझसे कुछ मत कहना।

ठाकुर — कहीं किसी ने सरकार...

चौधरी — इसका बिल्कुल कम न करो। जब तक खुदा को मंजूर न होगा, कोई मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकता। तुम अब जाओ, यहाँ ठहरना खतरनाक है।

ठाकुर — सुनता हूँ, लोगो ने आपसे मिलना-जुलना छोड़ दिया हैं

चौधरी — दुश्मनों का दूर रहना ही अच्छा।

लेकिन ठाकुर के दिल में जो बात जम गई थी, वह न निकली। इस मुलाकात ने उसका इरादा और भी पक्का कर दिया। इन्हें मेरे कारन यों मारे-मारे फिरना पड़ रहा है। यहाँ इनका कौन अपना बैठा हुआ? जो चाहे आकर हमला कर सकता है। मेरी इस जिंदगानी को धिक्कार!

प्रातःकाल ठाकुर जिला हाकिम के बंगले पर पहुँचा। साहब ने पूछा — तुम अब तक चौधरी के कहने से छिपा था?

ठाकुर — नहीं हजूर, अपनी जान के खौफ से।

5

चौधरी साहब ने यह खबर सुनी, तो सन्नाटे में आ गए। अब क्या हो? अगर मुकदमे की पैरवी न की गई तो ठाकुर का बचना

मुश्किल है। पैरवी करते है, तो इसलामी दुनिया में तहलका पड़ जाता है। चारों तरफ से फतवे निकलने लगेंगे। उधर मुसलमानों ने ठान ली कि इसे फांसी दिलाकर ही छोड़ेंगे। आपस में चंदा किया गया। मुल्लाओं ने मसजिद में चन्दे की अपील की, द्वार-द्वार झोली बाँधकर घूमे। इस पर कौमी मुकदमे का रंग चढ़ाया गया। मुसलमान वकीलों को नाम लूटने का मौका मिला। आसपास के जिलों में लोग जिहाद में शरीक होने के लिए आने लगे।

चौधरी साहब ने भी पैरवी करने का निश्चय किया, चाहे कितनी ही आफते क्यों न सिर पर आ पड़े। ठाकुर उन्हें इंसाफ की निगाह में बेकसूर मालूम होता था और बेकसूर की रक्षा करने में उन्हें किसी का खौफ न था, घर से निकल खड़े हुए और शहर में जाकर डेरा जमा लिया।

छः महीने तक चौधरी साहब ने जान लड़ाकर मुकदमे की पैरवी की। पानी की तरह रुपये बहाये, आँधी की तरह दौड़े। वह सब किया जो जिन्दगी में कभी न किया था, और न पीछे कभी किया। अहलकारों की खुशामदें कीं, वकीलों के नाज उठाये, हकिमों को नजरें दीं और ठाकुर को छुड़ा लिया। सारे इलाके में धूम मच गई। जिसने सुना, दंग रह गया। इसे कहते हैं शराफत! अपने नौकर को फांसी से उतार लिया।

लेकिन साम्प्रदायिक द्वेष ने इस सत्कार्य को और ही आँखों से देखा — मुसलमान झल्लाये, हिन्दुओं ने बगलें बजाईं। मुसलमान समझे इनकी रही-सही मुसलमानी भी गायब हो गई। हिन्दुओं ने खयाल किया, अब इनकी शुद्धि कर लेनी चाहिए, इसका मौका आ गया। मुल्लाओं ने जोर-जोर से तबलीग की हांक लगानी शुरू की, हिन्दुओं ने भी संगठन का झंडा उठाया। मुसलमानों की मुसलमानी जाग उठी और हिन्दुओं का हिन्दुत्व। ठाकुर के कदम भी इस रेले में उखड़ गये। मनचले थे ही, हिन्दुओं के मुखिया बन बैठे। जिन्दगी मे कभी एक लोटा जल तक शिव को न चढ़ाया था, अब देवी-देवताओं के नाम पर लठ चलाने के लिए उद्यत हो गए। शुद्धि करने को कोई मुसलमान न मिला, तो दो-एक चमारों ही की शुद्धि करा डाली। चौधरी साहब के दूसरे नौकरों पर भी असर पड़ा; जो मुसलमान कभी मसजिद के सामने खड़े न होते थे, वे पांचों वक्त की नमाज अदा करने लगे, जो हिन्दू कभी मन्दिरों में झाँकते न थे, वे दोनों वक्त सन्ध्या करने लगे।

बस्ती में हिन्दुओं की संख्या अधिक थी। उस पर ठाकुर भजनसिंह बने उनके मुखिया, जिनकी लाठी का लोह सब मानते थे। पहले मुसलमान, संख्या में कम होने पर भी, उन पर गालिब रहते थे, क्योंकि वे संगठित न थे, लेकिन अब वे संगठित हो गये थे, मुट्ठी-भर मुसलमान उनके सामने क्या ठहरते।

एक साल और गुजर गया। फिर जन्माष्टमी का उत्सव आया। हिन्दुओं को अभी तक अपनी हार भूली न थी। गुप्त रूप से बराबर तैयारियाँ होती रहती थी। आज प्रातःकाल ही से भक्त लोग मन्दिर में जमा होने लगे। सबके हाथों में लाठियाँ थीं, कितने ही आदमियों ने कमर में छुरे छिपा लिए थे। छेड़कर लड़ने की राय पक्की हो गई थी। पहले कभी इस उत्सव में जुलूस न निकला था। आज धूम-धाम से जुलूस भी निकलने की ठहरी।

दीपक जल चुके थे। मसजिदों में शाम की नमाज होने लगी थी। जुलूस निकला। हाथी, घोड़े, झंडे-झंडियाँ, बाजे-गाजे, सब साथ थे। आगे-आगे भजनसिंह अपने अखाड़े के पट्ठों को लिए अकड़ते चले जाते थे।

जामा मसजिद सामने दिखाई दी। पट्ठों ने लाठियाँ संभालीं, सब लोग सतर्क हो गये। जो लोग इधर-उधर बिखरे हुए थे, आकर सिमट गये। आपस में कुछ काना-फूसी हुई। बाजे और जोर से बजने लगेंगे। जयजयकार की ध्वनि और जोर से उठने लगी। जुलूस मसजिद के सामने आ पहुँचा।

सहसा एक मुसलमान ने मसजिद से निकलकर कहा — नमाज का वक्त है, बाजे बन्द कर दो।

भजनसिंह — बाजे न बन्द होंगे।

मुसलमान — बन्द करने पड़ेंगे।

भजनसिंह — तुम अपनी नमाज क्यों नहीं बन्द कर देते?

मुसलमान — चौधरी साहब के बल पर मत फूलना। अबकी होश ठंडे हो जायेंगे।

भजनसिंह — चौधरी साहब के बल पर तुम फूलो, यहाँ अपने ही बल का भरोसा हैं यह धर्म का मामला है।

इतने में कुछ और मुसलमान निकल आए, और बाज बन्द करने का आग्रह करने लगे, इधर और जोर से बाजे बजने लगे। बात बढ़ गई। एक मौलवी ने भजनसिंह को काफिर कह दिया। ठाकुर ने उसकी दाढ़ी पकड़ ली। फिर क्या था। सूरमा लोग निकल पड़े, मार-पीट शुरू हो गई। ठाकुर हल्ला मारकर मसजिद में घुस गये, और मसजिद के अन्दर मार-पीट होने लगी। यह नहीं कहा जा सकता कि मैदान किसके हाथ रहा। हिन्दू कहते थे, हमने खदेड़-खदेड़कर मारा, मुसलमान कहते थे, हमने वह मार मारी कि फिर सामने नहीं आएँगे। पर इन विवादों की बीच में एक बात मानते थे, और वह थी ठाकुर भजनसिंह की अलौकिक वीरता। मुसलमानों का कहना था कि ठाकुर न होता तो हम किसी को जिन्दा न छोड़ते। हिन्दू कहते थे कि ठाकुर सचमुच

महावीर का अवतार है। इसकी लाठियों ने उन सबों के छक्के छुड़ा दिए।

उत्सव समाप्त हो चुका था। चौधरी साहब दीवानखाने में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। उनका मुख लाल था, त्यौरियाँ चढ़ी हुईं थी, और आँखों से चिनगारियाँ-सी निकल रहीं थीं। 'खुदा का घर' नापाक किया गया। यह ख्याल रूह-रहकर उनके कलेजे को भसोसता था।

खुदा का घर नापाक किया गया! जालिमों को लड़ने के लिए क्या नीचे मैदान में जगह न थी! खुदा के पाक घर में यह खून-खच्चर! मसजिद की यह बेहुरमती! मन्दिर भी खुदा का घर है और मसजिद भी। मुसलमान किसी मन्दिर को नापाक करने के लिए सजा के लायक है, क्या हिन्दू मसजिद को नापाक करने के लिए उसी सजा के लायक नहीं?

और यह हरकत ठाकुर ने की! इसी कसूर के लिए तो उसने मेरे दामाद को कत्ल किया। मुझे मालूम होता है कि उसके हाथों ऐसा फेल होगा, तो उसे फाँसी पर चढ़ने देता। क्यों उसके लिए इतना हैरान, इतना बदनाम, इतना जेरबार होता। ठाकुर मेरा वफादार नौकर है। उसने बारहा मेरी जान बचाई है। मेरे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार रहता है। लेकिन आज उसने

खुदा के घर को नापाक किया है, और उसे इसकी सजा मिलनी चाहिए। इसकी सजा क्या है? जहन्नुम! जहन्नुम की आग के सिवा इसकी और कोई सजा नहीं है। जिसने खुदा के घर को नापाक किया, उसने खुदा की तौहीन की। खुदा की तौहीन!

सहसा ठाकुर भजनसिंह आकर खड़े हो गए।

चौधरी साहब ने ठाकुर को क्रोधोन्मत्त आँखों से देखकर कहा — तुम मसजिद में घुसे थे?

भजनसिंह — सरकार, मौलवी लोग हम लोगों पर टूट पड़े।

चौधरी — मेरी बात का जवाब दो जी — तुम मसजिद में घुसे थे?

भजनसिंह — जब उन लोगों ने मसजिद के भीतर से हमारे ऊपर पत्थर फेंकना शुरू किया तब हम लोग उन्हें पकड़ने के लिए मसजिद में घुस गए।

चौधरी — जानते हो मसजिद खुदा का घर है?

भजनसिंह — जानता हूँ हुजूर, क्या इतना भी नहीं जानता।

चौधरी — मसजिद खुदा का वैसा ही पाक घर है, जैसे मंदिर।

भजनसिंह ने इसका कुछ जवाब न दिया।

चौधरी — अगर कोई मुसलमान मन्दिर को नापाक करने के लिए गर्दनजदनी है तो हिन्दू भी मसजिद को नापाक करने के लिए गर्दनजदनी है।

भजनसिंह इसका भी कुछ जवाब न दे सका। उसने चौधरी साहब को कभी इतने गुस्से में न देखा था।

चौधरी — तुमने मेरे दामाद को कत्ल किया, और मैंने तुम्हारी पैरवी की। जानते हो क्यों? इसलिए कि मै अपने दामाद को उस सजा के लायक समझता था जो तुमने उसे दी। अगर तुमने मेरे बेटे को, या मुझी को उस कसूर के लिए मार डाला होता तो मैं तुमसे खून का बदला न माँगता। वही कसूर आज तुमने किया है। अगर किसी मुसलमान ने मसजिद में तुम्हें जहन्नुम में पहुँचा दिया होता तो मुझे सच्ची खुशी होती। लेकिन तुम बेहयाओं की तरह वहाँ से बचकर निकल आये। क्या तुम समझते हो खुदा तुम्हें इस फेल की सजा न देगा? खुदा का हुक्म है कि जो उसकी तौहीन करे, उसकी गर्दन मार देनी चाहिए। यह हर एक मुसलमान का फर्ज है। चोर अगर सजा न पावे तो क्या वह चोर नहीं है? तुम मानते हो या नहीं कि तुमने खुदा की तौहीन की?

ठाकुर इस अपराध से इनकार न कर सके। चौधरी साहब के सत्संग ने हठधर्मी को दूर कर दिया था। बोले — हाँ साहब, यह कसूर तो हो गया।

चौधरी — इसकी जो सजा तुम दे चुके हो, वह सजा खुद लेने के लिए तैयार हो?

ठाकुर — मैंने जान-बूझकर तो दूल्हा मियाँ को नहीं मारा था।

चौधरी — तुमने न मारा होता, तो मैं अपने हाथों से मारता, समझ गए! अब मैं तुमसे खुदा की तौहीन का बदला लूँगा। बोलो, मेरे हाथों चाहते हो या अदालत के हाथों। अदालत से कुछ दिनों के लिए सजा पा जाओगे। मैं कत्ल करूँगा। तुम मेरे दोस्त हो, मुझे तुमसे मुतलक कीना नहीं है। मेरे दिल को कितना रंज है, यह खुदा के सिवा और कोई नहीं जान सकता। लेकिन मैं तुम्हें कत्ल करूँगा। मेरे दीन का यह हुक्म है।

यह कहते हुए चौधरी साहब तलवार लेकर ठाकुर के सामने खड़े हो गये। विचित्र दृश्य था। एक बूढा आदमी, सिर के बाल पके, कमर झुकी, तलवार लिए एक देव के सामने खड़ा था। ठाकुर लाठी के एक ही वार से उनका काम तमाम कर सकता था। लेकिन उसने सिर झुका दिया। चौधरी के प्रति उसके रोम-रोम में श्रद्धा थी। चौधरी साहब अपने दीन के इतने पक्के हैं, इसकी उसने

कभी कल्पना तक न की थी। उसे शायद धोखा हो गया था कि यह दिल से हिन्दू हैं। जिस स्वामी ने उसे फाँसी से उतार लिया, उसके प्रति हिंसा या प्रतिकार का भाव उसके मन में क्यों कर आता? वह दिलेर था, और दिलेरों की भांति निष्कपट था। उसे इस समय क्रोध न था, पश्चात्ताप था। दीन कहता था — मारो। सज्जनता कहती थी — छोड़ो। दीन और धर्म में संघर्ष हो रहा था।

ठाकुर ने चौधरी का असमंजस देखा। गद्‌गद कंठ से बोला — मालिक, आपकी दया मुझ पर हाथ न उठाने देगी। अपने पाले हुए सेवक को आप मार नहीं सकते। लेकिन यह सिर आपका है, आपने इसे बचाया था, आप इसे ले सकते हैं, यह मेरे पास आपकी अमानत थी। वह अमानत आपको मिल जाएगी। सबेरे मेरे घर किसी को भेजकर मंगवा लीजिएगा। यहाँ दूँगा, तो उपद्रव खड़ा हो जाएगा। घर पर कौन जायेगा, किसने मारा। जो भूल-चूक हुई हो, क्षमा कीजिएगा।

यह कहता हुआ ठाकुर वहाँ से चला गया।

[‘माधुरी’, अप्रैल, 1925]

मनावन

बाबू दयाशंकर उन लोगों में थे जिन्हें उस वक्त तक सोहबत का मजा नहीं मिलता जब तक कि वह प्रेमिका की जबान की तेजी का मजा न उठायें। रूठे हुए को मनाने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता फिरी हुई निगाहें कभी-कभी मुहब्बत के नशे की मतवाली आँखें से भी ज्यादा मोहक जान पड़तीं। आकर्षक लगती। झगड़ों में मिलाप से ज्यादा मजा आता। पानी में हलके-हलके झकोले कैसा समाँ दिखा जाते हैं। जब तक दरिया में धीमी-धीमी हलचल न हो सैर का लुत्फ नहीं।

अगर बाबू दयाशंकर को इन दिलचस्पियों के कम मौके मिलते थे तो यह उनका कसूर न था। गिरिजा स्वभाव से बहुत नेक और गम्भीर थी, तो भी चूंकि उनका कसूर न था। गिरिजा स्वभाव से बहुत नेक और गम्भीर थी, तो भी चूंकि उसे अपने पति की रुचि का अनुभव हो चुका था इसलिए वह कभी-कभी अपनी तबियत के खिलाफ सिर्फ उनकी खातिर से उनसे रूठ जाती थी मगर यह बे-नींव की दीवार हवा का एक झोंका भी न सम्हाल सकती। उसकी आँखें, उसके होंठ उसका दिल यह बहुरूपिये का खेल

ज्यादा देर तक न चला सकते। आसमान पर घटायें आतीं मगर सावन की नहीं, कुआर की। वह डरती, कहीं ऐसा न हो कि हँसी-हँसी से रोना आ जाय। आपस की बदमजगी के ख्याल से उसकी जान निकल जाती थी। मगर इन मौकों पर बाबू साहब को जैसी-जैसी रिझाने वाली बातें सूझतीं वह काश विद्यार्थी जीवन में सूझी होतीं तो वह कई साल तक कानून से सिर मारने के बाद भी मामूली क्लर्क न रहते।

2

दयाशंकर को कौमी जलसों से बहुत दिलचस्पी थी। इस दिलचस्पी की बुनियाद उसी जमाने में पड़ी जब वह कानून की दरगाह के मुजाविर थे और वह अन्त तक कायम थी। रुपयों की थैली गायब हो गई थी मगर कंधों में दर्द मौजूद था। इस साल कांफ्रेंस का जलसा सतारा में होने वाला था। नियत तारीख से एक रोज पहले बाबू साहब सतारा को रवाना हुए। सफर की तैयारियों में इतने व्यस्त थे कि गिरिजा से बातचीत करने की भी फुर्सत न मिली थी। आनेवाली खुशियों की उम्मीद उस क्षणिक वियोग के खयाल के ऊपर भारी थी।

कैसा शहर होगा! बड़ी तारीफ सुनते हैं। दकन सौन्दर्य और संपदा की खान है। खूब सैर रहेगी। हजरत तो इन दिल को खुश करनेवाले ख्यालों में मस्त थे और गिरिजा आँखों में आँसू भरे अपने दरवाजे पर खड़ी यह कैफ़ियत देख रही थी और ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि इन्हें खैरियत से लाना। वह खुद एक हफ्ता कैसे काटेगी, यह ख्याल बहुत ही कष्ट देनेवाला था।

गिरिजा इन विचारों में व्यस्त थी दयाशंकर सफर की तैयारियों में। यहाँ तक कि सब तैयारियाँ पूरी हो गई। इक्का दरवाजे पर आ गया। बिस्तर और ट्रंक उस पर रख दिये और तब विदाई भेंट की बातें होने लगीं। दयाशंकर गिरिजा के सामने आए और मुस्कराकर बोले — अब जाता हूँ।

गिरिजा के कलेजे में एक बर्छी-सी लगी। बरबस जी चाहा कि उनके सीने से लिपटकर रोऊँ। आँसुओं की एक बाढ़-सी आँखें में आती हुई मालूम हुई मगर जब्त करके बोली — जाने को कैसे कहूँ, क्या वक्त आ गया?

दयाशंकर — हाँ, बल्कि देर हो रही है।

गिरिजा — मंगल की शाम को गाड़ी से आओगे न?

दयाशंकर — जरूर, किसी तरह नहीं रुक सकता। तुम सिर्फ उसी दिन मेरा इंतजार करना।

गिरिजा — ऐसा न हो भूल जाओ। सतारा बहुत अच्छा शहर है।

दयाशंकर — (हँसकर) वह स्वर्ग ही क्यों न हो, मंगल को यहाँ जरूर आ जाऊँगा। दिल बराबर यहीं रहेगा। तुम जरा भी न घबराना।

यह कहकर गिरिजा को गले लगा लिया और मुस्कराते हुए बाहर निकल आए। इक्का रवाना हो गया। गिरिजा पलंग पर बैठ गई और खूब रोयी। मगर इस वियोग के दुख, आँसुओं की बाढ़, अकेलेपन के दर्द और तरह-तरह के भावों की भीड़ के साथ एक और ख्याल दिल में बैठा हुआ था जिसे वह बार-बार हटाने की कोशिश करती थी — क्या इनके पहलू में दिल नहीं है! या है तो उस पर उन्हें पूरा-पूरा अधिकार है? वह मुस्कराहट जो विदा होते वक्त दयाशंकर के चेहरे र लग रही थी, गिरिजा की समझ में नहीं आती थी।

3

सतारा में बड़ी धूम थी। दयाशंकर गाड़ी से उतरे तो वर्दीपोश वालंटियरों ने उनका स्वागत किया। एक फिटन उनके लिए तैयार खड़ी थी। उस पर बैठकर वह कांफ्रेंस पंड़ाल की तरफ

चलें दोनों तरफ झंडियाँ लहरा रही थीं। दरवाजे पर बन्दवारें लटक रही थी। औरतें अपने झरोखों से और मर्द बरामदों में खड़े हो-होकर खुशी से तालियाँ बजाते थे। इस शान-शौकत के साथ वह पंड़ाल में पहुँचे और एक खूबसूरत खेमे में उतरे। यहाँ सब तरह की सुविधाएँ एकत्र थीं, दस बजे कांफ्रेंस शुरू हुई। वक्ता अपनी-अपनी भाषा के जलवे दिखाने लगे। किसी के हँसी-दिल्लगी से भरे हुए चुटकुलों पर वाह-वाह की धूम मच गई, किसी की आग बरसानेवाले तकरीर ने दिलों में जोश की एक तरह-सी पेछ़ा कर दी। विद्वत्तापूर्ण भाषणों के मुकाबले में हँसी-दिल्लगी और बात कहने की खूबी को लोगों ने ज्यादा पसन्द किया। श्रोताओं को उन भाषणों में थियेटर के गीतों का-सा आनन्द आता था।

कई दिन तक यही हालत रही और भाषणों की दृष्टि से कांफ्रेंस को शानदार कामयाबी हासिल हुई। आखिरकार मंगल का दिन आया। बाबू साहब वापसी की तैयारियाँ करने लगे। मगर कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आज उन्हें मजबूरन ठहरना पड़ा। बम्बई और यू.पी. के ड़ेलीगेटों में एक हाकी मैच ठहर गई। बाबू दयाशंकर हाकी के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। वह भी टीम में दाखिल कर लिये गये थे। उन्होंने बहुत कोशिश की कि अपना गला छुड़ा लूँ मगर दोस्तों ने इनकी आनाकानी पर बिलकुल ध्यान न दिया। साहब, जो ज्यादा बेतकल्लुफ थे, बोल — आखिर

तुम्हें इतनी जल्दी क्यों है? तुम्हारा दफ्तर अभी हफ्ता भर बन्द है। बीवी साहबा की नाराजगी के सिवा मुझे इस जल्दबाजी का कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। दयाशंकर ने जब देखा कि जल्द ही मुझपर बीवी का गुलाम होने की फबतियाँ कसी जाने वाली हैं, जिससे ज्यादा अपमानजनक बात मर्द की शान में कोई दूसरी नहीं कही जा सकती, तो उन्होंने बचाव की कोई सूरत न देखकर वापसी मुल्तवी कर दी। और हाकी में शरीक हो गए। मगर दिल में यह पक्का इरादा कर लिया कि शाम की गाड़ी से जरूर चले जायेंगे, फिर चाहे कोई बीवी का गुलाम नहीं, बीवी के गुलाम का बाप कहे, एक न मानेंगे।

खैर, पाँच बजे खेल शुरू हुआ। दोनों तरफ के खिलाड़ी बहुत तेज थे जिन्होंने हाकी खेलने के सिवा जिन्दगी में और कोई काम ही नहीं किया। खेल बड़े जोश और सरगर्मी से होने लगा। कई हजार तमाशाई जमा थे। उनकी तालियाँ और बढ़ावे खिलाड़ियों पर मारूँ बाजे का काम कर रहे थे और गेंद किसी अभागे की किस्मत की तरह इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती थी। दयाशंकर के हाथों की तेजी और सफाई, उनकी पकड़ और बेऐब निशानेबाजी पर लोग हैरान थे, यहाँ तक कि जब वक्त खत्म होने में सिर्फ एक मिनट बाकी रह गया था और दोनों तरफ के लोग हिम्मतें हार चुके थे तो दयाशंकर ने गेंद लिया और बिजली की

तरह विरोधी पक्ष के गोल पर पहुँच गये। एक पटाखें की आवाज हुई, चारों तरफ से गोल का नारा बुलन्द हुआ! इलाहाबाद की जीत हुई और इस जीत का सेहरा दयाशंकर के सिर था — जिसका नतीजा यह हुआ कि बेचारे दयाशंकर को उस वक्त भी रुकना पड़ा और सिर्फ इतना ही नहीं, सतारा अमेचर क्लब की तरफ से इस जीत की बधाई में एक नाटक खेलने का कोई प्रस्ताव हुआ जिसे बुध के रोज भी रवाना होने की कोई उम्मीद बाकी न रही। दयाशंकर ने दिल में बहुत पेचोताब खाया मगर जबान से क्या कहते! बीवी का गुलाम कहलाने का डर जबान बन्द किये हुए था। हालाँकि उनका दिल कह रहा था कि अब की देवी रूठेंगी तो सिर्फ खुशामदों से न मानेंगी।

4

बाबू दयाशंकर वादे के रोज के तीन दिन बाद मकान पर पहुँचे। सतारा से गिरिजा के लिए कई अनूठे तोहफे लाये थे। मगर उसने इन चीजों को कुछ इस तरह देखा कि जैसे उनसे उसका जी भर गया है। उसका चेहरा उतरा हुआ था और होंठ सूखे थे। दो दिन से उसने कुछ नहीं खाया था। अगर चलते वक्त

दयाशंकर की आँख से आँसू की चन्द बूँदें टपक पड़ी होतीं या कम से कम चेहरा कुछ उदास और आवाज कुछ भारी हो गयी होती तो शायद गिरिजा उनसे न रूठती। आँसुओं की चन्द बूँदें उसके दिल में इस खयाल को तरो-ताजा रखतीं कि उनके न आने का कारण चाहे ओर कुछ हो निष्ठुरता हरगिज नहीं है। शायद हाल पूछने के लिए उसने तार दिया होता और अपने पति को अपने सामने खैरियत से देखकर वह बरबस उनके सीने में जा चिमटती और देवताओं की कृतज्ञ होती। मगर आँखों की वह बेमौका कंजूसी और चेहरे की वह निष्ठुर मुसकान इस वक्त उसके पहलू में खटक रही थी। दिल में खयाल जम गया था कि मैं चाहे इनके लिए मर ही मिटूँ मगर इन्हें मेरी परवाह नहीं है। दोस्तों का आग्रह और जिद केवल बहाना है। कोई जबरदस्ती किसी को रोक नहीं सकता। खूब! मैं तो रात की रात बैठकर काटूँ और वहाँ मजे उड़ाये जाएँ!

बाबू दयाशंकर को रूठों के मनाने में विशेष दक्षता थी और इस मौके पर उन्होंने कोई बात, कोई कोशिश उठा नहीं रखी। तोहफे तो लाए थे मगर उनका जादू न चला। तब हाथ जोड़कर एक पैर से खड़े हुए, गुदगुदाया, तलुवे सहलाये, कुछ शोखी और शरारत की। दस बजे तक इन्हीं सब बातों में लगे रहे। इसके बाद खाने का वक्त आया। आज उन्होंने रूखी रोटियाँ बड़े शौक से

और मामूली से कुछ ज्यादा खायीं — गिरिजा के हाथ से आज हफ्ते भर बाद रोटियाँ नसीब हुई हैं, सतारे में रोटियों को तरस गयें पूड़ियाँ खाते-खाते आँतों में बायगोले पड़ गये। यकीन मानो गिरिजन, वहाँ कोई आराम न था, न कोई सैर, न कोई लुत्फ। सैर और लुत्फ तो महज अपने दिल की कैफियत पर मुनहसर है। बेफिक्री हो तो चटियल मैदान में बाग का मजा आता है और तबियत को कोई फिक्र हो तो बाग वीराने से भी ज्यादा उजाड़ मालूम होता है। कमबख़्त दिल तो हरदम यहीं धरा रहता था, वहाँ मजा क्या खाक आता। तुम चाहे इन बातों को केवल बनावट समझ लो, क्योंकि मैं तुम्हारे सामने दोषी हूँ और तुम्हें अधिकार है कि मुझे झूठा, मक्कार, दगाबाज, बेवफा, बात बनानेवाला जो चाहे समझ लो, मगर सच्चाई यही है जो मैं कह रहा हूँ। मैं जो अपना वादा पूरा नहीं कर सका, उसका कारण दोस्तों की जिद थी।

दयाशंकर ने रोटियों की खूब तारीफ की क्योंकि पहले कई बार यह तरकीब फायदेमन्द साबित हुई थी, मगर आज यह मन्त्र भी कारगर न हुआ। गिरिजा के तेवर बदले ही रहे।

तीसरे पहर दयाशंकर गिरिजा के कमरे में गये और पंखा झलने लगे; यहाँ तक कि गिरिजा झुँझलाकर बोल उठी — अपनी नाजबरदारियाँ अपने ही पास रखिये। मैंने हुजूर से भर पाया। मैं

तुम्हें पहचान गयी, अब धोखा नही खाने की। मुझे न मालूम था कि मुझसे आप यों दगा करेंगे। गरज जिन शब्दों में बेवफाइयों और निष्ठुरताओं की शिकायतें हुआ करती हैं वह सब इस वक्त गिरिजा ने खर्च कर डाले।

5

शाम हुई। शहर की गलियों में मोतिये और बेले की लपटें आने लगीं। सड़कों पर छिड़काव होने लगा और मिट्टी की सोंधी खुशबू उड़ने लगी। गिरिजा खाना पकाने जा रही थी कि इतने में उसके दरवाजे पर इक्का आकर रुका और उसमें से एक औरत उतर पड़ी। उसके साथ एक महरी थी उसने ऊपर आकर गिरिजा से कहा — बहू जी, आपकी सखी आ रही हैं।

यह सखी पड़ोस में रहनेवाली अहलमद साहब की बीवी थीं। अहलमद साहब बूढ़े आदमी थे। उनकी पहली शादी उस वक्त हुई थी, जब दूध के दाँत न टूटे थे। दूसरी शादी संयोग से उस जमाने में हुई जब मुँह में एक दाँत भी बाकी न था। लोगों ने बहुत समझाया कि अब आप बूढ़े हुए, शादी न कीजिए, ईश्वर ने लड़के दिये हैं, बहुएँ हैं, आपको किसी बात की तकलीफ नहीं हो

सकती। मगर अहलमद साहब खुद बुड्ढे और दुनिया देखे हुए आदमी थे, इन शुभचिंतकों की सलाहों का जवाब व्यावहारिक उदाहरणों से दिया करते थे — क्यों, क्या मौत को बूढ़ों से कोई दुश्मनी है? बूढ़े गरीब उसका क्या बिगाड़ते हैं? हम बाग में जाते हैं तो मुरझाये हुए फूल नहीं तोड़ते, हमारी आँखें तरो-ताजा, हरे-भरे खूबसूरत फूलों पर पड़ती हैं। कभी-कभी गजरे वगैरह बनाने के लिए कलियाँ भी तोड़ ली जाती हैं। यही हालत मौत की है। क्या यमराज को इतनी समझ भी नहीं है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जवान और बच्चे बूढ़ों से ज्यादा मरते हैं। मैं अभी ज्यों का त्यों हूँ, मेरे तीन जवान भाई, पाँच बहनें, बहनों के पति, तीनों भावजें, चार बेटे, पाँच बेटियाँ, कई भतीजे, सब मेरी आँखों के सामने इस दुनिया से चल बसे। मौत सबको निगल गई मगर मेरा बाल बाँका न कर सकी। यह गलत, बिलकुल गलत है कि बूढ़े आदमी जल्द मर जाते हैं। और असल बात तो यह है कि जवान बीवी की जरूरत बुढ़ापे में ही होती है। बहुएँ मेरे सामने निकलना चाहें और न निकल सकती हैं, भावजें खुद बूढ़ी हुई, छोटे भाई की बीवी मेरी परछाईं भी नही देख सकती है, बहनें अपने-अपने घर हैं, लड़के सीधे मुँह बात नहीं करते। मैं ठहरा बूढ़ा, बीमार पड़ूँ तो पास कौन फटके, एक लोटा पानी कौन दे, देखूँ किसकी आँख से, जी कैसे बहलाऊँ? क्या आत्महत्या कर लूँ। या

कहीं डूब मरूँ? इन दलीलों के मुकाबिले में किसी की जबान न खुलती थी।

गरज इस नयी अहलमदिन और गिरिजा में कुछ बहनापा सा हो गया था, कभी-कभी उससे मिलने आ जाया करती थी। अपने भाग्य पर सन्तोष करने वाली स्त्री थी, कभी शिकायत या रंज की एक बात जबान से न निकालती। एक बार गिरिजा ने मजाक में कहा था कि बूढ़े और जवान का मेल अच्छा नहीं होता। इस पर वह नाराज हो गयी और कई दिन तक न आयी। गिरिजा महरी को देखते ही फौरन आँगन में निकल आयी और गो उस इस वक्त मेहमान का आना नागवारा गुजरा मगर महरी से बोली — बहन, अच्छी आयीं, दो घड़ी दिल बहलेगा।

जरा देर में अहलमदिन साहब गहने से लदी हुई, घूंघट निकाले, छमछम करती हुई आँगन मे आकर खड़ी हो गईं। गिरिजा ने करीब आकर कहा — वाह सखी, आज तो तुम दुलहिन बनी हो। मुझसे पर्दा करने लगी हो क्या? यह कहकर उसने घूंघट हटा दिया और सखी का मुँह देखते ही चौंककर एक कदम पीछे हट गई। दयाशंकर ने जोर से कहकहा लगाया और गिरिजा को सीने से लिपटा लिया और विनती के स्वर में बोले — गिरिजन, अब मान जाओ, ऐसी खता फिर कभी न होगी। मगर गिरिजन अलग

हट गई और रुखाई से बोली — तुम्हारा बहुरूप बहुत देख चुकी, अब तुम्हारा असली रूप देखना चाहती हूँ।

6

दयाशंकर प्रेम-नदी की हलकी-हलकी लहरों का आनन्द तो जरूर उठाना चाहते थे मगर तूफान से उनकी तबियत भी उतना ही घबराती थी जितना गिरिजा की, बल्कि शायद उससे भी ज्यादा। हृदय-परिवर्तन के जितने मंत्र उन्हें याद थे वह सब उन्होंने पढ़े और उन्हें कारगर न होते देखकर आखिर उनकी तबियत को भी उलझन होने लगी। यह वे मानते थे कि बेशक मुझसे खता हुई है मगर खता उनके खयाल में ऐसी दिल जलानेवाली सजाओं के काबिल न थी। मनाने की कला में वह जरूर सिद्धहस्त थे मगर इस मौके पर उनकी अक़्ल ने कुछ काम न दिया। उन्हें ऐसा कोई जादू नजर नहीं आता था जो उठती हुई काली घटाओं और जोर पकड़ते हुए झोंकों को रोक दे। कुछ देर तक वह उन्हीं ख्यालों में खामोश खड़े रहे और फिर बोले — आखिर गिरिजन, अब तुम क्या चाहती हो।

गिरिजा ने अत्यन्त सहानुभूति शून्य बेपरवाही से मुँह फेरकर कहा — कुछ नहीं।

दयाशंकर — नहीं, कुछ तो जरूर चाहती हो वर्ना चार दिन तक बिना दाना-पानी के रहने का क्या मतलब! क्या मुझ पर जान देने की ठानी है? अगर यही फैसला है तो बेहतर है तुम यों जान दो और मैं कत्ल के जुर्म में फाँसी पाऊँ, किस्सा तमाम हो जाये। अच्छा होगा, बहुत अच्छा होगा, दुनिया की परेशानियों से छुटकारा हो जाएगा।

यह मन्तर बिलकुल बेअसर न रहा। गिरिजा आँखों में आँसू भरकर बोली — तुम खामखाह मुझसे झगड़ना चाहते हो और मुझे झगड़े से नफरत है। मैं तुमसे न बोलती हूँ और न चाहती हूँ कि तुम मुझसे बोलने की तकलीफ गवारा करो। क्या आज शहर में कहीं नाच नहीं होता, कहीं हाकी मैच नहीं है, कहीं शतरंज नहीं बिछी हुई है। वहीं तुम्हारी तबियत जमती है, आप वहीं जाइए, मुझे अपने हाल पर रहने दीजिए मैं बहुत अच्छी तरह हूँ।

दयाशंकर करुण स्वर में बोले — क्या तुमने मुझे ऐसा बेवफा समझ लिया है?

गिरिजा — जी हाँ, मेरा तो यही तजुर्बा है।

दयाशंकर — तो तुम सख्त गलती पर हो। अगर तुम्हारा यही ख्याल है तो मैं कह सकता हूँ कि औरतों की अन्तर्दृष्टि के बारे में जितनी बातें सुनी हैं वह सब गलत हैं। गिरजा, मेरे भी दिल है...

गिरिजा ने बात काटकर कहा — सच, आपके भी दिल है यह आज नयी बात मालूम हुई।

दयाशंकर कुछ झेंपकर बोले — खैर जैसा तुम समझों। मेरे दिल न सही, मेर जिगर न सही, दिमाग तो साफ जाहिर है कि ईश्वर ने मुझे नहीं दिया वर्ना वकालत में फेल क्यों होता? गोया मेरे शरीर में सिर्फ पेट है, मैं सिर्फ खाना जानता हूँ और सचमुच है भी ऐसा ही, तुमने मुझे कभी फाका करते नहीं देखा। तुमने कई बार दिन-दिन भर कुछ नहीं खाया है, मैं पेट भरने से कभी बाज नहीं आया। लेकिन कई बार ऐसा भी हुआ है कि दिल और जिगर जिस कोशिश में असफल रहे वह इसी पेट ने पूरी कर दिखाई या यों कहों कि कई बार इसी पेट ने दिल और दिमाग और जिगर का काम कर दिखाया है और मुझे अपने इस अजीब पेट पर कुछ गर्व होने लगा था मगर अब मालूम हुआ कि मेरे पेट की अजीब पेट पर कुछ गर्व होने लगा था मगर अब मालूम हुआ कि मेरे पेट की बेहयाइयाँ लोगों को बुरी मालूम होती है...इस वक्त मेरा खाना न बने। मैं कुछ न खाऊँगा।

गिरिजा ने पति की तरफ देखा, चेहरे पर हलकी-सी मुस्कराहट थी, वह यह कर रही थी कि यह आखिरी बात तुम्हें ज्यादा सम्हलकर कहनी चाहिए थी। गिरिजा और औरतों की तरह यह भूल जाती थी कि मर्दों की आत्मा को भी कष्ट हो सकता है। उसके खयाल में कष्ट का मतलब शारीरिक कष्ट था। उसने दयाशंकर के साथ और चाहे जो रियायत की हो, खिलाने-पिलाने में उसने कभी भी रियायत नहीं की और जब तक खाने की दैनिक मात्रा उनके पेट में पहुँचती जाय उसे उनकी तरफ से ज्यादा अन्देशा नहीं होता था। हजम करना दयाशंकर का काम था। सच पूछिये तो गिरिजा ही की सख्यितों ने उन्हें हाकी का शौक दिलाया वर्ना अपने और सैकड़ों भाइयों की तरह उन्हें दफ्तर से आकर हुक्के और शतरंज से ज्यादा मनोरंजन होता था। गिरिजा ने यह धमकी सुनी तो त्योरियाँ चढ़ाकर बोली — अच्छी बात है, न बनेगा।

दयाशंकर दिल में कुछ झेंप-से गये। उन्हें इस बेरहम जवाब की उम्मीद न थी। अपने कमरे मे जाकर अखबार पढ़ने लगे। इधर गिरिजा हमेशा की तरह खाना पकाने में लग गई। दयाशंकर का दिल इतना टूट गया था कि उन्हें खयाल भी न था कि गिरिजा खाना पका रही होगी। इसलिए जब नौ बजे के करीब उसने आकर कहा कि चलो खाना खा लो तो वह ताज्जुब से चौंक पड़े

मगर यह यकीन आ गया कि मैंने बाजी मार ली। जी हरा हुआ, फिर भी ऊपर से रुखाई से कहा — मैंने तो तुमसे कह दिया था कि आज कुछ न खाऊँगा।

गिरिजा — चलो थोड़ा-सा खा लो।

दयाशंकर — मुझे जरा भी भूख नहीं है।

गिरिजा — क्यों? आज भूख नहीं लगी?

दयाशंकर — तुम्हें तीन दिन से भूख क्यों नहीं लगी?

गिरिजा — मुझे तो इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मेरे दिल को चोट पहुँचाई थी।

दयाशंकर — मुझे भी इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मुझे तकलीफ दी है।

दयाशंकर ने रुखाई के साथ यह बातें कहीं और अब गिरिजा उन्हें मनाने लगी। फौरन पाँसा पलट गया। अभी एक ही क्षण पहले वह उसकी खुशामदें कर रहे थे, मुजरिम की तरह उसके सामने हाथ बाँधे खड़े, गिड़गिड़ा रहे थे, मिन्नतें करते थे और अब बाजी पलटी हुई थी, मुजरिम इन्साफ की मसनद पर बैठा हुआ था। मुहब्बत की रहें मकड़ी के जालों से भी पेचीदा हैं।

दयाशंकर ने दिन में प्रतिज्ञा की थी कि मैं भी इसे इतना ही हैरान करूँगा जितना इसने मुझे किया है और थोड़ी देर तक वह योगियों की तरह स्थिरता के साथ बैठे रहे। गिरिजा न उन्हें गुदगुदाया, तलुवे खुजलाये, उनके बालो में कंघी की, कितनी ही लुभाने वाली अदाएँ खर्च कीं मगर असर न हुआ। तब उसने अपनी दोनों बाँहें उनकी गर्दन में डाल दीं और याचना और प्रेम से भरी हुई आँखें उठाकर बोली — चलो, मेरी कसम, खा लो।

फूस की बाँध बह गई। दयाशंकर ने गिरिजा को गले से लगा लिया। उसके भोलेपन और भावों की सरलता ने उनके दिल पर एक अजीब दर्दनाक असर पैदा किया। उनकी आँखें भी गीली हो गयीं। आह, मैं कैसा जालिम हूँ, मेरी बेवफाइयों ने इसे कितना रुलाया है, तीन दिन तक उसके आँसू नहीं थमे, आँखें नहीं झपकीं, तीन दिन तक इसने दाने की सूरत नहीं देखी मगर मेरे एक जरा-से इनकार ने, झूठे नकली इनकार ने, चमत्कार कर दिखाया। कैसा कोमल हृदय है! गुलाब की पंखुड़ी की तरह, जो मुरझा जाती है मगर मैली नहीं होती। कहाँ मेरा ओछापन, खुदगर्जी और कहाँ यह बेखुदी, यह त्याग, यह साहस।

दयाशंकर के सीने से लिपटी हुई गिरिजा उस वक्त अपने प्रबल आकर्षण से उनके दिल को खींचे लेती थी। उसने जीती हुई बाजी हारकर आज अपने पति के दिल पर कब्जा पा लिया।

इतनी जबर्दस्त जीत उसे कभी न हुई थी। आज दयाशंकर को मुहब्बत और भोलेपन की इस मूरत पर जितना गर्व था उसका अनुमान लगाना कठिन है। जरा देर में वह उठ खड़े हुए और बोले — एक शर्त पर चलूँगा।

गिरिजा — क्या?

दयाशंकर — अब कभी मत रूठना।

गिरिजा — यह तो टेढ़ी शर्त है मगर...मंजूर है।

दो-तीन कदम चलने के बाद गिरिजा ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोली — तुम्हें भी मेरी एक शर्त माननी पड़ेगी।

दयाशंकर — मैं समझ गया। तुमसे सच कहता हूँ, अब ऐसा न होगा।

दयाशंकर ने आज गिरिजा को भी अपने साथ खिलाया। वह बहुत लजायी, बहुत हीले किये, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा, यह तुम्हें क्या हो गया है। मगर दयाशंकर ने एक न मानी और कई कौर गिरिजा को अपने हाथ से खिलाये और हर बार अपनी मुहब्बत का बेदर्दी के साथ मुआवजा लिया।

खाते-खाते उन्होंने हँसकर गिरिजा से कहा — मुझे न मालूम था कि तुम्हें मनाना इतना आसान है।

गिरिजा ने नीची निगाहों से देखा और मुस्करायी, मगर मुँह से कुछ न बोली।

[उर्दू 'प्रेम पचीसी' से]

महरी

भगवान् भला करे लल्लूजी की माँ का, जिनके बल पर हर प्रकार का आराम है। अन्यथा डाकखाने की नौकरी जहाँ सात-आठ घंटे की हाजिरी और कभी दफ्तर को देर न हो, यह चमत्कार नहीं तो और क्या है? घरबार का सारा काम सदा स्वयं ही समय पर हो जाता, हमारी गाड़ी कभी 'लेट' होती ही नहीं। घर की सभी चूलें घड़ी के पुर्जों की भाँति सदा अपनी-अपनी जगह पर ठीक रहती हैं। यह सब लल्लूजी की माँ का जादू है। यदि मुझे किसी छुट्टी के दिन दफ्तर जाना पड़ जाय तो रो पड़ूँ लेकिन वे बेचारी हैं कि उनको न इतवार से मतलब है, न ही बड़े दिन से। काम है कि प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। मेरा घमण्ड वेतन के साथ-साथ बढ़ता जाता है लेकिन वे उफ तक नहीं करतीं। घर में प्रभु की कृपा से चार बच्चे हैं, उनके ही काम से एक औरत को अवकाश मिलना कठिन है, फिर पता नहीं वे अन्य कामों के लिए किस प्रकार समय निकाल लेती हैं। मेरे व्यक्तिगत सुख के सभी काम वे स्वयं ही करती हैं। जाड़े में सुबह-सुबह गर्म पानी मौजूद, हजामत का सामान अपनी जगह तैयार, पूजा के बर्तन साफ,

पालिश किए हुए जूते, अर्थात् कहीं से उँगली रखने का कोई अवसर न मिलता। इस पर मजा यह कि इन बातों में कुछ खर्च नहीं होता। एक जमाना था कि मुझे बीस रुपये मासिक मिलते थे। उस समय देसी जूते और साधारण से चारखाने के कोट पर गुजर होती थी। अब परमात्मा की कृपा से सौ रुपये मासिक मिलते हैं तो पालिशदार जूता और रेशमी कोट से कम नहीं चाहिए। वे बेचारी हैं कि जिस प्रकार पहले रहती थीं, उसी प्रकार आज भी गुजर करती हैं। केवल दूसरे साल एक गहना और कार्तिकी के दिन त्रिवेणी स्नान, बस इसी में प्रसन्न हैं। इधर हम लोग हैं कि प्रत्येक वर्ष वेतन-वृद्धि होती है लेकिन धन्यवाद के स्थान पर सदा उलाहना-उपालम्भ ही मुँह पर रहता है और हर समय पोस्टल एसोसिएशन की पुकार कि वार्षिक वेतन-वृद्धि में बढ़ोतरी और दफ्तर के कार्य का समय कम रखा जाय और कोई भी अधिकारी आँख उठाकर न देख सके। मैं जो दाल-चावल खाता हूँ, वही वे भी खाती हैं। ईश्वर की देन है कि उन्हें सन्तोष रहता है और मुझे असन्तोष और अधीरता।

मैं पूरा का पूरा वेतन लल्लूजी की माँ के हाथ में ही दे देता हूँ और मुझे वह सुख-सुविधा मिलती है जो तीन सौ रुपये के अफसर को भी नसीब न हो। अतिथि भी प्रसन्न रहते हैं और सभी सम्बन्धी भी सन्तुष्ट हैं। सच पूछिए तो जितना काम वे करती हैं वह सौ रुपये से अधिक का होता है। साहब लोग अपने बच्चों के लिए पन्द्रह-बीस रुपये मासिक पर आया रखते हैं लेकिन उनको वह आराम और प्यार नसीब नहीं होता जो मेरे बच्चों को है। यदि मैं एक बावर्ची रखूँ तो कम से कम दस रुपये मासिक और भोजन देने पर भी इतना अच्छा खाना नहीं बना सकता। इस पर मजा यह कि सदा खर्च में किफायत दृष्टि में रहती है। यदि मैं पन्द्रह रुपये मासिक पर अपने लिए एक बैरा रखूँ तो भी वह इतनी देखभाल और रख-रखाव नहीं कर सकेगा। फिर बच्चों के कपड़ों की सिलाई ही दस-पन्द्रह रुपये मासिक की हो जाती है। झाड़ू-बर्तन की नौकरानी ही दस-पाँच रुपये मासिक ले जाती। अर्थात् चाहे जो हिसाब लगाइए, यदि मेरा लगभग समस्त वेतन भी नौकरों को भेंट कर दिया जाय तो भी इतना आराम नसीब नहीं हो सकता, जितना कि इस भागवान के रहने से उपलब्ध है।

3

इसे अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव समझिए या अखबार पढ़ने अथवा बड़े-बड़े नेताओं के भाषणों का परिणाम, प्रायः मेरे मन में आता है कि अपने जीवन-साथी से इतनी मेहनत कराना भारी अत्याचार है और वास्तव में एक औरत का इस सीमा तक काम करना अन्याय है, लेकिन वह बेचारी अपने मुँह से कुछ नहीं कहती। सम्भवतः उनके मन में कभी विचार ही नहीं आता है। मेरे मन में कभी-कभी उफान सा उठता है कि एक महरी या नौकरानी रख दूँ तो शायद उन्हें कुछ आराम मिले।

वास्तव में बहुत स्वार्थीपन की बात है कि मैं तो बाबू बना हुआ हर प्रकार का आराम उठाऊँ और घर की देवी नौकरानी की भाँति दिन-भर काम ही करती रहे। लेकिन जब कभी देवीजी से इसकी चर्चा होती है तो वे सदा हँसकर टाल देती हैं — क्यों बेकार में खर्च बढ़ाओगे? मैं कुछ पढ़ी-लिखी तो हूँ नहीं जो दिन-भर पलंग पर लेटी रहूँ, या सुबह-शाम पार्क की सैर को जाऊँ। जिस तरह काम चलता है, चलने दो।

यदि मैं दबाव देता हूँ तो वे कहने लगती हैं — मैं तो मना नहीं करती, महरी रख लो।

मेरे समय से पहले तो सदा एक नौकरानी घर में रही, मुझे वही समय याद आता है। बुढ़िया नौली के बाद घर में कोई नौकरानी नहीं रही। भगवान् भला करे, उसकी कमर झुक गई थी लेकिन मरते दम तक अकेली ही सारा काम करती रही। सदा सेवा ही की, स्वयं कभी बीमारी तक में भी कोई सेवा न ली। उस पर मजा यह कि केवल एक रुपया वेतन और खाने पर, और वह उम्र भर का वेतन भी मरने पर घर में ही छोड़ मरी। माँ से अधिक सेवा करने वाली, दुःख-दर्द बाँटने वाली! अब ऐसे नौकर कहाँ मिलते हैं। क्या समय था, अत्यल्प वेतनों पर भी लोग सम्पन्न थे। इसके प्रतिकूल आजकल वह समय है कि आय और व्यय, दोनों में वृद्धि, उस पर भी हर समय असन्तोष। पहले प्रत्येक वस्तु सस्ती थी। लट्ठा और उत्तम मलमल चार आने गज, अच्छी मिठाई पाँच-छ्ह आने सेर। अब खर्च दोगुना हो गया है मगर वह बात ढूँढ़े नहीं मिलती। भगवान् करे वह समय एक बार तो पुनः आ जाय, चाहे थोड़े ही समय के लिए हो लेकिन एक बार तो ’टके सेर भाजी और टके सेर खा जा’ बिक जाय।

अब मैंने किसी आवश्यकता के कारण नहीं और न किसी के कहने पर बल्कि अपनी इच्छा से, फैशन की दृष्टि से एक महरी रखने का संकल्प कर लिया, लेकिन यह संकल्प रास नहीं आया। हर बार नयी मुसीबतों से दो-चार होना पड़ा और आराम तो एक ओर, चिन्ता ही चिन्ता रही। प्रतिदिन बर्तनों और कपड़ों का गुम होना आरम्भ हुआ। खर्चे अत्यधिक बढ़ गए। यदि पहले दस-पन्द्रह रुपये के घी में काम चल जाता था तो अब पच्चीस का लगने लगा। नौकरानी है कि हर समय अपने पिछले स्वामी की बड़ाई का गीत गाती रहती है — वहाँ यह होता था वह होता था, इस प्रकार घी परनालों में बहाया जाता था, दूध से बर्तन धुलते थे, यह मिलता था वह मिलता था।

अर्थात् आराम कम और खर्च अधिक हो गया, हर समय की बकझक ऊपर से।

5

पहली नौकरानी जो मिली उसकी अवस्था बीस-बाईस वर्ष की रही होगी। आप उसे रूपसी नहीं कह सकते हैं लेकिन शिष्ट अवश्य थी और उसकी आँखों में एक प्रकार की चमक भी थी। यद्यपि

कोई विशेष बात नहीं हुई लेकिन देवीजी को शिकायत ही रही। वह कहतीं कि मैं अब दफ्तर देर से जाता और शीघ्र लौट आता हूँ। लेकिन मैं पूरे समय तक दफ्तर में ही रहता। डाकखाने की नौकरी में देरी और जल्दी कैसी। दूसरी शिकायत यह हुई कि मैं जमना (नौकरानी का नाम) की ओर बहुत देखता हूँ, हर समय उसी से बातें करता रहता हूँ, लेकिन मुझे कोई असामान्य बात नहीं लगी। लेकिन जब शिकायत बढ़ते-बढ़ते कष्ट और शोक तक जा पहुँची तो मैंने अन्ततः उसे नौकरी से निकाल दिया। इसके पश्चात् मैंने ढूँढ़कर एक बुढ़िया रखी ताकि घर में किसी प्रकार का सन्देह उत्पन्न न हो और आवश्यकता भी पूरी हो जाय, लेकिन यह प्रयोग भी असफल रहा। बुढ़िया से न तो पानी से भरा कोई बर्तन ही उठता है, न पलंग ही उठा सकती है। वह तो हड्डियों और खाल का एक थैला-भर थी और सच पूछिए तो उसे स्वयं ही एक सेवक की आवश्यकता थी। बहरहाल लल्लूजी की माँ को उससे कोई आराम नहीं मिला। उन्हें पहले जितना काम करना पड़ता था, अब भी उतना ही करना पड़ता था। लेकिन बीच में मैं बेवकूफ बना। संक्षेप में यह कि अन्ततः उसे भी नौकरी से निकाल दिया और अब एक मध्यम आयु वाली की खोज आरम्भ हुई। सर्विस सीकिंग एजेन्सी के माध्यम से एक चालीस वर्षीया नौकरानी की खोज हुई। उससे पहले अनेक

सेविकाएँ आईं और चली गईं। कोई काम का विवरण पूछती और काम बताया जाता तो यह कहती हुई उलटे पाँवों चली जाती कि काम तो दो नौकरों का है और वेतन एक का भी नहीं। इस पर जब दूसरी महरी आई तो मैंने कहा कि काम तो कुछ नहीं है, केवल पलंग बिछाकर पड़े रहना होगा। वह भी चली गई। विचित्र दशा है। यदि काम लेता हूँ तो नौकर नहीं रहता। यदि कहता हूँ कि कोई काम नहीं तो भी कोई परिणाम नहीं निकलता। खैर, हफ्ते-पखवाड़े की खोज के पश्चात् एक और मिली कि जिस पर न किसी प्रकार के सन्देह हो सकते थे और जो कामचोर भी नहीं थी। हर प्रकार से, अपनी बुद्धि से भली प्रकार सोच-विचार कर उसे नौकर रखा।

6

थोड़े समय में पता चला कि यह औरत जब चाहती अच्छा काम करती और जब न चाहती तो कुछ न करती। ऊपर से यह कि जब जी में आता धृष्टता का व्यवहार करती। एक दिन की घटना सुनिए — देवीजी ने थाली में मिट्टी और मिट्टी में पंजे का

निशान देखा तो उससे पूछा — चम्पा, यह थाली तो बहुत मैली है।

चम्पा बोली — ये तो साफ पंजे और उँगलियों के निशान हैं। मैं ही क्या, सभी देख सकते हैं। मगर ये मेरी नहीं हैं, हुमा (यह मेरी बड़ी लड़की का नाम है) की होंगी। लड़के तो इस घर में मिट्टी से खेला ही करते हैं।

देवी — अरी चम्पा, क्यों इतना झूठ बोलती है। लड़की के इतनी बड़ी उँगलियाँ कहाँ। बेकार बातें बनाती है और बच्चों को बदनाम करती है।

चम्पा — मैं तो बात बनाती हूँ मगर झूठ तो तुम ही बोला करती हो।

देवी — जबान संभालकर बात कर। यह महीना पूरा हो ले तो हम तुझे बर्खास्त कर देंगे।

चम्पा — तुम क्या बर्खास्त करोगी, मैं खुद ही थोड़े दिनों में नौकरी छोड़ने वाली हूँ। केवल अपना सुभीता देख रही थी। मेरा आदमी हैरान है कि मैं इतने दिनों यहाँ कैसे रही। वे तो शुरू से ही इस घर के खिलाफ थे। यहाँ किसी नौकर का गुजारा हो ही नहीं सकता। सब चीजों पर ताले और मुहरें लगी हैं। सूखी

तनख्वाह ही तनख्वाह है। यह बात तो साफ है कि यहाँ कभी कोई नौकर नहीं रहा है।

जब मैं शाम को दफ्तर से आया तो मुझे यह बात पता चली। मैंने यह कहकर टाल दिया कि तुमको नौकर नहीं रखना है तो निकाल दो। जो मैंने लल्लूजी की माँ के साथ किया, उस अन्याय पर मुझे बाद में बहुत पश्चात्ताप हुआ। खैर, उस समय तो यह बात आई गई हो गई और मैंने चम्पा को समझा दिया। और फिर कुछ दिनों तक काम चलता रहा।

7

एक दिन की बात सुनिये। देवीजी ने दस बार चम्पा-चम्पा पुकारा। वह नीचे थी लेकिन बोली नहीं। चम्पा सुनती है लेकिन बोलती नहीं। तब देवीजी नीचे आईं और उससे कहा — तुझे पचास आवाजें दीं, तूने जवाब न दिया।

चम्पा — अरे बीबी! रहने दो, क्यों झूठ बोलती हो। तुमने दस बार ही तो पुकारा और पचास बार कहती हो। तुमने ही तो कहा था कि महीना बन्द हो जाय तो हम निकाल देंगे, और आज पहली तारीख है। अब मैं क्यों बोलूँ।

देवीजी गुस्से से आग होकर चली आईं। चम्पा उत्तर देने में बिजली, बेचारी पर्दे में रहने वाली देवीजी चुप होकर मेरे कारण गुस्सा पी जाती और मुझसे कुछ न कहतीं। मेरा कमरा भली प्रकार साफ न होता और यदि वे कुछ कहतीं तो वह कहती कि कौन बड़ा साफ कमरा है। एक दिन चम्पा ने चीनी मिट्टी के गुलदान तोड़ डाले। देवीजी ने पूछा तो कहा — लड़कों ने तोड़े हैं।

देवीजी — लड़के इनको कभी नहीं छूते।

चम्पा — तो साहब मैंने ही तोड़े। मुझे कब कहा था कि गुलदान न तोड़ें। शीशे के बर्तनों को कहा था, सो आज तक एक भी नहीं टूटा है। जो काम करेगा उससे टूट-फूट भी होगी। गुलदान पुराने तो थे। आपको नौकर नहीं रखना है, बेकार झूठे आरोप लगाती हैं।

जब शाम को मैं पहुँचा तो कहा — हाँ सरकार, खता हो गई। साफ करने पर एक दूसरे पर गिर गया और टूट गए।

मैं यथासम्भव प्रसन्न रहने का प्रयत्न करता हूँ। क्या करूँ, दिन-भर दफ्तर की हाय-हाय, शाम से घर की परेशानियाँ। एक दिन मैंने कहा कि — चम्पा, मेरे जूते में एक कील निकल आई है, उसको किसी चीज से ठोक दे।

वह चुप रही। शायद मन में यह सोचती रही होगी कि जिस समय नौकर रखा था उस समय यह नहीं कहा था कि यह काम भी उसी के जिम्मे होगा। शायद इसी विचार से उसने उसमें हाथ तक नहीं लगाया। मुझे सुबह को कील वैसी ही मिली तो मैंने उससे पूछा कि तूने कल शाम को जो कील दबाई थी वह रात में फिर निकल आई। तो वह उत्तर देती है — बाबू, जूते पुराने हैं, कहाँ तक चलें। इनको बदल डालो और अच्छे दाम के जूते ले लो कि कुछ चलें।

इस भाँति जब मेरा नाक में दम आ गया तो मैंने उसे निकाल दिया और फिर कोई महरी न रखी। इस प्रकार खोया हुआ चैन आप ही आप मिल गया। सच है, अब नौकरों का समय नहीं रहा, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना सर्वश्रेष्ठ नौकर है।

[‘जमाना’ नवम्बर 1936]

मिलाप

लाला ज्ञानचन्द बैठे हुए हिसाब-किताब जाँच रहे थे कि उनके सुपुत्र बाबू नानकचन्द आये और बोले — दादा, अब यहाँ पड़े-पड़े जी उकता गया, आपकी आज्ञा हो तो मैं सैर को निकल जाऊँ दो एक महीने में लौट आऊँगा।

नानकचन्द बहुत सुशील और नवयुवक था। रंग पीला आँखो के गिर्द हलके स्याह धब्बे कंधे झुके हुए। ज्ञानचन्द ने उसकी तरफ तीखी निगाह से देखा और व्यंगपर्ण स्वर मे बोले — क्यो क्या यहाँ तुम्हारे लिए कुछ कम दिलचस्पियाँ है?

ज्ञानचन्द ने बेटे को सीधे रास्ते पर लाने की बहुत कोशिश की थी मगर सफल न हुए। उनकी डाँट-फटकार और समझाना-बुझाना बेकार हुआ। उसकी संगति अच्छी न थी। पीने पिलाने और राग-रंग में डूबा रहता था। उन्हें यह नया प्रस्ताव क्यों पसन्द आने लगा, लेकिन नानकचन्द उसके स्वभाव से परिचित था। बेधड़क बोला — अब यहाँ जी नहीं लगता। कश्मीर की बहुत तारीफ सुनी है, अब वहीं जाने की सोचना हूँ।

ज्ञानचन्द — बेहतर है, तशरीफ ले जाइए।

नानकचन्द — (हँसकर) रुपये को दिलवाइए। इस वक्त पाँच सौ रुपये की सख्त जरूरत है।

ज्ञानचन्द — ऐसी फिजूल बातों का मुझसे जिक्र न किया करो, मैं तुमको बार-बार समझा चुका।

नानकचन्द ने हठ करना शुरू किया और बूढ़े लाला इनकार करते रहे, यहाँ तक कि नानकचन्द झुँझलाकर बोला — अच्छा कुछ मत दीजिए, मैं यों ही चला जाऊँगा।

ज्ञानचन्द ने कलेजा मजबूत करके कहा — बेशक, तुम ऐसे ही हिम्मतवर हो। वहाँ भी तुम्हारे भाई-बन्द बैठे हुए हैं न!

नानकचन्द — मुझे किसी की परवाह नहीं। आपका रुपया आपको मुबारक रहे।

नानकचन्द की यह चाल कभी पट नहीं पड़ती थी। अकेला लड़का था, बूढ़े लाला साहब ढीले पड़ गए। रुपया दिया, खुशामद की और उसी दिन नानकचन्द कश्मीर की सैर के लिए रवाना हुआ।

2

मगर नानकचन्द यहाँ से अकेला न चला। उसकी प्रेम की बातें आज सफल हो गयी थीं। पड़ोस में बाबू रामदास रहते थे। बेचारे सीधे-सादे आदमी थे, सुबह दफ्तर जाते और शाम को आते और इस बीच नानकचन्द अपने कोठे पर बैठा हुआ उनकी बेवा लड़की से मुहब्बत के इशारे किया करता। यहाँ तक कि अभागी ललिता उसके जाल में आ फँसी। भाग जाने के मंसूबे हुए।

आधी रात का वक्त था, ललिता एक साड़ी पहने अपनी चारपाई पर करवटें बदल रही थी। जेवरों को उतारकर उसने एक सन्दूकचे में रख दिया था। उसके दिल में इस वक्त तरह-तरह के खयाल दौड़ रहे थे और कलेजा जोर-जोर से धड़क रहा था। मगर चाहे और कुछ न हो, नानकचन्द की तरफ से उसे बेवफाई का जरा भी गुमान न था। जवानी की सबसे बड़ी नेमत मुहब्बत है और इस नेमत को पाकर ललिता अपने को खुशनसीब समझ रही थी। रामदास बेसुध सो रहे थे कि इतने में कुण्डी खटकी। ललिता चौंककर उठ खड़ी हुई। उसने जेवरों का सन्दूकचा उठा लिया एक बार इधर-उधर हसरत-भरी निगाहों से देखा और दबे पाँव चौंक-चौककर कदम उठाती देहलीज में आयी और कुण्डी

खोल दी। नानकचन्द ने उसे गले से लगा लिया। बग्घी तैयार थी, दोनों उस पर जा बैठे।

सुबह को बाबू रामदास उठे, ललित न दिखायी दी। घबराये, सारा घर छान मारा कुछ पता न चला। बाहर की कुण्डी खुली देखी। बग्घी के निशान नजर आये। सर पीटकर बैठ गये। मगर अपने दिल का दर्द किससे कहते। हँसी और बदनामी का डर जबान पर मोहर हो गया। मशहूर किया कि वह अपने ननिहाल और गयी मगर लाला ज्ञानचन्द सुनते ही भाँप गये कि कश्मीर की सैर के कुछ और ही माने थे। धीरे-धीरे यह बात सारे मुहल्ले में फैल गई। यहाँ तक कि बाबू रामदास ने शर्म के मारे आत्महत्या कर ली।

3

मुहब्बत की सरगर्मियाँ नतीजे की तरफ से बिलकुल बेखबर होती हैं। नानकचन्द जिस वक्त बग्घी में ललित के साथ बैठा तो उसे इसके सिवाय और कोई खयाल ने था कि एक युवती मेरे बगल में बैठी है, जिसके दिल का मैं मालिक हूँ। उसी धुन में वह मस्त थां बदनामी का ड़र, कानून का खटका, जीविका के साधन, उन

समस्याओं पर विचार करने की उसे उस वक्त फुरसत न थी। हाँ, उसने कश्मीर का इरादा छोड़ दिया। कलकत्ते जा पहुँचा। किफायतशारी का सबक न पढ़ा था। जो कुछ जमा-जथा थी, दो महीनों में खर्च हो गयी। ललिता के गहनों पर नौबत आयी। लेकिन नानकचन्द में इतनी शराफत बाकी थी। दिल मजबूत करके बाप को खत लिखा, मुहब्बत को गालियाँ दीं और विश्वास दिलाया कि अब आपके पैर चूमने के लिए जी बेकरार है, कुछ खर्च भेजिए। लाला साहब ने खत पढ़ा, तसकीन हो गयी कि चलो जिन्दा है खैरियत से है। धूम-धाम से सत्यनारायण की कथा सुनी। रुपया रवाना कर दिया, लेकिन जवाब में लिखा — खैर, जो कुछ तुम्हारी किस्मत में था वह हुआ। अभी इधर आने का इरादा मत करो। बहुत बदनाम हो रहे हो। तुम्हारी वजह से मुझे भी बिरादरी से नाता तोड़ना पड़ेगा। इस तूफान को उतर जाने दो। तुम्हें खर्च की तकलीफ न होगी। मगर इस औरत की बांह पकड़ी है तो उसका निबाह करना, उसे अपनी ब्याहता स्त्री समझो।

नानकचन्द दिल पर से चिन्ता का बोझ उतर गया। बनारस से माहवार वजीफा मिलने लगा। इधर ललिता की कोशिश ने भी कुछ दिल को खींचा और गो शराब की लत न टूटी और हफ्ते में दो दिन जरूर थियेटर देखने जाता, तो भी तबियत में स्थिरता

और कुछ संयम आ चला था। इस तरह कलकत्ते में उसने तीन साल काटे। इसी बीच एक प्यारी लड़की के बाप बनने का सौभाग्य हुआ, जिसका नाम उसने कमला रक्खा।

4

तीसरा साल गुजरा था कि नानकचन्द के उस शान्तिमय जीवन में हलचल पैदा हुई। लाला ज्ञानचन्द का पचासवाँ साल था जो हिन्दोस्तानी रईसों की प्राकृतिक आयु है। उनका स्वर्गवास हो गया और ज्योंही यह खबर नानकचन्द को मिली वह ललिता के पास जाकर चीखें मार-मारकर रोने लगा। जिन्दगी के नये-नये मसले अब उसके सामने आए। इस तीन साल की सँभली हुई जिन्दगी ने उसके दिल शोहदेपन और नशेबाजी क खयाल बहुत कुछ दूर कर दिये थे। उसे अब यह फिक्र सवार हुई कि चलकर बनारस में अपनी जायदाद का कुछ इन्तजाम करना चाहिए, वर्ना सारा कारोबार में अपनी जायदाद का कुछ इन्तजाम करना चाहिए, वर्ना सारा कारोबार धूल में मिल जाएगा। लेकिन ललिता को क्या करूँ। अगर इसे वहाँ लिये चलता हूँ तो तीन साल की पुरानी घटनाएँ ताजी हो जायेगी और फिर एक हलचल

पैदा होगी जो मुझे हूक्काम और हमजोहलयाँ में जलील कर देगी। इसके अलावा उसे अब कानूनी औलाद की जरूरत भी नजर आने लगी यह हो सकता था कि वह ललिता को अपनी ब्याहता स्त्री मशहूर कर देता लेकिन इस आम खयाल को दूर करना असम्भव था कि उसने उसे भगाया हैं ललिता से नानकचन्द को अब वह मुहब्बत न थी जिसमें दर्द होता है और बेचैनी होती है। वह अब एक साधारण पति था जो गले में पड़े हुए ढोल को पीटना ही अपना धर्म समझता है, जिसे बीबी की मुहब्बत उसी वक्त याद आती है, जब वह बीमार होती है। और इसमे अचरज की कोई बात नही है अगर जिंदगीं की नयी नयी उमंगों ने उसे उकसाना शुरू किया। मंसूबे पैदा होने लगे जिनका दौलत और बड़े लोगों के मेल जोल से सबंध है मानव भावनाओं की यही साधारण दशा है। नानकचन्द अब मजबूत इराई के साथ सोचने लगा कि यहाँ से क्योंकर भागूँ। अगर लजाजत लेकर जाता हूँ। तो दो चार दिन में सारा पर्दाफाश हो जाएगा। अगर हीला किये जाता हूँ तो आज के तीसरे दिन ललिता बनरस में मेरे सर पर सवार होगी कोई ऐसी तरकीब निकालूँ कि इन सम्भावनओं से मुक्ति मिले। सोचते-सोचते उसे आखिर एक तदबीर सुझी। वह एक दिन शाम को दरिया की सैर का बहाना करके चला और रात को घर पर न अया। दूसरे दिन सुबह को एक चौकीदार ललिता के पास

आया और उसे थाने में ले गया। ललिता हैरान थी कि क्या माजरा है। दिल में तरह-तरह की दुशिचन्तायें पैदा हो रही थी वहाँ जाकर जो कैफियत देखी तो दूनिया आँखों में अंधेरी हो गई नानकचन्द के कपड़े खून में तर-ब-तर पड़े थे उसकी वही सुनहरी घड़ी वही खूबसूरत छतरी, वही रेशमी साफा सब वहाँ मौजूद था। जेब मे उसके नाम के छपे हुए कार्ड थे। कोई संदेश न रहा कि नानकचन्द को किसी ने कत्ल कर डाला दो तीन हफ्ते तक थाने में तककीकातें होती रही और, आखिर कार खूनी का पता चल गया पुलिस के अफसर को बड़े बड़े इनाम मिले। इसको जासूसी का एक बड़ा आश्चर्य समझा गया। खूनी ने प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता के जोश में यह काम किया। मगर इधर तो गरीब बेगुनाह खूनी सूली पर चढ़ा हुआ था। और वहाँ बनारस में नानक चन्द की शादी रचायी जा रही थी।

5

लाला नानकचन्द की शादी एक रईस घराने में हुई और तब धीरे धीरे फिर वही पुराने उठने बैठनेवाले आने शुरु हुए फिर वही मजलिसे जमीं और फिर वही सागर-ओ-मीना के दौर चलने लगे।

संयम का कमजोर अहाता इन विषय-वासना के बटमारो को न रोक सका। हाँ, अब इस पीने पिलाने मे कुछ परदा रखा जाता है। और ऊपर से थोड़ी-सी गम्भीरता बनाये रखी जाती है साल भर इसी बहार में गुजरा नवेली बहू घर में कुढ़ कुढ़कर मर गई। तपेदिक ने उसका काम तमाम कर दिया। तब दूसरी शादी हुई। मगर इस स्त्री में नानकचन्द की सौन्दर्य प्रेमी आँखो के लिए लिए कोई आकर्षण न था। इसका भी वही हाल हुआ। कभी बिना रोये कौर मुँह में नही दिया। तीन साल में चल बसी। तब तीसरी शादी हुई। यह औरत बहुत सुन्दर थी अच्छी आभूषणों से सुसज्जित उसने नानकचन्द के दिल मे जगह कर ली एक बच्चा भी पैदा हुआ था और नानकचन्द गृहस्थी आनन्दों से परिचित होने लगा। दुनिया के नाते रिश्ते अपनी तरफ खींचने लगे मगर प्लेग के लिए ही सारे मंसूबे धूल में मिला दिये। पतिप्राणा स्त्री मरी, तीन बरस का प्यारा लड़का हाथ से गया। और दिल पर ऐसा दाग छोड़ गया जिसका कोई मरहम न था। उच्छृंखलता भी चली गई ऐयाशी का भी खात्मा हुआ। दिल पर रंजोगम छा गया और तबियत संसार से विरक्त हो गयी।

6

जीवन की दुर्घटनाओं में अकसर बड़े महत्व के नैतिक पहलू छिपे हुआ करते है। इन सइमों ने नानकचन्द के दिल में मरे हुए इन्सान को भी जगा दिया। जब वह निराशा के यातनापूर्ण अकेलेपन में पड़ा हुआ इन घटनाओं को याद करता तो उसका दिल रोने लगता और ऐसा मालूम होता कि ईश्वर ने मुझे मेरे पापों की सजा दी है धीरे धीरे यह ख्याल उसके दिल में मजबूत हो गया। ऊफ मैंने उस मासूम औरत पर कैसा जुल्म किया कैसी बेरहमी की! यह उसी का दण्ड है। यह सोचते-सोचते ललिता की मायूस तस्वीर उसकी आँखों के सामने खड़ी हो जाती और प्यारी मुखड़ेवाली कमला अपने मरे हुए सौतेले भाई के साथ उसकी तरफ प्यार से दौड़ती हुई दिखाई देती। इस लम्बी अवधि में नानकचन्द को ललिता की याद तो कई बार आयी थी मगर भोग विलास पीने पिलाने की उन कैफियातो ने कभी उस खयाल को जमने नहीं दिया। एक धुँधला-सा सपना दिखाई दिया और बिखर गया। मालूम नही दोनो मर गयी या जिन्दा है। अफसोस! ऐसी बेकसी की हालत में छोड़कर मैंने उनकी सुध तक न ली। उस नेकनामी पर धिक्कार है जिसके लिए ऐसी निर्दयता की कीमत

देनी पड़े। यह खयाल उसके दिल पर इस बुरी तरह बैठा कि एक रोज वह कलकत्ता के लिए रवाना हो गया।

सुबह का वक्त था। वह कलकत्ते पहुँचा और अपने उसी पुराने घर को चला। सारा शहर कुछ हो गया था। बहुत तलाश के बाद उसे अपना पुराना घर नजर आया। उसके दिल में जोर से धड़कन होने लगी और भावनाओं में हलचल पैदा हो गयी। उसने एक पड़ोसी से पूछा — इस मकान में कौन रहता है?

बूढ़ा बंगाली था, बोला — हम यह नहीं कह सकता, कौन है कौन नहीं है। इतना बड़ा मुलुक में कौन किसको जानता है? हाँ, एक लड़की और उसका बूढ़ा माँ, दो औरत रहता है। विधवा हैं, कपड़े की सिलाई करता है। जब से उसका आदमी मर गया, तब से यही काम करके अपना पेट पालता है।

इतने में दरवाजा खुला और एक तेरह-चौदह साल की सुन्दर लड़की किताब लिये हुए बाहर निकली। नानकचन्द पहचान गया कि यह कमला है। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए, बेआख्तियार जी चाहा कि उस लड़की को छाती से लगा ले। कुबेर की दौलत मिल गयी। आवाज को सम्हालकर बोला — बेटी, जाकर अपनी अम्माँ से कह दो कि बनारस से एक आदमी आया है। लड़की अन्दर चली गयी और थोड़ी देर में ललिता

दरवाजे पर आयी। उसके चेहरे पर घूँघट था और गो सौन्दर्य की ताजगी न थी मगर आकर्षण अब भी था। नानकचन्द ने उसे देखा और एक ठंडी साँस ली। पतिव्रत और धैर्य और निराशा की सजीव मूर्ति सामने खड़ी थी। उसने बहुत जोर लगाया, मगर जब्त न हो सका, बरबस रोने लगा। ललिता ने घूँघट की आड़ से उसे देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गयी। वह चित्र जो हृदय-पट पर अंकित था, और जो जीवन के अल्पकालिक आनन्दों की याद दिलाता रहता था, जो सपनों में सामने आ-आकर कभी खुशी के गीत सुनाता था और कभी रंज के तीर चुभाता था, इस वक्त सजीव, सचल सामने खड़ा था। ललिता पर ऐ बेहोशी छा गयी, कुछ वही हालत जो आदमी को सपने में होती है। वह व्यग्र होकर नानकचन्द की तरफ बढ़ी और रोती हुई बोली — मुझे भी अपने साथ ले चलो। मुझे अकेले किस पर छोड़ दिया है; मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जाता।

ललिता को इस बात की जरा भी चेतना न थी कि वह उस व्यक्ति के सामने खड़ी है जो एक जमाना हुआ मर चुका, वर्ना शायद वह चीखकर भागती। उस पर एक सपने की-सी हालत छायी हुई थी, मगर जब नानकचन्द ने उसे सीने से लगाकर कहा 'ललिता, अब तुमको अकेले न रहना पड़ेगा, तुम्हें इन आँखों की पुतली बनाकर रखूँगा। मैं इसीलिए तुम्हारे पास आया हूँ। मैं

अब तक नरक में था, अब तुम्हारे साथ स्वर्ग को सुख भोगूँगा।' तो ललिता चौंकी और छिटककर अलग हटती हुई बोली — आँखों को तो यकीन आ गया मगर दिल को नहीं आता। ईश्वर करे यह सपना न हो!

[जमाना, जून 1913]

मुबारक बीमारी

रात के नौ बज गये थे, एक युवती अंगीठी के सामने बैठी हुई आग फूँकती थी और उसके गाल आग के कुन्दनी रंग में दहक रहे थे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें दरवाजे की तरफ़ लगी हुई थीं। कभी चौंककर आँगन की तरफ़ ताकती, कभी कमरे की तरफ़। फिर आनेवालों की इस देरी से त्योरियों पर बल पड़ जाते और आँखों में हलका-सा गुस्सा नजर आता। कमल पानी में झकोले खाने लगता।

इसी बीच आनेवालों की आहट मिली। कहर बाहर पड़ा खर्राटे ले रहा था। बूढ़े लाला हरनामदास ने आते ही उसे एक ठोकर लगाकर कहा — कमबख़्त, अभी शाम हुई है और अभी से लम्बी तान दी!

नौजवान लाला हरिदास घर मे दाखिल हुए — चेहरा बुझा हुआ, चिन्तित। देवकी ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और गुस्से व प्यार की मिली ही हुई आवाज में बोली — आज इतनी देर क्यों हुई?

दोनों नये खिले हुए फूल थे — एक पर ओस की ताज़गी थी, दूसरा धूप से मुरझाया हुआ।

हरिदास — हाँ, आज देर हो गयी, तुम यहाँ क्यों बैठी रहीं?

देवकी — क्या करती, आग बुझी जाती थी, खाना न ठंडा हो जाता।

हरिदास — तुम ज़रा-से काम के लिए इतनी आग के सामने न बैठा करो। बाज आया गरम खाने से।

देवकी — अच्छा, कपड़े तो उतारो, आज इतनी देर क्यों की?

हरिदास — क्या बताऊँ, पिताजी ने ऐसा नाक में दम कर दिया है कि कुछ कहते नहीं बनता। इस रोज-रोज की झंझट से तो यही अच्छा कि मैं कहीं और नौकरी कर लूँ।

लाला हरनामदास एक आटे की चक्की के मालिक थे। उनकी जवानी के दिनों में आस-पास

दूसरी चक्की न थी। उन्होंने खूब धन कमाया। मगर अब वह हालत न थी। चक्कियाँ कीड़े-मकोड़ों की तरह पैदा हो गयी थीं, नयी मशीनों और ईजादों के साथ। उसके काम करनेवाले भी जोशीले नौजवान थे, मुस्तैदी से काम करते थे। इसलिए हरनामदास का कारखाना रोज गिरता जाता था। बूढ़े आदमियों

को नयी चीजों से चिढ़ हो जाती है। वह लाला हरनामदास को भी थी। वह अपनी पुरानी मशीन ही को चलाते थे, किसी किस्म की तरक्की या सुधार को पाप समझते थे, मगर अपनी इस मन्दी पर कुढा करते थे। हरिदास ने उनकी मर्जी के खिलाफ़ कालेजियेट शिक्षा प्राप्त की थी और उसका इरादा था कि अपने पिता के कारखाने को नये उसूलों पर चलाकर आगे बढायें। लेकिन जब वह उनसे किसी परिवर्तन या सुधार का जिक्र करता तो लाला साहब जामे से बाहर हो जाते और बड़े गर्व से कहते — कालेज में पढ़ने से तजुर्बा नहीं आता। तुम अभी बच्चे हो, इस काम में मेरे बाल सफेद हो गये हैं, तुम मुझे सलाह मत दो। जिस तरह मैं कहता हूँ, काम किये जाओ।

कई बार ऐसे मौके आ चुके थे कि बहुत ही छोटे मसलों में अपने पिता की मर्जी के खिलाफ काम करने के जुर्म में हरिदास को सख्त फटकारें पड़ी थीं। इसी वजह से अब वह इस काम में कुछ उदासीन हो गया था और किसी दूसरे कारखाने में किस्मत आजमाना चाहता था जहां उसे अपने विचारों को अमली सूरत देने की ज्यादा सहूलतें हासिल हों।

देवकी ने सहानुभूतिपूर्वक कहा — तुम इस फिक्र में क्यों जान खपाते हो, जैसे वह कहें, वैसे ही करो, भला दूसरी जगह नौकरी

कर लोगे तो वह क्या कहेंगे? और चाहे वे गुस्से के मारे कुछ न बोलें, लेकिन दुनिया तो तुम्हीं को बुरा कहेगी।

देवकी नयी शिक्षा के आभूषण से वंचित थी। उसने स्वार्थ का पाठ न पढ़ा था, मगर उसका पति अपने 'अलमामेटर' का एक प्रतिष्ठित सदस्य था। उसे अपनी योग्यता पर पूरा भरोसा था।

उस पर नाम कमाने का जोश। इसलिए वह बूढ़े पिता के पुराने ढर्रों को देखकर धीरज खो बैठता था। अगर अपनी योग्यताओं के लाभप्रद उपयोग की कोशिश के लिए दुनिया उसे बुरा कहे, तो उसकी परवाह न थी। झुंझलाकर बोला — कुछ मैं अमरित की घरिया पीकर तो नहीं आया हूँ कि सारी उम्र उनके मरने का इंतजार करूँ। मूर्खों की अनुचित टीका-टिप्पणियों के डर से क्या अपनी उम्र बरबार कर दूँ? मैं अपने कुछ हमउम्रों को जानता हूँ जो हरगिज मेरी-सी योग्यता नहीं रखते। लेकिन वह मोटर पर हवा खाने निकलते हैं, बंगलों में रहते हैं और शान से जिन्दगी बसर करते हैं तो मैं क्यों हाथ पर हाथ रखे जिन्दगी को अमर समझे बैठा रहूँ! सन्तोष और निस्पृहता का युग बीत गया। यह संघर्ष का युग है। यह मैं जानता हूँ कि पिता का आदर करना मेरा धर्म है। मगर सिद्धांतों के मामले में मैं उनसे क्या, किसी से भी नहीं दब सकता।

इसी बीच कहार ने आकर कहा — लाला जी थाली माँगते हैं।

लाल हरनामदास हिन्दू रस्म-रिवाज के बड़े पाबन्द थे। मगर बुढापे के कारण चौक के चक्कर से मुक्ति पा चुके थे। पहले कुछ दिनों तक जाड़ों में रात को पूरियाँ न हजम होती थीं इसलिए चपातियाँ ही अपनी बैठक में मँगा लिया करते थे। मजबूरी ने वह कराया था जो हुज्जत और दलील के काबू से बाहर था।

हरिदास के लिए भी देवकी ने खाना निकाला। पहले तो वह हजरत बहुत दुखी नजर आते थे, लेकिन बघार की खुशबू ने खाने के लिए चाव पैदा कर दिया था। अक्सर हम अपनी आँख और नाक से हाजमे का काम लिया करते हैं।

2

लाला हरनामदास रात को भले-चंगे सोये लेकिन अपने बेटे की गुस्ताख़ियाँ और कुछ अपने कारबार की सुस्ती और मन्दी उनकी आत्मा के लिए भयानक कष्ट का कारण हो गयीं और चाहे इसी उद्विग्नता का असर हो, चाहे बुढ़ापे का, सुबह होने से पहले उन पर लकवे का हमला हो गय। जबान बन्द हो गयी और चेहरा ऐंठ गया। हरिदास डाक्टर के पास दौड़ा। डाक्टर आये, मरीज़

को देखा और बोले — डरने की कोई बात नहीं। सेहत होगी मगर तीन महीने से कम न लगेंगे। चिन्ताओं के कारण यह हमला हुआ है इसलिए कोशिश करनी चाहिये कि वह आराम से सोयें, परेशान न हों और जबान खुल जाने पर भी जहां तक मुमकिन हो, बोलने से बचें।

बेचारी देवकी बैठी रो रही थी। हरिदास ने आकर उसको सान्त्वना दी, और फिर डाक्टर के यहाँ से दवा लाकर दी। थोड़ी देर में मरीज को होश आया, इधर-उधर कुछ खोजती हुई-सी निगाहों से देखा कि जैसे कुछ कहना चाहते हैं और फिर इशारे से लिखन के लिए कागज माँगा।

हरिदास ने कागज और पेंसिल रख दी, तो बूढ़े लाला साहब ने हाथों को खूब सम्हालकर लिख — इन्तजाम दीनानाथ के हाथ मे रहे।

ये शब्द हरिदास के हृदय में तीर की तरह लगे। अफ़सोस! अब भी मुझ पर भरोसा नहीं! यानी कि दीनानाथ मेरा मालिक होगा और मैं उसका गुलाम बनकर रहूँगा! यह नहीं होने का।

काग़ज़ लिए देवकी के पास आये और बोले — लालाजी ने दीनानाथ को मैनेजर बनाया है, उन्हें मुझ पर इतना एतबार भी नहीं हैं, लेकिन मैं इस मौके को हाथ से न दूँगा। उनकी बीमारी

का अफ़सोस तो जरूर है मगर शायद परमात्मा ने मुझे अपनी योग्यता दिखलाने का यह अवसर दिया है। और इससे मैं जरूर फायदा उठाऊँगा। कारखाने के कर्मचारियों ने इस दुर्घटना की खबर सुनी तो बहुत घबराये।

उनमें कई निकम्मे, बेमसरफ़ आदमी भरे हुए थे, जो सिर्फ खुशामद और चिकनी-चुपड़ी बातों की रोटी खाते थे। मिस्त्री ने कई दूसरे कारखानों में मरम्मत का काम उठा लिया था रोज किसी-न-किसी बहाने से खिसक जाता था। फायरमैन और मशीनमैन दिन को झूठ-मूठ चक्की की सफाई में काटते थे और रात के काम करके ओवर टाइम की मजदूरी लिया करते थे। दीनानाथ जरूर होशियार और तजुर्बेकार आदमी था, मगर उसे भी काम करने के मुकाबिले में 'जी हाँ' रटते रहने में ज्यादा मजा आता था।

लाला हरनामदास मजदूरी देन में बहुत हीले-हवाले किया करते थे और अक्सर काट-कपट के भी आदी थे। इसी को वह कारबार का अच्छा उसूल समझाते थे।

हरिदास ने कारखाने में पहुँचते ही साफ शब्दों कह दिया कि तुम लोगों को मेरे वक्त में जी लगाकर काम करना होगा। मैं इसी महीन में काम देखकर सब की तरक्की करूँगा। मगर अब टाल-मटोल का गुजर नहीं, जिन्हें मंजूर न हो वह अपना बोरिया-बिस्तर

सम्हालें और फिर दीनानाथ को बुलाकर कहा — भाई साहब, मुझे खूब मालूम है कि आप होशियार और सूझ-बूझ रखनेवाले आदमी हैं। आपने अब तक यह यहाँ का जो रंग देखा, वही अख्तियार किया है। लेकिन अब मुझे आपके तजुर्बे और मेहनत की जरूरत है। पुराने हिसाबों की जांच-पड़ताल कीजिए। बाहर से काम मेरा जिम्मा है लेकिन यहाँ का इन्तजाम आपके सुपुर्द है। जो कुछ नफा होगा, उसमें आपका भी हिस्सा होगा। मैं चाहता हूँ कि दादा की अनुपस्थिति में कुछ अच्छा काम करके दिखाऊँ।

इस मुस्तैदी और चुस्ती का असर बहुत जल्द कारखाने में नजर आने लगा। हरिदास ने खूब इश्तहार बँटवाये। उसका असर यह हुआ कि काम आने लगा। दीनानाथ की मुस्तैदी की बदौलत ग्राहकों को नियत समय पर और किफायत से आटा मिलने लगा। पहला महीना भी खत्म न हुआ था कि हरिदास ने नयी मशीन मँगवायी। थोड़े अनुभवी आदमी रख लिये, फिर क्या था, सारे शहर में इस कारखाने की धूम मच गयी। हरिदास ग्राहकों से इतनी अच्छी तरह से पेश आता कि जो एक बार उससे मुआमला करता वह हमेशा के लिए उसका खरीदार बन जाता। कर्मचारियों के साथ उसका सिद्धांत था — काम सख्त और मजदूरी ठीक। उसके ऊँचे व्यक्तित्व का भी स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ा।

करीब-करीब सभी कारख़ानों का रंग फीका पड़ गया। उसने बहुत ही कम नफे पर ठेले ले लिये। मशीन को दम मारने की मोहलत न थी, रात और दिन काम होता था। तीसरा महीना खत्म होते-होते उस कारखाने की शकल ही बदल गयी। हाते में घुसते ही ठेले और गाडियों की भीड़ नज़र आती थी।

कारखाने में बड़ी चहल-पहल थी — हर आदमी अपने अपने काम में लगा हुआ। इसके साथ की प्रबन्ध कौशल का यह वरदान था कि भद्दी हड़बड़ी और जल्दबाजी का कहीं निशान न था।

3

लाला हरनामदास धीरे-धीरे ठीक होने लगे। एक महीने के बाद वह रूककर कुछ बोलने लगे। डाक्टर की सख्त ताकीद थी कि उन्हे पूरी शान्ति की स्थिति में रखा जाय मगर जब उनकी जबान खुली उन्हें एक दम को भी चैन न था। देवकी से कहा करते — सारा कारबार मिट्टी में मिल जाता है। यह लड़का मालूम नहीं क्या कर रहा है, सारा काम अपने हाथ में ले रखा है। मैंने ताकीद कर दी थी कि दीनानाथ को मैनेजर बनाना लेकिन उसने

जरा भी परवाह न की। मेरी सारी उम्र की कमाई बरबाद हुई जाती है।

देवकी उनको सान्त्वना देती कि आप इन बातों की आशंका न करें। कारबार बहुत खूबी से चल रहा है और खूब नफा हो रहा है। पर वह भी इस मामले में तूल देते हुए डरती थी कि कहीं लकवे का फिर हमला न हो जाय। हूँ-हाँ कहकर टालना चाहती थी। हरिदास ज्यों ही घर में आता, लाला जी उस पर सवालों की बौछार कर देते और जब वह टालकर कोई दूसरा जिक्र छेड़ देता तो बिगड़ जाते और कहते — जालिम, तू जीते जी मेरे गले पर छुरी फेर रहा है। मेरी पूंजी उड़ा रहा है। तुझे क्या मालूम कि मैंने एक-एक कौड़ी किस मशक्कत से जमा की है। तूने दिल में ठान ली है कि इस बुढ़ापे में मुझे गली-गली ठोकर खिलाये, मुझे कौड़ी-कौड़ी का मुहताज बनाये।

हरिदास फटकार का कोई जवाब न देता क्योंकि बात से बात बढ़ती है। उसकी चुप्पी से लाला साहब को यकीन हो जाता कि कारखाना तबाह हो गया।

एक रोज देवकी ने हरिदास से कहा — अभी कितने दिन और इन बातों का लालाजी से छिपाओगे?

हरिदास ने जवाब दिया — मैं तो चाहता हूँ कि नयी मशीन का रुपया अदा हो जाय तो उन्हें ले जाकर सब कुछ दिखा दूँ। तब तक डाक्टर साहब की हिदायत के अनुसार तीन महीने पूरे भी हो जायेंगे।

देवकी — लेकिन इस छिपाने से क्या फायदा, जब वे आठों पहर इसी की रट लगाये रहते हैं। इससे तो चिन्ता और बढ़ती ही है, कम नहीं होती। उससे तो यही अच्छा है, कि उनसे सब कुछ कह दिया जाए।

हरिदास — मेरे कहने का तो उन्हें यकीन आ चुका। हाँ, दीनानाथ कहें तो शायद यकीन हो

देवकी — अच्छा तो कल दीनानाथ को यहाँ भेज दो। लालाजी उसे देखते ही खुद बुला लेंगे, तुम्हें इस रोज-रोज की डाँट-फटकार से तो छुट्टी मिल जाएगी।

हरिदास — अब मुझे इन फटकारों का जरा भी दुख नहीं होता। मेरी मेहनत और योग्यता का नतीजा आँखों के सामने मौजूद है। जब मैंने कारखाना आने हाथ में लिया था, आमदनी और खर्च का मीज़ान मुश्किल से बैठता था। आज पाँच से का नफा है। तीसरा महीना खत्म होनेवाला है और मैं मशीन की आधी कीमत अदा कर चुका। शायद अगले महीने दो महीने में पूरी कीमत

अदा हो जायेगी। उस वक्त से कारखाने का खर्च तिगुने से ज्यादा है लेकिन आमदनी पंचगुनी हो गयी है। हजरत देखेंगे तो आँखें खुल जाएँगी। कहाँ हाते में उल्लू बोलते थे। एक मेज़ पर बैठे आप ऊँघा करते थे, एक पर दीनानाथ कान कुरेदा करता था। मिस्त्री और फायरमैन ताश खेलते थे। बस, दो-चार घण्टे चक्की चल जाती थी। अब दम मारने की फुरसत नहीं है। सारी ज़िन्दगी में जो कुछ न कर सके वह मैंने तीन महीने मे करके दिखा दिया। इसी तजुर्बे और कार्रवाई पर आपको इतना घमण्ड था। जितना काम वह एक महीने में करते थे उतना मैं रोज कर डालता हूँ।

देवकी ने भर्त्सनापूर्ण नेत्रों से देखकर कहा — अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना कोई तुमसे सीख ले! जिस तरह माँ अपने बेटे को हमेशा दुबला ही समझती है, उसी तरह बाप बेटे को हमेशा नादान समझा करता है। यह उनकी ममता है, बुरा मानने की बात नहीं है।

हरिदास ने लज्जित होकर सर झुका लिया।

दूसरे रोज दीनानाथ उनको देखने के बहाने से लाला हरनामदास की सेवा में उपस्थित हुआ।

लालाजी उसे देखते ही तकिये के सहारे उठ बैठे और पागलों की तरह बेचैन होकर पूछा — क्यों, कारबार सब तबाह हो गया कि अभी कुछ कसर बाकी है! तुम लोगों ने मुझे मुर्दा समझ लिया है। कभी बात तक न पूछी। कम से कम मुझे ऐसी उम्मीद न थी। बहू ने मेरी तीमारदारी ने की होती तो मर ही गया होती

दीनानाथ — आपका कुशल-मंगल रोज बाबू साहब से पूछ लिया करता था। आपने मेरे साथ जो नेकियाँ की हैं, उन्हें मैं भूल नहीं सकता। मेरा एक-एक रोआँ आपका एहसानमन्द है। मगर इस बीच काम ही कुछ एकसा था कि हाज़िर होने की मोहलत न मिली।

हरनामदास — खैर, कारखाने का क्या हाल है? दीवाला होने में क्या कसर बाकी है?

दीनानाथ ने ताज्जुब के साथ कहा — यह आपसे किसने कह दिया कि दीवाला होनेवाला है? इस अरसे में कारोबार में जो तरक्की हुई है, वह आप खुद अपनी आँखों से देख लेंगे।

हरनामदास व्यंग्यपूर्वक बोले — शायद तुम्हारे बाबू साहब ने तुम्हारी मनचाही तरक्की कर दी! अच्छा अब स्वामिभक्ति छोड़ो और साफ बतलाओ। मैंने ताकीद कर दी थी कि कारखाने का

इन्तज़ाम तुम्हारे हाथ में रहेगा। मगर शायद हरिदास ने सब कुछ अपने हाथ में रखा।

दीनानाथ — जी हाँ, मगर मुझे इसका जरा भी दुख नहीं। वही रईस काम के लिए ठीक भी थे। जो कुछ उन्होंने कर दिखाया, वह मुझसे हरगिज न हो सकता।

हरनामदास — मुझे यह सुन-सुनकर हैरत होती है। बतलाओ, क्या तरक्की हुई?

दीनानाथ — तफ़सील तो बहुत ज्यादा होगी, मगर थोड़े मे यह समझ लीजिए कि पहले हम लोग जितना काम एक महीने में करते थे उतना अब रोज होता है। नयी मशीन आयी थी, उसकी आधी, कीमत अदा हो चुकी है। वह अक्सर रात को भी चलती है। ठाकुर कम्पनी का पाँच हजार मन आटे का ठेका लिया था, वह पूरा होनेवाला है। जगतराम बनवारीलाल से कमसरियट का ठेका लिया है। उन्होंने हमको पाँच सौ बोरे महावार का बयाना दिया है। इसी तरह और फुटकर काम कई गुना बढ़ गया है। आमदनी के साथ खर्च भी बढ़े हैं। कई आदमी नए रखे गये हैं, मुलाज़िमों को मजदूरी के साथ कमीशन भी मिलता है मगर खालिस नफा पहले के मुकाबले में चौगुने के करीब है।

हरनामदास ने बड़े ध्यान से यह बात सुनी। वह ग़ौर से दीनानाथ के चेहरे की तरफ देख रहे थे। शायद उसके दिन में पैठकर सच्चाई की तह तक पहुँचना चाहते थे। सन्देहपूर्ण स्वर में बोले — दीननाथ, तुम कभी मुझसे झूठ नहीं बोलते थे लेकिन तो भी मुझे इन बातों पर यक़ीन नहीं आता और जब तक अपनी आँखों से देख न लूँगा, यकीन न आयेगा।

दीनानाथ कुछ निराश होकर बिदा हुआ। उसे आशा थी कि लाला साहब तरक्की और

कारगुजारी की बात सुनते ही फूले न समायेंगे और मेरी मेहनत की दाद देंगे। उस बेचारे को न मालूम था कि कुछ दिलों में सन्देह की जड़ इतनी मज़बूत होती है कि सबूत और दलील के हमले उस पर कुछ असर नहीं कर सकते। यहाँ तक कि वह अपनी आँख से देखने को भी धोखा या तिलिस्म समझता है।

दीनानाथ के चले जाने के बाद लाला हरनामदास कुछ देर तक गहरे विचार में डूबे रहे और फिर यकायक कहार से बग्घी मंगवायी, लाठी के सहारे बग्घी में आ बैठे और उसे अपने चक्कीघर चलने का हुक्म दिया।

दोपहर का वक्त था। कारखानों के मजदूर खाना खाने के लिए गोल के गोल भागे चले आते थे

मगर हरिदास के कारखाने में काम जारी था। बग्घी हाते में दाखिल हुई, दोनों तरफ फूलों की कतारें नजर आयीं, माली क्यारियों में पानी दे रहा था। ठेले और गाड़ियों के मारे बग्घी को निकलने की जगह न मिलती थी। जिधर निगाह जाती थी, सफाई और हरियाली नजर आती थी।

हरिदास अपने मुहर्रिर को कुछ खतों का मसौदा लिखा रहा था कि बूढ़े लाला जी लाठी टेकते हुए कारखाने में दाखिल हुए। हरिदास फौरन उठ खड़ा हुआ और उन्हें हाथों से सहारा देते हुए

बोला — 'आपने कहला क्यों न भेजा कि मैं आना चाहता हूँ, पालकी मंगवा देता। आपको बहुत तकलीफ़ हुई।' यह कहकर उसने एक आराम-कुर्सी बैठने के लिए खिसका दी। कारखाने के कर्मचारी दौड़े और उनके चारों तरफ बहुत अदब के साथ खड़े हो गये। हरनामदास कुर्सी पर बैठ गये और बोरों के छत चूमनेवाले ढ़ेर पर नजर दौड़ाकर बोले — मालूम होता है दीनानाथ सच कहता था। मुझे यहाँ कई नयी सूरतें नज़र आती हैं। भला कितना काम रोज होता है? भला कितना काम रोज होता है?

हरिदास — आजकल काम ज्यादा आ गया था इसलिए कोई पाँच सौ मन रोजाना तैयार हो जाता था लेकिन औसत ढाई सौ मन

का रहेगा। मुझे नयी मशीन की कीमत अदा करनी थी इसलिए अक्सर रात को भी काम होता है।

हरनामदास — कुछ कर्ज लेना पड़ा?

हरिदास — एक कौड़ी नहीं। सिर्फ मशीन की आधी कीमत बाकी है।

हरनामदास के चेहरे पर इतमीनान का रंग नजर आया। संदेह ने वह विश्वास को जगह दी।

प्यार-भरी आँखों से लड़के की तरफ देखा और करूण स्वर में बोले — बेटा, मैंने तुम्हारे ऊपर बड़ा जुल्म किया, मुझे माफ करों। मुझे आदमियों की पहचान पर बड़ा घमण्ड था, लेकिन मुझे बहुत धोखा हुआ। मुझे अब से बहुत पहले इस काम से हाथ खींच लेना चाहिए था। मैंने तुम्हें बहुत नुकसान पहुँचाया। यह बीमारी बड़ी मुबारक है जिसने तुम्हारी परख का मौका दिया और तुम्हें लियाकत दिखाने का। काश, यह हमला पाँच साल पहले ही हुआ होता। ईश्वर तुम्हें खुश रखे और हमेशा उन्नति दे, यही तुम्हारे बूढ़े बाप का आशीर्वाद है।

['प्रेम बत्तीसी' से]

यह भी नशा वह भी नशा

होली के दिन राय साहब पण्डित घसीटेलाल की बारहदरी में भंग छन रही थी कि सहसा मालूम हुआ, जिलाधीश मिस्टर बुल आ रहे हैं। बुल साहब बहुत ही मिलनसार आदमी थे और अभी हाल ही में विलायत से आये थे। भारतीय रीति-नीति के जिज्ञासु थे, बहुधा मेले-ठेलों में जाते थे। शायद इस विषय पर कोई बड़ी किताब लिख रहे थे। उनकी खबर पाते ही यहाँ बड़ी खलबली मच गयी। सब-के-सब नंग-धड़ंग, मूसरचन्द बने भंग छान रहे थे। कौन जानता था कि इस वक्त साहब आएँगे। फुर-से भागे, कोई ऊपर जा छिपा, कोई घर में भागा, पर बिचारे राय साहब जहाँ के तहाँ निश्चल बैठे रह गये। आधा घण्टे में तो आप काँखकर उठते थे और घण्टे भर में एक कदम रखते थे, इस भगदड़ में कैसे भागते। जब देखा कि अब प्राण बचने का कोई उपाय नहीं है, तो ऐसा मुँह बना लिया मानो वह जान बूझकर इस स्वदेशी ठाट से साहब का स्वागत करने को बैठे हैं। साहब ने बरामदे में आते ही कहा — हेलो राय साहब, आज तो आपका होली है?

राय साहब ने हाथ बाँधकर कहा — हाँ सरकार, होली है।

बुल — खूब लाल रंग खेलता है?

राय साहब — हाँ सरकार, आज के दिन की यही बहार है।

साहब ने पिचकारी उठा ली। सामने मटकों में गुलाल रखा हुआ था। बुल ने पिचकारी भरकर पण्डितजी के मुँह पर छोड़ दी तो पण्डितजी नहीं उठे। धन्य भाग! कैसे यह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। वाह रे हाकिम! इसे प्रजावात्सल्य कहते हैं। आह! इस वक्त सेठ जोखनराम होते तो दिखा देता कि यहाँ जिला में अफसर इतनी कृपा करते हैं। बताएँ आकर कि उन पर किसी गोरे ने भी पिचकारी छोड़ी है, जिलाधीश का कहना ही क्या। यह पूर्व-तपस्या का फल है, और कुछ नहीं। कोई पहले एक सहस्र वर्ष तपस्या करे, तब यह परम पद पा सकता है। हाथ जोड़कर बोले — धर्मावतार, आज जीवन सफल हो गया। जब सरकार ने होली खेली है तो मुझे भी हुक्म मिले कि अपने हृदय की अभिलाषा पूरी कर लूँ।

यह कहकर राय साहब ने गुलाल का एक टीका साहब के माथे पर लगा दिया।

बुल — इस बड़े बरतन में क्या रखा है, राय साहब?

राय — सरकार, यह भंग है। बहुत विधिपूर्वक बनाई गयी है हुजूर!

बुल — इसके पीने से क्या होगा?

राय — हुजूर की आँखें खुल जाएँगी। बड़ी विलक्षण वस्तु है सरकार।

बुल — हम भी पीएगा।

राय साहब को जान पड़ा मानो स्वर्ग के द्वार खुल गये हैं और वह पुष्पक विमान पर बैठे ऊपर उड़े चले जा रहे हैं। ग्लास तो साहब को देना उचित न था, पर कुल्हड़ में देते संकोच होता था। आखिर बहुत ऊँच-नीच सोचकर ग्लास में भंग उँड़ेली और साहब को दी। साहब पी गये। मारे सुगन्ध के चित्त प्रसन्न हो गया।

2

दूसरे दिन राय साहब इस मुलाकात का जवाब देने चले। प्रातःकाल ज्योतिषी से मुहूर्त पूछा। पहर रात गये साइत बनती थी, अतएव दिन-भर खूब तैयारियाँ कीं। ठीक समय पर चले। साहब उस समय भोजन कर रहे थे। खबर पाते ही सलाम दिया। राय

साहब अन्दर गये तो शराब की दुर्गन्ध से नाक फटने लगी। बेचारे अंग्रेजी दवा न पीते थे, अपनी उम्र में शराब कभी न छुई थी। जी में आया कि नाक बन्द कर लें, मगर डरे कि साहब बुरा न मान जाएँ। जी मचला रहा था, पर साँस रोके बैठे हुए थे। साहब ने एक चुस्की ली और ग्लास मेज पर रखते हुए बोले — राय साहब हम कल आप का बंग पी गया, आज आपको हमारा बंग पीना पड़ेगा। आपका बंग बहुत अच्छा था। हम बहुत-सा खाना खा गया।

राय — हुजूर, हम लोग मदिरा हाथ से भी नहीं छूते। हमारे शास्त्रों में इसको छूना पाप कहा गया है।

बुल — (हँसकर) नहीं, नहीं, आपको पीना पड़ेगा राय साहब! पाप-पुन कुछ नहीं है। यह हमारा बंग है, वह आपका बंग है। कोई फरक नहीं है। उससे भी नशा होता है, इससे भी नशा होता है, फिर फरक कैसा?

राय — नहीं, धर्मावतार, मदिरा को हमारे यहाँ वर्जित किया गया है।

बुल — ऐसा कभी होने नहीं सकता। शास्त्र मना करेगा तो इसको भी मना करेगा, उसको भी मना करेगा। अफीम को भी मना करेगा। आप इसको पिएँ, डरें नहीं। बहुत अच्छा है।

यह कहते हुए साहब ने एक ग्लास में शराब उँडेलकर राय साहब के मुँह से लगा ही तो दी। राय साहब ने मुँह फेर लिया और आँखें बन्द करके दोनों हाथों से साहब का हाथ हटाने लगे। साहब की समझ में यह रहस्य न आता था। वह यही समझ रहे थे कि यह डर के मारे नहीं पी रहे हैं। अपने मजबूत हाथों से राय साहब की गरदन पकड़ी और ग्लास मुँह की तरफ बढ़ाया। राय साहब को अब क्रोध आ गया। साहब खातिर से सब कुछ कर सकते थे; पर धर्म नहीं छोड़ सकते थे। जरा कठोर स्वर में बोले — हुजूर, हम वैष्णव हैं। हम इसे छूना भी पाप समझते हैं।

राय साहब इसके आगे और कुछ न कह सके। मारे आवेश में कण्ठावरोध हो गया। एक क्षण बाद जरा स्वर को संयत करके फिर बोले — हुजूर, भंग पवित्र वस्तु है। ऋषि, मुनि, साधु, महात्मा, देवी, देवता सब इसका सेवन करते हैं। सरकार, हमारे यहाँ इसकी बड़ी महिमा लिखी है। कौन ऐसा पण्डित है, जो बूटी न छानता हो। लेकिन मदिरा का तो सरकार, हम नाम लेना भी पाप समझते हैं।

बुल ने ग्लास हटा लिया और कुरसी पर बैठकर बोला — तुम पागल का माफिक बात करता है। धरम का किताब बंग और शराब दोनों को बुरा कहता है। तुम उसको ठीक नहीं समझता।

नशा को इसलिए सारा दुनिया बुरा कहता है कि इससे आदमी का अकल खत्म हो जाता है। तो बंग पीने से पण्डित और देवता लोग का अकल कैसे खप्त नहीं होगा, यह हम नहीं समझ सकता। तुम्हारा पण्डित लोग बंग पीकर राक्षस क्यों नहीं होता! हम समझता है कि तुम्हारा पण्डित लोग बंग पीकर खप्त हो गया है, तभी तो वह कहता है, यह अछूत है, वह नापाक है, रोटी नहीं खाएगा, मिठाई खाएगा। हम छू लें तो तुम पानी नहीं पीएगा। यह सब खप्त लोगों का बात। अच्छा सलाम!

राय साहब की जान-में-जान आयी। गिरते-पड़ते बरामदे में आये, गाड़ी पर बैठे और घर की राह ली।

रहस्य

विमल प्रकाश ने सेवाश्रम के द्वार पर पहुँचकर जेब से रूमाल निकाला और बालों पर पड़ी हुई गर्द साफ की, फिर उसी रूमाल से जूतों की गर्द झाड़ी और अन्दर दाखिल हुआ। सुबह को वह रोज टहलने जाता है और लौटती बार सेवाश्रम की देख-भाल भी कर लेता है। वह इस आश्रम का बानी भी है, और संचालक भी। सेवाश्रम का काम शुरू हो गया था। अध्यापिकाएँ लड़कियों को पढ़ा रही थीं, माली फूलों की क्यारियों में पानी दे रहा था और एक दरजे की लड़कियाँ हरी-हरी घास पर दौड़ लगा रही थीं। विमल को लड़कियों की सेहत का बड़ा खयाल है।

विमल एक क्षण वहीं खड़ा प्रसन्न मन से लड़कियों की बाल-क्रीड़ा देखता रहा, फिर आकर दफ्तर में बैठ गया। क्लर्क ने कल की आयी हुई डाक उसके सामने रख दी। विमल ने सारे पत्र एक-एक करके खोले और सरसरी तौर पर पढ़कर रख दिये, उसके मुख पर चिन्ता और निराशा का धूमिल रंग दौड़ गया। उसने धन के लिए समाचार-पत्रों में जो अपील निकाली थी, उसका कोई असर नहीं हुआ? कैसे यह संस्था चलेगी? लोग क्या इतने अनुदार

हैं? वह तन-मन से इस काम में लगा हुआ है। उसके पास जो कुछ था वह सब उसने इस आश्रम को भेंट कर दी। अब लोग उससे और क्या चाहते हैं? क्या अब भी वह उनकी दया और विश्वास के योग्य नहीं है?

वह इसी चिन्ता में डूबा हुआ उठा और घर पर आकर सोचने लगा, यह संकट कैसे टाले? अभी साल का आधा भी नहीं गुजरा और आश्रम पर बारह हज़ार का कर्ज हो गया था। साल पूरा-पूरा होते वह बीस हज़ार तक पहुँचेगा। अगर वह लड़कियों की फ़ीस एक-एक रुपया बढ़ा दे, तो पाँच सौ रुपये की आमदनी बढ़ सकती है। होस्टल की फीस दो-दो रुपये बढ़ा दे, तो पाँच सौ रुपये और आ सकते हैं। इस तरह वह आश्रम की आमदनी में बारह हज़ार सालाना की बढ़ती कर सकता है; लेकिन फिर उसका वह आदर्श कहाँ रहेगा कि गरीबों की लड़कियों को नाममात्र फीस लेकर ऊँची शिक्षा दी जाए! काश, उसे ऐसी अध्यापिकाओं की काफ़ी तादाद मिल जाती जो केवल गुजारे पर काम करतीं। क्या इतने बड़े देश में ऐसी दस-बीस पढ़ी-लिखी देवियाँ भी नहीं हैं?

उसने कई बार अखबारों में यह जरूरत छपवाई थी, मगर आज तक किसी ने जवाब न दिया। अब फ़ीस बढ़ाने के सिवा उसके लिए कौन-सा रास्ता है? इसी वक्त उसके द्वार के सामने एक ताँगा

आकर रुका और एक महिला उतरकर बरामदे में आयी। विमल ने कमरे से बाहर निकलकर उनका स्वागत किया और उन्हें अन्दर ले जाकर एक कुरसी पर बैठा दिया। देवीजी रूपवती तो न थीं, पर उनके मुख पर शिष्टता और कुलीनता की आभा जरूर थी। औसत कद, कोमल गात, चम्पई रंग, प्रसन्न मुख, खूब बनी-सँवरी हुई; मगर उस बनाव-सँवार में ही जैसे अभाव की झलक थी। विमल के लिए यह कोई नई बात न थी। जब से उसने सेवाश्रम खोला था, भले घरों की देवियाँ अकसर उससे मिलने आती रहती थीं।

देवीजी ने कुरसी पर बैठते हुए कहा — पहले अपना नाम बता दूँ। मुझे मंजुला कहते हैं। मैंने कुछ दिन हुए — लीडर' में आपकी नोटिस देखी थी और उसी प्रयोजन से आपकी सेवा में आयी हूँ। यों तो आपसे मिलने का शौक बहुत दिनों से था; पर कोई अवसर न निकाल पाती थी, और बरबस आकर आपका कीमती समय नष्ट न करना चाहती थी। आपने जिस त्याग और तन्मयता से नारियों की सेवा की है, उसने आपके प्रति मेरे मन में इतनी श्रद्धा पैदा कर दी है कि मैं उसे प्रकट करूँ तो शायद आप खुशामद समझें। मेरे मन में भी इसी तरह की सेवा की इच्छा बहुत दिनों से है; पर जितना सोचती हूँ; उतना कर नहीं सकती। आपके प्रोत्साहन से सम्भव है; मैं भी कुछ कर सकूँ!

विमल मौन सेवकों में था। अपनी प्रशंसा उसके लिए सबसे कठिन परीक्षा थी। उसकी ठीक वही दशा हो जाती थी, जैसे कोई पानी में डुबकियाँ खा रहा हो। वह खुद किसी के मुँह पर उसकी तारीफ़ न करता था, इसलिए तारीफ़ के भूखे उसे तंगदिल समझते थे। वह पीठ के पीछे तारीफ़ करता था। हाँ, बुराइयाँ वह मुँह पर करता था और दूसरों से भी यही आशा रखता था।

उसने अपना उखड़ा हुआ पाँव जमाते हुए कहा — यह तो बहुत अच्छी बात होगी। आप शौक से आएँ। सेवाश्रम की दशा तो आपको मालूम होगी?

'मैं इस इरादे से यहाँ नहीं आयी हूँ।'

'यह मैं पहले ही समझ गया था। मेरी यह आशा न थी। यों ही कह दिया। अच्छा, आपका मकान यहीं है?

मंजुला देवी का घर लखनऊ में है। जालन्धर के कन्या-विद्यालय में शिक्षा पायी है। अंग्रेजी में अच्छी लियाकत है। घर के काम-धन्धे में भी कुशल हैं। और सबसे बड़ी बात यह है कि उनके हृदय में सेवा का उत्साह है। अगर ऐसी स्त्री सेवाश्रम का भार अपने ऊपर ले ले, तो क्या कहना!

मगर विमल के मन में एक प्रश्न उठा। पूछा — आपके पति भी आपके साथ रहेंगे?

साधारण-सा सवाल था; मगर मंजुला को नागवार लगा। बोली — जी नहीं। वह अपने घर रहेंगे।

वह एक बैंक में नौकर हैं और अच्छा वेतन पाते हैं।

विमल के मन का प्रश्न और भी जटिल हो गया। जो आदमी अच्छा वेतन पाता है, उसकी पत्नी क्यों उससे अलग, काशी में रहना चाहती है?

केवल इतना मुँह से निकला — अच्छा!

मंजुला ने शायद उनके मन का भाव ताड़कर कहा — आपको यह कुछ अनोखी-सी बात लगती होगी, लेकिन क्या आपके ख्याल में शादी का आशय यह है कि स्त्री को पुरुष के दामन में छिपी रहना चाहिए?

विमल ने जोश के साथ कहा — 'हर्गिज नहीं।'

'जब मैं अपनी जरूरतों को घटाकर सिफ़र तक पहुँचा सकती हूँ, तो किसी पर भार क्यों बनूँ?'

'बेशक!'

'हम दोनों में मतभेद है और उसके अनेक कारण हैं। मैं भक्ति और पूजा को मानव जीवन का सत्य समझती हूँ। वह इसे लचर समझते हैं, यहाँ तक कि ईश्वर में भी उनका विश्वास नहीं है। मैं

हिन्दू संस्कृति को सबसे ऊँचा समझती हूँ। उन्हें हमारी संस्कृति में ऐब-ही-ऐब नजर आते हैं। ऐसे आदमी के साथ मेरा निबाह कैसे हो सकता है।'

विमल खुद भक्ति और पूजा को ढोंग समझते थे, और इतनी सी बात पर किसी स्त्री का पुरुष से अलग हो जाना उनकी समझ में न आया। उन्हें ऐसी कई मिसालें याद थीं, जहाँ स्त्रियों ने पति के विधर्मी हो जाने पर भी अपने व्रत का पालन किया। इस समस्या का व्यावहारिक अंग ही उनके सामने था। पूछा — उन्हें कोई आपत्ति तो न होगी?

मंजुला ने गर्व के साथ कहा — मैं ऐसी आपत्तियों की परवाह नहीं करती। अगर पुरुष स्वतन्त्र है, तो स्त्री भी स्वतन्त्र है।

फिर उसने नर्म होकर करुण स्वर में कहा — यों कहिए कि हम और वह तीन साल से अलग हैं। रहते हैं एक ही मकान में; लेकिन बोलते नहीं। जब कभी वह बीमार पड़े हैं, मैंने उनकी तीमारदारी की है। उन पर कोई संकट आया है, तो मैंने उनसे सच्ची सहानुभूति की है; लेकिन मैं मर भी जाऊँ तो उन्हें दुःख न होगा। वह खुश ही होंगे कि गला छूट गया। वह मेरा पालन-पोषण करते हैं, इसलिए ......

उसका गला भर आया था। एक क्षण तक वह चुपचाप जमीन की ओर ताकती रही। फिर उसे भय हुआ कि कहीं विमल उसे हलका और ओछी न समझ रहा हो, जो अपने जीवन के गुप्त रहस्यों का ढिंढोरा पीटती फिरती है। इस भ्रम को विमल के मन से निकालना जरूरी था। उसने उन्हें यकीन दिलाया कि आज तक किसी ने उसके मुँह से ये शब्द नहीं सुने, यहाँ तक कि उसने अपने मन की व्यथा कभी अपनी माता से भी नहीं कही। विमल वह पहले व्यक्ति है जिनसे उसने ये बातें कहने का साहस किया है और इसका कारण यही है कि वह जानती है; उनके दिल में दर्द है और एक स्त्री की विवशता का अन्दाजा कर सकते हैं।

विमल ने लजाते हुए कहा — यह आपकी कृपा है, जो मेरे बारे में ऐसा खयाल करती हैं।

और उनके मन में मंजुला के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। बहुत दिनों के बाद उसे एक देवी नजर आयी, जो सिद्धान्त के लिए इतना साहस कर सकती है। वह खुद मन-ही-मन समाज से विद्रोह करता रहता था। सेवाश्रम भी उनके मानसिक विद्रोह का ही फल था। ऐसी स्त्री के हाथों में वह सेवाश्रम बड़ी खुशी से सौंप देगा। मंजुला इसके लिए तैयार होकर आयी थी।

2

मंजुला के जीवन में आत्मदान की मात्रा ही ज्यादा थी। देह को वह इस भावना की पूर्ति का साधन-मात्र समझती थी। दुनिया की बड़ी से बड़ी विभूति भी उसे शान्ति न दे सकती थी।

मिस्टर मेहरा से उसे केवल इसलिए अरुचि थी कि वह भी साधारण प्राणियों की भाँति भोग-विलास के प्रेमी थे। जीवन उनके लिए इच्छाओं में बहने का नाम था। स्वार्थ की सिद्धि में नीति या धर्म की बाधा उनके लिए असह्य थी। अगर उनमें कुछ उदारता होती और मंजुला से मतभेद होने पर भी वह उसकी भावनाओं का आदर करते और कम-से-कम मुख से ही उसमें सहयोग करते, तो मंजुला का जीवन सुखी होता; पर उस भले आदमी को पत्नी से जरा भी सहानुभूति न थी और वह हर एक अवसर पर उसके मार्ग में आकर खड़े हो जाते थे और मंजुला मन-ही-मन सिमटकर रूह जाती थी। यहाँ तक कि उसकी भावनाएँ विकास का मार्ग न पाकर टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर जाने लगीं। अगर वह इस अभाव को कला का रूप दे सकती, तो उसकी आत्मा को उसमें शान्ति मिलती। जीवन में जो कुछ न मिला, उसे कला में पाकर वह प्रसन्न होती; मगर उसमें वह प्रतिभा, वह रचना-शक्ति न थी। और

उसकी आत्मा पिंजड़े में बन्द पक्षी की भाँति हमेशा बेचैन रहती थी। उसका अहम्भाव इतना प्रच्छन्न हो गया था कि वह जीवन से विरक्त होकर बैठ सकती थी। वह अपने व्यक्तित्व को स्वतन्त्र और पृथक रखना चाहती थी। उसे इसमें गर्व और उल्लास होता था कि वह भी कुछ है। वह केवल किसी वृक्ष पर फैलने वाली और उसके सहारे जीने वाली बेल नहीं है। उसकी अपनी अलग हस्ती है, अपना अलग कार्यक्षेत्र है।

लेकिन यथार्थताओं के इस संसार में आकर उसे मालूम हुआ कि आत्मदान का जो आशय उसने समझ रखा था, वह सरासर ग़लत था। सेवाश्रम में ऐसे लोग अकसर आते रहते थे, जिनसे थोड़ी-सी खुशामद करके बहुत कुछ सहायता ली जा सकती थी; लेकिन मंजुला का आत्माभिमान खुशामद कर किसी तरह राजी न होता था। उनके यश-गान से भरे हुए अभिनन्दन-पत्र पढ़ना, उनके भवनों पर जाकर उन्हें सेवाश्रम के मुआयने का नेवता देना, या रेलवे स्टेशन पर जाकर उनका स्वागत करना, ये ऐसे काम थे जिनसे उसे हार्दिक घृणा होती थी; लेकिन सेवाश्रम के संचालन का भार उस पर था और उसे अपने मन को दबाकर और कर्तव्य का आदर्श सामने रखकर यह सारी नाजबरदारियाँ करनी पड़ती थीं, यद्यपि वह इन विद्रोही भावों को मक़दूर-भर छिपाती थी। पर जिस काम में मन न हो, वहाँ उल्लास और उत्साह कहाँ से आये?

जिन समझौतों से घबराकर वह भागी थी, वह यहाँ और भी विकृत रूप में उसका पीछा कर रहे थे। उसके मन में कटुता आती जाती थी और एकाग्र-सेवा की धुन मिटती जाती थी।

इसके विरुद्ध वह विमल को देखती थी कि उसके चेहरे पर कभी शिकन नहीं आती। वही सहास्य मुख, वही उत्सर्ग से भरा हुआ उद्भाव, वही क्रियाशील तन्मयता। छोटे-से-छोटे काम के लिए हमेशा हाज़िर, सेवाश्रम की कोई कन्या या अध्यापिका बीमार पड़ जाए, विमल उसकी तीमारदारी के लिए मौजूद है। सहानुभूति का न जाने कितना बड़ा कोष उसके पास है कि उसमें जरा भी क्षति नहीं आती। उसके मन में किसी प्रकार का सन्देह या संशय नहीं है। उसने एक रास्ता पकड़ लिया है, ओर उस पर कदम बढ़ाता चला जा रहा है। उसे विश्वास है, इसी रास्ते से वह अपने ध्येय पर पहुँचेगा। राह में जो यात्री मिल जाते हैं, उन्हें अपना संगी बना लेता है। जो कलेवा लेकर चला है, वह संगियों को बाँटकर खाने में आनन्द पाता है। उसे नित्य परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, खुशामदें करनी पड़ती हैं, अपमान सहने पड़ते हैं, अयोग्य व्यक्तियों के सामने सिर झुकाना पड़ता है, भीख माँगनी पड़ती है; मगर उसे गम नहीं। वह कभी निराश नहीं होता, कभी बुरा नहीं मानता। उसके अन्दर कोई ऐसी चीज है, जो हजारों ठोकरें खाने पर भी ज्यों-की-त्यों उछलती और दौड़ती रहती है। अध्यापिकाएँ अकसर

साधारण-सी बातों पर शिकायतें करने लगती हैं, कभी-कभी रूठ जाती हैं और सेवाश्रम से विदा हो जाना चाहती हैं।

अगर धोबन ने कपड़े खराब धोये या कहारिन ने उनकी साड़ी में दाग़ डाल दिये या चौकीदार ने उनके कुत्ते को दुत्कार दिया, या उनके कमरे में झाड़ू नहीं लगी, या ग्वाले ने दूध में पानी मिला दिया, तो इसमें सेवाश्रम के अधिकारियों का क्या दोष? मगर इन्हीं बातों पर यहाँ रोना-गाना मच जाता है, दुनिया सिर पर उठा ली जाती है। और विमल सेवक की भाँति अनुनय-विनय करके उनका गुस्सा ठण्डा करता है। उनकी घुड़कियाँ सुनता है और हँसकर रह जाता है। फल यह है कि अध्यापिकाओं की उस पर श्रद्धा होती जाती है। वह उसे अपना अफ़सर नहीं, अपना मित्र और बन्धु समझती हैं।

मगर मंजुला विमल से कुछ खिंची रहती है। कभी उससे कोई शिकायत नहीं करती, कभी उससे किसी मुआमले में सलाह नहीं लेती। यद्यपि वह दिल में समझती है कि जिस दुनियादारी को वह आत्मा का पतन कहकर उसे हेय समझती है, वह वास्तव में विकसित मानवता का ही रूप है, फिर भी अपने सिद्धान्त-प्रेम के अभिमान को तोड़ डालना उसके लिए कठिन है। और इस अभिमान के होते हुए भी विमल की विशुद्ध, निःस्वार्थ व्यावहारिकता उसे जबरदस्ती अपनी ओर खींचती है। उसने

साधारण मनुष्यों के विषय में अनुभव से मन में जो सीमाएँ खींच ली थीं, विमल उनसे ऊपर था। उसमें स्वार्थ का लेश भी नहीं है। अभिमान उसे छू भी नहीं गया है। उसके त्याग की कोई सीमा नहीं। मंजुला के आध्यात्मिक जीवन में मनुष्य का यही सबसे ऊँचा आदर्श था; लेकिन विमल को उस आदर्श के समीप देखकर उसे एक प्रकार का हार का बोध होता था। आदर्श का महत्व इसी में है कि वह पहुँच के बाहर हो। अगर वह साध्य हो जाए, तो आदर्श ही क्यों रहे?

मंजुला अपनी आदर्श-भावना को और ऊँचा बनाकर इस विचार में सन्तोष पाना चाहती है कि विमल अभी उस आदर्श से बहुत दूर है; लेकिन विमल जैसे जबरन उनका श्रद्धापात्र बनता जाता है, वह अपने को प्रवाह में बहने से रोकने के लिए लकड़ी का सहारा लेती है; पर उसके पैरों के साथ वह लकड़ी भी उखड़ जाती है, और वह फिर किसी दूसरी रोक की तलाश करने लगती है। और अन्त में उसे यह सहारा मिल जाता है।

उसने अपनी तीव्र दृष्टि में देख लिया है कि विमल उसकी कारगुजारियों से सन्तुष्ट नहीं है। फिर वह उससे शिकायत क्यों नहीं करता, उससे जवाब क्यों नहीं माँगता? उसी तीव्र दृष्टि से उसने यह भी ताड़ लिया है कि विमल उसके रूप-रंग से अप्रभावित नहीं है। फिर यह शीतलता और उदासीनता क्यों? क्या

इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह कपटी या कायर है? औरों से वह कितना खुलकर मिलता है, कितनी हमदर्दी से पेश आता है, तो मंजुला से वह क्यों दूर-दूर रहता है? क्यों उससे ऊपरी मन से बातें करता है? वह पहले दिन का निष्कपट व्यवहार कहाँ गया? क्या वह यह दिखाना चाहता है कि मंजुला की उसे बिलकुल परवा नहीं है या उससे केवल इसलिए नाराज है कि धनियों की चौखट पर सिर नहीं झुकाती? यह खुशामद उसे मुबारक रहे। मंजुला सेवा करेगी; पर अपने आत्माभिमान को अछूता रखकर।

एक दिन प्रातःकाल मंजुला बगीचे में टहल रही थी कि विमल ने आकर उसे प्रणाम किया और उसे सूचना दी कि सेवाश्रम का वार्षिकोत्सव निकट आ रहा है। उसके लिए तैयारी करनी चाहिए।

मंजुला ने उदासीन भाव से पूछा — यह जलसा तो हर साल ही होता है।

विमल ने कहा — जी हाँ, हर साल; मगर अबकी ज्यादा समारोह से करने का विचार है।

'मेरे किये जो कुछ हो सकता है, वह मैं भी करूँगी, हालाँकि आप जानते हैं, मैं इस विषय में ज्यादा निपुण नहीं हूँ।'

'इसकी सफलता का सारा भार आप ही के ऊपर है।'

‘मेरे ऊपर?’

‘जी हाँ, आप चाहें तो यह आश्रम कहीं-से-कहीं पहुँच जाए’

‘मेरे विषय में आपका अनुमान ग़लत है।’

विमल ने विश्वास-भरे स्वर में कहा — मेरा अनुमान गलत है या आपका अनुमान गलत है; यह तो जल्द ही मालूम हुआ जाता है।

आज यह पहली प्रेरणा थी, जो विमल ने मंजुला से की। जिस दिन से उसने सेवाश्रम उसके हाथ में सौंपा था, उस दिन से कभी इस विषय में कोई आदेश न दिया था। उसे कभी इसका साहस ही न हुआ। मुलाकातों में इधर-उधर की बातें होकर रह जातीं। शायद विमल समझता था कि मंजुला ने जो त्याग किया है, वह काफी से ज्यादा है। और उस पर अब और बोझ डालना जुल्म होगा। या शायद वह देख रहा था कि मंजुला का मन इस संस्था में रम जाए तो कुछ कहे। आज जो उसने विनय और आग्रह से भरा हुआ यह आदेश दिया तो मंजुला में एक नई स्फूर्ति दौड़ गयी। सेवाश्रम से ऐसा निजत्व उसे कभी न हुआ था। विमल से उसे जो दुर्भावनाएँ थीं, सब जैसे काई की तरह फट गईं और वह पूर्ण तन्मयता के साथ तैयारियों में लग गयी। अब तक वह क्यों आश्रम से इतनी उदासीन थी इस पर उसे आश्चर्य होने लगा। एक सप्ताह तक वह रात-दिन मेहमानों के आदर-सत्कार में व्यस्त

रही। खाने तक की फुरसत न मिलती। दोपहर का खाना तीसरे पहर मिलता। कोई मेहमान किसी गाड़ी से आता, कोई किसी गाड़ी से। अक्सर उसे रात को भी स्टेशन जाना पड़ता। उस पर तरह-तरह के करतबों का रिहर्सल भी कराना पड़ता। अपने भाषण की तैयारी अलग। इस साधना का पुरस्कार तो मिला, कि जलसा हर एक दृष्टि से सफल रहा और कई हज़ार की रकम चन्दे में मिल गयी। मगर जिस दिन मेहमान रुखसत हुए उसी दिन मंजुला को नये मेहमान का स्वागत करना पड़ा, जिसने तीन दिन तक उसे सिर न उठाने दिया। ऐसा बुखार उसे कभी न आया था। तीन ही दिन में ऐसी हो गयी, जैसे बरसों की बीमार हो।

विमल भी दौड़-धूप में लगा हुआ था। पहले तो कई दिन पण्डाल बनवाने और मेहमानों की दावत का इन्तजाम करने में लगा रहा। जलसा खत्म हो जाने पर जहाँ-जहाँ से जो सामान आये थे उन्हें सहेज-सहेजकर लौटाने की पड़ गयी। मंजुला को धन्यवाद देने भी न आ सका, किसी ने कहा जरूर कि देवी जी बीमार हैं, मगर उसने समझा, थकान से कुछ हरारत हो आयी होगी, ज्यादा परवा न की। लेकिन चौथे दिन खबर मिली कि बुखार अभी तक नहीं उतरा और बड़े जोर का हैं, तो वह बदहवास दौड़ा हुआ

आया और अपराधी-भाव से उसके सामने खड़ा होकर बोला — अब कैसी तबीयत है? आपने मुझे बुला क्यों न लिया?

मंजुला को ऐसा जान पड़ा कि जैसे एकाएक बुखार हल्का हो गया है। सिर का दर्द भी कुछ शान्त हुआ जान पड़ा। लेटे-लेटे विवश आँखों से ताकती हुई बोली — बैठ जाइए, आप खड़े क्यों हैं? फिर मुझे भी उठना पड़ेगा।

विमल ने इस भाव से देखा मानो उसका बस होता, तो यह सारा ताप और दर्द खुद ले लेता। फिर आग्रह से बोला — नहीं-नहीं, आप लेटी रहें, मैं बैठ जाता हूँ। इसका अपराधी मैं हूँ। मैंने ही आपको इस जहमत में डाला। मुझे क्षमा कीजिए। मैंने आपसे वह काम लिया जो मुझे खुद करना चाहिये था। मैं अभी जाकर डाक्टर को बुला लाता हूँ। क्या कहूँ, मुझे जरा भी खबर न हुई। फ़िज़ूल के कामों में ऐसा फँसा रहा....

और उसने पीठ फेरी ही थी कि मंजुला ने हाथ उठाकर मना करते हुए कहा — नहीं-नहीं; डाक्टर की कोई जरूरत नहीं। आप जरा भी परेशान न हों। मैं बिलकुल अच्छी हूँ। कल तक उठ बैठूँगी।

उसके मन में और कितनी ही बातें उठीं, मगर उसने ओठ बन्द कर लिये। इस आवेश में वह न जाने क्या-क्या बक जाएगी।

अभी तक विमल ने शायद उसे देवी समझकर उसके सामने सिर झुकाया है। उससे दूर अवश्य रहा है; मगर इसलिए नहीं कि वह समीप आना नहीं चाहता, बल्कि इसलिए कि अपनी सरलता में, अपनी साधना में, उसके समीप आने में झिझकता है, कि कहीं देवी को नागवार न गुजरे। विमल ने अपने मन में उसे जिस ऊँचे आसन पर बैठा दिया है उससे नीचे वह न आएगी।

विमल को मालूम नहीं, वह कितना सात्विक, कितना विशालात्मा पुरुष है। ऐसे आदमी की स्मृति में हमेशा के लिए एक आकाश में उड़ने वाली, निष्कलंक, निष्कपट, सती की धुँधली छाया छोड़ जाना कितना बड़ा मोह है!

उसने विनोद-भाव से कहा — हाँ; क्यों नहीं; क्योंकि आप तो मनुष्य हैं और मैं काठ की पुतली।

'नहीं आप देवी हैं।'

'नहीं, एक नादान औरत।'

'आपने जो कुछ कर दिखाया, वह मैं सौ जन्म लेकर भी न कर सकता था।'

'उसका कारण भी आपने सोचा? यह स्त्री की विजय नहीं, उसकी हार है। अगर इन दोषों के साथ मैं स्त्री न होकर पुरुष होती, तो

शायद इसकी चौथाई सफलता भी न मिलती। यह मेरी जीत नहीं, मेरी नारीत्व की जीत है। रूप तो असार वस्तु है, जिसकी कोई हक़ीकत नहीं। वह धोखा है, फरेब है, दुर्बलताओं के छिपाने का परदा मात्र!'

विमल ने आवेश में कहा — यह आप क्या कहती हैं मंजुला देवी! रूप संसार का सबसे बड़ा सत्य है। रूप को भयंकर समझकर हमारे महात्माओं और पण्डितों ने दुनिया के साथ घोर अन्याय किया है।

मंजुला की सुन्दर छवि गर्व के प्रकाश से चमक उठी। रूप को असत्य समझने के प्रयास में सदैव असफल रही थी। और अपनी निष्ठा और भक्ति से मानो अपने रूप का प्रायश्चित कर रही थी।

उसी रूप के इस समर्थन ने एक क्षण के लिए उसे मुग्ध कर दिया मगर वह संभलकर बोली — आप धोखे में हैं, विमल बाबू, मुझे क्षमा कीजिएगा; मगर यह रूप की उपासना आप में कोई नई बात नहीं है। मरदों ने हमेशा रूप की उपासना की है। थोड़े पण्डितों या महात्माओं ने चाहे रूप की निन्दा की हो, पर मरदों ने प्रायः रूपासक्ति ही का प्रमाण दिया है। यहाँ तक कि रूप के लिए धर्म की परवा नहीं की और उन पण्डितों और महात्माओं ने भी जबान या कलम से चाहे रूप के विरुद्ध विष उगला हो;

लेकिन अन्तःकरण में वे भी उसकी पूजा करते हैं। जब कभी रूप ने उनकी परीक्षा की है उनकी तपस्या पर विजय पायी है। फिर भी जो असत्य है, वह असत्य ही रहेगा। रूप का आकर्षण केवल बाहरी आँखों के लिए है। ज्ञानियों की निगाह में उसका कोई मूल्य नहीं। कम-से-कम आपके मुख से मैं रूप का बखान नहीं सुनना चाहती, क्योंकि मैं आपको देवतुल्य समझती हूँ और दिल से आप पर श्रद्धा रखती हूँ।

विमल विक्षिप्त-सा जमीन की तरफ ताकता रहा और बराबर ताकता ही चला गया; जैसे वह मूर्छावस्था में हो। फिर चौंककर उठा और अपराधियों की भाँति सिर झुकाये, सन्दिग्ध भाव से कदम उठाता हुआ कमरे से निकल गया।

और मंजुला निश्चिन्त बैठी रही।

3

उस दिन से एकाएक विमल का सारा उत्साह और कर्मण्यता जैसे ठण्डी पड़ गयी। जैसे उसमें अब अपना मुँह दिखलाने की हिम्मत नहीं है। मानों इस रहस्य का पर्दा खुल गया है और चारों तरफ उसकी हँसी उड़ रही है। वह अब सेवाश्रम में बहुत कम आता

है और आता भी है, तो अध्यापिकाओं से कुछ बातचीत नहीं करता। सबसे जैसे मुँह चुराता फिरता है। मंजुला को मिलने का कोई अवसर नहीं देता, और जब मंजुला हारकर उसके घर जाती है, तो कहला देता है, घर में नहीं है, हालाँकि वह घर में छिपा बैठा रहता है।

और मंजुला उसके मनोरहस्य को समझने में असमर्थ है। विमल ने अपनी साधना और सद्भावना से उसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, इसमें सन्देह नहीं। वह एक नारी की गहरी अन्तर्दृष्टि से देख रही है कि विमल भी उसका उपासक बन बैठा है ओर जरा भी प्रोत्साहन पाने पर अपने को उसके चरणों पर डाल देगा। उसने बरसों से जो जिन्दगी बसर की है उसमें प्रेम नहीं है सेवा और कर्तव्य का दामन पकड़कर भी उसे अपनी अपूर्णता का ज्ञान होता रहता है। जिस पुरुष में उसका प्रेम नहीं है, न विश्वास है, उसके प्रति वह किसी तरह का नैतिक या धार्मिक बन्धन नहीं स्वीकार करती। वह अपने को स्वच्छन्द समझती है। चाहे समाज उसकी स्वच्छन्दता न माने, पर उसकी आत्मा इस विषय में अपने को आजाद समझती है; मगर विमल की नज़रों में आदर और भक्ति पाने का मोह उसमें इतना प्रबल है कि वह उस स्वच्छन्दता की भावना को सिर नहीं उठाने देती। वह विमल से संसर्ग की घनिष्ठता तो चाहती है; पर अपने आत्माभिमान की रक्षा

करते हुए। इसके साथ ही विमल के पवित्र और निर्मल जीवन में वह दाग नहीं लगाना चाहती।

उसने सोचा था, विमल को दवा का हल्का-सा घूँट पिलाकर वह स्वस्थ कर देगी। वह स्वस्थ होकर उसके मनोद्यान में आएगा, फूलों को देखकर प्रसन्न होगा, हरी-हरी दूब पर लेटेगा, पक्षियों का गाना सुनेगा। उससे वह इतना ही संसर्ग चाहती थी। दीपक के प्रकाश का आनन्द तो दीपक से दूर रहकर ही लिया जा सकता। उसे स्पर्श करके तो वह अपने को जला सकता है; मगर अब उसे मालूम हुआ कि दवा की वह घूँट बाधा को हरने के बदले एक दूसरा रोग पैदा कर गयी। विमल में निर्लेप होकर रहने की शक्ति न थी। वह जिस चीज की ओर झुकता था, तन-मन से उसी का हो जाता था और जब खिंचता था, तो मानो नाता ही तोड़ लेता था। उसके इस नये व्यवहार को मंजुला अपना अपमान समझती है। और मन यहाँ से उचाट हो जाता है।

आखिर एक दिन उसने विमल को पकड़ ही लिया था। मंजुला जानती थी, विमल रोज दरिया किनारे सैर करने जाता है। एक दिन उसने वहीं जा घेरा और अपना इस्तीफा उसके हाथ में रख दिया।

विमल के गले में जैसे फाँसी पड़ गयी। जमीन की ओर ताकता हुआ बोला — ऐसा क्यों?

'इसलिए कि मैं अपने को इस काम के योग्य नहीं पाती।'

'संस्था तो खूब चल रही है?'

'फिर भी मैं यहाँ रहना नहीं चाहती।'

'मुझसे कोई अपराध हुआ है?'

'आप अपने दिल से पूछिए।'

विमल ने इस वाक्य का वह आशय समझ लिया, जो मंजुला की कल्पना से भी कोसों दूर था। उसके मुख का रंग उड़ गया, जैसे रक्त की गति बन्द हो गयी हो। इसका उसके पास कोई जवाब न था। ऐसा फैसला था जिसकी कहीं अपील न थी।

आहत स्वर में बोला — जैसी आपकी इच्छा। मुझ पर दया कीजिए।

मंजुला ने आर्द्र होकर कहा — तो मैं चली जाऊँ?

'जैसे आपकी इच्छा!'

और वह जैसे गले का फन्दा छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ। मंजुला करुण नेत्रों से उसे देखती रही, मानो

सामने कोई नौका डूबी जा रही हो।

4

चाबुक खाकर विमल फिर सेवाश्रम की गाड़ी में जुत गया। कह दिया गया मंजुला देवी के पति बीमार थे। चली गयीं। काम-काजी आदमी प्रेम का रोग नहीं पालता, उसे कविता करने और प्रेम-पत्र लिखने और ठण्डी आहें भरने की कहाँ फुरसत? उसके सामने तो कर्तव्य है, प्रगति की इच्छा है, आदर्श है। विमल भी काम-धन्धे में लग गया। हाँ, कभी-कभी एकान्त में मंजुला की याद आ जाती थी और लज्जा से उसका मस्तक आप-ही-आप झुक जाता था। उसे हमेशा के लिए सबक मिल गया था। ऐसी सती-साध्वी के प्रति उसने कितनी बेहूदगी की!

तीन साल गुजर गये थे। गर्मियों के दिन थे। विमल अबकी मंसूरी की सैर करने गया हुआ था और एक होस्टल में ठहरा था। एक दिन बैण्ड स्टैण्ड के समीप खड़ा बैण्ड सुन रहा था कि बगल की एक बेंच पर मंजुला बैठी नजर आयी, आभूषणों और रंगों से जगमगाती हुई। उसके पास ही एक युवक कोट-पैंट पहने बैठा हुआ था। दोनो मुस्करा-मुस्कराकर बातें कर रहे थे। दोनों

के चेहरे खिले, दोनों प्रेम के नशे में मस्त। विमल के मन में सवाल उठा, यह युवक कौन है? मंजुला का पति नहीं हो सकता। या संभव है, उसका पति ही हो। दम्पति में अब मेल हो गया हो। उसे मंजुला के सामने जाने का साहस न हुआ।

दूसरे दिन वह एक अँगरेजी तमाशा देखने सिनेमा हाल गया था। इंटरवल में बाहर निकला तो केफे में फिर मंजुला दिखायी दी। सिर से पाँव तक अँग्रेजी पहनावे में। वही कल वाला युवक आज भी उसके साथ था। आज विमल से जब्त न हो सका। इसके पहले कि वह मन में कुछ निश्चय कर सके, वह मंजुला के सामने खड़ा था।

मंजुला उसे देखते ही सन्नाटे में आ गयी। मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, मगर एक ही क्षण में उसने अपने आप को सँभाल लिया और मुस्कराकर बोली — हल्लो, विमल बाबू! आप यहाँ कैसे?

और उसने उस नवयुवक से विमल का परिचय कराया — आप महात्मा पुरुष हैं, काशी के सेवाश्रम के संचालक और यह मेरे मित्र मि. खन्ना हैं जो अभी हाल में इंग्लैंड से आयी. सी. एफ. होकर आये हैं।

दोनों आदमियों ने हाथ मिलाए।

मंजुला ने पूछा — सेवाश्रम तो खूब चल रहा है। मैंने उसकी वार्षिक रिपोर्ट पत्रों में पढ़ी थी। आप यहाँ कहाँ ठहरे हुए हैं?

विमल ने अपने होटल का नाम बतलाया।

खेल फिर शुरू हो गया। खन्ना ने कहा — खेल शुरू हो गया, चलो अन्दर चलें।

मंजुला ने कहा — तुम जाकर देखो, मैं जरा मिस्टर विमल से बातें करूँगी।

खन्ना ने विमल को जलती हुई आँखों से देखा और अकड़ता हुआ अन्दर चला गया। मंजुला और विमल बाहर आकर हरी-हरी घास पर बैठ गये। विमल का हृदय गर्व से फूला हुआ था। आशामय उल्लास की चाँदनी-सी हृदय पर छिटकी हुई थी।

मंजुला ने गम्भीर स्वर में पूछा — आपको मेरी याद काहे को आयी होगी। कई बार इच्छा हुई कि आपको पत्र लिखूँ, लेकिन संकोच के मारे न लिख सकी। आप मजे में तो थे।

विमल को उसका यह उलाहना बुरा लगा। कहाँ अभी हास्य-विनोद में मग्न थी, कहाँ उसे देखते ही गम्भीरता की पुतली बन गयी। रूखे स्वर में बोला — हाँ, बहुत अच्छी तरह था। आप तो आराम से थीं?

मंजुला आर्द्र कण्ठ से बोली — मेरे भाग्य में तो आराम लिखा ही नहीं है, मिस्टर विमल। पिछले साल पति का देहान्त हो गया। उन्होंने जितनी जायदाद छोड़ी उससे ज्यादा कर्ज छोड़ा। इन्हीं उलझनों में पड़ी रही। स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। डाक्टरों ने पहाड़ पर रहने की सलाह दी। तब से यहीं पड़ी हुई हूँ।

'आपने मुझे खत तक न लिखा।'

'आपके सिर यों ही क्या कम बोझ है कि मैं अपनी चिन्ताओं का भार भी रख देती?'

'फिर भी एक मित्र के नाते मुझे खबर तो देनी ही थी।'

मंजुला ने स्वर में श्रद्धा भरकर कहा — आपका काम इन झगड़ों में पड़ना नहीं है, विमल बाबू।

आपको ईश्वर ने सेवा और त्याग के लिए रचा है। वही आपका क्षेत्र है। मैं जानती हूँ, आपकी मुझ पर दयादृष्टि है। मैं कह नहीं सकती, मेरी नज़रों में उसका कितना मूल्य है। जिसे कभी दया और प्रेम न मिला हो वह इनकी ओर लपके तो क्षमा के योग्य है। आप समझ सकते हैं, उनका परित्याग करके मैंने कितनी बड़ी कुर्बानी की है; मगर मैंने इसी को अपना कर्तव्य समझा। मैं सब कुछ सह लूँगी; पर आपको देवत्व के ऊँचे आसन से नीचे न गिराऊँगी। आप ज्ञानी हैं, संसार के सुख कितने

अनित्य हैं, आप खूब जानते हैं। इनके प्रलोभन में न आइए। आप मनुष्य हैं। आप में भी इच्छाएँ हैं; वासनाएँ हैं; लेकिन इच्छाओं पर विजय पाकर ही आपने यह ऊँचा पद पाया है। उसकी रक्षा कीजिए। और अध्यात्म ही आपकी मदद कर सकता है। उसकी साधना से आपका जीवन सात्विक होगा और मन पवित्र होगा।

विमल ने अभी-अभी मंजुला को आमोद-प्रमोद में क्रीड़ा करते देखा था। खन्ना से उसका सम्बन्ध किस तरह का है, यह भी वह समझ रहा था। फिर भी इस उपदेश में उसे सच्ची सहानुभूति का सन्देश मिला। विलासिनी मंजुला उसे देवी के रूप में नजर आयी। उसके भीतर का अहंकार उसकी लोलुपता से बलवान् था। सद्भावना से भरकर बोला — देवीजी, आपने जिन शब्दों से मेरा सम्मान किया है उनके लिए आपका एहसानमन्द हूँ। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

मंजुला ने उठते हुए कहा — आपकी कृपा-दृष्टि काफी है।

उसी वक्त खन्ना सिनेमा-हाल से बाहर आता दिखाई दिया।

राजहठ

दशहरे के दिन थे, अचलगढ़ में उत्सव की तैयारियाँ हो रही थीं। दरबारे आम में राज्य के मंत्रियों के स्थान पर अप्सराएँ शोभायमान थीं। धर्मशालों और सरायों में घोड़े हिनहिना रहे थे। रियासत के नौकर, क्या छोटे, क्या बड़े, रसद पहुँचाने के बहाने से दरवाजे आम में जमे रहते थे। किसी तरह हटाये न हटते थे। दरबारे खास में पंडित और पुजारी और महन्त लोग आसन जमाए पाठ करते हुए नजर आते थे। वहाँ किसी राज्य के कर्मचारी की शकल न दिखायी देती थी। घी और पूजा की सामग्री न होने के कारण सुबह की पूजा शाम को होती थी। रसद न मिलने की वजह से पंडित लोग हवन के घी और मेवों के भोग के अग्निकुंड में डालते थे। दरबारे आम में अंग्रेजी प्रबन्ध था और दरबारे खास में राज्य का।

राजा देवमल बड़े हौसलेमन्द रईस थे। इस वार्षिक आनन्दोत्सव में वह जी खोलकर रुपया खर्च करते। जिन दिनों अकाल पड़ा, राज्य के आधे आदमी भूखों तड़पकर मर गए। बुखार, हैजा और प्लेग में हजारों आदमी हर साल मृत्यु का ग्रास बन जाते थे।

राजय निर्धन था इसलिए न वहाँ पाठशालाएँ थीं, न चिकित्सालय, न सड़कें। बरसात में रनिवास दलदल हो जाता और अंधेरी रातों में सरेशाम से घरों के दरवाजे बन्द हो जाते। अंधेरी सड़कों पर चलना जान जोखिम था। यह सब और इनसे भी ज्यादा कष्टप्रद बातें स्वीकार थीं मगर यह कठिन था, असम्भव था कि दुर्गा देवी का वार्षिक आनन्दोत्सव न हो। इससे राज्य की शान बट्टा लगने का भय था। राज्य मिट जाए, महलों की ईटें बिक जाएँ मगर यह उत्सव जरूर हो। आस पास के राजे-रईस आमंत्रित होते, उनके शामियानों से मीलों तक संगमरमर का एक शहर बस जाता, हफ्तों तक खूब चहल-पहल धूम-धाम रहती। इसी की बदौलत अचलगढ़ का नाम अटलगढ़ हो गया था।

2

मगर कुँवर इन्दरमल को राजा साहब की इन मस्ताना कार्रवाइयों में बिलकुल आस्था न थी। वह प्रकृति से एक बहुत गम्भीर और सीधा-सादा नवयुवक था। यों गजब का दिलेर, मौत के सामने भी ताल ठोंककर उतर पड़े मगर उसकी बहादुरी खून की प्यास से पाक थी। उसके वार बिना पर की चिड़ियों या बेजबान जानवरों

पर नहीं होते थे। उसकी तलवार कमजोरों पर नहीं उठती थी। गरीबों की हिमायत, अनाथों की सिफारिशें, निर्धनों की सहायता और भाग्य के मारे हुओं के घाव की मरहम-पट्टी इन कामों से उसकी आत्मा को सुख मिलता था। दो साल हुए वह इंदौर कालेज से ऊँची शिक्षा पाकर लौटा था और तब से उसका यह जोश असाधारण रूप में बढ़ा हुआ था, इतना कि वह साधारण समझदारी की सीमाओं को लाँच गया था, चौबीस साल का लम्बा-तड़ंगा है, कल जवान, धन ऐश्वर्य के बीच पला हुआ, जिसे चिन्ताओं की कभी हवा तक न लगी, अगर रुलाया तो हँसी ने। वह ऐसा नेक हो, उसके मर्दाना चेहरे पर चिन्ता का पीलापन और झुर्रियाँ नजर आयें यह एक असाधारण बात थी। उत्सव का शुभ दिन पास आ पहुँचा था, सिर्फ चार दिन बाकी थे। उत्सव का प्रबन्ध पूरा हो चुका था, सिर्फ अगर कसर थी तो कहीं-कहीं दोबारा नजर डाल लेने की। तीसरे पहर का वक्त था, राजा साहब रनिवास में बैठे हुए कुछ चुनी हुई अप्सराओं का गाना सुन रहे थे। उनकी सुरीली तानों से जो खुशी हो रही थी; उससे कहीं ज्यादा खुशी यह सोचकर हो रही थी कि यह तराने पोलिटिकल एजेन्ट को भड़का देंगे। वह आँखें बन्द करके सुनेगा और खुशी के मारे उछल-उछल पड़ेगा।

इस विचार से जो प्रसन्नता होती थी वह तानसेन की तानों में भी नहीं हो सकती थी। आह, उसकी जबान से अनजाने ही — वाह-वाह' निकल पड़ेगी। अजब नहीं कि उठकर मुझसे हाथ मिलाये और मेरे चुनाव की तारीफ करें इतने में कुँवर इन्दरमल बहुत सादा कपड़े पहने सेवा में उपस्थित हुए और सर झुकाकर अभिवादन किया। राजा साहब की आँखें शर्म से झुक गई, मगर कुँवर साहब का इस समय आना अच्छा नहीं लगा। गानेवालियों को वहाँ से उठ जाने का इशारा किया।

कुँवर इन्दरमल बोले — महाराज, क्या मेरी बिनती पर बिलकुल ध्यान न दिया जायेगा?

राजा साहब की गद्दी के उत्तराधिकारी राजकुमार की इज्जत करते थे और मुहब्बत तो कुदरती बात थी, तो भी उन्हें यह बेमौका हठ पसन्द न आता था। वह इतने संकीर्ण बुद्धि न थे कि कुँवर साहब की नेक सलाहों की कद्र न करें। इससे निश्चय ही राज्य पर बोझ बढ़ता जाता था ओर रिआया पर बहुत जुल्म करना पड़ता था। मैं अंधा नहीं हूँ कि ऐसी मोटी-मोटी बातें न समझ सकूँ। मगर अच्छी बातें भी मौका-महल देखकर की जाती हैं। आखिरकार नाम और यश, इज्जत और आबरु भी कोई चीज है? रियासत में संगमरमर की सड़कें बनवा दूँ, गली-गली मदरसे खोल दूँ, घर-घर कुएँ खोदवा दूँ, दवाओं की नहरें जारी कर दूँ

मगर दशहरे की धूम-धाम से रियासत की जो इज्जत और नाम है वह इन बातों से कभी हासिल नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि धीरे-धीरे यह खर्च घटा दूँ मगर एकबारगी ऐसा करना न तो उचित है और न सम्भव। जवाब दिया — आखिर तुम क्या चाहते हो? क्या दशहरा बिलकुल बन्द कर दूँ?

इन्दरमल ने राजा साहब के तेवर बदले हुए देखे, तो आदरपूर्वक बोले — मैंने कभी दशहरे के उत्सव के खिलाफ मुँह से एक शब्द नहीं निकाला, यह हमारा जातीय पर्व है, यह विजय का शुभ दिन है, आज के दिन खुशियाँ मनाना हमारा जाती कर्तव्य है। मुझे सिर्फ इन अप्सराओं से आपत्ति है, नाच-गाने से इस दिन की गम्भीरता और महत्ता डूब जाती है।

राजा साहब ने व्यंग्य के स्वर में कहा — तुम्हारा मतलब है कि रो-रोकर जश्न मनाएँ, मातम करें।

इन्दरमल ने तीखें होकर कहा — यह न्याय के सिद्धान्तों के खिलाफ बात है कि हम तो उत्सव मनाएँ, और हजारों आदमी उसकी बदौलत मातम करें। बीस हजार मजदूर एक महीने से मुफ्त में काम कर रहे है, क्या उनके घरों में खुशियाँ मनाई जा रही हैं? जो पसीना बहायें वह रोटियों को तरसें और जिन्होंने हरामकारी को अपना पेशा बना लिया है, वह हमारी महफिलों की

शोभा बनें। मैं अपनी आँखों से यह अन्याय और अत्याचार नहीं देख सकता। मैं इस पाप-कर्म में योग नहीं दे सकता। इससे तो यही अच्छा है कि मुँह छिपाकर कहीं निकल जाऊँ। ऐसे राज में रहना, मैं अपने उसूलों के खिलाफ और शर्मनाक समझता हूँ।

इन्दरमल ने तैश में यह धृष्टतापूर्ण बातें कीं। मगर पिता के प्रेम को जगाने की कोशिश ने राजहठ के सोए हुए काले देव को जगा दिया। राजा साहब गुस्से से भरी हुई आँखों से देखकर बोले — हाँ, मैं भी यही ठीक समझता हूँ। तुम अपने उसूलों के पक्के हो तो मैं भी अपनी धुन का पूरा हूँ।

इन्दरमल ने मुस्कराकर राजा साहब को सलाम किया। उसका मुस्कराना घाव पर नमक हो गया। राजकुमार की आँखों में कुछ बूँदें शायद मरहम का काम देतीं।

3

राजकुमार ने इधर पीठ फेरी, उधर राजा साहब ने फिर अप्सराओं को बुलाया और फिर चित्त को प्रफुल्लित करनेवाले गानों की आवाजें गूँजने लगीं। उनके संगीत-प्रेम की नदी कभी इतने जोर-शोर से न उमड़ी थी, वाह-वाह की बाढ़ आई हुई थी, तालियों का

शोर मचा हुआ था और सुर की किश्ती उस पुरशोर दरिया में हिंडोले की तरह झूल रही थी।

यहाँ तो नाच-गाने का हंगामा गरम था और रनिवास में रोने-पीटने का। रानी भान कुँवर दुर्गा की पूजा करके लौट रही थी कि एक लौंडी ने आकर यह मर्मान्तक समाचार दिया। रानी ने आरती का थाल जमीन पर पटक दिया। वह एक हफ्ते से दुर्गा का व्रत रखती थीं। मृगछाले पर सोती और दूध का आहार करती थीं। पाँव थर्राये, जमीन पर गिर पड़ी। मुरझाया हुआ फूल हवा के झोंके को न सह सका। चेरियाँ सम्हल गयीं और रानी के चारों तरफ गोल बांधकर छाती और सिर पीटने लगीं। कोहराम मच गया। आँखों में आँसू न सही, आँचलों से उनका पर्दा छिपा हुआ था, मगर गले में आवाज तो थी। इस वक्त उसी की जरूरत थी। उसी की बुलन्दी और गरज में इस समय भाग्य की झलक छिपी हुई थी।

लौडियाँ तो इस प्रकार स्वामिभक्ति का परिचय देने में व्यस्त थीं और भानकुँवर अपने खयालों में डूबी हुई थीं। कुँवर से ऐसी बेअदबी क्योंकर हुई, यह खयाल में नहीं आता। उसने कभी मेरी बातों का जवाब नहीं दिया, जरूर राजा की ज्यादती है।

इसने इस नाच-रंग का विरोध किया होगा, किया ही चाहिए। उन्हें क्या, जो कुछ बनेगी-बिगड़ेगी उसे जिम्मे लगेगी। यह गुस्सेवर हैं ही। झल्ला गये होंगे। उसे सख्त-सुस्त कहा होगा। बात की उसे कहाँ बर्दाश्त, यही तो उसमें बड़ा ऐब है, रुठकर कहीं चला गया होगा। मगर गया कहाँ? दुर्गा! तुम मेरे लाल की रक्षा करना, मैं उसे तुम्हारे सुपुर्द करती हूँ। अफसोस, यह गजब हो गया। मेरा राज्य सूना हो गया और इन्हें अपने राग-रंग की सूझी हुई है। यह सोचते-सोचते रानी के शरीर में कँपकँपी आ गई, उठकर गुस्से से काँपती हुई वह बेधड़क नाच-गाने की महफिल की तरफ चली। करीब पहुँची तो सुरीली तानें सुनाई दीं। एक बरछी-सी जिगर में चुभ गयी। आग पर तेल पड़ गया।

रानी को देखते ही गानेवालियों में एक हलचल-सी मच गई। कोई किसी कोने में जा छिपी, कोई गिरती-पड़ती दरवाजें की तरफ भागी। राजा साहब ने रानी की तरफ घूरकर देखा। भयानक गुस्से का शोला सामने दहक रहा था। उनकी त्योरियों पर भी बल पड़ गए। खून बरसाती हुई आँखें आपस में मिलीं। मोम ने लोहे को सामना किया।

रानी थर्रायी हुई आवाज में बोली — मेरा इन्दरमल कहाँ गया? यह कहते-कहते उसकी आवाज रुक गई और होंठ काँपकर रूह गए।

राजा ने बेरुखी से जवाब दिया — मैं नहीं जानता।

रानी सिसकियाँ भरकर बोली — आप नहीं जानते कि वह कल तीसरे पहर से गायब है और उसका कहीं पता नहीं? आपकी इन जहरीली नागिनों ने यह विष बोया है। अगर उसका बाल भी बाँका हुआ तो उसके जिम्मेदार आप होंगे।

राजा ने तुर्शी से कहा — वह बड़ा घमण्डी और बिनकहा हो गया है, मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।

रानी कुचले हुए साँप की तरह ऐंठकर बोली — राजा, तुम्हारी जबान से यह बातें निकल रही हैं! हाय मेरा लो, मेरी आँखों की पुलती, मेरे जिगर का टुकड़ा, मेरा सब कुछ यों अलोप हो जाए और इस बेरहम का दिल जरा भी न पसीजे! मेरे घर में आग लग जाए और यहाँ इन्द्र का अखाड़ा सजा रहे! मैं खून के आँसू रोऊँ और यहाँ खुशी के राग अलापे जाएँ!

राजा के नथने फड़कने लगे, कड़ककर बोले — रानी भानकुँवर अब जबान बन्द करो। मैं इससे ज्यादा नहीं सुन सकता। बेहतर होगा कि तुम महल में चली जाओ।

रानी ने बिफरी हुई शेरनी की तरह गर्दन उठाकर कहा — हाँ, मैं खुद जाती हूँ। मैं हुजूर के ऐश में विघ्न नहीं डालना चाहती,

मगर आपको इसका भुगतान करना पड़ेगा। अचलगढ़ में या तो भान कुँवर रहेगी या आपकी जहरीली, विषैली परियाँ!

राजा पर इस धमकी को कोई असर न हुआ। गैंडे की ढाल पर कच्चे लोहे का असर क्या हो सकता है! जी में आया कि साफ-साफ कह दें, भान कुँवर चाहे रहे या न रहे यह परियाँ जरूर रहेंगी लेकिन आपने को रोककर बोले — तुमको अख्तियार है, जो ठीक समझो वह करो।

रानी कुछ कदम चलकर फिर लौटीं और बोली — त्रिया-हठ रहेगी या राजहठ?

राजा ने निष्कम स्वर में उत्तर दिया — इस वक्त तो राजहठ ही रहेगी।

4

रानी भानकुँवर के चले जाने के बाद राजा देवमल फिर अपने कमरे में आ बैठे, मगर चिन्तित और मन बिलकुल बुझा हुआ, मुर्दे के समान। रानी की सख्त बातों से दिल के सबसे नाजुक हिस्सों में टीस और जलन हो रही थी। पहले तो वह अपने ऊपर

झुँझलाए कि मैंने उसकी बातों को क्यों इतने धीरज से सुना मगर जब गुस्से की आग धीमी हुई और दिमाग का सन्तुलन फिर असली हालत पर आया तो उन घटनाओं पर अपने मन में विचार करने लगे। न्यायप्रिय स्वभाव के लोगों के लिए क्रोध एक चेतावनी होती है, जिससे उन्हें अपने कथन और आचार की अच्छाई और बुराई को जाँचने और आगे के लिए सावधान हो जाने का मौका मिलता हैं। इस कड़वी दवा से अकसर अनुभव को शक्ति संकट को व्यापकता और चिन्तन को सजगता प्राप्त होती है। राजा सोचने लगे — बेशक रियासत के अन्दरुनी हालात के लिहाज से यह सब नाच-रंग बेमौका है। बेशक वह रिआया के साथ अपना फर्ज नहीं अदा कर रहे थे। वह इन खर्चों और इस नैतिक धब्बे को मिटाने के लिए तैयार थे, मगर इस तरह कि नुक्ताचीनी करने वाली आँखें उसमें कुछ और मतलब न निकाल सकें। रियासत की शान कायम रहे। इतना इन्दरमल से उन्होंने साफ कह दिया था कि अगर इतने पर भी अपनी जिद से बाज नहीं आता तो उसकी ढिठाई है। हर एक मुमकिन पहलू से गौर करने पर राजा साहब के इस फैसले में जरा भी फेरफार न हुआ। कुँवर का यों गायब हो जाना जरूर चिन्ता की बात है और रियासत के लिए उसके खतरनाक नतीजे हो सकते हैं मगर वह अपने आप को इन नतीजों की जिम्मदारियों से बिलकुल बरी

समझते थे। वह यह मानते थे कि इन्दरमल के चले जाने के बाद उनका यह महफिलें जमाना बेमौका और दूसरों को भड़कानेवाला था मगर इसका कुँवर के आखिरी फैसले पर क्या असर पड़ सकता है? कुँवर ऐसा नादाँ, नातजुर्बेकार और बुजदिल तो नहीं है कि आत्महत्या कर लें, हाँ, वह दो-चार दिन इधर-उधर आवारा घूमेगा और अगर ईश्वर ने कुछ भी विवेक उसे दिया तो वह दुखी और लज्जित होकर जरूर चला आएगा। मैं खुद उसे ढूँढ़ निकालूँगा। वह ऐसा कठोर नहीं है कि अपने बूढ़े बाप की मजबूरी पर कुछ भी ध्यान न दे।

इन्दरमल से फारिग होकर राजा साहब का ध्यान रानी की तरफ पहुँचा और जब उसकी आग की तरह दहकती हुई बाते याद आयीं तो गुस्से से बदन में पसीना आ गया और वह बेताब होकर उठकर टहलनें लगे। बेशक, मैं उसके साथ बेरहमी से पेश आया। माँ को अपनी औलाद ईमान से भी ज्यादा प्यारी होती है और उसका रुष्ट होना उचित था मगर इन धमकियों के क्या माने? इसके सिवा कि वह रुठकर मैके चली जाए और मुझे बदनाम करे, वह मेरा और क्या कर सकती है? अक़्लमन्दों ने कहा है कि औरत की आज बेवफा होती है, वह मीठे पानी की चंचल, चुलबुली-चमकीली धारा है, जिसकी गोद में चहकती और चिमटती है उसे बालू का ढेर बनाकर छोड़ती है। यही भानकुँवर

है जिसकी नाजबरदारियाँ मुहब्बत का दर्जा रखती हैं। आह, क्या वह पिछली बातें भूल जाऊँ! क्या उन्हें किस्सा समझकर दिल को तसकीन दूँ।

इसी बीच में एक लौंड़ी ने आकर कहा कि महारानी ने हाथी मँगवाया है और न जाने कहाँ जा रही हैं। कुछ बताती नहीं। राजा ने सुना और मुँह फेर लिया।

5

शहर इन्दौर से तीन मील दूर उत्तर की तरफ घने पेड़ों के बीच में एक तालाब है जिसके चाँदी-जैसे चेहरे से काई का हरा मखमली घूँघट कभी नहीं उठता। कहते हैं किसी जमाने में उसके चारों तरफ पक्के घाट बने हुए थे मगर इस वक्त तो सिर्फ यह अनश्रुति बाकी थी जो कि इस दुनिया में अकसर ईट-पत्थर की यादगारी से ज्यादा टिकाऊ हुआ करती है।

तालाब के पूरब में एक पुराना मन्दिर था, उसमें शिव जी राख की धूनी रमाये खामोश बैठे हुए थे। अबाबीलें और जंगली कबूतर उन्हीं अपनी मीठी बोलियाँ सुनाया करते। मगर उस वीराने में भी उनके भक्तों की कमी न थी। मंदिर के अन्दर भरा हुआ पानी

और बाहर बदबूदार कीचड़, इस भक्ति के प्रमाण थे। वह मुसाफिर जो इस तालाब में नहाता उसके एक लोटे पानी से अपने ईश्वर की प्यास बुझाता था। शिव जी खाते कुछ न थे मगर पानी बहुत पीते थे। उनकी न बुझनेवाली प्यास कभी न बुझती थी।

तीसरे पहर का वक्त था। क्वार की धूप तेज थी। कुँवर इन्दरमल अपने हवा की चालवाले घोड़े पर सवार इन्दौर की तरफ से आए और एक पेड़ की छाया में ठहर गए। वह बहुत उदास थे। उन्होंने घोड़े को पेड़ से बाँध दिया और खुद जीन के ऊपर डालनेवाला कपड़ा बिछाकर लेट रहे। उन्हें अचलगढ़ से निकले आज तीसरा दिन है मगर चिन्ताओं ने पलक नहीं झपकने दी। रानी भानकुँवर उसके दिल से एक पल के लिए भी दूर न होती थी। इस वक्त ठण्डी हवा लगी तो नींद आ गई। सपने में देखने लगा कि जैसे रानी आई हैं और उसे गले लगाकर रो रही हैं। चौंककर आँखें खोलीं तो रानी सचमुच सामने खड़ी उसकी तरफ आँसू भरी आँखों से ताक रही थीं। वह उठ बैठा और माँ के पैरों को चूमा। मगर रानी ने ममता से उठाकर गले लगा लेने के बजाय अपने पाँव हटा लिए और मुँह से कुछ न बोली।

इन्दरमल ने कहा — माँ जी, आप मुझसे नाराज हैं?

रानी ने रुखाई से जवाब दिया — मैं तुम्हारी कौन होती हूँ!

कुँवर — आपको यकीन आए न आए, मैं जब से अचलगढ़ से चला हूँ एक पल के लिए भी आपका ख्याल दिल से दूर नहीं हुआ। अभी आप ही को सपने में देख रहा था।

इन शब्दों ने रानी का गुस्सा ठंडा किया। कुँवर की ओर से निश्चित होकर अब वह राजा का ध्यान कर रही थी। उसने कुँवर से पूछा — तुम तीन दिन कहाँ रहे?

कुँवर ने जावाब दिया — क्या बताऊँ, कहाँ रहा। इन्दौर चला गया था वहाँ पोलिटिकल एजेन्ट से सारी कथा कह सुनाई।

रानी ने यह सुना तो माथा पीटकर बोली — तुमने गजब कर दिया। आग लगा दी।

इन्दरमल — क्या करूँ, खुद पछताता हूँ, उस वक्त यही धुन सवार थी।

रानी — मुझे जिन बातों का डर था वह सब हो गई। अब कौन मुँह लेकर अचलगढ़ जायेंगे।

इन्दरमल — मेरा जी चाहता है कि अपना गला घोंट लूँ।

रानी — गुस्सा बुरी बला हैं। तुम्हारे आने के बाद मैंने रार मचाई और कुद यही इरादा करके इन्दौर जा रही थी, रास्ते में तुम मिल गए।

यह बातें हो ही रही थीं कि सामने से बहेलियों और साँडनियों की एक लम्बी कतार आती हुई दिखाई दीं। साँड़नियों पर मर्द सवार थे। सुरमा लगी आँखों वाले, पेचदार जुल्फोंवाले। बहेलियों में हुस्न के जलवे थे। शोख निगाहें, बेधड़क चितवनें, यह उन नाच-रंग वालों का काफिला था जो अचलगढ़ से निराश और खिन्न चला आता था। उन्होंने रानी की सवारी देखी और कुँवर का घोड़ा पहचान लिया। घमण्ड से सलाम किया मगर बोले नहीं। जब वह दूर निकल गए तो कुँवर ने जोर से कहकहा मारा। यह विजय का नारा था।

रानी ने पूछा — यह क्या कायापलट हो गई। यह सब अचलगढ़ से लौटे आते है और ऐन दशहरे के दिन?

इन्दरमल बड़े गर्व से बोले — यह पोलिटिकल एजेन्ट के इनकारी तार के करिश्में हैं, मेरी चाल बिलकुल ठीक पड़ी।

रानी का सन्देह दूर हो गया। जरूर यही बात है यह इनकारी तार की करामात है। वह बड़ी देर तक बेसुध-सी जमीन की

तरफ ताकती रही और उसके दिल में बार-बार यह सवाल पैदा होता था, क्या इसी का नाम राजहठ है।

आखिरी इन्दरमल ने खामोशी तोड़ी — क्या आज चलने का इरादा है कि कल?

रानी — कल शाम तक हमको अचलगढ़ पहुँचना है, महाराज घबराते होंगे।

[जमाना, सितम्बर 1912]

राष्ट्र का सेवक

राष्ट्र के सेवक ने कहा — देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सुलूक, पतितों के साथ बराबरी को बर्ताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीचा नहीं, कोई ऊँचा नहीं।

दुनिया ने जयजयकार की — कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय!

उसकी सुन्दर लड़की इन्दिरा ने सुना और चिन्ता के सागर में डूब गयी।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा — यह फ़रिश्ता है, पैगम्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।

इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौजवान को मंदिर में ले गया, देवता के दर्शन कराये और कहा — हमारा देवता ग़रीबी में है, जिल्लत में है; पस्ती में हैं।

दुनिया ने कहा — कैसे शुद्ध अन्तःकरण का आदमी है! कैसा ज्ञानी!

इन्दिरा ने देखा और मुस्करायी।

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली — श्रद्धेय पिता जी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा — मोहन कौन हैं?

इन्दिरा ने उत्साह-भरे स्वर में कहा — मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मंदिर में ले गये, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आँखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

['प्रेम चालीसा' से

लेखक

प्रातःकाल महाशय प्रवीण ने बीस दफा उबाली हुई चाय का प्याला तैयार किया और बिना शक्कर और दूध के पी गये। यही उनका नाश्ता था। महीनों से मीठी, दूधिया चाय न मिली थी। दूध और शक्कर उनके लिए जीवन के आवश्यक पदार्थों में न थे। घर में गये जरूर, कि पत्नी को जगाकर पैसे माँगें; पर उसे फटे-मैले लिहाफ़ में निद्रा-मग्न देखकर जगाने की इच्छा न हुई। सोचा, शायद मारे सर्दी के बेचारी को रात भर नींद न आयी होगी, इस वक्त जाकर आँख लगी है। कच्ची नींद जगा देना उचित न था। चुपके से चले आये। चाय पीकर उन्होंने कलम-दावात सँभाली और किताब लिखने में तल्लीन हो गये, जो उनके विचार में इस शताब्दी की सबसे बड़ी रचना होगी, जिसका प्रकाशन उन्हें गुमनाम से निकालकर ख्याति और समृद्धि के स्वर्ग पर पहुँचा देगा।

आध घण्टे बाद पत्नी आँखें मलती हुई आकर बोली — क्या तुम चाय पी चुके?

प्रवीण ने सहास्य मुख से कहा — हाँ, पी चुका। बहुत अच्छी बनी थी।

‘पर दूध और शक्कर कहाँ से लाये?’

‘दूध और शक्कर तो कई दिन से नहीं मिलता। मुझे आजकल सादा चाय ज्यादा स्वादिष्ट लगती है। दूध और शक्कर मिलाने से उसका स्वाद बिगड़ जाता है। डाक्टरों की भी यही राय है कि चाय हमेशा सादा पीनी चाहिए। योरोप में तो दूध का बिलकुल रिवाज नहीं है। यह तो हमारे यहाँ के मधुर-प्रिय रईसों की ईजाद है।’

‘जाने तुम्हें फीकी चाय कैसे अच्छी लगती है! मुझे जगा क्यों न लिया? पैसे तो रखे थे।’

महाशय प्रवीण फिर लिखने लगे। जवानी ही में उन्हें यह रोग लग गया था, और आज बीस साल से वह उसे पाले हुए थे। इस रोग में देह घुल गयी, स्वास्थ्य घुल गये, और चालीस की अवस्था में बुढ़ापे ने आ घेरा; पर यह रोग असाध्य था। सूर्योदय से आधी रात तक यह साहित्य का उपासक अन्तर्जगत में डूबा हुआ, समस्त संसार से मुँह मोड़े, हृदय के पुष्प और नैवेद्य चढ़ाता रहता था।

पर भारत में सरस्वती की उपासना लक्ष्मी की अभक्ति है। मन तो एक ही था। दोनों देवियों को एक साथ कैसे प्रसन्न करता, दोनों के वरदान का पात्र क्योंकर बनता? और लक्ष्मी की यह अकृपा केवल धनाभाव के रूप में न प्रकट होती थी। उसकी सबसे निर्दय क्रीड़ा यह थी कि पत्रों के सम्पादक और पुस्तकों के प्रकाशक उदारता-पूर्वक सहायता का दान भी न देते थे।

कदाचित् सारी दुनिया ने उसके विरुद्ध कोई षडयन्त्र-सा रच डाला था। यहाँ तक कि इस निरन्तर अभाव ने उसके आत्म-विश्वास को जैसे कुचल दिया था। कदाचित् अब उसे यह ज्ञात होने लगा था, कि उसकी रचनाओं में कोई सार, कोई प्रतिभा नहीं है, और यह भावना अत्यन्त हृदय-विदारक थी। यह दुर्लभ मानव-जीवन यों ही नष्ट हो गया! यह तस्कीन भी नहीं कि संसार ने चाहे उसका सम्मान न किया हो, पर उसकी जीवनकृति इतनी तुच्छ नहीं। जीवन की आवश्यकताएँ घटते-घटते सन्यास की सीमा को भी पार कर चुकी थीं। अगर कोई सन्तोष था, तो उसकी जीवन-सहचरी त्याग और तप में उनसे भी दो कदम आगे थी। सुमित्रा इस दशा में भी प्रसन्न थी। प्रवीणजी को दुनिया से शिकायत हो, पर सुमित्रा जैसे गेंद में भरी हुई वायु की भाँति उन्हें बाहर की ठोकरें से बचाती रहती थी। अपने भाग्य का रोना तो दूर की बात थी, इस देवी ने कभी माथे पर बल भी न आने दिया।

सुमित्रा ने चाय का प्याला समेटते हुए कहा — तो जाकर घण्टा-आध-घण्टा कहीं घूम फिर क्यों नहीं आते? जब मालूम हो गया कि प्राण देकर काम करने से भी कोई नतीजा नहीं, तो व्यर्थ क्यों सिर खपाते हो?

प्रवीण ने बिना मस्तक उठाये, कागज पर कलम चलाते हुए कहा — लिखने में कम-से-कम यह सन्तोष तो होता है कि कुछ कर रहा हूँ। सैर करने में तो मुझे ऐसा जान पड़ता कि समय का नाश कर रहा हूँ।

‘यह इतने पढ़े-लिखे आदमी नित्य-प्रति हवा खाने जाते हैं, तो अपने समय का नाश करते हैं?’

‘मगर इनमें अधिकांश वही लोग हैं, जिनके सैर करने से उनकी आमदनी में बिल्कुल कमी नहीं होती। अधिकांश तो सरकारी नौकर हैं, जिनको मासिक वेतन मिलता है, या तो ऐसे पेशों के लोग हैं, जिनका लोग आदर करते हैं। मैं तो मिल का मजूर हूँ। तुमने किसी मजूर को हवा खाते देखा है? जिन्हें भोजन की कमी नहीं, उन्हीं को हवा खाने की भी जरूरत है। जिनको रोटियों के लाले हैं, वे हवा खाने नहीं जाते। फिर स्वास्थ्य और जीवन-वृद्धि की जरूरत उन लोगों को है जिनके जीवन में आनन्द और स्वाद

है। मेरे लिए तो जीवन भार है। इस भार को सिर पर कुछ दिन और बनाये रहने की अभिलाषा मुझे नहीं है।

सुमित्रा निराशा में डूबे हुये शब्द सुनकर आँखों में आँसू भरे अन्दर चली गयी। उसका दिल कहता था, इस तपस्वी की कीर्ति-कौमुदी एक दिन अवश्य फैलेगी। चाहे लक्ष्मी की अकृपा बनी रहे।

किन्तु प्रवीण महोदय अब निराशा की उस सीमा तक पहुँच चुके थे, जहाँ से प्रतिकूल दिशा में उदय होने वाली आशामय उषा की लाली भी नहीं दिखाई देती थी।

2

एक रईस के यहाँ कोई उत्सव है। उसने महाशय प्रवीण को भी निमन्त्रित किया है। आज उनका मन आनन्द के घोड़े पर बैठा हुआ नाच रहा है। सारे दिन वह इसी कल्पना में मग्न रहे। राजा साहब किन शब्दों में उनका स्वागत करेंगे और वह किन शब्दों में उनको धन्यवाद देंगे, किन प्रसंगों पर वार्तालाप होगा, और वहाँ किन महानुभावों से उनका परिचय होगा, सारे दिन वह इन्हीं कल्पनाओं का आनन्द उठाते रहे। इस अवसर के लिए

उन्होंने एक कविता भी रची, जिसमें उन्होंने जीवन की एक उद्यान से तुलना की थी। अपनी सारी धारणाओं की उन्होंने आज उपेक्षा कर दी, क्योंकि रईसों के मनोभावों को वह आघात न पहुँचा सकते थे।

दोपहर ही से उन्होंने तैयारियाँ शुरू कीं। हजामत बनायी, साबुन से नहाया, सिर में तेल डाला। मुश्किल कपड़ों की थी। मुद्दत गुजरी, जब उन्होंने एक अचकन बनवाई थी। उसकी दशा भी उन्हीं की दशा जैसी जीर्ण हो चुकी थी। जैसा जरा-सी सर्दी या गर्मी से उन्हें जुकाम या सिरदर्द हो जाता था, उसी तरह वह अचकन भी नाजुक-मिजाज थी। उसे निकाला और झाड़-पोंछकर रखा।

सुमित्रा ने कहा — तुमने व्यर्थ ही यह निमन्त्रण स्वीकार किया। लिख देते, मेरी तबियत अच्छी नहीं है। इन फटेहालों जाना तो और भी बुरा है।

प्रवीण ने दार्शनिक गम्भीरता से कहा — जिन्हें ईश्वर ने हृदय और परख दी है, वे आदमियों की पोशाक नहीं देखते — उनके गुण और चरित्र देखते हैं। आखिर कुछ बात तो है कि राजा साहब ने मुझे निमन्त्रित किया। मैं कोई ओहदेदार नहीं, जमींदार नहीं, जागीरदार नहीं, ठेकेदार नहीं, केवल एक साधारण लेखक हूँ।

लेखक का मूल्य उसकी रचनाएँ होती हैं। इस एतबार से मुझे किसी भी लेखक से लज्जित होने का कारण नहीं है।

सुमित्रा उनकी सरलता पर दया करके बोली — तुम कल्पनाओं के संसार में रहते-रहते प्रत्यक्ष संसार से अलग हो गये हो। मैं कहती हूँ, राजा साहब के यहाँ लोगों की निगाह सबसे ज्यादा कपड़ों पर ही पड़ेगी। सरलता जरूर अच्छी चीज है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं कि आदमी फूहड़ बन जाए।

प्रवीण को इस कथन में कुछ सार जान पड़ा। विद्वज्जनों की भाँति उन्हें भी अपनी भूलों को स्वीकार करने में कुछ विलम्ब न होता था। बोले — मैं समझता हूँ, दीपक जल जाने के बाद जाऊँ।

'मैं तो कहती हूँ, जाओ ही क्यों?

'अब तुम्हें कैसे समझाऊँ, प्रत्येक प्राणी के मन में आदर और सम्मान की एक क्षुधा होती है। तुम पूछोगी, यह क्षुधा क्यों होती है? इसलिए कि यह हमारे आत्मविश्वास की एक मंजिल है। हम उस महान सत्ता के सूक्ष्मांश हैं, जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। अंश में पूर्ण के गुणों का होना लाजिमी है। इसलिए कीर्ति और सम्मान, आत्मोन्नति और ज्ञान की ओर हमारी स्वाभाविक रुचि है। मैं इस लालसा को बुरा नहीं समझता।'

सुमित्रा ने गला छुड़ाने के लिए कहा — अच्छा भाई, जाओ। मैं तुमसे बहस नहीं करती, लेकिन कल के लिए कोई व्यवस्था करते आना; क्योंकि मेरे पास केवल एक आना और रह गया है। जिनसे उधार मिल सकता था, उनसे ले चुकी और जिससे लिया उसे देने की नौबत नहीं आयी। मुझे तो और अब कोई उपाय नहीं सूझता।

प्रवीण ने एक क्षण के बाद कहा — दो पत्रिकाओं से मेरे लेखों के रुपये आने वाले हैं। शायद कल तक आ जायँ। और अगर कल उपवास ही करना पड़े तो क्या चिन्ता? हमारा धर्म है काम करना। हम काम करते हैं और तन-मन से करते हैं। अगर इस पर भी हमें फाका करना पड़े, तो मेरा दोष नहीं। मर ही तो जाऊँगा। हमारे जैसे लाखों आदमी रोज मरते हैं। संसार का काम ज्यों-का-त्यों चलता रहता है। फिर इसका क्या गम कि हम भूखों मर जाएँगे? मौत डरने की वस्तु नहीं। मैं तो कबीरपन्थियों का कायल हूँ, जो अर्थी को गाते-बजाते ले जाते हैं। मैं इससे नहीं डरता। तुम्हीं कहो, मैं जो कुछ करता हूँ, इससे अधिक और कुछ मेरी शक्ति के बाहर है या नहीं। सारी दुनिया मीठी नींद सोती होती है ओर मैं क़लम लिये बैठा रहता हूँ। लोग हँसी-दिल्लगी, आमोद-प्रमोद करते रहते हैं, मेरे लिए वह सब हराम है। यहाँ तक कि महीनों से हँसने की नौबत नहीं आयी।

होली के दिन भी मैंने तातील नहीं मनाई। बीमार भी होता हूँ, तो लिखने की फिक्र सिर पर सवार रहती है। सोचो, तुम बीमार थीं, और मैं वैद्य के यहाँ जाने के लिए समय न पाता था। अगर दुनिया नहीं कदर करती, न करे। इसमें दुनिया का ही नुकसान है। मेरी कोई हानि नहीं! दीपक का काम है जलना। उसका प्रकाश फैलता है या उसके सामने कोई ओट है, उसे इससे प्रयोजन नहीं। मेरा भी ऐसा कौन मित्र, परिचित या सम्बन्धी है, जिसका मैं आभारी नहीं? यहाँ तक कि अब घर से निकलते शर्म आती है। सन्तोष इतना ही है कि लोग मुझे बदनीयत नहीं समझते। वे मेरी कुछ अधिक मदद न कर सकें, पर उन्हें मुझसे सहानुभूति अवश्य है। मेरी खुशी के लिए इतना ही काफी है कि आज वह अवसर तो आया कि एक रईस ने मेरा सम्मान किया।

फिर सहसा उन पर एक नशा-सा छा गया। गर्व से बोले — नहीं, मैं अब रात को न जाऊँगा। मेरी ग़रीबी अब रुसवाई की हद तक पहुँच चुकी है। उस पर परदा डालना व्यर्थ है। मैं इसी वक्त जाऊँगा। जिसे रईस और राजे आमन्त्रित करें, वह कोई ऐसा — वैसा आदमी नहीं हो सकता। राजा साहब साधारण रईस नहीं हैं। वह इस नगर के ही नहीं, भारत के विख्यात रईसों में हैं। अगर अब भी मुझे कोई नीचा समझे, तो वह खुद नीचा है।

3

सन्ध्या का समय है। प्रवीणजी अपनी फटी-पुरानी अचकन और सड़े हुए जूते और बेढंगी-सी टोपी पहने घर से निकले। खामख्वाह बाँगड़ू उचक्के-से मालूम होते थे। डीलडौल और चेहरे-मुहरे के आदमी होते, तो इस ठाठ में भी एक शान होती। स्थूलता स्वयं रोब डालने वाली वस्तु है। पर साहित्य-सेवा और स्थूलता में विरोध है। अगर कोई साहित्य-सेवी मोटा-ताजा, डबल आदमी है, तो समझ लो, उसमें माधुर्य नहीं, लोच नहीं, हृदय नहीं। दीपक का काम है, लजना। दीपक वही लबालब भरा होगा, जो जला न हो। फिर भी आप अकड़े जाते हैं। एक-एक अंग से गर्व टपक रहा है।

यों घर से निकलकर वह दूकानदारों से आँखें चुराते, गलियों से निकल जाते थे। पर आज वह गरदन उठाये, उनके सामने से जा रहे हैं। आज वह उनके तकाजों का दन्दाँशिकन जवाब देने को तैयार थे।

पर सन्ध्या का समय है, हरेक दूकान पर ग्राहक बैठे हुए हैं। कोई उनकी तरफ नहीं देखता। जिस रकम को वह अपनी हीनावस्था में दुर्विचार समझते थे, वह दूकानदारों की निगाह में

इतनी जोखिम न थीं, कि एक जाने-पहचाने आदमी को सरे-बाज़ार टोकते, विशेषकर जब वह आज किसी से मिलने जाते हुए मालूम होते थे।

प्रवीण ने एक बार सरे-बाज़ार का चक्कर लगाया, पर जी न भरा तब दूसरा चक्कर लगाया, पर वह भी निष्फल। तब वह खुद हाफ़िज समद की दूकान पर जाकर खड़े हो गये। हाफ़िजजी बिसाते का कारोबार करते थे। बहुत दिन हुए प्रवीण इस दूकान से एक छतरी ले गये थे और अभी तक दाम न चुका सके थे। प्रवीण को देखकर बोले — महाशयजी, अभी तक छतरी के दाम नहीं मिले।

ऐसे सौ-पचास ग्राहक मिल जाएँ, तो दिवाला ही हो जाए। अब तो बहुत दिन हुए।

प्रवीण की बाछें खिल गईं। दिली मुराद पूरी हुई। बोले — मैं भूला नहीं हूँ हाफ़िजजी, इन दिनों काम इतना ज्यादा था कि घर से निकलना मुश्किल था। रुपये तो नहीं हाथ आते, पर आपकी दुआ से क़दरशिनासों की कमी नहीं। दो-चार आदमी घेरे ही रहते हैं। इस वक़्त भी राजा साहब — अजी वही जो नुक्कड़ वाले बंगले में रहते हैं — उन्हीं के यहाँ जा रहा हूँ। दावत है। रोज ऐसा कोई-न-कोई मौक़ा आता ही रहता है।

हाफ़िज समद प्रभावित होकर बोला — अच्छा! आज राजा साहब के यहाँ तशरीफ ले जा रहे हैं। ठीक है, आप जैसे बाक़मालों की कदर रईस ही कर सकते हैं, और कौन करेगा? सुभानल्लाह! आप इस जमाने में यकता हैं। अगर कोई मौका हाथ आ जाय, तो गरीबों को न भूल जाइएगा। राजा साहब की अगर इधर निगाह हो जाय, तो फिर क्या पूछना! एक पूरा बिसाता तो उन्हीं के लिए चाहिए। ढाई-तीन लाख सालाना की आमदनी है।

प्रवीण को ढाई-तीन लाख कुछ तुच्छ जान पड़े। जबानी जमाखर्च है, तो दस-बीस लाख कहने से क्या हानि? बोले — ढाई-तीन लाख! आप तो उन्हें गालियाँ देते हैं। उनकी आमदनी दस लाख से कम नहीं। एक साहब का अन्दाज तो बीस लाख का है। इलाका है, मकानात हैं, दूकानें हैं, ठीका है, अमानती रुपये हैं और फिर सबसे बड़ी सरकार बहादुर की निगाह है।

हाफ़िज ने बड़ी नम्रता से कहा — यह दूकान आप की है जनाब, बस इतनी ही अरज है। अरे मुरादी, जरा दो पैसे के अच्छे-से पान बना ला आपके लिए। आइए दो मिनट बैठिए। कोई चीज पसन्द हो तो दिखाऊँ। आपसे तो घर का वास्ता है।

प्रवीण ने पान खाते हुए कहा — इस वक्त तो मुआफ़ रखिए। वहाँ देर होगी। फिर कभी हाज़िर हूँगा।

यहाँ से उठकर वह एक कपड़े वाले की दूकान के सामने रुके। मनोहरदास नाम था। इन्हें खड़े देखकर आँखें उठायीं। बेचारा इनके नाम को रो बैठा था। समझ लिया, शायद इस शहर में हैं ही नहीं।

समझा रुपये देने आये हैं। बोले — भाई प्रवीणजी, आपने तो बहुत दिनों दर्शन ही नहीं दिये। रुक्का कई बार भेजा, मगर प्यादे को आपके घर का पता ही न मिला। मुनीमजी, जरा देखो तो आपके नाम क्या है।

प्रवीण के प्राण तकाजों से सूख जाते थे; पर आज वह इस तरह खड़े थे, मानों उन्होंने कवच धारण कर लिया है, जिस पर किसी अस्त्र का आघात नहीं हो सकता। बोले — जरा इन राजा साहब के यहाँ से लौट आऊँ, तो निश्चित होकर बैठूँ। इस समय जल्दी में हूँ। राजा साहब पर मनोहरदास के कई हज़ार रुपये आते थे। फिर भी उनका दामन न छोड़ता था। एक के तीन वसूल करता। उसने प्रवीणजी को ऊँची श्रेणी में रखा जिनका पेशा रईसों को लूटना है। बोला — 'पान तो खाते जाइए महाशय!' राजा साहब एक दिन के हैं। हम तो बारहों मास के हैं, भाई साहब! कुछ कपड़े दरकार हों तो ले जाइए। अब तो होली आ रही है। मौका हो, तो जरा राजा साहब के खजानची से कहिएगा पुराना हिसाब बहुत दिन से पड़ा हुआ है, अब तो सफ़ाई हो जाए!

हम सब ऐसा कौन-सा नफ़ा लेते हैं कि दो-दो साल हिसाब ही न हो?

प्रवीण ने कहा — इस समय तो पान-वान रहने दो भाई? देर हो जाएगी। जब उन्हें मुझसे मिलने का इतना शौक है और मेरा इतना सम्मान करते हैं, तो अपना भी धर्म है कि उनको मेरे कारण कष्ट न हो। हम तो गुणग्राहक चाहते हैं, दौलत के भूखे नहीं। कोई अपना सम्मान करे, तो उसकी गुलामी करें। अगर किसी को रियासत का घमण्ड हो, तो हमें उसकी परवाह नहीं।

4

प्रवीणजी राजा साहब के विशाल भवन के सामने पहुँचे, तो दीये जल चुके थे। अमीरों और रईसों की मोटरें खड़ी थीं। वरदी-पोश दरबान द्वार पर खड़े थे। एक सज्जन मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। प्रवीणजी को देखकर वह जरा झिझके। फिर उन्हें सिर से पाँव तक देखकर बोले — आपके पास नवेद है?

प्रवीण की जेब में नवेद था। पर इस भेदभाव पर उन्हें क्रोध आ गया। उन्हीं से क्यों नवेद माँगा जाय? औरों से भी क्यों न पूछा जाय? बोले — जी नहीं, मेरे पास नवेद नहीं है। अगर आप अन्य

महाशयों से माँगते हों; तो मैं भी दिखा सकता हूँ। वरना मैं इस भेद को अपने लिए अपमान की बात समझता हूँ। आप राजा साहब से कह दीजिए — प्रवीणजी आये थे और द्वार से लौट गये।

'नहीं-नहीं, महाशय अन्दर चलिए। मुझे आपसे परिचय न था। बेअदबी माफ कीजिए। आप ही ऐसे महानुभावों से तो महफिल की शोभा है। ईश्वर ने आपको वह वाणी प्रदान की है, कि क्या कहना।'

इस व्यक्ति ने प्रवीण को कभी न देखा था। लेकिन जो कुछ उसने कहा, वह हरेक साहित्य-सेवी के विषय में कह सकते हैं, और हमें विश्वास है कि कोई साहित्य-सेवी इस दाद की उपेक्षा नहीं कर सकता।

प्रवीण अन्दर पहुँचे तो देखा,बारहदरी के सामने विस्तृत और सुसज्जित प्रांगण में बिजली के कुमकुमे अपना प्रकाश फैला रहे हैं। मध्य में एक हौज है, हौज में संगमरमर की परी, परी के सिर पर फौवारा, फौवारे की फुहारें रंगीन कुमकुमों से रंजित होकर ऐसी मालूम होती थीं, मानो इन्द्रधनुष पिघलकर ऊपर से बरस रहा है। हौज के चारों ओर मेजें लगी हुई थीं। मेजों पर सुफेद मेज-पोश, ऊपर सुन्दर गुलदस्ते।

प्रवीण को देखते ही राजा साहब ने स्वागत किया — आइए, आइए! अबकी 'हंस' में आपका लेख देखकर दिल फड़क उठा। मैं तो चकित हो गया। मालूम ही न था, कि इस नगर में आप-जैसे रत्न भी छिपे हुए हैं।

फिर उपस्थित सज्जनों से उनका परिचय देने लगे — आपने महाशय प्रवीण का नाम तो सुना होगा। वह आप ही हैं। क्या माधुर्य है, क्या ओज है, क्या भाव है, क्या भाषा है, क्या सूझ है, क्या चमत्कार है, क्या प्रवाह है कि वाह! वाह! मेरी तो आत्मा जैसे नृत्य करने लगती है।

एक सज्जन ने, जो अँगरेजी सूट में थे, प्रवीण को ऐसी निगाह से देखा मानो वह चिडिया-घर के कोई जीव हों और बोले — आपने अँग्रेजी के कवियों का भी अध्ययन किया है — बायरन, शेली, कीट्स आदि।

प्रवीण ने रुखाई से जवाब दिया — जी हाँ, थोड़ा-बहुत देखा तो है।

'आप इन महाकवियों में से किसी की रचनाओं का अनुवाद कर दें, तो आज हिन्दी-भाषा की अमर सेवा करें।'

प्रवीण अपने को बायरन, शेली आदि से जौ-भर भी कम न समझते थे। वह अँग्रेजी के कवि थे। उनकी भाषा, शैली, विषय-व्यंजना

सभी अंग्रेज की रुचि के अनुकूल था। उनका अनुवाद करना वह अपने लिए गौरव की बात न समझते थे, उसी तरह जैसे वे उनकी रचनाओं का अनुवाद करना अपने लिए गौरव की वस्तु न समझते। बोले — हमारे यहाँ आत्म-दर्शन का अभी इतना अभाव नहीं है, कि हम विदेशी कवियों से भिक्षा माँगें। मेरा विचार है कि कम-से-कम इस विषय में भारत अब भी पश्चिम को कुछ सिखा सकता है।

यह अनर्गल बात थी। अँग्रेजी के भक्त महाशय ने प्रवीण को पागल समझा।

राजा साहब ने प्रवीण को ऐसी आँखों से देखा, जो कह रही थीं — जरा मौका-महल देखकर बातें करो! और बोले — अंग्रेजी साहित्य का क्या पूछना! कविता में तो वह अपना जोड़ नहीं रखता।

अंग्रेजी के भक्त महाशय ने प्रवीण को सगर्व नेत्रों से देखा — हमारे कवियों ने अभी तक कविता का अर्थ ही नहीं समझा, अभी तक वियोग और नख-शिख को कविता का आधार बनाये हुए हैं।

प्रवीण ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया — मेरा विचार है कि आपने वर्तमान कवियों का अध्ययन नहीं किया, या किया तो उतरी आँखों से।

राजा साहब ने अब प्रवीण की जबान बन्द कर देने का निश्चय किया — आप मिस्टर परांजपे हैं, प्रवीण जी! आपके लेख अंग्रेजी पत्रों में छपते हैं और बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

उसका आशय यह था, कि अब आप न बहकिए।

प्रवीण समझ गये। परांजपे के सामने उन्हें नीचा देखना पड़ा। विदेशी वेश-भूषा और भाषा का यह भक्त जाति-द्रोही होकर भी इतना सम्मान पाये, यह उनके लिए असह्य था। पर क्या करते?

उसी भेष के एक-दूसरे सज्जन आये। राजा साहब ने तपाक से उनका अभिवादन किया — आइए डाक्टर चड्ढा! कैसे मिजाज हैं?

डाक्टर साहब ने राजा साहब से हाथ मिलाया और फिर प्रवीण की ओर जिज्ञासा-भरी आँखों से देखकर पूछा — आपकी तारीफ़?

राजा साहब ने प्रवीण का परिचय दिया — आप महाशय प्रवीण हैं। आप भाषा के अच्छे कवि और लेखक हैं।

डाक्टर साहब ने एक खास अन्दाज से कहा — अच्छा! आप कवि हैं! और बिना कुछ पूछे आगे बढ़ गये।

फिर उसी भेष में एक और महाशय पधारे। यह नामी बैरिस्टर थे। राजा साहब ने उनसे भी प्रवीण का परिचय कराया। उन्होंने भी उसी अन्दाज में कहा — अच्छा! आप कवि हैं? और आगे बढ़

गये। यही अभिनय कई बार हुआ। और हर बार प्रवीण को यही दाद मिली — 'अच्छा! आप कवि हैं?'

यह वाक्य हर बार प्रवीण के हृदय पर एक नया आघात पहुँचाता था। उसके नीचे जो भाव था

उसे प्रवीण खूब समझते थे। उसका सीधा-सादा आशय यह था कि तुम अपने खयाली-पुलाव पकाते हो, पकाओ! यहाँ तुम्हारा क्या प्रयोजन? तुम्हारा इतना साहस कि तुम इस सभ्य-समाज में बेधड़क आओ।

प्रवीण मन-ही-मन अपने ऊपर झुँझला रहे थे। निमन्त्रण पाकर उन्होंने अपने को धन्य माना था, पर यहाँ आकर उनका जितना अपमान हो रहा था, उसके देखते तो वह सन्तोष की कुटिया स्वर्ग थी। उन्होंने अपने मन को धिक्कारा — तुम जैसे सम्मान के लोभियों का यह दण्ड है। अब तो आँखें खुलीं, तुम कितने सम्मान के पात्र हो! तुम इस स्वार्थमय संसार में किसी के काम नहीं आ सकते।

वकील-बैरिस्टर तुम्हारा सम्मान क्यों करें? तुम उनके मुवक्किल नहीं हो सकते, न उन्हें तुम्हारे द्वारा कोई मुकदमा पाने की आशा है। डाक्टर या हकीम तुम्हारा सम्मान क्यों करें? उन्हें तुम्हारे घर

बिना फीस आने की इच्छा नहीं। तुम लिखने के लिए बने हो, लिखे जाओ। बस, और संसार में तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं।

सहसा लोगों में हलचल पड़ गयी। आज के प्रधान अतिथि का आगमन हुआ। यह महाशय हाईकोर्ट के जज नियुक्त हुए थे। इसी उपलक्ष्य में यह जलसा हो रहा था। राजा साहब ने लपककर जल्द हाथ मिलाया और आकर प्रवीणजी से बोले — आप अपनी कविता तो लिख ही लाये होंगे?

प्रवीण ने कहा — मैंने कोई कविता नहीं लिखी।

'सच! तब तो आपने ग़जब ही कर दिया। अरे भले आदमी, अब से कोई चीज लिख डालो। दो-ही चार पंक्तियाँ हो जाएँ। बस! ऐसे अवसर पर एक कविता का पढ़ा जाना लाज़िमी है।'

'मैं इतनी जल्दी कोई चीज नहीं लिख सकता।'

'मैंने व्यर्थ ही इतने आदमियों से आपका परिचय कराया?'

'बिल्कुल व्यर्थ।'

'अरे भाई जान, किसी प्राचीन कवि की ही कोई चीज सुना दीजिए। यहाँ कौन जानता है।'

'जी नहीं, क्षमा कीजिएगा। मैं भाट नहीं हूँ, न कथक हूँ।'

यह कहते हुए प्रवीणजी तुरन्त वहाँ से चल दिये। घर पहुँचे तो उनका चेहरा खिला हुआ था।

सुमित्रा ने प्रसन्न होकर पूछा — इतनी जल्दी कैसे आ गये?

'मेरी वहाँ कोई जरूरत न थी।'

'चलो, चेहरा खिला हुआ है खूब सम्मान हुआ होगा।'

'हाँ सम्मान तो, जैसी आशा न थी वैसा हुआ।'

'खुश बहुत हो।'

इसी से कि आज मुझे हमेशा के लिए सबक मिल गया। मैं दीपक हूँ और जलने के लिए बना हूँ। आज मैं इस तत्व को भूल गया था। ईश्वर ने मुझे ज्यादा बहकने न दिया। मेरी यह कुटिया ही मेरे लिए स्वर्ग है। मैं आज यह तत्व पा गया कि साहित्य-सेवा पूरी तपस्या है।

वफ़ा का खंजर

जयगढ़ और विजयगढ़ दो बहुत ही हरे-भरे, सुसंस्कृत, दूर-दूर तक फैले हुए, मजबूत राज्य थे। दोनों ही में विद्या और कलाद खूब उन्नत थी। दोनों का धर्म एक, रस्म-रिवाज एक, दर्शन एक, तरक्की का उसूल एक, जीवन मानदण्ड एक, और जबान में भी नाम मात्र का ही अन्तर था। जयगढ़ के कवियों की कविताओं पर विजयगढ़ वाले सर धुनते और विजयगढ़ी दार्शनिकों के विचार जयगढ़ के लिए धर्म की तरह थे। जयगढ़ी सुन्दरियों से विजयगढ़ के घर-बार रोशन होते थे और विजयगढ़ की देवियाँ जयगढ़ में पुजती थीं। तब भी दोनों राज्यों में ठनी ही नहीं रहती थी बल्कि आपसी फूट और ईर्ष्या-द्वेष का बाजार बुरी तरह गर्म रहता और दोनों ही हमेशा एक-दूसरे के खिलाफ़ खंजर उठाए थे।

जयगढ़ में अगर कोई देश को सुधार किया जाता तो विजयगढ़ में शोर मच जाता कि हमारी जिंदगी खतरे में है। इसी तरह तो विजयगढ़ में कोई व्यापारिक उन्नति दिखायी देती तो जयगढ़ में शोर मच जाता था। जयगढ़ अगर रेलवे की कोई नई शाख

निकालता तो विजयगढ़ उसे अपने लिए काला सांप समझता और विजयगढ़ में कोई नया जहाज तैयार होता तो जयगढ़ को वह खून पीने वाला घडियाल नजर आता था। अगर यह बदुगमानियाँ अनपढ़ या साधारण लोगों में पैदा होतीं तो एक बात थी, मजे की बात यह थी कि यह राग — द्वेष, विद्या और जागृति, वैभव और प्रताप की धरती में पैदा होता था। अशिक्षा और जड़ता की जमीन उनके लिए ठीक न थी। खास सोच-विचार और नियम-व्यवस्था के उपजाऊ क्षेत्र में तो इस बीज का बढ़ना कल्पना की शक्ति को भी मात कर देता था।

नन्हा-सा बीज पलक मारते-भर में ऊँचा-पूरा दख्त हो जाता था। कूचे और बाजारों में रोने-पीटने की सदाएँ गूँजने लगतीं, देश की समस्याओं में एक भूचाल-सा आता, अख़बारों के दिल जलाने वाले शब्द राज्य में हलचल मचा देते, कहीं से आवाज आ जाती — जयगढ़, प्यारे जयगढ़, पवित्र के लिए यह कठिन परीक्षा का अवसर है। दुश्मन ने जो शिक्षा की व्यवस्था तैयार की है, वह हमारे लिए मृत्यु का संदेश है। अब जरूरत और बहुत सख्त जरूरत है कि हम हिम्मत बांधें और साबित कर दें कि जयगढ़, अमर जयगढ़ इन हमलों से अपनी प्राण-रक्षा कर सकता है। नहीं, उनका मुँह-तोड़ जवाब दे सकता है। अगर हम इस वक्त न

जागें तो जयगढ़, प्यारा जयगढ़, हस्ती के परदे से हमेशा के लिए मिट जाएगा और इतिहास भी उसे भुला देगा।

दूसरी तरफ़ से आवाज आती — विजयगढ़ के बेखबर सोने वालो, हमारे मेहरबान पड़ोसियों ने अपने अखबारों की जबान बन्द करने के लिए जो नये क़ायदे लागू किये हैं, उन पर नाराज़गी का इजहार करना हमारा फ़र्ज है। उनकी मंशा इसके सिवा और कुछ नहीं है कि वहाँ के मुआमलों से हमको बेखबर रक्खा जाए और इस अंधेरे के परदे में हमारे ऊपर धावे किये जाएँ, हमारे गलों पर फेरने के लिए नये-नये हथियार तैयार किए जाएँ, और आख़िरकार हमारा नाम-निशान मिटा दिया जाए। लेकिन हम अपने दोस्तों को जता देना अपना फ़र्ज समझते हैं कि अगर उन्हें शरारत के हथियारों की ईजाद के कमाल हैं तो हमें भी उनकी काट करने में कमाल है। अगर शैतान उनका मददगार है तो हमको भी ईश्वर की सहायता प्राप्त है और अगर अब तक हमारे दोस्तों को मालूम नहीं है तो अब होना चाहिए कि ईश्वर की सहायता हमेशा शैतान को दबा देती है।

जयगढ़ बाकमाल कलावन्तों का अखाड़ा था। शीरीं बाई इस अखाड़े की सब्ज परी थी, उसकी कला की दूर-दूर तक ख्याति थी। वह संगीत की राती थी जिसकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े नामवर आकर सिर झुकाते थे। चारों तरफ़ विजय का डंका बजाकर उसने विजयगढ़ की ओर प्रस्थान किया, जिससे अब तक उसे अपनी प्रशंसा का कर न मिला था। उसके आते ही विजयगढ़ में एक इंक़लाब-सा हो गया। राग-द्वेष और अनुचित गर्व हवा से उड़ने वाली सूखी पत्तियों की तरह तितर-बितर हो गए। सौंदर्य और राग के बाजार में धूल उड़ने लगी, थिएटरों और नृत्यशालाओं में वीरानी छा गयी। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारी सृष्टि पर जादू छा गया है। शाम होते ही विजयगढ़ के धनी-धोरी, जवान-बूढ़े शीरीं बाई की मजलिस की तरफ़ दौड़ते थे। सारा देश शीरीं की भक्ति के नशे में डूब गया।

विजयगढ़ के सचेत क्षेत्रों में देशवासियों के इस पागलपन से एक बेचैनी की हालत पैदा हुई, सिर्फ यही नहीं कि उनके देश की दौलत बर्बाद हो रही थी बल्कि उनका राष्ट्रीय अभिमान और तेज भी धूल में मिल जाता था। जयगढ़ की एक मामूली नाचनेवाली, चाहे वह कितनी ही मीठी अदाओं वाली क्यों न हो, विजयगढ़ के मनोरंजन का केंद्र बन जाय, यह बहुत बड़ा अन्याय था। आपस में मशविरे हुए और देश के पुरोहितों की तरफ़ से देश के

मन्त्रियों की सेवा में इस खास उद्देश्य से एक शिष्टमण्डल उपस्थित हुआ। विजयगढ़ के आमोद-प्रमोद के कर्त्ताओं की ओर से भी आवेदनपत्र पेश होने लगे। अखबारों ने राष्ट्रीय अपमान और दुर्भाग्य के तराने छेड़े। साधारण लोगों के हल्क़ों में सवालों की बौछार होने लगी, यहाँ तक कि वजीर मजबूर हो गए, शीरीं बाई के नाम शाही फ़रमान पहुँचा — चूंकि तुम्हारे रहने से देश में उपद्रव होने की आशंका है इसलिए तुम फौरन विजयगढ़ से चली जाओ। मगर यह हुक्म अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, आपसी इक़रारनामे और सभ्यता के नियमों के सरासर ख़िलाफ़ था। जयगढ़ के राजदूत ने, जो विजयगढ़ में नियुक्त था, इस आदेश पर आपत्ति की और शीरीं बाई ने आखिरकार उसको मानने से इनकार किया क्योंकि इससे उसकी आजादी और खुद्दारी और उसके देश के अधिकारों और अभिमान पर चोट लगती थी।

3

जयगढ़ के कूचे और बाजार खामोश थे। सैर की जगहें खाली। तफ़रीह और तमाशे बन्द। शाही महल के लम्बे-चौड़े सहने और जनता के हरे-भरे मैदानों में आदमियों की भीड़ थी, मगर उनकी

जबानें बन्द थीं और आँखें लाल। चेहरे का भाव कठोर और क्षुब्ध, त्योरियाँ हुई, माथे पर शिकन, उमड़ी हुई काली घटा थी, ड़रावनी, ख़समोश, और बाढ़ को अपने दामन में छिपाए हुए।

मगर आम लोगों में एक बड़ा हंगामा मचा हुआ था, कोई सुलह का हामी था, कोई लड़ाई की माँग करता था, कोई समझौते की सलाह देता था, कोई कहता था कि छानबीने करने के लिए कमीशन बैठाओ। मामला नाजुक था, मौका तंग, तो भी आपसी बहस-मुबाहसों, बदगुमानियों, और एक-दूसरे पर हमलों का बाजार गर्म था। आधी रात गुज़र गयी मगर कोई फैसला न हो सका। पूंजी की संगठित शक्ति, उसकी पहुँच और रोबदाब फ़ैसले की ज़बान बन्द किये हुए था।

तीन पहर रात जा चुकी थी, हवा नींद से मतवाली होकर अंगड़ाइयाँ ले रही थी और दरख्तों की आँख झपकती थीं। आकाश के दीपक भी झलमलाने लगे थे, दरबारी कभी दीवारों की तरफ़ ताकते थे, कभी छत की तरफ़। लेकिन कोई उपाय न सूझता था।

अचानक बाहर से आवाज आयी — युद्ध! युद्ध! सारा शहर इस बुलंद नारे से गंज उठा। दीवारों ने अपनी ख़ामोश जबान से जवाब दिया — युद्ध! युद्ध!

यह अदृष्ट से आने वाली एक पुकार थी जिसने उस ठहराव में हरक़त पैदा कर दी थी। अब ठहरी हुई चीजों में ख़लबली-सी मच गयी। दरबारी गोया गलफ़त की नींद से चौंक पड़े। जैसे कोई भूली हुई बात याद आते ही उछल पड़े। युद्ध मंत्री सैयद असकरी ने फ़रमाया — क्या अब भी लोगों को लड़ाई का ऐलान करने में हिचकिचाहट है? आम लोगों की जबान खुदा का हुक्म और उसकी पुकार अभी आपके कानों में आयी, उसको पूरा करना हमारा फ़र्ज है। हमने आज इस लम्बी बैठक में यह साबित किया है कि हम ज़बान के धनी हैं, पर जबान तलवार है, ढाल नहीं। हमें इस वक्त ढाल की जरूरत है, आइये हम अपने सीनों को ढाल बना लें और साबित कर दें कि हममें अभी वह जौहर बाकी है जिसने हमारे बुजुर्गों का नाम रोशन किया। कौमी ग़ैरत जिन्दगी की रूह है। वह नफे और नुकसान से ऊपर है। वह हुण्डी और रोकड़, वसूल और बाकी, तेजी और मन्दी की पाबन्दियों से आजाद है। सारी खानों की छिपी हुई दौलत, सारी दुनिया की मण्डियाँ, सारी दुनिया के उद्योग-धंधे उसके पासंग हैं। उसे बचाइये वर्ना आपका यह सारा निजाम तितर-बितर हो जाएगा, शीरजा बिखर जाएगा, आप मिट जाएँगे। पैसे वालों से हमारा सवाल है — क्या अब भी आपको जंग के मामले में हिचकिचाहट है?

बाहर से सैकडों की आवाजें आयीं — जंग! जंग!

एक सेठ साहब ने फ़रमाया — आप जंग के लिए तैयार हैं?

असकरी — हमेशा से ज्यादा।

ख्वाजा साहब — आपको फ़तेह का यक़ीन है?

असकरी — पूरा यक़ीन है।

दूर-पास ’जंग-जंग’ की गरजती हुई आवाजों का ताँता बँध गया कि जैसे हिमालय के किसी अथाह खड्ड से हथौड़ों की झनकार आ रही हो। शहर काँप उठा, जमीन थर्राने लगी, हथियार बँटने लगे। दरबारियों ने एक मत लड़ाई का फ़ैसला किया। ग़ैरत जो कुछ ने कर सकती थीं, वह अवाम के बारे ने कर दिखाया।

4

आज से तीस साल पहले एक जबर्दस्त इन्कलाब ने जयगढ़ को हिला डाला था। वर्षों तक आपसी लड़ाइयों का दौर रहा, हजारों ख़ानदान मिट गये। सैकड़ों कस्बे बीरान हो गये। बाप, बेटे के खून का प्यासा था। भाई, भाई की जान का ग्राहक। जब आख़िरकार आज़ादी की फतह हुई तो उसने ताज के फ़िदाइयों

को चुन-चुन कर मारा। मुल्क के क़ैदखाने देश-भक्तों से भर उठे।

उन्हीं जाँबाजों में एक मिर्जा मंसूर भी था। उसे कन्नौज के किले में क़ैद किया गया जिसके तीन तरफ़ ऊँची दीवारें थीं। और एक तरफ़ गंगा नदी। मंसूर को सारे दिन हथौड़े चलान पड़ते। सिर्फ शाम को आध घंटे के लिए नमाज की छुट्टी मिलती थी। उस वक्त मंसूर गंगा के किनारे आ बैठता और देशभाइयों की हालत पर रोता। वह सारी राष्ट्रीय और सामाजिक व्यवस्था जो उसके विचार में राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग थी, इस हंगामे की बाढ़ में नष्ट हो रही थी। वह एक ठण्डी आह भरकर कहता — जयगढ़, अब तेरा खुदा ही रखवाला है, तूने खाक को अक्सीर बनाया और अक्सीर को खाक। तूने ख़ानदान की इज्जत को, अदब और इख़लाग का, इल्मो-कमाल को मिटा दिया।, बर्बाद कर दिया। अब तेरी बाग़डोर तेर हाथ में नहीं है, चरवाहे तेरे रखवाले और बनिये तेरे दरबारी हैं। मगर देख लेना यह हवा है, और चरवाहे और साहूकार एक दिन तुझे खून के आँसू रुलायेंगे। धन और वैभव अपना ढंग न छोड़ेगा, हुकूमत अपना रंग न बदलेगी, लोग चाहे ल जाएँ, लेकिन निज़ाम वही रहेगा। यह तेरे नए शुभ चिन्तक जो इस वक्त विनय और सत्य और न्याय की मूर्तियाँ बने हुए हैं, एक दिन वैभव के नशे में मतवाले होंगे, उनकी शक्तियाँ

ताज की शक्तियों से कहीं ज्यादा सख्त होंगी और उनके जुल्म कहीं इससे ज्यादा तेज़।

इन्हीं ख़यालों में डूबे हुए मंसूर को अपने वतन की याद आ जाती। घर का नक्शा आँखों के सामने खिंच जाता, मासूम बच्चे असकरी की प्यारी-प्यारी सूरत आँखों में फिर जाती, जिसे तक़दीर ने माँ के लाड़-प्यार से वंचित कर दिया था। तब मंसूर एक ठण्डी आह खींचकर खड़ा होता और अपने बेटे से मिलने की पागल इच्छा में उसका जी चाहता कि गंगा में कूदकर पार निकल जाऊँ।

धीरे-धीरे इस इच्छा ने इरादे की सूरत अख्तियार की। गंगा उमड़ी हुई थी, ओर-छोर का कहीं पता नथ। तेज और गरजती हुई लहरें दौड़ते हुए पहाड़ों के समान थीं। पाट देखकर सिर में चक्कर-सा आ जाता था। मंसूर ने सोचा, नहीं उतरने दूँ। लेकिन नदी उतरने के बदले भयानक रोग की तरह बढ़ती जाती थी, यहाँ तक कि मंसूर को फिर धीरज न रहा, एक दिन वह रात को उठा और उस पुरशोर लहरों से भरे हुए अंधेरे में कुछ पड़ा।

मंसूर सारी रात लहरों के साथ लड़ता-भिड़ता रहा, जैसे कोई नन्हीं-सी चिड़िया तूफ़ान में थपेड़े खा रही हो, कभी उनकी गोद में छिपा हुआ, कभी एक रेले में दस क़दम आगे, कभी एक धक्के में दस

क़दम पीछे। ज़िन्दगी की लिखावट की ज़िन्दा मिसाल। जब वह नदी के पार हुआ तो एक बेजान लाश था, सिर्फ सांस बाक़ी थी और सांस के साथ मिलने की इच्छा।

इसके तीसरे दिन मंसूर विजयगढ़ जा पहुँचा। एक गोद में असकरी था और दूसरे हाथ में ग़रीबी का छोटा-सा एक बुकचा। वहाँ उसने अपना नाम मिर्जा जलाल बताया। हुलिया भी बदल लिया था, हट्टा-कट्टा सजीला जवान था, चेहरे पर शराफ़त और कुशीलनता की कान्ति झलकती थी; नौकरी के लिए किसी और सिफ़ारिश की जरूरत न थी। सिपाहियों में दाख़िल हो गया और पाँच ही साल में अपनी ख़िदमतों और भरोसे की बदौलत मन्दौर के सरहदी पहाड़ी किले का सूबेदार बना दिया गया।

लेकिन मिर्जा जलाल को वतन की याद हमेशा सताया करती। वह असकरी को गोद में ले लेता और कोट पर चढ़कर उसे जयगढ़ की वह मुस्कराती हुई चरागाहें और मतवाले झरने और सुथरी बस्तियाँ दिखाता जिनके कंगूरे क़िले से नज़र आते। उस वक्त बेअख्तियार उसके जिगर से सर्द आह निकल जाती और आँखें ड़बड़बा आतीं। वह असकरी को गले लगा लेता और कहता — बेटा, वह तुम्हारा देश है।

वहीं तुम्हारा और तुम्हारे बुज़ुर्गों का घोंसला है। तुमसे हो सके तो उसके एक कोने में बैठे हुए अपनी उम्र ख़त्म कर देना, मगर उसकी आन में कभी बट्टा न लगाना। कभी उससे दया मत करना क्योंकि तुम उसी कि मिट्टी और पानी से पैदा हुए हो और तुम्हारे बुज़ुर्गों की पाक रहें अब भी वहाँ मंड़ला रही है। इस तरह बचपने से ही असकरी के दिल पर देश की सेवा और प्रेम अंकित हो गया था। वह जवान हुआ, तो जयगढ़ पर जान देता था। उसकी शान-शौकत पर निसार, उसके रोबदाब की माला जपने वाला। उसकी बेहतरी को आगे बढ़ाने के लिए हर वक्त़ तैयार। उसके झण्डे को नयी अछूती धरती में गाड़ने का इच्छुक। बीस साल का सजीला जवान था, इरादा मज़बूत, हौसले बुलन्द, हिम्मत बड़ी, फ़ौलादी जिस्म, आकर जयगढ़ की फौज में दाखिल हो गया और इस वक्त जयगढ़ की फौज का चमकता सूरज बन हुआ था।

जयगढ़ ने अल्टीमेटम दे दिया — अगर चौबीस घण्टों के अन्दर शीरीं बाईं जयगढ़ न पहुँची तो उसकी अगवानी के लिए जयगढ़ की फौज रवाना होगी।

विजयगढ़ ने जवाब दिया — जयगढ़ की फौज आये, हम उसकी अगवानी के लिए हाजिर हैं। शीरीं बाई जब तक यहाँ की अदालत से हुक्म-उदूली की सजा न पा ले, वह रहा नहीं हो सकती और जयगढ़ को हमारे अंदरूनी मामलों में दख़ल देने का कोई हक नहीं।

असकरी ने मुँहमाँगी मुराद पायी। खुफ़िया तौर पर एक दूत मिर्जा जलाल के पास रवाना किया और खत में लिखा —

'आज विजयगढ़ से हमारी जंग छिड़ गयी, अब खुदा ने चाहा तो दुनिया जयगढ़ की तलवार का लोहा मान जाएगी। मंसूर का बेटा असकरी फ़तेह के दरबार का एक अदना दरबारी बन सकेगा और शायद मेरी वह दिली तमन्ना भी पूरी हो जो हमेशा मेरी रूह को तड़पाया करती है। शायद मैं मिर्जा मंसूर को फिर जयगढ़ की रियासत में एक ऊँची जगह पर बैठे देख सकूँ। हम मन्दौर में न बोलेंगे और आप भी हमें न छेड़िएगा लेकिन अगर खुदा न ख्वास्ता कोई मुसीबत आ ही पड़े तो आप मेरी यह मुहर जिस सिपाही या अफ़सर को दिखा देंगे वह आपकी इज्जत

करेगा। और आपको मेरे कैम्प में पहुँचा देगा। मुझे यकीन है कि अगर जरूरत पड़े तो उस जयगढ़ के लिए जो आपके लिए इतना प्यारा है और उस असकरी के ख़ातिर जो आपके जिगर का टुकड़ा है, आप थोड़ी-सी तकलीफ़ से (मुमकिन है वह रहानी तकलीफ़ हो) दरेग न फ़रमायेंगे।'

इसके तीसरे दिन जयगढ़ की फौज ने विजयगढ़ पर हमला किया और मन्दौर से पाँच मील के फ़ासले पर दोनों फौजों का मुकाबला हुआ। विजयगढ़ को अपने हवाई जहाजों, जहरीले गड्ढों और दूर तक मार करने वाली तोपों का घमण्ड था। जयगढ़ को अपनी फौज की बहादुरी, जीवट, समझदारी और बुद्धि का था। विजयगढ़ की फौज नियम और अनुशासन की गुलाम थी, जयगढ़ वाले जिम्मेदारी और तमीज के क़ायल।

एक महीने तक दिन-रात, मार-काट के मार्के होता रहे। हमेशा आग और गोलों और जहरीली हवाओं का तूफ़ान उठा रहता। इन्सान थक जाता था, पर कले अथक थीं। जयगढ़ियों के हौसले पस्त हो गये, बार-बार हार पर हार खायी। असकरी को मालूम हुआ कि जिम्मेदारी फ़तेह में चाहे करिश्मे कर दिखाये, पर शिकस्त में मैदान हुक्म की पाबन्दी ही के साथ रहता है।

जयगढ़ के अखबारों ने हमले शुरू किये। असकरी सारी क़ौम की लानत-मलामत का निशाना बन गया। वही असकरी जिस पर जयगढ़ फ़िदा होता था सबकी नज़रों का कांटा हो गया। अनाथ बच्चों के आँसू, विधवाओं की आहें, घायलों की चीख-पुकार, व्यापरियों की तबाही, राष्ट्र का अपमान — इन सबका कारण वही एक व्यक्ति असकरी था। कौम की अगुवाई सोने की राजसिंहासन भले ही हो पर फूलों की मेज वह हरगिज नहीं।

जब जयगढ़ की जान बचने की इसके सिवा और कोई सूरत न थी कि किसी तरह विरोधी सेना का सम्बन्ध मन्दौर के क़िले से काट दिया जाय, जो लड़ाई और रसद के सामान और यातायात के साधनों का केंद्र था। लड़ाई कठिन थी, बहुत खतरनाक, सफलता की आशा बहुत कम, असफलता की आशंका जी पर भारी। कामयाबी अगर सूखें धान का पानी थी तो नाकामी उसकी आग। मगर छुटकारे की और कोई दूसरी तस्वीर न थी। असकरी ने मिर्जा जलाल को लिखा —

'प्यारे अब्बाजान, अपने पिछले खत में मैंने जिस जरूरत का इशारा किया था, बदक़िस्मती से वह जरूरत आ पड़ी। आपका प्यारा जयगढ़ भेडियों के पंजे में फँसा हुआ है और आपका प्यारा असकरी नाउम्मीदों के भंवर में, दोनों आपकी तरफ़ आस लगाये ताक रहे हैं। आज हमारी आखिरी कोशिश, हम मुखालिफ़ फौज

को मन्दौर के किले से अलग करना चाहते हैं। आधी रात के बाद यह मार्का शुरू होगा। आपसे सिर्फ इतनी दरख्वास्त है कि अगर हम सर हथेली पर लेकर किले के सामने तक पहुँच सकें, तो हमें लोहे के दरवाज़े से सर टकराकर वापस न होना पड़े। वर्ना आप अपनी क़ौम की इज्जत और अपने बेटे की लाश को उसी जगह पर तड़पते देखेंगे और जयगढ़ आपको कभी मुआफ़ न करेगा। उससे कितनी ही तकलीफ़ क्यों न पहुँची हो मगर आप उसके हक़ों से सुबुकदोश नहीं हो सकते।'

शाम हो चुकी थी, मैदाने जंग ऐसा नज़र आता था कि जैसे जंगल जल गया हो। विजयगढ़ी फौज एक खूंरेज मार्के के बाद ख़न्दकों में आ रहीं थी, घायल मन्दौर के क़िले के अस्पताल में पहुँचाये जा रहे थे, तोपें थककर चुप हो गयी थीं और बन्दूकें जरा दम ले रही थीं। उसी वक्त जयगढ़ी फौज का एक अफ़सर विजयगढ़ी वर्दी पहने हुए असकरी के खेमे से निकला, थकी हुई तोपें, सर झुकाये हवाई जहाज, घोडों की लाशें, औंधी पड़ी हुई हवागाडिया, और सजीव मगर टूटे-फूटे किले, उसके लिए पर्दे का काम करने लगे। उनकी आड़ में छिपता हुआ वह विजयगढ़ी घायलों की क़तार में जा पहुँचा और चुपचाप जमीन पर लेट गया।

6

आधी रात गुजर चुकी थी। मन्दौर या क़िलेदार मिर्जा जलाल किले की दीवार पर बैठा हुआ मैदाने जंग का तमाशा देख रहा था और सोचता था कि 'असकरी को मुझे ऐसा ख़त लिखने की हिम्मत क्योंकर हुई। उसे समझना चाहिए था कि जिस शख्स़ ने अपने उसूलों पर अपनी जिन्दगी न्यौछावर कर दी, देश से निकाला गया, और गुलामी का तौक़ गर्दन में डाला वह अब अपनी जिन्दगी के आख़िरी दौर में ऐसा कोई काम न करेगा, जिससे उसको बट्टा लगे। अपने उसूलों को न तोड़ेगा। खुदा के दरबार में वतन और वतनवाले और बेटा एक भी साथ न देगा। अपने बुरे-भले की सजा या इनाम आप ही भुगतना पड़ेगा। हिसाब के रोज उसे कोई न बचा सकेगा।

'तौबा! जयगढियों से फिर वही बेवकूफ़ी हुई। ख़ामख़ाह गोलेबारी से दुश्मनों को खबर देने की क्या जरूरत थी? अब इधर से भी जवाब दिया जायेगा और हज़ारों जानें जाया होंगी। रात के अचानक हमले के माने तो यह है कि दुश्मन सर पर आ जाए और कान खबर न हो, चौतरफ़ा खलबली पड़ जाय। माना कि मौजूदा हालत में अपनी हरकतों को पोशीदा रखना शायद

मुश्किल है। इसका इलाज अंधेरे के ख़न्दक से करना चाहिये था। मगर आज शायद उनकी गोलेबारी मामूल से ज्या तेज है। विजयगढ़ की क़तारों और तमाम मोर्चेबन्दियों को चीरकर बज़ाहिर उनका यहाँ तक आना तो मुहाल मालूम होता था, लेकिन अगर मान लो आ ही जाएँ तो मुझे क्या करना चाहिये। इस मामले को तय क्यों न कर लूँ? खूब, इसमें तय करने की बात ही क्या हैं? मेरा रास्ता साफ़ है। मैं विजयगढ़ का नमक खाता हूँ। मैं जब बेघरबार, परेशान और अपने देश से निकला हुआ था तो विजयगढ़ ने मुझे अपने दामन में पनाह दी और मेरी ख़िदमतों का मुनासिब लिहाज़ किय। उसकी बदौलत तीस साल तक मेरी जिन्दगी नेकनामी और इज्जत से गुजरी। उसके दगा करना हद दर्जे की नमक-हरामी है। ऐसा गुनाह जिसकी कोई सज़ा नहीं! वह ऊपर शोर हो रहा है। हवाई जहाज़ होंगे, वह गोला गिरा, मगर खैरियत हुई, नीचे कोई नहीं था।

'मगर क्या दगा हर एक हालत में गुनाह है? ऐसी हालतें भी तो हैं, जब दगा वफ़ा से भी ज्यादा अच्छी हो जाती है। अपने दुश्मन से दग़ा करना क्या गुनाह है? अपनी कौम के दुश्मन से दगा करना क्या गुनाह है? कितने ही काम जो जाती हैसियत से ऐसे होते हैं कि उन्हें माफ़ नहीं किया जा सकता, कौमी हैसियत से नेक काम हो जाते हैं। वही बेगुनाह का खून जो जाती हैसियत

से सख्त् सज़ा के क़ाबिल है, मज़हबी हैसियत से शहादत का दर्जा पाता है, और कौमी हैसियत से देश-प्रेम का। कितनी बेरहमियाँ और जुल्म, कितनी दगाएँ और चालबाजियाँ, कौमी और मज़हबी नुक्ते-निगाह से सिर्फ़ ठीक ही नहीं, फ़र्जों में दाखिल हो जाती है। हाल की योरोप की बड़ी लड़ाई में इसकी कितनी ही मिसालें मिल सकती हैं। दुनिया का इतिहास ऐसी दग़ाओं से भरा पड़ा है। इस नये दौर में भले और बुरे का जाती एहसास क़ौमी मसलहत के सामने कोई हकीकत नहीं रखता। क़ौमियत ने ज़ात को मिटा दिया है। मुमकिन है यही खुदा की मंशा हो। और उसके दरबार में भी हमारे कारनामें क़ौम की कसौटी ही पर परखे जायँ। यह मसला इतना आसान नहीं है जितना मैं समझता था। 'फिर आसमान में शोर हुआ इतना मगर शायद यह इधर की के हवाई जहाज़ हैं। जयगढ़ वाले बड़े दमख़म से लड़ रहे हैं। इधर वाले दबते नजर आते हैं। आज यकीनन मैदान उन्हीं के हाथ में रहेगा। जान पर खेले हुए हैं। जयगढ़ी वीरों की बहादुरी मायूसी ही मे खूब खुलती है। उनकी हार जीत से भी ज्यादा शानदार होती है। बेशक, असकरी दाँव-पेंच का उस्ताद है, किस खूबसूरती से अपनी फौज का रूख क़िले के दरवाजे की तरफ़ फेर दिया। मगर सख्त गलती कर रहे हैं। अपने हाथों अपनी क़ब्र खोद रहे हैं। सामने का मैदान दुश्मन के लिए खाली

किये देते हैं। वह चाहे तो बिना रोक-टोक आगे बढ़ सकता है और सुबह तक किये देते हैं। वह चाहे तो बिना रोक-टोक आगे बढ़ सकता है। और सुबह तक जयगढ़ की सरज़मीन में दाखिल हो सकता है। जयगढियों के लिए वापसी या तो ग़ैरमुमकिन है या निहायत ख़तरनाक। क़िले का दरवाज़ा बहुत मजबूत है। दीवारों की संधियों से उन पर बेशुमार बन्दूकों के निशाने पड़ेंगे। उनका इस आग में एक घण्टा भी ठहरना मुमकिन नहीं है। क्या इतने देशवासियों की जानें सिर्फ एक उसूल पर, सिर्फ हिसाब के दिन के ड़र पर, सिर्फ़ अपने इख़लाक़ी एहसास पर कुर्बान कर दूँ? और महज जानें ही क्यों? इस फौज की तबाही जयगढ़ की तबाही है। कल जयगढ़ की पाक सरज़मीन दुश्मन की जीत के नक्क़ारों से गूँज उठेगी। मेरी माँए, बहनें और बेटियाँ हया को जलाकर खाक कर देने वाली हरकतों का शिकार होंगी। सारे मुल्क में क़त्ल और तबाही के हंगामे बरूपा होंगे। पुरानी अदावत और झगड़ों के शोले भड़केंगे। कब्रिस्तान में सोयी हुई रहें दुश्मन के क़दमों से पामाल होंगी। वह इमारतें जो हमारे पिछ्ले बड़प्पन की जिन्द निशानियाँ हैं, वह यादगारें जो हमारे बुजुर्गों की देन हैं, जो हमारे कारनामों के इतिहास, हमारे कमालों का ख़जाना और हमारी मेहनतों की रोशन गवाहियाँ हैं, जिनकी सजावट और खूबी को दुनिया की क़ौमें स्पर्द्धा की आँखों से देखती हैं वह अर्द्ध-बर्बर,

असभ्य लश्करियों का पड़ाव बनेंगी और उनके तबाही के जोश का शिकार। क्या अपनी क़ौम को उन तबाहियों का निशाना बनने दूँ? महज इसलिए कि वफ़ा का मेरा उसूल न टूटे?

‘उफ्, यह क़िले में ज़हरीले गैस कहाँ से आ गये। किसी जयगढ़ी जहाज की हरकत होगी। सर में चक्कर-सा आ रहा है। यहाँ से कुमक भेजी जा रही है। किले की दीवार के सूराखों में भी तोपें चढाई जा रही है। जयगढ़वाले क़िले के सामने आ गये। एक धावे में वह हुमायूं दरवाजे तक आ पहुँचेंगे।

विजयगढ़ वाले इस बाढ़ को अब नहीं रोक सकते। जयगढ़ वालों के सामने कौन ठहर सकता है? या अल्लाह, किसी तरह दरवाजा खुद-ब-खुद खुल जाता, कोई जयगढ़ी हवाबाज़ मुझसे जबर्दस्ती कुंजी छीन लेता। मुझे मार ड़ालता। आह, मेरे इतने अज़ीज हम-वतन प्यारे भाई आन की आन में ख़ाक में मिल जायेंगे और मैं बेबस हूँ! हाथों में जंजीर है, पैरों में बेड़ियाँ। एक-एक रोआँ रस्सियों से जक़ड़ा हुआ है।

क्यों न इस जंजीर को तोड़ दूँ, इन बेड़ियों के टुकड़े-टुकड़े कर दूँ, और दरवाज़े के दोनों बाजू अपने अज़ीज़ फ़तेह करने वालों की अगवानी के लिए खोल दूँ! माना कि यह गुनाह है पर यह मौक़ा गुनाह से ड़रने का नहीं। जहन्नुम की आग उगलने वाले सांप

और खून पीन वाले जानवर और लपकते हुए शोले मेरी रूह को जलायें, तड़पायें कोई बात नहीं। अगर महज़ मेरी रूह की तबाही, मेरी क़ौम और वतन को मौत के गड्ढे से बचा सके तो वह मुबारक है। विजयगढ़ ने ज्यादती की है, उसने महज जयगढ़ को जलील करने के लिए सिर्फ उसको भड़काने के लिए शीरीं बाई को शहर-निकाले को हुक्म जारी किया जो सरासर बेजा था। हाय, अफ़सोस, मैंने उसी वक्त इस्तीफ़ा न दे दिया और गुलामी की इस क़ैद से क्यों न निकल गया।

‘हाय ग़जब, जयगढ़ी फौज ख़न्दकों तक पहुँच गयी, या खुदा! इन जांबाजों पर रहम कर, इनकी मदद कर। कलदार तोपों से कैसे गोले बरस रहे हैं, गोया आसमान के बेशुमार तारे टूट पड़ते हैं। अल्लाह की पनाह, हुमायूं दरवाजे पर गोलों की कैसी चोटें पड़ रही हैं। कान के परदे फ़टे जाते हैं। काश दरवाजा टूट जाता! हाय मेरा असकरी, मेरे जिगर का टुकड़ा, वह घोड़े पर सवार आ रहा है। कैसा बहादुर, कैसा जाँबाज, कैसी पक्की हिम्मत वाला! आह, मुझ अभागे कलमुंहे की मौत क्यों नही आ जाती! मेरे सर पर कोई गोला क्यों नहीं आ गिरता! हाय, जिस पौधे को अपने जिगर के खून से पाला, जो मेरी पतझड़ जैसी ज़िन्दगी का सदाबहार फूल था, जो मेरी अंधेरी रात का चिरा, मेरी ज़िन्दगी की उम्मीद, मेरी हस्ती का दारोमदार, मेरी आरज़ू की इन्तहा था, वह

मेरी आँखों के सामने आग के भंवर में पड़ा हुआ है, और मैं हिल नहीं सकता। इस कातिल जंजीर को क्योंकर तोड़ दूँ? इस बाग़ी दिल को क्योंकर समझाऊँ? मुझे मुँह में कालिख लगाना मंजूर है, मुझे जहन्नुम की मुसीबतें झेलना मंजूर है, मैं सारी दुनिया के गुनाहों का बोझ अपने सर पर लेने को तैयार हूँ, सिर्फ इस वकत मुझे गुनाही करने की, वफ़ा के पैमाने को तोड़ने की, नमकहराम बनने की तौफ़ीक दे! एक लम्हे के लिए मुझे शैतान के हवाले कर दे, मैं नमक हराम बनूँगा, दग़ाबाज बनूँगा पर क़ौमफ़रोश नहीं बन सकता!

'आह, ज़ालिम सुरंगें उड़ाने की तैयारी कर रहे हैं। सिपहसालार ने हुक्म दे दिया। वह तीन आदमी तहखाने की तरफ़ चले। जिगर काँप रहा है, जिस्म काँप रहा है। यह आख़िरी मौका है। एक लमहा और, बस फिर अंधेरा है और तबाही। हाय, मेरे ये बेवफ़ा हाथ-पाँव अब भी नहीं हिलते, जैसे इन्होंने मुझसे मुँह मोड़ लिया हो। यह खून अब भी गरम नहीं होता। आह, वह धमाके की आवाज हुई, खुदा की पनाह, जमीन काँप उठी, हाय असकरी, असकरी, रूख़सत, मेरे प्यारे बेटे, रूख़सत, इस जालिम बेरहम बाप ने तुझे अपनी वफ़ा पर कुर्बान कर दिया! मैं तेरा बाप न था, तेरा दुश्मन था!

मैंने तेरे गले पर छुरी चलयी। अब धुआँ साफ़ हो गया। आह वह फौज कहाँ है जो सैलाब की तरह बढ़ती आती थी और इन दीवारों से टकरा रही थी। ख़न्दकें लाशों से भरी हुई हैं और वह जिसका मैं दुश्मन था, जिसका क़ातिल, वह बेटा, वह मेरा दुलारा असकरी कहाँ है, कहीं नजर नही आता....आह....।'

['जमाना', नवम्बर, 1918]

वफा की देवी

माघ का महीना, सुबह का समय, हरिद्वार में गंगा का किनारा, स्नान का मेला, सामने की पहाड़ियाँ सुबह की सुनहरी किरणों में नहाई खड़ी हैं। यात्रियों की इतनी भीड़ है कि कंधे से कंधा छिलता है। जगह-जगह साधु-संन्यासियों और कीर्तनियों की टोलियाँ बैठी हुई हैं। इस समय सांगली के कुँअर साहब और उनकी रानी स्नान करने आए हैं। उनके साथ उनकी छह वर्ष की लड़की भी है। कुँअर साहब के सिर पर जयपुरी पगड़ी, नीची अचकन, अमृतसरी जूते, बड़ी-बड़ी मूछें, गठीला शरीर। रानी का रंग गेहुँआ, शरीर नाजुक, गहनों से सजी हुई। लड़की भी गहने पहने हुए है। कई सिपाही, प्यादे उनके साथ भाला-बल्लम लिए, वर्दियाँ पहने चले आ रहे हैं। कई सेवक

भी हैं।

ये लोग भीड़ को हटाते, नदी-किनारे पहुँचकर स्नान करते हैं। चार आदमी रानी के स्नान के लिए परदा करते हैं। लड़की पानी से खेल रही है, राजा साहब पंडितों को दान दे रहे हैं और लड़की पानी पर अपनी नाव तैरा रही है। अचानक नाव एक रेले में बह

जाती है, लड़की उसे पकड़ने के लिए लपकती है। उसी समय भीड़ का ऐसा रेला आता है कि लड़की माँ-बाप से अलग हो जाती है। कभी इधर भा गती कभी उधर, बार-बार अपनी माँ को देखने का भ्रम होता है। फिर वह रोने लगती है, डर के मारे किसी से कुछ बोलती भी नहीं, न रास्ता ही पूछती है। बस खड़ी फूट-फूटकर रो रही है और अपनी माँ को पुकारती है। अचानक एक रास्ता देखकर उसे धर्मशाला के मार्ग का भ्रम होता है। वह उसी पर हो लेती है, लेकिन वह रास्ता उसे धर्मशाला से दूर ले जाता है।

इधर लड़की को न पाकर कुँअर साहब और उनकी रानी इधर-उधर खोजने लगते हैं और बौखलाकर अपने नौकरों पर बिगड़ते हैं। नौकर लड़की की तलाश में चले जाते हैं। एक छोटी लड़की को देखकर रानी सहसा उसकी ओर दौड़ पड़ती है, लेकिन जब अपनी गलती पता चलती है तो आँखों पर हाथ रखकर रोने लगती है। कुँअर साहब गुस्से से आग बबूला हो रहे हैं, मगर तलाश करने कहीं नहीं जाते। अभी उनका साफा ठीक नहीं हुआ, अचकन भी नहीं सजी, बाल भी सँवारे नहीं जा सके।

अब वहाँ नौकर तो रहे नहीं, वे पंडितों पर बिगड़ते हैं और अन्ततः नखशिख से सज-धजकर, कमर में तलवार लगाकर लड़की की तलाश में निकलते हैं। इसी मध्य गंगा के किनारे आकर रानी

मन्नत माँगती है। भीड़ के मारे एक कदम चलना मुश्किल है। भीड़ बढ़ती जाती है। बेचारे हतभागे माँ-बाप धक्कम-धक्के में कभी दो पग आगे बढ़ते हैं तो कभी दो पग पीछे हो जाते हैं।

इधर रोती हुई लड़की अपनी धर्मशाला को पहचानने की कोशिश में और दूर चली जा रही है। सहसा कुँअर साहब के मन में आता है कि शायद लड़की धर्मशाला में पहुँच गई हो और उसे नौकरों ने पा लिया हो। फौरन भीड़ को हटाते हुए दोनों धर्मशाला की ओर चल देते हैं मगर वहाँ पहुँचकर देखते हैं कि लड़की का कुछ पता नहीं। घबराकर दोनों फिर निकल पड़ते हैं। आश्चर्य यह है कि आगे-आगे लड़की रोती चली जा रही है और पीछे-पीछे माँ बाप उसकी तलाश में जा रहे हैं, बीच में केवल बीस गज की दूरी है मगर दोनों का आमना-सामना नहीं होता। यहाँ तक कि घंटों बीत जाते हैं। बादल घिर आते हैं। रानी थक जाती है, उससे एक कदम भी चला नहीं जाता। वह सड़क के किनारे बैठ जाती है और रोने लगती है। कुँवर साहब लाल-लाल आँखें निकाले, बेसुध हुए सारी दुनिया पर झल्लाए हुए हैं।

निराश होकर राजकुमारी फिर हरिद्वार घाट की ओर चलती है और माँ-बाप के सामने से निकल जाती है, लेकिन दोनों की दृष्टि

दूसरी ओर है, आँखें चार नहीं होतीं। इतने में कंधे पर मृगछाला डाले, हाथ में तम्बूरा लिए एक जटाधारी महात्मा चले आ रहे हैं।

राजकुमारी को घबराया देखकर वे समझ जाते हैं कि यह अपने घरवालों से बिछुड़ गई है। वे उसे गोद में उठा लेते हैं और उससे उसके घर का पता पूछते हैं। लड़की न तो अपने माता-पिता का नाम बता सकती है न अपने घर का पता, वह बस रोए जाती है। डर के कारण उसका मुँह ही नहीं खुलता।

अब साधु के मन में एक नई इच्छा उत्पन्न होती है। लड़की को गोद में लिए वे सोच रहे हैं कि मुझे क्या करना चाहिए? उनका मन कहता है — जब इसके माँ-बाप का पता ही नहीं तो मैं क्या कर सकता हूँ? उनका मन लड़की को छिपा रखने के लिए प्रेरित करता है। वे राजकुमारी को लिए अपनी कुटिया की ओर चले जाते हैं। उनकी लड़की और पत्नी दोनों मर चुके हैं और इसी शोक में वे संसार से विरक्त हो गए हैं। इस चाँद सी लड़की को पाकर उनके हृदय में पितृ-प्रेम पुनः जाग्रत हो उठता है। वे समझते हैं कि परमात्मा ने उन पर दया करके उनके जीवन-दीप को जगमगाने के लिए इसे भेजा है।

2

पथरीली जगह पर एक साफ सुथरी, बेलों और फूलों से सुसज्जित कुटिया है। पीछे की ओर बहुत नीचे एक नदी बह रही है। कुटिया के सामने छोटा-सा मैदान है। दो हिरन और दो मोर मैदान में घूम रहे हैं। वही महात्मा कुटिया के सामने एक चट्टान पर बैठे तम्बूरे पर गा रहे हैं।

राजकुमारी भी उनके सुर में सुर मिलाकर गा रही है। उसकी उम्र अब दस साल की हो गई है। भजन गा चुकने पर लड़की कुटिया में जाकर ठाकुरजी को स्नान कराती है।

साधु भी आ जाते हैं और दोनों ठाकुरजी की स्तुति करते हैं। फिर वे मस्ती में आकर नाचने लगते हैं। थोड़ी देर बाद लड़की भी नाचने लगती है। कीर्तन समाप्त हो जाने के पश्चात् दोनों चरणामृत लेते हैं और साधु राजकुमारी को (जिसका नाम इंदिरा रखा गया है) पढ़ाने लगते हैं। उसे गाना, बजाना, नाचना सिखाने में उन्हें आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है। उनकी इच्छा है कि इंदिरा ईश्वर-भजन और जगत्-सेवा में अपना जीवन अरूपित कर दे। वे उस शुभ घड़ी का स्वप्न देख रहे हैं जब इंदिरा ठाकुरजी के सामने मीरा की भाँति गायेगी और मस्ती में आकर नाचेगी।

इंदिरा इतनी रूपवती, इतनी मृदुभाषिणी और नृत्य में इतनी पारंगत है कि जब वह रात में कीर्तन करने लगती है तो भक्तों की भीड़ लग जाती है।

महात्माजी ने ये पाँच बरस इसी कुटिया में बिताए हैं। इंदिरा यात्रा के कष्ट सहन करने के योग्य हो गई है इसलिए अब साधु तीर्थयात्रा करने के लिए निकलते हैं। भक्तजन उन्हें बिदा करने के लिए आते हैं। एक भक्त को कुटिया सौंपकर महात्मा इंदिरा के साथ तीर्थयात्रा के लिए चल देते हैं।

बरसों तक महात्माजी तीर्थस्थानों की यात्रा करते रहते हैं। कभी बदरीनाथ जाते हैं कभी केदारनाथ, कभी द्वारका कभी रामेश्वरम, कभी मथुरा कभी काशी, कभी पुरी। दोनों प्रत्येक स्थान पर मंदिरों में कीर्तन करते हैं और भक्तों को आध्यात्मिक आनन्द से सराबोर कर देते हैं।

अब महात्माजी इंदिरा को शास्त्रों और वेदों का भी सदुपदेश देते हैं। जब महात्माजी ध्यानमग्न हो जाते हैं तो इंदिरा प्रायः वेदों का अध्ययन करती है।

एक दिन महात्माजी और इंदिरा दोनों एक गाँव में जा पहुँचते हैं। यह गाँव मुसलमानों का है।

एक हफ्ते से प्लेग फैला हुआ है। लोग गाँव के बाहर झोंपड़ियाँ डाले पड़े हैं। महात्माजी एक वृक्ष के नीचे आसन जमाते हैं और प्लेगग्रस्त लोगों का उपचार करते हैं। इंदिरा भी महिलाओं की सेवा में व्यस्त हो जाती है। जड़ी-बूटियाँ खोजना, दवाएँ बनाना, मरीजों को उठाना-बैठाना, उनके बच्चों के लिए खाने-पीने की व्यवस्था करना उन दोनों का नित्य कर्म है। यहाँ तक कि महात्माजी को प्लेग हो जाता है और वे उसी वृक्ष के नीचे पड़ जाते हैं। गाँव के सभी स्त्री-पुरुष और आसपास के देहात के लोग महात्माजी की सेवा-शुश्रूषा के लिए आते हैं लेकिन महात्माजी की दशा बिगड़ती जाती है और एक दिन वे इंदिरा को बुलाकर ईश्वर-भजन और जनसाधारण की सेवा का उपदेश देकर ठाकुरजी के चरणों का ध्यान करते हुए समाधि ले लेते हैं।

गाँव में कोहराम मच जाता है। महात्माजी की अर्थी धूमधाम और गाजे-बाजे के साथ निकलती है। एक भजन मंडली भी साथ है। गाँव की परिक्रमा करने के पश्चात् उसी वृक्ष की छाया में उनकी छतरी बनती है।

इस समय इंदिरा की आयु बीस-इक्कीस वर्ष है और उसके चेहरे पर ऐसा तेज है कि देखने वालों की आँखें झुक जाती हैं। उसका भरा-पूरा शरीर हर प्रकार का कष्ट सहन करने का अभ्यस्त हो गया है। गाँव के लोगों की इच्छा है कि वह उसी गाँव में रहे मगर अब उससे अपने उपकारी का बिछोह सहन नहीं होता। जिस गाँव में उस पर यह कष्ट आन पड़ा उसमें वह अब नहीं रह सकती। वह हृदय को इस बात से सांत्वना देना चाहती है कि जो ईश्वरेच्छा थी वही हुआ, लेकिन उसे किसी प्रकार सन्तोष नहीं होता। अन्ततः एक दिन वह सबसे बिदा लेकर निकल पड़ती है। उसकी कमर में कटार छिपी है, हाथ में तम्बूरा और कमंडल तथा कंधे पर मृगछाला है।

वह गाँव-गाँव और नगर-नगर में ईश्वर के भजन सुनाती और जनता के हृदय में भक्ति के दीप जलाती घूमती है। वह जिस नगर में जा पहुँचती है, वहाँ बात की बात में हजारों आदमी आ जाते हैं। उसकी सवारी के लिए सर्वोत्तम साधन प्रस्तुत किए जाते हैं लेकिन वह प्रदर्शन और बनावट को तुच्छ समझती हुई किसी मंदिर के सामने वृक्ष की छाया में ठहरती है। उसकी आँखों की निश्छल अदाओं में वह आकर्षण है कि लोग उसके मुँह से एक-एक शब्द सुनने के लिये व्याकुल रहते हैं।

उसके दर्शन करते ही बड़े-बड़े ऐयाश और मनचले उसके समक्ष श्रद्धा से सिर झुका देते हैं। इंदिरा को सूफी कवियों की कविताएँ बहुत पसन्द हैं। वह मीरा, कबीर आदि के दोहों को अत्यन्त रुचि से पढ़ती और उन्हीं के भजन गाती है। तुलसी और सूरदास के पदों से भी उसे प्रेम है। समकालीन कवियों में से जिसकी कविताएँ उसे सर्वाधिक प्रिय हैं, वह हरिहर नाम का एक कवि है। वह उसके गीतों को पढ़कर मतवाली हो जाती है। उसके हृदय में उसका विशेष सम्मान है। वह चाहती है कि कहीं हरिहर से भेंट हो जाती तो वह उसके चरणों को चूम लेती।

4

जरवल रियासत का प्रमुख नगर, पथरीला क्षेत्र, साफ सुथरी सड़कें, साफ सुथरे आदमी, वैभवशाली महल, एक अत्यन्त सुन्दर चौक, चारों ओर प्रकाश में नहाई हुई दुकानें, बीच में एक पार्क, पार्क में फव्वारा; उसी फव्वारे के सामने खड़ी इंदिरा तम्बूरे पर भजन गा रही है। हजारों लोग तल्लीन खड़े हैं। जाती हुई मोटर कारें रुक जाती हैं और उन पर से उतर-उतरकर रईस लोग गाना सुनने

लगते हैं। खोमचे वाले रुक जाते हैं और खोमचा लिए भजन सुनने लगते हैं।

इंदिरा अपने प्रिय कवि हरिहर का एक अध्यात्म में डूबा हुआ पद गा रही है। उसकी रसीली धुन सबको मस्त कर रही है।

5

कई बरस हुए हरिहर एक मालदार रईस था, काव्य-रसिक, दार्शनिक चिन्तन में डूबा हुआ और आध्यात्मिकता में रंगा हुआ। अपने शानदार महल को छोड़कर एक झोंपड़ी में बैठा अध्यात्म और दर्शन की भावनाओं को कविता और गीतों के आकर्षक रूप में अभिव्यक्त किया करता था। अध्यात्म की वास्तविकताएँ उसके मनोमस्तिष्क में जाकर काव्यात्मक चमक-दमक से सुसज्जित हो जाती थीं। बैठे-बैठे पूरी रात बीत गई है और वह अपने विचारों में मस्त है। खाने-पीने, कपड़े-लत्ते की चिन्ता नहीं। उसकी दृष्टि में जगत् स्वप्न है, केवल इच्छाओं की मृगतृष्णा। उसकी दृष्टि में इसकी कोई वस्तु ऐसी नहीं कि मानव उसमें मन लगाए। वह अपनी सम्पत्ति की कोई परवाह नहीं करता, कामकाज पर लेशमात्र भी ध्यान नहीं देता। व्यापारी लोग बार-बार उससे

मिलने आते हैं लेकिन वह अपने आनन्दकानन से बाहर नहीं निकलता। हाँ, यदि कोई फटेहाल आ जाता है तो तत्काल आकर उसे अतिथिशाला में ले जाता है। उसका समस्त वैभव गरीबों के लिए न्यस्त है, कभी गरीबों को कम्बल बाँटता है कभी अनाज। कोई भूखा भिखारी उसके द्वार से निराश नहीं लौटता। परिणाम यह होता है कि वह कर्ज में डूब जाता है। कर्ज देने वाले नालिश करते हैं, उस पर डिग्री होती है। हरिहर अपना एकान्त छोड़कर कभी मुकदमे की पैरवी करने नहीं जाता। उसकी सम्पत्ति कुड़क हो रही थी और वह अपनी झोंपड़ी में बैठा सितार पर वह पद गा रहा था जो उसने अभी-अभी लिखा था। बनाव-सजाव की वस्तुएँ उसके महल से निकालकर नीलाम कर दी जाती हैं, उसे तनिक भी दुःख नहीं। तब उसका महल नीलाम कर दिया जाता है और वह इसी प्रकार निस्पृह बना रहता है। एक बहुत बड़ा रईस आकर इस महल पर अधिकार जमा लेता है। हरिहर के पास अब भी विस्तृत इलाका है। वह चाहे तो फिर भव्य महल बनवा सकता है, मगर उसे सम्पत्ति से प्यार नहीं। वह हरेक गाँव में घूम-घूमकर अपनी आसामियों को जमींदारी के अधिकार प्रदान कर देता है, यहाँ तक कि उसके सभी एक सौ एक गाँव स्वतन्त्र हो जाते हैं। वह जिस गाँव में जा पहुँचता है, लोग उसका स्वागत करने दौड़ते हैं और उसके

चरणों की धूल मस्तक पर लगाते हैं। उसके लिए हर प्रकार की सुविधाएँ प्रस्तुत की जाती हैं लेकिन वह गाँव के बाहर किसी वृक्ष की छाया में टिक जाता है और जंगली फल खाकर सो रहता है। अन्ततः सम्पत्ति की चिन्ता से मुक्त होकर वह फिर सन्तोष के साथ अपने आनन्दकानन में आ बैठता है। आज उसके हर्ष की कोई सीमा नहीं है। उसकी कुटिया में अब भी कितनी ही फालतू चीजें हैं जिन्हें उसकी सौन्दर्यप्रियता ने एकत्र कर रखा है। चित्रकला और कारीगरी के इन अजूबों को इकट्ठा करके वह एक ढेर लगा देता है और उसमें आग लगा देता है। उसका सितार और तम्बूरा और डफ, मूर्तियाँ, मृगछालाएँ, अध्यात्म और दर्शन की किताबें, सब उस ढेर में जलकर राख हो जाती हैं और वह मुस्कराता खड़ा उन वस्तुओं को राख होते हुए देखता है।

6

शाम हो गई है। शहर के चौक में इंदिरा अपने तम्बूरे पर एक पद गा रही है। हजारों आदमी इकट्ठा हैं। बड़े-बड़े रईस और अमीर तल्लीन खड़े हैं। वह लुभावना गीत सुनकर हरिहर चौंक जाता है और कान लगाकर सुनता है और तब लपककर भीड़ में

पीछे खड़ा हो जाता है। इंदिरा पद गा रही है जिसकी एक-एक तान उसके हृदय पर चोट करती है। आज हरिहर को अपनी रचनाओं के गाम्भीर्य, दर्द और प्रभाव का आभास होता है। वह आश्चर्य की मूर्ति बना खड़ा रहता है।

यहाँ तक कि गाना समाप्त हो जाता है, लोग विदा हो जाते हैं और इंदिरा भी वहाँ से चली जाती है, मगर अभी तक हरिहर वहीं विचारों में डूबा हुआ बिना हिले-डुले मूरत बना खड़ा है।

जब बिल्कुल सन्नाटा छा जाता है तो उसे अपने आसपास की चुप्पी का आभास होता है। वह एक-दो आदमियों से इंदिरा का पता पूछना चाहता है, मगर झिझक के कारण नहीं पूछता। वह विवश होकर अपनी कुटिया में लौट जाता है और प्रेम का पहला गीत लिखता है। वह व्याकुलता की दशा में पूरी रात काटता है और दूसरे दिन संध्याकाल फिर चौक की ओर जाता है। इंदिरा आज भी चौक में गा रही है, भीड़ कल से भी कहीं अधिक है मगर क्या मजाल कोई हिल भी सके।

हरिहर भी बुत बना हुआ सुनता है और जब आधे घंटे के बाद इंदिरा चल देती है तो वह उसके पीछे हो लेता है। भक्तों की अजगर जैसी लम्बी पंक्ति साथ में है। इंदिरा कुटिया के पास पहुँचकर सब लोगों को विदा कर देती है, केवल हरिहर उससे

कुछ दूरी पर चला आ रहा है। अपनी कुटिया में पहुँचकर इंदिरा पानी भर लाती है और तब ठाकुरजी को भोग लगाकर स्वयं भी खाती है। फिर धरती पर पड़ रहती है।

धवल चाँदनी छिटकी हुई है। कुटिया के सामने धरती पर बैठकर हरिहर पत्थर के टुकड़ों पर कोयले से प्यार का एक नया गीत लिखने लगता है। लिखते-लिखते पूरी रात बीत जाती है। जब पूर्व में सूर्योदय की लालिमा प्रकट होती है तो वह पत्थर के टुकड़ों को कुटिया के द्वार पर क्रम से रखकर वहाँ से कुछ दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे लेट जाता है। पत्थर के टुकड़े इस प्रकार रखे गए हैं कि इंदिरा को उसका प्रेम-संदेश पढ़ने में लेशमात्र भी कठिनाई न हो।

संध्या-पूजन और कीर्तन के पश्चात् जब इंदिरा मुँह अंधेरे बाहर निकलती है तो उसे द्वार पर क्रम से रखे हुए पत्थर के चौकोर टुकड़े दिखाई देते हैं। वह आश्चर्य से एक पत्थर उठा लेती है।

उसे उस पर कुछ लिखा हुआ दिखाई देता है। अरे! यह कोई प्रेमगीत है। वह दूसरा पत्थर उठाती है। उस पर भी वही लिखा है। यह इस गीत का दूसरा अन्तरा प्रतीत होता है। फिर वह पत्थर के सभी टुकड़ों को उठाकर पढ़ती है और उन्हें एक पंक्ति में रखकर पूरा गीत पढ़ लेती है।

इस गीत में वह दर्द और प्रभाव है कि वह कलेजा थामकर रूह जाती है। यह उसी अमर कवि हरिहर की रचना है। इंदिरा के मन में कितनी बार इच्छा उत्पन्न हुई थी कि इस कवि के दर्शन करे लेकिन उसे कुछ पता नहीं था कि वह कौन है, कहाँ रहता है। आज यह प्रेम-संदेश पाकर वह पागलों की भाँति उसकी खोज में निकल पड़ती है। उसे विश्वास है कि वह कहीं आसपास ही होगा। वह उसे चारों ओर तलाश करती है और अन्ततः वह उसे कुटिया के पिछवाड़े जमीन पर सोता हुआ दिखाई देता है। वह आश्चर्यपूरित आनन्द से उसके चेहरे की ओर देखती है।

यह देखकर कि उसे मक्खियाँ सता रही हैं, वह अपने आँचल से मक्खियाँ उड़ाने लगती है। हरिहर की नींद खुल जाती है और इंदिरा को आँचल से पंखा झलते देखकर वह इस प्यार का आनन्द लेने के लिए पड़ा रहता है। फिर वह उठकर बैठता है और इंदिरा उसे प्रणाम करती है।

अब हरिहर भी वहीं रहता है। वह कुटिया के अन्दर रहती है, हरिहर बाहर। दोनों साथ-साथ पहाड़ियों पर घूमते हैं और जंगली फल-फूल एकत्रित करते हैं। इंदिरा के गीतों से पहाड़ियाँ गूँजने लगती हैं। अब वह शहर के चौक में अपने गीत सुनाने नहीं जाती, केवल हरिहर ही उसका श्रोता है। मगर अब भी शहर के

भक्तों की भीड़ लग जाती है और लोग उसे बहुत से उपहार देने जाते हैं, जिन्हें इंदिरा खुले हाथों से गरीबों में बाँट देती है।

7

सुबह के समय इंदिरा झील के किनारे एक चट्टान पर बैठी गा रही है और हरिहर सामने बैठा ठाकुरजी के लिए हार गूँथ रहा है। झील में मुर्गाबियाँ, हंस आदि तैर रहे हैं। किनारों पर हिरण, नीलगाय आदि सब मानो उस गीत से मस्त हो रहे हैं।

एकाएक घोड़े पर सवार राजकुमार ज्ञान सिंह उधर से निकलता है। उसके साथ कई बंदूकची, शिकारी और दरबारी हैं। वह मर्दाने चेहरे का अत्यन्त सुन्दर युवक है। अभी मसें भीग रही हैं। ऊँचा कद, चौड़ा सीना, उन्नत ललाट। इंदिरा का गाना सुनते ही जैसे सन्नाटे में आ जाता है। उसका घोड़ा वहीं रुक जाता है और सारी भीड़ वहीं चुपचाप खड़ी हो जाती है। इंदिरा अध्यात्म के नशे में डूबी हुई है, उसे ज्ञान सिंह के आने की कुछ भी खबर नहीं होती। जब गाना समाप्त हो जाता है तो राजकुमार घोड़े से उतरता है और इंदिरा के पास आकर सम्मान से प्रणाम करता हुआ उसका नाम पूछता है। वह अब तक अविवाहित था। राजों-

महाराजों के यहाँ से सैकड़ों प्रस्ताव आए थे लेकिन उसने एक भी स्वीकार नहीं किया। आज इस रूपसी को देखकर वह आत्मविस्मृति की दशा में पहुँच जाता है। वह सम्मान के साथ उसे अपने महल में आने का निमंत्रण देता है। इंदिरा एक दिन का अवकाश माँगती है, ज्ञान सिंह दूसरे दिन आने का वचन देकर चला जाता है लेकिन शिकार में उसका मन बिल्कुल भी नहीं लगता। उसे एकाएक शिकार से घृणा और प्रत्येक जीवधारी से प्रेम हो जाता है। अब उसे हिरणों का शिकार करने में दुःख होता है। वही दर्दभरा गीत उसके कानों में गूँज रहा है और आँखों में वही सूरत बसी हुई है।

8

यह निमंत्रण पाकर इंदिरा खुशी से फूली नहीं समाती। उस चिंगारी का उसे कुछ पता नहीं जो उसके रूप और गीत ने ज्ञान सिंह के हृदय में भड़का दी थी। वह सोचती है — शाही कृपाओं के सहारे वह जीवन की चिन्ताओं से मुक्त हो जाएगी और हरिहर के साथ सन्तुष्ट रहती हुई जीवन के दिन काट देगी। क्योंकि राजकुमार के दिल का हाल उससे छिपा नहीं रहता इसलिए

हरिहर सोचता है कि रनिवास में इंदिरा कितनी प्रसन्न होगी। क्या ऐसी अनिंद्य रूपसी पहाड़ों तथा जंगलों में फिरने के योग्य है। हरिहर के साथ रहकर उसे भूख व चिन्ता के अतिरिक्त और क्या मिलेगा। वह इस देवी को इन कठिनाइयों में डालना नहीं चाहता। उसके आध्यात्मिक सन्तोष के लिये इतना विश्वास ही पर्याप्त है कि उसका स्थान इंदिरा के हृदय में है। यही विचार उसके जीवन को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त है। उसके हृदय में और कोई इच्छा, और कोई आकांक्षा नहीं है।

रात बीत जाती है। पौ फटे हरिहर इंदिरा को फूलों के गहनों से सजाता है। भक्तों ने उस दिन इंदिरा को जितने उपहार दिये थे, वे सब हरिहर ने इकट्ठे कर रखे हैं। वह इस सज्जा से इंदिरा के रूप को और भी चमका देता है मगर जब अवसर मिलता है तो इंदिरा की आँख बचाकर आँसुओं की दो-चार बूँदें भी गिरा लेता है। इंदिरा से हँस-हँसकर बातें करता है मानो उसे कोई आशंका न हो, लेकिन उसे मन में विश्वास है कि अब इंदिरा के दर्शन नहीं होंगे। यह भय भी है कि इंदिरा के मन में अब उसकी याद नहीं रहेगी, शाही भोग-विलास में पड़कर वह उसे अवश्य ही भूल जायेगी। कौन किसको याद करता है! लेकिन वह इस विचार से अपने दिल को सांत्वना देता है कि वह आराम से तो रहेगी, उसके व्यक्तित्व से प्रजा को लाभ होगा। क्या वह इतनी बदल जाएगी

कि अधिकार पाकर शाही अत्याचार के विरुद्ध मुँह भी न खोले? क्या वह महात्मा के उपदेश को भूल सकती है?

जब इंदिरा बन-सँवरकर तैयार हो जाती है तो दोनों साथ बैठकर कीर्तन करते हैं। आज इस कीर्तन में दोनों के मन में भिन्न-भिन्न भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। इंदिरा अनजाने में प्रसन्न है। उसे हरा ही हरा सूझता है। वह संन्यास और वैराग्य से अघा चुकी है और अब सांसारिक वस्तुओं का आनन्द लेना चाहती है। उसके विचार में शाही कृपाएँ उसके लिये समृद्धि का द्वार खोल देंगी। वह इस समय भी उस जीवन का स्वप्न देख रही है जब वह हरिहर के लिए अच्छा खाना पकाएगी, उसके लिए अच्छे-अच्छे कपड़े बनवाएगी, उसके सिर में तेल डालेगी, जब वह सोएगा तो उसके लिए पंखा झलेगी। क्या ऐसा गुणवान, ईश्वर तक पहुँचा हुआ कवि इस योग्य है कि संसार की उपेक्षा का शिकार हो? मगर हरिहर दुःख के विचारों में डूबा हुआ है। उसकी आँखों के समक्ष अंधेरा छा रहा है। इसी समय ज्ञान सिंह अपने साथियों के साथ सवारी लिए आ पहुँचता है।

शाही महल के सुसज्जित और सुरुचिपूर्ण कमरे, रूपवती दासियाँ। राजमाता का दरबार लगा हुआ है। इंदिरा महल में पहुँचकर राजमाता को प्रणाम करती है। रानी उसकी बड़ी आवभगत करती हैं। वे स्नान करके पूजा के लिए तैयार बैठी हैं। इंदिरा उनके साथ मंदिर में जाती है जो काँच की वस्तुओं से सजा हुआ है, और वहाँ उनका कीर्तन होता है। रानी के साथ और भी कई कुलीन महिलाएँ हैं। इंदिरा का कीर्तन सुनकर सब अपना आपा खो बैठती हैं। रानी साहिबा इंदिरा को गले लगा लेती हैं और अपनी मोतियों की माला निकालकर उसके गले में डाल देती हैं। इंदिरा दूसरा भजन गाती है। रानी उसके पाँवों पर सिर रख देती है। उसके हृदय में भगवान् की ऐसी भक्ति कभी न उमड़ी थी। इसी समय पद्मा आती है। पद्मा रूप में इंदिरा से बिल्कुल अलग है। उसके रूप में रौब, गाम्भीर्य, लावण्य और आकर्षण है। इंदिरा के रूप में मृदुलता और नम्रता। एक चमेली का फूल है — सादा और कोमल, उसका सौन्दर्य उसकी कोमलता और सादगी में है। दूसरा सूरजमुखी है — सुवर्ण और सुदर्शन। पद्मा का पिता सरदार केसरी सिंह राज्य में मंत्री के पद पर प्रतिष्ठित है। वह पद्मा का विवाह राजकुमार ज्ञान सिंह से करना चाहता है। पद्मा भी राजकुमार को सच्चे दिल से चाहती है मगर राजकुमार उस

पर अधिक आसक्त नहीं है, फिर भी उसका बहुत आदर-सत्कार करता है।

पद्मा आकर राजकुमार को इंदिरा की ओर मुग्ध दृष्टि से घूरते हुए देखती है। यह भी देखती है कि यहाँ इसका आदर-सम्मान हो रहा है। स्वयं उसका इतना सम्मान कभी न हुआ था। यह साधारण, बाजारों में गाने वाली औरत उससे बाजी मार ले, इस विचार से वह अन्दर ही अन्दर जल जाती है। उसे तत्काल इंदिरा से ईर्ष्या व द्वेष उत्पन्न हो जाता है और वह उसे अपमानित करने की योजना बनाने लगती है। वह रानी साहिबा को उससे विमुख करना चाहती है। उसके चेहरे-मोहरे, पहनने-ओढ़ने का मजाक उड़ाती है। लेकिन जब इस दुश्चक्र का इंदिरा पर कोई प्रभाव नहीं होता तो वह उसे बदनाम करना चाहती है। अवसर पाकर वह अपना कीमती कंगन उसके तम्बूरे के नीचे छिपा देती है और कुछ देर बाद उसे तलाश करने लगती है। इधर-उधर ढूँढ़ती हुई वह इंदिरा के पास आती है और तम्बूरे से कंगन निकाल लेती है। शर्मिन्दा होकर इंदिरा रोने लगती है। पद्मा से दासियाँ बहुत प्रसन्न हैं क्योंकि वह उन्हें पुरस्कार देती रहती है। वे सब इंदिरा से विमुख रहती हैं। लेकिन इसी समय ज्ञान सिंह आ जाता है और इस घटना का समाचार सुनकर इंदिरा को दोषी नहीं ठहराता। उसे इस घटना में धूर्तता और शरारत प्रतीत होती

है। वह इंदिरा की ओर से किसी भी प्रकार की बेईमानी का विचार तक मन में नहीं ला सकता। उसका व्यवहार देखकर दासियाँ भी उसी की हाँ में हाँ मिलाती हैं और रानी साहिबा पद्मा को कठोर शब्द कहती हैं। पद्मा दाँत पीसकर रूह जाती है।

इधर शाही महल की दीवार के नीचे हरिहर आत्मविस्मृत हुआ खड़ा है कि सम्भवतः इंदिरा की आवाज कानों में पड़ जाए। वह यहाँ से निराश होकर फिर इंदिरा की कुटिया में जाता है और उसकी एक-एक वस्तु को चूमता और रोता है।

दूसरे दिन महल में पुनः महफिल सजती है। आज महाराज साहब जरवल भी उपस्थित हैं। संयोग से सांगली के कुँअर साहब भी आए हुए हैं। इन चौदह-पंद्रह बरसों में उन्होंने बड़े-बड़े दुःख उठाए हैं। उनकी पत्नी का देहान्त हो गया है। पत्नी और पुत्री की याद में बहुत दुबला गए हैं लेकिन बनने-सँवरने का शौक अभी तक बना हुआ है। अब भी वही जयपुरी साफा है, वही नीची अचकन, वही अमृतसरी जूता, उसी प्रकार बाल सँवारे हुए, यद्यपि इस बाहरी सजावट के आवरण में रोता हुआ हृदय छिपा है। जिस समय इंदिरा तल्लीन होकर गाती है, उनकी आँखों से आँसू बह निकलते हैं। इंदिरा के चेहरे में उन्हें अपनी स्वर्गवासी पत्नी का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है।

उन्होंने जब पहली बार इंदिरा की माँ को नयी नवेली दुल्हन के रूप में देखा था उस समय वह बिल्कुल ऐसी ही थी। इतनी समानता उन्होंने आज तक किसी औरत में नहीं देखी। जब इंदिरा यहाँ से जाने लगती है तो वे उसके साथ कुछ दूर जाते हैं और अवसर पाकर उसका नाम और उसके माता-पिता का हाल पूछते हैं। इंदिरा अपने बचपन की घटना उन्हें बताती है। कुँअर साहब को विश्वास हो जाता है कि इंदिरा ही मेरी खोई हुई बेटी है। उनका हृदय सहसा उमंग से भर जाता है कि इसे गले लगा लें लेकिन लाज रोक देती है। क्या पता यह किस-किसके साथ रही, इस पर क्या-क्या बीती, वे इसे अपनी बेटी कैसे स्वीकार कर सकते हैं? इंदिरा भी ध्यान से उनके चेहरे को देखती है और उसे कुछ-कुछ याद आता है कि उसके पिता की सूरत इनसे मिलती थी, लेकिन वह भी लाज से यह सब प्रकट नहीं करती कि कहीं कुँअर साहब मना कर दें तो शर्मिन्दा न होना पड़े।

इंदिरा के कीर्तन से राजा साहब जरवल इतने प्रसन्न होते हैं कि उसे पाँच गाँव माफ कर देते हैं। इंदिरा उनके पाँवों पर गिरकर कृतज्ञता प्रकट करती है।

10

राजकुमार अपनी नाव सजाता है और इंदिरा को नदी में घुमाने के लिए ले जाता है। इंदिरा इस अवसर की प्रतीक्षा में है कि राजकुमार से हरिहर की सिफारिश करके उसे राजकवि के रूप में प्रतिष्ठित करा दे। इसलिए वहाँ से मन उचट जाने और हरिहर का बिछोह असहनीय होने पर भी वह जाने का नाम नहीं लेती। नदी की सैर में शायद वह अवसर हाथ आ जाए, इसलिए वह इस प्रस्ताव को प्रसन्नता से स्वीकार कर लेती है। नाव लहरों पर खेल रही है। इंदिरा हरिहर का एक पद गाने लगती है।

सहसा उसे किनारे पर खड़ा हरिहर दिखाई दे जाता है। उसके चेहरे से निराशा ऐसे बरस रही है मानो यह बिछोह स्थायी हो। इस प्रेम के पद से राजकुमार का दिल बेसुध हो जाता है। उसके सब्र का बाँध टूट जाता है। वह इंदिरा के समक्ष अपने आकुल-व्याकुल हृदय की कथा कह सुनाता है। वह अपना हृदय उसे दे बैठता है। अब इंदिरा को पता चलता है कि वह एक सुनहरे जाल में फँस गई है, अब हरिहर का नाम मुँह पर लाना कहर हो जाएगा, राजकुमार तत्काल हरिहर के लहू का प्यासा हो जाएगा।

वह मन में पछताती है कि बेकार में राजकुमार का निमन्त्रण स्वीकार किया। यह हवस का पहला कोड़ा है जो उस पर पड़ा। अब वह यह भी समझने लगी है कि यद्यपि राजकुमार उसके सामने भिखारी बना खड़ा है मगर वास्तव में वह उसकी कैद में है।

वह कहती है — राजकुमार, मैं दीन-हीन औरत हूँ, इस योग्य नहीं कि तुम्हारी रानी बनूँ। तुम बदनाम हो जाओगे और आश्चर्य नहीं कि राजा साहब और तुम्हारी माताजी भी तुमसे रुष्ट हो जाएँ। इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। मैं तुम्हें कष्ट में डालना नहीं चाहती।

राजकुमार — मैं तुम्हारे लिए सिंहासन को ठोकर मार दूँगा। इंदिरा, मुझे किसी की खुशी या नाराजगी की परवाह नहीं है। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत हूँ।

इंदिरा बहाना करती है कि उसने संन्यास-व्रत धारण कर लिया है और यदि उसने संकल्प तोड़ा तो उन महात्माजी को कितना कष्ट होगा जिन्हें वह अपना गुरु मानती है। उसका यह काम उन्हें परलोक में भी चैन से नहीं रहने देगा। वह राजकुमार का सम्मान करती है लेकिन उसके लिए प्यार करना निषिद्ध है और वह अपने संकल्प को तोड़ नहीं सकती।

राजकुमार — इंदिरा, तुम्हें मुझ पर तनिक भी दया नहीं आती?

इंदिरा — अपने संकल्प को तोड़कर मैं जीवित नहीं रूह सकती।

राजकुमार — ये सब बहाने हैं इंदिरा! क्या मैं मान लूँ कि तुम्हारे हृदय में किसी अन्य के लिए स्थान है?

इंदिरा — मैंने आपसे कह दिया, मैं संन्यासिनी हूँ।

राजकुमार — यह तुम्हारा आखिरी फैसला है?

इंदिरा — हाँ, आखिरी।

निराशा की दशा में राजकुमार अपनी कमर से तलवार निकालकर अपने सीने में घोंपना चाहता है। इंदिरा तेजी से उसका हाथ पकड़ लेती है।

राजकुमार — मुझे मर जाने दो इंदिरा। जब मैं तुम्हें पा नहीं सकता तो जिन्दगी बेकार है।

इंदिरा उसकी कमर में तलवार लगाती हुई बहलाने के लिए कहती है — आपको मेरे जैसी हजारों औरतें मिलेंगी। आपको एक गरीब का प्रेम मिल भी जाए तो आपको इससे सन्तोष नहीं होगा।

राजकुमार का चेहरा प्रसन्नता से खिल जाता है और कहता है — प्यार तो संकल्प और व्रत की चिन्ता नहीं करता।

इंदिरा — लेकिन प्यार छूमन्तर से पैदा होने वाली चीज भी तो नहीं। जो प्यार एक दृष्टि से पैदा हो सकता है वह एक दृष्टि में समाप्त भी हो सकता है। तुम राजकुमार हो। मुझे क्या भरोसा कि मुझसे अधिक रूपवती और सौन्दर्यवान औरत पाकर तुम मेरी ओर से आँखें नहीं फेर लोगे। फिर तो मैं कहीं की भी न रहूँगी। प्रिय-मिलन के लिए ईश्वर को छोड़कर यदि भाग्यहीन रहूँ तो क्या हो?

राजकुमार — हाँ, तुम्हारी यह शर्त मुझे स्वीकार है। इंदिरा, मुझे अवसर दो कि मैं तुम्हारे हृदय पर अपने प्यार का चिह्न अंकित कर सकूँ। लेकिन यदि तुम मुझसे मुँह मोड़कर चली गईं तो देख लेना, उसी दिन तुम्हें मेरे मरने की खबर मिलेगी।

इंदिरा देखती है कि हरिहर धीरे-धीरे नदी के किनारे से बस्ती की ओर चला जा रहा है। अपनी बेबसी और निराशा का विचार करके उसकी आँखें नम हो गईं।

11

पद्मा अपनी इच्छाओं का खून होते सरलता से नहीं देख सकती। वह इंदिरा के सम्बन्ध में खोज आरम्भ करती है कि शायद कोई

ऐसा सूत्र हाथ आ जाए जिसके आधार पर वह उसे राजकुमार की दृष्टि से गिरा दे। एक दिन वह उसके ठिकाने का पता पूछती-पूछती उसकी कुटिया तक जा पहुँचती है। वहाँ उसकी भेंट हरिहर से हो जाती है। बातों-बातों में वह हरिहर को इंदिरा की बेवफाई की कथा सुनाती है। उसने कई तस्वीरें बनवा ली हैं जिनमें राजकुमार के साथ इंदिरा का सैर करना, गाना-बजाना, पढ़ना-लिखना दिखाई देता है। वह कहती है कि वहाँ इंदिरा ऐसी प्रसन्न है मानो उसे सृष्टि की सम्पदा ही मिल गई हो, और तुम उसके वियोग में घुल रहे हो। ऐसी बेवफा औरत इसी योग्य है कि उसकी पोल खोल दी जाए ताकि वह अपना काला मुँह कहीं न दिखा सके। लेकिन इन बुरी बातों का हरिहर पर कोई प्रभाव नहीं होता। अन्ततः उधर से निराश होकर पद्मा एक दूसरा जाल फैलाती है। वह हरिहर को अपने साथ दरबार में लाती है और राजकुमार से उसका परिचय कराती है। राजकुमार उसकी कविता सुनकर बहुत प्रसन्न होता है। यह वही कविता है जो उसने इंदिरा के मुँह से सुनी है। राजकुमार उसका बहुत सम्मान करता है। पद्मा हरिहर के मुँह से ऐसे शब्द निकलवाना चाहती है जो उसके प्यार का भेद खोल दें और राजकुमार को पता चल जाए कि यह इंदिरा का प्रेमी है। लेकिन हरिहर इतना चौकन्ना है कि वह मुँह से ऐसा एक भी शब्द नहीं निकलने देता जिससे

उसका प्यार प्रकट हो जाय। राजकुमार इंदिरा की प्रशंसा करता है। हरिहर इस प्रकार सुनता है मानो उसने इंदिरा का नाम भी नहीं सुना। पद्मा उसी समय रनिवास में जाकर इंदिरा को अपने साथ लाती है। उसे विश्वास है कि आकस्मिक भेंट से दोनों अवश्य ही इतने हर्षित हो जाएँगे कि उस कमजोर नींव पर कोई भी भवन बना खड़ा किया जा सकेगा। लेकिन हरिहर को देखकर इंदिरा पराएपन का व्यवहार करती है और हरिहर भी उससे अधिक बात नहीं करता। तब पद्मा एक कवि-गोष्ठी आयोजित करती है और उसमें रियासत के बड़े-बड़े सुकुमार कवियों को आमंत्रित करती है। यह भी प्रस्ताव किया जाता है कि जिसकी कविता श्रेष्ठ होगी उसे राजकवि का पद प्रदान किया जाएगा। पद्मा को विश्वास है कि हरिहर की कविता ही सर्वोत्कृष्ट होगी इसलिए वह इंदिरा को निर्णायक बनाती है। राजकुमार भी बड़ी प्रसन्नता से इंदिरा को निर्णायक बनाया जाना स्वीकार करता है। अब इंदिरा को साफ दिखाई दे रहा है कि उसकी तबाही के सामान जुटाए जा रहे हैं। हरिहर की कविता निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ होगी और उसे विवश होकर उसी को श्रेष्ठ कहना पड़ेगा। हरिहर के पक्ष या समर्थन में मुँह से एक शब्द भी निकालना उसके लिए घातक विष बन सकता है। उसके निर्णय पर आपत्ति करना और हरिहर की कविता में दोष निकालकर राजकुमार के

मन में इंदिरा के प्रति संदेह उत्पन्न करना कुछ कठिन न होगा। वह चाहती है कि यदि अवसर मिले तो हरिहर को सावधान कर दे, लेकिन उसे इसका अवसर नहीं मिलता।

पद्मा कवि-गोष्ठी की तैयारियों में व्यस्त रहती है। नियत तिथि पर सभी कवि उपस्थित होते हैं, हरिहर भी आता है। नयी कविता की शर्त है। हरिहर ने कोई नयी कविता नहीं लिखी।

अन्य कवि अपनी कविताएँ सुनाते हैं। प्रशंसा का स्वर गूँज उठता है। अन्ततः जब हरिहर की बारी आती है तो वह स्पष्ट कह देता है — मैंने कोई नयी कविता नहीं लिखी।' उसने भी पद्मा के इन प्रयासों को अपनी चतुराई से ताड़ लिया है और उसके जाल में फँसना नहीं चाहता।

इंदिरा इसे दैवी सहायता समझकर मन ही मन परमात्मा को धन्यवाद देती है। एक दूसरे कवि को पुरस्कार तथा पद मिल जाता है और इंदिरा के प्रेम का रहस्य छिपा रूह जाता है। यहाँ से हरिहर प्रसन्नतापूर्वक विदा होता है। रनिवास में इंदिरा भी प्रसन्न व आनन्दित है, उसके लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है?

12

राजकुमार ज्ञान सिंह की राजगद्दी का उत्सव मनाया जा रहा है। शहर में दीपावली मनाई जा रही है। चौराहों पर भव्य द्वार बनाए गए हैं। मुख्य द्वार से चौक तक बिजली के दोमुँहे सुन्दर बल्ब लगाए गए हैं। किनारे के वृक्षों पर बिजली से जगमगाते अक्षरों में स्तुति वाक्य लिखे गए हैं। पण्डित लोग मुहूर्त देखते हैं। उसी समय ज्ञान सिंह महल से निकलकर भव्य मण्डप में आता है जो इसी उत्सव के लिए बनाया गया है। दरबारी और रईस लोग उपहार भेंट करते हैं। ज्ञान सिंह उठकर अपनी नीति की घोषणा करता है और शाही सेवकों तथा प्रजा को अपने कर्त्तव्य-पालन हेतु निर्देशित करता है। उसने आसामियों का आधा लगान माफ कर दिया है इसलिए प्रजा अत्यधिक प्रसन्न है। प्रसन्नता प्रकट करके सब उसे दुआएँ देते हुए विदा हो जाते हैं। फिर गरीबों में भोजन वितरित किया जाता है। बन्दियों को मुक्त करने का आदेश होता है। फिर सेना की सलामी और परेड होती है। बैंड बजता है। अफसरों को पदक और जागीरदारी मिलती है। फिर आतिशबाजियाँ छोड़ी जाती हैं। इसके पश्चात् ठाकुरद्वारे में कीर्तन होता है।

वहाँ इंदिरा के दर्शनों की लालसा में हरिहर आया है, लेकिन कीर्तन करने वालों में इंदिरा नहीं है। परम्परा के प्रतिकूल वेश्याओं को आमंत्रित नहीं किया गया। इस उत्सव में ज्ञान सिंह ने अनावश्यक खर्च करना अस्वीकार कर दिया है। शहर में चर्चा है कि इंदिरा का विवाह ज्ञान सिंह से होगा। ऐसी कृपालु, दीनों की पालक और सर्वप्रिय रानी मिलने से प्रत्येक छोटा-बड़ा प्रसन्न है।

कीर्तन के पश्चात् ज्ञान सिंह इंदिरा के पास जाता है और कहता है — इंदिरा, क्या अभी तुम्हारी परीक्षा पूरी नहीं हुई?

इंदिरा कहती है — अभी नहीं, मुझे इस प्रतिष्ठा के योग्य बनने दीजिए।

राजकुमार — इस उत्सव की स्मृति में प्यार का एक उपहार प्रस्तुत करता हूँ।

इंदिरा — अभी मेरे लिए प्यार का कोई उपहार वर्जित है।

राजकुमार — तुम बड़ी निर्दयी हो इंदिरा!

इंदिरा — और ऐसी निर्दयी औरत को आप अपनी रानी बनाना चाहते हैं? रानी को दयालु होना चाहिए।

राजकुमार — सारी दुनिया के लिए तो तुम दया की देवी हो लेकिन मेरे लिए पत्थर की मूरत।

ज्ञान सिंह अब इंदिरा के हाथों में है। वह आत्मा है तो ज्ञान सिंह शरीर। प्रजा के अधिकारों को इंदिरा एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं करती। आए दिन नये-नये फरमान जारी होते हैं जिनके द्वारा प्रजा की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए कोई न कोई नया अधिकार प्रदान किया जाता है। शाही खर्चे कम किए जाते हैं। शाही महल में भी वह ठाट-बाट नहीं है। सेवकों की एक पूरी पलटन थी, उन्हें हटा दिया गया है। रूपवान दासियों की भी एक फौज थी, उन्हें भी हटा दिया जाता है। प्रजा की आवश्यकताओं के लिए महलों के कई भाग पृथक् कर दिए जाते हैं। एक महल में पुस्तकालय खुल जाता है, दूसरे में औषधालय। एक पूरा भवन किसानों और मजदूरों के नाम कर दिया जाता है, जहाँ उनकी पंचायतें होती हैं और विभिन्न प्रकार के कृषि उपकरणों की प्रदर्शनी लगती है। सेना के एक बड़े भाग को भंग कर दिया जाता है। उसके स्थान पर प्रजा में से युवा चुन लिए जाते हैं और तत्काल राष्ट्रीय सेना सुसज्जित कर दी जाती है। युवाओं के लिए व्यायामशालाएँ निर्मित की जाती हैं। ज्ञान सिंह वैभव के वातावरण में पला हुआ राजकुमार है। उसका आदेश प्रजा के लिए कानून हो सकता था, अब वह पग-पग पर स्वयं ही

प्रतिबन्ध आरोपित करता है। यह सब इंदिरा की प्रेरणा का प्रभाव है। इंदिरा जो राजाज्ञा लिखती है, वह उस पर आँखें मूँदकर हस्ताक्षर कर देता है।

इधर अमीरों और दरबारियों में बड़ी चिन्ता व्याप्त हो जाती है। उनके विचार में रियासत नष्ट हुई जाती है। ज्ञान सिंह की यही दशा रही तो थोड़े ही दिनों में अमीरों का खात्मा हो जाएगा। आजादी की इस बाढ़ को रोकने के षडयन्त्र किए जाते हैं। पद्मा इस षड्यंत्र की प्राणवायु है। ये लोग कटी-छँटी सेना के सिपाहियों और बर्खास्त किए गए सरकारी सेवकों में अफवाहें फैलाते हैं। अमीरों में भी विद्रोह उत्पन्न करते हैं। ज्ञान सिंह को तलवार की नोक पर अधीन करके किसी दूसरे राजा को गद्दी पर बैठाना चाहते हैं। इस षड्यन्त्र से पद्मा का उद्देश्य मात्र यही है कि इंदिरा अपमानित व बदनाम हो। वह उसको बदनाम करती है और इंदिरा को ही इन समस्त परिवर्तनों का एकमात्र कारण ठहराती है। इसलिए विद्रोहियों का यह समूह उसके प्राणों का प्यासा हो जाता है। सशस्त्र विद्रोह की तैयारियाँ की जा रही हैं।

ज्ञान सिंह और इंदिरा शाही महल के एक छोटे से कमरे में बैठे शतरंज खेल रहे हैं। कमरे में कोई सजावट या बनावट नहीं है। आज इंदिरा ने यह शर्त लगाई है कि यदि वह जीत जाएगी तो जो चाहेगी राजा से माँग लेगी, उसके देने में राजा को कोई

आपत्ति नहीं होगी; और राजा को भी यही अधिकार होगा। अपने-अपने मन में दोनों प्रसन्न हैं। ज्ञान सिंह की प्रसन्नता की सीमा नहीं है, आज वह अपनी सफलता के विश्वास से फूला नहीं समा रहा है। दोनों खूब मन लगाकर खेल रहे हैं। पहले राजा साहब बढ़त लेते हैं और इंदिरा के कई मोहरे पीट लेते हैं। उनकी प्रसन्नता क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती जाती है। अचानक बाजी पलट जाती है, राजा के बादशाह पर शह पड़ जाती है और उसका वजीर पिट जाता है। फिर तो एक-एक करके उसके सभी मोहरे गायब हो जाते हैं और वह हार जाता है। उसके मुँह पर निराशा छा जाती है। उसी समय इंदिरा एक राजाज्ञा निकालती है और राजा से उस पर हस्ताक्षर करने का निवेदन करती है। झुकी हुई दृष्टि से राजा उस राजाज्ञा को देखता है। अनाज का आयात कर माफ कर दिया गया है जिससे शाही राजस्व में एक महत्त्वपूर्ण राशि की कमी हो जाती है। रियासत में बहुत कम अनाज उत्पन्न होता है, अधिकांश अनाज दूसरे देशों से आता है। इस पर आयात कर के कारण अनाज महँगा हो जाने से प्रजा को कष्ट होता था। इंदिरा गरीबों को सस्ता अनाज उपलब्ध कराने की चिन्ता में थी और अवसर पाकर उसने आज यह राजाज्ञा प्रस्तुत की। ज्ञान सिंह को संकोच तो होता है लेकिन वह जबान हार चुका है। राजाज्ञा पर हस्ताक्षर कर देता है।

इसी समय बाहर शोर मच जाता है। एक संतरी दौड़ा हुआ आता है और सूचना देता है कि विद्रोहियों ने शाही महल को घेर लिया है और अन्दर घुसने की चेष्टा कर रहे हैं।

13

ज्ञान सिंह का मुँह क्रोध से लाल हो जाता है। वह तत्काल हथियारों से सुसज्जित होकर इंदिरा से विदा लेता है और परकोटे पर चढ़कर विद्रोहियों को ऊँची आवाज में सम्बोधित करके विद्रोह का कारण पूछता है।

नीचे से एक आदमी उत्तर देता है — हम यह अत्याचार सहन नहीं कर सकते। इंदिरा हमारी तबाही का कारण है, वह हमारी रानी नहीं बन सकती।

ज्ञान सिंह इंदिरा के उन उपकारों का वर्णन करता है जो उसने देश पर किए हैं, लेकिन नीचे से वही उत्तर आता है — इंदिरा हमारी तबाही का कारण है, वह हमारी रानी नहीं बन सकती’, मानो किसी ग्रामोफोन की आवाज हो।

तब ज्ञान सिंह वह राजाज्ञा निकालकर पढ़नी प्रारम्भ करता है जिस पर उसने अभी-अभी हस्ताक्षर किए हैं, लेकिन विद्रोहियों पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। फिर वही रटन लगाई जाती है — इंदिरा हमारी रानी नहीं बन सकती, वह हमारी तबाही का कारण है।

इसके साथ ही विद्रोही लोग सीढ़ियों से परकोटे पर चढ़ने की कोशिश करते हैं। मुख्य द्वार बन्द कर दिया जाता है।

अब ज्ञान सिंह कुपित होकर धमकियाँ देता है लेकिन चेतावनी की भाँति उसकी धमकियाँ भी भीड़ पर प्रभाव नहीं डालतीं। वे परकोटे पर चढ़ने की निरन्तर कोशिश करते हैं।

ज्ञान सिंह आवेश में आकर खतरे के घंटे के पास जाता है और उसे जोर से बजाता है। सेना के सिपाही सुनते तो हैं लेकिन निकलते नहीं। वह पुनः घंटा बजाता है। सिपाही तैयार होते हैं और शीघ्रता से हथियार इकट्ठे करने लगते हैं। तीसरा घंटा बजता है, पूरी सेना निकल पड़ती है।

पद्मा उसी समय आकर उन्हें बहकाती है — नादानो! क्यों अपने पाँवों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारते हो। क्या अभी तक तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं? तुम्हारे कितने ही भाई निकाल दिए गए और आज वे दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं। बहुत जल्द तुम लोगों की

बारी भी आई जाती है। यदि यही दिन-रात हैं तो दो-चार महीनों में सबके सब निकाल दिए जाओगे। ये विद्रोही कौन हैं? ये तुम्हारे ही भाई हैं जिन्हें ज्ञान सिंह की नयी बिन-बियाही रानी इंदिरा ने निकाल दिया है। एक बाजारू वेश्या तुम पर इस तरह राज कर रही है, क्या तुम लोग इसे सहन कर सकते हो?

इस समय इंदिरा के पास आकर पद्मा उसे मित्रवत् सलाह देती है — 'भाग जाओ इंदिरा, अन्यथा तुम्हारी जान खतरे में है।' इंदिरा इस अवसर को अच्छा समझती है और पद्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है। पद्मा उसे एक गुप्त द्वार से ले जाती है जो शहर के बाहर एक मंदिर में खुलता है। वह सुरंग ऐसे ही कठिन अवसर के लिए बनाई गई है। पद्मा ने पहले ही हरिहर को बुला लिया है। उसके साथ दो घोड़े हैं। चारों ओर अंधेरा है। हरिहर एक घोड़े पर इंदिरा को सवार करा देता है और दूसरे पर स्वयं बैठता है और दोनों शहर की अंधेरी सड़कों पर होते हुए निकल जाते हैं।

इसी समय पद्मा परकोटे पर चढ़कर ज्ञान सिंह के बराबर में खड़ी होकर कहती है — बहादुरो! मैं तुम्हें शुभ सूचना देती हूँ कि अब इंदिरा इस महल में नहीं है। तुममें से कोई एक विश्वसनीय आदमी शाही किले में आकर तसल्ली कर सकता है। वह जिस गुमनामी से आई थी, फिर उसी में चली गई है। अब तुम लोग

वापस लौट जाओ। मैं तुम लोगों को विश्वास दिलाती हूँ कि तुम लोगों के सिर से ये आदेश हटा लिए जाएँगे।

ज्ञान सिंह घायल पक्षी की भाँति एक ठंडी साँस लेकर गिर पड़ता है। विद्रोहियों की भीड़ लौट जाती है और ज्ञान सिंह को इस विद्रोह से छुटकारा दिलाने का श्रेय पद्मा को मिलता है। निराश स्वर से ज्ञान सिंह पूछता है — इंदिरा कहाँ चली गई?

पद्मा — जहाँ से आई थी वहीं चली गई। यदि तुम समझते हो कि उसे तुमसे प्यार था तो तुम गलती पर हो। वह यहाँ मजबूरी में पड़ी थी। उसका प्रेमी वही अभागा कवि हरिहर है, वह उसी पर जान देती है। उसको कोई पद दिलाने के लिए वह यहाँ पड़ी हुई थी। जब उसने देखा कि यहाँ खतरा है तो भाग निकली। बेवफा थी।

मृतप्राय सी दशा में ज्ञान सिंह अन्दर आया और आवेश में इंदिरा की प्रत्येक वस्तु को पैरों से कुचल डालता है। प्यार असफल होने पर पश्चात्ताप का रूप धारण कर लेता है। दीवारों पर इंदिरा के कई चित्र लगे हुए हैं। ज्ञान सिंह उन चित्रों को उतारकर टुकड़े-टुकड़े कर डालता है।

इस समय धैर्य और क्षमा की देवी बनी हुई पद्मा बाहर से तो उसके क्रोध को शान्त कर रही है लेकिन चोट करने वाली ऐसी-

ऐसी बातें कहती है कि ज्ञान सिंह की ईर्ष्या की आग और भी भड़क उठती है। वह तम्बूरे के सैकड़ों टुकड़े कर डालता है। अचानक उसे एक बात याद आ जाती है। वह तत्काल बाहर आता है और कई विश्वस्त सिपाहियों को इंदिरा का पीछा करने के लिए भेज देता है और आदेश देता है कि शहर की नाकाबन्दी कर दी जाए।

फिर अन्दर जाकर इंदिरा की पूजा की वस्तुएँ और ठाकुरजी का सिंहासन — सब उठा-उठाकर फेंक देता है। जो दासियाँ इंदिरा की सेवा में नियुक्त थीं, उन्हें निकाल देता है और एक उन्माद की सी दशा में पाँव पटकता हुआ इंदिरा को बार-बार कोसता है — धूर्त्ता, छलिया, जादूगरनी, बेवफा, कपटी।

पद्मा उसे ठंडे पानी का गिलास लाकर देती है। वह गिलास को एक ही साँस में खाली करके पटक देता है। उसकी आँखों से चिंगारियाँ निकल रही हैं, नथुने फड़क रहे हैं। वह पद्मा की ओर से विनम्र हो जाता है। वह उसे सहिष्णुता और वफा की देवी मानने लगता है। उपकृत होने का भाव भी कुछ कम नहीं है। यदि पद्मा आड़े न आई होती तो विद्रोहियों ने महल पर अधिकार कर लिया होता और पता नहीं उसके सिर पर क्या विपत्ति आती। वह उससे अपनी पिछली गलतियों की क्षमा माँगता है। और पहली बार उसके हृदय में उसके प्यार की झलक उमड़ने

लगती है। इस निराशा और शोक की दशा में पद्मा ही उसे सद्गति की देवी दिखाई देती है। वह उसे गले से लगा लेता है। प्रेम के आवेग में पद्मा उसके कंधे पर सिर रखकर रोने लगती है।

14

घोड़ों पर सवार इंदिरा और हरिहर प्राचीर के एक द्वार पर पहुँचते हैं। द्वार बन्द है। दूसरे द्वार पर आते हैं, वह भी बन्द है। हरिहर को पता है कि प्राचीर में एक दरार है, जिस पर घास-फूस जमी हुई है और शायद किसी को इस दरार की खबर भी न हो। दोनों उस दरार में घोड़े डाल देते हैं और काँटों से उलझते, घास-फूस के ढेरों को हटाते कठिनाई से दरार को पार करते हैं, लेकिन बाहर की ओर प्राचीर से लगी हुई नदी आती है। विवश दोनों अपने घोड़े नदी में डाल देते हैं और तैरते हुए नदी से पार हो जाते हैं। दूसरी ओर पहुँचकर दोनों तनिक साँस लेते हैं और फिर भागते हैं। बहुत दूर चलने के बाद उन्हें एक मन्दिर मिलता है। दोनों वहीं घोड़े खोल देते हैं और रात्रि व्यतीत करते हैं। प्रातःकाल वहाँ से दोनों पैदल ही चल देते हैं और दोपहर

होते-होते एक बड़े गाँव में जा पहुँचते हैं। वहाँ गाँव का जमींदार बारात लेकर अपना विवाह करने जा रहा है, हजारों आदमी इकट्ठा हैं। दूसरे गाँवों के लोग भी तमाशा देखने आए हैं।

बारात चलने को तैयार है। दूल्हा घर से निकलकर मोटर पर बैठता है और मोटर चलने को ही है कि एक औरत आकर मोटर के सामने लेट जाती है। यह जमींदार साहब की पहली पत्नी है जिसे उन्होंने पन्द्रह वर्षों से छोड़ रखा है। आज वे अपना विवाह करने जा रहे हैं तो पत्नी उनके रास्ते में आ जाती है। पति-पत्नी में कुछ वाद-विवाद की नौबत आती है। पति पत्नी को धमकाकर रास्ते से हट जाने का आदेश देता है। पत्नी पर कोई प्रभाव नहीं होता। तब वह क्रोध में आकर मोटर चला देता है, पत्नी कुचली जाती है। उस समय हजारों आदमी क्रोध में आकर जमींदार साहब पर टूट पड़ते हैं और उसे मार डालते हैं। इंदिरा और हरिहर को दुःख होता है कि कुछ पहले यहाँ क्यों न आ पहुँचे नहीं तो समझा-बुझाकर दोनों का मिलन करा देते। कुछ देर उस गाँव में ठहरकर दोनों फिर वहाँ से आगे बढ़ जाते हैं, जहाँ नाच हो रहा है। वहाँ इंदिरा गाती है और उन्हीं लोगों के साथ रात बिताती है।

कई दिन के बाद दोनों उस रियासत की सीमाओं से बाहर निकल जाते हैं और सांगली की रियासत में जा पहुँचते हैं। दोनों यहीं

एक गाँव में रहने लगते हैं। दोनों गाँव की सेवा करते हैं और उनकी सेवा से गाँव वाले बहुत प्रसन्न हैं।

गाँव में एक ठाकुरद्वारा है, वहीं दोनों रात में कीर्तन करते हैं। उनकी सेवा और भक्ति की प्रसिद्धि आसपास के गाँवों में फैल जाती है और भक्तों की संख्या बढ़ने लगती है। उन किसानों की दृष्टि में ये दोनों दैवी शक्तियाँ हैं और वे उनकी प्राणपन से अर्चना करते हैं। गीत तथा कविता के इस संसार में दोनों ईश्वरीय अस्तित्व के दर्शन करते हैं और सांसारिक मलिनता और इच्छाएँ उनके मन से निकल जाती हैं। उन्हें हरेक वस्तु में एक ही वास्तविकता के दर्शन होने लगते हैं। कभी-कभी हरिहर झरने के किनारे जा निकलता है और उसके संगीत में ईश्वरीय ध्वनि सुनता है और उसका हृदय आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण हो जाता है। कभी किसी जंगली फूल को देखकर वह मस्ती में आ जाता है और उसमें ईश्वर के दर्शन करता है।

एक दिन सांगली के कुँअर साहब शिकार खेलने आते हैं। उनके साथ बंदूकची, शिकारी आदि भी डेरे लिए आ पहुँचते हैं। संध्याकाल है, कुँअर साहब अपने हाथी पर गाँव में आते हैं और शिकार की तैयारियाँ होने लगती हैं। उसी समय इंदिरा उनके सामने पहुँचकर एक आध्यात्मिक पद गाती है।

कुँअर साहब के हृदय में लड़की का प्यार हरा हो जाता है। जब उन्होंने पहली बार इंदिरा को देखा था तो उसे पहचान गए थे लेकिन उस दशा में उसे अपनी लड़की स्वीकार करने का उन्हें साहस न हुआ था। तब से उन्हें निरन्तर अपनी बेटी की स्मृति बेचैन करती रहती थी लेकिन इस मध्य उनका प्यार इन विचारों पर हावी हो चुका है। अब वे सहन नहीं कर पाते और इंदिरा को सीने से लगाकर कहते हैं — 'तू मेरी खोई हुई प्यारी बेटी है।' वे उससे अपने साथ चलने का आग्रह करते हैं लेकिन हरिहर वैभव और समृद्धि के जाल में फँसना नहीं चाहता। उसे आशंका होती है कि कहीं वैभव में पड़कर इंदिरा को ही न खो बैठे। वह इंदिरा से कुछ नहीं कहता लेकिन उसके हाव-भाव से उसकी मनोदशा प्रकट हो जाती है और इंदिरा अपने पिता के साथ जाने से मना कर देती है। मन्दिर के सामने झोंपड़ी में दोनों बैठे हुए हैं। घर में कोई सामान नहीं। उधर शाही महल में वैभव है, प्रतिष्ठा तथा नौकर-चाकर हैं, लेकिन इंदिरा यह सब अपने प्यार पर न्योछावर कर देती है।

इंदिरा को महल से निकालकर और उसकी ओर से निश्चिन्त होकर कुछ दिनों से ईर्ष्या के कारण नेपथ्य में चली गई पद्मा की स्वाभाविक सज्जनता प्रकट हो जाती है और वह प्राणपन से ज्ञान सिंह की सेवा करती है। इस आशा तथा शोक की दशा में यदि वह कुछ खाता है तो उसी के आग्रह से, घूमने जाता है तो उसी के कहने से, रियासत का कामकाज देखता है तो उसी के संकेत से। वह कभी गीत गाकर, कभी कहानी सुनाकर उसका मनोरंजन करती है। लेकिन प्रायः रातों में राजा की नींद उचट जाती है और वह इंदिरा को याद करके बेचैन हो जाता है। तब उसके सीने में ईर्ष्या की आग भड़क उठती है। इंदिरा किसी पराए की होकर रहे, यह विचार उसके लिए असहनीय है। वह तपस्विनी बनकर रहती तो सम्भवतः उसके चरणों की धूल मस्तक पर धरता लेकिन वह पराए के पार्श्व में है, यह सोचकर उसके तन-बदन में आग लग जाती है।

ज्ञान सिंह के भेदिए और जासूस चारों ओर फैले हुए हैं। एक दिन उसे सूचना मिलती है कि इंदिरा सांगली के एक गाँव में है। ज्ञान सिंह उसी समय कुछ परखे हुए सिपाहियों और जान छिड़कने वाले मित्रों को साथ लेकर इंदिरा और हरिहर की खोज में चल पड़ता है। पद्मा उसे रोकती है, मिन्नतें करती है लेकिन वह तनिक भी परवाह नहीं करता। अन्ततः विवश होकर वह भी

उसके साथ चल पड़ती है। सभी घोड़ों पर सवार हैं और डबल चाल चल रहे हैं। कठिन पहाड़ी रास्ता है। ज्ञान सिंह और पद्मा अपने साथ वालों से बहुत आगे निकल जाते हैं। अचानक उनका सामना कई सशस्त्र डाकुओं से हो जाता है। अपने पिस्तौल से पद्मा दो आदमियों को नरक का मार्ग दिखा देती है, शेष डाकू भाग खड़े होते हैं। कई दिन पश्चात् यह जत्था उस गाँव में पहुँच जाता है जहाँ इंदिरा और हरिहर शान्ति का जीवन जी रहे हैं।

बात की बात में खबर फैल जाती है कि राजा ज्ञान सिंह इंदिरा और हरिहर को बन्दी बनाने के लिए चढ़ आए हैं। आसपास के किसान लाठियाँ, गंडासे और कुल्हाड़े लेकर आते हैं। इंदिरा और हरिहर दोनों दलों के बीच में आकर खड़े हो जाते हैं। उन्हें देखते ही ज्ञान सिंह तलवार खींचकर उन पर झपटता है। इंदिरा और हरिहर वहीं सिर झुकाकर बैठ जाते हैं और परमात्मा का ध्यान करने लगते हैं। हरिहर की गर्दन पर तलवार पड़ने ही वाली है कि पद्मा आ जाती है और लपककर राजा के हाथ से तलवार छीन लेती है। दोनों प्रेम-दीवानों की बहादुरी और समर्पण देखकर ज्ञान सिंह की आँखें खुल जाती हैं। सहसा उसके हृदय में उस प्रकाश का प्राकट्य होता है जिसके समक्ष दुर्बलताएँ और वासनाओं की उद्दंडताएँ नष्ट हो जाती हैं। वह एक मिनट तक

चुप खड़ा रहता है, फिर इंदिरा के पाँवों पर गिर पड़ता है। पद्मा राजा साहब को उनके जीवन का अन्त कर देने वाले दुष्कर्म से बचाकर उनका मन जीत लेती है।

एक क्षण में ज्ञान सिंह इंदिरा के पाँवों से उठकर पद्मा को गले लगा लेता है। इंदिरा भी पद्मा को सीने से लगा लेती है। फिर हरिहर और ज्ञानसिंह आलिंगनबद्ध हो जाते हैं।

[उर्दू से — आखिरी तोहफा' 1934 उर्दू कहानी-संग्रह में संकलित।]

वासना की कड़ियाँ

बहादुर, भाग्यशाली क़ासिम मुलतान की लड़ाई जीतकर घमंड के नशे से चूर चला आता था। शाम हो गयी थी, लश्कर के लोग आरामगाह की तलाश मे नज़रें दौड़ाते थे, लेकिन क़ासिम को अपने नामदार मालिक की ख़िदमत में पहुँचने का शौक उड़ाये लिये आता था। उन तैयारियों का ख़याल करके जो उसके स्वागत के लिए दिल्ली में की गयी होंगी, उसका दिल उमंगों से भरपूर हो रहा था। सड़कें बन्दनवारों और झंडियों से सजी होंगी, चौराहों पर नौबतखाने अपना सुहाना राग अलापेंगे, ज्योंही मैं सरे शहर के अन्दर दाखिल हूँगा। शहर में शोर मच जाएगा, तोपें अगवानी के लिए जोर-शोर से अपनी आवाजें बुलंद करेंगी। हवेलियों के झरोखों पर शहर की चांद जैसी सुन्दर स्त्रियाँ आँखें गड़ाकर मुझे देखेंगी और मुझ पर फूलों की बारिश करेंगी। जड़ाऊ हौदों पर दरबार के लोग मेरी अगवानी को आयेंगे। इस शान से दीवाने खास तक जाने के बद जब मैं अपने हुज़ूर की ख़िदमत में पहुँचूँगा तो वह बाँहे खोले हुए मुझे सीने से लगाने के लिए उठेंगे और मैं बड़े आदर से उनके पैरों को चूम लूँगा।

आह, वह शुभ घड़ी कब आयेगी? क़ासिम मतवाला हो गया, उसने अपने चाव की बेसुधी में घोड़े को एड़ लगायी।

कासिम लश्कर के पीछे था। घोड़ा एड़ लगाते ही आगे बढा, कैदियों का झुण्ड पीछे छूट गया। घायल सिपाहियों की डोलियाँ पीछे छूटीं, सवारों का दस्ता पीछे रहा। सवारों के आगे मुलतान के राजा की बेगमों और मैं उन्हें और शहजादियों की पनसें और सुखपाल थे। इन सवारियों के आगे-पीछे हथियारबन्द ख्व़ाजासराओं की एक बड़ी जमात थी। क़ासिम अपने रौब में घोड़ा बढाये चला आता था। यकायक उसे एक सजी हुई पालकी में से दो आँखें झाँकती हुई नजर आयीं। क़ासिम ठिठक गया, उसे मालूम हुआ कि मेरे हाथों के तोते उड़ गये, उसे अपने दिल में एक कंपकंपी, एक कमजोरी और बुद्धि पर एक उन्माद-सा अनुभव हुआ। उसका आसन खुद-ब-खुद ढीला पड़ गया। तनी हुई गर्दन झुक गयी। नजरें नीची हुईं। वह दोनों आँखें दो चमकते और नाचते हुए सितारों की तरह, जिनमें जादू का-सा आकर्षण था, उसके आदिल के गोशे में बैठीं। वह जिधर ताकता था वहीं दोनों उमंग की रोशनी से चमकते हुए तारे नजर आते थे। उसे बर्छी नहीं लगी, कटार नहीं लगी, किसी ने उस पर जादू नहीं किया, मंतर नहीं किया, नहीं उसे अपने दिल में इस वक्त एक मजेदार बेसुधी, दर्द की एक लज्जत, मीठी-मीठी-सी एक कैफ़ियत

और एक सुहानी चुभन से भरी हुई रोने की-सी हालत महसूस हो रही थी। उसका रोने को जी चाहता था, किसी दर्द की पुकार सुनकर शायद वह रो पड़ता, बेताब हो जाता। उसका दर्द का एहसास जाग उठा था जो इश्क की पहली मंजिल है।

क्षण-भर बाद उसने हुक्म दिया — आज हमारा यहीं कयाम होगा।

2

आधी रात गुजर चुकी थी, लश्कर के आदमी मीठी नींद सो रहे थे। चारों तरफ़ मशालें जलती थीं और तिलासे के जवान जगह-जगह बैठे जम्हाइयाँ लेते थे। लेकिन क़ासिम की आँखों में नींद न थी। वह अपने लम्बे-चौड़े पुरलुत्फ़ ख़ेमे में बैठा हुआ सोच रहा था — क्या इस जवान औरत को एक नजर देख लेना कोई बड़ा गुनाह है? माना कि वह मुलतान के राजा की शहजादी है और मेरे बादशाह अपने हरम को उससे रोशन करना चाहते हैं लेकिन मेरी आरजू तो सिर्फ इतनी है कि उसे एक निगाह देख लूँ और वह भी इस तरह कि किसी को खबर न हो। बस। और मान लो यह गुनाह भी हो तो मैं इस वक्त वह गुनाह करूँगा।

अभी हजारों बेगुनाहों को इन्हीं हाथों से क़त्ल कर आया हूँ। क्या खुदा के दरबार में गुनाहों की माफ़ी सिर्फ़ इसलिए हो जाएगी कि बादशाह के हुक्म से किये गये? कुछ भी हो, किसी नाज़नीन को एक नजर देख लेना किसी की जान लेने से बड़ा गुनाह नहीं। कम से कम मैं ऐसा नहीं समझता।

क़ासिम दीनदार नौजवान था। वह देर तक इस काम के नैतिक पहलू पर ग़ौर करता रहा। मुलतान को फ़तेह करने वाला हीरो दूसरी बाधाओं को क्यों खयाल में लाता?

उसने अपने खेमे से बाहर निकलकर देखा, बेगमों के खेमे थोड़ी ही दूर पर गड़े हुए थे। क़ासिम ने जान-बूझकर अपना खेमा उसके पास लगाया था। इन खेमों के चारों तरफ़ कई मशालें जल रही थीं और पाँच हब्शी ख्वाजासरा रंगी तलवारें लिये टहल रहे थे। कासिम आकर मसनद पर लेट गया और सोचने लगा — इन कमबख्तों को क्या नींद न आयेगी? और चारों तरफ़ इतनी मशाले क्यों जला रक्खी हैं? इनका गुल होना जरूरी है। इसलिए पुकारा — मसरूर।

–हुज़ुर, फ़रमाइए?

–मशालें बुझा दो, मुझे नींद नहीं आती।

–हुज़ूर, रात अंधेरी है।

– हाँ।

– जैसी हुज़ूर की मर्जी।

ख़्वाजासरा चला गया और एक पल में सब की सब मशालें गुल हो गयीं, अंधेरा छा गया।

थोड़ी देर में एक औरत शहजादी के खेमे से निकलकर पूछा — मसरूर, सरकमार पूछती हैं, यह मशालें क्यों बुझा दी गयीं?

मसरूर बोला — सिपहदार साहब की मर्जी। तुम लोग होशियार रहना, मुझे उनकी नियत साफ़ नहीं मालूम होती।

3

कासिम उत्सुकता से व्यग्र होकर कभी लेटता था, कभी उठ बैठता था, कभी टहलने लगता था। बार-बार दरवाजे पर आकर देखता, लेकिन पांचों ख़्वाजासरा देंवों की तरह खडें नजर आते थे। क़ासिम को इस वक्त यही धुन थी कि शाहजादी का दर्शन क्योंकर हो। अंजाम की फ़िक्र, बदनामी का डर और शाही गुस्से का ख़तरा उस पुरज़ोर ख्वाहिश के नीचे दब गया था।

घड़ियाल ने एक बजाया। क़ासिम यों चौंक पड़ा गोया कोई अनहोनी बात हो गयी। जैसे कचहरी में बैठा हुआ कोई फ़रियाद अपने नाम की पुकार सुनकर चौंक पड़ता है। ओ हो, तीन घंटों से सुबह हो जाएगी। खेमे उखड़ जाएगें। लश्कर कूच कर देगा। वक्त तंग है, अब देर करने की, हिचकचाने की गुंजाइश नहीं। कल दिल्ली पहुँच जायेंगे। अरमान दिल में क्यों रह जाये, किसी तरह इन हरामखोर ख्वाजासराओं को चकमा देना चाहिए। उसने बाहर निकल आवाज़ दी — मसरूर।

–हुज़ूर, फ़रमाइए।

–होशियार हो न?

–हुज़ूर पलक तक नहीं झपकी।

–नींद तो आती ही होगी, कैसी ठंडी हवा चल रही है।

–जब हुज़ूर ही ने अभी तक आराम नहीं फ़रमाया तो गुलामों को क्योंकर नींद आती।

–मै तुम्हें कुछ तकलीफ़ देना चाहता हूँ।

–कहिए।

–तुम्हारे साथ पाँच आदमी है, उन्हें लेकर जरा एक बार लश्कर का चक्कर लगा आओ। देखो, लोग क्या कर रहे हैं। अक्सर

सिपाही रात को जुआ खेलते हैं। बाज आस-पास के इलाक़ों में जाकर ख़रमस्ती किया करते हैं। जरा होशियारी से काम करना।

मसरूर — मगर यहाँ मैदान खाली हो जाएगा।

क़ासिम — मे तुम्हारे आने तक खबरदार रहूँगा।

मसरूर — जो मर्जी हुजूर।

क़ासिम — मैंने तुम्हें मोतबर समझकर यह ख़िदमत सुपुर्द की है, इसका मुआवजा इंशाअल्ला तुम्हें साकर से अता होगा।

मसरूँम ने दबी ज़बान से कहा — बन्दा आपकी यह चालें सब समझता है। इंशाअल्ला सरकार से आपको भी इसका इनाम मिलेगा। और तब जोर बोला — आपकी बड़ी मेहरबानी है।

एक लम्हें में पाँचों ख्वाजासरा लश्कर की तरफ़ चले। क़ासिम ने उन्हें जाते देखा। मैदान साफ़ हो गया। अब वह बेधड़क खेमें में जा सकता था। लेकिन अब क़ासिम को मालूम हुआ कि अन्दर जाना इतना आसान नहीं है जितना वह समझा था। गुनाह का पहलू उसकी नजर से ओझल हो गया था। अब सिर्फ ज़ाहिरी मुश्किलों पर निगाह थी।

4

क़ासिम दबे पाँव शहज़ादी के खेमे के पास आया, हालांकि दबे पाँव आने की जरूरत न थी। उस सन्नाटे में वह दौड़ता हुआ चलता तो भी किसी को खबर न होती। उसने ख़ेमे से कान लगाकर सुना, किसी की आहट न मिली। इतमीनान हो गया। तब उसने कमर से चाकू निकाला और काँपते हुए हाथों से खेमे की दो-तीन रस्सियाँ काट डालीं। अन्दर जाने का रास्ता निकल आया। उसने अन्दर की तरफ़ झाँका।

एक दीपक जल रहा था। दो बांदियाँ फ़र्श पर लेटी हुई थीं और शहज़ादी एक मख़मली गद्दे पर सो रही थी। क़ासिम की हिम्मत बढ़ी। वह सरककर अन्दर चला गया, और दबे पाँव शहजादी के क़रीब जाकर उसके दिल-फ़रेब हुस्न का अमृत पीने लगा। उसे अब वह भय न था जो ख़ेमे में आते वक्त हुआ था। उसने जरूरत पड़ने पर अपनी भागने की रूह सोच ली थी।

क़ासिम एक मिनट तक मूरत की तरह खड़ा शहजादी को देखता रहा। काली-काली लटें खुलकर उसके गालों को छिपाये हुए थी। गोया काले-काले अक्षरों में एक चमकता हुआ शायराना खयाल छिपा हुआ था। मिट्टी की अस दुनिया में यह मजा, यह

घुलावट, वह दीप्ति कहाँ? कासिम की आँखें इस दृश्य के नशे में चूर हो गयीं। उसके दिल पर एक उमंग बढ़ाने वाला उन्माद सा छा गया, जो नतीजों से नहीं डरता था। उत्कण्ठा ने इच्छा का रूप धारण किया। उत्कण्ठा में अधीरता थी और आवेश, इच्छा में एक उन्माद और पीड़ा का आनन्द। उसके दिल में इस सुन्दरी के पैरों पर सर मलने की, उसके सामने रोने की, उसके क़दमों पर जान दे देने की, प्रेम का निवेदन करने की, अपने गम का बयान करने की एक लहर-सी उठने लगी वह वासना के भँवर मे पड़ गया।

5

क़ासिम आध घंटे तक उस रूप की रानी के पैरो के पास सर झुकाये सोचता रहा कि उसे कैसे जगाऊँ। ज्यों ही वह करवट बदलती वह ड़र के मारे थरथरा जाता। वह बहादुरी जिसने मुलतान को जीता था, उसका साथ छोड़े देती थी।

एकाएक कासिम की निगाह एक सुनहरे गुलाबपोश पर पड़ी जो करीब ही एक चौकी पर रखा हुआ था। उसने गुलाबपोश उठा लिया और खड़ा सोचता रहा कि शहज़ादी को जगाऊँ या न

जगाऊँ या न जगाऊँ? सोने की डली पड़ी हुई देखकर हम उसके उठाने में आगा-पीछा होता है, वही इस वक्त उसे हो रहा था। आखिरकार उसने कलेजा मजबूत करके शहजादी के कान्तिमान मुखमंण्डल पर गुलाब के कई छींटे दिये। दीपक मोतियों की लड़ी से सज उठा।

शहज़ादी ने चौंककर आँखें खोलीं और क़ासिम को सामने खड़ा देखकर फौरन मुँह पर नक़ाब खींच लिया और धीरे से बोली — मसरूर।

क़ासिम ने कहा — मसरूर तो यहाँ नही है, लेकिन मुझे अपना एक अदना जाँबाज़ ख़ादिम समझिए। जो हुक्त होगा उसकी तामील में बाल बराबर उज्र न होगा।

शहज़ादी ने नक़ाब और खींच लिया और ख़ेमे के एक कोने में जाकर खड़ी हो गयी।

क़ासिम को अपनी वाक्-शक्ति का आज पहली बार अनुभव हुआ। वह बहुत कम बोलने वाला और गम्भीर आदमी था। अपने हृदय के भावों को प्रकट करने में उसे हमेशा झिझक होती थी लेकिन इस वक्त़ शब्द बारिश की बूँदों की तरह उसकी जबान पर आने लगे। गहरे पानी के बहाव में एक दर्द का स्वर पैदा हो जाता है। बोला — मैं जानता हूँ कि मेरी यह गुस्ताखी आपकी नाजुक

तबियत पर नागवार गुज़री है। हुजूर, इसकी जो सजा मुनासिब समझें उसके लिए यह सर झुका हुआ है। आह, मै ही वह बदनसीब, काले दिल का इंसान हूँ जिसने आपके बुजुर्ग बाप और प्यारे भाइयों के खून से अपना दामन नापाक किया है। मेरे ही हाथों मुलतान के हजारों जवान मारे गये, सल्तनत तबाह हो गयी, शाही खानदान पर मुसीबत आयी और आपको यह स्याह दिन देखना पडा। लेकिन इस वक्त़ आपका यह मुजरिम आपके सामने हाथ बाँधे हाज़िर है। आपके एक इशारे पर वह आपके कदमों पर न्योछावर हो जायेगा और उसकी नापाक जिन्दगी से दुनिया पाक हो जायेगी। मुझे आज मालूम हुआ कि बहादुरी के परदे में वासना आदमी से कैसे-कैसे पाप करवाती है। यह महज लालच की आग है, राख में छिपी हुईं सिर्फ़ एक कातिल जहर है, खुशनुमा शीशे में बन्द! काश मेरी आँखें पहले खुली होतीं तो एक नामवर शाही ख़ानदान यों खाक में न मिल जाता। पर इस मुहब्बत की शमा ने, जो कल शाम को मेरे सीने में रोशन हुई, इस अंधेरे कोने को रोशनी से भर दिया। यह उन रूहानी जज्बात का फैज़ है, जो कल मेरे दिल में जाग उठे, जिन्होंने मुझे लाजच की कैद से आज़ाद कर दिया। इसके बाद क़ासिम ने अपनी बेक़रारी और दर्दे दिल और वियोग की पीड़ा का बहुत ही करुण

शदों में वर्णन किया, यहाँ तक कि उसके शब्दों का भण्डार खत्म हो गया। अपना हाल कह सुनाने की लालसा पूरी हो गयी।

6

लेकिन वह वासना बन्दी वहाँ से हिला नहीं। उसकी आरज़ुओं ने एक कदम और आगे बढ़ाया। मेरी इस रामकहानी का हासिल क्या? अगर सिर्फ़ दर्दे दिल ही सुनाना था, तो किसी तसवीर को, सुना सकता था। वह तसवीर इससे ज्यादा ध्यान से और ख़ामोशी से मेरे ग़म की दास्तान सुनती। काश, मैं भी इस रूप की रानी की मीठी आवाज सुनता, वह भी मुझसे कुछ अपने दिल का हाल कहती, मुझे मालूम होता कि मेरे इस दर्द के किस्से का उसके दिल पर क्या असर हुआ। काश, मुझे मालूम होता कि जिस आग में मैं फुँका जा रहा हूँ, कुछ उसकी आँच उधर भी पहुँचती है या नहीं। कौन जाने यह सच हो कि मुहब्बत पहले माशूक के दिल में पैदा होती है। ऐसा न होता तो वह सब्र को तोड़ने वाली निगाह मुझ पर पड़ती ही क्यों? आह, इस हुस्न की देवी की बातों में कितना लुत्फ़ आयेगा। बुलबुल का गाना सुन सकता, उसकी आवाज कितनी दिलकश होगी, कितनी पाकीजा, कितनी नूरानी,

अमृत में डूबीं हुई और जो कहीं वह भी मुझसे प्यार करती हो तो फिर मुझसे ज्यादा खुशनसीब दुनिया में और कौन होगा?

इस ख़याल से क़ासिम का दिल उछलने लगा। रगों में एक हरकत-सी महसूस हुई। इसके बावजूद कि बांदियों के जग जाने और मसरूर की वापसी का धड़का लगा हुआ था, आपसी बातचीत की इच्छा ने उसे अधीर कर दिया, बोला — हुस्न की मलका, यह जख्मी दिल आपकी इनायत की नज़र की मुस्तहक है। कुड़ उसके हाल पर रहम न कीजिएगा?

शहज़ादी ने नकाब की ओट से उसकी तरफ़ ताका और बोली— जो खुद रहम का मुस्तहक हो, वह दूसरों के साथ क्या रहम कर सकता है? क़ैद में तड़पते हुए पंछी से, जिसके न बोल हैं न पर, गाने की उम्मीद रखना बेकार है। मैं जानती हूँ कि कल शाम को दिल्ली के ज़ालिम बादशाह के सामने बांदियों की तरह हाथ बांधे खड़ी हूँगी। मेरी इज्जत, मेरे रूतबे और मेरी शान का दारोमदार खानदानी इज्जत पर नहीं बल्कि मेरी सूरत पर होगा। नसीब का हक पूरा हा जायेगा। कौन ऐसा आदमी है जो इस जिन्दगी की आरजू रक्खेगा? आह, मुल्तान की शहजादी आज एक जालिम, चालबाज, पापी आदमी की वासना का शिकार बनने पर मजबूर है। जाइए, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। मैं बदनसीब हूँ, ऐसा न हो कि मेरे साथ आपको भी शाही गुस्से का शिकार

बनना पड़े। दिल मे कितनी ही बातें है मगर क्यों कहूँ, क्या हासिल? इस भेद का भेद बना रहना ही अच्छा है। आप में सच्ची बहादुरी और खुद्दारी है। आप दुनिया में अपना नाम पैदा करेंगे, बड़े-बड़े काम करेंगे, खुदा आपके इरादों में बरकत दे—यही इस आफ़त की मारी हुई औरत की दुआ है। मैं सच्चे दिल से कहती हूँ कि मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है। आज मुझे मालूम हुआ कि मुहब्बत बैर से कितनी पाक होती है। वह उस दामन में मुँह छिपाने से भी परहेज नहीं करती जो उसके अजीजों के खून से लिथड़ा हुआ हो। आह, यह कमबख़्त दिल उबला पड़ता है। अपने काल बन्द कर लीजिए, वह अपने आपे में नहीं है, उसकी बातें न सुनिए। सिर्फ़ आपसे यही बिनती है कि इस ग़रीब को भूल न जाइएगा। मेरे दिल में उस मीठे सपने की याद हमेशा ताजा रहेगी, हरम की क़ैद में यही सपना दिल को तसकीन देता रहेगा, इस सपने को तोड़िए मत। अब खुदा के वास्ते यहाँ से जाइए, ऐसा न हो कि मसरूर आ जाए, वह एक ज़ालिम है। मुझे अंदेशा है कि उसने आपको धोखा दिया, अजब नहीं कि यहीं कहीं छुपा बैठा हो, उससे होथियार रहिएगा। खुदा हाफ़िज!

7

क़ासिम पर एक बेसुधी की सी हालत छा गयी। जैसे आत्मा का गीत सुनने के बाद किसी योगी की होती है। उसे सपने में भी जो उम्मीद न हो सकती थी, वह पूरी हो गयी थी। गर्व से उसकी गर्दन की रगें तन गयीं, उसे मालूम हुआ कि दुनिया में मुझसे ज्यादा भाग्यशाली दूसरा नहीं है। मैं चाहूँ तो इस रूप की वाटिका की बहार लूट सकता हूँ, इस प्याले से मस्त हो सकता हूँ। आह वह कितनी नशीली, कितनी मुबारक जिन्दगी होती! अब तक क़ासिम की मुहब्बत ग्वाले का दूध थी, पानी से मिली हुई; शहज़ादी के दिल की तड़प ने पानी को जलाकर सच्चाई का रंग पैदा कर दिया। उसके दिल ने कहा — मैं इस रूप की रानी के लिए क्या कुछ नहीं कर सकता? कोई ऐसी मुसीबत नहीं है जो झेल न सकूँ, कोई आग नहीं, जिसमें कूद न सकूँ, मुझे किसका डर है! बादशाह का? मैं बादशाह का गुलाम नहीं, उसके सामने हाथ फैलानेवाला नहीं, उसका मोहताज नहीं। मेरे जौहर की हर एक दरबार में कद्र हो सकती है। मैं आज इस गुलामी की जंजीर को तोड़ डालूँगा और उस देश में जा बसूँगा, जहां बादशाह के फ़रिश्ते भी पर नहीं मार सकते। हुस्न की नेमत पाकर अब मुझे और किसी चीज़ की इच्छा नहीं। अब अपनी आरज़ुओं का क्यों गला

घोटूँ? कामनाओं को क्यों निराशा का ग्रास बनने दूँ? उसने उन्माद की-सी स्थिति में कमर से तलवार निकाली और जोश के साथ बोला—जब तक मेरे बाज़ुओं में दम है, कोई आपकी तरफ़ आँख उठाकर देख भी नहीं सकता। चाहे वह दिल्ली का बादशाह ही क्यो ने हो! मैं दिल्ली के कूचे और बाजार में खून की नदी बहा दूँगा, सल्तनत की जड़े हिला दूँगा, शाही तख्त को उलट-पलट रख दूँगा, और कुछ न कर सकूँगा तो मर मिटूँगा। पर अपनी आँखो से आपकी यह जिल्लत न देखूँगा।

शहज़ादी आहिस्ता-आहिस्ता उसके क़रीब आयी बोली — मुझे आप पर पूरा भरोसा है, लेकिन आपको मेरी ख़ातिर से जब्त और सब्र करना होगा। आपके लिए मैं महलहरा की तकलीफ़ें और जुल्म सब सह लूँगी। आपकी मुहब्बत ही मेरी जिन्दगी का सहारा होगी। यह यक़ीन कि आप मुझे अपनी लौंडी समझते हैं, मुझे हमेशा सम्हालता रहेगा। कौन जाने तक़दीर हमें फिर मिलाये।

क़ासिम ने अकड़कर कहा — आप दिल्ली जायें ही क्यों! हम सुबह होते-होते भरतपुर पहुँच सकते हैं।

शहजादी — मगर हिन्दोस्तान के बाहर तो नहीं जा सकते। दिल्ली की आँख का कांटा बनकर मुमकिन है हम जंगलों और

वीरानों में जिन्दगी के दिन काटें पर चैन नसीब न होगा। असलियत की तरफ से आँखें न बन्द की जिए, खुदा न आपकी बहादुरी दी है, पर तेगे इस्फ़हानी भी तो पहाड़ से टकराकर टुट ही जाएगी।

कासिम का जोश कुछ धीमा हुआ। भ्रम का परदा नजरों से हट गया। कल्पना की दुनिया में बढ़-बढ़कर बातें करना बातें करना आदमी का गुण है। क़ासिम को अपनी बेबसी साफ़ दिखाई पड़ने लगी। बेशक मेरी यह लनतरानियाँ मज़ाक की चीज़ हैं। दिल्ली के शाह के मुक़ाबिले में मेरी क्या हस्ती है? उनका एक इशारा मेरी हस्ती को मिटा सकता है। हसरत-भरे लहजे में बोला — मान लीजिए, हमको जंगलों और वीरानों में ही जिन्दगी के दिन काटने पड़ें तो क्या? मुहब्बत करनेवाले अंधेरे कोने में भी चमन की सैर का लुफ़्त उठाते हैं। मुहब्बत में वह फ़क़ीरों और दरवेशों जैसा अलगाव है, जो दुनिया की नेमतों की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखता।

शहज़ादी — मगर मुझ से यह कब मुमकिन है कि अपनी भलाई के लिए आपको इन खतरों में डालूँ? मै शाहे दिल्ली के जुल्मों की कहानियाँ सुन चुकी हूँ, उन्हें याद करके रोंगेटे खड़े हो जाते हैं। खुदा वह दिन न लाये कि मेरी वजह से आपका बाल भी बांका हो। आपकी लड़ाइयों के चर्चे, आपकी खैरियत की खबरें, उस

क़ैद में मुझको तसकीन और ताक़त देंगी। मैं मुसीबतें झेलूँगी और हंस-हँसकर आग में जलूँगी और माथे पर बल न आने दूँगी। हाँ, मै शाहे दिल्ली के दिल को अपना बनाऊँगी, सिर्फ आपकी खातिर से ताकि आपके लिए मौक़ा पड़ने पर दो-चार अच्छी बातें कह सकूँ।

8

लेकिन क़ासिम अब भी वहाँ से न हिला। उसकी आरजूएँ उम्मीद से बढ़कर पूरी होती जाती थीं, फिर हवस भी उसी अन्दाज से बढ़ती जाती थी। उसने सोचा अगर हमारी मुहब्बत की बहार सिर्फ़ कुछ लमहों की मेहमान है, तो फिर उन मुबारकबाद लमहों को आगे की चिन्ता से क्यों बेमज़ा करें। अगर तक़दीर में इस हुस्न की नेमत को पाना नहीं लिखा है, तो इस मौक़े को हाथ से क्यों जाने दूँ। कौन जाने फिर मुलाकात हो या न हो? यह मुहब्बत रहे या न रहें? बोला — शहज़ादी, अगर आपका यही आखिरी फ़ैसला है, तो मेरे लिए सिवाय हसरत और मायूसी के और क्या चारा है? दुःख होगा, कुढूँगा, पर सब्र करूँगा। अब एक दम के लिए यहाँ आकर मेरे पहलू में बैठ जाइए ताकि इस

बेकरार दिल को तस्कीन हो। आइए, एक लमहे के लिए भूल जाएँ कि जुदाई की घड़ी हमारे सर पर खड़ी है। कौन जाने यह दिन कब आयें? शान-शौकत ग़रीबों की याद भूला देती है, आइए एक घड़ी मिलकर बैठें। अपनी जुल्फ़ों की अम्बरी खुशबू से इस जलती हुई रूह को तरावट पहुँचाइए। यह बांहें, गलो की जंजीरे बने जाएँ। अपने बिल्लौर जैसे हाथों से प्रेम के प्याले भर-भरकर पिलाइए। साग़र के ऐसे दौर चलें कि हम छक जाएँ! दिलो पर सुरूर को ऐसा गाढ़ा रंग चढ़े जिस पर जुदाई की तुर्शियों का असर न हो। वह रंगीन शराब पिलाइए जो इस झुलसी हुई आरज़ूओं की खेती को सींच दे और यह रूह की प्यास हमेशा के लिए बुझ जाए। मए अग़वानी के दौर चलने लगे। शहज़ादी की बिल्लौरी हथेली में सुर्ख शराब का प्याला ऐसा मालूम होता था जैसे पानी की बिल्लौरी सतह पर कमल का फूल खिला हो क़ासिम दीनो दुनिया से बेख़बर प्याले पर प्याले चढ़ाता जाता था जैसे कोई डाकू लूट के माल पर टूटा हुआ हो। यहाँ तक कि उसकी आँखें लाल हो गयीं, गर्दन झुक गयी, पी-पीकर मदहोश हो गया। शहजादी की तरफ़ वासना-भरी आँखो से ताकता हुआ। बाहें खोले बढा कि घड़ियाल ने चार बजाये और कूच के डंके की दिल छेद देनेवाली आवाजें कान में आयीं। बाँहें खुली की खुली रह गयीं। लौडियाँ उठ बैठी, शहजादी उठ खड़ी हुई और

बदनसीब क़ासिम दिल की आरज़ुएँ लिये खेमे से बाहर निकला, जैसे तक़दीर के फ़ौलादी पंजे ने उसे ढकेलकर बाहर निकाल दिया हो। जब अपने खेमे में आया तो दिल आरज़ूओं से भरा हुआ था। कुछ देर के बाद आरज़ुओं ने हवस का रूप भरा और अब बाहर निकला तो दिल हरसतों से पामाल था, हवस का मकड़ी-जाल उसकी रूह के लिए लोहे की जंजीरें बना हुआ था।

9

शाम का सुहाना वक़्त था। सुबह की ठण्डी-ठण्डी हवा से सागर में धीरे धीरे लहरें उठ रही थीं। बहादुर, क़िस्मत का धनी क़ासिम मुलतान के मोर्चे को सर करके गर्व की मदिरा पिये उसके नशे में चूर चला आता था। दिल्ली की सड़कें बन्दनवारों और झंडियों से सजी हुई थीं। गुलाब और केवड़े की खुशबू चारों तरफ उड़ रही थी। जगह-जगह नौबतखाने अपना सुहाना राग गया। तोपों ने अगवानी की घनगरज सदाएँ बुलन्द कीं। ऊपर झरोखों में नगर की सुन्दरियाँ सितारों की तरह चमकने लगीं।

कासिम पर फूलों की बरखा होने लगी। वह शाही महल के क़रीब पहुँचा तो बड़े-बड़े अमीर-उमरा उसकी अगवानी के लिए

क़तार बांधे खड़े थे। इस शान से वह दीवाने खास तक पहुँचा। उसका दिमाग इस वक्त सातवें आसमान पर था। चाव-भरी आँखों से ताकता हुआ बादशाह के पास पहुँचा और शाही तख्त को चूम लिया। बादशाह मुस्कराकर तख़्त से उतरे और बांहें खोले हुए क़ासिम को सीने से लगाने के लिए बढ़े। क़ासिम आदर से उनके पैरों को चूमने के लिए झुका कि यकायक उसके सिर पर एक बिजली-सी गिरी। बादशाह का तेज खंजर उसकी गर्दन पर पड़ा और सर तन से जुदा होकर अलग जा गिरा। खून के फ़ौवारे बादशाह के क़दमों की तरफ़, तख्त की तरफ़ और तख़्त के पीछे खड़े होने वाले मसरूर की तरफ़ लपके, गोया कोई झल्लाया हुआ आग का सांप है।

घायल शरीर एक पल में ठंडा हो गया। मगर दोनों आँखें हसरत की मारी हुई दो मूरतों की तरह देर तक दीवारों की तरफ़ ताकती रहीं। आखिर वह भी बन्द हो गयीं। हवस ने अपना काम पूरा कर दिया। अब सिर्फ़ हसरत बाक़ी थी। जो बरसों तक दीवाने खास के दरो-दीवार पर छायी रही और जिसकी झलक अभी तक क़ासिम के मज़ार पर घास-फूस की सूरत में नज़र आती है।

['प्रेम बत्तीसी' से]

विक्रमादित्य का तेग़ा

बहुत जमाना गुजरा, एक रोज पेशावर के मौजे महानगर में प्रकृति की एक आश्चर्यजनक लीला दिखाई पड़ी। अंधेरी रात थी, बस्ती से कुछ दूर बरगद के एक छाँहदार पेड़ के नीचे एक आग की लौ दिखायी पड़ी और एक झलमलाते हुए चिराग की तरह नजर आती रही। गाँव में बहुत जल्द यह खबर फैल गयी। वहाँ के रहने वाले यह विचित्र दृश्य देखने के लिए यहाँ-वहाँ इकट्ठे हो गये। औरतें जो खाना पका रही थीं हाथों में गूंथा हुआ आटा लपेटे बाहर निकल आयीं। बूढ़ों ने बच्चों को कंधे पर बिठा लिया और खाँसते हुए आ खड़े हुए। नवेली बहुएँ लाज के मारे बाहर न आ सकीं मगर दरवाजों की दरारों से झाँक-झाँककर अपने बेकरार दिलों को तस्कीन देने लगीं। उस गुम्बदनुमा पेड़ के नीचे अंधेरे के उस अथाह समुन्दर में रोशनी का यह धुंधला शोला पाप के बादलों से घिरी हुई आत्मा का सजीव उदाहरण पेश कर रहा था।

टेकसिंह ने ज्ञानियों की तरह सिर हिलाकर कहा — मैं समझ गया, भूतों की सभा हो रही हैं।

पंडित चेतराम ने विद्वानों के समान विश्वास के साथ कहा — तुम क्या जानों मैं तह पर पहुँच गया। साँप मणि छोड़कर चरने गया है। इसमें जिसे शक हो जाकर देख आये।

मुंशी गुलाबचंद बोले — इस वक्त जो वहाँ जाकर मणि को उठा लाये, उसके राजा होने में शक नहीं। मगर जान जोखिम है।

प्रेमसिंह एक बूढ़ा जाट था। वह इन महात्माओं की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था।

2

प्रेमसिंह दुनिया में बिलकुल अकेला था। उसकी सारी उम्र लड़ाइयों में खर्च हुई थी। मगर जब जिंदगी की शाम आई और वह सुबह की जिंदगी के टूटे-फूटे झोंपड़े में फिर आया तो उसके दिल में एक ख्वाहिश पैदा हुई। अफसोस, दुनिया में मेरा कोई नहीं! काश, मेरे भी कोई बच्चा होता! जो ख्वाहिश शाम के वक्त चिड़ियों को घोंसले में खींच लाती है और जिस ख्वाहिश से बेकरार होकर जानवर शाम को अपने थानों की तरफ चलते हैं, वही ख्वाहिश प्रेमसिंह के दिल में मौजें मारने लगी। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह रात के वक्त कौर बना-बना कर खिलाये। ऐसा

कोई नहीं, जिसे वह रात के वक्त लोरियाँ सुना-सुनाकर सुलाये। यह आकांक्षाएँ प्रेमसिंह के दिल में कभी न पैदा हुई थीं। मगर सारे दिन का अकेलापन इतना उदास करने वाला नहीं होता जितना शाम का।

एक दिन प्रेमसिंह बाजार गया हुआ था। रास्ते में उसने देखा कि एक घर में आग लगी हुई है। आग के ऊँचे-ऊँचे डरावने शोले हवा में अपने झण्डे लहरा रहे हैं और एक औरत दरवाजे पर खड़ी सर पीट-पीट कर रो रही है। यह बेचारी विधवा स्त्री थी, उसका बच्चा अन्दर सो रहा था कि घर में आग लग गयी। वह दौड़ी कि गाँव के आदमियों को अग बुझाने के लिए बुलाये कि इतने में आग ने जोर पकड़ लिया और अब तमाम जलते हुए शोलों का उमड़ा हुआ दरिया उसे उसके प्यारे बच्चे से अलग किये हुए था। प्रेमसिंह के दिल में उस औरत की दर्दनाक आहें चुभ गयीं। वह बेधड़क आग में घुस गया और सोते हुए बच्चे को गोद में लेकर बाहर निकल आया। विधवा स्त्री ने बच्चे को गोद में ले लिया और उसके कोमल गालों को बार-बार चूमकर आँखों में आँसू भर लायी और बोली — महाराज, तुम जो कोई हो, मैं आज अपना बच्चा तुम्हें भेंट करती हूँ। तुम्हें ईश्वर ने और भी लड़के दिये होंगे, उन्हीं के साथ इस अनाथ की भी खबर लेते रहना। तुम्हारे दिल में दया है, मेरा सब कुछ अग्नि देवी ने ले

लिया, अब इस तन के कपड़े के सिवा मेरे पास और कोई चीज नहीं। मैं मजदूरी करके अपना पेट पाल लूँगी। यह बच्चा अब तुम्हारा है।

प्रेमसिंह की आँखें डबडबा गयीं, बोला — बेटी, ऐसा न कहो, तुम मेरे घर चलो और ईश्वर ने जो कुछ रूखा-सूखा दिया है, वह खाओ। मैं भी दुनिया में बिलकुल अकेला हूँ, कोई पानी देने वाला नहीं है। क्या जाने परमात्मा ने इसी बहाने से हम लोगों को मिलाया हो। शाम के वक्त जब प्रेमसिंह घर लौटा तो उसकी गोद में एक हँसता हुआ फूल जैसा बच्चा था और पीछे-पीछे एक पीली और मुरझायी औरत। आज प्रेमसिंह का घर आबाद हुआ। आज से उसे किसी ने शाम के वक्त नदी के किनारे खामोश बैठे नहीं देखा।

इसी बच्चे के लिए सांप की मणि लाने का निश्चय करके प्रेमसिंह आधी रात वक्त कमर में तलवार लगाये, चौंक-चौंककर कदम रखता बरगद के पेड़ की तरफ चला।

जब पेड़ के नीचे पहुँचा तो मणि की दमक ज्यादा साफ नजर आने लगी। मगर सांप का कहीं पता न था। प्रेमसिंह बहुत खुश हुआ, शायद सांप कहीं चरने गया है। मगर जब मणि को लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो वहाँ साफ जमीन के सिवाय और कोई चीज

न दिखाई दी। बूढ़े जाट का कलेजा सन से हो गया ओर बदन के रोंगटे खड़े हो गये। यकायक उसे अपने सामने काई चीज लटकती हुई दिखाई दी। प्रेमसिंह ने तेगा खींच लिया और उसकी तरफ लपका मगर देखा तो वह बरगद की जटा थी। अब प्रेमसिंह का डर बिलकुल दूर हो गया। उसने उस जगह को, जहां से रोशनी की लौ निकल रही थी, अपनी तलवार से खोदना शुरु किया। जब एक बित्ता जमीन खुद गयी तो तलवार किसी सख्त चीज से टकरायी और लौ भड़क उठी। यह एक छोटा-सा तेगा था मगर प्रेमसिंह के हाथ में आते ही उसकी लपट जैसी चमक गायब हो गई।

3

यह एक छोटा-सा तेगा था, मगर बहुत आबदार। उसकी मूठ में अनमोल जवाहरात जड़े हुए थे और मूठ के ऊपर 'विक्रमादित्य' खुदा हुआ था। यह विक्रमादित्य का तेगा था, उस विक्रमादित्य का जो भारत का सूर्य बनकर चमका, जिसके गुन अब तक घर-घर गाये जाते हैं। इस तेगे ने भारत के अमर कालिदास की सोहबतें देखी हैं। जिस वक्त विक्रमादित्य रातों को वेश बदलकर

दुख-दर्द की कहानी अपने कानों सुनने और अत्याचारों की लीला अपनी संवेदनशील आँखों से देखने के लिए निकलते थे, यही आबदार तेगा उनके बगल की शोभा हुआ करता था। जिस दया और न्याय ने विक्रमादित्य का नाम अब तक जिन्दा रक्खा है, उसमें यह तेगा भी उनका हमदर्द और शरीक था। यह उनके साथ उस राजसिंहासन पर शोभायमान होता था जिस पर राजा भोज को भी बैठना नसीब न हुआ।

इस तेगे में गजब की चमक थी। बहुत जमाने तक जमीन के नीचे दफन रहने पर भी उस पर जंग का नाम न था। अंधेरे घरों में उससे उजाला हो जाता था। राज भर चमकते हुए तारे की तरह जगमगाता रहता। जिस तरह चांद बादलों के परदे में छिप जाता है। मगर उसकी मद्धिम रोशनी छन-छनकर आती है, उसी तरह गिलाफ के अन्दर से उस तेगे की किरनें नजरों के तीर मारा करती थीं।

मगर जब कोई व्यक्ति उसे हाथ में ले लेता तो उसकी चमक गायब हो जाती थी। उसका यह गुण देखकर लोग दंग रूह जाते थे।

हिन्दुस्तान में इन दिनों शेरे पंजाब की ललकार गूँज रही थी। रणजीतसिंह दानशीलता और वीरता, दया और न्याय में अपने

समय के विक्रमादित्य थे। उसे घमंडी काबुल को, जिसने सदियों तक हिन्दोस्तान को सर नहीं उठाने दिया था, खाक में मिलाकर लाहौर जाते थे। महानगर का खुला हुआ दिलकश मैदान और पेड़ों का आकर्षक जमघट देखा तो वहीं पड़ाव डाल दिया। बाजार लग गए, खेमे और शामियाने गाड़ दिये गये। जब रात हुई तो पच्चीस हजार चूल्हों का काला धुआँ सारे मैदान और बगीचे पर छा गया। और इस धुएँ के आसमान में चूल्हों की आग, कंदीलें और मशालें ऐसी मालूम होती थीं गोया अंधेरी रात में आसमान पर तारे निकल आये हैं।

4

शाही आरामगाह से गाने—बजाने की पुरशार और पुरजोश आवाजें आ रही थीं। सिख सरदारों ने सरहदी जगहों पर सैकड़ों अफगानी औरतें गिरफ्तार कर ली थीं, जैसा उन दिनों लड़ाइयों में आम तौर पर हुआ करता था। वही औरतें इस वक्त सायेदार दरख्तों के नीचे कुदरती फर्श से सजी हुई महफिल में अपनी बेसुरी ताने अलाप रही थीं और महफिल के लोग जिन्हें गाने का आनन्द उठाने की इतनी लालसा न थी, जितनी हँसने और खुश होने की,

खूब जोर-जोर से कहकहे लगा-लगाकर हंस रहे थे। कहीं-कहीं मनचले सिपाहियों ने स्वांग भरे थे, वह कुछ मशालें और सैंकड़ों तमाशाइयों की भीड़ साथ लिये हुए इधर-उधर धूम मचाते हुए फिरते थे। सारी फौज के दिलों में बैठकर विजय की देवी अपनी लीला दिखा रही थी।

रात के नौ बजे होंगे कि एक आदमी काला कंबल ओढ़े एक बांस का सोंटा लिए शाही खेमे से बाहर निकला और बस्ती की तरफ आहिस्ता-आहिस्ता चला। आज महानगर भी खुशी से ऐंठ रहा हैं। दरवाजों पर कई-कई बत्तियोंवाले चौमुखे दीवट जल रहे हैं। दरवाजों के सहन झाड़कर साफ कर दिये गये हैं। दो-एक जगह शहनाइयाँ बज रही हैं और कहीं-कहीं लोग भजन गा रहे हैं। काली कमलीवाला मुसाफिर इधर-उधर देखता-भालता गाँव चौपाल में जा पहुँचा। चौपाल खूब सजा हुआ था और गाँव के बड़े लोग बैठे हुए इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर बहस कर रहे थे कि महाराजा रणजीतसिंह की सेवा में कौन-सी भेंट पेश की जाए। आज महाराज ने इस गाँव को अपने कदमों से रोशन किया है, तो क्या इस गाँव के बसनेवाले महाराज के कदमों को न चूमेंगे! ऐसे शुभ अवसर कहाँ आते हैं। सब लोग सर झुकाये चिंतित बैठे थे। किसी की अकल कुछ काम नहीं करती थी। वहाँ अनमोल जवाहरात की किश्तियाँ कहाँ? पूरे घंटे भर तक किसी ने सर न

उठाया। यकायक बूढ़ा प्रेमसिंह खड़ा हो गया और बोला — अगर आप लोग पसंद करें तो मैं विक्रमादित्य की तलवार नजराने के लिए दे सकता हूँ।

इतना सुनते ही सबके सब आदमी खुशी से उछल पड़े और एक हुल्लड़ सा मच गया। इतने में एक मुसाफिर कमली ओढ़े चौपाल के अन्दर आया और हाथ उठाकर बोला — भाइयों, वाह गुरु की जय!

चेतराम बोला — तुम कौन हो?

मुसाफिर — रहेगीर हूँ, पेशावर जाना है। रात ज्यादा आ गई है इसलिए यहीं लेट रहूँगा।

टेकसिंह — हाँ-हाँ, आराम से सोओ। चारपाई की जरूरत हो तो मंगा दूँ।

मुसाफिर — नहीं, आप तकलीफ न करें, मैं इसी टाट पर लेट रहूँगा। अभी आप लोग विक्रमादित्य की तलवार की कुछ बातचीत कर रहे थे। यही सुनकर चला आया। वर्ना बाहर ही पड़ा रहता। क्या यहाँ किसी के पास विक्रमादित्य की तलवार है?

मुसाफिर की बातचीत से साफ जाहिर होता था कि वह कोई शरीफ आदमी है। उसकी आवाज में वह कशिश थी जो कानों को अपनी तरफ खींच लिया करती है। सबकी आँखें उसकी तरफ उठ गईं। पंडित चेतराम बोले — जी हाँ, अर्सा हुआ महाराज विक्रमादित्य का तेगा जमीन से निकला है।

मुसाफिर — यह क्योंकर मालूम हुआ कि यह तेगा उन्हीं का है?

चेतराम — उसकी मूठ पर उनका नाम खुदा हुआ हैं।

मुसाफिर — उनकी तलवार तो बहुत बड़ी होगी?

चेतराम — नहीं, वह तो एक छोटा-सा नीमचा है।

मुसाफिर — तो फिर उसमें कोई खास गुण होगा।

चेतराम — जी हाँ, उसके गुण अनमोल हैं। देखकर अक़्ल दंग रूह जाती है। जहाँ रख दो, उसमें जलते चिराग की-सी रोशनी पैदा हो जाती हैं।

मुसाफिर — ओफ्फोह!

चेतराम — मगर ज्योंही कोई आदमी उसे हाथ में ले लेता है, उसकी सारी चमक-दमक गायब हो जाती है।

यह अजीब बात सुनकर उस मुसाफिर की वही कैफियत हो गई जो एक आश्चर्यजनक कहानी सुनने से बच्चों की हो जाया करती

है। उसकी आँख और भंगिमा से अधीरता प्रकट होने लगी। जोश से बोला — विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है!

जरा देर के बाद फिर बोला — वह कौन बुजुर्ग हैं जिनके पास यह अनमोल चीज है?

प्रेमसिंह ने गर्व से कहा — मेरे पास है।

मुसाफिर — क्या मैं उसे देख सकता हूँ?

प्रेमसिंह — हाँ, मैं आपको सवेरे दिखाऊँगा। मगर नहीं, ठहरिए, सवेरे तो हम उसे महाराज रणजीतसिंह को भेंट करेंगे, आपका जी चाहे तो इसी वक्त देख लीजिए।

दोनों आदमी चौपाल से चल खड़े हुए। प्रेमसिंह ने मुसाफिर को अपने घर में ले जाकर तेगे के पास खड़ा कर दिया। इस कमरे में चिराग न था मगर सारा कमरा रोशनी से जगमगा रहा था। मुसाफिर ने पुरजोश आवाज से कहा — विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है, इतना जमाना गुजरने पर भी तुम्हारी तलवार का तेज कम नहीं हुआ।

यह कहकर उसने बड़े चाव से हाथ बढ़ाकर तेगे को पकड़लिया मगर उसका हाथ लगते ही तेगे की चमक जाती रही और कमरे में अंधेरा छा गया।

मुसाफिर ने फौरन तेगे को तख्त पर रख दिया। उसका चेहरा अब बहुत उदास हो गया था। उसने प्रेमसिंह से कहा — क्या तुम यह तेगा रण जीतसिंह को भेंट दोगे? वह इसे हाथ में लेने योग्य नहीं हैं।

यह कहकर मुसाफिर तेजी से बाहर निकल आया। वृन्दा दरवाजे वर खड़ी थी, मुसाफिर ने उसके चेहरे की तरफ एक बार गौर से देखा, मगर कुछ बोला नहीं।

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी। मगर फौज में शोर-गुल बदस्तूर जारी था। खुशी के हंगामे ने नींद को सिपाहियों की आँखों से दूर भगा दिया। अगर कोई अंगड़ाई लेता या ऊँघता नजर आ जाता है तो उसके साथी उसे एक टांग से खड़ा कर देते हैं। यकायक यह खबर मशहूर हुई कि महाराज इसी वक्त कूच करेंगे। लोग ताज्जुब में आ गये कि महाराज ने क्यों इस अंधेरी रात में सफर करने की ठानी है! इस डर से कि फौज को इसी वक्त कूच करना पड़ेगा चारों तरफ खलबली-सी मच गयी। वह खुद थोड़े-से आजमाये हुये सरदारों के साथ रवाना हो गए। इसका कारण किसी की समझ में नहीं आया।

जिस तरह बांध टूट जाने से तालाब का पानी काबू से बाहर होकर जारे-शोर के साथ बह निकलता है, उसी तरह महाराज के

जाते ही फौज के अफसर और सिपाही होश-हवास खोकर मस्तियाँ करने लगे।

5

वृन्दा को विधवा हुए तीन साल गुजरे हैं। उसका पति एक बेफिक्र और रंगीन मिजाज आदमी था। गाने—बजाने से उसे प्रेम था। घर की जो कुछ जमा-जथा थी, वह सरस्वती और उसके पुजारियों को भेंट कर दी। तीन लाख की जायदाद तीन साल के लिए भी काफी न हो सकी। मगर उसकी कामना पूरी हो गई। सरस्वती देवी ने उसे आशीर्वाद दिया और उसने संगीत-कला में ऐसा कमाल पैदा किया कि अच्छे-अच्छे गुनी उसके सामने जबान खोलते डरते थे। गाने का उसे जितना शौक था, उतनी ही मुहब्बत उसे वृन्दा से थी। उसकी जान अगर गाने में बसती थी तो दिल वृन्दा की मुहब्बत से भरा हुआ था पहले छेड़छाड़ में और फिर दिलबहलाव के लिए उसने वृन्दा को कुछ गाना सिखाया। यहाँ तक कि उसको भी इस अमृत का स्वाद मिल गया और यद्यपि उसके पति को मरे तीन साल गुजर गये हैं और उसने सांसारिक सुखों को अंतिम नमस्कार कर लिया है यहाँ तक

कि किसी ने उसके गुलाब-के-से होंठों पर मुस्कराहट की झलक नहीं देखी मगर गाने की तरफ अभी तक उसकी तबियत झुकी हुई थी। उसका मन जब कभी बीते हुए दिनों की याद से उदास होता है तो वह कुछ गाकर जी बहला लेती है। लेकिन गाने में उसका उद्देश्य इन्द्रिय का आनन्द नहीं होता, बल्कि जब वह कोई सुंदर राग अलापने लगती है तो ख्याल में अपने पति को खुशी से मुस्कराते हुए देखती है। वही काल्पनिक चित्र उसके गाने की प्रशंसा करता हुआ दिखाई देता है। गाने में उसका लक्ष्य अपने स्वर्गीय पति की स्मृति को ताजा करना है। गाना उसके नजदीक पतिव्रत धर्म का निबाह है।

तीन पहर रात जा चुकी है, आसमान पर चांद की रोशनी मंद हो चुकी है, चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है और इन विचारों को जन्म देने वाले सन्नाटे में वृन्दा जमीन पर बैठी हुई मद्धिम स्वरों में गा रही है —

बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।

वृन्दा की आवाज में लोच भी है और दर्द भी। उसमें बेचैन दिल को तसकीन देने वाली ताकत भी है और सोये हुए भावों को जगा देने की शक्ति भी। सुबह के वक्त पूरब की गुलाबी आभा में सर उठाये हुए फूलों से लदी हुई डाली पर बैठकर गानेवाली बुलबुल की चहक में भी यह घुलावट नहीं होती। यह वह गाना है जिसे

सुनकर अकलुष आत्माएँ सिर धुनने लगती हैं। उसकी तान कानों को छेदती हुई जिगर में आ पहुँचती है —

बता दे कोई प्रेमसिंह की डगर।
मैं बौरी पग-पग पर भटकूॅ, काहू की कुछ नाहिं खबर।
बता दे कोई प्रेमसिंह की डगर।

यकायक किसी ने दरवाजा खटखटाया और कई आदमी पुकारने लगे — किसका मकाने है, दरवाजा खोलो।

वृन्दा चुप हो गयी। प्रेमसिंह ने उठकर दरवाजा खोल दिया। दरवाजे के सहन में सिपाहियों की एक भीड़ थी। दरवाजा खुलते ही कई सिपाही दहलीज में घुस आये और बोले — तुम्हारे घर में कोई गानेवाली रहती है, हम उसका गाना सुनेंगे।

प्रेमसिंह ने कड़ी आवाज में कहा — हमारे यहाँ कोई गानेवाली नहीं है।

इस पर कई सिपाहियों ने प्रेमसिंह को पकड़ लिया और बोले — तेरे घर से गाने की आवाज आती थी।

एक सिपाही — बताता क्यों नहीं रे, कौन गा रहा है?

प्रेमसिंह — मेरी लड़की गा रही थी। मगर वह गानेवाली नहीं है।

सिपाही — कोई हो, हम तो आज गाना सुनेंगे।

गुस्से से प्रेमसिंह काँपने लगा, होंठ चबाकर बोला — यारो, हमने भी अपनी जिन्दगी फौज में ही काटी है मगर कभी.....

इस हंगामे में प्रेमसिंह की बात किसी ने न सुनी। एक नौजवान जाट ने, जिसकी आँखें नशे से लाल हो रही थीं, ललकारकर कहा — इस बुड्ढे की मूछें उखाड़ लो।

वृन्दा आँगन में पत्थर की मूरत की तरह खड़ी यह कैफियत देख रही थी। जब उसने दो सिपाहियों को प्रेमसिंह की मूंछ पकड़कर खींचते देखा तो उससे न रहा गया, वह निर्भय सिपाहियों के बीच में घुस आयी और ऊँची आवाज में बोली — कौन मेरा गाना सुनना चाहता है।

सिपाहियों ने उसे देखते ही प्रेमसिंह को छोड़ दिया और बोले — हम सब तेरा गाना सुनेंगे।

वृन्दा — अच्छा बैठ जाओ, मैं गाती हूँ।

इस पर कई सिपाहियों ने जिद की कि इसे पड़ाव पर ले चलें, वहाँ खूब रंग जमेगा।

जब वृन्दा सिपाहियों के साथ पड़ाव की तरफ चली तो प्रेमसिंह ने कहा — वृन्दा, इनके साथ जाती हो तो फिर इस घर में पैर न रखना।

वृन्दा जब पड़ाव पर पहुंची तो वहाँ बदमस्तियों का एक तूफान मचा हुआ था। विजय की देवी दुश्मन को बर्बाद करके अब विजेताओं की मानवता और सज्जनता को पाँव से कुचल रही थी। हैवानियत का ख़ूँख़ार शेर दुश्मन के खून से तृप्त ने होकर अब मानवोचित भावों का खून चूस रहा था। वृन्दा को लोग एक सजे हुए खेमे में ले गये। यहाँ फर्शी चिराग रोशन थे और आग-जैसी शराब के दौर चल रहे थे। वृन्दा उस कोने पर सहमी हुई बैठी थी। वासना का भूत जो इस वक्त दिलो में अपनी शैतानी फौज सजाये बैठा था कभी आँखो की कमान से सतीत्व की नाश करने वाली तेज तीर चलाता और कभी मुहँ की कमान से मर्मवेधी बाणों की बौछार करता। जहरीली शराब में बुझे हुए तीर वृन्दा के कोमल और पवित्र हृदय को छेदते हुए पार हो जाते थे। वह सोच रही थी — ऐ द्रौपती की लाज रखने वाले कृष्ण भगवान्, तुमने धर्म के बन्धन से बँधे हुए पाण्डवों के होते हुए द्रौपती की लाज रखी थी, मैं तो दुनिया में बिल्कुल अनाथ हूँ, क्या मेरी लाज न रखोगे? यह सोचते हुए उसने मीरा का यह मशहूर भजन गाया —

सिया रघुवीर भरोसो ऐसो।

वृन्दा ने यह गीत बड़े मोहक ढंग से गाया। उसके मीठे सुरो में मीरा का अन्दाज पैदा हो गया था। प्रकट रूप में वह शराबी सिपाहियों के सामने बैठी गा रही थी। मगर कल्पना की दुनिया में वह मुरलीवाले श्याम के सामने हाथ बाँधे खड़ी उससे प्रार्थना कर रही थी।

जरा देर के लिए उस शोर से भरे हुए महल में निस्तब्धता छा गयी। इन्सान के दिल में बैठे हुए हैवान पर भी प्रेम की यह तड़पा देने वाली पुकार अपना जादू चला गयी। मीठा गाना मस्त हाथी को भी बस में कर लेता है। पूरे घंटे भर तक वृन्दा ने सिपाहियों को मूर्तिवत् रखा। सहसा घडियाल ने पाँच बजाये। सिपाही और सरदार सब चौंक पड़े। सबका नशा हिरन हो गया। चालीस कोस की मंजिल तय करनी है, फुर्ती के साथ रवानगी की तैयारियाँ होने लगीं। खेमे उखड़ने लगे, सवारों ने घोडों को दाना खिलाना शुरु किया। एक भगदड़-सी मच गयी। उधर सूरज निकला इधर फौज ने कूच का डंका बजा दिया। शाम को जिस मैदान का एक-एक कोना आबाद था, सुबह को वहाँ कुछ भी न था। सिर्फ टूटे-फूटे उखड़े चूल्हे की राख और खेमों की कीलों के निशान उस शानो-शौकत की यादगार मे रूप में रूह गये थे।

वह खेमे से बाहर निकल आयी। कोई बाधक न हुआ। मगर उसका दिल धड़क रहा था कि कही कोई आकर फिर न पकड़ ले। जब वह पेड़ों के झुरमुट से बाहर पहुंची तो उसकी जान में जान आयी। बड़ा सुहाना मौसम था, ठंड़ी-ठंड़ी मस्त हवा पेड़ो के पत्तों पर धीमे-धीमे चल रही थी और पूरब के क्षितिज में सूर्य भगवान की अगवानी के लिए लाल मखमल का फर्श बिछाया जा रहा था। वृन्दा ने आगे कदम बढाना चाहा। मगर उसके पाँव न उठे। प्रेमसिंह की यह बात कि सिपाहियों के साथ हो जाती हो तो फिर इस घर में पैर न रखना, उसे याद आ गयी। उसने एक लम्बी सांस ली और जमीन पर बैठ गई। दुनिया में अब उसके लिए कोई ठिकाना न था।

उस अनाथ चिड़िया की हालत कैसी दर्दनाक है जो दिल में उड़ने की चाह लिए हुए बहेलिये की कैद से निकल आती है मगर आजाद होने पर उसे मालूम होता है कि उस निष्ठुर बहेलिये ने उसके परों को काट दिया है। वह पेड़ो की सायेदार डालियों की तरफ बार-बार हसरत की निगाहों से देखती है मगर उड़ नहीं सकती और एक बेबसी के आलम में सोचने लगती है कि काश, बहेलिया मुझे फिर पिंजरे मे कैद कर लेता! वृन्दा की हालत एक वक्त ऐसी ही दर्दनाक थी।

वृन्दा कुछ देर तक इस ख्याल में डूबी रही, फिर वह उठी और धीरे-धीरे प्रेमसिंह के दरवाजे पर आयी। दरवाजा खुला हुआ था मगर वह अन्दर कदम न रख सकी। उसने दरो-दीवार को हसरत भरी निगाहों से देखा और फिर जंगल की तरफ चली गई।

6

शहर लाहौर के एक शानदार हिस्से मे ठीक सड़क के किनारे एक अच्छा-सा साफ-सुथरा तिमंजिले मकान है। हरी-भरी फूलों वाली माधवी लता ने उसकी दीवारों और मेहराबों को खूब सजा दिया है। इसी मकान में एक अमीराना ठाट-बाट से सजे हुए कमरों में फैली वृन्दा एक मखमली कालीन पर बैठी हुई अपनी सुन्दर रंगों और मीठी आवाज वाली मैना को पढ़ा रही है। कमरे की दीवारों पर हलके हरे रंग की कलई है — खुशनुमा दीवारगीरियाँ, खूबसूरत तस्वीरें उचित स्थानों पर शोभा दे रही है। सन्दल और खस की प्राणवर्द्धक सुगन्ध कमरे के अन्दर फैली हुई है। एक बूढ़ी बैठी हुई पंखा झल रही है। मगर इस ऐश्वर्य और सब सामग्रियों के होते हुए वृन्दा का चेहरा उदास है। उसका

चेहरा अब और भी पीला नजर आता है। मौलश्री का फूल मुरझा गया है।

वृन्दा अब लाहौर की मशहूर गानेवालियों में से एक है। उसे इस शहर में तीन महीने से ज्यादा नहीं हुए, मगर इतने ही दिनों में उसने बहुत बड़ी शोहरत हासिल कर ली है। यहाँ उनका नाम श्यामा मशहूर है। इतने बड़े शहर में जिससे श्यामा बाई का पता पूछो वह यकीनन बता देगा। श्यामा की आवाज और अन्दाज मे कोई मोहिनी है, जिसने शहर में हर को अपना प्रेमी बना रक्खा है। लाहौर में बाकमाल गानेवालियों की कमी नहीं है। लाहौर उस जमाने में हर कला का केन्द्र था मगर कोयलें और बुलबुलें बहुत थी। श्यामा सिर्फ एक थी। वह ध्रूपद ज्यादा गाती थी इसलिए लोग उसे ध्रूपदी कहते थे।

लाहौर में मियाँ तानसेन के खानदान के कई ऊँचे कलाकार है जो राग और रागनियों में बातें करते है। वह श्यामा का गाना पसन्द नहीं करते। वह कहते है कि श्यामा का गाना अकसर गलत होता है। उसे राग ओर रागनियों का ज्ञान नहीं। मगर उनकी इस आलोचना का किसी पर कुछ असर नहीं होता। श्यामा गलत गाये या सही वह जो कुछ गाती है उसे सुनकर लोग मस्त हो जाते है। उसका भेद यह है कि श्यामा हमेशा दिल से गाती है और जिन भावों को वह प्रकट करती है उन्हें

खुद भी अनुभव करती है। वह कठपुतलियों की तरह तुली हुई अदाओं की नकल नहीं करती है। अब उसके बगैर महफिलें सूनी रहती है। हर महफिल में उसका मौजूद होना लाजिमी हो गया है। वह चाहे श्लोक ही गाये मगर बगैर संगीत प्रेमियों का जी नहीं भरता। तलवार की बाढ की तरह वह महफिलों की जान है। उसने साधारणजनों के हृदय में यहाँ तक घर लिया है कि जब अपनी पालकी पर हवा खाने निकलती है तो उस पर चारों तरफ से फूलों की बौछार होने लगती है। महाराज रणजीत सिंह को काबुल से लौटे हुए तीन महीने गुजर गए, मगर अभी तक विजय की खुशी में कोई जलसा नही हुआ। वापसी के बाद कई दिन तक तो महाराज किसी कारण से उदास थे, उसके बाद उनके स्वभाव में यकायक एक बड़ा परिवर्तन आया, उन्हे काबुल की विजय की चर्चा से घृणा-सी हो गई। जो कोई उन्हें इस जीत की बधाई देने जाता उसकी तरफ से मुँह फेर लेते थे। वह आत्मिक उल्लास जो मौज महानगर तक उनके चेहरे से झलकता था, अब वहाँ न था। काबुल को जीतना उनकी जिंदगी की सबसे बड़ी आरज़ू थी। वह मोर्चा जो एक हजार साल तक हिन्दू राजाओं की कल्पना से बाहर था, उनके हाथों सर हुआ। जिस मुल्क ने हिन्दोस्तान को एक हजार बरस तक अपने मातहत रक्खा वहाँ हिन्दू कौम का झंडा रणजीत सिंह ने उड़ाया। गजनी

और काबुल की पहाड़ियों इन्सानी खून से लाल हो गयी, मगर रणजीत सिंह खुश नही है। उनके स्वभाव की कायापलट का भेद किसी की समझ में नहीं आता। अगर कुछ समझती है तो वृन्दा समझती है।

तीन महीने तक महाराज की यही कैफियत रही। इसके बाद उनका मिजाज अपने असली रंग पर आने लगा। दरबार की भलाई चाहने वाले इस मौके के इन्तजार में थे। एक रोज उन्होनें महाराज से एक शानदार जलसा करने की प्रार्थना की। पहले तो वह बहुत क्रुद्ध हुए मगर आखिरकार मिजाज समझाने वालों की घातें अपना काम कर गई।

जलसे की तैयारियाँ बड़े पैमाने पर की जाने लगी। शाही नृत्यशाला की सजावट होने लगी। पटना, बनारस, लखनऊ, ग्वालियर, दिल्ली और पूना की नामी वेश्याओं को सन्देश भेजे गये। वृन्दा को भी निमन्त्रण मिला। आज एक मुद्दत के बाद उसके चेहरे पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी।

जलसे की तारीख निश्चित हो गई। लाहौर की सड़को पर रंग-बिरंगी झंडिया लहराने लगी। चारों तरफ से नवाब और राजे बड़ी शान के साथ सज-सजकर आने लगे। होशियार फर्राशों ने

नृत्यशाला को इतने सुन्दर ढंग से सजाया था कि उसे देखकर लगता था कि विलास का विश्रामस्थल है।

शाम के वक्त शाही दरबार जमा। महाराजा साहब सुनहरे राजसिंहासन पर शोभायमान हुए। नवाब और राजे, अमीर और रईस, हाथी घोड़ों पर सवार अपनी सजधज दिखते हुए एक जलूस बनाकर महाराज की कदमबोसी को चले। सड़क पर दोनो तरफ तमाशाइयों का ठाट लगा था। खुशी का रंगों से भी कोई गहरा संबंध है। जिधर आँख उठती थी। रंग ही रंग दिखायी देते थें। ऐसा मालूम होता था कि कोई उमड़ी हुई नदी रंग बिरंगे फूलों की क्यारियों से बहती चली आती है।

अपनी खुशी के जोश में कभी-कभी लोग अभद्रता भी कर बैठते थे। एक पण्डित जी मिर्जई पहने सर पर गोल टोपी रक्खे तमाशा देखने में लगे थे। किसी मनचले ने उनकी तोंद पर एक चमगादड़ चिमटा दी। पंडित जी बेतहाशा तोंद मटकाते हुए भागे। बड़ा कहकहा पड़ा। एक और मौलवी साहब नीची अचकन पहने हुए दुकान पर खड़े थे। दुकानदार ने कहा — मौलवी साहब, आपको खड़े-खड़े तकलीफ होती है, यह कुर्सी रक्खी है, बैठ जाइए। मौलवी साहब बहुत खुश हुए, सोचने लगे कि शायद मेरे रूप-रंग से रौब झलक रहा है। वर्ना दुकानदार कुर्सी क्या देता? दुकानदार आदमियों के बड़े पारखी होते हे। हजारों

आदमी खड़े है, मगर उसने किसी से बैठने की प्रार्थना न की। मौलवी साहब मुस्कराते हुए कुर्सी पर बैठे, मगर बैठते ही पीछे की तरफ लुढ़के और नीचे बहती हुई नाली में गिर पड़े। सारे कपड़े लथपथ हो गये। दुकानदार को हजारों खरी-खोटीं सुनायीं। बड़ा कहकहा पड़ा। कुर्सी तीन ही टांग की थी।

एक जगह कोई अफीमची साहब तमाशा देखने आये हुए थे। झुकी हुई कमर पोंपला मुँह, छिदरे-छिदरे सर के बाल और दाढी के बाल, मेंहदी से रगे हुए थे। आँखो में सुरमा भी था। आप बड़े गौर ये सैर करने में लगे थे। इतने में एक हलवाई सर पर खोमचा रक्खे हुए आया और बोला — खाँ साहब, जुमेरात की गुलाबवाली रेवड़ियाँ हैं। आज पैसे की आध पाँव लगा दीं, खा लीजिए वर्ना पछ्ताइएगा। अफीमची साहब ने जेब में हाथ डाला मगर पैसे न थे। हाथ मल कर रूह गये, मुँह मे पानी भर आया। गुलाबवाली रेवड़ियाँ पैसे में आध पाव! न हुए पैसे नहीं तो सेरो तुला लेता। हलवाई ताड़ गया, बोला — आप पैसे की कुछ फिक्र न करें, पैसे फिर मिल जाएँगे। आप कोई ऐसे वैसे आदमी थौडे ही है। अफीमची साहब की बाँछे खिल गयीं। रूह फड़क उठी। आपने पाव भर रेवड़ियाँ लीं और जी में कहा। अब पैसा देने वाले पर लानत है। घर से निकलूँगा ही नही, तो पैसे क्या लोगे? अपने रूमाल में रेवडियाँ लीं। आशिक के दिल में सब्र

कहाँ? मगर ज्यो ही पहली रेवड़ी जबान पर रक्खी कि तिलमिला गये। पागल कुत्ते की तरह पानी की तलाश में इधर-उधर दौड़ने लगे। आँख और नाक से पानी बहने लगा। आधा मुँह खोलकर ठंडी हवा से जबान की जलन बुझाने लगे। जब होश ठीक हुए तो हलवाई को हजारों गालियाँ सुनायीं, इस पर लोग खूब हंसे। खुशी के मौके पर ऐसी शरारतें अकसर हुआ करती है। और इन्हें लोग खूब मुआफी के काबिल समझते है क्योंकि वह खौलती हुई हाँडी के उबाल है।

रात के नौ बजे संगीतशाला से जमघट हुआ। सारा महल नीचे से ऊपर तक रंग-बिरंगी हांड़ियों और फानूसों से जगमगा रहा था। अन्दर झांड़ों की बहार थी। बाकमाल कारीगर ने रंगशाला के बीचों-बीच अधर में लटका हुआ एक फव्वारा लगाया था। जिसके सूराखों से खस और केवड़ा, गुलाब और सन्दल का अरक हलकी फुहारों में बरस रहा था। महफिल में अम्बर की बौछार करने वाली तरावट फैली हुई थी। खुशी अपनी सखियों-सहेलियों के साथ खुशियाँ मना रही थी।

दस बच्चे महाराजा रणजीतसिंह तशरीफ लाये। उनके बदन पर तंजेब की एक सफेद अचकन थी और तिरछी पगड़ी बँधी हुई थी। जिस तरह सूरज क्षितिज की रंगीनियों से पाक रहकर अपनी पूरी रोशनी दिखा सकता है। उसी तरह हीरे और जवाहरात, दीवा

और हरीर [1] की पुस्तकल्लुफ सजावट से मुक्त रहकर भी महाराजा रणजीतसिंह का प्रताप पूरी तेजी के साथ चमक रहा था।

चन्द्रनामी शायरों ने महाराज की शान में इसी मौके के लिए कासीदे कहे थे। मगर उपस्थित लोगों के चेहरों से उनके दिलों में जोश खाता हुआ संगीत-प्रेम देखकर महाराज ने गाना शुरू करने का हुक्म कर दिया। तबले पर थाप पड़ी, साजिन्दों ने सुर मिलाया, नींद से झपकती हुई आँखें खुल गयीं और गाना शुरू हो गया।

7

उस शाही महफिल में रात भर मीठे-मीठे गानों की बौछार होती रही। पीलू और पिरच, देस और विभाग के मदभरे झोंके चलते रहे। सुन्दरी नर्तकियों ने बारी-बारी से अपना कमाल दिखाया। किसी की नाजभरी अदाएँ दिलों में खुब गयीं, किसी का थिरकना कत्लेआम कर गया, किसी की रसीली तानों पर वाह-वाह मच

[1] रेशमी कपड़ों के नाम

गई। ऐसी तबियत बहुत कम थीं जिन्होनें सच्चाई के साथ गाने का पवित्र आनन्द न उठाया हो।

चार बजे होगे श्यामा की बारी आयी तो उपस्थित लोग सम्हल बैठे। चाव के मारे लोग आगे खिसकने लगे। खुमारी से भरी हुई आँखें चौंक पड़ी। वृन्दा महफिल में आई और सर झुकाकर खड़ी हो गई। उसे देखकर लोग हैरत में आ गये। उसके शरीर पर न आबदार गहने थे, खुशरंग, भड़कीली पेशवाज। वह सिर्फ एक गेरूँए रंग की साड़ी पहने हुए थी। जिस तरह गुलाब की पंखुरी पर डूबते हुए सूरज की सुनहरी किरण चमकती है, उसी तरह उसके गुलाबी होठों पर मुस्कराहट झलकती थी। उसका आडम्बर से मुक्त सौंदर्य अपने प्राकृतिक वैभव की शान दिखा रहा था। असली सौदर्य बनाव-सिंगार का मोहताज नहीं होता। प्रकृति के दर्शन से आत्मा को जो आनन्द प्राप्त होता है वह सजे हुए बगीचों की सैर से मुमकिन नहीं। वृन्दा ने गाया —

सब दिन नाहीं बराबर जात।

यह गीत इससे पहले भी लोगो ने सुना था मगर इस वक्त का-सा असर कभी दिलों पर नहीं हुआ था। किसी के सब दिन बराबर नहीं जाते यह कहावत रोज सुनते थे। आज उसका मतलब समझ में आया। किसी रईस को वह दिन याद आया जब खुद उसके सिर पर ताजा था, आज वह किसी का गुलाम है। किसी

को अपने बचपन की लाड़-प्यार की गोद याद आई, किसी को वह जमाना याद आया, जब वह जीवन के मोहक सपने देख रहा था। मगर अफसोस अब वह सपना तितर-बितर हो गया। वृन्दा भी बीते हुए दिनों को याद करने लगी। एक दिन वह था कि उसके दरवाजे पर अताइयों और गानेवालों की भीड रहती थी। औरखुशियों की और आज! इसके आगे वृन्दा कुछ सोच न सकीं। दोनों हालातों का मुकाबिला बहुत दिल तोड़नेवाला था, निराशा से भर देने वाला। उसकी आवाज भारी हो गई और रोने से गला बैठ गया।

महाराजा रणजीतसिंह श्यामा के तर्ज व अन्दाज को गौर से देख रहे थे। उनकी तेज निगाहें उसके दिल में पहुँचने की कोशिश कर रही थीं। लोग अचम्भे में पड़े हुए थे कि क्यों उनकी जबान से तारीफ और कद्रदानी की एक बात भी न निकली। वह खुश न थे, वह ख्याल में डूबे हुए थे। उन्हें हुलिये से साफ पता चल रहा था कि यह औरत हरगिज अपनी अदाओं को बेचनेवाली औरत नहीं है। यकायक वह उठ खडे हुए और बोले — श्यामा, बृहस्पति को मैं फिर तुम्हारा गाना सुनूँगा।

8

वृन्दा के चले जाने के बाद उसका फूल-सा बच्चा राजा उठा और आँखें मलता हुआ बोला — अम्माँ कहाँ है?

प्रेमसिंह ने उसे गोद में लेकर कहा — अम्माँ मिठाई लेने गई है।

राजा खुश हो गया, बाहर जाकर लड़कों के साथ खेलने लगा। मगर कुछ देर के बाद फिर बोला — अम्माँ मिठाई।

प्रेमसिंह ने मिठाई लाकर दी। मगर राजा रो-रोकर कहता रहा, अम्मा मिठाई। वह शायद समझ गया था कि अम्माँ की मिठाई इस मिठाई से ज्यादा मीठी होगी।

आखिर प्रेमसिंह ने उसे कंधे पर चढ़ा लिया और दोपहर तक खेतों में घूमता रहा। राजा कुछ देर तक चुप रहता और फिर चौंककर पूछने लगता — अम्मा कहाँ है?

बूढ़े सिपाही के पास इस सवाल का कोई जबाब न था। वह बच्चे के पास से एक पल को कहीं न जाता और उसे बतों में लगाये रहता कि कहीं वह फिर न पूछ बैठे, अम्मा कहाँ है? बच्चों

की स्मरणशक्ति कमजोर होती है। राजा कई दिनों तक बेकार रहा, आखिर धीरे-धीरे माँ की याद उसके दिल से मिट गई।

इस तरह तीन महीने गुजर गये। एक रोज शाम के वक्त राजा अपने दरवाजे पर खेल रहा था कि वृन्दा आती दिखाई दी। राजा ने उसकी तरफ गौर से देखा, जरा झिझका, फिर दौड़कर उसकी टाँगो से लिपट गया और बोला — अम्मा, आयी, अम्मा आयी।

वृन्दा की आँखों से आँसू जारी हो गए। उसने राजा को गोद में उठा लिया और कलेजे से लगाकर बोली — बेटा, अभी मैं नहीं आयी, फिर कभी आऊँगी।

राजा इसका मतलब न समझा। वह उसका हाथ पकड़कर खींचता हुआ घर की तरफ चला। माँ की ममता वृन्दा को दरवाजे तक ले गयी। मगरचौखट से आगे न ले जा सकी। राजा ने बहुत खींचा मगर वह आगे न बढ़ी। तब राजा की बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू भर आये। उसके होंठ फैल गये और वह रोने लगा।

प्रेमसिंह उसका रोना सुनकर बाहर निकल आया, देखा तो वृन्दा खड़ी है। चौंककर बोला — वृन्दा मगर वृन्दा कुछ जबाब न दे सकीं।

प्रेमसिंह ने फिर कहा — बाहर क्यों खड़ी हो, अन्दर आओ। अब तक कहाँ थीं?

वृन्दा ने आँसू पोंछते हुए जबाब दिया — मैं अन्दर नहीं आऊँगी।

प्रेमसिंह ने फिर कहा — आओ आओ, अपने बूढ़े बाप की बातों का बुरा न मानों।

वृन्दा — नहीं दादा, मैं अन्दर कदम नहीं रख सकती।

प्रेमसिंह — क्यों?

वृन्दा — कभी बताऊँगी। मैं तुम्हारे पास वह तेगा लेने आयी हूँ।

प्रेमसिंह ने अचरज में जाकर पूछा — उसे लेकर क्या करोगी?

वृन्दा — अपनी बेइज्जती का बदला लूँगी।

प्रेमसिंह किससे — रणजीतसिंह से।

प्रेमसिंह जमीन पर बैठ गया और वृन्दा की बातों पर गौर करने लगा, फिर बोला — वृन्दा, तुम्हें मौका क्योंकर मिलेगा?

वृन्दा — कभी-कभी धूल के साथ उड़कर चींटी आसमान तक पहुँचती है।

प्रेमसिंह — मगर बकरी शेर से क्योंकर लड़ेगी?

वृन्दा — इस तेगे की मदद से।

प्रेमसिंह — इस तेगे ने कभी छिपकर खून नहीं किया।

वृन्दा — दादा, यह विक्रमादित्य का तेगा है। इसने हमेशा दुखियारों की मदद की है।

प्रेमसिंह ने तेगा लाकर वृन्दा के हाथ में रख दिया। वृन्दा उसे पहलू में छिपाकर जिस तरह से आयी थी उसी तरह चली गई। सूरज डूब गया था। पश्चिम के क्षितिज में रोशनी का कुछ-कुछ निशान बाकी था और भैंसे अपने बच्छडे को देखने के लिए चरागाहों से दौड़ती हुई आवाज से मिमियाती चली आती थीं और वृन्दा को रोता छोड़कर शाम के अँधेरे डरावने जंगल की तरफ जा रही थी।

9

वृहस्पति का दिन था। रात के दस बज चुके है। महाराजा रणजीतसिंह अपने विलास-भवन में शोभायमान हो रहे है। एक रात बत्तियों वाला झाड़ रोशन हे। मानों दीपक-सुंदरी अपनी

सहेलियों के साथ शबनम का घूँघट मुँह पर ड़ाले हुए अपने रूम में गर्व में खोई हुई है। महाराजा साहब के सामने वृन्दा गेरूँए रंग की साड़ी पहने बैठी है। उसके हाथ में एक बीन है, उसी पर वह एक लुभावना गीत अलाप रही है।

महाराज बोले — श्यामा, मैं तुम्हारा गाना सुनकर बहुत खुश हुआ, तुम्हें क्या इनाम दूँ?

श्यामा ने एक विशेष भाव से सिर झुकाकर कहा — हुजूर के अख्तियार में सब कुछ है।

रणजीतसिंह — जागीर लोगी?

श्यामा — ऐसी चीज दीजिए, जिससे आपका नाम हो जाए।

महाराजा ने वृन्दा की तरफ गौर से देखा। उसकी सादगी कह रही थी कि वह धन-दौलत को कुछ नहीं समझती। उसकी दृष्टि की पवित्रता और चेहरे की गम्भीरता साफ बता रही है कि वह वेश्या नही है जो अपनी अदाओं को बेचती है। फिर पूछा — कोहनूर लोगी?

श्यामा — वह हुजूर के ताज में अधिक सुशोभित है।

महाराज ने आश्चर्य में पड़कर कहा — तुम खुद माँगो।

श्यामा — मिलेगा?

रणजीत सिंह — हाँ

श्यामा — मुझे इन्साफ के खून का बदला दिया जाय।

महाराज रणजीतसिंह चौंक पड़े। वृन्दा की तरफ फिर गौर से देखा और सोचने लगे, इसका क्या मतलब है। इन्साफ तो खून का प्यासा नहीं होता, यह औरत जरूर किसी जालिम रईस या राजा की सताई हुई है। क्या अजब है कि उसका पति कहीं का राजा हो। जरूर ऐसा ही है। उसे किसी ने कत्ल कर दिया है। इन्साफ को खून की प्यास इसी हालत में होती है; इसी वक्त इन्साफ ख़ूँख़ार जानवर हो जाता है। मैंने वायदा किया कि वह जो माँगेगी वह दूँगा। उसने एक बेशकीमती चीज माँगी है, इन्साफ के खून का बदला। वह उसे मिलना चाहिए। मगर किसका खून? राजा ने फिर पहलू बदलकर सोचा — किसका खून? यह सवाल मेरे दिल में पैदा न होना चाहिए। इन्साफ जिसका जिसका खून माँगे उसका खून मुझे देना चाहिए। इन्साफ के सामने सबका खून बराबर है। मगर इन्साफ को खून पाने का हक है, इसका फैसला कौन करेगा? बैर के बुखार से भरे हुए आदमी के हाथ मे इसका फैसला नहीं होना चाहिए। अकसर एक कड़ी बात; एक दिल जला देने वाला ताना इन्साफ के दिल में खून की प्यास पैदा कर देता है। इस दिल जला देने वाले ताने की आग उस वक्त तक नहीं बुझती जब तक उस पर खून

के छींटे न दिये जाएँ। मैंने जबान दे दी है तो गलती हुई। पूरी बात सुने बगैर, मुझे इन्साफ के खून का बदला देने का वादा हरगिज न करना चाहिए था। इन विचारों ने राजा को कई मिनट तक अपने में खोया हुआ रक्खा। आखिर वह बोला — श्यामा, तुम कौन हो?

वृन्दा — एक अनाथ औरत।

राजा — तुम्हारा घर कहाँ है?

वृन्दा — माहनगर में।

रणजीतसिंह ने वृन्दा को फिर गौर से देखा। कई महीने पहले रात के समय माहनगर में एक भोली-भाली औरत की जो तसवीर दिल में खिंची थी वह इस औरत से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। उस वक्त आँखें इतनी बेधड़क न थीं। उस वक्त आँखों में शर्म का पानी था, अब शोखी की झलक है। तब सच्चा मोती था, अब झूठा हो गया।

महाराज बोले — श्यामा, इन्साफ किसका खून चाहता है?

वृन्दा — जिसे आप दोषी ठहरायें। जिस दिन हुजूर ने रात को माहनगर में पड़ाव किया था उसी रात को आपके सिपाही मुझे जबरदस्ती खींचकर पड़ाव पर लाये ओर मुझे इस काबिल नहीं

रक्खा कि लौटकर अपने घर जा सकूँ। मुझे उनकी नापाक निगाहों का निशाना बनना पड़ा। उनकी बेबाक जवानों ने उनके शर्मनाक इशारों ने मेरी इज्जत खाक में मिला दी। आप वहाँ मौजूद थे और आपकी बेकस रैयत पर यह जुल्म किया जा रहा था। कौन मुजरिम है? इन्साफ किसका खून चाहता है? इसका फैसला आप करें।

रणजीतसिंह जमीन पर आँखें गड़ाये सुनते रहे। वृन्दा ने जरा दम लेकर फिर कहना शुरू किया — मैं विधवा स्त्री हूँ। मेरी इज्जत और आबरू के रखवाले आप है। पति-वियोग के साढे तीन साल मैंने तपस्विनी बनकर काटे थे। मगर आपके आदमियों ने मेरी तपस्या धूल में मिला दी। मैं इस योग्य नहीं रही कि लौटकर अपने घर जा सकूँ। अपने बच्चों के लिए मेरी गोद अब नहीं खुलती। अपने बूढे बाप के सामने मेरी गर्दन नहीं उठती। मैं अब अपने गाँव की औरतों से आँखें चुराती हूँ। मेरी इज्जत लुट गई। औरत की इज्जत कितनी कीमती चीज है, इसे कौन नहीं जानता? एक औरत की इज्जत के पीछे लंका का शानदार राज्य मिट गया। एक ही औरत की इज्जत के लिए कौरव वंश का नाश हो गया। औरतों की इज्जत के लिए हमेशा खून की नदियाँ बही हैं और राज्य उलट गये है। मेरी इज्जत आपके आदमियों

ने ली है, इसका जवाबदेह कौन है। इन्साफ किसका खून चाहता है, इसका फैसला आप करें।

वृन्दा का चेहरा लाल हो गया। महाराजा रणजीत सिंह एक गँवार देहाती औरत का यह हौसला, यह ख्याल और जोशीली बात सुनकर सकते में आ गये। कांच का टुकड़ा टूटकर तेज धारावाला छुरा हो जाता है वहीं कैफियत इन्सान के टूटे हुए दिल की है।

आखिर महाराज ने ठंडी साँस ली और हसरत-भरे लहजे में बोले — श्यामा, इंसाफ जिसका खून चाहता है, वह मैं हूँ।

इतना कहने के साथ महाराज रणजीतसिंह का चेहरा भभक उठा और दिल बेकाबू हो गया। तत्काल भावनाओं के नशे में आदमी का दिल आसमान की बुलंदियों तक जा पहुँचता है। कांटे के चुभने से करहनेवाला इन्सान इसी नशे में मस्त होकर खंजर की नोक कलेजे में चुभो लेता है। पानी की बौछार से डरनेवाला इन्सान गले-गले पानी में अकड़ता हुआ चला जाता है। इस हालत में इन्सान का दिल एक साधारण शक्ति और असीम उत्साह अनुभव करने लगता है। इसी हालात में इन्सान छोटे-से-छोटे जलील से जलील काम करता है और इसी हालात में इन्सान अपने वचन और कर्म की ऊँचाई से देवताओं को भी

लज्जित कर देता है। महाराजा रणजीतसिंह अद्विग्न होकर उठ खड़े हुए और ऊँची आवाज में बोले — श्यामा, इन्साफ जिसका खून चाहता है, वह मैं हूँ! तुम्हारे साथ जो जुल्म हुआ है उसका जवाबदेह मैं हूँ। बुजुर्गों ने कहा है कि ईश्वर के सामने राजा अपने नौकरों की सख्ती और जबरदस्ती का जिम्मेदार होता है।

यह कहकर राजा ने तेजी के साथ अचकन के बन्द खोल दिये और वृन्दा के सामने घुटनों के बल, सीना फैलाकर बैठते हुए बोले — श्यामा, तुम्हारे पहलू में तलवार छिपी हुई है। वह विक्रमादित्य की तलवार है। उसने कितनी ही बार न्याय की रक्षा की है। आज एक अभागे राजा के खून से उसकी प्यास बुझा दो बेशक वह राजा अभागा है जिसके राज्य में अनाथों पर अत्याचार होता है।

वृन्दा के दिल में अब एक जबरदस्त तब्दीली पैदा हुई, बदले की भावना ने प्रेम और आदर को जगह दी। रणजीतसिंह ने अपनी जिम्मेदारी मान ली, वह उसके सामने मुजरिम की हैसियत मे इन्साफ की तलवार का निशाना बनने के लिए खड़े है, उनकी जान अब उसकी मुट्ठी में है। उन्हें मारना या जिलाना अब उसका अख्तियार है।

यह खयाल उसकी बदले की भावना को ठंडा कर देने के लिए काफी थे। प्रताप ओर ऐश्वर्य जब अपने स्वर्ण-सिंहासन से उतरकर दया की याचना करने लगता है तो कौन ऐसा हृदय है जो पसीज न जाएगा? वृन्दा ने दिल पर सब्र करके पहलू से खंजर निकाला मगर वार न कर सकीं। तलवार उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी।

महाराज रणजीतसिंह समझ गये कि औरत की हिम्मत दगा दे गई। वह बड़ी तेजी से लपके और तेगे को हाथ में उठा लिया। यकायक दाहिना हाथ पागलों जैसे जोश के साथ ऊपर को उठा। वह एक बार जोर से बोले 'वाह गुरु की जय' और करीब था कि तलवार सीने में डूब जाय, बिजली कौंधकर बादल के सीने में घुसने ही वाली थी कि वृन्दा एक चीख मारकर उठी और राजा के ऊपर उठे हुए हाथ को अपने दोनों हाथों से मजबूत पकड़ लिया। रणजीतसिंह ने झटका देकर हाथ छुड़ाना चाहा मगर कमजोर औरत ने उनके हाथ को इस तरह जकड़ा था कि जैसे मुहब्बत दिल को जकड़ लेती है। बेबस होकर बोले — श्यामा, इन्साफ को अपनी प्यास बुझाने दो।

श्यामा ने कहा — महाराज उसकी प्यास बुझ गई। यह तलवार इसकी गवाह है।

महाराज ने तेगे को देखा। इस वक्त उसमें दूज के चाँद की चमक थी। सत्य और न्याय के चमकते हुए सूरज ने उस चाँद को आलोकित कर दिया था।

[जमाना, फरवरी 1911]

विजय

शहज़ादा मसरूर की शादी मलका मख़मूर से हुई और दोनों आराम से ज़िन्दगी बसर करने लगे। मसरूर ढोर चराता, खेत जोतता, मख़मूर खाना पकाती और चरखा चलाती। दोनों तालाब के किनारे बैठे हुए मछलियों का तैरना देखते, लहरों से खेलते, बगीचे में जाकर चिड़ियों के चहचहे सुनते और फूलों के हार बनाते। न कोई फिक्र थी, न कोई चिन्ता थी। लेकिन बहुत दिन न गुज़रने पाये थे उनके जीवन में एक परिवर्तन आया। दरबार के सदस्यों में बुलहवस खाँ नाम का एक फ़सादी आदमी था। शाह मसरूर ने उसे नज़र बन्द कर रखा था। वह धीरे-धीरे मलका मख़मूर के मिज़ाज में इतना दाखिल हो गया कि मलका उसके मशविरे के बग़ैर कोई काम न करती। उसने मलका के लिए एक हवाई जहाज बनाया जो महज़ इशारे से चलता था। एक सेकेण्ड में हज़ारों मील रोज जाता ओर देखते-देखते ऊपर की दूनिया की खबर लाता। मलका उस जहाज़ पर बैठकर योरोप और अमरीका की सैर करती। बुलहवस उससे कहता, साम्राज्य को फैलाना बादशाहों का पहला कर्तव्य है। इस लम्बी-

चौड़ी दुनिया पर कब्ज़ा कीजिए, व्यापार के साधन बढ़ाइये, छिपी हुई दौलत निकालिये, फौजें खड़ी कीजिए, उनके लिए अस्त्र-शस्त्र जुटाइये। दुनिया हौसलामन्दों के लिए है। उन्हीं के कारनामे, उन्हीं की जीतें याद की जाती हैं। मलका उसकी बातों को खूब कान लगाकर सुनती। उसके दिल में हौसले का जोश उमड़ने लगता। यहाँ तक कि अपना सरल-सन्तोषी जीवन उसे रूखा-फीका मालूम होने लगा। मगर शाह मसरूर सन्तोष का पुतला था। उसकी जिन्दगी के वह मुबारक लमहे होते थे जब वह एकान्त के कुंज में चुपचाप बैठकर जीवन और उसके कारणों पर विचार करता और उसकी विराटता और आश्चर्यों को देखकर श्रद्धा के भाव से चीख उठता — आह! मेरी हस्ती कितनी नाचीज हैं, उसे मलका के मंसूबों और हौसलों से ज़रा भी दिलचस्पी न थी। नतीजा यह हुआ कि आपस के प्यार और सच्चाई की जगह सन्देह पैदा हो गये।

दरबारियों में गिरोह बनने लगे। जीवन का सन्तोष विदा हो गया। मसरूर को इन सब परेशानियों के लिए जो उसकी सभ्यता के रास्ते में बाधक होती थीं, धीरज न था। वह एक दिन उठा और सल्तनत मलका के सुपुर्द करके एक पहाड़ी इलाके में जा छिपा। सारा दरबार नयी उमंगों से मतवाला हो रहा था। किसी

ने बादशाह को रोकने की कोशिश न की। महीनों, वर्षों हो गये, किसी को उनकी खबर न मिली।

2

मलका मख़मूर ने एक बड़ी फ़ौज खड़ी की और बुलहवस खाँ को चढ़ाइयों पर रवाना किया। उसने इलाके पर इलाके और मुल्क पर मुल्क जीतने शुरू किये। सोने-चांदी और हीरे-जवाहरात के अम्बार हवाई जहाजों पर लदकर राजधानी को आगे लगे। लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि इन रोज-ब-रोज बढ़ती हुई तरक्कियों से मुल्क के अन्दरूनी मामलों में उपद्रव खड़े होने लगे। वह सूबे जो अब हुक्म के ताबेदार थे, बग़ावत के झण्ड़े करने लगे। कर्णसिंह बुन्देला एक फ़ौज लेकर चढ़ आया। मगर अजब फौज थी, न कोई हरबे-हथियार, न तोपें, सिपाहियों के हाथों में बंदूक और तीर-तुपुक के बजाय बरबर-तम्बूरे और सारंगियाँ, बेले, सितार और ताऊस थे। तोपों की धनगरज सदाओं के दले तबले और मृदंग की कुमक थी। बम गोलों की जगह जलतरंग, आर्गन और आर्केस्ट्रा था। मलका मख़मूर ने समझा आन की आन में

इस फौज को तितर-बितर करती हूँ। लेकिन ज्यों ही उस की फौज कर्णसिंह के मुकाबिले में रवना हुई, लुभावने, आत्मा को शान्ति पहुँचाने वाले स्वरों की वह बाढ़ आयी, मीठे और सुहाने गानों की वह बौछार हुई कि मलका की सेना पत्थर की मरतों की तरह आत्मविस्मृत होकर खड़ी रह गयी। एक क्षण में सिपाहियों की आँखें नशे में डूबने लगीं और वह हथेलियाँ बजा-बजा कर नाचने लगे, सर हिला-हिलाकर उछलने लगे, फिर सबके सब बेजान लाश की तरह गिर पड़े। और सिर्फ सिपाही ही नहीं, राजधानी में भी जिसके कानों में यह आवाजें गयीं वह बेहोश हो गया। सारे शहर में कोई जिन्दा आदमी नज़र न आता था। ऐसा मालूम होता था कि पत्थर की मूरतों का तिलस्म है। मलका अपने जहाज पर बैठी यह करिश्मा देख रही थी। उसने जहाज़ नीचे उतारा कि देखूँ क्या माजरा है? पर उन आवाजों के कान में पहुँचते ही उसकी भी वही दशा हो गयी। वह हवाई जहाज पर नाचने लगी और बेहोश होकर गिर पड़ी। जब कर्णसिंह शाही महल के करीब जा पहुँचा और गाने बन्द हो गये तो मलका की आँखें खुजीं जैसे किसी का नशा टूट जाये। उसने कहा — मैं वही गाने सुनूँगी, वही राग, वही अलाप, वही लुभाने वाले गीत। हाय, वह आवाज़ें कहो गयीं। कुछ परवाह नहीं, मेरा राज जाये, पाट जाये, में वही राग सुनूँगी। सिपाहियों का नशा भी टूटा।

उन्होंने उसके स्वर मिलाकर कहा — हम वही गीत सुनेंगे, वही प्यारे-प्यारे मोहक राग। बला से हम गिरफ्तार होंगे, गुलामी की बेड़ियाँ पहनेंगे, आजादी से हाथ धोयेंगे पर वही राग, वही तराने वही तानें, वही धुनें।

3

सू बेदार लोचनदास को जब कर्णसिंह की विजय का हाल मालूम हुआ तो उसने भी विद्रोह करने की ठानी। अपनी फौज लेकर राजधानी पर चढ़ दौड़ा। मलका ने अबकी जान-तोड़ मुकाबला करने की ठानी। सिपाहियों को खूब ललकारा ओर उन्हें लोचदास के मुकाबले में खड़ा किया मगर वाह री हमलावन फौज! न कहीं सवार, न कहीं प्यादे, न तोप, न बन्दूक, न हरबे, न हथियार, सिपाहियों की जगह सुन्दर नर्तकियों के गोल थे और थियेटर के एक्टर। सवारों की जगह भांडों और बहुरूपियों के गोल। मोर्चो की जगह तीतर और बटेरों के जोड़ छूटे हुए थे तो बन्दूक की जगह सर्कस ओर बाइसकोप के खेमे पढ़े थे। कहीं हीरे-जवाहरात अपनी आब-ताब दिखा रहे थे, कहीं तरह-तरह के चरिन्दों-परिन्दों की नुमाइश खुली हुई थी। मैदान के एक हिस्से में धरती की

अजीब-अजीब चीजें, झने और बर्फिस्तानी चोटियाँ और बर्फ के पहाड, पेरिस का बाजार, लन्दन का एक्स्चेंज या स्टन की मंडियाँ, अफ्रीका के जंगल, सहारा के रेगिस्तान, जापान की गुलकारियाँ, चीन के दरियाई शहर, दक्षिण अमरीका के आदमखोर, क़ाफ़ की परियाँ, लैपलैण्ड के सुमूरूपोश इन्सान और ऐसे सैंकड़ों विचित्र आकर्षक दृश्य चलते-फिरते दिखायी पड़ते थे। मलका की फौज यह नज्ज़ारा देखते ही बेसुध होकर उसकी तरफ दौड़ी। किसी को सर-पैर का खयाल न रहा। लोगों ने बन्दूकें फेंक दीं, तलवारें और किरचें उतार फेंकीं और बेतहाशा इन दृश्यों के चारों तरफ जमा हो गये। कोई नाचने वालियों की मीठी अदाओं ओर नाजुक चलन पर दिल दे बैठा, कोई थियेटर के तमाशों पर रीझा। कुछ लोग तीतरों और बटेरों के जोड़ देखने लगे और सब के सब चित्र-लिखित-से मन्त्रमुग्ध खड़े रह गये। मलका अपने हवाई जहाज पर बैठी कभी थियेटर की तरफ जाती कभी सर्कस की तरफ दौड़ती, यहाँ तक कि वह भी बेहोश हो गयी। लोचनदास जब विजय करता हुआ शाही महल में दाखिल हो गया तो मलका की आँखें खुलीं। उसने कहा — हाय, वह तमाशे कहाँ गये, वह सुन्दर-सुन्दर दृश्य, वह लुभावने दृश्य कहाँ गायब हो गये, मेरा राज जाये, पाट जाये लेकिन मैं यह सैर जरूर देखूँगी। मुझे आज मालूम हुआ कि ज़िन्दगी में क्या-क्या मज़े हैं!

सिपाही भी जागे। उन्होने एक स्वर से कहा — हम वही सैर और तमाशे देखेंगे, हमें लड़ाई-भिड़ाई से कुछ मतलब नहीं, हमको आज़ादी की परवाह नहीं, हम गुलाम होकर रहेंगे, पैरों में बेड़ियाँ पहनेंगे पर इन दिलफरेबियों के बगैर नहीं रह सकेंगे।

4

मलका मख़मूर को अपनी सल्तनत का यह हाल देखकर बहुत दुःख होता। वह सोचती, क्या इसी तरह सारा देश मेरे हाथ से निकल जाएगा? अगर शाह मसरूर ने यों किनारा न कर लिया होता तो सल्तनत की यह हालत कभी न होती। क्या उन्हें यह कैफियतें मालूम न होंगी। यहाँ से दम-दम की खबरें उनके पास आ जाती हैं मगर जरा भी जुम्बिश नहीं करते। कितने बेरहम हैं। खैर, जो कुछ सर पर आयेगी सह लूँगी पर उनकी मिन्नत न करूँगी। लेकिन जब वह उन आकर्षक गानों को सुनती और दृश्यों को देखती तो यह दुखदायी विचार भूल जाते, उसे अपनी जिन्दगी बहुत आनन्द की मालूम होती। बुलहवस खाँ ने लिखा — मैं देश्मनों से घिर गया हूँ, नफरत अली और कीन खाँ और ज्वालासिंह ने चारों तरफ से हमला शुरू कर दिया है। तब तक

ओर कुमक न आये, में मजबूर हूँ। पर मलका की फौज यह सैर और गाने छोड़कर जाने पर राजी न होती थी। इतने में दो सूबेदसरों ने फिर बग़ावत की। मिर्जा शमीम और रसराजसिंह दोनों एक होकर राजधानी पर चढ़े। मलका की फौज में अब न लज्जा थी न वीरता, गाने—बजाने और सैरै-तमाशे ने उन्हें आरामतलब बना दिया था। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से सज-सजा कर मैदान में निकले। दुश्मन की फौज इन्तजार करती खड़ी थी लेकिन न किसी के पास तलवार थी, न बन्दूक, सिपाहियों के हाथों में फूलों के खुलदस्ते थे, किसी के हाथ में इतर की शीशियाँ, किसी के हाथ में गुलाब के फ़व्वाहर, कहीं लवेण्डर की बोतलें, कहीं मुश्क वगैरह की बहार-सारा मैदान अत्तार की दूकान बना हुआ था। दूसरी तरफ रसराज की सेना थी। उन सिपाहियों के हाथों में सोने के तश्त थे, जरबफ्त के खनपेशों से ढके हुए, किसी में बर्फी और मलाई थी, किसी में कोरमे और कबाब, किसी में खुबानी और अंगूर, कहीं कश्मीर की नेमतें सजी हुई थीं, कहीं इटली की चटनियों की बहार थी और कहीं पुर्तगाल और फ्रांस की शराबें शीशियों में महक रही थीं। मलका की फौज यह संजीवनी सुगन्ध सूँघते ही मतवाली हो गयी। लोगों ने हथियार फेंक दिये और इन स्वादिष्ट पदार्थों की ओर दौड़े, कोई हलुवे पर गिरा, और कोई मलाई पर टूटा, किसी ने कोरमे और कबाब पर

हाथ बढ़ाये, कोई खुबानी और अंगूर चखने लगा, कोई कश्मीरी मुरब्बों पर लपका, सारी फौज भिखमंगों की तरह हाथ फैलाये यह नेमतें माँगती थी और बेहद चाव से खाती थी। एक-एक कौर के लिए, एक चमचा फीरनी के लिए, शराब के एक प्याले के लिए खुशामदें करते थे, नाकें रगड़ते थे, सिजदे करते थे। यहाँ तक कि सारी फौज पर एक नशा छा गया, बेदम होकर गिर पड़ी। मलका भी इटली के मरब्बों के सामने दामन फैला-फैलाकर मिन्नतें करती और कहती थी कि सिर्फ एक लुकमा और एक प्याला दो और मेरा राज लो, पाट लो, मेरा सब कुछ ले लो लेकिन मुझे जी-भर खा-पी लेने दो। यहाँ तक कि वह भी बेहोश होकर गिर पड़ी।

5

मलका की हालत बेहद दर्दनाक थी। उसकी सल्तनत का एक छोटा-सा हिस्सा दुश्मनों के हाथ से बचा था। उसे एक दम के लिए भी इस गुलामी से नजात न मिलती कि कर्णसिंह के दरबार में हाजिर होती, कभी मिर्जा शमीम की खुशामद करती, इसके बगैर उसे चैन न आता। हाँ, जब कभी इस मुसाहिबी और जिल्लत से

उसकी तबियत थक जाती तो वह अकेले बैठकर घंटों रोती और चाहती कि जाकर शाह मसरूर को मना लाऊँ। उसे यकीन था कि उनके आते ही बागी काफूर हो जायेंगे पर एक ही क्षण में उसकी तबियत बदल जाती। उसे अब किसी हालत पर चैन आता था।

अभी तक बुलहवस खाँ स्वामिभक्ति में फर्क न आया था। लेकिन जब उसने सल्तनत की यह कमजोरी देखी तो वह भी बगावत कर बैठा। उसकी आजमाई हुई फौज के मुकाबले में मलका की फौज क्या ठहरती, पहले ही हमले में क़दम उखड़ गये। मलका खुद गिरफ्तार हो गयी। बुलहवस खाँ ने उसे एक तिलस्माती कैदखाने में बन्द कर दिया। सेवक वे स्वामी बनद बैठा। यह क़ैदख़ाना इतना लम्बा-चौड़ा था कि कैदी कितना ही भागने की कोशिश करे, उसकी चहारदीवारी से बाहर नहीं निकल सकता था। वहाँ सन्तरी और पहरेदार न थे लेकिन वहाँ की हवा में एक खिंचाव था।

मलका के पैरों में न बेड़ियाँ थी न हाथों में हथकड़ियाँ लेकिन शरीर का अंग-प्रत्यंग तारों से बँधा हुआ था। वह अपनी इच्छा से हिल भी न सकती थी। वह अब दिन के दिन बैठी हुई जमीन पर मिट्टी के घरौंदे बनाया करती और समझती यह महल है। तरह-तरह के स्वांग भरती और समझती दुनिया मुझे देखकर लट्टू

हो जाती है। पत्थर टुकड़ों से अपना शरीर गूँध लेती ओर समझती कि अब हूरें भी मेरे सामने मात हैं। वह दरख्तों से पूछती, मैं कितनी खूबसूरत हूँ। शाखों पर बैठी चिड़ियों से पूछती, हीरे-जवाहरात का ऐसा गुलबन्द तुमने देखा है? मिट्टी की ठीकरों का अम्बार लगाती और आसमान से पूछती, इतनी दौलत तुमने देखी है? मालूम नहीं, इस हालत में कितने दिन गुजर गये। मिर्जा शमीम, लाचनदास वगैरह हरदम उसे घेरे रहते थे। शायद वह उससे डरते थे। ऐसा न हो, यह शाह मसरूर को कोई संदेशा भेज दे। क़ैद में भी उस पर भरोसा न था। यहाँ तक कि मलका की तबियत इस क़ैद से बेज़ार हो गयी, वह निकल भागने की तदबीरें सोचने लगी। इसी हालत में एक दिन मलका बैठी सोच रही थी, मैं क्या हो गई? जो मेरे इशारों के गुलाम थे वह अब मेरे मालिक हैं, मुझे जिस कल चाहते हैं बिठाते हैं, जहां चाहते हैं घुमाते हैं। अफसोस, मेंने शाह मसरूर का कहना न माना, यह उसी की सजा है। काश, एक बार मुझे किसी तरह अस क़ैद से छुटकारा मिल जाता तो मैं चलकर उनके पैरों पर सिर रख देती और कहती, लौंडी की खता माफ कीजिए। मैं खून के आँसू रोती और उन्हें मना लाती और फिर कभी उनके हुक्म से इनकार न करती। मैंने इस नमकहराम बुलहवस खाँ की बातों में पड़कर उन्हें निर्वासित कर दिया, मेरी अक़्ल कहाँ चली गयी थी। यह

सोचते-सोचते मलका रोने लगी कि यकायक उसने देखा, सामने एक खिले हुए मुखड़े वाला गम्भीर पुरुष सादा कपड़े खड़ा है। मलका ने आश्चर्यचकित होकर पूछा — आप कौन हैं? यहाँ मैंने आपको कभी नहीं देखा।

पुरुष — हाँ, इस कैदखाने में मैं बहुत कम आता हूँ। मेरा काम है कि जब कैदियों की तबियत यहाँ से बेजार हो तो उन्हें यहाँ से निकलने में मदद दूँ।

मलका — आपका नाम?

पुरुष — संतोखसिंह।

मलमा — आप मुझे इस कैद से छुटकारा दिला सकते हैं?

संतोख — हाँ, मेरा तो काम ही यह है, लेकिन मेरी हिदायतों पर चलना पड़ेगा।

मलका — मैं आपके हुक्म से जौ-भर भी इधर-उधर न करूँगी, खुदा के लिए मुझे यहाँ से जल्द से जल्द ले चलिए, मैं मरते दम तक आपकी शुक्रगुजार रहूँगी।

संतोख — आप कहाँ चलना चाहती हैं?

मलका — मैं शाह मसरूर के पास जाना चाहती हूँ। आपको मालूम है वह आजकल कहाँ हैं?

संतोख — हाँ, मालूम है, मैं उनका नौकर हूँ। उन्हीं की तरफ से मैं इस काम पर तैनात हूँ?

मलका — तो खुदा के वास्ते मुझे जल्द ले चलिए, मुझे अब यहाँ एक घड़ी रहना जी पर भारी हो रहा है।

संतोख — अच्छा तो यह रेशमी कपड़े और यह जवाहरात और सोने के जेवर उतारकर फेंक दो। बुलहवस ने इन्हीं जंजीरों से तुम्हें जकड़ दिया है। मोटे से मोटा कपड़ा जो मिल सके पहन लो, इन मिट्टी के घरौंदों को गिरा दो। इतर और गुलाब की शीशियाँ, साबुन की बट्टियाँ, और यह पाउडर के डब्बे सब फेंक दो।

मलका ने शीशियों और पाउडर के तड़ाक-तड़ाक पटक दिये, सोने के जेवरों को उतारकर फेंक दिया कि इतने में बुलहवस खाँ धाड़ें मार कर रोता हुआ आकर खड़ा हुआ और हाथ बाँधकर कहने लगा — दोनों जहानों की मलका, मैं आपका नाचीज़ गुलाम हूँ, आप मुझसे नाराज हैं?

मलका ने बदला लेने के अपने जोश में मिट्टी के घरौंदों को पैरों से ठुकरा दिया, ठीकरों के अम्बार को ठोकरें मारकर बिखेर दिया। बुलहवस के शरीर का एक-एक अंग कट-कटकर गिरने

लगा। वह बेदम होकर जमीन पर गिर पड़ा और दम के दम में जहन्नुम रसीद हुआ।

संतोखसिंह ने मलका से कहा — देखा तुमने? इस दुश्मन को तुम कितना डरावना समझती थीं, आन की आन में खाक में मिल गया।

मलका — काश, मुझे यह हिकमत मालूम होती तो मैं कभी की आजाद हो जाती। लेकिन अभी और भी तो दुश्मन हैं।

संतोख — उनको मारना इससे भी आसान है। चलो कर्णसिंह के पास, ज्यों ही वह अपना सुर अलापने लगे और मीठी-मीठी बातें करने लगे, कानों पर हाथ रख लो, देखो, अदृश्य के पर्दे से फिर चीज सामने आती है।

मलका कर्णसिंह के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही चारों तरफ से ध्रुपद और तिल्लाने के वार होने लगे। पियानो बजने लगे। मलका ने दोनों कान बन्द कर लिये। कर्णसिंह के दरबार में आग का शोला उठने लगा। सारे दरबारी जलने लगे, कर्णसिंह दौड़ा हुआ आया और बड़े विनय-पूर्वक मलका के पैरों पर गिरकर बोला — हुजूर, अपने इस हमेशा के गुलाम पर रहम करें। कानों पर से हाथ हटा कर वर्ना इस गरीब की जान पर बन आयेगी। अब कभी हुजूर की शान में यह गुस्ताखी न होगी।

मलका ने कहा — अच्छा, जा तेरी जाँ-बख्शी की। अब कभी बग़ावत न करना वर्ना जान से हाथ धोएगा।

कर्णसिंह ने संतोखसिंह की तरफ प्रलय की आँखों से देखकर सिर्फ इतना कहा — 'जालिम, तुझे मौत भी नहीं आयी' और बेतहाशा गिरता-पड़ता भागा।'

संतोखसिंह ने मलका से कहा — देखा तुमने, इनको मारना कितना आसान था? अब चलो लोचनदान के पास। ज्योंही वह अपने करिश्मे दिखाने लगे, दोनों आँखें बन्द कर लेना। मलका लोचनदास के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही लोचन ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना शुरू किया। ड्रामे होने लगे, नर्तकों ने थिरकना शुरू किया। लालो-जमुर्रद की कश्तियाँ सामने आने लगीं लेकिन मलका ने दोनों आँखें बन्द कर लीं। आन की आन में वह ड्रामे और सर्कस और नाचनेवालों के गिरोह खाक में मिल गये। लोचनदास के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, निराशापूर्ण धैर्य के साथ चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, यह तमाशा देखो, यह पेरिस के क़हवेखाने, यह मिस एलिन का नाच है। देखो, अंग्रेज रईस उस पर कितनी उदारता से सोने और हीरे-जवाहरात निछावर कर रहे हैं।

जिसने यह सैर-तमाशे ने देखे उसकी जिन्दगी मौत से बदतर। लेकिन मलका ने आँखें न खोलीं। तब लोचनदास बदहवास और घबराया हुआ, बेद के दरख्त की तरह काँपता हुआ मलका के सामने आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला — हुजूर, आँखें खोलें। अपने इस गुलाम पर रहम करें, नहीं तो मेरी जान पर बन जाएगी। गुलाम की गुस्ताखियाँ माफ़ फीरमायें। अब यह बेअदबी न होगी।

मलका ने कहा — अच्छा जा, तेरी जाँ-बख्शी की लेकिन खबरदार, अब सर न उठाना नहीं तो जहन्नुम रसीद कर दूँगी।

लोचनदास यह सुनते ही गिरता-पड़ता जान लेकर भागा। पीछे फिरकर भी न देखा।

संतोखसिंह ने मलका से कहा — अब चलो मिर्जा शमीम और रसराज के पास। वहाँ एक हाथ से नाक बन्द कर लेना और दूसरे हाथ से खानों के तश्त को जमीन पर गिरा देना। मलका रसराज और शमीम के दरबार में पहुँचीं उन्होंने जो संतोख को मलका के साथ देखा तो होश उड़ गये। मिर्जा शमीम ने कस्तूरी और केसर की लपटें उड़ाना शुरू कीं। रसराज स्वादिष्ट खानों के तश्त सजा-सजाकर मलका के सामने लाने लगा, और उनकी तारीफ करने लगा — यह पुर्तगात की तीन आँच दी हुई शराब

है, इसे पिये तो बुड्ढा भी जवान हो जाये। यह फ्रांस का शैम्पेन है, इसे पिये तो मुर्दा जिन्दा हो जाय। यह मथुरा के पेड़े हैं, उन्हें खाये तो स्वर्ग की नेमतों को भूल जाय।

लेकिन मलका ने एक साथ से नाक बन्द कर ली और दूसरे हाथ से उन तश्तों को जमीन पर गिरा दिया और बोतलों को ठोकरें मार-मारकर चूर कर दिया। ज्यों-ज्यों उसकी ठोकरें पड़ती थीं, दरबार के दरबारी चीख-चीख कर भागते थे। आखिर मिर्जा शमीम और रसराज दोनों परेशान और बेहाल, सर से खून जारी, अंग-अंग टूटा हुआ, आकर मलका के सामने खड़े हो गये और गिड़गिड़ाकर बोले — हुजूर, गुलामों पर रहम करें। हुजूर की शान में जो गुस्ताखियाँ हुई हैं उन्हें मुआफ फरमायें, अब फिर ऐसी बेअदबी न होगी।

मलका ने कहा — रसराज को मैं जान से माना चाहती हूँ। उसके कारण मुझे जलील होना पड़ा। लेकिन संतोखसिंह ने मना किया — नहीं, इसे जान से न मारिये। इस तरह का सेवक मिलना कठिन है। यह आपके सब सूबेदार अपने काम में यकता हैं सिर्फ इन्हें काबू में रखने की जरूरत है।

मलका ने कहा — अच्छा जाओ, तुम दोनों की भी जाँ-बख्शी की लेकिन खबरदार, अब कभी उपद्रव मत खड़ा करना वर्ना तुम जानोगे।

दोनों गिरते-पड़ते भागे, दम के दम में नजरों से ओझल हो गये। मलका की रिआया और फौज ने भेंटे दीं, घर-घर शादियाने बजने लगे। चारों बागी सूबेदार शहरूपनाह के पास छापा मारने की घात में बैठ गये लेकिन संतोखसिंह जब रिआया और फौज को मसजिद में शुक्रिए की नमाज अदा करने के लिए ले गया तो बागियों को कोई उम्मीद न रही, वह निराश होकर चले गये। जब इन कामों से फुर्सत हुई तो मलका ने संतोखसिंह से कहा — मेरे पास अलफ़ाज नहीं में इतनी ताकत है कि मैं आपके एहसानों का शुक्रिया अदा कर सकूँ। आपने मुझे गुलामी ताकत से छुटकारा दिया। मैं आखिरी दम तक आपका जस गाऊँगी। अब शाह मसरूर के पास मुझे ले चलिए, मैं उनकी सेवा करके अपनी उम्र बसर करना चाहती हूँ। उनसे मुँह मोड़कर मैंने बहुत जिल्लत और मसीबत झेली। अब अभी उनके कदमों से जुदा न हूँगी।

संतोखसिंह — हाँ, हाँ, चलिए मैं तैयार हूँ लेकिन मंजिल सख्त है, घबराना मत।

मलका ने हवाई जहाज मँगाया। पर संतोखसिंह ने कहा — वहाँ हवाई जहाज का गुजर नहीं है, पैदल पड़ेगां मलका ने मजबूर होकर जहाज वापस कर दिया और अकेले अपने स्वाती को मनाने चली। वह दिन-भर भूखी-प्यासी पैदल चलती रही। आँखों के सामने अंधेरा छाने लगा, प्यास से गले में कांटे पड़ने लगे।

कांटों से पैर छलनी हो गये। उसने अपने मार्ग-दर्शक से पूछा — अभी कितनी दूर है?

संतोख — अभी बहुत दूर है। चुपचाप चली आओ। यहाँ बातें करने से मंजिल खोटी हो जाती है।

रात हुई, आसमान पर बादल छा गये। सामने एक नदी पड़ी, किश्ती का पता न था। मलका ने पूछा — किश्ती कहाँ है?

संतोष ने कहा — नदी में चलना पड़ेगा, यहाँ किश्ती कहाँ है।

मलका को डर मालूम हुआ लेकिन वह जान पर खेलकर दरिया में चल पड़ी। मालूम हुआ कि सिर्फ आँख का धोखा था। वह रेतीली जमीन थी। सारी रात संतोखसिंह ने एक क्षण के लिए भी दम न लिया। जब भोर का तारा निकल आया तो मलका ने रोकर कहा — अभी कितनी दूर है, मैं तो मरी जाती हूँ।

संतोखसिंह ने जवाब दिया — चुपचाप चली आओ। मलका ने हिम्मत करके फिर कदम बढ़ाये। उसने पक्का इरादा कर लिया था कि रास्ते में मर ही क्यों न जाऊँ पर नाकाम न लौटूँगी। उस कैद से बचने के लिए वह कड़ी मुसीबतें झेलने को तैयार थी। सूरज निकला, सामने एक पहाड़ नजर आया जिसकी चोटियाँ आसमान में घुसी हुई थीं।

संतोखसिंह ने पूछा — इसी पहाड़ी की सबसे ऊँची चोटी पर शाह मसरूर मिलेंगे, चढ़ सकोगी?

मलका ने धीरज से कहा — हाँ, चढ़ने की कोशिश करूँगी। बादशाह से भेंट होने की उम्मीद ने उसके बेजान पैरों में पर लगा दिए। वह तेजी से कदम उठाकर पहाड़ों पर चढ़ने लगी। पहाड़ के बीचों बीच आते-आते वह थककर बैठ गयी, उसे ग़श आ गया। मालूम हुआ कि दम निकल रहा है। उसने निराश आँखों से अपने मित्र को देखा।

संतोखसिंह ने कहा — एक दफा और हिम्मत करो, दिल में खुदा की याद करो मलका ने खुदा की याद की। उसकी आँखें खुल गयीं। वह फुर्ती से उठी और एक ही हल्ले में चोटी पर जा पहुँची। उसने एक ठंडी सांस ली। वहाँ शुद्ध हवा में सांस लेते ही मलका के शरीर में एक नयी जिंदगी का अनुभव हुआ।

उसका चेहरा दमकने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि मैं चाहूँ तो हवा में उड़ सकती हूँ। उसने खुश होकर संतोखसिंह तरफ देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गयी। शरीर वही था, पर चेहरा शाह मसरूर का था।

मलका ने फिर उसकी तरफ अचरज की आँखों से देखा। संतोखसिंह के शरीर पर से एक बादल का पर्दा हट गया और मलका को वहाँ शाह मसरूर बड़े नजर आए — वही हल्का नीला कुर्ता, वही गेरुए रंग की तरह। उनके मुखमण्डल से तेज की कांति बरस रही थी, माथा तारों की तरह चमक रहा था। मलका उनके पैरों पर गिर पड़ी। शाह मसरूर ने उसे सीने से लगा लिया।

शादी की वजह

यह सवाल टेढ़ा है कि लोग शादी क्यो करते है? औरत और मर्द को प्रकृत्या एक-दूसरे की जरूरत होती है लेकिन मौजूदा हालत मे आम तौर पर शादी की यह सच्ची वजह नही होती बल्कि शादी सभ्य जीवन की एक रस्म-सी हो गई है। बहरहाल, मैने अक्सर शादीशुदा लोगो से इस बारे मे पूछा तो लोगो ने इतनी तरह के जवाब दिए कि मै दंग रह गया। उन जवाबों को पाठकों के मनोरंजन के लिए नीचे लिखा जाता है —

एक साहब का तो बयान है कि मेरी शादी बिल्कुल कमसिनी मे हुई और उसकी जिम्मेदारी पूरी तरह मेरे माँ-बाप पर है। दूसरे साहब को अपनी खूबसूरती पर बड़ा नाज है। उनका ख्याल है कि उनकी शादी उनके सुन्दर रूप की बदौलत हुई। तीसरे साहब फरमाते है कि मेरे पड़ोस मे एक मुंशी साहब रहते थे जिनके एक ही लड़की थी। मैने सहानुभूतिवश खुद ही बातचीत करके शादी कर ली। एक साहब को अपने उत्तराधिकारी के रूप मे एक लड़के के जरूरत थी। चुनांचे आपने इसी धुन मे शादी कर ली। मगर बदकिस्मती से अब तक उनकी सात लड़कियाँ

हो चुकी है और लड़के का कही पता नही। आप कहते है कि मेरा ख्याल है कि यह शरारत मेरी बीवी की है जो मुझे इस तरह कुढाना चाहती है। एक साहब पड़े पैसे वाले है और उनको अपनी दौलत खर्च करने का कोई तरीका ही मालूम न था इसलिए उन्होने अपनी शादी कर ली। एक और साहब कहते है कि मेरे आत्मीय और स्वजन हर वक्त मुझे घेरे रहा करते थे इसलिए मैने शादी कर ली। और इसका नतीजा यह हुआ कि अब मुझे शान्ति है। अब मेरे यहाँ कोई नही आता। एक साहब तमाम उम्र दूसरों की शादी-ब्याह पर व्यवहार और भेट देते-देते परेशान हो गए तो आपने उनकी वापसी की गरज से आखिरकार खुद अपनी शादी कर ली।

और साहबो से जो मैने दर्याफ्त किया तो उन्होने निम्नलिखित कारण बतलाये। यह जवाब उन्ही के शब्दों मे नम्बरवार नीचे दर्ज किए जाते है —

1 – मेरे ससुर एक दौलत मन्द आदमी थे और उनकी यह इकलौती बेटी थी इसलिए मेरे पिता ने शादी की।

2 – मेरे बाप-दादा सभी शादी करते चले आए है इसलिए मुझे भी शादी करनी पड़ी।

3 – मै हमेशा से खामोश और कम बोलने वाला रहा हूँ, इनकार न कर सका।

4 – मेरे ससुर ने शुरू मे अपने धन-दौलत का बहुत प्रदर्शन किया इसलिए मेरे माँ-बाप ने फौरन मेरी शादी मंजूर कर ली।

5 – नौकर अच्छे नही मिलते थे ओर अगर मिलते भी थे तो ठहरते नही थे। खास तौर पर खाना पकाने वाला अच्छा नही मिलता। शादी के बाद इस मुसीबत से छुटकारा मिल गय।

6 – मै अपना जीवन-बीमा कराना चाहता था और खानापूरी के वास्ते विधवा का नाम लिखना जरूरी था।

7 – मेरी शादी जिद मे हुई। मेरे ससुर शादी के लिए रजामन्द न होते थे मगर मेरे पिता को जिद हो गई। इसलिए मेरी शादी हुई। आखिरकार मेरे ससुर को मेरी शादी करनी ही पड़ी।

8 – मेरे ससुराल वाले बड़े ऊँचे खानदान के है इसलिए मेरे माता-पिता ने कोशिश करके मेरी शादी की।

9 – मेरी शिक्षा की कोई उचित व्यवस्था न थी इसलिए मुझे शादी करनी पड़ी।

10 – मेरे और मेरी बीवी के जनम के पहले ही हम दोनो के माँ-बाप शादी की बातचीत पक्की हो गई थी।

11 – लोगो के आग्रह से पिता ने शादी कर दी।

12 – नस्ल और खानदान चलाने के लिए शादी की।

13 – मेरी माँ को देहान्त हो गया था और कोई घर को देखनेवाला न था इसलिए मजबूरन शादी करनी पड़ी।

14 – मेरी बहने अकेली थी, इस वास्ते शादी कर ली।

15 – मै अकेला था, दफ्तर जाते वक्त मकान मे ताला लगाना पड़ता था इसलिए शादी कर ली।

16 – मेरी माँ ने कसम दिलाई थी इसलिए शादी की।

17 – मेरी पहली बीवी की औलाद को परवरिश की जरूरत थी, इसलिए शादी की।

18 – मेरी माँ का ख्याल था कि वह जल्द मरने वाली है और मेरी शादी अपने ही सामने कर देना चाहती थी, इसलिए मेरी शादी हो गई। लेकिन शादी को दस साल हो रहे है भगवान की दया से माँ के आशीष की छाया अभी तक कायम है।

19 – तलाक देने को जी चाहता था इसलिए शादी की।

20 – मै मरीज रहता हूँ और कोई तीमारदार नही है इसलिए मैने शादी कर ली।

21 – केवल संयोग से मेरा विवाह हो गया।

22 – जिस साल मेरी शादी हुई उस साल बहुत बड़ी सहालग थी। सबकी शादी होती थी, मेरी भी हो गई।

23 – बिला शादी के कोई अपना हाल पूछने वाला न था।

24 – मैंने शादी नही की है, एक आफत मोल ले ली है।

25 – पैसे वाले चचा की अवज्ञा न कर सका।

26 – मै बुड्ढा होने लगा था, अगर अब न करता तो कब करता।

27 – लोक हित के ख्याल से शादी की।

28 – पड़ोसी बुरा समझते थे इसलिए निकाह कर लिया।

29 – डाक्टरों ने शादी के लिए मजबूर किया।

30 – मेरी कविताओं को कोई दाद न देता था।

31 – मेरी दाँत गिरने लगे थे और बाल सफेद हो गए थे इसलिए शादी कर ली।

32 – फौज मे शादीशुदा लोगों को तनख्वाह ज्यादा मिलती थी इसलिए मैंने भी शादी कर ली।

33 – कोई मेरा गुस्सा बर्दाश्त न करता था इसलिए मैंने शादी कर ली।

34 – बीवी से ज्यादा कोई अपना समर्थक नही होता इसलिए मैंने शादी कर ली।

35 – मै खुद हैरान हूँ कि शादी क्यों की।

36 – शादी भाग्य मे लिखी थी इसलिए कर ली।

इसी तरह जितने मुँह उतनी बातें सुनने मे आयी।

['जमाना' मार्च, 1927]

सिर्फ एक आवाज

सुबह का वक्त था। ठाकुर दर्शनसिंह के घर में एक हंगामा बरपा था। आज रात को चन्द्रग्रहण होने वाला था। ठाकुर साहब अपनी बूढ़ी ठकुराइन के साथ गंगाजी जाते थे इसलिए सारा घर उनकी पुरशोर तैयारी में लगा हुआ था। एक बहू उनका फटा हुआ कुर्ता टाँक रही थी, दूसरी बहू उनकी पगड़ी लिए सोचती थी, कि कैसे इसकी मरम्मत करूँ दोनो लड़कियाँ नाश्ता तैयार करने में तल्लीन थीं। जो ज्यादा दिलचस्प काम था और बच्चों ने अपनी आदत के अनुसार एक कुहराम मचा रक्खा था क्योंकि हर एक आने-जाने के मौके पर उनका रोने का जोश उमंग पर होत था। जाने के वक्त साथ जाने के लिए रोते, आने के वक्त इसलिए रोते किशरीनी का बाँट-बखरा मनोनुकूल नहीं हुआ। बढ़ी ठकुराइन बच्चों को फुँसलाती थी और बीच-बीच में अपनी बहुओं को समझाती थी — देखों खबरदार! जब तक उग्र न हो जाय, घर से बाहर न निकलना। हँसिया, छुरी,कुल्हाड़ी, इन्हें हाथ से मत छुना। समझाये देती हूँ, मानना चाहे न मानना। तुम्हें मेरी बात की परवाह है। मुँह में पानी की बूँदे न पड़ें। नारायण

के घर विपत पड़ी है। जो साधु-भिखारी दरवाजे पर आ जाय उसे फेरना मत। बहुओं ने सुना और नहीं सुना। वे मना रहीं थीं कि किसी तरह यह यहाँ से टलें। फागुन का महीना है, गाने को तरस गये। आज खूब गाना-बजाना होगा।

ठाकुर साहब थे तो बूढ़े, लेकिन बुढ़ापे का असर दिल तक नहीं पहुँचा था। उन्हें इस बात का गर्व था कि कोई ग्रहण गंगा-स्नान के बगैर नहीं छूटा। उनका ज्ञान आश्चर्य जनक था। सिर्फ पत्रों को देखकर महीनों पहले सूर्य-ग्रहण और दूसरे पर्वों के दिन बता देते थे। इसलिए गाँववालों की निगाह में उनकी इज्जत अगर पण्डितों से ज्यादा न थी तो कम भी न थी। जवानी में कुछ दिनों फौज में नौकरी भी की थी। उसकी गर्मी अब तक बाकी थी, मजाल न थी कि कोई उनकी तरफ सीधी आँख से देख सके। सम्मन लानेवाले एक चपरासी को ऐसी व्यावहारिक चेतावनी दी थी जिसका उदाहरण आस-पास के दस-पाँच गाँव में भी नहीं मिल सकता। हिम्मत और हौसले के कामों में अब भी आगे-आगे रहते थे किसी काम को मुश्किल बता देना, उनकी हिम्मत को प्रेरित कर देना था। जहाँ सबकी जबानें बन्द हो जाएँ, वहाँ वे शेरों की तरह गरजते थे। जब कभी गाँव में दरोगा जी तशरीफ लाते तो ठाकुर साहब ही का दिल-गुर्दा था कि उनसे आँखें मिलाकर आमने-सामने बात कर सकें। ज्ञान की बातों को लेकर छिड़ने

वाली बहसों के मैदान में भी उनके कारनामे कुछ कम शानदार न थे। झगड़ा पण्डित हमेशा उनसे मुँह छिपाया करते। गरज, ठाकुर साहब का स्वभावगत गर्व और आत्म-विश्वास उन्हें हर बरात में दूल्हा बनने पर मजबूर कर देता था। हाँ, कमजोरी इतनी थी कि अपना आल्हा भी आप ही गा लेते और मजे ले-लेकर क्योंकि रचना को रचनाकार ही खूब बयान करता है!

2

जब दोपहर होते-होते ठाकुराइन गाँव से चले तो सैंकड़ों आदमी उनके साथ थे और पक्की सड़क पर पहुँचे, तो यात्रियों का ऐसा ताँता लगा हुआ था कि जैसे कोई बाजार है। ऐसे-ऐसे बूढ़े लाठियाँ टेकते या डोलियों पर सवार चले जाते थे जिन्हें तकलीफ देने की यमराज ने भी कोई जरूरत न समझी थी। अन्धे दूसरों की लकड़ी के सहारे कदम बढ़ाये आते थे। कुछ आदमियों ने अपनी बूढ़ी माताओं को पीठ पर लाद लिया था। किसी के सर पर कपड़ों की पोटली, किसी के कन्धे पर लोटा-डोर, किसी के कन्धे पर काँवर। कितने ही आदमियों ने पैरों पर चीथड़े लपेट लिये थे, जूते कहाँ से लायें। मगर धार्मिक उत्साह का यह वरदान

था कि मन किसी का मैला न था। सबके चेहरे खिले हुए, हँसते-हँसते बातें करते चले जा रहे थे। कुछ औरतें गा रही थी —

चाँद सूरज दूनो लोक के मालिक
एक दिना उनहूँ पर बनती
हम जानी हमहीं पर बनती

ऐसा मालूम होता था, यह आदमियों की एक नदी थी, जो सैंकड़ों छोटे-छोटे नालों और धारों को लेती हुई समुद्र से मिलने के लिए जा रही थी।

जब यह लोग गंगा के किनारे पहुँचे तो तीसरे पहर का वक्त था लेकिन मीलों तक कहीं तिल रखने की जगह न थी। इस शानदार दृश्य से दिलों पर ऐसा रोब और भक्ति का ऐसा भाव छा जाता था कि बरबस 'गंगा माता की जय' की सदायें बुलन्द हो जाती थीं। लोगों के विश्वास उसी नदी की तरह उमड़े हुए थे और वह नदी! वह लहराता हुआ नीला मैदान! वह प्यासों की प्यास बुझाने वाली! वह निराशों की आशा! वह वरदानों की देवी! वह पवित्रता का स्त्रोत! वह मुट्ठी भर खाक को आश्रय देनेवाली गंगा हँसती-मुस्कराती थी और उछलती थी। क्या इसलिए कि आज वह अपनी चौतरफा इज्जत पर फूली न समाती थी या इसलिए

कि वह उछल-उछलकर अपने प्रेमियों के गले मिलना चाहती थी जो उसके दर्शनों के लिए मंजिल तय करके आये थे! और उसके परिधान की प्रशंसा किस जबान से हो, जिस सूरज से चमकते हुए तारे टाँके थे और जिसके किनारों को उसकी किरणों ने रंग-बिरंगे, सुन्दर और गतिशील फूलों से सजाया था।

अभी ग्रहण लगने में घण्टे की देर थी। लोग इधर-उधर टहल रहे थे। कहीं मदारियों के खेल थे, कहीं चूरनवाले की लच्छेदार बातों के चमत्कार। कुछ लोग मेढ़ों की कुश्ती देखने के लिए जमा थे। ठाकुर साहब भी अपने कुछ भक्तों के साथ सैर को निकले। उनकी हिम्मत ने गवारा न किया कि इन बाजारू दिलचस्पियों में शरीक हों। यकायक उन्हें एक बड़ा-सा शामियाना तना हुआ नजर आया, जहाँ ज्यादातर पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ थी। ठाकुर साहब ने अपने साथियों को एक किनारे खड़ा कर दिया और खुद गर्व से ताकते हुए फर्श पर जा बैठे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यहाँ उन पर देहातियों की ईर्ष्या-दृष्टि पड़ेगी और सम्भव है कुछ ऐसी बारीक बातें भी मालूम हो जायँ तो उनके भक्तों को उनकी सर्वज्ञता का विश्वास दिलाने में काम दे सकें।

यह एक नैतिक अनुष्ठान था। दो-ढाई हजार आदमी बैठे हुए एक मधुरभाषी वक्ता का भाषण सुन रहे थे। फैशनेबुल लोग ज्यादातर अगली पंक्ति में बैठे हुए थे जिन्हें कनबतियों का इससे

अच्छा मौका नहीं मिल सकता था। कितने ही अच्छे कपड़े पहने हुए लोग इसलिए दुखी नजर आते थे कि उनकी बगल में निम्न श्रेणी के लोग बैठे हुए थे। भाषण दिलचस्प मालूम पड़ता था। वजन ज्यादा था और चटखारे कम, इसलिए तालियाँ नहीं बजती थी।

3

वक्ता ने अपने भाषण में कहा —

मेरे प्यारे दोस्तों, यह हमारा और आपका कर्तव्य है। इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण, ज्यादा परिणामदायक और कौम के लिए ज्यादा शुभ और कोई कर्तव्य नहीं है। हम मानते हैं कि उनके आचार-व्यवहार की दशा अत्यंत करुण है। मगर विश्वास मानिये यह सब हमारी करनी है। उनकी इस लज्जाजनक सांस्कृतिक स्थिति का जिम्मेदार हमारे सिवा और कौन हो सकता है? अब इसके सिवा और कोई इलाज नहीं हैं कि हम उस घृणा और उपेक्षा को; जो उनकी तरफ से हमारे दिलों में बैठी हुई है, धोयें और खूब मलकर धोयें। यह आसान काम नहीं है। जो कालिख कई हजार वर्षो से जमी हुई है, वह आसानी से नहीं मिट सकती। जिन

लोगों की छाया से हम बचते आये हैं, जिन्हें हमने जानवरों से भी जलील समझ रक्खा है, उनसे गले मिलने में हमको त्याग और साहस और परमार्थ से काम लेना पड़ेगा। उस त्याग से जो कृष्ण में था, उस हिम्मत से जो राम में थी, उस परमार्थ से जो चैतन्य और गोविन्द में था। मैं यह नहीं कहता कि आप आज ही उनसे शादी के रिश्ते जोडें या उनके साथ बैठकर खायें-पियें। मगर क्या यह भी मुमकिन नहीं है कि आप उनके साथ सामान्य सहानुभूति, सामान्य मनुष्यता, सामान्य सदाचार से पेश आयें? क्या यह सचमुच असम्भव बात है? आपने कभी ईसाई मिशनरियों को देखा है? आह, जब मैं एक उच्चकोटि का सुन्दर, सुकुमार, गौरवर्ण लेडी को अपनी गोद में एक काला-कलूटा बच्चा लिये हुए देखता हूँ जिसके बदन पर फोड़े हैं, खून है और गन्दगी है — वह सुन्दरी उस बच्चे को चूमती है, प्यार करती है, छाती से लगाती है — तो मेरा जी चाहता है उस देवी के कदमों पर सिर रख दूँ। अपनी नीचता, अपना कमीनापन, अपनी झूठी बड़ाई, अपने हृदय की संकीर्णता मुझे कभी इतनी सफाई से नजर नहीं आती। इन देवियों के लिए जिन्दगी में क्या-क्या संपदाएँ, नहीं थी, खुशियाँ बाँहें पसारे हुए उनके इन्तजार में खड़ी थी। उनके लिए दौलत की सब सुख-सुविधाएँ थीं। प्रेम के आकर्षण थे। अपने आत्मीय और स्वजनों की सहानुभूतियाँ थीं और अपनी प्यारी मातृभूमि का

आकर्षण था। लेकिन इन देवियों ने उन तमाम नेमतों, उन सब सांसारिक संपदाओं को सेवा, सच्ची निस्वार्थ सेवा पर बलिदान कर दिया है! वे ऐसी बड़ी कुर्बानियाँ कर सकती हैं, तो हम क्या इतना भी नहीं कर सकते कि अपने अछूत भाइयों से हमदर्दी का सलूक कर सकें? क्या हम सचमुच ऐसे पस्त-हिम्मत, ऐसे बोदे, ऐसे बेरहम हैं? इसे खूब समझ लीजिए कि आप उनके साथ कोई रियायत, कोई मेहरबानी नहीं कर रहें हैं। यह उन पर कोई एहसान नहीं है। यह आप ही के लिए जिन्दगी और मौत का सवाल है। इसलिए मेरे भाइयों और दोस्तों, आइये इस मौके पर शाम के वक्त पवित्र गंगा नदी के किनारे काशी के पवित्र स्थान में हम मजबूत दिल से प्रतिज्ञा करें कि आज से हम अछूतों के साथ भाई-चारे का सलूक करेंगे, उनके तीज-त्योहारों में शरीक होंगे और अपने त्योहारों में उन्हें बुलायेंगे। उनके गले मिलेंगे और उन्हें अपने गले लगायेंगे! उनकी खुशियों में खुश और उनके दर्दों मे दर्दमन्द होंगे, और चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय, चाहे ताना-तिश्नों और जिल्लत का सामना ही क्यों न करना पड़े, हम इस प्रतिज्ञा पर कायम रहेंगे। आप में सैंकड़ों जोशीले नौजवान हैं जो बात के धनी और इरादे के मजबूत हैं। कौन यह प्रतिज्ञा करता है? कौन अपने नैतिक साहस का परिचय देता है? वह अपनी जगह

पर खड़ा हो जाय और ललकारकर कहे कि मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक इस पर दृढ़ता से कायम रहूँगा।

4

सूरज गंगा की गोद में जा बैठा था और माँ प्रेम और गर्व से मतवाली जोश में उमड़ी हुई रंग केसर को शर्माती और चमक में सोने की लजाती थी। चार तरफ एक रोबीली खामोशी छायी थीं उस सन्नाटे में संन्यासी की गर्मी और जोश से भरी हुई बातें गंगा की लहरों और गगनचुम्बी मंदिरों में समा गयीं। गंगा एक गम्भीर माँ की निराशा के साथ हँसी और देवताओं ने अफसोस से सिर झुका लिया, मगर मुँह से कुछ न बोले।

संन्यासी की जोशीली पुकार फिजाँ में जाकर गायब हो गई, मगर उस मजमे में किसी आदमी के दिल तक न पहुँची। वहाँ कौम पर जान देने वालों की कमी न थी — स्टेजों पर कौमी तमाशे खेलनेवाले कालेजों के होनहार नौजवान, कौम के नाम पर मिटनेवाले पत्रकार, कौमी संस्थाओं के मेम्बर, सेक्रेटरी और प्रेसिडेंट, राम और कृष्ण के सामने सिर झुकानेवाले सेठ और साहूकार, कौमी कालिजों के ऊँचे हौंसलोंवाले प्रोफेसर और

अखबारों में कौमी तरक्कियों की खबरें पढ़कर खुश होने वाले दफ्तरों के कर्मचारी हजारों की तादाद में मौजूद थे। आँखों पर सुनहरी ऐनकें लगाये, मोटे-मोटे वकीलों क एक पूरी फौज जमा थी। मगर संन्यासी के उस गर्म भाषण से एक दिल भी न पिघला क्योंकि वह पत्थर के दिल थे जिसमें दर्द और घुलावट न थी, जिसमें सदिच्छा थी मगर कार्य-शक्ति न थी, जिसमें बच्चों की सी इच्छा थी मर्दों का-सा इरादा न था।

सारी मजलिस पर सन्नाटा छाया हुआ था। हर आदमी सिर झुकाये फिक्र में डूबा हुआ नजर आता था। शर्मिंदगी किसी को सर उठाने न देती थी और आँखें झेंप में मारे जमीन में गड़ी हुई थी। यह वही सर हैं जो कौमी चर्चों पर उछल पड़ते थे, यह वही आँखें हैं जो किसी वक्त राष्ट्रीय गौरव की लाली से भर जाती थी। मगर कथनी और करनी में आदि और अन्त का अन्तर है। एक व्यक्ति को भी खड़े होने का साहस न हुआ। कैंची की तरह चलनेवाली जबान भी ऐसे महान् उत्तरदायित्व के भय से बन्द हो गयीं।

ठाकुर दर्शनसिंह अपनी जगी पर बैठे हुए इस दृश्य को बहुत गौर और दिलचस्पी से देख रहे थे। वह अपने मार्मिक विश्वासों में चाहे कट्टर हो या न हों, लेकिन सांस्कृतिक मामलों में वे कभी अगुवाई करने के दोषी नहीं हुए थे। इस पेचीदा और डरावने रास्ते में उन्हें अपनी बुद्धि और विवेक पर भरोसा नहीं होता था। यहाँ तर्क और युक्ति को भी उनसे हार माननी पड़ती थी। इस मैदान में वह अपने घर की स्त्रियों की इच्छा पूरी करने ही अपना कर्त्तव्य समझते थे और चाहे उन्हें खुद किसी मामले में कुछ एतराज भी हो लेकिन यह औरतों का मामला था और इसमें वे हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे परिवार की व्यवस्था में हलचल और गड़बड़ी पैदा हो जाने की जबरदस्त आशंका रहती थी। अगर किसी वक्त उनके कुछ जोशीले नौजवान दोस्त इस कमजोरी पर उन्हें आड़े हाथों लेते तो वे बड़ी बुद्धिमत्ता से कहा करते थे — भाई, यह औरतों के मामले हैं, उनका जैसा दिल चाहता है, करती हैं, मैं बोलने वाला कौन हूँ। गरज यहाँ उनकी फौजी गर्म-मिजाजी उनका साथ छोड़ देती थी। यह उनके लिए तिलिस्म की घाटी थी जहाँ होश-हवास बिगड़ जाते थे और अन्धे अनुकरण का पैर बँधी हुई गर्दन पर सवार हो जाता था।

लेकिन यह ललकार सुनकर वे अपने को काबू में न रख सके। यही वह मौका था जब उनकी हिम्मतें आसमान पर जा पहुँचती

थीं। जिस बीड़े को कोई न उठाये उसे उठाना उनका काम था। वर्जनाओं से उनको आत्मिक प्रेम था। ऐसे मौके पर वे नतीजे और मसलहत से बगावत कर जाते थे और उनके इस हौसले में यश के लोभ को उतना दखल नहीं था जितना उनके नैसर्गिक स्वभाव का। वर्ना यह असम्भव था कि एक ऐसे जलसे में जहाँ ज्ञान और सभ्यता की धूम-धाम थी, जहाँ सोने की ऐनकों से रोशनी और तरह-तरह के परिधानों से दीप्त चिन्तन की किरणें निकल रही थीं, जहाँ कपड़े-लत्ते की नफासत से रोब और मोटापे से प्रतिष्ठा की झलक आती थी, वहाँ एक देहाती किसान को जबान खोलने का हौसला होता। ठाकुर ने इस दृश्य को गौर और दिलचस्पी से देखा। उसके पहलू में गुदगुदी-सी हुई। जिन्दादिली का जोश रगों में दौड़ा। वह अपनी जगह से उठा और मर्दाना लहजे में ललकारकर बोला — मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक उस पर कायम रहूँगा।

6

इतना सुनना था कि दो हजार आँखें अचम्भे से उसकी तरफ ताकने लगीं। सुभानअल्लाह, क्या हुलिया थी — गाढे की ढीली

मिर्जई, घुटनों तक चढ़ी हुई धोती, सर पर एक भारी-सा उलझा हुआ साफा, कन्धे पर चुनौटी और तम्बाकू का वजनी बटुआ, मगर चेहरे से गम्भीरता और दृढ़ता स्पष्ट थी। गर्व आँखों के तंग घेरे से बाहर निकला पड़ता था। उसके दिल में अब इस शानदार मजमे की इज्जत बाकी न रही थी। वह पुराने वक्तों का आदमी था जो अगर पत्थर को पूजता था तो उसी पत्थर से डरता भी था, जिसके लिए एकादशी का व्रत केवल स्वास्थ्य-रक्षा की एक युक्ति और गंगा केवल स्वास्थ्यप्रद पानी की एक धारा न थी। उसके विश्वासों में जागृति न हो लेकिन दुविधा नहीं थी। यानी कि उसकी कथनी और करनी में अन्तर न था और न उसकी बुनियाद कुछ अनुकरण और देखा-देखी पर थी मगर अधिकांशतः भय पर, जो ज्ञान के आलोक के बाद वृत्तियों के संस्कार की सबसे बड़ी शक्ति है। गेरुए बाने का आदर और भक्ति करना इसके धर्म और विश्वास का एक अंग था। संन्यास में उसकी आत्मा को अपना अनुचर बनाने की एक सजीव शक्ति छिपी हुई थी और उस ताकत ने अपना असर दिखाया। लेकिन मजमे की इस हैरत ने बहुत जल्द मजाक की सूरत अख्तियार की। मतलब-भरी निगाहें आपस में कहने लगीं — आखिर गंवार ही तो ठहरा! देहाती है, ऐसे भाषण कभी काहे को सुने होंगे, बस उबल पड़ा। उथले गड्ढे में इतना पानी भी न समा सका! कौन नहीं

जानता कि ऐसे भाषणों का उद्देश्य मनोरंजन होता है! दस आदमी आये, इकट्ठे बैठ, कुछ सुना, कुछ गप-शप मारी और अपने-अपने घर लौटे, न यह कि कौल-करार करने बैठे, अमल करने के लिए कसमें खाये!

मगर निराश संन्यासी सो रहा था — अफसोस, जिस मुल्क की रोशनी में इतना अंधेरा है, वहाँ कभी रोशनी का उदय होना मुश्किल नजर आता है। इस रोशनी पर, इस अंधेरी, मुर्दा और बेजान रोशनी पर मैं जहालत को, अज्ञान को ज्यादा ऊँची जगह देता हूँ। अज्ञान में सफाई है और हिम्मत है, उसके दिल और जबान में पर्दा नहीं होता, न कथनी और करनी में विरोध। क्या यह अफसोस की बात नहीं है कि ज्ञान और अज्ञान के आगे सिर झुकाये? इस सारे मजमें में सिर्फ एक आदमी है, जिसके पहलू में मर्दों का दिल है और गो उसे बहुत सजग होने का दावा नहीं लेकिन मैं उसके अज्ञान पर ऐसी हजारों जागृतियों को कुर्बान कर सकता हूँ। तब वह प्लेटफार्म से नीचे उतरे और दर्शनसिंह को गले से लगाकर कहा — ईश्वर तुम्हें प्रतिज्ञा पर कायम रखे।

[जमाना, अगस्त — सितम्बर 1913]

सैलानी बन्दर

जीवनदास नाम का एक गरीब मदारी अपने बन्दर मन्नू को नचाकर अपनी जीविका चलाया करता था। वह और उसकी स्त्री बुधिया दोनों मन्नू का बहुत प्यार करते थे। उनके कोई सन्तान न थी, मन्नू ही उनके स्नेह और प्रेम का पात्र था दोनों उसे अपने साथ खिलाते और अपने साथ सुलाते थे — उनकी दृष्टि में मन्नू से अधिक प्रिय वस्तु न थी। जीवनदास उसके लिए एक गेंद लाया था। मन्नू आँगन में गेंद खेला करता था। उसके भोजन करने को एक मिट्टी का प्याला था, ओढ़ने को कम्बल का एक टुकड़ा, सोने को एक बोरिया, और उसके के लिए छप्पर में एक रस्सी। मन्नू इन वस्तुओं पर जान देता था। जब तक उसके प्याले में कोई चीज न रख दी जाय वह भोजन न करता था। अपना टाट और कम्बल का टुकड़ा उसे शाल और गद्दे से भी प्यारा था। उसके दिन बड़े सुख से बीतते थे। वह प्रातःकाल रोटियाँ खाकर मदारी के साथ तमाशा करने जाता था। वह नकलें करने मे इतना निपुण था कि दर्शकवृन्द तमाशा देखकर मुग्ध हो जाते थे। लकड़ी हाथ में लेकर वृद्धों की भांति चलता,

आसन मारकर पूजा करता, तिलक-मुद्रा लगाता, फिर पोथी बगल में दबाकर पाठ करने चलता। ढोल बजाकर गाने की नकल इतनी मनोहर थी कि दर्शक लोट-पोट हो जाते थे। तमाशा खतम हो जाने पर वो सबको सलाम करते था, लोगों के पैर पकड़कर पैसे वसूल करता था। मन्नू का कटोरा पैसों से भर जाता था। इसके उपरान्त कोई मन्नू को एक अमरुद खिला देता, काई उसके सामने मिठाई फेंक देता। लड़कों को तो उसे देखने से जी ही न मारता था। वे अपने-अपने घर से दौड़-दौड़कर रोटियाँ लाते और उसे खिलाते थे। मुहल्ले के लोगों के लिए भी मन्नू मनोरंजन की एक सामग्री थी। जब वह घर पर रहता तो एक न एक आदमी आकर उससे खेलता रहता। खोमचेवाले फेरी करते हुए उसे कुछ न कुछ दे देते थे। जो बिना दिए निकल जाने की चेष्टा करता उससे भी मन्नू पैर पकड़ कर वसूल कर लिया था, क्योंकि घर पर वह खुला रहता था मन्नू को अगर चिढ़ थी तो कुत्तों से। उसके मारे उधर से कोई कुत्ता न निकलने पाता था और कोई आ जाता, तो मन्नू उसे अवश्य ही दो-चार कनेठियाँ और झाँपड़ लगाता था। उसके सर्वप्रिया होने का यह एक और कारण था। दिन को कभी-कभी बुधिया धूप में लेट जाती, तो मन्नू उसके सिर की जुएँ निकालता और वह उसे गाना सुनाती। वह जहां

कहीं जाती थी वहीं मन्नू उसके पीछे-पीछे जाता था। माता और पुत्र में भी इससे अधिक प्रेम न हो सकता था।

2

एक दिन मन्नू के जी में आया कि चलकर कहीं फल खाना चाहिए। फल खाने को मिलते तो थे पर वृक्षों पर चढ़कर डालियों पर उचकने, कुछ खाने और कुछ गिराने में कुछ और ही मजा था। बन्दर विनोदशील होते ही हैं, और मन्नू में इसकी मात्रा कुछ अधिक थी भी। कभी पकड़-धकड़ और मारपीट की नौबत न आई थी। पेड़ों पर चढ़कर फल खाना उसके स्वाभाविक जान पड़ता था। यह न जानता था कि वहाँ प्राकृतिक वस्तुओं पर भी न किसी की छाप लगी हुई है, जल, वायु प्रकाश पर भी लोगों ने अधिकार जमा रक्खा है, फिर बाग-बगीचों का तो कहना ही क्या। दोपहर को जब जीवनदास तमाशा दिखाकर लौटा, तो मन्नू लंबा हुआ। वह यो भी मुहल्ले में चला जाया करता था, इसलिए किसी को संदेह न हुआ कि वह कहीं चला गया। उधर वह घूमता-घामता खपरैलों पर उछलता-कूदता एक बगीचे में जा पहुँचा। देखा तो फलों से पेड़ लदे हुए हैं। आँवलो, कटहल,

लीची, आम, पपीते वगैरह लटकते देखकर उसका चित्त प्रसन्न हो गया। मानो वे वक्षृ उसे अपनी ओर बुला रहे थे कि खाओ, जहां तक खाया जाय, यहाँ किसी रोक-टोक नहीं है। तुरन्त एक छलांग मारकर चहारदीवारी पर चढ़ गया। दूसरी छलांग में पेड़ों पर जा पहुँचा, कुछ आम खाये, कुछ लीचियाँ खाई। खुशी हो-होकर गुठलिया इधर-उधर फेंकना शुरु किया। फिर सबसे ऊँची डाल पर जा पहुँचा और डालियों को हिलाने लगा। पके आम जमीन पर बिछ गए। खड़खड़ाहट हुई तो माली दोपहर की नींद से चौंका और मन्नू को देखते ही उसे पत्थरों से मारने लगा। पर या तो पत्थर उसके पास तक पहुँचते ही न थे या वह सिर और शरीर हिलाकर पत्थरों को बचा जाता था। बीच-बीच में बांगबान को दांत निकालकर डराता भी था। कभी मुँह बनाकर उसे काटने की धमकी भी देता था। माली बुदरघुड़कियों से डरकर भागता था, और फिर पत्थर लेकर आ जाता था। यह कौतुक देखकर मुहल्ले के बालक जमा हो गए, और शोर मचाने लगे —

ओ बन्दरवा लोयलाय, बाल उखाडू टोयटाय।
ओ बन्दर तेरा मुँह है लाल, पिचके-पिचके तेरे गाल।
मगर गई नानी बन्दर की,
टूटी टांग मुछन्दर की।

मन्नू को इस शोर-गुल में बड़ा आनन्द आ रहा था। वह आधे फल खा-खाकर नीचे गिरता था और लड़के लपक-लपककर चुन लेते और तालियाँ बजा-बजाकर कहते थे —

बन्दर मामू और,
कहा तुम्हारा ठौर।

माली ने जब देखा कि यह विप्लव शांत होने में नहीं आता, तो जाकर अपने स्वामी को खबर दी। वह हजरत पुलिस विभाग के कर्मचारी थे। सुनते ही जामे से बाहर हो गए। बन्दर की इतनी मजाल कि मेरे बगीचे में आकर ऊधम मचावे। बंगले का किराया मैं देता हूँ, कुछ बन्दर नहीं देता। यहाँ कितने ही असहोयोगियों को लदवा दिया, अखबरवाले मेरे नाम से काँपते हैं, बन्दर की क्या हस्ती है! तुरन्त बन्दूक उठाई, और बगीचे में आ पहुँचें। देखों मन्नू एक पेड़ को जोर-जोर से हिला रहा था। लाल हो गए, और उसी तरफ बन्दूक तानी। बन्दूक देखते ही मन्नू के होश उड़ गए। उस पर आज तक किसी ने बन्दूक नहीं तानी थी। पर उसने बन्दूक की आवाज सुनी थी, चिड़ियों को मारे जाते देखा था और न देखा होता तो भी बन्दूक से उसे स्वाभाविक भय होता। पशु बुद्धि अपने शत्रुओं से स्वतः सशंक हो जाती है। मन्नू के पाँव मानों सुन्न हो गए। वह उछलकर किसी दूसरे वृक्ष पर भी न जा सका। उसी डाल पर दुबककर बैठ गया। साहब को

उसकी यह कला पसन्द आई, दया आ गई। माली को भेजा, जाकर बन्दर को पकड़ ला। माली दिल में तो डरा, पर साहब के गुस्से को जानता था, चुपके से वृक्ष पर चढ़ गया और हजरत बन्दर को एक रस्सी में बांध लाया। मन्नू साहब को बरामदे में एक खम्भे से बाँध दिया गया। उसकी स्वच्छन्दता का अन्त हो गया संध्या तक वहीं पड़ा हुआ करुण स्वर में कूं-कूं करता रहा।

साँझ हो गई तो एक नौकर उसके सामने एक मुट्ठी चने डाल गया। अब मन्नू को अपनी स्थिति के परिवर्तन का ज्ञान हुआ। न कम्बल, न टाट, जमीन पर पड़ा बिसूर रहा था, चने उसने छुए भी नहीं। पछता रहा था कि कहाँ से फल खाने निकला। मदारी का प्रेम याद आया। बेचारा मुझे खोजता फिरता होगा। मदारिन प्याले में रोटी और दूध लिए मुझे मन्नू-मन्नू पुकार रही होगी। हा विपत्ति! तूने मुझे कहाँ लाकर छोड़ा। रात-भर वह जागता और बार-बार खम्भे के चक्कर लगाता रहा। साहब का कुत्ता टामी बार-बार डराता और भूँकता था। मन्नू को उस पर ऐसा क्रोध आता था कि पाऊँ तो मारे चपतों के चौंधिया दूँ, पर कुत्ता निकट न आता, दूर ही से गरजकर रह जाता था।

रात गुजारी, तो साहब ने आकर मन्नू को दो-तीन ठोकरें जमायीं। सुअर! रात-भर चिल्ला — चिल्लाकर नींद हराम कर दी। आँख

तक न लगी! बचा, आज भी तुमने गुल मचाया, तो गोली मार दूँगा। यह कहकर वह तो चले गए, अब नटखट लड़कों की बारी आई। कुछ घर के और कुछ बाहर के लड़के जमा हो गए। कोई मन्नू को मुँह चिढ़ाता, कोई उस पर पत्थर फेंकता और कोई उसको मिठाई दिखाकर ललचाता था। कोई उसका रक्षक न था, किसी को उस पर दया न आती थी। आत्मरक्षा की जितनी क्रियाएँ उसे मालूम थीं, सब करके हार गया। प्रणाम किया, पूजा-पाठ किया लेकिन इसका उपहार यही मिला कि लड़कों ने उसे और भी दिक करना शुरु किया। आज किसी ने उसके सामने चने भी न डाले और यदि डाले भी तो वह खा न सकता। शोक ने भोजन की इच्छा न रक्खी थी।

संध्या समय मदारी पता लगाता हुआ साहब के घर पहुँचा। मन्नू उस देखते ही ऐसा अधीर हुआ, मानो जंजीर तोड़ डालेगा, खंभे को गिरा देगा। मदारी ने जाकर मन्नू को गले से लगा लिया और साहब से बोला — 'हुजूर, भूल-चूक तो आदमी से भी हो जाती है, यह तो पशु है! मुझे चाहे जो सजा दीजिए पर इसे छोड़ दीजिए। सरकार, यही मेरी रोटियों का सहारा है। इसके बिना हम दो प्राणी भूखों मर जाएँगे। इसे हमने लड़के की तरह पाला हैं, जब से यह भागा है, मदारिन ने दाना-पानी छोड़ दिया है। इतनी दया कीजिए सरकार, आपका अकबाल सदा रोशन रहे, इससे भी बड़ा

ओहदा मिले, कलम चाक हो, मुद्दई बेबाक हो। आप हैं सपूत, सदा रहें मजबूत। आपके बैरी को दाबे भूत।' मगर साहब ने दया का पाठ न पढ़ा था। घुड़ककर बोले — चुप रह पाजी, टें-टें करके दिमाग चाट गया। बचा बन्दर छोड़कर बाग का सत्यानाश कर डाला, अब खुशामद करने चले हो। जाकर देखो तो, इसने कितने फल खराब कर दिये। अगर इसे ले जाना चाहता है तो दस रुपया लाकर मेरी नजर कर नहीं तो चुपके से अपनी राह पकड़। यह तो यहीं बंधे-बंधे मर जाएगा, या कोई इतने दाम देकर ले जाएगा।

मदारी निराश होकर चला गया। दस रुपये कहाँ से लाता? बुधिया से जाकर हाल कहा। बुधिया को अपनी तरस पैदा करने की शक्ति पर ज्यादा भरोसा था। बोली — बस, ली तुम्हारी करतूत! जाकर लाठी-सी मारी होगी। हाकिमों से बड़े दांव-पेंच की बातें की जाती हैं, तब कहीं जाकर वे पसीजते है। चलो मेरे साथ, देखों छुड़ा लती हूँ कि नहीं।

यह कहकर उसने मन्नू का सब सामान एक गठरी में बाँधा और मदारी के साथ साहब के पास आई, मन्नू अब की इतने जोर से उछला कि खंभा हिल उठा, बुधिया ने कहा — सरकार, हम आपके द्वार पर भीख माँगने आये हैं, यह बन्दर हमको दान दे दीजिए।

साहब — हम दान देना पाप समझते है।

मदारिन — हम देस-देस घूमते हैं। आपका जस गावेंगे।

साहब — हमें जस की चाह या परवाह नहीं है।

मदारिन — भगवान् आपको इसका फल देंगे।

साहब — मैं नहीं जानता भगवान् कौन बला है।

मदारिन — महाराज, क्षमा की बड़ी महिमा है।

साहब — हमारे यहाँ सबसे बड़ी महिमा दण्ड की है।

मदारिन — हुजूर, आप हाकिम हैं। हाकिमों का काम है, न्याय कराना। फलों के पीछे दो आदमियों की जान न लीजिए। न्याय ही से हाकिम की बड़ाई होती है।

साहब — हमारी बड़ाई क्षमा और न्याय से नहीं है और न न्याय करना हमारा काम है, हमारा काम है मौज करना।

बुधिया की एक भी युक्ति इस अहंकार-मूर्ति के सामने न चली। अन्त को निराश होकर वह बोली — हुजूर इतना हुक्म तो दे दें कि ये चीजें बन्दर के पास रखा दूँ। इन पर यह जान देता है।

साहब — मेरे यहाँ कूड़ा-कड़कट रखने की जगह नहीं है।

आखिर बुधिया हताश होकर चली गई।

3

टामी ने देखा, मन्नू कुछ बोलता नहीं तो, शेर हो गया, भूँकता-भूँकता मन्नू के पास चला आया। मन्नू ने लपककर उसके दोनों कान पकड़ लिए और इतने तमाचे लगाये कि उसे छठी का दूध याद आ गया। उसकी चिल्लाहट सुनकर साहब कमरे से बाहर निकल आए और मन्नू के कई ठोकरें लगाईं। नौकरों को आज्ञा दी कि इस बदमाश को तीन दिन तक कुछ खाने को मत दो।

संयोग से उसी दिन एक सर्कस कंपनी का मैनेजर साहब से तमाशा करने की आज्ञा लेने आया। उसने मन्नू को बंधे, रोनी सूरत बनाये बैठे देखा, तो पास आकर उसे पुचकारा। मन्नू उछलकर उसकी टांगों से लिपट गया, और उसे सलाम करने लगा। मैनेजर समझ गया कि यह पालतू जानवर है। उसे अपने तमाशे के लिए बन्दर की जरूरत थी। साहब से बातचीत की, उसका उचित मूल्य दिया, और अपने साथ ले गया। किन्तु मन्नू को शीघ्र ही विदित हो गया कि यहाँ मैं और भी बुरा फँसा।

मैनेजर ने उसे बन्दरों के रखवाले को सौंप दिया। रखवाला निष्ठुर और क्रूर प्रकृति का प्राणी था। उसके अधीन और भी

कई बन्दर थे। सभी उसके हाथों कष्ट भोग रहे थे। वह उनके भोजन की सामग्री खुद खा जाता था। अन्य बन्दरों ने मन्नू का सहर्ष स्वागत नहीं किया। उसके आने से उनमें बड़ा कोलाहल मचा। अगर रखवाले ने उसे अलग न कर दिया होता तो वे सब उसे नोचकर खा जाते। मन्नू को अब नई विद्या सीखनी पड़ी। पैरगाड़ी पर चढ़ना, दौड़ते घोड़े की पीठ पर दो टांगो से खड़े हो जाना, पतली रस्सी पर चलना इत्यादि बड़ी ही कष्टप्रद साधनाएँ थी। मन्नू को ये सब कौशल सीखने में बहुत मार खानी पड़ती। जरा भी चूकता तो पीठ पर डंडा पड़ जाता। उससे अधिक कष्ट की बात यह थी कि उसे दिन-भर एक कठघरे में बन्द रक्खा जाता था, जिसमें कोई उसे देख न ले।

मदारी के यहाँ तमाशा ही दिखाना पड़ता था किन्तु उस तमाशे और इस तमाशे में बड़ा अन्तर था। कहाँ वे मदारी की मीठी-मीठी बातें, उसका दुलारा और प्यार और कहाँ यह कारावास और डंडो की मार! ये काम सीखने में उसे इसलिए और भी देर लगती थी कि वह अभी तक जीवनदास के पास भाग जाने के विचार को भूला न था। नित्य इसकी ताक में रहता कि मौका पाऊँ और निकल जाऊँ,लेकिन वहाँ जानवरों पर बड़ी कड़ी निगाह रक्खी जाती थी। बाहर की हवा तक न मिलती थी, भागने की तो बात

क्या! काम लेने वाले सब थे मगर भोजन की खबर लेने वाला कोई भी न था।

साहब की कैद से तो मन्नू जल्द ही छूट गया था, लेकिन इस कैद में तीन महीने बीत गये। शरीर घुल गया, नित्य चिन्ता घेरे रहती थी, पर भागने का कोई ठीक-ठिकाने न था। जी चाहे या न चाहे, उसे काम अवश्य करना पड़ता था। स्वामी को पैसों से काम था, वह जिये चाहे मरे।

संयोगवश एक दिन सर्कस के पंडाल में आग लग गई, सर्कस के नौकर-चाकर सब जुआरी थे। दिन-भर जुआ खेलते, शराब पीते और लड़ाई-झगड़ा करते थे। इन्हीं झंझटों में एकाएक गैस की नली फट गई। हाहाकार मच गया। दर्शक वृन्द जान लेकर भागे। कंपनी के कर्मचारी अपनी चीजें निकालने लगे।

पशुओं की किसी का खबर न रही। सर्कस में बड़े-बड़े भयंकर जीव-जन्तु तमाशा करते थे। दो शेर, कई चीते, एक हाथी,एक रीछ था। कुत्तों घोड़ों तथा बन्दरों की संख्या तो इससे कहीं अधिक थी। कंपनी धन कमाने के लिए अपने नौकरों की जान को कोई चीज नहीं समझती थी। ये सब क सब जीव इस समय तमाशे के लिए खोले गये थे। आग लगते ही वे चिल्ला-

चिल्लाकर भागे। मन्नू भी भागा खड़ा हुआ। पीछे फिरकर भी न देखा कि पंडाल जला या बचा।

मन्नू कूदता-फाँदता सीधे घर पहुँचा जहाँ, जीवनदास रहता था, लेकिन द्वारा बन्द था। खपरैल पर चढ़कर वह घर में घुस गया, मगर किसी आदमी का चिन्ह नहीं मिला। वह स्थान, जहाँ वह सोता था, और जिसे बुधिया गोबर से लीपकर साफ रक्खा करती थी, अब घास-पात से ढका हुआ था, वह लकड़ी जिस पर चढ़कर कूदा करता था, दीमकों ने खा ली थी। मुहल्ले वाले उसे देखते ही पहचान गए। शोर मच गया — मन्नू आया, मन्नू आया।

मन्नू उस दिन से राज संध्या के समय उसी घर में आ जाता, और अपने पुराने स्थान पर लेट रहता। वह दिन-भर मुहल्ले में घूमा करता था, कोई कुछ दे देता, तो खा लेता था, मगर किसी की कोई चीज नहीं छूता था। उसे अब भी आशा थी कि मेरा स्वामी यहाँ मुझसे अवश्य मिलेगा। रातों को उसके कराहने की करुण ध्वनि सुनाई देती थी। उसकी दीनता पर देखनेवालों की आँखों से आँसू निकल पड़े थे।

इस प्रकार कई महीने बीत गये। एक दिन मन्नू गली में बैठा हुआ था, इतने में लड़कों का शोर सुनाई दिया। उसने देखा, एक बुढ़िया नंगे बदन, एक चीथड़ा कमर में लपेटे सिर के बाल

छिटकाए, भूतनियों की तरह चली आ रही है, और कई लड़के उसके पीछे पत्थर फेंकते पगली नानी! पगली नानी! की हांक लगाते, तालियाँ बजाते चले जा रहे हैं। वह रह-रहकर रुक जाती है और लड़को से कहती है — 'मैं पगली नानी नहीं हूँ, मुझे पगली क्यों कहते हो? आखिर बुढ़िया जमीन पर बैठ गई, और बोली — बताओ, मुझे पगली क्यों कहते हो? उसे लड़को पर लेशमात्र भी क्रोध न आता था। वह न रोती थी, न हँसती। पत्थर लग भी जाता चुप हो जाती थी।

एक लड़के ने कहा — तू कपड़े क्यों नहीं पहनती? तू पागल नहीं तो और क्या है?

बुढ़िया — कपड़े मे जाड़े में सर्दी से बचने के लिए पहने जाते है। आजकल तो गर्मी है।

लड़का — तुझे शर्म नहीं आती?

बुढ़िया — शर्म किसे कहते हैं बेटा, इतने साधू-सन्यासी नंगे रहते हैं, उनको पत्थर से क्यों नहीं मारते?

लड़का — वे तो मर्द हैं।

बुढ़िया — क्या शर्म औरतों ही के लिए है, मर्दों को शर्म नहीं आनी चाहिए?

लड़का — तुझे जो कोई जो कुछ दे देता है, उसे तू खा लेती है। तू पागल नहीं तो और क्या है?

बुढ़िया — इसमें पागलपन की क्या बात है बेटा? भूख लगती है, पेट भर लेती हूँ।

लड़का — तुझे कुछ विचार नहीं है? किसी के हाथ की चीज खाते घिन नहीं आती?

बुढ़िया — घिन किसे कहते है बेटा, मैं भूल गई।

लड़का — सभी को घिन आती है, क्या बता दूँ, घिन किसे कहते है।

दूसरा लड़का — तू पैसे क्यों हाथ से फेंक देती है? कोई कपड़े देता है तो क्यों छोड़कर चल देती है? पगली नहीं तो क्या है?

बुढ़िया — पैसे, कपड़े लेकर क्या करूँ बेटा?

लड़का — और लोग क्या करते हैं? पैसे-रुपये का लालच सभी को होता है।

बुढ़िया — लालच किसे कहते हैं बेटा, मैं भूल गई।

लड़का — इसी से तुझे पगली नानी कहते है। तुझे न लोभ है, घिन है, न विचार है, न लाज है। ऐसों ही को पागल कहते हैं।

बुढ़िया — तो यही कहो, मैं पगली हूँ।

लड़का — तुझे क्रोध क्यों नहीं आता?

बुढ़िया — क्या जाने बेटा। मुझे तो क्रोध नहीं आता। क्या किसी को क्रोध भी आता है? मैं तो भूल गई।

कई लड़कों ने इस पर 'पगली, पगली' का शोर मचाया और बुढ़िया उसी तरह शांत भाव से आगे चली। जब वह निकट आई तो मन्नू उसे पहचान गया। यह तो मेरी बुधिया है। वह दौड़कर उसके पैरों से लिपट गया। बुढ़िया ने चौंककर मन्नू को देखा, पहचान गई। उसने उसे छाती से लगा।

4

मन्नू को गोद में लेते ही बुधिया का अनुभव हुआ कि मैं नग्न हूँ। मारे शर्म के वह खड़ी न रूह सकी। बैठकर एक लड़के से बोली — बेटा, मुझे कुछ पहनने को दोगे?

लड़का — तुझे तो लाज ही नहीं आती न?

बुढ़िया — नहीं बेटा, अब तो आ रही है। मुझे न जान क्या हो गया था।

लड़को ने फिर 'पगली, पगली' का शोर मचाया। तो उसने पत्थर फेंककर लड़को को मारना शुरु किया। उनके पीछे दौड़ी।

एक लड़के ने पूछा — अभी तो तुझे क्रोध नहीं आता था। अब क्यों आ रहा है?

बुढ़िया — क्या जाने क्यों, अब क्रोध आ रहा है। फिर किसी ने पगली कहा तो बन्दर से कटवा दूँगी।

एक लड़का दौड़कर एक फटा हुआ कपड़ा ले आया। बुधिया ने वह कपड़ा पहन लिया। बाल समेट लिये। उसके मुख पर जो एक अमानुष आभा थी, उसकी जगह चिन्ता का पीलापन दिखाई देने लगा।

वह रो-रोकर मन्नू से कहने लगी — बेटा, तुम कहाँ चले गए थे। इतने दिन हो गए हमारी सुध न ली। तुम्हारी मदारी तुम्हारे ही वियोग में परलोक सिधारा, मैं भिक्षा माँगकर अपना पेट पालने लगी, घर-द्वार तहस-नहस हो गया। तुम थे तो खाने की, पहनने की, गहने की, घर की इच्छा थी, तुम्हारे जाते सब इच्छाएँ लुप्त हो गई। अकेली भूख तो सताती थी, पर संसार में और किसी की चिन्ता न थी। तुम्हारा मदारी मरा, पर आँखें में आँसू न आए। वह खाट पर पड़ा कराहता था और मेरा कलेजा ऐसा पत्थर का हो गया था कि उसकी दवा-दारु की कौन कहे, उसके पास खड़ी

तक न होती थी। सोचती थी — यह मेरा कौन है। अब आज वे सब बातें और अपनी वह दशा याद आती है, तो यही कहना पड़ता है कि मैं सचमुच पगली हो गई थी, और लड़कों का मुझे पगली नानी कहकर चिढ़ाना ठीक ही था।

यह कहकर बुधिया मन्नू को लिये हुए शहर के बाहर एक बाग में गई, जहाँ वह एक पेड़ के नीचे रहती थी। वहाँ थोड़ी-सी पुआल हुई थी। इसके सिवा मनुष्य के बसेरे का और कोई चिन्ह न था।

आज से मन्नू बुधिया के पास रहने लगा। वह सबेरे घर से निकल जाता और नकले करके, भीख माँगकर बुधिया के खाने-भर को नाज या रोटियाँ ले आता था। पुत्र भी अगर होता तो वह इतने प्रेम स माता की सेवा न करता। उसकी नकलों से खुश होकर लोग उसे पैसे भी देते थे। उस पैसों से बुधिया खाने की चीजें बाजार से लाती थी।

लोग बुधिया के प्रति बन्दर का वह प्रेम देखकर चकित हो जाते और कहते थे कि यह बन्दर नहीं, कोई देवता है।

['माधुरी,' फरवरी, 1924]

सौदा-ए-खाम

शाम का समय था। इलाहाबाद सैन्ट्रल जेल के सामने छतनार बरगद के पेड़ के नीचे दो सिपाही बैठे हुए थे। किशोरवय कारे सिंह जोर-जोर से भाँग पीस रहा था और यह कोशिश कर रहा था कि बट्टे के साथ सिल उठ आए, और काला-कलूटा रुस्तम खान धीरे-धीरे अफीम घोलता था। दोनों के चेहरे चमक रहे थे और दोनों मुस्करा-मुस्कराकर एक दूसरे की ओर देखते थे।

कारे सिंह ने कहा — आज अच्छे आदमी का मुँह देखा था।

रुस्तम खान ने अफीम का एक घूँट पिया और मुँह बनाते हुए बोले — पता चल जाए तो मैं उस भागवान को डब्बे में बन्द कर लूँ और रोज दर्शन किया करूँ।

कारे सिंह ने भाँग का एक बड़ा सा गोला बनाया और उसे हाथों से तोलकर सन्तोष भरे स्वर में बोले — ऐसे दो-एक आदमी रोज आते रहें तो क्यों परचूनिये, ग्वाले और कोठी वाले की लताड़

सहनी पड़े। आज सेशन जज ने एक बहुचर्चित मुकदमे का फैसला सुनाया था और एक धनी परिवार की विधवा को दो साल

की सजा दी थी। पता नहीं मुकदमे की असलियत क्या थी। जनता की आवाज कुछ कहती थी, मुकदमे का फैसला कुछ। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि कुछ हुस्नो-इश्क और ईर्ष्या-वैमनस्य का मामला था। जेल दारोगा, वार्डन और डाक्टर फूले नहीं समा रहे थे। आज उनके हाथ एक सोने की चिड़िया लग गई थी। उसी के चरणों का प्रताप था कि आज कहीं भाँग के गोले थे, कहीं अफीम की चुस्कियाँ और कहीं उम्दा शराब के दौर।

2

तीन दिन बीत गये। रात के दस बजे का समय था। इलाहाबाद जेल के दरवाजे पर बिजली की लालटेन जल रही थी। कारे सिंह और रुस्तम खान वर्दी पहने, संगीनें चढ़ाए पहरे पर थे।

रुस्तम खान ने बन्दूक पटककर कहा — इस नौकरी से नाक में दम आ गया। यह मजे की मीठी नींद का समय है या खड़े-खड़े कवायद करने का।

कारे सिंह का ध्यान किसी दूसरी तरफ था, कान में बात न पड़ी। अचानक रुस्तम खान के पास जाकर बहुत भेद भरे स्वर से बोले — यार, तुमसे एक बात कहूँ? पेट के हल्के तो नहीं हो, जान जोखिम में है।

रुस्तम खान ने आश्वस्त करते हुए पूछा — क्या मुझ पर भी भरोसा नहीं है, आजमाकर देखो।

कारे सिंह को विश्वास हो गया। बोले — तीन दिन से रोज इसी समय जेल के अन्दर से कोई मेरे पास कागज के टुकड़े फेंकता है। एक ठीकरे में लिपटा हुआ बस मेरे सामने ही आकर गिरता है और मजमून सबका एक। यह देखो।

रुस्तम खान ने आश्चर्यमिश्रित उत्सुकता के साथ टुकड़ों को लिया और बहुत धीरे-धीरे पढ़ने लगा — ठाकुर कारे सिंह को हरनाम देवी का बहुत-बहुत प्यार। यदि बीस हजार नकद, पाँच हजार के गहने और एक प्यार-भरा दिल लेना हो तो मुझे यहाँ से किसी तरह निकालो। बस, जिन्दगी की आस तुम्हीं से है।

रुस्तम खान को ईर्ष्या हुई — यह कोई ऐसा गबरू जवान तो है नहीं, हाँ रंग जरा साफ और बदन सुडौल है। बोले — यार तुम्हारा भाग्य तो जागता हुआ नजर आता है।

कारे सिंह ने उत्साह से कहा — जागेंगे तो हम दोनों के नसीब साथ ही जागेंगे।

रुस्तम खान ने सच्ची सहानुभूति और उत्साहवर्धक दृष्टि से देखा, ईर्ष्या न रही। बोले — मुझे तुमसे यही उम्मीद है। मैं तुम्हारे साथ जान देने को तैयार हूँ।

दोनों दोस्त आपस में फुसफुसाने लगे। उन टुकड़ों के सम्बन्ध में जो सन्देह पैदा हो सकते थे, वे पैदा

हुए। कोई छल-कपट तो नहीं है, शायद किसी दुश्मन की शरारत हो, किसी बुरा चाहने वाले ने जाल बिछाया हो। लेकिन औरत का क्या भरोसा! कहीं धोखा दे तो अपना काम निकालकर धता बता दे। उसे ऐसे सैकड़ों आदमी मिल सकते हैं। फिर उसे नाम कैसे पता चला। जरूर किसी धोखेबाज की शरारत है। लेकिन रुस्तम खान ने अपने जबर्दस्त तर्कों से सारे सन्देह दूर कर दिए — धोखा-फरेब कुछ नहीं, उसका दिल तुम पर आ गया है। तुम्हारे जैसा सजीला जवान पूरी दुनिया में नहीं है। चाहे शर्त लगा लो, कोई बात नहीं है। उसकी निगाह तुम पर पड़ी और रीझ गई। और नाम का क्या, किसी से पूछ लिया होगा। खूबसूरत औरत है, लाखों का कारोबार है। और यदि धता ही बता दे, दो चार महीने

तो उसके साथ रहने का का मजा लूटोगे। इतने दिनों में तो मालामाल हो सकते हो, चाहे सोने की दीवारें बनवा लो।

इस समय कारे सिंह को रुस्तम खान एक अत्यन्त अनुभवी, बुद्धिमान और प्यारा दोस्त लगता था। उसके सारे सन्देह मिट गए। अटकते-अटकते बोले — तो तुम्हारी यही सलाह है?

रुस्तम खान ने दृढ़ता से कहा — हाँ।

कारे सिंह — कुछ आगा-पीछा न करें?

रुस्तम खान — आगा-पीछा करके पछताओगे। मोती तो डूबने से ही मिलता है।

3

ये बातें हो ही रही थीं कि दोनों सिपाहियों के सामने कागज में लिपटा हुआ एक ठीकरा आकर गिरा। रुस्तम खान ने दौड़कर उठा लिया। यह अफीम की तरंग हो या तरक्की न होने की निराशा, इस मामले में उसकी हैसियत एक सहयोगी और हमदर्द की होने पर भी उसका उत्साह और साहस असली हीरो से कई

कदम आगे था। टुकड़ा खोलकर पढ़ने लगा — जवाब का इंतजार है। मैं यहाँ बगीचे में खड़ी हूँ।

बारूद में आग लग गई। धैर्य और चरित्र की दीवार तो कमजोर थी ही, लेकिन भय की मजबूत तथा ऊँची दीवार भी हिल गई। रुस्तम खान ने वह सवाल किया जिसका एक ही जवाब हो सकता था — अब?

कारे सिंह ने डरते-डरते कहा — मैं भी तुम्हारे साथ हूँ।

लेकिन जब कारे सिंह सीढ़ी लाने चला ताकि अहाते की ऊँची दीवार पर चढ़ सके तो उसके हाथ-पैर थर-थर काँप रहे थे। बातों के हवामहल से निकलकर अब वह काम के मुहाने पर खड़ा था और सोच रहा था कि सीढ़ी उठाऊँ या न उठाऊँ। यदि कोई देख ले, किसी दूसरे सिपाही की नजर पड़ जाए या रुस्तम खान ही विश्वासघात कर बैठे तो जान आफत में फँस जाय। इस सोच-विचार में उसे देर हुई तो रुस्तम खान लपके हुए आए और व्यंग्यात्मक स्वर में बोले — यहाँ खड़े-खड़े सीढ़ी के नाम को रो रहे हो क्या? चूड़ियाँ क्यों नहीं पहन लीं?

कारे सिंह ने शर्मिन्दगी से सिर झुकाकर उत्तर दिया — भई, यह काम मेरे बूते का नहीं, मैं क्या करूँ।

रुस्तम खान उन शीघ्र भरोसा करने वाले लोगों में था जो सिर झुकता है मगर तर्क देते नहीं थकते। बोला — अच्छा हटो, मैं ही ले जाता हूँ।

यह कहकर उसने एक लम्बी सीढ़ी कंधे पर उठाई और लाकर उसे जेल की दीवार से सटाकर खड़ा कर दिया। अब कठिनाई का पहला और कठिन पग उठाना था — सीढ़ी पर चढ़कर अन्दर कौन जाए। कारे सिंह जानता था अगर मैंने जरा भी संकोच किया तो रुस्तम खान सीढ़ी पर चढ़ जाएगा और सेहरा भी उसी के सिर होगा। जो भेदी था वह शत्रु बन जाएगा। रुस्तम खान की जिन्दादिली ने उसे भी कुछ जोश दिलाया। सीढ़ी पर तो चढ़ा परन्तु इस तरह मानो कोई सूली के तख्ते पर लिए जाता हो। हरेक कदम के साथ दिल बैठा जाता था और बहुत मुश्किल से सीढ़ी के डंडों पर पैर जमते थे। अन्तरात्मा की आवाज कभी की बन्द हो चुकी थी लेकिन दंड का भय बाकी था। इन्सान मच्छर के डंक की उपेक्षा कर सकता है लेकिन कौन है जो तेज भाले के सामने ढाल बन सके। कारे सिंह पछताता था और अपने को कोसता था कि बेकार बैठे बिठाए अपनी जान आफत में डाल दी। पता नहीं सुबह को क्या गुल खिलेंगे और यह अवश्यम्भावी था कि यदि रुस्तम खान नीचे न खड़ा होता तो वह कुशलतापूर्वक नीचे उतर आने के लिये

देवताओं की मनौतियाँ मानता। इस तरह मचलते और हिचकते हुए उसने आधा रास्ता पार कर लिया।

4

आधा रास्ता पार करने के बाद कारे सिंह को एक प्रकार की स्फूर्ति अनुभव हुई। स्फूर्ति क्या थी, सन्तोष का सहारा था। उसने तेजी से पैर उठाए और बात की बात में जेल की दीवार पर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसने दूसरी ओर निगाह दौड़ाई और उसके मन में गुदगुदी सी होने लगी। एक ओट में खड़ी हरनाम देवी अपनी ओर बुला रही थी। यह लिखना कि किस तरह कारे सिंह अपने साफे को सीढ़ी के एक डंडे से बाँधकर नीचे उतर गया और वहाँ उस रूपसी ने उससे क्या प्यार मोहब्बत की बातें कीं, आपस में क्या-क्या वादे हुए और फिर किस प्रकार वह उसे दीवार के ऊपर लाया, यह एक लम्बा किस्सा है। यह लिखना पर्याप्त है कि कारे सिंह ने वही किया जो एक मनचला आशिक ऐसी हालत में कर सकता था। हरनाम देवी को कद-काठी भरपूर मिली थी और जब कारे सिंह ने मैदान जीतने के लिए उसे अपनी पीठ पर लादा था तो उसकी कमर

टूटी जाती थी। रूपसी ने ऐसे अन्दाज से आसन जमाया था मानो घोड़े की सवारी ही कर रही हो। मगर कारे सिंह ने ये सब मुसीबतें भी हँसते-हँसते झेल लीं। ये सब प्यार की देन हैं। शिकायत का एक शब्द भी मुँह पर न आया, हाँ अपने दिल से मजबूर था। इस तरह जब घंटे भर की मशक्कत के बाद फिर रुस्तम खान के पास आया तो उसकी साँस फूल रही थी और सारा शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। रुस्तम खान ने उसे गोद में उठा लिया और हरनाम देवी से बहुत आदरपूर्वक कहा — बाईजी, इस गुलाम का भी खयाल रहे।

5

समय बहुत मूल्यवान था। हरनाम देवी बरगद की ओट में खड़ी हो गई। दोनों सिपाहियों ने झटपट वर्दी उतार फेंकी और तब रुस्तम खान ने दूसरे सिपाही को जगाकर पहरा बदला। वह एक पहाड़ी था, बहुत गुर्राया कि बारह नहीं बजे, अभी से तंग करने लगे। लेकिन, रुस्तम खान की खुशामद-दरामद ने उसे ठंडा कर दिया। इधर वह पहरे पर आया, उधर वे तीनों आदमी शहर की ओर चल दिए। हरनाम देवी ने सब्जी मंडी का पता दिया था।

आगे-आगे कंधे पर बन्दूक रखे रुस्तम खान गर्व में फूले चले जाते थे मानो कोई मोर्चा ही जीतकर आए हों। बीच में हरनाम देवी थी, शर्मीली और छुईमुई सी। कारे सिंह सबसे पीछे थे, मौन, चिन्तित और भयभीत। कदम-कदम पर खटका होता था कि कहीं पीछे सिपाहियों की पलटन तो नहीं चली आ रही है। इस तरह लगभग आधा मील चलने के बाद पक्की सड़क मिली। हरनाम देवी एक ठंडी साँस लेकर बैठ गई और बोली कि अब मुझसे चला नहीं जाता, मेरे पाँव मन-मन भर के हो गए। एक इक्का लाओ। रुस्तम खान बहुत शर्मिन्दा हुए कि यह प्रस्ताव उनकी ओर से आना चाहिए था। अपनी गलती पर बहुत पछताए और तब कारे सिंह को बन्दूक सौंपकर इक्के की तलाश में चले।

आधी रात थी, चाँदनी छिटकी हुई, जमीन पर आँखें लुभाने वाली घास की चादर, पेड़ की शीतल छाया, फूलों से सजी हुई सम्पूर्ण प्रकृति आनन्द के सुरीले गान से सम्मोहित हो रही थी। यह स्वाभाविक था कि कारे सिंह के दिल में प्यार के विचारों का तूफान उठ खड़ा हो। हरनाम देवी ने एक लुभावनी अदा से उसके दोनों हाथ पकड़ लिए और बोली — ये बहुत शरारत करते हैं, मैं इन्हें बाँध दूँगी।

कारे सिंह को मटके भर भाँग का नशा था, दिल जुल्फों में उलझ चुका था, गर्दन में वफा की रस्सी पड़ी हुई थी। सारा साफा

खत्म हो गया, हरनाम देवी फंदे लगाते-लगाते थक गई, लेकिन वह अपनी मस्ती की तरंग में इन रसीली अदाओं की बहार लूटता रहा। तभी उसकी आँखों के सामने से भ्रम का परदा हटा। हरनाम देवी ने साड़ी उतार फेंकी और उसके बदले एक गठीला, बड़ी-बड़ी मूछों वाला जवान हाथ में बन्दूक लिए खड़ा दिखाई दिया। एक पाँच हाथ की साड़ी आदमी को कितना धोखा दे सकती है! कारे सिंह ने पैर पटककर कहा — अरे घासीराम!

इसी बीच रुस्तम खान इक्का लाते हुए दिखाई दिये। घासीराम ने वह साड़ी उठाकर कारे सिंह को ओढ़ा दी और बोला — यह तुम्हारी हरनाम देवी तुम्हारे हवाले है। इसके बदले में यह बन्दूक मुझे दे दो। अब मैं चलता हूँ, मेरी गलती माफ करना।

कारे सिंह ने चीख पुकार मचाई लेकिन घासीराम गायब हो चुका था। रुस्तम खान पर इस घटना का जो कुछ असर हुआ वह कहने की बात नहीं। आशाओं से भरे हुए सुहाने स्वप्न टूट गए। इस राजदारी, कोशिश और हमदर्दी का यह पुरस्कार मिला कि कारे सिंह ने सारा इल्जाम उसके सिर रखा और जब वह अपनी सफाई देने लगा तो गरीब को ऐसा धोबीपाट मारा कि उसकी कलाई टूट गई।

उसी रात को शहर में दो सशस्त्र डाके पड़े। दैनिक समाचार पत्रों ने लिखा कि कुख्यात डाकू घासीराम इलाहाबाद जेल से निकल भागा है और शहर में चारों ओर डाके और लूट का बोलबाला है।

स्वांग

राजपूत खानदान में पैदा हो जाने ही से कोई सूरमा नहीं हो जाता और न नाम के पीछे 'सिंह' की दुम लगा देने ही से बहादुरी आती है। गजेन्द्र सिंह के पुरखे किस जमाने में राजपूत थे इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं। लेकिन इधर तीन पुश्तों से तो नाम के सिवा उनमें राजपूती के कोई लक्षण न थे। गजेन्द्र सिंह के दादा वकील थे और जिरह या बहस में कभी-कभी राजपूती का प्रदर्शन कर जाते थे। बाप ने कपड़े की दुकान खोलकर इस प्रदर्शन की भी गुंजाइश न रखी। और गजेन्द्र सिंह ने तो लुटिया ही डूबो दी। डील-डौल में भी फर्क आता गया। भूपेन्द्र सिंह का सीना लम्बा-चौड़ा था। नरेन्द्र सिंह का पेट लम्बा-चौड़ा था, लेकिन गजेन्द्र सिंह का कुछ भी लम्बा-चौड़ा न था। वह हलके-फुल्के, गोरे-चिट्टे, ऐनकबाज, नाज़ुक बदन, फैशनेबुल बाबू थे। उन्हें पढ़ने-लिखने से दिलचस्पी थी।

मगर राजपूत कैसा ही हो उसकी शादी तो राजपूत खानदान ही में होगी। गजेन्द्र सिंह की शादी जिस खानदान में हुई थी, उस खानदान में राजपूती जौहर बिलकुल फना न हुआ था। उनके

ससुर पेंशन सूबेदार थे। साले शिकारी और कुश्तीबाज। शादी हुए दो साल हो गए थे, लेकिन अभी तक एक बार भी ससुराल न आ सका। इम्तहानों से फुरसत ही न मिलती थी। लेकिन अब पढ़ाई खतम हो चुकी थी, नौकरी की तलाश थी। इसलिये अबकी होली के मौके पर ससुराल से बुलावा आया तो उसने कोई हील-हुज्जत न की। सूबेदार की बड़े-बड़े अफसरों से जान-पहचान थी, फौजी अफसरों की हुक्कम कितनी कद्र और कितनी इज्जत करते हैं, यह उसे खूब मालूम था। समझा मुमकिन है, सूबेदार साहब की सिफारिश से नायब तहसीलदारी में नामजद हो जाय। इधर श्यामदुलारी से भी साल-भर से मुलाकात नहीं हुई थी। एक निशाने से दो शिकार हो रहे थे। नया रेशमी कोट बनवाया और होली के एक दिन पहले ससुराल जा पहुँचा। अपने गराण्डील सालों के सामने बच्चा-सा मालूम होता था।

तीसरे पहर का वक्त था, गजेन्द्र सिंह अपने सालों से विद्यार्थी काल के कारनामें बयान कर रहा था। फुटबाल में किस तरह एक देव जैसे लम्बे-तड़ंगे गोरे को पटखनी दी, हाकी मैच मे किस तरह अकेले गोल कर लिया, कि इतने में सूबेदार साहब देव की तरह आकर खड़े हो गए और बड़े लड़के से बोले — अरे सुनों, तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो। बाबू जी शहर से आये है, इन्हें लजे जाकर जरा जंगल की सैर करा लाओ। कुछ शिकार-विकार

खिलाओ। यहाँ ठंठर-वेठर तो है नहीं, इनका जी घबराता होगा। वक्त भी अच्छा है, शाम तक लौट आओगे।

शिकार का नाम सुनते ही गजेन्द्र सिंह की नानी मर गई। बेचारे ने उम्र-भर कभी शिकार न खेला था। यह देहाती उजड़ लौंडे उसे न जाने कहाँ-कहाँ दौड़ाएँगे, कहीं किसी जानवर का सामन हो गया तो कहीं के न रहे। कौन जाने हिरन ही चोट कर बैठे। हिरन भी तो भागने की रूह न पाकर कभी-कभी पलट पड़ता है। कहीं भेड़िया निकल आये तो काम ही तमाम कर दे। बोले — मेरा तो इस वक्त शिकार खेलने को जी नहीं चाहता, बहुत थक गया हूँ।

सूबेदार साहब ने फरमाया — तुम घोड़े पर सवार हो लेना। यही तो देहात की बहार है। चुन्नू, जाकर बन्दूक ला, मैं भी चलूँगा। कई दिन से बाहर नहीं निकला। मेरा राइफल भी लेते आना।

चुन्नू और मुन्नू खुश-खुश बन्दूक लेने दौड़े, इधर गजेन्द्र की जान सूखने लगी। पछता रहा था कि नाहक इन लौडों के साथ गप-शप करने लगा। जानता कि यह बला सिर पर आने वाली है, तो आते ही फौरन बीमार बनकर चारपाई पर पड़ रहता। अब तो कोई हीला भी नहीं कर सकता।

सबसे बड़ी मुसीबत घोड़े की सवारी। देहाती घोड़े यो ही थान पर बंधे-बंधे टर्रे हो जाते हैं और आसन का कच्चा सवार देखकर तो वह और भी शेखियाँ करने लगते हैं। कहीं अलफ हो गया मुझे लेकर किसी नाले की तरफ बेतहाशा भागा तो खैरियत नहीं।

दोनों सालें बन्दूकें लेकर आ पहुँचे। घोड़ा भी खिंचकर आ गया। सूबेदार साहब शिकारी कपड़े पहन कर तैयार हो गए। अब गजेन्द्र के लिए कोई हीला न रहा। उसने घोड़े की तरफ नाखियों से देखा — बार-बार जमीन पर पैर पटकता था, हिनहिनाता था, उठी हुई गर्दन, लाला आँखें, कनौतियाँ खड़ी, बोटी-बोटी फड़क रही थी। उसकी तरफ देखते हुए डर लगता था। गजेन्द्र दिल में सहम उठा। मगर बहादुरी दिखाने के लिए घोड़े के पास जाकर उसके गर्दन पर इस तरह थपकियाँ दीं कि जैसे पक्का शहसवार हैं, और बोला — जानवर तो जानदार है मगर मुनासिब नहीं मालूम होता कि आप लोगो तो पैदल चले और मैं घोड़े पर बैठूँ। ऐसा कुछ थका नहीं। मैं भी पैदल ही चलूँगा, इसका मुझे अभ्यास है।

सूबेदार ने कहा — बेटा, जंगल दूर है, थक जाओगे। बड़ा सीधा जानवर हैं, बच्चा भी सवार हो सकता है।

गजेन्द्र ने कहा — जी नहीं, मुझे भी यो ही चलने दीजिए। गप-शप करते हुए चलेंगे। सवारी में वह लुफ्त कहाँ आप बुज़ुर्ग हैं, सवार हो जायँ।

चारों आदमी पैदल चले। लोगों पर गजेन्द्र की इस नम्रता का बहुत अच्छा असर हुआ। सभ्यता और सदाचार तो शहरवाले ही जानते हैं। तिस पर इल्म की बरक। थोड़ी दूर के बाद पथरीला रास्ता मिला। एक तरफ हरा-भरा मैदान दूसरी तरफ पहाड़ का सिलसिला। दोनों ही तरफ बबूल, करील, करौंद और ढाक के जंगल थे। सूबेदार साहब अपनी फौजी जिन्दगी के पिटे हुए किस्से कहते चले आते थे। गजेन्द्र तेज चलने की कोशिश कर रहा था। लेकिन बार-बार पिछड़ जाता था। और उसे दो-चार कदम दौड़कर उनके बराबर होना पड़ता था। पसीने से तर हाँफता हुआ, अपनी बेवकूफ पर पछताता चला जाता था। यहाँ आने की जरूरत ही क्या थी, श्यामदुलारी महीने-दो-महीने में जाती ही। मुझे इस वक्त कुत्तें की तरह दौड़ते आने की क्या जरूरत थी। अभी से यह हाल है। शिकार नजर आ गया तो मालूम नहीं क्या आफत आएगी। मील-दो-मील की दौड़ तो उनके लिए मामूली बात है मगर यहाँ तो कचूमर ही निकल जायगा। शायद बेहोश होकर गिर पड़ूँ। पैर अभी से मन-मन-भर के हो रहे थे। यकायक रास्ते में सेमल का एक पेड़ नजर आया। नीचे लाल-

लाल फूल बिछे हुए थे, ऊपर सारा पेड़ गुलनार हो रूह था। गजेन्द्र वहीं खड़ा हो गया और उस पेड़ को मस्ताना निगाहों से देखने लगा।

चुन्नू ने पूछा — क्या है जीजा जी, रुक कैसे गये?

गजेन्द्र सिंह ने मुग्ध भाव से कहा — कुछ नहीं, इस पेड़ का आर्कषक सौन्दर्य देखकर दिल बाग-बाग हुआ जा रहा है। अहा, क्या बहार है, क्या रौनक है, क्या शान है कि जैसे जंगल की देवी ने गोधूलि के आकाश को लज्जित करने के लिए केसरिया जोड़ा पहन लिया हो या ऋषियों की पवित्र आत्माएँ अपनी शाश्वत यात्रा में यहाँ आराम कर रही हों, या प्रकृति का मधुर संगीत मूर्तिमान होकर दुनिया पर मोहिनी मन्त्र डाल रहा हो आप लोग शिकार खेलने जाइए, मुझे इस अमृत से तृप्त होने दीजिए।

दोनों नौजवान आश्चर्य से गजेन्द्र का मुँह ताकने लगे। उनकी समझ ही में न आया कि यह महाशय कह क्या रहे हैं। देहात के रहनेवाले जंगलों में घूमनेवाले, सेमल उनके लिए कोई अनोखी चीज न थी। उसे रोज देखते थे, कितनी ही बार उस पर चढ़े, थे उसके नीचे दौड़े थे, उसके फूलों की गेंद बनाकर खेले थे, उन पर यह मस्ती कभी न छाई थी, सौंदर्य का उपभोग करना बेचारे क्या जाने।

सूबेदार साहब आगे बढ़ गये थे। इन लोगों को ठहरा हुआ देखकर लौट आये और बोले — क्यों बेटा ठहर क्यों गये?

गजेन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा — आप लोग मुझे माफ कीजिए, मैं शिकार खेलने न जा सकूँगा। फूलों की यह बहार देखकर मुझ पर मस्ती-सी छा गई हैं, मेरी आत्मा स्वर्ग के संगीत का मजा ले रही है। अहा, यह मेरा ही दिल जो फूल बनकर चमक रहा है। मुझ में भी वही लाली है, वहीं सौंदर्य है,

वही रस है। मेरे हृदय पर केवल अज्ञानता का पर्दा पड़ा हुआ है। किसका शिकार करें? जंगल के मासूम जानवरों का? हमीं तो जानवर हैं, हमीं तो चिड़ियाँ हैं, यह हमारी ही कल्पनाओं का दर्पण है जिसमें भौतिक संसार की झलक दिखाई पड़ रही है। क्या अपना ही खून करें? नहीं, आप लोग शिकार करन जायँ, मुझे इस मस्ती और बहार में डूबकर इसका आन्नद उठाने दें। बल्कि मैं तो प्रार्थना करूँगा कि आप भी शिकार से दूर रहें। जिन्दगी खुशियों का खजाना हैं उसका खून न कीजिए। प्रकृति के दृश्यों से अपने मानस-चक्षुओं को तृप्त कीजिए। प्रकृति के एक-एक कण में, एक-एक फूल में, एक-एक पत्ती में इसी आनन्द की किरणों चमका रही हैं। खून करके आन्नद के इस अक्षय स्रोत को अपवित्र न कीजिए।

इस दार्शनिक भाषण ने सभी को प्रभावित कर दिया। सूबेदार ने चुन्नू से धीमे से कहा — उम्र तो कुछ नहीं है लेकिन कितना ज्ञान भरा हुआ है। चुन्नू ने भी अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया — विद्या से ही आत्मा जाग जाती है, शिकार खेलना है बुरा।

सूबेदार साहब ने ज्ञानियों की तरह कहा — हाँ, बुरा तो है, चलो लौट चलें। जब हरेक चीज में उसी का प्रकाश है, तो शिकार कौन और शिकार कौन अब कभी शिकार न खेलूँगा।

फिर वह गजेन्द्र से बोले — भइया, तुम्हारे उपदेश ने हमारी आँखें खोल दीं। कसम खाते हैं, अब कभी शिकार न खेलेंगे।

गजेन्द्र पर मस्ती छाई हुई थी, उसी नशे की हालत में बोला — ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद है कि उसने आप लोगों को यह सदबुद्धि दी। मुझे खुद शिकार का कितना शौक था, बतला नहीं सकता। अनगिनत जंगली सूअर, हिरन, तुंदुए, नीलगायें, मगर मारे होंगे, एक बार चीते को मार डाला। मगर आज ज्ञान की मदिरा का वह नशा हुआ कि दुनिया का कहीं अस्तित्त्व ही नहीं रहा।

होली जलाने का मुहूर्त नौ बजे रात को था। आठ ही बजे से गाँव के औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे गाते-बजाते कबीरे उड़ाते होली की तरफ चले। सूबेदार साहब भी बाल-बच्चों को लिए मेहमान के साथ होली जलाने चले।

गजेन्द्र ने अभी तक किसी बड़े गाँव की होली न देखी थी। उसके शहर में तो हर मुहल्ले में लकड़ी के मोटे-मोटे दो चार कुन्दे जला दिये जाते थे, जो कई-कई दिन तक जलते रहते थे। यहाँ की होली एक लम्बे-चौड़े मैदान में किसी पहाड़ की ऊँची चोटी की तरह आसमान से बातें कर रही थी।

ज्यों ही पंडित जी ने मंत्र पढ़कर नये साल का स्वागत किया, आतिशबाजी छूटने लगी। छोटे-बड़े सभी पटाखे, छछूंदरे, हवाइयाँ छोड़ने लगे। गजेन्द्र के सिर पर से कई छछूंदर सनसनाती हुई निकल गईं। हरेक पटाखे पर बेचार दो-दो चार-चार कदम पीछे हट जाता था और दिल में इस उजड़ देहातियों को कोसता था। यह क्या बेहूदगी है, बारुद कहीं कपड़े में लग जाय, कोई और दुर्घटना हो जाय तो सारी शरारत निकल जाए। रोज ही तो ऐसी वारदातों होती रहती है, मगर इन गँवारों क्या खबर। यहाँ दादा न जो कुछ किया वही करेंगे। चाहे उसमें कुछ तुक हो या न हो अचानक नजदीक से एक बमगोल के छूटने की गगनभेदी आवाज हुई कि जैसे बिजली कड़की हो।

गजेन्द्र सिंह चौंककर कोई दो फीट ऊँचे उछल गए। अपनी जिन्दगी में वह शायद कभी इतना न कूदे थे। दिल धक-धक करने लगा, गोया तोप के निशाने के सामने खड़े हों। फौरन दोनों कान उंगलियों से बन्द कर लिए और दस कदम और पीछे हट गए।

चुन्नू ने कहा — जीजाजी, आप क्या छोड़ेंगे, क्या लाऊँ?

मुन्नू बाला — हवाइयाँ छोड़िए जीजाजी, बहुत अच्छी है। आसमान में निकल जाती हैं।

चुन्नू — हवाइयाँ बच्चे छोड़ते हैं कि यह छोड़ेगे? आप बमगोला छोड़िए भाई साहब।

गजेन्द्र — भाई, मुझे इन चीजों का शौक नहीं। मुझे तो ताज्जुब हो रहा है बूढ़े भी कितनी दिलचस्पी से आतिशबाजी छुड़ा रहे हैं।

मुन्नू — दो-चार महाताबियाँ तो जरूर छोड़िए।

गजेन्द्र को महताबियाँ निरापद जान पड़ी। उनकी लाल, हरी सुनहरी चमक के सामने उनके गोरे चेहरे और खूबसूरत बालों और रेशमी कुर्ते की मोहकता कितनी बढ़ जायगी। कोई खतरे की बात भी नहीं। मजे से हाथ में लिए खड़े हैं, गुल टप-टप नीचे गिर रहा है ओर सबकी निगाहें उनकी तरफ लगी हुई हैं उनकी

दार्शनिक बुद्धि भी आत्मप्रदर्शन की लालसा से मुक्त न थी। फौरन महताबी ले ली, उदासीनता की एक अजब शान के साथ। मगर पहली ही महताबी छोड़ना शुरु की थी कि दूसरा बमगोला छूटा। आसमान काँप उठा। गजेन्द्र को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कान के पर्दे फट गये या सिर पर कोई हथौड़ा गिर पड़ा। महताबी हाथ से छूटकर गिर पड़ी और छाती धड़कने लगी। अभी इस धमाके से सम्हलने ने पाये थे कि दूसरा धमाका हुआ। जैसे आसमान फट पड़ा। सारे वायुमण्डल में कम्पन-सा आ गया, चिड़िया घोंसलों से निकल निकल शोर मचाती हुई भागी, जानवर रस्सियाँ तुड़ा-तुड़ाकर भागे और गजेन्द्र भी सिर पर पाँव रखकर भागे, सरपट, और सीधे घर पर आकर दम लिया।

चुन्नू और मुन्नू दोनों घबड़ा गए। सूबेदार साहब के होश उड़ गए। तीनों आदमी बगटुट दौड़े हुए गजेन्द्र के पीछे चले। दूसरों ने जो उन्हें भागते देखा तो समझे शायद कोई वारदात हो गई। सबके सब उनके पीछे हो लिए। गाँव में एक प्रतिष्ठित अतिथि का आना मामूली बात न थी। सब एक-दूसरे से पूछ रहे थे — मेहमान को हो क्या गया? माजरा क्या हैं? क्यों यह लोग दौड़े जा रहे हैं। एक पल में सैकड़ों आदमी सूबेदार साहब के दरवाजे पर हाल-चाल पूछने लिए जमा हो गए।

गाँव का दामाद कुरूप होने पर भी दर्शनीय और बदहाल होते हुए भी सबका प्रिय होता है। सूबेदार ने सहमी हुई आवाज में पूछा — तुम वहाँ से क्यों भाग आए, भइया।

गजेन्द्र को क्या मालूम था कि उसके चले आने से यह तहलका मच जाएगा। मगर उसके हाजिर दिमाग ने जवाब सोच लिया था और जवाब भी ऐसा कि गाँव वालों पर उसकी अलौकिक दृष्टि की धाक जमा दे।

बोला — कोई खास बात न थी, दिल में कुछ ऐसा ही आया कि यहाँ से भाग जाना चाहिए।

‘नहीं, कोई बात जरूर थी।’

‘आप पूछकर क्या करेंगे? मैं उसे जाहिर करके आपके आनन्द में विघ्न ’नहीं डालना चाहता।’

‘जब तक बतला न दोगे बेटा, हमें तसल्ली नहीं होगी। सारा गाँव घबराया हुआ है।’

गजेन्द्र ने फिर सूफियों का-सा चेहरा बनाया, आँखें बन्द कर लीं, जम्हाइयाँ लीं और आसमान की तरफ देखकर बोले —बात यह है कि ज्यों ही मैंने महताबी हाथ में ली, मुझे मालूम हुआ जैसे किसी ने उसे मेरे हाथ से छीनकर फेंक दिया। मैंने कभी

आतिशबाजियाँ नहीं छोड़ी, हमेशा उनको बुरा-भला कहता रहा हूँ। आज मैंने वह काम किया जो मेरी अन्तरात्मा के खिलाफ था। बस गजब ही तो हो गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है। शर्म से मेरी गर्दन झुक गई और मैं इसी हालत में वहाँ से भागा। अब आप लोग मुझे माफ करें मैं आपको जशन में शरीक न हो सकूँगा।

सूबेदार साहब ने इस तरह गर्दन हिलाई कि जैसे उनके सिवा वहाँ कोई इस अध्यात्म का रहस्य नहीं समझ सकता। उनकी आँखें कह रही थीं — आती हैं तुम लोगों की समझ में यह बातें? तुम भला क्या समझोगे, हम भी कुछ-कुछ ही समझते हैं।

होली तो नियत समय जलाई गई थी मगर आतिशबाजियाँ नदी में डाल दी गईं। शरीर लड़को ने कुछ इसलिए छिपाकर रख लीं कि गजेन्द्र चले जाएँगे तो मजे से छुड़ाएँगे।

श्यामदुलारी ने एकान्त में कहा — तुम तो वहाँ से खूब भागे।

गजेन्द्र अकड़ कर बोले — भागता क्यों, भागने की तो कोई बात न थी।

'मेरी तो जान निकल गई कि न मालूम क्या हो गया। तुम्हारे ही साथ मैं भी दौड़ी आई। टोकरी-भर आतिशबाजी पानी में फेंक दी गई।'

'यह तो रुपये को आग में फूँकना है।'

'होली में भी न छोड़े तो कब छोड़े। त्यौहार इसीलिए तो आते हैं।'

'त्यौहार में गाओ-बजाओ, अच्छी-अच्छी चीजें पकाओ-खाओ, खैरात करो, या दोस्तों से मिलों, सबसे मुहब्बत से पेश आओ, बारुद उड़ने का नाम त्यौहार नहीं है।'

रात के बारह बज गये थे। किसी ने दरवाजे पर धक्का मारा, गजेन्द्र ने चौंककर पूछा — यह धक्का किसने मारा?

श्यामा ने लापरवाही से कहा — बिल्ली-बिल्ली होगी।

कई आदमियों के फट-फट करने की आवाजें आईं, फिर किवाड़ पर धक्का पड़ा। गजेन्द्र को कंपकंपी छूट गई, लालटेन लेकर दराज से झाँक तो चेहरे का रंग उड़ गया, चार-पाँच आदमी कुर्ते पहने, पगड़ियाँ बाँधे, दाढ़ियाँ लगाये, कंधे पर बन्दूकें रखे, किवाड़ को तोड़ डालने की जबर्दस्त कोशिश में लगे हुए थे। गजेन्द्र कान लगाकर बातें सुनने लगा —

'दोनों सो गये हैं, किवाड़ तोड़ डालो, माल अलमारी में है।'

'और अगर दोनों जाग गए?'

'औरत क्या कर सकती हैं, मर्द का चारपाई से बांध देंगे।'

‘सुनते है गजेन्द्र सिंह कोई बड़ा पहलवान हैं।’

‘कैसा ही पहलवान हो, चार हथियारबन्द आदमियों के सामने क्या कर सकता है।’

गजेन्द्र के काटो तो बदन में खून नहीं श्यामदुलारी से बोले — यह डाकू मालूम होते हैं। अब क्या होगा, मेरे तो हाथ-पाँव काँप रहे है चोर-चोर पुकारो, जाग हो जाएगी, आप भाग जाएँगे। नहीं मैं चिल्लाती हूँ। चोर का दिल आधा।’

‘ना-ना, कहीं ऐसा गजब न करना। इन सबों के पास बन्दूकें हैं। गाँव में इतना सन्नाटा क्यों हैं? घर के आदमी क्या हुए?’

‘भइया और मुन्नू दादा खलिहान में सोने गए हैं, काक दरवाजें पर पड़े होंगे, उनके कानों पर तोप छूटे तब भी न जागेंगे।’

‘इस कमरे में कोई दूसरी खिड़की भी तो नहीं है कि बाहर आवाज पहुंचे। मकान है या कैदखाने’

‘मै तो चिल्लाती हूँ।’

‘अरे नहीं भाई, क्यों जान देने पर तुली हो। मैं तो सोचता हूँ, हम दोनों चुपचाप लेट जाएँ और आँखें बन्द कर लें। बदमाशों को जो कुछ ले जाना हो ले जाए, जान तो बचे। देखों किवाड़ हिल रहे हैं। कहीं टूट न जाएँ। हे ईश्वर, कहाँ जाएँ, इस मुसीबत में

तुम्हारा ही भरोसा है। क्या जानता था कि यह आफत आने वाली हैं, नही आता ही क्यों? बसा चुप्पी ही साध लो। अगर हिलाएँ-विलाएँ तो भी सांस मत लेना।'

'मुझसे तो चुप्पी साधकर पड़ा न रहा जाएगा।'

'जेवर उतारकर रख क्यों नहीं देती, शैतान जेवर ही तो लेंगे।'

'जेवर तो न उतारूँगी चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय।'

'क्यों जान देने पर तुली हुई हो?'

खुशी से तो जेवर न उतारूँगी, जबर्दस्त ओर बात हैं'

खामोशी, सुनो सब क्या बातें कर रहे हैं।'

बाहर से आवाज आई — किवाड़ खोल दो नहीं तो हम किवाड़ तोड़ कर अन्दर आ जाएँगे।

गजेन्द्र श्यामदुलारी की मिन्नत की — मेरी मानो श्यामा, जेवर उतारकर रख दो, मैं वादा करता हूँ बहुत जल्दी नये जेवर बनवा दूँगा।

बाहर से आवाज आई — क्यों, आई! बस एक मिनट की मुहलत और देते हैं, अगर किवाड़ न खोले तो खैरियत नहीं।

गजेन्द्र ने श्यामदुलारी से पूछा — खोल दूँ?

'हा, बुला लो तुम्हारे भाई — बन्द हैं? वह दरवाजे को बाहर से ढकेलते हैं, तुम अन्दर से बाहर को ठेली।'

'और जो दरवाजा मेरे ऊपर गिर पड़े? पाँच-पाँच जवान हैं!'

'वह कोने में लाठी रखी है, लेकर खड़े हो जाओ।'

'तुम पागल हो गई हो।'

'चुन्नी दादा होते तो पाँचों का गिरते।'

'मैं लट्टबाज नहीं हूँ।'

'तो आओ मुँह ढाँपकर लेट जाओं, मैं उन सबों से समझ लूँगी।'

'तुम्हें तो और समझकर छोड़ देंगे, माथे मेरे जाएगी।'

'मैं तो चिल्लाती हूँ।'

'तुम मेरी जान लेकर छोड़ोगी!

'मुझसे तो अब सब्र नहीं होता, मैं किवाड़ खोल देती हूँ।'

उसने दरवाजा खोल दिया। पाँचों चोर में भड़भड़ाकर घुस आए। एक ने अपने साथी से कहा — मैं इस लौंडे को पकड़े हुए हूँ तुम औरत के सारे गहने उतार लो।

दूसरा बोला — इसने तो आँखों बन्द कर लीं। अरे, तुम आँखें क्यों नहीं खोलती जी?

तीसरा — यार, औरत तो हसीन है!

चौथा — सुनती है ओ मेहरिया, जेवर दे दे नहीं गला घोंट दूँगा।

गजेन्द्र दिल में बिगड़ रहे थे, यह चुड़ैल जेवर क्यों नही उतार देती।

श्यामदुलारी ने कहा — गला घोंट दो, चाहे गोली मार दो जेवर न उतारूँगी।

पहला — इस उठा ले चलो। यों न मानेगी, मन्दिर खाली है।

दूसरा — बस, यही मुनासिब है, क्यों रे छोकरी, हमारे साथ चलेगी?

श्यामदुलारी — तुम्हारे मुँह में कालिख लगा दूँगी।

तीसरा — न चलेगी तो इस लौंडे को ले जाकर बेच डालेंगे।

श्यामा — एक-एक के हथकड़ी लगवा दूँगा।

चौथा — क्यों इतना बिगड़ती है महारानी, जरा हमारे साथ चली क्यो नहीं चलती। क्या हम इस लौंडें से भी गये-गुजरे है। क्या रा जाएगा, अगर हम तुझे जबर्दस्ती उठा ले जाएँगे। यों सीधी तरह नहीं मानती हो। तुम जैसी हसीन औरत पर जुल्म करने को जी नहीं चाहता।

पाँचवाँ — या तो सारे जेवर उतारकर दे दो या हमारे साथ चलो।

श्यामदुलारी — काका आ आएँगे तो एक-एक की खाल उधेड़ डालेंगे।

पहला — यह यों न मानेगी, इस लौंडें को उठा ले चलो। तब आप ही पैरों पड़ेगी।

दो आदमियों ने एक चादर से गजेन्द्र के हाथ-पाँव बांधे। गजेन्द्र मुर्दे की तरह पड़े हुए थे, सांस तक न आती थी, दिल में झुँझला रहे थे — हाय कितनी बेवफा औरत है, जेवर न देगी चाहे यह सब मुझे जान से मार डालें। अच्छा, जिन्दा बचूँगा तो देखूँगा। बात तक तो पूछ नहीं।

डाकुओं ने गजेन्द्र को उठा लिया और लेकर आँगन में जा पहुंचे तो श्यामदुलारी दरवाजे पर खड़ी होकर बोली — इन्हें छोड़ दो तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।

पहला — पहले ही क्यों न राजी हो गई थी। चलेगी न?

श्यामदुलारी — चलूँगी। कहती तो हूँ।

तीसरा — अच्छा तो चल। हम इसे इसे छोड़ देते है।

दोनों चोरों पे गजेन्द्र को लाकर चारपाई पर लिटा दिया और श्यामदुलारी को लेकर चले दिए। कमरे में सन्नाटा छा गया। गजेन्द्र ने डरते-डरते आँखें खोलीं, कोई नजर ल आया। उठकर दरवाजे से झाँका। सहन में भी कोई न था। तीर की तरह निकलकर सदर दरवाजे पर आए लेकिन बाहर निकलने का हौसला न हुआ। चाहा कि सूबेदार साहब को जगाए, मुँह से आवाज न निकली।

उसी वक्त कहकहे की आवाज आई। पाँच औरतें चुहल करती हुई श्यामदुलारी के कमरे में आईं। गजेन्द्र का वहाँ पता न था।

एक — कहाँ चले गए?

श्यामदुलारी — बाहर चले गए होगें।

दूसरी — बहुत शर्मिन्दा होंगे।

तीसरी — डर के मारे उनकी सांस तक बन्द हो गई थी।

गजेन्द्र ने बोलचाल सुनी तो जान में जान आई। समझे शायद घर में जाग हो गईं। लपककर कमरे के दरवाजें पर आए और बोले — जरा देखिए श्यामा कहाँ हैं, मेरी तो नींद ही न खुली। जल्द किसी को दौड़ाइए।

यकायक उन्हीं औरतों के बीच में श्यामा को खड़े हँसते देखकर हैरत में आ गए।

पाँचों सहेलियों ने हँसना और तालियाँ पीटना शुरु कर दिया।

एक ने कहा — वाह जीजा जी, देख ली आपकी बहादुरी।

श्यामदुलारी — तुम सब की सब शैतानी हो।

तीसरी — बीवी तो चारों के साथ चली गईं और आपने सांस तक न ली!

गजेन्द्र समझ गए, बड़ा धोखा खाया। मगर जबान के शेर फौरन बिगड़ी बात बना ली, बोले — तो क्या करता, तुम्हारा स्वांग बिगाड़ देता! मैं भी इस तमाशे का मजा ले रहा था। अगर सबों को पकड़कर मूँछे उखाड़ लेता तो तुम कितनी शर्मिन्दा होतीं। मैं इतना बेरहम नहीं हूँ।

सब की गजेन्द्र का मुँह देखती रह गईं।

[वारदात से]

होली का उपहार

मैकूलाल अमरकान्त के घर शतरंज खेलने आये, तो देखा, वह कहीं बाहर जाने की तैयारी कर रहे हैं। पूछा — कहीं बाहर की तैयारी कर रहे हो क्या भाई? फुरसत हो, तो आओ, आज दो-चार बाजियाँ हो जाएँ।

अमरकान्त ने सन्दूक में आईना-कंघी रखते हुए कहा — नहीं भाई, आज तो बिलकुल फुरसत नहीं है। कल जरा ससुराल जा रहा हूँ। सामान-आमान ठीक कर रहा हूँ।

मैकू — तो आज ही से क्या तैयारी करने लगे? चार कदम तो हैं। शायद पहली बार जा रहे हो?

अमर — हाँ यार, अभी एक बार भी नहीं गया। मेरी इच्छा तो अभी जाने को न थी; पर ससुरजी आग्रह कर रहे हैं।

मैकू — तो कल शाम को उठना और चल देना। आध घण्टे में तो पहुँच जाओगे।

अमर — मेरे हृदय में तो अभी से जाने कैसी धड़कन हो रही है। अभी तक तो कल्पना में पत्नी-मिलन का आनन्द लेता था। अब

वह कल्पना प्रत्यक्ष हुई जाती है। कल्पना सुन्दर होती है, प्रत्यक्ष क्या होगा, कौन जाने।

मैकू — तो कोई सौगात ले ली है? खाली हाथ न जाना, नहीं मुँह ही सीधा न होगा। अमरकान्त ने कोई सौगात न लिया था। इस कला में अभी अभ्यस्त न हुए थे।

मैकू बोला — तो अब ले लो, भले आदमी! पहली बार जा रहे हो, भला वह दिल में क्या कहेंगी?

अमर — तो क्या चीज ले जाऊँ? मुझे तो इसका ख्याल ही नहीं आया। कोई ऐसी चीज़ बताओ, जो कम खर्च और बालानशीन हो; क्योंकि घर भी रुपये भेजने हैं, दादा ने रुपये माँगे हैं।

मैकू माँ-बाप से अलग रहता था। व्यंग्य करके बोला — जब दादा ने रुपये माँगे हैं, तो भला कैसे टाल सकते हो! दादा का रुपये माँगना कोई मामूली बात तो है नहीं?

अमरकान्त ने व्यंग्य न समझकर कहा — हाँ इसी वजह से तो मैंने होली के लिए कपड़े भी नहीं बनवाये। मगर जब कोई सौगात ले जाना भी जरूरी है, तो कुछ-न-कुछ लेना ही पड़ेगा। हलके दामों की कोई चीज़ बतलाओ।

दोनों मित्रों में विचार-विनिमय होने लगा। विषय बड़े ही महत्व का था। उसी आधार पर भावी दाम्पत्य-जीवन सुखमय या इसके प्रतिकूल हो सकता था। पहले दिन बिल्ली को मारना अगर जीवन पर स्थायी प्रभाव डाल सकता है, तो पहला उपहार क्या कम महत्व का विषय है? देर तक बहस होती रही; पर कोई निश्चय न हो सका।

उसी वक्त एक पारसी महिला एक नये फैशन की साड़ी पहने हुए मोटर पर निकल गयी। मैकूलाल ने कहा — अगर ऐसी एक साड़ी ले लो तो वह जरूर खुश हो जाएँ। कितना सूफियाना रंग है। और वज़ा कितनी निराली! मेरी आँखों में तो जैसे बस गयी। हाशिम की दूकान से ले लो। 25) में आ जाएगी।

अमरकान्त भी उस साड़ी पर मुग्ध हो रहा था। वधू यह साड़ी देखकर कितनी प्रसन्न होगी और उसके गोरे रंग यह पर कितनी खिलेगी, वह इसी कल्पना में मग्न था। बोला — हाँ यार, पसन्द तो मुझे भी है; लेकिन हाशिम की दूकान पर तो पिकेटिंग हो रही है।

‘तो होने दो। खरीदने वाले खरीदते ही हैं, अपनी इच्छा है, जो चीज चाहते हैं, खरीदते हैं, किसी के बाबा का साझा है।’

अमरकान्त ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा — यह तो सत्य है; लेकिन मेरे लिए स्वयंसेवकों के बीच से दूकान में जाना सम्भव नहीं है। फिर तमाशाइयों की हरदम भीड़ भी तो लगी रहती है।

मैकू ने मानों उसकी कायरता पर दया करके कहा — तो पीछे के द्वार से चले जाना। वहाँ पिकेटिंग नहीं होती।

'किसी देशी दूकान पर न मिल जाएगी?'

'हाशिम की दूकान के सिवा और कहीं न मिलेगी।'

2

सन्ध्या हो गयी थी। अमीनाबाद में आकर्षण का उदय हो गया था। सूर्य की प्रतिभा विद्युत-प्रकाश के बुलबुलों में अपनी स्मृति छोड़ गयी थी। अमरकान्त दबे पाँव हाशिम की दूकान के सामने पहुँचा। स्वयंसेवकों का धरना भी था और तमाशाइयों की भीड़ भी। उसने दो-तीन बार अन्दर जाने के लिए कलेजा मजबूत किया, पर फुटपाथ तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया। मगर साड़ी लेना जरूरी था। वह उसकी आँखों में खुब गयी थी। वह उसके लिए पागल हो रहा था।

आखिर उसने पिछ्वाड़े के द्वार से जाने का निश्चय किया। जाकर देखा, अभी तक वहाँ कोई वालण्टियर न था। जल्दी से एक सपाटे में भीतर चला गया और बीस-पचीस मिनट में उसी नमूने की एक साड़ी लेकर फिर उसी द्वार पर आया; पर इतनी ही देर में परिस्थिति बदल चुकी थी। तीन स्वयंसेवक आ पहुँचे थे। अमरकान्त एक मिनट तक द्वार पर दुविधे में खड़ा रहा। फिर तीर की तरह निकल भागा और अन्धाधुन्ध भागता चला गया। दुर्भाग्य की बात! एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई चली आ रही थी। अमरकान्त उससे टकरा गया। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी गालियाँ देने — आँखों में चर्बी छा गयी है क्या? देखकर नहीं चलते? यह जवानी ढै जाएगी एक दिन।

अमरकान्त के पाँव आगे न जा सके। बुढ़िया को उठाया और उससे क्षमा माँग रहे थे कि तीनों स्वयंसेवकों ने पीछे से आकर उन्हें घेर लिया। एक स्वयंसेवक ने साड़ी के पैकेट पर हाथ रखते हुए कहा — बिल्लाती कपड़ा ले जाए का हुक्म नहीं ना। बुलाइत है, तो सुनत नाहीं हौ।

दूसरा बोला — आप तो ऐसे भागे, जैसे कोई चोर भागे?

तीसरा — हज्जारन मनई पकर-पकरि के जेहल में भरा जात अहैं, देश में आग लगी है, और इनका मन बिल्लाती माल से नहीं भरा।

अमरकान्त ने पैकेट को दोनों हाथों से मजबूत करके कहा — तुम लोग मुझे जाने दोगे या नहीं।

पहले स्वयंसेवक ने पैकेट पर हाथ बढ़ाते हुए कहा — जाए कसन देई। बिल्लाती कपड़ा लेके तुम यहाँ से कबौं नाहीं जाय सकत हौ।

अमरकान्त ने पैकेट को एक झटके से छुड़ाकर कहा — तुम मुझे हर्गिज नहीं रोक सकते।

उन्होंने कदम आगे बढ़ाया, मगर दो स्वयंसेवक तुरन्त उसके सामने लेट गये। अब बेचारे बड़ी मुश्किल में फँसे। जिस विपत्ति से बचना चाहते थे, वह जबरदस्ती गले पड़ गयी। एक मिनट में बीसों आदमी जमा हो गये। चारों तरफ से उन टिप्पणियाँ होने लगीं।

‘कोई जण्टुलमैन मालूम होते हैं।’

‘यह लोग अपने को शिक्षित कहते हैं। छिः! इस दूकान पर से रोज दस-पाँच आदमी गिरफ्तार होते हैं; पर आपको इसकी क्या परवाह!’

‘कपड़ा छीन लो और कह दो, जाकर पुलिस में रपट करें।’

‘बेचारे बेड़ियाँ-सी पहने खड़े थे। कैसे गला छूटे, इसका कोई उपाय न सूझता था। मैकूलाल पर क्रोध आ रहा था कि उसी ने यह रोग उनके सिर मढ़ा। उन्हें तो किसी सौग़ात की फिक्र न थी। आये वहाँ से कि कोई सौग़ात ले लो।

कुछ देर तक लोग टिप्पणियाँ ही करते रहे, फिर छीन-झपट शुरू हुई। किसी ने सिर से टोपी उड़ा दी। उसकी तरफ लपके, तो एक ने साड़ी का पैकेट हाथ से छीन लिया। फिर वह हाथों-हाथ गायब हो गयी।

अमरकान्त ने बिगड़कर कहा — मैं पुलिस में रिपोर्ट करता हूँ।

एक आदमी ने कहा — हाँ-हाँ, जरूर जाओ और हम सभी को फाँसी चढ़वा दो!

सहसा एक युवती खद्दर की साड़ी पहने, एक थैला लिए आ निकली। यहाँ यह हुड़दंग देखकर बोली — क्या मुआमला है? तुम लोग क्यों इस भले आदमी को दिक कर रहे हो?

अमरकान्त की जान में जान आयी। उसके पास जाकर फरियाद करने लगे-ये लोग मेरे कपड़े छीनकर भाग गये हैं और उन्हें गायब कर दिया। मैं इसे डाका कहता हूँ, यह चोरी है। इसे मैं न सत्याग्रह कहता हूँ, न देश प्रेम।

युवती ने दिलासा दिया — घबड़ाइए नहीं! आपके कपड़े मिल जाएँगे होंगे तो इन्हीं लोगों के पास! कैसे कपड़े थे?

एक स्वयंसेवक बोला — बहनजी, इन्होंने हाशिम की दूकान से कपड़े लिये हैं।

युवती — किसी की दूकान से लिये हों, तुम्हें उनके हाथ से कपड़ा छीनने का कोई अधिकार नहीं है। आपके कपड़े वापस ला दो। किसके पास हैं?

एक क्षण में अमरकान्त की साड़ी जैसे हाथोंहाथ गयी थी, वैसे ही हाथोंहाथ वापस आ गयी।

जरा देर में भीड़ भी गायब हो गयी। स्वयंसेवक भी चले गये। अमरकान्त ने युवती को धन्यवाद देते हुए कहा — आप इस समय न आयी होतीं तो इन लोगों ने धोती तो गायब कर ही दी थी, शायद मेरी खबर भी लेते।

युवती ने सरल भत्र्सना के भाव से कहा — जन सम्पत्ति का लिहाज सभी को करना पड़ता है; मगर आपने इस दूकान से कपड़े लिये ही क्यों? जब आप देख रहे हैं कि वहाँ हमारे ऊपर कितना अत्याचार हो रहा है, फिर भी आप न माने। जो लोग समझकर भी नहीं समझते, उन्हें कैसे कोई समझाये!

अमरकान्त इस समय लज्जित हो गये और अपने मित्रों में बैठकर वे जो स्वेच्छा के राग अलापा करते थे, वह भूल गये। बोले — मैंने अपने लिए नहीं खरीदे हैं, एक महिला की फ़रमाइश थी; इसलिए मजबूर था।

‘उन महिला को आपने समझाया नहीं?’

‘आप समझातीं, तो शायद समझ पातीं, मेरे समझाने से तो न समझीं।’

‘कभी अवसर मिला, तो जरूर समझाने की चेष्टा करूँगी। पुरुषों की नकेल महिलाओं के हाथ में है! आप किस मुहल्ले में रहते हैं?

‘सआदगंज में।’

‘शुभनाम?’

‘अमरकान्त।’

युवती ने तुरन्त जरा-सा घूँघट खींच लिया और सिर झुकाकर संकोच और स्नेह से सने स्वर में बोली — आपकी पत्नी तो आपके घर में नहीं है, उसने फ़रमाइश कैसे की?

अमरकान्त ने चकित होकर पूछा — आप किस मुहल्ले में रहती हैं?

'घसियारी मण्डी।'

'आपका नाम सुखदादेवी तो नहीं है?'

'हो सकता है, इस नाम की कई स्त्रियाँ हैं।'

'आपके पिता का नाम ज्वालादत्तजी है?'

'उस नाम के भी कई आदमी हो सकते हैं।'

अमरकान्त ने जेब से दियासलाई निकाली और वहीं सुखदा के सामने उस साड़ी को जला दिया।

सुखदा ने कहा — आप कल आएँगे?

अमरकान्त ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा — नहीं सुखदा, जब तक इसका प्रायश्चित न कर लूँगा, न आऊँगा।

सुखदा कुछ और कहने जा रही थी कि अमरकान्त तेजी से कदम बढ़ाकर दूसरी तरफ चले गये।

3

आज होली है; मगर आजादी के मतवालों के लिए न होली है न बसन्त। हाशिम की दूकान पर आज भी पिकेटिंग हो रही है, और तमाशाई आज भी जमा हैं। आज के स्वयंसेवकों में अमरकान्त भी खड़े पिकेटिंग कर रहे हैं। उनकी देह पर खद्दर का कुरता है और खद्दर की धोती। हाथ में तिरंगा झण्डा लिये हैं।

एक स्वयंसेवक ने कहा — पानीदारों को यों बात लगती है। कल तुम क्या थे, आज क्या हो! सुखदा देवी न आ जातीं, तो बड़ी मुश्किल होती।

अमर ने कहा — मैं उनके लिए तुम लोगों को धन्यवाद देता हूँ। नहीं मैं आज यहाँ न होता।

'आज तुम्हें न आना चाहिए था। सुखदा बहन तो कहती थीं, मैं आज उन्हें न जाने दूँगी।'

'कल के अपमान के बाद अब मैं उन्हें मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ। जब वह रमणी होकर इतना कर सकती हैं, तो हम तो हर

तरह के कष्ट उठाने के लिए बने ही हैं। खासकर जब बाल-बच्चों का भार सिर पर नहीं है।'

उसी वक्त पुलिस की लारी आयी, एक सब इंस्पेक्टर उतरा और स्वयंसेवकों के पास आकर बोला — मैं तुम लोगों को गिरफ्तार करता हूँ।

'वन्दे मातरम् ' की ध्वनि हुई। तमाशाइयों में कुछ हलचल हुई। लोग दो-दो कदम और आगे बढ़ आये। स्वयंसेवकों ने दर्शकों को प्रणाम किया और मुस्कराते हुए लारी में जा बैठे। अमरकान्त सबसे आगे थे। लारी चलना ही चाहती थी, कि सुखदा किसी तरफ से दौड़ी हुई आ गयी। उसके हाथ में एक पुष्पमाला थी, लारी का द्वार खुला था। उसने ऊपर चढ़कर वह अमरकान्त के गले में डाल दी। आँखों से स्नेह और गर्व की दो बूँदें टपक पड़ीं। लारी चली गयी। यही होली थी, यही होली का आनन्द-मिलन था।

उसी वक्त सुखदा दूकान पर खड़ी होकर बोली — विलायती कपड़े खरीदना और पहनना देशद्रोह है!

होली की छुट्टी

वर्नाक्युलर फ़ाइनल पास करने के बाद मुझे एक प्राइमरी स्कूल में जगह मिली, जो मेरे घर से ग्यारह मील पर था। हमारे हेडमास्टर साहब को छुट्टियों में भी लड़कों को पढ़ाने की सनक थी। रात को लड़के खाना खाकर स्कूल में आ जाते और हेडमास्टर साहब चारपाई पर लेटकर अपने खर्राटों से उन्हें पढ़ाया करते। जब लड़कों में धौल-धप्पा शुरु हो जाता और शोर-गुल मचने लगता तब यकायक वह खरगोश की नींद से चौंक पड़ते और लड़कों को दो-चार तमाचे लगाकर फिर अपने सपनों के मजे लेने लगते। ग्यारह-बारह बजे रात तक यही ड्रामा होता रहता, यहाँ तक कि लड़के नींद से बेक़रार होकर वहीं टाट पर सो जाते। अप्रैल में सलाना इम्तहान होनेवाला था, इसलिए जनवरी ही से हाय-तौबा मची हुई थी। नाइट स्कूलों पर इतनी रियायत थी कि रात की क्लासों में उन्हें न तलब किया जाता था, मगर छुट्टियाँ बिलकुल न मिलती थीं। सोमवती अमावस आयी और निकल गयी, बसन्त आया और चला गया,शिवरात्रि आयी और गुजर गयी। और इतवारों का तो जिक्र ही क्या है। एक दिन के

लिए कौन इतना बड़ा सफ़र करता, इसलिए कई महीनों से मुझे घर जाने का मौका न मिला था। मगर अबकी मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि होली पर जरूर घर जाऊँगा, चाहे नौकरी से हाथ ही क्यों न धोने पड़ें। मैंने एक हफ्ते पहले से ही हेडमास्टर साहब को अल्टीमेटम दे दिया कि 20 मार्च को होली की छुट्टी शुरु होगी और बन्दा 19 की शाम को रुखसत हो जाएगा। हेडमास्टर साहब ने मुझे समझाया कि अभी लड़के हो, तुम्हें क्या मालूम नौकरी कितनी मुश्किलों से मिलती है और कितनी मुश्किलों से निभती है, नौकरी पाना उतना मुश्किल नहीं जितना उसको निभाना। अप्रैल में इम्तहान होनेवाला है, तीन-चार दिन स्कूल बन्द रहा तो बताओ कितने लड़के पास होंगे? साल-भर की सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा कि नहीं? मेरा कहना मानो, इस छुट्टी में न जाओ, इम्तहान के बाद जो छुट्टी पड़े उसमें चले जाना। ईस्टर की चार दिन की छुट्टी होगी, मैं एक दिन के लिए भी न रोकूँगा।

मैं अपने मोर्चे पर कायम रहा, समझाने-बुझाने, डराने-धमकाने और जवाब-तलब किये जाने के हथियारों का मुझ पर असर न हुआ। 19 को ज्यों ही स्कूल बन्द हुआ, मैंने हेडमास्टर साहब को सलाम भी न किया और चुपके से अपने डेरे पर चला आया। उन्हें सलाम करने जाता तो वह एक न एक काम निकालकर मुझे

रोक लेते — रजिस्टर में फ़ीस की मीज़ान लगाते जाओ, औसत हाज़िरी निकालते जाओ, लड़कों की कापियाँ जमा करके उन पर संशोधन और तारीख सब पूरी कर दो। गोया यह मेरा आखिरी सफ़र है और मुझे जिन्दगी के सारे काम अभी खतम कर देने चाहिए।

मकान पर आकर मैंने चटपट अपनी किताबों की पोटली उठायी, अपना हलका लिहाफ़ कंधे पर रखा और स्टेशन के लिए चल पड़ा। गाड़ी 5 बजकर 5 मिनट पर जाती थी। स्कूल की घड़ी हाज़िरी के वक्त हमेशा आध घण्टा तेज और छुट्टी के वक्त आधा घण्टा सुस्त रहती थी। चार बजे स्कूल बन्द हुआ था। मेरे खयाल में स्टेशन पहुँचने के लिए काफी वक्त था। फिर भी मुसाफिरों को गाड़ी की तरफ से आम तौर पर जो अन्देशा लगा रहता है, और जो घड़ी हाथ में होने पर भी और गाड़ी का वक्त ठीक मालूम होने पर भी दूर से किसी गाड़ी की गड़गड़ाहट या सीटी सुनकर कदमों को तेज और दिल को परेशान कर दिया करता है, वह मुझे भी लगा हुआ था। किताबों की पोटली भारी थी, उस पर कंधे पर लिहाफ़, बार-बार हाथ बदलता और लपका चला जाता था। यहाँ तक कि स्टेशन कोई दो फ़र्लांग से नजर आया। सिगनल डाउन था। मेरी हिम्मत भी उस सिगनल की तरह डाउन हो गयी, उम्र के तक़ाजे से एक सौ क़दम दौड़ा जरूर

मगर यह निराशा की हिम्मत थी। मेरे देखते-देखते गाड़ी आयी, एक मिनट ठहरी और रवाना हो गयी। स्कूल की घड़ी यक़ीनन आज और दिनों से भी ज्यादा सुस्त थी।

अब स्टेशन पर जाना बेकार था। दूसरी गाड़ी ग्यारह बजे रात को आयेगी, मेरे घरवाले स्टेशन पर कोई बारह बजे पहुँचेगी और वहाँ से मकान पर जाते-जाते एक बज जाएगा। इस सन्नाटे में रास्ता चलना भी एक मोर्चा था जिसे जीतने की मुझमें हिम्मत न थी। जी में तो आया कि चलकर हेडमास्टर को आड़े हाथों लूँ मगर जब्त किया और चलने के लिए तैयार हो गया। कुल बारह मील ही तो हैं, अगर दो मील फ़ी घण्टा भी चलूँ तो छः घण्टों में घर पहुँच सकता हूँ। अभी पाँच बजे हैं, जरा क़दम बढ़ाता जाऊँ तो दस बजे यकीनन पहुँच जाऊँगा। अम्मा और मुन्नू मेरा इन्तजार कर रहे होंगे, पहुँचते ही गरम-गरम खाना मिलेगा। कोल्हाड़े में गुड़ पक रहा होगा, वहाँ से गरम-गरम रस पीने को आ जाएगा और जब लोग सुनेंगे कि मैं इतनी दूर पैदल आया हूँ तो उन्हें कितना अचरज होगा! मैंने फ़ौरन गंगा की तरफ़ पैर बढ़ाया। यह क़स्बा नदी के किनारे था और मेरे गाँव की सड़क नदी के उस पार से थी। मुझे इस रास्ते से जाने का कभी संयोग न हुआ था, मगर इतना सुना था कि कच्ची सड़क सीधी चली जाती है, परेशानी की कोई बात न थी, दस मिनट में नाव पार

पहुँच जाएगी और बस फ़र्राटे भरता चल दूँगा। बारह मील कहने को तो होते हैं, हैं तो कुल छः कोस।

मगर घाट पर पहुँचा तो नाव में से आधे मुसाफिर भी न बैठे थे। मैं कूदकर जा बैठा। खेवे के पैसे भी निकालकर दे दिये लेकिन नाव है कि वहीं अचल ठहरी हुई है। मुसाफिरों की संख्या काफ़ी नहीं है, कैसे खुले। लोग तहसील और कचहरी से आते जाते हैं औ बैठते जाते हैं और मैं हूँ कि अन्दर हीर अन्दर भुना जाता हूँ। सूरज नीचे दौड़ा चला जा रहा है, गोया मुझसे बाजी लगाये हुए है। अभी सफेद था, फिर पीला होना शुरु हुआ और देखते-देखते लाल हो गया। नदी के उस पार क्षितिज पर लटका हुआ, जैसे कोई डोल कुँए पर लटक रहा है। हवा में कुछ खुनकी भी आ गयी, भूख भी मालूम होने लगी। मैंने आज धर जाने की खुशी और हड़बड़ी में रोटियाँ न पकायी थीं, सोचा था कि शाम को तो घर पहुँच जाऊँगा,लाओ एक पैसे के चने लेकर खा लूँ। उन दानों ने इतनी देर तक तो साथ दिया,अब पेट की पेचीदगियों में जाकर न जाने कहाँ गुम हो गये। मगर क्या गम है, रास्ते में क्या दुकानें न होंगी, दो-चार पैसे की मिठाइयाँ लेकर खा लूँगा।

जब नाव उस किनारे पहुँची तो सूरज की सिर्फ आखिरी साँस बाकी थी, हालांकि नदी का पाट बिलकुल पेंदे में चिमटकर रह गया था।

मैंने पोटली उठायी और तेजी से चला। दोनों तरफ़ चने के खेते थे जिनके ऊदे फूलों पर ओस सका हलका-सा पर्दा पड़ चला था। बेअख्तियार एक खेत में घुसकर बूट उखाड़ लिये और टूँगता हुआ भागा।

2

सामने बारह मील की मंजिल है, कच्चा सुनसान रास्ता, शाम हो गयी है, मुझे पहली बार गलती मालूम हुई। लेकिन बचपन के जोश ने कहा, क्या बात है, एक-दो मील तो दौड़ ही सकते हैं। बारह को मन में 1760 से गुणा किया, बीस हजार गज़ ही तो होते हैं। बारह मील के मुकाबिले में बीस हज़ार गज़ कुछ हलके और आसान मालूम हुए। और जब दो-तीन मील रह जाएगा तब तो एक तरह से अपने गाँव ही में हूँगा, उसका क्या शुमार। हिम्मत बंध गयी। इक्के-दुक्के मुसाफिर भी पीछे चले आ रहे थे, और इतमीनान हुआ।

अंधेरा हो गया है, मैं लपका जा रहा हूँ। सड़क के किनारे दूर से एक झोंपड़ी नजर आती है। एक कुप्पी जल रही है। ज़रुर किसी बनिये की दुकान होगी। और कुछ न होगा तो गुड़ और

चने तो मिल ही जाएँगे। क़दम और तेज़ करता हूँ। झोंपड़ी आती है। उसके सामने एक क्षण के लिए खड़ा हो जाता हूँ। चार-पाँच आदमी उकड़ूँ बैठे हुए हैं, बीच में एक बोतल है, हर एक के सामने एक-एक कुल्हाड़। दीवार से मिली हुई ऊँची गद्दी है, उस पर साहजी बैठे हुए हैं, उनके सामने कई बोतलें रखी हुई हैं। ज़रा और पीछे हटकर एक आदमी कड़ाही में सूखे मटर भून रहा है। उसकी सोंधी खुशबू मेरे शरीर में बिजली की तरह दौड़ जाती है। बेचैन होकर जेब में हाथ डालता हूँ और एक पैसा निकालकर उसकी तरफ चलता हूँ लेकिन पाँव आप ही रुक जाते हैं — यह कलवारिया है।

खोंचेवाला पूछता है — क्या लोगे?

मैं कहता हूँ — कुछ नहीं।

और आगे बढ़ जाता हूँ। दुकान भी मिली तो शराब की, गोया दुनिया में इन्सान के लिए शराब रही सबसे जरूरी चीज है। यह सब आदमी धोबी और चमार होंगे, दूसरा कौन शराब पीता है, देहात में। मगर वह मटर का आकर्षक सोंधापन मेरा पीछा कर रहा है और मैं भागा जा रहा हूँ।

किताबों की पोटली जी का जंजाल हो गया है, ऐसी इच्छा होती है कि इसे यहीं सड़क पर पटक दूँ। उसका वज़न मुश्किल से पाँच

सेर होगा, मगर इस वक्त मुझे मन-भर से ज्यादा मालूम हो रही है। शरीर में कमजोरी महसूस हो रही है। पूरनमासी का चांद पेड़ो के ऊपर जा बैठा है और पत्तियों के बीच से जमीन की तरफ झाँक रहा है। मैं बिलकुल अकेला जा रहा हूँ, मगर दर्द बिलकुल नहीं है, भूख ने सारी चेतना को दबा रखा है और खुद उस पर हावी हो गयी है।

आह हा, यह गुड़ की खुशबू कहाँ से आयी! कहीं ताजा गुड़ पक रहा है। कोई गाँव क़रीब ही होगा। हाँ, वह आमों के झुरमुट में रोशनी नजर आ रही है। लेकिन वहाँ पैसे-दो पैसे का गुड़ बेचेगा और यों मुझसे माँगा न जाएगा, मालूम नहीं लोग क्या समझें। आगे बढ़ता हूँ, मगर जबान से लार टपक रही हैं गुउ़ से मुझे बड़ा प्रेम है। जब कभी किसी चीज की दुकान खोलने की सोचता था तो वह हलवाई की दुकान होती थी। बिक्री हो या न हो, मिठाइयाँ तो खाने को मिलेंगी। हलवाइयों को देखो, मारे मोटापे के हिल नहीं सकते। लेकिन वह बेवकूफ होते हैं, आरामतलबी के मारे तोंद निकाल लेते हैं, मैं कसरत करता रहूँगा। मगर गुड़ की वह धीरज की परीक्षा लेनेवाली, भूख को तेज करनेवाली खूशबू बराबर आ रही है। मुझे वह घटना याद आती है, जब अम्माँ तीन महीने के लिए अपने मैके या मेरी ननिहाल गयी थीं और मैंने तीन महीने के एक मन गुड़ का सफ़ाया कर दिया था।

यही गुड़ के दिन थे। नाना बीमार थे, अम्माँ को बुला भेजा था। मेरा इम्तहान पास था इसलिए मैं उनके साथ न जा सका, मुन्नू को लेती गयीं। जाते वक्त उन्होंने एक मन गुउ़ लेकर उस मटके में रखा और उसके मुँह पर सकोरा रखकर मिट्टी से बन्द कर दिया। मुझे सख्त ताकीद कर दी कि मटका न खोलना। मेरे लिए थोड़ा-सा गुड़ एक हाँडी में रख दिया था। वह हाँड़ी मैंने एक हफ्ते में सफाचट कर दी सुबह को दूध के साथ गुड़, रात को फिर दूध के साथ गुउ़। यहाँ तक जायज खर्च था जिस पर अम्माँ को भी कोई एतराज न हो सकता। मगर स्कूल से बार-बार पानी पीने के बहाने घर आता और दो-एक पिण्डियाँ निकालकर खा लेता — उसकी बजट में कहाँ गुंजाइश थी। और मुझे गुड़ का कुछ ऐसा चस्का पड़ गया कि हर वक्त वही नशा सवार रहता। मेरा घर में आना गुड़ के सिर शामत आना था। एक हफ्ते में हाँडी ने जवाब दे दिया। मगर मटका खोलने की सख्त मनाही थी और अम्माँ के घर आने में अभी पौने तीन महीने बाकी थे। एक दिन तो मैंने बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे सब्र किया लेकिन दूसरे दिन क आह के साथ सब्र जाता रहा और मटके को बन्द कर दिया और संकल्प कर लिया कि इस हाँड़ी को तीन महीने चलाऊँगा। चले या न चले, मैं चलाये जाऊँगा। मटके को वह सात मंजिल समझूँगा जिसे रुस्तम भी न खोल सका था। मैंने

मटके की पिण्डियों को कुछ इस तरह कैंची लगाकर रखा कि जैसे बाज दुकानदार दियासलाई की डिब्बियाँ भर देते हैं। एक हाँड़ी गुड़ खाली हो जाने पर भी मटका मुंहों मुँह भरा था। अम्माँ को पता ही चलेगा, सवाल-जवाब की नौबत कैसे आयेगी। मगर दिल और जान में वह खींच-तान शुरु हुई कि क्या कहूँ, और हर बार जीत जबान ही के हाथ रहती। यह दो अंगुल की जीभ दिल जैसे शहज़ोर पहलवान को नचा रही थी, जैसे मदारी बन्दर को नचाये — उसको, जो आकाश में उड़ता है और सातवें आसमान के मंसूबे बाँधता है और अपने जोम में फ़रऊन को भी कुछ नहीं समझता। बार-बार इरादा करता, दिन-भर में पाँच पिंडियों से ज्यादा न खाऊँ लेकिन यह इरादा शराबियों की तौबा की तरह घंटे-दो से ज्यादा न टिकता। अपने को कोसता, धिक्कारता — गुड़ तो खा रहे हो मगर बरसात में सारा शरीर सड़ जाएगा, गंधक का मलहम लगाये घूमोगे, कोई तुम्हारे पास बैठना भी न पसन्द करेगा! कसमें खाता, विद्या की, माँ की, स्वर्गीय पिता की, गऊ की, ईश्वर की, मगर उनका भी वही हाल होता। दूसरा हफ्ता खत्म होते-होते हाँड़ी भी खत्म हो गयी। उस दिन मैं ने बड़े भक्तिभाव से ईश्वर से प्रार्थना की — भगवान्, यह मेरा चंचल लोभी मन मुझे परेशान कर रहा है, मुझे शक्ति दो कि उसको वश में रख सकूँ। मुझे अष्टधात की लगाम दो जो उसके मुँह में डाल दूँ!

यह अभागा मुझे अम्माँ से पिटवाने और घुड़कियाँ खिलवाने पर तुला हुआ है, तुम्हीं मेरी रक्षा करो तो बच सकता हूँ। भक्ति की विह्वलता के मारे मेरी आँखों से दो-चार बूँदे आँसुओं की भी गिरीं लेकिन ईश्वर ने भी इसकी सुनवायी न की और गुड़ की बुभुक्षा मुझ पर छायी रही; यहाँ तक कि दूसरी हाँड़ी का मर्सिया पढ़ने कीर नौबत आ पहुँची।

संयोग से उन्हीं दिनों तीन दिन की छुट्टी हुई और मैं अम्माँ से मिलने ननिहाल गया। अम्माँ ने पूछा — गुड़ का मटका देखा है? चींटे तो नहीं लगे? सीलन तो नहीं पहुँची? मैंने मटकों को देखने की कसम खाकर अपनी ईमानदारी का सबूत दिया। अम्माँ ने मुझे गर्व के नेत्रों से देखा और मेरे आज्ञा-पालन के पुरस्कार-स्वरूप मुझे एक हाँडी निकाल लेने की इजाजत दे दी, हाँ, ताकीद भी करा दी कि मटके का मुँह अच्छी तरह बन्द कर देना। अब तो वहाँ मुझे एक-एक-दिन एक-एक युग मालूम होने लगा। चौथे दिन घर आते ही मैंने पहला काम जो किया वह मटका खोलकर हाँड़ी-भर गुड़ निकालना था। एकबारगी पाँच पींडियाँ उड़ा गया फिर वहीं गुड़बाजी शुरु हुई। अब क्या गम हैं, अम्माँ की इजाजत मिल गई थी। सैयाँ भले कोतवाल, और आठ दिन में हाँड़ी गायब! आखिर मैंने अपने दिल की कमजोरी से मजबूर होकर मटके की कोठरी के दरवाजे पर ताला डाल दिया और

कुंजी दीवार की एक मोटी संधि में डाल दी। अब देखें तुम कैसे गुड़ खाते हो। इस संधि में से कुंजी निकालने का मतलब यह था कि तीन हाथ दीवार खोद डाली जाय और यह हिम्मत मुझमें न थी। मगर तीन दिन में ही मेरे धीरज का प्याला छलक उठा औ इन तीन दिनों में भी दिल की जो हालत थी वह बयान से बाहर है। शीरीं, यानी मीठे गुड़, की कोठरी की तरफ से बार-बार गुजरता और अधीर नेत्रों से देखता और हाथ मलकर रूह जाता। कई बार ताले को खटखटाया,खींचा, झटके दिये, मगर जालिम जरा भी न हुमसा। कई बार जाकर उस संधि की जांच-पडताल की, उसमें झाँककर देखा, एक लकड़ी से उसकी गहराई का अन्दाजा लगाने की कोशिश की मगर उसकी तह न मिली। तबियत खोई हुई-सी रहती, न खाने-पीने में कुछ मज़ा था, न खेलने-कूदने में। वासना बार-बार युक्तियों के जारे खाने-पीने में कुछ मजा था, न खेलने-कूदने में। वासना बार-बार युक्तियों के जोर से दिल को कायल करने की कोशिश करती। आखिर गुड़ और किस मज्र की दवा है। मे। उसे फेंक तो देता नहीं, खाता ही तो हूँ, क्या आज खाया और क्या एक महीने बाद खाया, इसमें क्या फर्क है। अम्माँ ने मनाही की है बेशक लेकिन उन्हें मुझसे एक उचित काम से अलग रखने का क्या हक है? अगर वह आज कहें खेलने मत जाओ या पेड़ पर मत चढ़ो या तालाब में तैरने मत जाओ, या

चिड़ियों के लिए कम्पा मत लगाओ, तितलियाँ मत पकड़ो, तो क्या में माने लेता हूँ? आखिर चौथे दिन वासना की जीत हुई। मैंने तड़के उठकर एक कुदाल लेकर दीवार खोदना शुरु किया। संधि थी ही, खोदने में ज्यादा देर न लगी, आध घण्टे के घनघोर परिश्रम के बाद दीवार से कोई गज-भर लम्बा और तीन इंच मोटा चप्पड़ टूटकर नीचे गिर पड़ा और संधि की तह में वह सफलता की कुंजी पड़ी हुई थी, जैसे समुन्दर की तह में मोती की सीप पड़ी हो। मैंने झटपट उसे निकाला और फौरन दरवाजा खोला, मटके से गुड़ निकालकर हाँड़ी में भरा और दरवाजा बन्द कर दिया। मटके में इस लूट-पाट से स्पष्ट कमी पैदा हो गयी थी। हजार तरकीबें आजमाने पर भी इसका गढ़ा न भरा। मगर अबकी बार मैंने चटोरूपन का अम्माँ की वापसी तक खात्मा कर देने के लिए कुंजी को कुँए में डाल दिया। किस्सा लम्बा है, मैंने कैसे ताला तोड़ा, कैसे गुड़ निकाला और मटका खाली हो जाने पर कैसे फोड़ा और उसके टुकड़े रात को कुँए में फेंके और अम्माँ आयीं तो मैंने कैसे रो-रोकर उनसे मटके के चोरी जाने की कहानी कही, यह बयन करने लगा तो यह घटना जो मैं आज लिखने बैठा हूँ अधूरी रूह जाएगी।

चुनांचे इस वक्त गुड़ की उस मीठी खुशबू ने मुझे बेसुध बना दिया। मगर मैं सब्र करके आगे बढ़ा।

ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, शरीर थकान से चूर होता जाता था, यहाँ तक कि पाँव काँपने लगे। कच्ची सड़क पर गाड़ियों के पहियों की लीक पड़ गयी थी। जब कभी लीक में पाँव चला जाता तो मालूम होता किसी गहरे गढ़े में गिर पड़ा हूँ। बार-बार जी में आता, यहीं सड़क के किनारे लेट जाऊँ। किताबों की छोटी-सी पोटली मन-भर की लगती थी। अपने को कोसता था कि किताबें लेकर क्यों चला। दूसरी जबान का इम्तहान देने की तैयारी कर रहा था। मगर छुट्टियों में एक दिन भी तो किताब खोलने की नौबत न आयेगी, खामखाह यह बोझ उठाये चला आता हूँ। ऐसा जी झुँझलाता था कि इस मूर्खता के बोझ को वहीं पटक दूँ। आखिर टाँगों ने चलने से इनकार कर दिया। एक बार मैं गिर पड़ा और और सम्हलकर उठा तो पाँव थरथरा रहे थे। अब बगैर कुछ खाये पैर उठना दूभर था, मगर यहाँ क्या खाऊँ। बार-बार रोने को जी चाहता था। संयोग से एक ईख का खेत नज़र आया, अब मैं अपने को न रोक सका। चाहता था कि खेत में घुसकर चार-पाँच ईख तोड़ लूँ और मजे से रस चूसता हुआ चलूँ। रास्ता भी कट जाएगा और पेट में कुछ पड़ भी जाएगा। मगर मेड़ पर पाँव रखा ही था कि कांटों में उलझ गया। किसान ने शायद मेंड़ पर कांटे बिखेर दिये थे। शायद बेर की झाड़ी थी। धोती-कुर्ता सब कांटों में फँसा हुआ, पीछे हटा तो कांटों की

झाड़ी साथ-साथ चलीं, कपड़े छुड़ाना लगा तो हाथ में कांटे चुभने लगे। जोर से खींचा तो धोती फट गयी। भूख तो गायब हो गयी, फ़िक्र हुई कि इन नयी मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो। कांटों को एक जगह से अलग करता तो दूसरी जगह चिमट जाते, झुकता तो शरीर में चुभते, किसी को पुकारूँ तो चोरी खुली जाती है, अजीब मुसीबत में पड़ा हुआ था। उस वक्त मुझे अपनी हालत पर रोना आ गया, कोई रेगिस्तानों की खाक छानने वाला आशिक भी इस तरह कांटों में फँसा होगा! बड़ी मुश्किल से आध घण्टे में गला छूटा मगर धोती और कुर्ते के माथे गयी,हाथ और पाँव छलनी हो गये वह घाते में। अब एक क़दम आगे रखना मुहाल था। मालूम नहीं कितना रास्ता तय हुआ, कितना बाकी है, न कोई आदमी न आदमज़ाद, किससे पूछूँ। अपनी हालत पर रोता हुआ जा रहा था। एक बड़ा गाँव नज़र आया। बड़ी खुशी हुई। कोई न कोई दुकान मिल ही जाएगी। कुछ खा लूँगा और किसी के सायबान में पड़ रहूँगा, सुबह देखी जाएगी।

मगर देहातों में लोग सरे-शाम सोने के आदी होते है। एक आदमी कुँए पर पानी भर रहा था। उससे पूछा तो उसने बहुत ही निराशाजनक उत्तर दिया — अब यहाँ कुछ न मिलेगा। बनिये नमक-तेल रखते हैं। हलवाई की दुकान एक भी नहीं। कोई शहर थोड़े ही है, इतनी रात तक दुकान खोले कौन बैठा रहे!

मैंने उससे बड़े विनती के स्वर में कहा — कहीं सोने को जगह मिल जाएगी?

उसने पूछा — कौन हो तुम? तुम्हारी जान-पहचान का यहाँ कोई नही है?

‘जान-पहचान का कोई होता तो तुमसे क्यों पूछता?’

‘तो भाई, अनजान आदमी को यहाँ नहीं ठहरने देंगे। इसी तरह कल एक मुसाफिर आकर ठहरा था, रात को एक घर में सेंध पड़ गयी, सुबह को मुसाफ़िर का पता न था।’

‘तो क्या तुम समझते हो, मैं चोर हूँ?’

‘किसी के माथे पर तो लिखा नहीं होता, अन्दर का हाल कौन जाने!’

‘नहीं ठहराना चाहते न सही, मगर चोर तो न बनाओ। मैं जानता यह इतना मनहूस गाँव है तो इधर आता ही क्यों?’

मैंने ज्यादा खुशामद न की, जी जल गया। सड़क पर आकर फिर आगे चल पड़ा। इस वक्त मेरे होश ठिकाने न थे। कुछ खबर नहीं किस रास्ते से गाँव में आया था और किधर चला जा रहा था। अब मुझे अपने घर पहुँचने की उम्मीद न थी। रात यों ही भटकते हुए गुजरेगी, फिर इसका क्या ग़म कि कहाँ जा रहा हूँ।

मालूम नहीं कितनी देर तक मेरे दिमाग की यह हालत रही। अचानक एक खेत में आग जलती हुई दिखाई पड़ी कि जैसे आशा का दीपक हो। जरूर वहाँ कोई आदमी होगा। शायद रात काटने को जगह मिल जाए। कदम तेज किये और करीब पहुँचा कि यकायक एक बड़ा-सा कुत्ता भूँकता हुआ मेरी तरफ दौड़ा। इतनी डरावनी आवाज थी कि मैं काँप उठा। एक पल में वह मेरे सामने आ गया और मेरी तरफ़ लपक-लपककर भूँकने लगा। मेरे हाथों में किताबों की पोटली के सिवा और क्या था, न कोई लकड़ी थी न पत्थर, कैसे भगाऊँ, कहीं बदमाश मेरी टांग पकड़ ले तो क्या करूँ! अंग्रेजी नस्ल का शिकारी कुत्ता मालूम होता था। मैं जितना ही धत्-धत् करता था उतना ही वह गरजता था। मैं खामोश खड़ा हो गया और पोटली जमीन पर रखकर पाँव से जूते निकाल लिये, अपनी हिफ़ाजत के लिए कोई हथियार तो हाथ में हो! उसकी तरफ़ गौर सें देख रहा था कि खतरनाक हद तक मेरे करीब आये तो उसके सिर पर इतने जोर से नालदार जूता मार दूँ कि याद ही तो करे लेकिन शायद उसने मेरी नियत ताड़ ली और इस तरह मेरी तरफ़ झपटा कि मैं काँप गया और जूते हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिर पड़े। और उसी वक्त मैंने डरी हुई आवाज में पुकारा — अरे खेत में कोई है, देखो यह कुत्ता

मुझे काट रहा है! ओ महतो, देखो तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।

जवाब मिला — कौन है?

'मैं हूँ, रहेगीर, तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।'

'नहीं, काटेगा नहीं, डरो मत। कहाँ जाना है?'

'महमूदनगर।'

'महमूदनगर का रास्ता तो तुम पीछे छोड़ आये, आगे तो नदी हैं।'

मेरा कलेजा बैठ गया, रुआँसा होकर बोला — महमूदनगर का रास्ता कितनी दूर छूट गया है?

'यही कोई तीन मील।'

और एक लहीम-शहीम आदमी हाथ में लालटन लिये हुए आकर मेरे आमने खड़ा हो गया। सर पर हैट था, एक मोटा फ़ौजी ओवरकोट पहने हुए, नीचे निकर, पाँव में फुलबूट, बड़ा लंबा-तड़गा, बड़ी-बड़ी मूँछें, गोरा रंग, साकार पुरुस-सौन्दर्य। बोला — तुम तो कोई स्कूल के लड़के मालूम होते हो।

'लड़का तो नहीं हूँ, लड़कों का मुदर्रिस हूँ, घर जा रहा हूँ। आज से तीन दिन की छुट्टी है।'

‘तो रेल से क्यों नहीं गये?’

रेल छूट गयी और दूसरी एक बजे छूटती है।’

‘वह अभी तुम्हें मिल जाएगी।बारह का अमल है। चलो मैं स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ।’

‘कौन-से स्टेशन का?’

‘भगवन्तपुर का।’

‘भगवन्तपुर ही से तो मैं चला हूँ। वह बहुत पीछे छूट गया होगा।’

‘बिल्कुल नहीं, तुम भगवन्तपुर स्टेशन से एक मील के अन्दर खड़े हो। चलो मैं तुम्हें स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ। अभी गाड़ी मिल जाएगी। लेकिन रहना चाहो तो मेरे झोंपड़े में लेट जाओ। कल चले जाना।’

अपने ऊपर गुस्सा आया कि सिर पीट लूँ। पाँच बजे से तेली के बैल की तरह घूम रहा हूँ और अभी भगवन्तपुर से कुल एक मील आया हूँ। रास्ता भूल गया। यह घटना भी याद रहेगी कि चला छः घण्टे और तय किया एक मील। घर पहुँचने की धुन जैसे और भी दहक उठी।

बोला — नहीं, कल तो होली है। मुझे रात को पहुँच जाना चाहिए।

‘मगर रास्ता पहाड़ी है, ऐसा न हो कोई जानवर मिल जाए। अच्छा चलो, मैं तुम्हें पहुँचाये देता हूँ, मगर तुमने बड़ी गलती की, अनजान रास्ते को पैदल चलना कितना खतरनाक है। अच्छा चला मैं पहुँचाये देता हूँ। ख़ैर, खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ।’

कुत्ता दुम हिलाने लगा और मुझसे दोस्ती करने का इच्छुक जान पड़ा। दुम हिलाता हुआ, सिर झुकाये क्षमा-याचना के रूप में मेरे सामने आकर खड़ा हुआ। मैंने भी बड़ी उदारता से उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। क्षण-भर में वह आदमी बन्दूक कंधे पर रखे आ गया और बोला — चलो, मगर अब ऐसी नादानी न करना, ख़ैरियत हुई कि मैं तुम्हें मिल गया। नदी पर पहुँच जाते तो जरूर किसी जानवर से मुठभेड़ हो जाती।

मैंने पूछा — आप तो कोई अंग्रेज मालूम होते हैं मगर आपकी बोली बिलकुल हमारे जैसी है?

उसने हँसकर कहा — हाँ, मेरा बाप अंग्रेज था, फौजी अफ़सर। मेरी उम्र यहीं गुज़री है। मेरी माँ उसका खाना पकाती थी। मैं भी फौज में रह चुका हूँ। योरोप की लड़ाई में गया था, अब

पेंशन पाता हूँ। लड़ाई में मैंने जो दृश्य अपनी आँखों से देखे और जिन हालात में मुझे जिन्दगी बसर करनी पड़ी और मुझे अपनी इन्सानियत का जितना खून करना पड़ा उससे इस पेशे से मुझे नफ़रत हो गई और मैं पेंशन लेकर यहाँ चला आया। मेरे पापा ने यहीं एक छोटा-सा घर बना लिया था। मैं यहीं रहता हूँ और आस-पास के खेतों की रखवाली करता हूँ। यह गंगा की धाटी है। चारों तरफ पहाड़ियाँ हैं। जंगली जानवर बहुत लगते है। सुअर, नीलगाय, हिरन सारी खेती बर्बाद कर देते हैं। मेरा काम है, जानवरों से खेती की हिफाजत करना। किसानों से मुझे हल पीछे एक मन गल्ला मिल जाता है। वह मेरे गुज़र-बसर के लिए काफी होता है। मेरी बुढ़िया माँ अभी जिन्दा है। जिस तरह पापा का खाना पकाती थी, उसी तरह अब मेरा खाना पकाती है। कभी-कभी मेरे पास आया करो, मैं तुम्हें कसरत करना सिखा दूँगा, साल-भर मे पहलवान हो जाओगे।

मैंने पूछा — आप अभी तक कसरत करते हैं?

वह बोला — हाँ, दो घण्टे रोजाना कसरत करता हूँ। मुगदर और लेज़िम का मुझे बहुत शौक है। मेरा पचासवाँ साल है, मगर एक सांस में पाँच मील दौड़ सकता हूँ। कसरत न करूँ तो इस जंगल में रहूँ कैसे। मैंने खूब कुश्तियाँ लड़ी है। अपनी रेजीमेण्ट में खूब मज़बूत आदमी था। मगर अब इस फौजी जिन्दगी की हालातों

पर गौर करता हूँ तो शर्म और अफ़सोस से मेरा सर झुक जाता है। कितने ही बेगुनाह मेरी रायफल के शिकार हुए मेरा उन्होंने क्या नुकसान किया था? मेरी उनसे कौन-सी अदावत थी? मुझे तो जर्मन और आस्ट्रियन सिपाही भी वैसे ही सच्चे, वैसे ही बहादुर, वैसे ही खुशमिज़ाज, वेसे ही हमदर्द मालूम हुए जैसे फ्रांस या इंग्लैण्ड के। हमारी उनसे खूब दोस्ती हो गयी थी, साथ खेलते थे, साथ बैठते थे, यह खयाल ही न आता था कि यह लोग हमारे अपने नही हैं। मगर फिर भी हम एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। किसलिए? इसलिए कि बड़े-बड़े अंग्रेज सौदागरों को खतरा था कि कहीं जर्मनी उनका रोज़गार न छीन ले। यह सौदागरों का राज है। हमारी फ़ौजें उन्हीं के इशारों पर नाचनेवाली कठपुतलियाँ हैं। जान हम गरीबों की गयी, जेबें गर्म हुई मोटे-मोटे सौदागरों की। उस वक्त हमारी ऐसी खातिर होती थी, ऐसी पीठ ठोंकी जाती थी, गोया हम सल्तनत के दामाद हैं। हमारे ऊपर फूलों की बारिश होती थी, हमें गाईन पार्टियाँ दी जाती थीं, हमारी बहादुरी की कहानियाँ रोजाना अखबारों में तस्वीरों के साथ छपती थीं। नाजुक-बदल लेडियाँ और शहज़ादियाँ हमारे लिए कपड़े सीती थीं, तरह-तरह के मुरब्बे और अचार बना-बना कर भेजती थीं। लेकिन जब सुलह हो गयी तो उन्ही जांबाजों को कोई टके को भी न पूछता था। कितनों ही के अंग भंग हो गये थे, कोई लूला

हो गया था, कोई लंगड़ा,कोई अंधा। उन्हें एक टुकड़ा रोटी भी देनेवाला कोई न था। मैंने कितनों ही को सड़क पर भीख माँगते देखा। तब से मुझे इस पेशे से नफ़रत हो गयी। मैंने यहाँ आकर यह काम अपने जिम्मे ले लिया और खुश हूँ। सिपहगिरी इसलिए है कि उससे गरीबों की जान-माल की हिफ़ाजत हो, इसलिए नहीं कि करोड़पतियों की बेशुमार दौलत और बढ़े। यहाँ मेरी जान हमेशा खतरे में बनी रहती है। कई बार मरते-मरते बचा हूँ लेकिन इस काम में मर भी जाऊँ तो मुझे अफ़सोस न होगा, क्योंकि मुझे यह तस्कीन होगा कि मेरी जिन्दगी ग़रीबों के काम आयी। और यह बेचारे किसान मेरी कितनी खातिर करते हैं कि तुमसे क्या कहूँ। अगर मैं बीमर पड़ जाऊँ और उन्हें मालू हो जाए कि मैं उनके शरीर के ताजे खून से अच्छा हो जाऊँगा तो बिना झिझके अपना खून दे देंगे। पहले मैं बहुत शराब पीता था। मेरी बिरादरी को तो तुम लोग जानते होगे। हममें बहुत ज्यादा लोग ऐसे हैं, जिनको खाना मयस्सर हो या न हो मगर शराब जरूर चाहिए। मैं भी एक बोतल शराब रोज़ पी जाता था। बाप ने काफी पैसे छोड़े थे। अगर किफ़ायत से रहना जानता तो जिन्दगी-भर आराम से पड़ा रहता। मगर शराब ने सत्यानाश कर दिया। उन दिनों मैं बड़े ठाठ से रहता था। कालर-टाई लगाये, छैला बना हुआ, नौजवान छोकरियों से आँखें लड़ाया करता था।

घुड़दौड़ में जुआ खेलना, शराब पीना, क्लब में ताश खेलना और औरतों से दिल बहलाना, यही मेरी जिन्दगी थी। तीन-चार साल में मैंने पचीस-तीस हजार रुपये उड़ा दिये। कौड़ी कफ़न को न रखी। जब पैसे खतम हो गये तो रोजी की फिक्र हुई। फौज में भर्ती हो गया। मगर खुदा का शुक्र है कि वहाँ से कुछ सीखकर लौटा यह सच्चाई मुझ पर खुल गयी कि बहादुर का काम जान लेना नहीं, बल्कि जान की हिफ़ाजत करना है।

'योरोप से आकर एक दिन मैं शिकार खेलने लगा और इधर आ गया। देखा, कई किसान अपने खेतों के किनारे उदास खड़े हैं मैंने पूछा क्या बात है? तुम लोग क्यों इस तरह उदास खड़े हो? एक आदमी ने कहा — क्या करें साहब, जिन्दगी से तंग हैं। न मौत आती है न पैदावार होती है। सारे जानवर आकर खेत चर जाते हैं। किसके घर से लगान चुकायें, क्या महाजन को दें, क्या अमलों को दें और क्या खुद खायें? कल इन्ही खेतों को देखकर दिल की कली खिल जाती थी, आज इन्हे देखकर आँखों मे आँसू आ जाते है जानवरों ने सफ़ाया कर दिया।

'मालूम नहीं उस वक्त मेरे दिल पर किस देवता या पैगम्बर का साया था कि मुझे उन पर रहम आ गया। मैने कहा — आज से मै तुम्हारे खेतों की रखवाली करूँगा। क्या मजाल कि कोई जानवर फटक सके। एक दाना जो जाय तो जुर्माना दूँ। बस,

उस दिन से आज तक मेरा यही काम है। आज दस साल हो गये, मैंने कभी नागा नहीं किया। अपना गुज़र भी होता है और एहसान मुफ्त मिलता है और सबसे बड़ी बात यह है कि इस काम से दिल की खुशी होती है।'

नदी आ गयी। मैंने देखा वही घाट है जहां शाम को किश्ती पर बैठा था। उस चांदनी में नदी जड़ाऊ गहनों से लदी हुई जैसे कोई सुनहरा सपना देख रही हो।

मैंने पूछा — आपका नाम क्या है? कभी-कभी आपके दर्शन के लिए आया करूँगा।

उसने लालटेन उठाकर मेरा चेहरा देखा और बोला — मेरा नाम जैक्सन है। बिल जैक्सन। जरूर आना। स्टेशन के पास जिससे मेरा नाम पूछोगे, मेरा पता बतला देगा।

यह कहकर वह पीछे की तरफ़ मुड़ा, मगर यकायक लौट पड़ा और बोला — मगर तुम्हें यहाँ सारी रात बैठना पड़ेगा और तुम्हारी अम्माँ घबरा रही होगी। तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ तो मैं तुम्हें उस पार पहुँचा दूँ। आजकल पानी बहुत कम है, मैं तो अक्सर तैर आता हूँ।

मैंने एहसान से दबकर कहा — आपने यही क्या कम इनायत की है कि मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया, वर्ना शायद घर पहुँचना नसीब

न होता। मैं यहाँ बैठा रहूँगा और सुबह को किश्ती से पार उतर जाऊँगा।

'वाह, और तुम्हारी अम्माँ रोती होंगी कि मेरे लाड़ले पर न जाने क्या गुज़री?'

यह कहकर मिस्टर जैक्सन ने मुझे झट उठाकर कंधे पर बिठा लिया और इस तरह बेधड़क पानी में घुसे कि जैसे सूखी जमीन है। मैं दोनों हाथों से उनकी गरदन पकड़े हूँ, फिर भी सीना धड़क रहा है और रगों में सनसनी-सी मालूम हो रही है। मगर जैक्सन साहब इतमीनान से चले जा रहे हैं। पानी घुटने तक आया, फिर कमर तक पहुँचा, ओफ्फोह सीने तक पहुँच गया। अब साहब को एक-एक क़दम मुश्किल हो रहा है। मेरी जान निकल रही है। लहरें उनके गले लिपट रही हैं मेरे पाँव भी चूमने लगीं। मेरा जी चाहता है उनसे कहूँ भगवान् के लिए वापस चलिए, मगर ज़बान नहीं खुलती। चेतना ने जैसे इस संकट का सामना करने के लिए सब दरवाजे बन्द कर लिए। डरता हूँ कहीं जैक्सन साहब फिसले तो अपना काम तमाम है। यह तो तैराक है, निकल जाएँगे, मैं लहरों की खुराक बन जाऊँगा। अफ़सोस आता है अपनी बेवकूफी पर कि तैरना क्यों न सीख लिया? यकायक जैक्सन ने मुझे दोनों हाथों से कंधें के ऊपर उठा लिया। हम बीच धार में पहुँच गये थे। बहाव में इतनी तेजी थी

कि एक-एक क़दम आगे रखने में एक-एक मिनट लग जाता था। दिन को इस नदी में कितनी ही बार आ चुका था लेकिन रात को और इस मझधार में वह बहती हुई मौत मालूम होती थी दस — बारह क़दम तक मैं जैक्सन के दोनों हाथों पर टंगा रहा। फिर पानी उतरने लगा। मैं देख न सका, मगर शायद पानी जैक्सन के सर के ऊपर तक आ गया था। इसीलिए उन्होंने मुझे हाथों पर बिठा लिया था। जब गर्दन बाहर निकल आयी तो जोर से हँसकर बोले — लो अब पहुँच गये।

मैंने कहा — आपको आज मेरी वजह से बड़ी तकलीफ़ हुई।

जैक्सन ने मुझे हाथों से उतारकर फिर कंधे पर बिठाते हुए कहा — और आज मुझे जितनी खुशी हुई उतनी आज तक कभी न हुई थी, जर्मन कप्तान को कत्ल करके भी नहीं। अपनी माँ से कहना मुझे दुआ दें।

घाट पर पहुँचकर मैं साहब से रुखसत हुआ, उनकी सज्जनता, निःस्वार्थ सेवा, और अदम्य साहस का न मिटने वाला असर दिल पर लिए हुए। मेरे जी में आया, काश मैं भी इस तरह लोगों के काम आ सकता।

तीन बजे रात को जब मैं घर पहुँचा तो होली में आग लग रही थी। मैं स्टेशन से दो मील सरपट दौड़ता हुआ गया। मालूम नहीं भूखे शरीर में दुगनी ताक़त कहाँ से आ गयी थी।

अम्माँ मेरी आवाज सुनते ही आँगन में निकल आयीं और मुझे छाती से लगा लिया और बोली — इतनी रात कहाँ कर दी, मैं तो साँझ से तुम्हारी राह देख रही थी, चलो खाना खा लो, कुछ खाया-पिया है कि नहीं?

वह अब स्वर्ग में हैं। लेकिन उनका वह मुहब्बत-भरा चेहरा मेरी आँखों के सामने है और वह प्यार-भरी आवाज कानों में गूँज रही है।

मिस्टर जैक्सन से कई बार मिल चुका हूँ। उसकी सज्जनता ने मुझे उसका भक्त बना दिया हैं। मैं उसे इन्सान नहीं फरिश्ता समझता हूँ।

['जादे रूह' से]